अथ द्वितीयोऽध्यायः॥ आह सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपदिष्टेषु जीवादिष्वादावुपन्यस्तस्य जीवस्य किं स्वतत्त्वमित्युच्यते—

॥ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अथ * द्वितीयः [1/1] अध्यायः [1/1] आह T सम्यग् दर्शनस्य [6/1]	=दूसरा अध्याय प्रारम्भ (अथ) है। (शिष्य) पूछता है कि सम्यग् दर्शनका
विषयभावेन [3/1] उपदिष्टेषु [7/3] जीवादिषु [7/3]	=विषयभावकरि उपदेश किये गए जीवादिक तत्त्वों के
आदौ [7/1] उपन्यस्तस्य [6/1] जीवस्य [6/1] स्वतत्त्वम् [1/1]	=आदि में कहेगये (उपन्यस्तस्य) जीवका निजभाव (स्वतत्व)
किम् * इति * उच्यते T	=क्या है ऐसा (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि,

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ [1/2] भावौ [1/2] मिश्रः [1/1] च *	=औपशमिकभाव, और क्षायिक भाव और क्षायोपशमिक (भाव)
जीवस्य [6/1] स्वतत्त्वम् [1/1] औदयिकपारिणामिकौ [1/2] च *	=जीव के निज भाव वा निजस्वभाव हैं औदयिक तथा पारिणामिक भी हैं

अर्थात् जीव के औपशमिक और क्षायिक और मिश्र तथा औदयिक और पारिणामिक ये पांच भाव हैं। और ये पांचों ही भाव जीव के निजतत्त्व निजभाव हैं क्यों कि ये जीव में ही होते हैं? जैसे मलिन जल में निर्मली वा फिटकड़ी डालने से कीचड़ नीचे बैठ जाती है और ऊपर से जल निर्मल हो जाता है उसी प्रकार कर्मों के उपशम होने से (उदय न होने से) जीव के परिणाम जो शुद्ध हो जाते हैं उनको औपशमिक भाव कहते हैं। कर्मोंके सर्वथा नाश होने से जो आत्मा के शुद्ध भाव होते हैं। उनको क्षायिक भाव कहते हैं। सर्वघाती कर्मों के उदयाभावीक्षय और उन्ही सर्वघातीस्पर्द्धकोंका सत्तामें उपशम होने तथा देशघाती कर्मोंके उदय होने से जो भाव होते हैं उनको मिश्र भाव अथवा क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। द्रव्यक्षेत्र काल भाव रूप निमित्तसे कर्म जो अपना रस (फल) देता है उसको उदय कहते हैं। उन कर्मों के उदय से जो आत्माकेभाव होते हैं उनको औदयिक भाव कहते हैं। और जिन भावों में कर्मों की उदय उपशम क्षयोपशम कुछ भी अपेक्षा नहीं है उन भावोंको पारिणामिक भाव कहते हैं

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायों में एकसा है।

आत्मनि कर्मणः स्वशक्तेः कारणवशादनुद्भूतिरुपशमः । यथा कतकादिद्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशमः ॥ क्षयः आत्यन्तिकी निवृत्तिः ॥ यथातस्मिन्नेवाम्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते पङ्कस्यात्यन्ताभावः ॥ उभयात्मको मिश्रः । यथा तस्मिन्नेवाम्भसि कतकादिद्रव्यसम्बधात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणवृत्तिः ॥ द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां फलप्राप्तिरुदयः॥ द्रव्यात्मलाभमात्रहेतुकःपरिणामः॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित प्रथम सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

आत्मनि ७। कर्मणः ६।।। स्वशक्तेः ६।। कारणवशात् ५। =आत्मा में कर्म की निज सामर्थ्य के निमित्त के वश से वा आश्रय से
अनुद्भूतिः १। उपशमः १। यथा * कतकादिद्रव्यसम्बन्धात् ५। =उदय न होना(सो)उपशम है। जैसे निर्मली आदिक वस्तु के संयोग से
अम्भसि ७। पङ्कस्य ६। उपशमः १। =जलमें कीचका शान्ति वा समता होना अर्थात् कीचड़ का नीचे बैठ जाना ऊपर से जल का निर्मल होना सो उपशम है
क्षयः १। आत्यन्तिकी १। निवृत्तिः १।। =कर्मोंका अत्यंत नाश सो क्षय है (कर्मका सत्ता से उड़जाना सो क्षय है)
यथा*तस्मिन् ७। एव*अम्भसि ७। शुचिभाजनान्तरसंक्रान्ते ७।=जैसे उसी जल को निर्मल अन्य पात्र में लेनेपर
पङ्कस्य ६। अत्यन्तअभावः १। उभयआत्मकः १। मिश्रः १। =कीचड़ का अत्यन्त अभावहोजाताहै। उपशम क्षयका मिलाहुआस्वरूप मिश्रहै
यथा* तस्मिन् ७।। अम्भसि ७। कतकादिद्रव्यसंबन्धात् ५। =जैसे उसी जल में निर्मली आदि वस्तु के संयोग से
पङ्कस्य ६। क्षीण–अक्षीण वृत्तिः १।। =कर्दम की क्षीण अक्षीण स्थिति हो जाती है अर्थात् कुछ कीचड़ पैंदे में बैठ जातीहै कुछ गदली रह जाती है। कुछ बाहर निकल जाती है
(तैसे क्षयोपशम है) भावार्थ कोदों एक जाति का धान्य विशेष है वह मादक पदार्थ है। जिस समय उसे जल से धो दिया जाता है उस समय धोने से कुछ मादकशक्तिके क्षीण हो जाने पर और कुछ के तदवस्थ रहने पर जिस प्रकार कोदो पदार्थ मिश्र मादक शक्ति का धारक कहा जाता है। उसी प्रकार कर्मों के क्षय करने वाले कारणों के उपस्थित होने पर कर्म की कुछ शक्ति के नष्ट हो जाने पर और कुछ के सत्ता में मौजूद रहने पर एवं कुछ के उदय रहने पर जो आत्मा की (दही गुड़ के समान) मिली हुई भावों की अवस्था होती है उस अवस्था का नाम मिश्र है ॥
द्रव्यआदिनिमित्तवशात् ५। कर्मणाम् ६।।। फल प्राप्तिः १। =द्रव्य क्षेत्र काल भाव के कारण वश से कर्मों के रसका लाभ
उदयः १। द्रव्यात्म-लाभमात्र-हेतुकः १। परिणामः १। =सोउदय है वस्तुकेनिजस्वरूप(आत्म)की प्राप्तिमात्रमेंनिमित्तकुछपरिणामहै

३

उपशमः प्रयोजनमस्येत्यौपशमिकः । एवं क्षायिकः, क्षायोपशमिकः, औदयिकः, पारिणामिकश्च ॥ त एते पञ्च भावा असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यन्ते ॥ सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते । तदनन्तरं क्षायिकग्रहणं तस्य प्रतियोगित्वात्

अर्थात् जिससे द्रव्य के निज का पावना होय सो पारिणामिक है।

उपशमः १ प्रयोजनम् १।। अस्य६। इति*औपशमिकः१।=उपशम है प्रयोजन जिसका ऐसा औपशमिक है।

एवम्*क्षायिकः१। क्षायोपशमिकः१। औदयिकः१। =उसी प्रकार क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक

पारिणामिकः१।च* =और पारिणामिक है अर्थात् इन सब में प्रयोजन अर्थ में इक् प्रत्यय है।

ते १।एते १। पञ्च १। भावाः१। असाधारणाः१।जीवस्य६। =ये पांचों भाव असाधारण जीवके अर्थात् जीव हीमें होतेहैं अन्यकिसीमेंनहींहोतेहैं

स्वतत्त्वम् १।। इति * उच्यन्ते T =निज भाव हैं ऐसे कहेगये हैं।

सम्यग्दर्शनस्य ६।। प्रकृतत्वात् ५।। तस्य ६।। त्रिषु ७। =सम्यग्दर्शन का प्रकरण वा अधिकार होने से तिससम्यग्दर्शन के तीन

विकल्पेषु ७। औपशमिकम् १।। आदौ ७। लभ्यते T =भेदोंमें औपशमिक आदि में वा पहिले प्राप्त किया जाता है

इति तस्य ६।। आदौ ७। ग्रहणम् १।। क्रियते T =इस प्रकार तिस (औपशमिक) का सूत्र में प्रथम आदान(ग्रहण) किया गया है

अर्थात् अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के प्रथम ही उपशम सम्यक्त्व होता है इस लिए सूत्र में पहिले वही कहा गया है

तदनन्तरम् १।। क्षायिक ग्रहणम् १।। तस्य ६।। =तिस(औपशमिक)के अत्यन्त समीप क्षायिकका ग्रहणहै क्योंकि तिसऔपशमिकका

प्रतियोगित्वात् ५।। =(निर्मल ताई में)प्रतियोगी है बराबरी होड़ वा स्पर्द्धा करने वाला क्षायिक है

भावार्थ मिथ्यात्व,सम्यङ् मिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व ये सम्यग्दर्शन की विरोधी प्रकृतियें हैं इन तीनों के सर्वथा नाश होने पर क्षायिक सम्यक्त्व होता है अतः क्षायिक सम्यक्त्व की विशुद्धता उपशम सम्यक्त्व की विशुद्धता से अधिक है इस लिए सूत्र में औपशमिक के पश्चात् क्षायिक का ग्रहण किया है।

(१) लभ् –हह भ्वादि प्रथम गण का सकर्मक आत्मने पदी धातु है कर्मणि प्रधान प्रयोग में यक् (=य) प्रत्यय जोड़ कर से अन्य पुरुष एक

संसार्यपेक्षया द्रव्यतस्ततोऽसंख्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तरं मिश्रग्रहणं तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसंख्येय गुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वादौदयिकपारिणामिकग्रहणमन्तेक्रियते ।

संसार्यपेक्षया [१।।] द्रव्यतः * ततः* असंख्येय गुणत्वात् [५।।।] च	=और संसारी जीव की विवक्षाकरि द्रव्य अपेक्षासे तिस औपशमिक[१]-वाले जीव से (क्षायिक वालेजीव) असंख्यात गुणेभी हैं
ततः* उत्तरम् [१।।।] मिश्र ग्रहणम् [१।।।] तदुभयात्मकत्वात् [५।।।]	=तिस(क्षायिक)सेपीछे (=उत्तरम्)मिश्रका ग्रहणहैवोक्षायोपशमिकाग्रहणहै क्योंकि उस (मिश्र) के दोनों (क्षायिक और उपशम) स्वरूप हैं
ततः * असंख्येयगुणत्वात् [५।।।] च *	=और उस (क्षायिक) से असंख्यात गुणें जीव भी हैं।
तेषां [६।] सर्वेषाम् [६।] अनन्तगुणत्वात् [५।।।]	=तिन सब(औपशमिक क्षायिक, मिश्र) के अनन्त गुण (जीव)होने से
औदयिक-पारिणामिक-ग्रहणम् [१।।] अन्ते [७।] क्रियते T	=औदयिक पारिणामिक का ग्रहण अन्त में किया गया है

(१) उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर मुहूर्त मात्र है तिस से जीव अल्प ही इकट्ठे होने पाते हैं और क्षायिक सम्यक्त्व का काल तेतीस सागर से कुछ अधिक है अर्थात् उपशम से क्षायिक काल असंख्यात गुणा है। तिस से उस में जीवों की संख्या भी असंख्यात गुणी हुई। क्षायोपशमिक का काल छयासठ सागर है तिस से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से द्रव्य अपेक्षा से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं। स्मरण रहे कि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि द्रव्य की अपेक्षा असंख्येय गुणे हैं भाव की अपेक्षा नहीं क्योंकि विशुद्धी की अधिकता से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की अपेक्षा क्षायिक सम्यक्त्व अनंत गुणा माना है इस लिए भाव की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से असंख्यात गुणे नहीं माने जा सकें। तथा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का संचय काल छयासठि सागर प्रमाण है और उस में प्रथम समय से आदि लेकर समय समय काल की समाप्ति पर्यंत इकट्ठे होने वाले बहुत से क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि होते रहते हैं इस लिए यहां पर भी आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणा कार मानने से क्षायिक सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि उस गुणकार प्रमाण हैं। इस प्रकार क्षायिक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों के अधिक होने से सूत्रमें क्षायिक के पीछे मिश्र शब्द का उल्लेख है। (पं० जयचंद वचनिका२२४)

अत द्वन्द्वनिर्देशः कर्तव्यः । औपशमिकक्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका इति। तथा सति द्विश्चशब्दो न कर्तव्यो भवति ॥ नैवं शंक्यम् । अन्यगुणापेक्षाया मिश्र इति प्रतीयेत । वाक्ये पुनः सति चशब्देन प्रकृतोभयानुकर्षः कृतो भवति ॥

अतः * द्वन्द्व निर्देशः १। कर्तव्यः १। औपशमिक-	=(प्रश्न) अतः द्वन्द्व समासका उच्चारण(=निर्देश)करना चाहिये। औपशमिक
क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिकाः १। इति *	=क्षायिकमिश्रौदयिकपारिणामिका ऐसा (सूत्र) होता
तथा * सति १। द्विः १। च शब्दः १। न कर्तव्यः १। भवति ।	=ऐसा होने पर दो 'च' शब्द न करने होते अर्थात् सूत्र में दो चकार न्यूनहोजाते
न एवं शंक्यम् १।। — अन्य गुण-	=(उत्तर) ऐसी शंका न करो (औपशमिक और क्षायिकसे)अन्य (दो)भावोंकी
अपेक्षया १। मिश्रः १। इति प्रतीयेत ।	=अपेक्षासे मिश्र ऐसा निर्णय वा प्रतीति कियाजाय
	(यदि मिश्र शब्द के पश्चात् सूत्र में च शब्द न होता तो)
वाक्ये १।। पुन * सति १।। च * शब्देन १।	=और "चशब्द" सहित सूत्र (=वाक्ये) होने पर (=सति)
प्रकृतः १। उभयानुकर्षः १। कृतः १। भवति ।	=अधिकार किये गये वा विषयभूत दोनों(औपशमिक क्षायिक)का ग्रहणकियाहै

इस समस्तप्रश्नोत्तरकाभाव यहहै(प्रश्न)सूत्रकारने'औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च' ऐसा पढा है परन्तु उतने लम्बे चोड़े सूत्रके स्थान पर 'औपशमिक क्षायिक मिश्रौदयिक पारिणामिकाः' ऐसा सूत्र बनाना ठीक था । ऐसे सूत्र के बनाने में दो जगह दो च शब्द कहने पड़े हैं वे भी न कहने पड़ते बड़ा भारी लाघव होता जोकि सूत्र कारों के मत में महान लाभ माना गया है इसलिए वैसा लम्बा चौड़ा सूत्र नहीं बनाना चाहिए (उत्तर) औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्चेत्यादि जैसा सूत्र कार ने सूत्र पढ़ा है उस में च शब्द से पहिले कहे गये औपशमिक और क्षायिक भावों का अनुकर्षण होता है और उस से औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था मिश्रभाव लिया जाता है किंतु अब वैसा सूत्र न कह कर यदि औपशमिक क्षायिक मिश्रेत्यादि द्वंद्वगर्भित सूत्र किया जायगा तो च शब्द के अभाव में औपशमिक और क्षायिक का अनुकर्षण न होने पर औपशमिक और क्षायिक की मिली हुई अवस्था तो मिश्र भाव कही नहीं जायगी ॥

प्रतीयेत । प्रति उपसर्ग है । इ = अदादिगणका धातु जाना अर्थ में है प्रति + इ = प्रती, कर्मणि प्रयानका य जोड़ कर और विधिलिङ्ग अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी ईत प्रत्यय जोड़ कर प्रती + य + ईत = प्रतीयेत रूप बना जिस का अर्थ " जानाजाय " है

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमेव कर्त्तव्यमिति चेन्न। गौरवात्॥ मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम्। भव्यस्य औपशमिकक्षायिकौ भावौ। मिश्रः पुनरभव्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्यां सह भव्यस्यापीति॥

किंतु उनसे भिन्न अन्य ही दो भावों की मिली हुई अवस्था मिश्र कही जायगी जोकि विरुद्ध है इसलिए द्वंद्वगर्भित सूत्र न कहकर जैसा सूत्रकार ने सूत्र बनाया है वही ठीक है और उसमें च शब्दसे औपशमिक और क्षायिक भावों की मिली हुई अवस्था ही से मिश्रभाव का अर्थ लिया जासकता है अन्य का नहीं।

तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणम् ॥ एव कर्त्तव्यम् ॥ इति चेत् =(प्रश्न) तो (सूत्र में) क्षयोपशमिक (शब्द) का ग्रहण ही करना चाहिए ऐसी शंका है

न * =(उत्तर)(मिश्र शब्द के स्थान में क्षायोपशमिक शब्द का ग्रहण)(नहीं करना चाहिए)

गौरवात् ॥ मिश्रग्रहणम् ॥ मध्ये । =क्योंकि (सूत्र) गौरव होजाता वा बढ़जाता। मिश्र (शब्द) का आदान बीचमें

उभयापेक्षार्थम् ॥ क्रियते भव्यस्य । =दोनों (पहिले पिछले) की विवक्षाके लिए कियागया है। भव्य(जीव) के

औपशमिकक्षायिकौ । भावौ । =औपशमिक क्षायिक (दोनों) भाव हैं

मिश्रः। पुनः अभव्यस्य । अपि भवति । =बहुरि मिश्र(भाव) अभव्य के भी होता है

औदयिकपारिणामिकाभ्याम् ॥ सह भव्यस्य । =औदयिक पारिणामिक (भावों) सहित भव्य(जीव)

अपि इति =भी है (अभव्य भी है) तीनों वाक्यों की व्याख्या ऐसे हैं कि औपशमिक और क्षायिक यह युग्म और औदयिक एवं पारिणामिक यह युगल, इन दोनों युगलोंके बीचमें मिश्र भाव पाठ रक्खा है ऐसा करनेसे इतना ही प्रयोजन समझ लेना चाहिए कि भव्यके औपशमिक आदि पांचों भाव होते हैं अर्थात् (१) औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (२) क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र (३) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ज्ञान एवं क्षायोपशमिक चारित्र (४) औदयिक और (५) पारिणामिक ये पांचों भाव भव्यकेही होते हैं और अभव्यों के क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक ये तीन ही भाव होते हैं। औपशमिक और क्षायिक ये दो भाव अभव्यके नहीं होते हैं

भावापेक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गः स्वतत्त्वस्येति चेन्न । उपात्तलिङ्गसंख्यात्वात् ॥ तद्भावस्तत्त्वम् । स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वमिति ॥ अत्राह तस्यैकस्यात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति । अत्रोच्यते भेदवन्तः । यद्येवं, भेदा उच्यन्तामित्यत आह—

क्षायोपशमिक भावों में भी ज्ञान और दर्शन दो ही भाव होसकते हैं ज्ञान दर्शन से मिथ्या ज्ञान और मिथ्या दर्शन समझना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन के विना सम्यग्ज्ञान आदि नहीं होते ॥

भावापेक्षया॥ तत्॥ लिङ्ग संख्या–प्रसङ्गः॥ =(प्रश्न)भाव(शब्द)की अपेक्षासे उस(भावशब्दके लिङ्ग और संख्या का संयोग
स्वतत्त्वस्य॥ इति चेत्* =स्वतत्त्व (शब्द) के होता है ऐसी शंका है (=चेत्)

प्रश्न का भावार्थ यह है कि भावशब्द पुल्लिङ्ग है इसलिए स्वतत्त्व शब्द भी पुल्लिङ्ग चाहिए और भावों की गणना बहुत है इसलिए स्वतत्त्व शब्द के भी बहु वचन चाहिए, स्वतत्त्व शब्द नपुंसकलिङ्ग और एक वचन है सो न चाहिए

न*उपात्तलिङ्ग संख्यात्वात्॥ =(उत्तर)नहीं होता॥क्योंकि (स्वतत्त्व शब्द के) गृहीतलिङ्ग संख्या है अर्थात् स्वतत्त्व शब्द की लिङ्ग और संख्या पलटती नहीं है यह भाववाची होनेसे एक वचन और नपुंसकलिङ्ग होता है ॥

तद्भावः॥तत्त्वम्॥ स्वम्॥ तत्त्वम्॥स्वतत्त्वम्॥इति=जिसका भाव सो तत्त्व है । निजभाव(सो)स्वतत्त्व ऐसे (स्वतत्त्व शब्दकी व्युत्पत्ति है)
अत्र*आह।तस्य। एकस्य। आत्मनः। =यहां (शिष्य)पूछता है (कि)उस एक चेतन के
ये। भावाः।औपशमिक आदयः।ते किम् भेदवन्तः =ये (पांच)भाव औपशमिक आदिक हैं ते भेद सहित हैं
उत।*अभेदाः।इति*अत्र*उच्यते।भेदवन्तः। =अथवा (=उत) भेद रहित हैं(उत्तर) यहां कहा जाता है कि भेद सहित हैं
यदि*एवम् भेदाः।उच्यताम्।इति।अतः* आह। =(प्रश्न) जो ऐसे हैं (तो उनके) भेद कहा जाना चाहिये। अतः कहते हैं कि

॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

द्वयादीनां संख्याशब्दानां कृतद्वन्द्वानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्तिर्वेदितव्या ॥

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

=औपशमिकादीनां भावानां द्विनवाष्टादशैक विंशति त्रिभेदा यथाक्रमम् भवन्ति ॥२॥

पदच्छेद =औपशमिकादीनां भावानां द्वि–नव· अष्टादश–एकविंशति – त्रिभेदाः यथाक्रमम् भवन्ति

सूत्रार्थ =औपशमिकादीनाम् ६। भावानाम् ६। =औपशमिक क्षायिक मिश्र औदयिक पारिणामिक भावों के

द्विनव–अष्टादश–एकविंशति–त्रिभेदाः १। =दो, नव, अठारह इक्कीस और तीन भेद

यथाक्रमम् * भवन्ति T =अनुक्रम से होते हैं अर्थात् औपशमिक भाव दो प्रकार का है क्षायिक भाव नव प्रकार का है मिश्र भावअठारह प्रकार का है औदयिक भाव इकीस प्रकार का है और पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित द्वितीय सूत्र पर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दशः हिन्दी अनुवाद

द्वयादीनाम् ६। संख्याशब्दानाम् ६। कृतद्वन्द्वानाम् ६। =दो आदिक गिनती शब्दों का बनाहुआद्वन्द्व समास (कृतद्वन्द्वानांवृत्ति)

भेदशब्देन ३। सह * स्वपदार्थे ७। अन्यपदार्थे ७। वा * =और भेद शब्द के सहित(=सह) स्वपदार्थ में अथवा अन्य पदार्थ में

वृत्तिः १। वेदितव्या १। =वृत्ति जानना योग्य है भावार्थ दो नव अठारह आदि संख्याओं का द्वन्द्व =समास और सूत्रमेंभेदशब्दके स्वपदार्थ वृत्ति वा अन्यपदार्थवृत्ति जानना

इस सूत्र का दोनों श्वेताम्बर आम्नाय और दिगम्बर आम्नाय में पाठ और अर्थ एकसा है ।

द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयस्त एव भेदा येषामिति वा वृत्तिर्द्वि नवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति ॥यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीनां द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयो भेदा इत्यभिसम्बन्धः क्रियते अर्थवशाद्विभक्तिपरिणाम इति॥ यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा निर्दिष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यन्ते।औपशमिकादयो भावा द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा इति॥ यथाक्रमवचनं यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ औपशमिको द्विभेदः। क्षायिको नवभेदः मिश्रोऽष्टादशभेदः। औदयिक एकविंशतिभेदः। पारिणामिकस्त्रिभेदः

द्वौ १। च*नव १। च*अष्टादश १। च*एकविंशतिः १॥ च =बहुरि दो और नव तथा अठारह और इक्कीस
त्रयः १।च*द्विनवअष्टादशैकविंशतित्रयः १। =और तीन दो--नव--अठारह इक्कीस और तीन(ये द्वन्द्ववृत्तिवा द्वन्द्वसमास हुआ)
ते १। एवभेदाः १। येषाम् ६। इति*वा*वृत्तिः १॥ =ते ही हैं भेद जिनके ऐसी (अन्यपदार्थवृत्ति हुई) अथवा
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः १। इति* =दो--नव--अठारह-इकीस तीन भेद ऐसे हैं (येस्वपदार्थवृत्ति हुई)
यदा*स्वपदार्थे ७।वृत्तिः १।।तदा*औपशमिकआदीनाम् ६। =जब स्वपदार्थमें वृत्ति है तब औपशमिक आदिकों के
द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रयः १।भेदाः १। =दो--नव--अठारह इकीस--तीन भेद हैं
इति अभिसम्बन्धः १। क्रियते । =ऐसा सम्बन्ध किया गया है (अर्थात् भेद शब्द संख्याही का सम्बन्धी हुआ और पांचों भावों का बहुवचन षष्ठीविभक्ति करि कहना जो ये भेद पांच भावों के हैं
अर्थवशात् ५। विभक्ति परिणामः १। इति* =अर्थ के आधारसे वा प्रयोजन के आश्रय से विभक्ति का भिन्नपनावा परिणमन है
यदा*अन्यपदार्थे ७। वृत्तिः १॥ तदा*निर्दिष्ट =जब अन्यपदार्थ में वृत्ति है(जैसे ते ही हैं भेद जिनके)तब(सूत्रमें) कही हुई
विभक्त्यन्ताः १। एवाभिसम्बध्यन्ते । =अन्तवाली विभक्तिसमझीजाय है अर्थात्भावोंके वही विभक्तिरहीजोसूत्रमेंकही
औपशमिकादयः १। भावाः १। द्विनवाष्टादश-- =औपशमिक आदि भाव हैं दो--नव--अठारह
एकविंशतित्रिभेदाः १। इति*यथाक्रमवचनम् १॥ =इक्कीस तीन ऐसे(=इति)भेद हैं॥ (सूत्रमें)यथाक्रम वाक्य
यथासंख्यप्रतिपत्त्यर्थम् १॥ औपशमिकः १। =संख्यानुसारकी प्राप्ति (=प्रतिपत्ति) के लिए है अर्थात् औपशमिक
द्विभेदः १।क्षायिकः १। नवभेदः १।मिश्रः १। अष्टादशभेदः १। =दो भेद रूप है क्षायिक नो भेद रूप है क्षायोपशमिक अठारह भेद रूप है
औदयिकः १। एकविंशतिभेदः १। पारिणामिकः १। त्रिभेदः १। =औदयिक इक्कीस भेद रूप है पारिणामिक तीन भेद रूप है

सर्वार्थ

इति ॥ यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भेदावित्यत आह—

॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥३॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे॥ औपशमिकत्वं कथमिति चेदुच्यते। चारित्रमोहो द्विविधः कषायवेदनीयो नोकषायवेदनीयश्चेति ॥ तत्र कषायवेदनीयस्य भेदा अनन्तानुबन्धिनः क्रोधमान-मायालोभाश्चत्वारः,

इति *	=ऐसे (यथासंख्य वा क्रमसे दो नव अठारह आदिक संख्यायें औपशमिक क्षायिक मिश्र आदिकों पर लगाये जाते हैं)
यदि * एवम् * औपशमिकस्य ६। कौ १। द्वौ १। भेदौ १।	=(प्रश्न) जो इस प्रकार है (तो) औपशमिकके कौनसे दो भेद हैं
इति * अतः * आह T	=इसलिये कहते हैं कि

(१)
सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

=सम्यक्त्व चारित्रे द्वावौपशमिकौ भावौ भवतः ॥३॥

सम्यक्त्वचारित्रे १॥ द्वौ औपशमिकौ १। भावौ १। भवतः T	=सम्यक्त्व तथा चारित्र दो औपशमिक भावहैं-औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिकचारित्रहैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित तृतीय सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

व्याख्यातलक्षणे १॥ सम्यक्त्वचारित्रे १॥	=पूर्व जिन के स्वरूपकहे हैं वे सम्यक्त्व और चारित्र हैं
औपशमिकत्वम् १॥ कथम् * इति * चेत् * उच्यते T	=औपशमिकपना कैसे है ऐसा(=इति) संदेह(=चेत्)होनेपर कहागयाहै(=उच्यते) कि
चारित्रमोहः १। द्विविधः १। कषायवेदनीयः १।	=चारित्रमोह दो प्रकारका है कषायवेदनीय
नोकषायवेदनीयः १। च * इति *	= और नोकषायवेदनीय इस प्रकार है। (किंचित् कषाय=ईषत्कषाय)
तत्रकषायवेदनीयस्य ६। भेदाः१। अनन्तानुबन्धिनः १।	=तहां कषायवेदनीयके भेद अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान-माया-लोभाः १। चत्वारः १।	=क्रोध-मान-माया-लोभ चार हैं ॥

(१) इस सूत्रका दोनो दिगम्बर और श्वताम्बर आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है (२) आत्माको कषे वा कृशितरूप करै उसे कषाय कहते हैं (३) आत्मामें पहिले सम्यक्त्व पर्याय की प्रकटता होती है पीछे चारित्र पर्याय का उदय होता है इस लिए सम्यक्त्वकी प्रकटता चारित्र से पहिले होने के कारण सम्यक्त्व चारित्र इस सूत्र में सम्यक्त्व शब्द का पहिले प्रयोग किया गया है ॥

दर्शनमोहस्य त्रयोभेदाः सम्यक्त्वं, मिथ्यात्वं, सम्यङ्मिथ्यात्वमिति, आसां सप्तानां प्रकृतीनामुपशमादौपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनादिमिथ्यादृष्टेर्भव्यस्य कर्मोदयापादितकालुष्ये सति कुतस्तदुपशमः। काललब्ध्यादिनिमित्तत्वात् ॥ तत्र काललब्धिस्तावत्-कर्माविष्ट आत्मा भव्यकालेऽर्द्धपुद्गलपरिवर्त्तनाख्येऽवशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति,

दर्शनमोहस्य ६। त्रयः १। भेदाः १। सम्यक्त्वम् १॥ (१)	=दर्शनमोहनीयके तीन भेद सम्यग्दर्शन
मिथ्यात्वम् १॥ सम्यक् मिथ्यात्वम् १॥ इति *	=मिथ्यादर्शन और सम्यङ्मिथ्यादर्शन ऐसे
आसाम् ६॥ सप्तानाम् ६॥ प्रकृतीनाम् ६॥ उपशमात् ५।	=इन सातप्रकृतियों के उपशम से
औपशमिकम् १॥ सम्यक्त्वम् १॥ अनादि मिथ्यादृष्टेः ६।	=औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है (प्रश्न) अनादिमिथ्यादृष्टि
भव्यस्य ६। कर्म + उदय + आपादित + कालुष्ये ७॥ सति ७॥	=भव्यजीवके कर्मके उद्रेककरि कलुषताहोतेसंते
कुतः * तद् + उपशमः १।	=क्यों कर (पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंका) उसके उपशम होता है
काललब्धि-आदि निमित्तत्वात् ५॥	=(उत्तर) काललब्धि आदिके कारण से
तत्र काललब्धिः १॥ तावत् *	=तहां प्रथम (=तावत्) काललब्धि
कर्म + आविष्टः १। आत्मा १। भव्यः १।	=कर्मकरि दवायागया भव्यजीव (=आत्मा) अर्थात् कर्मसहित भव्यजीव
काले ७। अर्द्धपुद्गलपरिवर्तनाख्ये ७। अवशिष्टे ७।	=संसारकालमें अर्द्धपुद्गल परिवर्तननाम (काल) अवशेष रहने पर
प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य ६॥ योग्यः १। भवति ।	=पहिले उपशम सम्यग्दर्शन के ग्रहणकरने योग्य होता है

(१) जिस कर्मके उदय से सम्यक्त्वगुणका मूल घात तो हो नहीं परन्तु चल मल अगाढ़ ये दोष उत्पन्न हो जाय वह सम्यक्प्रकृति है। जिस कर्मके उदयसे सम्यग्दर्शनका सर्वथा घात स्वरूप जीव के अतत्त्वश्रद्धान हो वह मिथ्यात्व प्रकृति है। और जिस कर्म के उदय से सम्यग्दर्शन के सर्वथा घात स्वरूप मिले हुए परिणाम हो जिनको कि न सम्यक्त्वरूप कहसके और न मिथ्यात्वरूप कहसकें वह सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति है यह मिश्र परिणाम भी वैभाविक भाव ही है ॥

नाधिके इति इयमेका काललब्धिः॥ अपरा कर्मस्थितिकाललब्धिः। उत्कृष्टस्थितिकेषु कर्मसु जघन्यस्थितिकेषु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति॥ क्व तर्हि भवति?। अन्तः कोटीकोटी सागरोपमस्थितिकेषु कर्मसु बन्धमापद्यमानेषु विशुद्धपरिणामवशात्सत्कर्मसु च ततः संख्येयसागरोपमसहस्रोनायामन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयोग्यो भवति॥

न*अधिके ७। इति* इयम् १॥ एका १॥ काललब्धिः१॥	=न कि अधिक (संसार काल के अवशेष रहने) पर इस प्रकार एक काल लब्धि है
अपरा १॥कर्मस्थितिकाललब्धिः १॥	=दूसरी कर्मस्थिति काललब्धि अर्थात् वह काल लब्धि जिसका लाभ कर्मोंकी विशेषस्थिति पर निर्भर है वह कर्म स्थिति आगे कहते हैं
उत्कृष्टस्थितिकेषु७॥ कर्मसु७॥ जघन्यस्थितिकेषु७॥च*	=उत्कर्षस्थितिवाले कर्मों में तथा (=च) जघन्यस्थिति वाले कर्मों में
प्रथमसम्यक्त्वलाभः १। न* भवति T	=प्रथम उपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिवाले वा जघन्य स्थितिवाले कर्मोंके विद्यमान रहते प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण की योग्यता नहीं होती।
क*तर्हि*भवति T अन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितिकेषु७॥	=(प्रश्न) तो (प्रथम सम्यक्त्व की लब्धि, कहां होती है (एक) कोड़ी कोड़ी सागरोपमके भीतर २ (=अन्त) स्थितिलिये
कर्मसु ७॥ बन्धम् २। आपद्यमानेषु ७॥	=कर्मोंके बन्धभाव को प्राप्त होने पर (आपद्यमानेषु)
विशुद्धपरिणामवशात् ५। सत्कर्मसु ७॥च*ततः *	=और (वहां) निर्मल परिणाम के आश्रय से सत्तामें संचित कर्मोंकी स्थिति
संख्येयसागरोपमसहस्र + ऊनायाम् ७।	=संख्यातेहजारसागरोपमहीन
अन्तः कोटीकोटीसागरोपमस्थितौ ७। स्थापितेषु ७॥	=अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरोपमस्थितिमेंसे) रह जानेपर (स्थापितेषु)
प्रथमसम्यक्त्वयोग्यः १। भवति T	=प्रथम सम्यक्त्व के (ग्रहण) योग्य (जीव) होता है (भावार्थ) आयुकर्मके विना घुणाक्षरन्यायसे अंतः कोटिकोटिसागरप्रमाणकर्म

सिद्धि

१२

अपरा काललब्धिर्भवापेक्षया। भव्यः पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तकः सर्वविशुद्धः प्रथमसम्यक्त्वमुत्पादयति॥ आदिशब्देन जातिस्मरणादिः परिगृह्यते॥ कृत्स्नस्य मोहनीयस्योपशमादौपशमिकं चारित्रम्॥ तत्र सम्यक्त्वस्यादौ वचनं तत्पूर्वकत्वाच्चारित्रस्य॥

यः क्षायिको भावो नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

उसी काल में बंधे होय और पहिले के सत्ता में विद्यमान समस्तकर्म परिणामोंकी विशुद्धतासे संख्यात् हजार सागरोपम घाटि अंतः कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होगये हैं उस समय प्रथम सम्यक्त्व की योग्यता होती है

अपरा ॥ काल लब्धिः ॥ भव–अपेक्षया ॥ =अन्य काल लब्धि भवकी अपेक्षासे है

भव्यः॥ पञ्चेन्द्रियः॥ संज्ञी ॥ पर्याप्तकः॥ सर्वविशुद्धः॥ =भव्य जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याप्त अवस्था वाला सर्वसे विशुद्ध परिणामवाला

प्रथमसम्यक्त्वम् ॥ उत्पादयति ॥ =प्रथम सम्यग्दर्शनको उपजाता है॥

आदिशब्देन ॥ जातिस्मरणादिः ॥ परिगृह्यते ॥ =(काल लब्ध्यादि वाक्यमें) आदि शब्द करि जाति स्मरणादिकका ग्रहणकियागयाहै

कृत्स्नस्य ॥ मोहनीयस्य ॥ उपशमात् ॥ औपशमिकम् ॥ =समस्त मोहनीय कर्मके उपशमसे उपशम

चारित्रम् ॥ तत्र सम्यक्त्वस्य ॥ आदौ ॥ वचनम् ॥ =चारित्र होताहैतहां (सम्यक्त्वचारित्रसूत्रमें) सम्यक्त्वकीआदिमेंवापहिलेकथन(=वचन)है

तत्–पूर्वकत्वात् ॥ चारित्रस्य ॥ =क्योंकि चारित्रका होना उस सम्यक्त्व के निमित्त से है अर्थात् आत्मा प्रथम सम्यक्त्व अवस्यारूप होताहै फिर चारित्र अवस्थारूप

यः॥ क्षायिकः॥ भावः॥ नवविधः॥ उद्दिष्टः॥ तस्य॥ =जो क्षायिक भाव नौ प्रकार कहा गया है तिस (क्षायिक भाव) के

भेदस्वरूप–प्रतिपादन+अर्थम् ॥ आह ॥ =भेद स्वरूप के कहने के लिए (=कहते) हैं कि

(१) नारकियोंके जातिस्मरण धर्मश्रवण वेदनासे पीडित होकर प्रथमउपशमसम्यक्त्व उपजावें हैं। चौथे नरक से सातवां नरक तक वेदना और जातिस्मरण दो ही कारण हैं। पशुके जातिस्मरण, धर्मश्रवण, जिनबिंब दर्शन तीन कारण हैं यही मनुष्य के हैं। भवनवासी देवों से लेकर बारहवां स्वर्गतक जातिस्मरण धर्मश्रवण जिनबिंब दर्शन देवोंकी ऋद्धिका देखना चार कारण हैं। तेरहवेंस्वर्गसे सोलहस्वर्गतक देवऋद्धि विना तीन ही कारण हैं। इससे ऊपर जातिस्मरण, धर्मश्रवण दो कारण हैं॥

॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥[1]

चशब्दः सम्यक्त्वचारित्रानुकर्षणार्थः॥ ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवलज्ञानं क्षायिकं तथा केवलदर्शनम् दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुग्रहकरं क्षायिकमभयदानम्॥लाभान्तरायस्याशेषस्य निरासात्परित्यक्त—

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४॥

=ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि सम्यक्त्वचारित्रे च

=ज्ञान–दर्शन–दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्याणि, सम्यक्त्व–चारित्रे च ते एते क्षायिकभावस्य नव भेदाः भवन्ति

ज्ञान–दर्शन– =क्षायिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान, क्षायिकदर्शन अर्थात् केवलदर्शन,

दान–लाभ–भोग–उपभोग–वीर्याणि १॥ च =क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य और

सम्यक्त्व– चारित्रे१॥ ते१ एते१ क्षायिकभावस्य ६। =क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, ये क्षायिकभावके

नव भेदाः१ भवन्ति । =नव भेद होते हैं। ये ही नव जीवके निज क्षायिक भाव हैं।

चशब्दः१। सम्यक्त्वचारित्र–अनुकर्षण–अर्थः१। =(सूत्रमें) चशब्द सम्यग्दर्शन तथा (सम्यक्) चारित्र के ग्रहणके लिये है॥

ज्ञान–आवरणस्य६॥अत्यन्त–क्षयात्५। केवलज्ञानम् १॥=ज्ञानावरणीयकर्म के अतिशय नाशसे केवलज्ञान

क्षायिकम् १॥ तथा * केवलदर्शनम् १॥ =क्षायिक होता है दर्शनावरणीयकर्म के (अत्यन्तनाशसे)केवलदर्शन(क्षायिक होताहै)

दान+अंतरायस्य६।अत्यन्त–क्षयात्५।अनन्तप्राणिगण=दान अन्तराय के अतिशय नाश (होने) से अनन्तजीवोंका

अनुग्रहकरम् १॥क्षायिकम्१॥ अभयदानम् १॥ =उपकार करनेवाला क्षायिक अभयदान होता है।

लाभ+अन्तरायस्य६।अशेषस्य६।निरासात्५।परित्यक्त=लाभ अंतराय नामा कर्मके सम्पूर्ण अभावसे किसी प्रकार से नहींहै(परित्यक्त)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

कवलाहारक्रियाणां केवलिनां यतःशरीरबलाधानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणाः परमशुभाःसूक्ष्मा अनन्ताः प्रतिसमयं पुद्गलाः सम्बन्धमुपयान्ति स क्षायिको लाभः॥ कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्यात्यन्ताभावादाविर्भूतोऽतिशयवाननन्तो भोगः क्षायिकः। यतः कुसुमवृष्ट्यादयो विशेषाःप्रादुर्भवन्ति॥ निरवशेषस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुर्भूतोऽनन्त उपभोगः क्षायिकः। यतः सिंहासनचामरच्छत्रत्रयादयः विभूतयः॥ वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽत्यन्तक्षयादाविर्भूतमनन्तवीर्यं क्षायिकम्॥

कवल+आहारक्रियाणाम्। केवलिनाम्। =कवला हार की क्रिया जिनके ऐसे केवली भगवानके (=केवलिनाम्)

यतः शरीरबलाधानहेतवः। अन्य मनुज+असाधारणाः। =जिससे (यतः) शरीर केवलाधानके कारण अन्य मनुष्योंमें न रहने वाली

परमशुभाः। सूक्ष्माः। अनन्ताः। प्रतिसमयं * =अत्यन्त शुभ सूक्ष्म समय समय प्रति अनन्ते

पुद्गलाः। सम्बन्धम्। उपयान्ति T =पुद्गल के परमाणु (पुद्गलाः) सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं

सः। क्षायिकः। लाभः। कृत्स्नस्य। भोगान्तरायस्य। =सो क्षायिक लाभ है। समस्त भोगान्तराय नामा कर्म के

अत्यन्त–अभावात्। आविर्भूतः। अतिशयवान्। अनन्त– =अशेषक्षय से प्रगटरूप अतिशयवान अनन्त

भोगः। क्षायिकः। यतः–कुसुमवृष्टि–आदयः। =क्षायिक भोग हैं अर्थात् जिससे (=यतः)पुष्प वृष्टि आदिक

विशेषाः। प्रादुर्भवन्ति T निरवशेषस्य। उपभोग– =विशेष प्रगट होते हैं वेसमस्त उपभोग

अन्तरायस्य। प्रलयात्। प्रादुर्भूतः। अनन्तः। =अन्तराय नामा कर्म के नाशसे प्रकाशरूप अनन्त

उपभोगः। क्षायिकः। यतः* सिंहासन–चामर– =क्षायिक उपभोग हैं अर्थात् जिससे सिंहासन चामर

छत्रत्रय–आदयः। विभूतयः। वीर्यान्तरायस्य। कर्मणः। =छत्रत्रय आदिक विभूतियें (प्रगट)होती हैं। (और)वीर्यान्तराय नामा कर्म के

अत्यन्त क्षयात्। आविर्भूतम्। अनन्तवीर्यम्। क्षायिकम्। =अत्यन्त नाशसे क्षायिक अनन्त वीर्य प्रगट हुआ है।

पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ चारित्रमपि तथा ॥ यदि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि, सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्गः । नैष दोषः । शरीरनामतीर्थकरनामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात्तेषां तदभावे तदप्रसङ्गः ॥ कथं तर्हि तेषां सिद्धेषु वृत्तिः? । परमानन्तवीर्याव्याबाधसुखरूपेणैव तेषां तत्र वृत्तिः । केवलज्ञानरूपेणानन्तवीर्यवृत्तिवत् ॥

य उक्तः क्षायोपशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणार्थमाह—

पूर्वोक्तानाम् ६।। सप्तानाम् ६।।प्रकृतीनाम् ६।। अत्यन्तक्षयात् ५।	= पहिले कही हुई(मोहनीयकर्म की) सातप्रकृतियोंका अशेष नाशसे
क्षायिकम् १।। सम्यक्त्वम् १।। चारित्रम् १।। अपि*तथा*	=क्षायिकसम्यग्दर्शनहोताहै तैसेही(चारित्रमोहकेअभावसे)क्षायिकचारित्रभीहै
यदि*क्षायिकदानादिभावकृतम् १।। अभयदानादि १।।	=(प्रश्न)जो क्षायिक दानादिकभावकरि कियेहुए अभयदानादिक हैं।,
सिद्धेषु ७। अपि–तत्–प्रसङ्गः१। न एषः१। दोषः१।	=तो सिद्धोंमें भी उन(अभयदानादिक)का संयोग है (उत्तर)यह दूषण नहीं है
शरीरनामतीर्थंकरनामकर्म उदयादिअपेक्षत्वात् ५।	=(अरहंतनिके)शरीरनामानामकर्म तीर्थंकरनामकर्म के उद्रेकविवक्षा से है
तेषाम् ६। तद्*अभावे ७। तत्–अप्रसङ्गः १।	=तिन(सिद्धनि)के उन(कर्मो)के अभावहोनेपर उन(अभयदानादिक)काप्रसङ्गनहीं
कथम्*तर्हि*तेषाम् ६। सिद्धेषु ७। वृत्तिः १।।	=(प्रश्न)तो(=तर्हि)कैसे तिन(अभयदानादिक भावोंकी)सिद्धोंमें प्रवृत्तिवास्थितिहै
परम*अनन्तवीर्य–अव्याबाध–सुखरूपेण ३।।	=(उत्तर)उत्कृष्ट अनन्तवीर्य अव्याबाध आनंदस्वरूपसे
एव*तेषाम् ६। तत्र*वृत्तिः १।।	=तिन(अभयदानादिक भावों की)तहां(सिद्धो में) प्रवृत्ति है ।
केवलज्ञानरूपेण ३।। अनन्तवीर्य वृत्तिवत्*	=केवल ज्ञानरूपकरि अनन्तवीर्य्य प्रवृत्तिके सदृश(सिद्धनिके अभयदानादिकभावहैं
यः १।उक्तः१।क्षायोपशमिकः१। भावः१।अष्टादशविकल्पः१।	=जो कहा क्षायोपशमिक भाव अठारह प्रकार
तद्*भेद-निरूपणार्थम् ४। आह	=तिसके भेद कहने के लिए(आचार्य अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसँयमासँयमाश्च ॥ ५ ॥

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःसम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥५॥

=ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाःयथाक्रमम् सम्यक्त्वचारित्र संयमासंयमाः(इत्येतेऽष्टादश क्षायोपशमिक भावाःचभवन्ति)॥५॥

पदच्छेदः–ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयःचतुःत्रि–त्रि–पंच भेदाः(यथाक्रमम्–इसअध्यायकेदूसरेसूत्रसे लियागयाहै)सम्यक्त्व–चारित्र–संयमा–संयमाः इति एते अष्टादश क्षायोपशमिकाः भावाः भवन्ति च ॥५॥

ज्ञान–अज्ञान–दर्शन–लब्धयः॥चतुर्–त्रि–त्रि–पञ्च–भेदाः॥ =ज्ञान, कुज्ञान, दर्शन, लब्धि, चार,तीन,तीन और पांच प्रकार

यथाक्रमम्॥सम्यक्त्व,–चारित्र– =अनुक्रमसे हैं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र (सराग चारित्र)

संयमासंयमाः॥इति॥एते॥अष्टादश॥च॥ =संयमासंयम (देशव्रत) ऐसे ये अठारह भी (=च–जीवके)

क्षायोपशमिकाः ॥भावाः॥भवन्ति ॥ =क्षायोपशमिक भाव हैं अर्थात् मतिज्ञान,श्रुतज्ञान,अवधिज्ञान,

मनः पर्यय ज्ञान ये चार ज्ञान कुमति कुश्रुत,कुअवधि ये तीन कुज्ञान,चक्षुः दर्शन,अचक्षुः दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, और क्षायोपशमिकदान,क्षायोपशमिकलाभ,क्षायोपशमिकभोग,क्षायोपशमिकउपभोग,क्षायोपशमिक–वीर्य ये पांचप्रकार लब्धि, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, क्षायोपशमिक संयमासंयम ये सर्व अठारह भाव भी आत्मा में कर्मों के क्षयोपशम से होते हैं ॥ स्मरण रहे कि सूत्रमें च शब्द समुच्चयके लिये है इस लिये जितने क्षायोपशमिक भावों का सूत्र में उल्लेखनहीं किया गया है इस च शब्दसे उनका समुच्चय करलेना चाहिये ॥ अतः हमने च शब्द का अनुवाद'भी' ऐसा किया है ॥

(१) श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें क्षायोपशमिक भावोंके विषयमें जो यह पांचवा सूत्र है उसमें हमारे यहां के पांचवां सूत्रसे 'ज्ञानाज्ञान दर्शन' वाक्य के लगता ही "दानादि" वाक्य अधिक है शेष पाठ सूत्रका दोनों आम्नायोंमें एक है। 'दानादि' शब्द के अधिक होने पर भी अर्थ भेद दोनों सम्प्रदायों में नहीं है क्योंकि हमारे यहां "लब्धयः" शब्दका अर्थ क्षायोपशमिकदानलब्धि, क्षायोपशमिक लाभलब्धि क्षायोपशमिक भोगलब्धि, क्षायोपशमिक उपभोगलब्धि, क्षायोपशमिक वीर्यलब्धि किया है और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दानादि लब्धयः वाक्यका यही तात्पर्य लिया है जो हमारे यहां लब्धयः शब्दका। अतः दोनों में अर्थ भेद कुछ भी नहीं रहा। दानादि शब्द के न होने से सूत्र लघु हो जाता है ॥

चत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदा यासां ताश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः ॥ यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्बन्ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दर्शनानि, पञ्च लब्धय इति ॥ सर्वघातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो भवति ॥ तत्र ज्ञानादीनां वृत्तिःस्वावरणान्तरायक्षयोपशमाद्व्याख्यातव्या ॥ सम्यक्त्वग्रहणेन वेदकसम्यक्त्वं गृह्यते । अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य

चत्वारः ।१।३ च त्रयः ।१।३ च त्रयः ।१।३ च पञ्च ।१।३ च चतुः-त्रि =चार तथा तीन और तीन बहुरि पांचका द्वन्द्व समास चार तीन
त्रि-पञ्चभेदाः ।१।३ यासाम् ।६।३ ताः ।१।३ चतुः त्रि-त्रि-पञ्चभेदाः =तीन पांच हुआ । ये हैं भेद जिनके ते चार तीन तीन पांच भेद हुये ॥
यथाक्रमम् *इति* अनुवर्तते । तेन ।३।१ =यथाक्रमम् ऐसी अनुवृत्ति (दूसरे सूत्रसे) निकलती है तिस (यथाक्रम अनुवृत्ति) के
अभिसम्बन्धात् ।५।१ चतुरादिभिः ।३।३ =संयोग से चार तीन तीन पाँच (ये संख्याओं के साथ)
ज्ञानादीनि ।१।३ अभिसम्बन्ध्यन्ते । =ज्ञान अज्ञान दर्शन लब्धि यथासंख्य लगाई जाती हैं
चत्वारि ।१।३ ज्ञानानि ।१।३ =अर्थात् चार ज्ञान हैं (मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय)
त्रीणि ।१।३ अज्ञानानि ।१।३ त्रीणि ।१।३ दर्शनानि ।१।३ =तीन अज्ञान (कुमति, कुश्रुति, कुअवधि) हैं तीन (चक्षुः, अचक्षुः, अवधि) दर्शन हैं,
पञ्च ।१।३ लब्धयः ।१।३ इति* =पाँच (दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्य) लब्धि (ऐसे सब पन्द्रह हैं)
सर्वघाति स्पर्द्धकानाम् ।६।३ उदयक्षयात् ।५।१ तेषाम् ।६।३ एव* =सर्वघाति स्पर्द्धकनि के उदयाभावी क्षयसे (=विना रसदीये खिरजाना) और तिनकेही
सत्*उपशमात् ।५।१ देशघाति-स्पर्द्धकानाम् ।६।३ उदये ।७।१ =सत्तारूप उपशमसे और देशघाति स्पर्द्धकनि के उदय होने पर
क्षायोपशमिकः ।१।१ भावः ।१।१ भवति । तत्र* =क्षायोपशमिक भाव होता है तहां
ज्ञानादीनाम् ।६।३ वृत्तिः ।१।१ स्व-आवरण-अन्तराय- =ज्ञानादिक की प्रवृत्ति अपने अपने आवरण तथा अन्तराय-
क्षयोपशमात् ।५।१ व्याख्यातव्या ।१।१ सम्यक्त्व ग्रहणेन ।३।१ =क्षयोपशमसे वर्णन की गई है वा कही गई है (सूत्रमें) सम्यक्त्व लानेसे
वेदकसम्यक्त्वम् ।१।१ गृह्यते । =वेदकसम्यक्त्व (=क्षायोपशमिकसम्यक्त्व) ग्रहण किया गया है
अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयस्य ।६।१ =अनन्तानुबन्धी कषायके चतुष्क (क्रोध-मान-माया-लोभ) का

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्यक्त्वस्य देशघातिस्पर्द्धकस्योदये तत्त्वार्थश्रद्धानं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकषायोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सञ्ज्वलनकषायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च निवृत्तिपरिणामः आत्मनः क्षायोपशमिकं चारित्रम् ॥ अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानकषायाष्टकोदयक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकषायोदये सञ्ज्वलनकषायदेशघातिस्पर्द्धकोदयेनोकषायनवकस्य यथासम्भवोदये च विरताविरतपरिणामःक्षायोपशमिकः सँयमासँयम इत्याख्यायते ॥

मिथ्यात्वसम्यङ्मिथ्यात्वयोः६॥च* उदयक्षयात् ५। =और मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्वोंके उदयक्षयसे
सत्*उपशमात् ५। च* सम्यक्त्वस्य ६॥ =तथा सत्तारूप उपशमसे और सम्यक्त्व प्रकृतिके
देशघातिस्पर्द्धकस्य ६। उदये ७। तत्त्वार्थश्रद्धानम् १॥ =देशघाति स्पर्द्धकका उदय होनेपर (जो)तत्त्वार्थ श्रद्धान (होता है)
क्षायोपशमिकं१॥सम्यक्त्वम्१॥अनन्तानुबन्धि–अप्रत्याख्यान=(सो)क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन है॥ बहुरि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यान
प्रत्याख्यानद्वादशकषाय–उदयक्षयात् ५। =प्रत्याख्यान बारह कषायोंका उदयाभावी क्षयसे औरइनही बारह कषायोंका
सत्*उपशमात् ५। च*संज्वलन कषायचतुष्टयअन्यतम– =सत्तारूप उपशमसे और संज्वलन कषायके चतुष्क में से किसी एक कषायके
देशघाति-स्पर्द्धक उदये ७। च*नो कषाय नवकस्य ६॥ =देशघाति स्पर्द्धनिका उदय होने पर बहुरि नवईषत्कषायोंके
यथासम्भव–उदये ७। च* निवृत्तिपरिणामः१। आत्मनः६। =यथासम्भव उदय होनेपर(जो)आत्मा का त्यागरूप परिणाम(है सो)
क्षायोपशमिकं१॥ चारित्रम् १॥ अनन्तानुबन्धि- =क्षायोपशमिक चारित्र है (और) अनन्तानुबंधी
अप्रत्याख्यानकषाय–अष्टक–उदयक्षयात् ५। =अप्रत्याख्यान कषायोंके अष्टकके उदयाभावीक्षयसे(=विना रस दिये खिरना)
सत्*उपशमात् ५। च*प्रत्याख्यानकषाय–उदये ७। =सत्तारूप उपशमसे और प्रत्याख्यान कषायके उदय होने पर
संज्वलनकषाय देशघातिस्पर्द्धक उदये७।नोकषायनवकस्य६।=(और)संज्वलन कषायके देशघातिस्पर्द्धकके उदय होनेपर व नोकषायकेनवकका
यथा सम्भव उदये ७। च*विरत–अविरत–परिणामः१। =यथासम्भव उदय होने पर (आत्मा के) विरता विरत परिणाम (होय है सो)
क्षायोपशमिकः१। संयमासयमः१। इति*आख्यायते ।' =क्षायोपशमिक संयमासंयम है ऐसा वर्णन किया गया है

य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमिदमुच्यते ॥

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

यः ।। एकविंशतिविकल्पः ।। औदयिकः ।। भावः ।। उद्दिष्टः ।। =जो इकीस भेदरूप औदयिक भाव कहा है

तस्य ।। भेदसंज्ञासङ्कीर्तन-अर्थम् ।। इदम् ।। उच्यते ।। =तिसके भेद और नाम कहनेके लिए यह कहा जाता है कि

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥

=गति कषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतु स्त्र्येकैकैकैकषट् भेदाः(यथाक्रमम् इत्येते एकविंशतिऔदयिक भावाःभवन्ति ॥

सूत्रार्थः-गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शन-अज्ञान- =गति,कषाय, भावलिङ्ग(भाववेद), मिथ्या दर्शन,अज्ञान,

असंयत-असिद्ध-लेश्याः ।। चतुः-चतुः-त्रि-एक- =असंयम असिद्धत्व तथा लेश्या चार,चार,तीन तथा एक

एक-एक-एक-षट्-भेदाः ।। यथाक्रमम् इति एताः ।। =एक,एक,एक और छः प्रकार(=भेदाः) क्रमसे इस प्रकार ये

एकविंशतिः ।। औदयिक भावाः ।। भवन्ति =इकीस औदयिक भाव होते हैं अर्थात् मनुष्यगति, देवगति नरकगति, और तिर्यंचगति ये चार गति,क्रोध,मान,माया,लोभ, ये चार कषाय, स्त्रीवेद पुंवेद,नपुंसक वेद, ये तीन लिङ्ग,मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छः लेश्या । असिद्धत्व ये भाव समस्त आठों कर्मोंके उदय से होते हैं ॥

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें असिद्धत्व है हमारे यहां पाठ में असिद्ध है शेष पाठ एक है। हमारे यहां असिद्धका अर्थ असिद्धत्व किया है अतः अर्थ एक है (२) आत्मा को कसे दिपरिणवैसा कषाय है ॥ (३) कषायोदयसे अनुरंजित योगों की प्रवृत्तिका नाम लेश्या है ॥ (४) स्त्री आदि वेदों के उदयसे स्त्रीको पुरुषके साथ पुरुषको स्त्रीके साथ और नपुंसक को स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करनेकी जो इच्छा हो उसका नाम लिंग है। वह लिंग दो प्रकारका है एक द्रव्यलिंग दूसरा भाव लिंग। नाम कर्म के उदयसेहोनेवाले बाह्य रचना विशेषका नाम द्रव्य लिंग है वह पुद्गलका परिणाम है और यहां पर आत्माके परिणामों का प्रकरण चल रहा है इसलिये जो सूत्रमें लिंग शब्दका उल्लेख किया गया है उसका अर्थ द्रव्य लिंग नहीं लिया जा सकता किंतु आत्मा का परिणाम स्वरूप भावलिंग है। यह भाव लिंग स्त्री पुरुष और नपुंसक तीनों का आपसमें रमणकरनेकी इच्छा रूप है और नो कषायरूप चारित्र मोहनीयके उदयसे एव स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसक वेदके उदयसे उसकी प्रकटता होती है इसलिए भावलिङ्ग औदयिक भाव है

यथाक्रममित्यनुवर्तते, तेनाभिसम्बन्धात् । गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिर्यग्गतिर्मनुष्यगति-र्देवगतिरिति॥ तत्र नरकगतिनामकर्मोदयान्नारको भावो भवतीति नरकगतिरौदयिकी । एवमि-तरत्रापि॥ कषायश्चतुर्भेदः, क्रोधो मानो माया लोभ इति ॥ तत्र क्रोधनिर्वर्तनस्य कर्मण उदयात्क्रोध औदयिकः। एवमितरत्रापि॥ लिङ्गं त्रिभेदं, स्त्रीवेदःपुंवेदो नपुंसकवेद इति॥ स्त्रीवेदकर्मण उदया-त्स्त्रीवेद औदयिकः। एवमितरत्रापि ॥ मिथ्यादर्शनमेकभेदं,

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम् ।।इति॥ अनुवर्तते । =(यथाक्रमम्)ऐसी अनुवृत्ति(इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे)आती है ॥

तेन ।। अभिसम्बन्धात् ।। गतिः ।। चतुर्भेदाः ।। =तिस(अनुवृत्ति)द्वारा संयोगसे गति चार प्रकार है ॥

नरकगतिः ।।तिर्यग्गतिः ।।मनुष्यगतिः ।।देवगतिः ।।=नरकगति–तिर्यंचगति–नरगति–देवगति

इति॥तत्र नरकगतिनामकर्म उदयात् ।नारकः ।। =ऐसे है तहां नरकगतिनामा नामकर्मके उदयसे नरकका

भावः ।भवति।इति नरकगति–औदयिकी ।।एवम्॥= भाव होता है ऐसे नरकगति नाम औदयिक भाव है

इतरत्र॥अपि॥कषायः ।चतुर्–भेदः ।। =ऐसे अन्यत्रभी हैं (तिर्यंचगति इत्यादि) । कषाय चार भेद रूप है

क्रोधः ।। मानः ।। मायाः ।। लोभः ।। इति॥ =क्रोध–मान–माया–लोभ–इस प्रकार है

तत्र॥क्रोधनिर्वर्तनस्य ।।।कर्मणः ।।। उदयात् ।। =तहां क्रोध सम्पादन कर्मके उदयसे

क्रोधः ।। औदयिकः ।एवम्॥इतरत्र॥अपि॥ =क्रोध औदयिक भाव है इस प्रकार अन्यत्र भी है(अर्थात् मान माया लोभ)

लिङ्गम्त्रिभेदम् ।।।स्त्रीवेदः ।पुंवेदः ।नपुंसकवेदः ।इति=लिङ्ग तीनभेद स्त्रीवेद पुंवेद नपुंसकवेद इस प्रकार है

स्त्रीवेदकर्मणः ।।। उदयात् ।स्त्रीवेदः ।। औदयिकः ।=स्त्रीवेद कर्मके उद्रेक से नारीवेद औदयिक भाव है

एवम्॥इतरत्र॥अपि॥ =ऐसे अन्यत्र भी हैं (अर्थात् पुरुषवेद और नपुंसक वेद कर्मों के उदयसे क्रमानुसार पुरुष वेद और नपुंसक वेद औदयिक भाव हैं)

मिथ्यादर्शनम् ।।।एकभेदम् ।।। =मिथ्यादर्शन एक प्रकार है ॥

मिथ्यादर्शनकर्मण उदयात्तत्त्वार्थाश्रद्धानपरिणामो मिथ्यादर्शनमौदयिकम् ॥ ज्ञानावरणकर्मण-उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौदयिकम् ॥ चारित्रमोहस्य सर्वघातिस्पर्द्धकस्योदयादसंयत औदयिकः ॥ कर्मोदयसामान्यापेक्षोऽसिद्ध औदयिकः ॥ लेश्या द्विविधा, द्रव्यलेश्या भावलेश्या चेति ॥ जीवभावाधिकारात् द्रव्यलेश्या नाधिकृता। भावलेश्या कषायोदयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यते ॥ सा षड्विधा कृष्णलेश्या, नीललेश्या कापोतलेश्या, तेजोलेश्या पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या चेति ॥ ननुच उपशान्तकषाये क्षीणकषाये

मिथ्यादर्शनकर्मणः॥ उदयात् ॥ =मिथ्यादर्शन कर्मके उदयसे (अर्थात् मिथ्यात्वनामा मोहनीयकी प्रकृति उदयसे
तत्त्वार्थ-अश्रद्धान-परिणामः॥मिथ्यादर्शनम् ॥ =तत्त्वोंके स्वरूपका श्रद्धानरूप परिणाम न होना सो मिथ्यादर्शन
औदयिकम्॥ ज्ञानावरणकर्मणः उदयात्॥ पदार्थानाम्॥ =औदयिक भाव है। ज्ञानावरणनामा कर्मके उद्रेकसे पदार्थका
अनवबोधः॥ भवति। तद्॥ अज्ञानम्॥ औदयिकं॥ =ज्ञान नहीं होने पाता है वह अज्ञाननामा औदयिक भाव है
चारित्रमोहस्य॥ सर्वघाति-स्पर्द्धकस्य॥ उदयात्॥ =चारित्रमोहके सर्वघातिक स्पर्द्धकनिके उद्रेकसे
असंयतः॥ औदयिकः॥ कर्म-उदय-सामान्य- =असंयम (होय है वह) औदयिक भाव है (बहुरि) सामान्य कर्मनिके उदयकी
अपेक्षः॥ असिद्धः॥ औदयिकः॥ =अपेक्षारूप असिद्धत्व औदयिक भाव है
लेश्या॥ द्विविधा॥ द्रव्यलेश्या॥ भावलेश्या॥ च इति॥ =लेश्या दो प्रकार है द्रव्यलेश्या और भाव लेश्या
जीवभाव अधिकारात्॥ द्रव्यलेश्या॥ न अधिकृता॥ =जीवके भावके प्रकरण (होने) से द्रव्यलेश्या अधिकृत नहीं है वा विषयभूत नहीं है अर्थात् द्रव्यलेश्याका अधिकार वा प्रकरण नहीं है इसकारणभाव लेश्याग्रहणकी
भावलेश्या॥ कषायउदयरञ्जिता॥ योगप्रवृत्तिः॥ इतिकृत्वा =भावलेश्या कषायके उदय करि रंजित योगनिकी प्रवृत्ति है इसप्रकार (प्रवृत्ति) करके
औदयिकी॥ इति उच्यते। सा षड्विधा॥ कृष्णलेश्या॥ =औदयिकी कहलाती है सो छःप्रकार की है (अर्थात्) कृष्णलेश्या
नीललेश्या॥ कापोतलेश्या॥ तेजोलेश्या॥ पद्मलेश्या॥ =नीललेश्या-कापोतलेश्या-पीतलेश्या-पद्मलेश्या
शुक्ललेश्या॥ च इति ननु च उपशान्तकषाये॥ क्षीणकषाये॥ =और शुक्ललेश्या॥ (प्रश्न)॥ उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें

सयोगकेवलिनि च शुक्ललेश्या(१)ऽस्तीत्यागमः तत्र कषायानुरञ्जनाभावादौदयिकत्वं नोपपद्यते॥ नैषदोषः। पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया याऽसौ योगप्रवृत्तिः कषायानुरञ्जिता सैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते।

सयोग केवलिनि ।। च*शुक्ललेश्या ।। अस्ति । इति* =और सयोग केवली (तेरहवां गुणस्थानवर्ती) में शुक्ललेश्याहै। ऐसा

(२) आगमः ।। तत्र* कषाय—अनुरंजन—अभावात् ।। =शास्त्रका वचन है। (उपरोक्त गुणस्थान में) कषायमें लिप्तपनाके न होनेसे

औदयिकत्वम् ।।। न*उपपद्यते । न*एषः ।। दोषः।। =औदयिकपना नहीं पाया जाता है (=उत्तर) यह दूषण नहीं है

(३) पूर्वभावप्रज्ञापननयापेक्षया ।। या असौ ।। योगप्रवृत्तिः ।। =(यहां) पहिले भाव जतावने की विवक्षाकरि जो यह योगप्रवृत्ति

कषाय अनुरञ्जिता ।। सा ।। एव* इति* =कषायों करि अनुरञ्जित (पहिले वा पूर्वे) थी वो(=सा) ही(=एव)इसप्रकार(इति)

उपचारात् ।। औदयिकी ।। इति उच्यते । =उपचार से औदयिक (लेश्या) कही जाती है यहां ऐसा भावार्थ जानना

कि उपरोक्त गुणस्थानोंमें कषायनिका अभाव होते भी शुक्ल लेश्या कही है यह पूर्व भावों की अपेक्षा से कही है पहिले कषायनकरि संयुक्त योग थे तहां समस्त कषायनिकातो इन तीनों गुणस्थानों में अभाव हुआ परन्तु योग ग्यारहवां और बारहवां गुण स्थान में वही रहे और तेरवें में ७ योग रहे इसलिए उपचार करि औदयिक लेश्या कही है जैसे कसुम करि रंगा हुआ वस्त्र धोने पर भी कसम्मल कहलाता है तैसे ही कषायों के दूर होने पर भी लेश्या कहलाती है॥

(१) जोगपउत्ती लेस्सा कसाय उदयाणु रंजिया होइ =योगप्रवृत्तिलेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति

कसाय-उदयाणु-रंजिया ।। जोग पउत्ती ।। लेस्सा ।। होइ =कषायके उदयसे अनुरक्त जो योग प्रवृत्ति सो लेश्या है।

(२) अयदोत्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्साहु देसविरदतिये। तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु॥

असयतः * इति षड् ।। लेश्याः ।। शुभत्रयलेश्या ।। हि* देशविरत त्रये ।। । तत शुक्ला ।। लेश्या ।। अयोगिस्थानम् ।।। अलेश्यं ।।। तु*॥

=असंयत चौथे गुण स्थान तक छहले श्याहैं। पीत-पद्म-शुक्ल ये शुभ लेश्या देशविरत, प्रमत्तविरत,अप्रमत्त विरत, तीन गुण स्थानोंमें हैं अप्रमत्त से तेरह सयोगी तक शुक्ला है अयोगी लेश्या रहितहैं (३) नैगमनयका एक पूर्वभाव प्रज्ञापन भेद माना है और जो बात पहिले थी किंतु वर्तमान में नहीं है उस का वर्तमान में होना मान लेना यह उस नयका विषय है। यद्यपि उपर्युक्त तीनो गुण स्थानोंमें योगों की प्रवृति कषायोंसे अनुरंजित नहीं है तथापि पूर्व भाव प्रज्ञापननयकीअपेक्षा जो पहिले योगों की प्रवृत्ति कषायों से अनुरंजित थी वह अब भी है ऐसा उपचार से मान लिया जाताहै इस रीति से उपशान्त कषाय,क्षीण कषाय, और सयोग केवली गुण स्थानों में होने वाली शुक्ल लेश्यामें भी जब लेश्या का लक्षण घटजाता है तब कोई दोष नहीं। चौदहवें अयोग केवली गुण स्थान में लेश्या का अभाव है क्योंकि वहां पर योगों की प्रवृत्ति नहीं है॥

तदभावादयोगकेवल्यलेश्य इति निश्चीयते॥ यः पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

जीवत्वं भव्यत्वमभव्यत्वमिति त्रयो भावाः परिणामिका

तद्-अभावात्॥ अयोगकेवली॥	=(और) उस (योग) के न होने से अयोग केवली (चौदहवां गुणस्थानवर्ती)
अलेश्यः॥ इति॥ निश्चीयते यः॥ पारिणामिकः भावः	=लेश्या रहित है निश्चय कीजिए है जो पारिणामिक भाव
त्रिभेदः॥ उक्तः॥ तद्-भेदस्वरूपप्रतिपादनअर्थम्॥ आह	=तीन प्रकार कहा है उसके भेद और स्वरूप के लाभके अर्थ कहते हैं कि

॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जीवभव्याभव्यत्वानि॥ च॥	=जीवत्व भव्यत्व अभव्यत्व भी(च) पारिणामिक भाव जीवके हैं अर्थात्, ये तीन भाव भी अन्य द्रव्यसे असाधारण जीवके पारिणामिक भाव हैं यहां कर्मकी अपेक्षा नहीं द्रव्य का आत्म स्वरूप ही, आत्म परिणाम ही जिसको निमित्त हो सो पारिणामिक भाव है
जीवत्वम्॥ भव्यत्वम्॥ अभव्यत्वम्॥	=जीवपना वा चेतनपना भव्यपना अभव्यपना
इति॥ त्रयः॥ भावाः॥ पारिणामिकाः॥	=इस प्रकार तीन भाव पारिणामिक हैं

जीवभव्याभव्यत्वादीनिच (सभाष्य० अध्याय २ सूत्र, ७) दोनो पाठोंके मिलानेसे ज्ञात पड़ता है कि इस सातवां सूत्रमें हमारे यहांके सूत्रसे "आदि" शब्द अधिक है परंतु इस पर भी दोनों आम्नायों में अर्थ भेद नहीं है क्योंकि सभाष्य० के पाठ में आदि शब्दकरि जीवके सामान्य वा साधारण पारिणामिक भावोंका जैसे अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व आदि (देखो टिपणी अध्याय १० सूत्र ३) का ग्रहण किया है हमारे यहां जीवके साधारण पारिणामिक भावोंका ग्रहण च शब्द करि किया है॥ असाधारण पारिणामिक भाव वा असामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष पारिणामिक भाव जीव के वे हैं जो केवल जीव में ही पाए जावें अन्य किसी द्रव्य में न पाये जावें और वे केवल तीन ही जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व हैं अधिक नहीं हैं। ये तीनों भाव अनादिकाल सिद्ध हैं और साधारण पारिणामिकभाव वा सामान्य पारिणामिक भाव अथवा विशेष रहित पारिणामिक भाव वो हैं जो जीव में होते हैं और अचेतन अन्यद्रव्य जैसे धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य इत्यादिक में भी होते हैं वे समस्त पारिणामिक गुण अनेक हैं और अनादिकाल सिद्ध हैं॥

अन्यद्रव्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्याः ॥ कुतः पुनरेषां पारिणामिकत्वम् । कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमानपेक्षित्वात् ॥ जीवत्वं चैतन्यमित्यर्थः । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिकाः ॥ ननु चास्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयोऽपि भावाः पारिणामिकाः सन्ति तेषामिह ग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् । कृतमेव । कथं चेच्चशब्देन समुच्चितत्वात् ॥ यद्येवं, त्रय इति संख्या विरुध्यते । न विरुध्यते ।

अन्यद्रव्य-असाधारणाः आत्मनः वेदितव्याः।	=अन्यद्रव्यसे असाधारण वा भिन्नद्रव्यसे असमान आत्माको जानना चाहिए
कुतः * पुनः * एषाम्। पारिणामिकत्वम् ॥	=बहुरि इन(तीनों भावों)के कहांसे पारिणामिकपना है(इन तीनों भावोंमें)
कर्मोदय-उपशम-क्षय-क्षयोपशम-अपेक्षित्वात् ॥	=कर्मका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम की विवक्षा नहीं है
जीवत्वं ॥ चैतन्यं ॥ इति अर्थः सम्यग्दर्शनादि-भावेन।	=(तहां)जीवत्व चैतन्य है ऐसा आशय है। सम्यग्दर्शनादिक भावकरि
भविष्यति । इति * भव्यः। तद्-विपरीतः। अभव्यः।	=होयगा अर्थात् परिणमैंगा ऐसा भव्य है उसके विरुद्ध अभव्य है अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक जिसके न होवेंगे वो अभव्य है
ते। एते। त्रयः। भावाः। जीवस्य। पारिणामिकाः।	=ते इतने तीन भाव जीवके पारिणामिक हैं
ननु * च * अस्तित्वनित्यत्वप्रदेशत्वादयः। अपि *	=(प्रश्न)अस्तित्व नित्यत्व प्रदेशत्व आदिक भी
भावाः। पारिणामिकाः। सन्ति । तेषाम्। इह *	=भाव पारिणामिक हैं तिनका इस जगह में(=इह) अर्थात् इस सूत्रमें
ग्रहणम् ॥ कर्तव्यम् ॥ न * कर्तव्यम् ॥	=ग्रहण करना योग्य है। (तिन दशभावोंका इस सूत्रमें) ग्रहण करना योग्य नहीं
कृतम् ॥ एव *	=(इससूत्रमें अस्तित्व नित्यत्व आदिक दशभावोंका ग्रहण) किया भी=(एव)है
कथम् * चेत् * च * शब्देन।	=सो(चेत्)कैसे वा किसप्रकार(=कथम्) किया है। (सूत्रमें) चशब्दके
समुचितत्वात् ॥ यदि * एवम् * त्रयः। इति * संख्या॥	=समुचित होनेसे (लानेसे) ।(प्रश्न) यदि ऐसा है तो तीन ऐसी गिन्ती
विरुद्ध्यते । न * विरुद्ध्यते ।	=विरोधी जाय है (उत्तर) (उपरोक्त तीनकी संख्या) नहीं विरोधी जाय है

(१) अत्रासाधारणवचनं-वक्ष्यमाणास्तित्वादि साधारणपारिणामिकभावापेक्षम्

अत्र * असाधारण-वचनम् ॥ वक्ष्यमाण- =यहां (संस्कृत सर्वार्थसिद्धिः वृत्तिमें) असाधारण वाक्य (=शब्द) कहेजानेवाले
अस्तित्व-आदि-साधारण-पारिणामिक-भाव-अपेक्षम् =अस्तित्व आदिक (दश) साधारण वा समान पारिणामिक भावों की अपेक्षा है ॥

असाधारणा जीवस्य भावाः पारिणामिकास्त्रय एव ॥ अस्तित्वादयः पुनर्जीवाजीवविषयत्वा-त्साधारणा इति चशब्देन पृथग्गृह्यन्ते॥ आह औपशमिकादिभावानुपपत्तिरमूर्तत्वादात्मनः। कर्मबन्धापेक्षा हि ते भावाः। न चामूर्तेः कर्मणां बन्धो युज्यत इति॥ तन्न, अनेकान्तात् ॥

असाधारणाः १। जीवस्य ६। भावाः १।	=(क्योंकि) असमान वा जो औरमेंनपाएजावें सो जीवके भाव
पारिणामिकाः १। त्रय १। एव* अस्तित्वादयः १। पुनर्*	=पारिणामिक तीन ही हैं। बहुरि (=पुनर्) अस्तित्व, आदिक (दशभाव)
जीव—अजीव—विषयत्वात् ५॥ साधारणाः १।	=चेतन और जड़ विषैं होनेसे साधारण हैं (अर्थात् जीवमेंऔर अजीवमेंभीपाएजाते हैं)
इति* चशब्देन ३। पृथक्* गृह्यन्ते I आह I	=इसप्रकार चशब्दकरि न्यारे ग्रहणकियेगये हैं (शिष्य)प्रश्नकरता है कि
औपशमिकआदिभावअनुपपत्तिः १॥ अमूर्तत्वात् आत्मनः	=औपशमिक आदिभावोंकी चेतनके अमूर्तीक होने(के कारण)सेसिद्धिनहींहोतीहै
कर्मबन्ध—अपेक्षा १॥ हि*	=क्योंकि(=हि) कर्मबन्धकी अपेक्षारूप
ते १। भावाः १। न* च* अमूर्त्तेः ६॥	=ते(औपशमिक आदि)भाव हैं। बहुरि(=च) नहीं है अमूर्तीकके
कर्मणाम् ६॥ बन्धः १। युज्यते I इति* तद्	=कर्मोंका बन्धन युक्त वा उचित (उत्तर) वह (आत्मा)
न* अनेकान्तात् ५।	=अनेकान्त(नयकी अपेक्षा) से(प्रत्येक अवस्थामें)अमूर्तीक नहीं हैं

अस्तित्वं वस्तुत्वं द्रव्यत्वं प्रमेयत्वमगुरुलघुत्वं नित्यप्रदेशत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं चैते दशभावाः ॥
(१) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश न हो, उसको अस्तित्व गुण कहते हैं ॥२॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रिया हो उस को वस्तुत्व गुण कहते हैं जैसे—घड़ेकी अर्थक्रिया जल धारण है ॥३॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य सर्वदा एकसा न रहे और जिसकी पर्यायें (अवस्थायें) सदा पलटती रहेंसो द्रव्यत्व है ॥४॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसी के ज्ञानका विषय हो उसको-प्रमेयत्व गुण कहते हैं ॥५॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता थिर रहे अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमें और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्त गुण बिखर कर जुदे २ न हो जावें उसको अगुरुलघु गुण कहते हैं। ॥६॥ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कुछ न कुछ आकार अवश्य हो उस को प्रदेशत्व गुण कहते हैं ॥
(७) मूर्तत्वं = आकारता (८) अमूर्तत्वं = निराकारता वा अमूर्तपना—(९) चेतनत्वम् = चेतनता = (१०) अचेतनत्वम् = अचेतनता अथवा जड़ता ॥

नायमेकान्तःअमूर्तिरेवात्मेति। कर्मबन्धपर्यायापेक्षया तदावेशात्स्यान्मूर्तः। शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः॥ यद्येवं कर्मबन्धावेशादस्यैकत्वे सत्यविवेकःप्राप्नोति। नैष दोषः। बन्धं प्रत्येकत्वे(ऽविवेके) सत्यपि लक्षणभेदादस्य नानात्वमवसीयते॥ उक्तं च-बन्धपडि एयत्तं लक्खणदो हवइ तस्स णाणत्तं। तह्मा अमुत्तिभावोऽणेयंतो होइ जीवस्स॥ १॥ इति॥ यद्येवं तदेव लक्षणमुच्यतां, येन नानात्वमवसीयते। इत्यत आह—

न*अयम् एकान्तः अमूर्तिः एव*आत्मा इति*	=यह(=अयम्)एकान्त नहीं है कि चेतन अमूर्तीक ही (=एव) है
कर्म-बन्धपर्याय-अपेक्षया तद्-आवेशात्	=कर्मबन्धनरूप पर्यायकी विवक्षाकरि उस (कर्मबन्धन) के प्रवेशहोनेसे
स्यात् मूर्तः शुद्ध स्वरूप-अपेक्षया स्यात् अमूर्तः	=कथंचित् मूर्तीक है (और) शुद्ध स्वरुपकी विवक्षाकरि कथंचित् (स्यात्)अमूर्तीक है
यदि*एवम्*कर्मबन्ध-आवेशात् अस्य	=(प्रश्न)जो इस प्रकार है तो कर्मबन्धनके बन्धनसे उस (आत्मा)के
एकत्वे सति अविवेकः प्राप्नोति न एषः दोषः	=एकपना होनेपर अज्ञानपना प्राप्ति होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है
बन्धम् प्रति*एकत्वे (अविवेके)सति अपि*	=कर्मबन्धन पर्यायज्ञान अपेक्षासे एकपना(=एकत्वे)अर्थात् अविवेकपना होनेपर भी
लक्षण-भेदात् अस्य नानात्वम् अवसीयते	=लक्षण भेदसे उस(चेतन)के अनेकपना निश्चय किया जाता है
उक्तम् च*बन्धं पडि*(-बन्ध प्रति*)	=और कहा भी है। बन्धकी अपेक्षासे
एयत्तं लक्खणदो (एकत्वम् लक्षणतः*)	=(जीव और कर्मके) एकत्व वा एकता है और लक्षण (भेद) से
हवइ तस्स णाणत्तम् (भवति तस्य नानात्वम्)	=तिस(जीव)के अनेकपना है
तह्मा*अमुत्तिभावो (तस्मात्*अमूर्तिभावः)	=तिस कारणसे (तस्यात्-तह्मा)अमूर्तीकभाव
अणेयंतो होइ जीवस्स (अनेकान्तः भवति जीवस्य)	=अनेकान्त (नय)से जीवके होय है अर्थात् जीवके अमूर्तीक भाव सिद्ध होता है
	=इस प्रकारसे सात सूत्रोंकरि जीवके पांच भाव वर्णन किये।
इति*	=(प्रश्न)जो इसप्रकार है अर्थात् बन्धप्रति (जीव और कर्मके)एकत्वपना है तो
यदि*एवम्*	
तद् एव*लक्षणम् उच्यताम् येन नानात्वम्	=वही(-तद्एव) लक्षण कहेजाने योग्य है कि जिस(लक्षण)द्वारा अनेकपना
अवसीयते इति*अतः*आह	= निश्चय किया जाता है इसलिए(आचार्यनिम्न सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानश्चैतन्यानुविधायी परिणाम उपयोगः ॥ तेन बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा लक्ष्यते । सुवर्णरजतयोर्बन्धं प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ॥ तद्भेददर्शनार्थमाह

(१) (२) (३) (४)

सूत्रम्—उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥ =उपयोगः (जीवस्य) लक्षणम् (भवति)

सूत्रार्थः—

उपयोगः॥ =चैतन्यके साथ रहने वाले आत्माके परिणाम का नाम उपयोग है। (वह उपयोग)

जीवस्य॥लक्षणम्॥भवति ॥ =जीवका लक्षण है अर्थात् बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके कारणोंका यथासंभव सन्निधान रहनेपर चैतन्यगुणके साथ रहनेवाला जोकोई आत्माका परिणाम है उसका नाम उपयोग है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवें सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

उभय—निमित्तवशात्॥ उत्पद्यमानः॥ =दोनों(बाह्य आभ्यन्तर) कारणोंके आश्रयसे (चैतन्यके) उपजा

चैतन्य—अनुविधायी॥परिणामः॥ उपयोगः॥ =जुड़ाहुआ चैतन्य(ही)का परिणाम(सो) उपयोग है

तेन॥बन्धम्॥प्रति*एकत्वे॥ सति॥अपि*आत्मा॥ =तिस(लक्षण)करि बन्ध अपेक्षा(जीव और कर्म में) एकताहोनेपर भी चैतन्य

लक्ष्यते॥सुवर्णरजतयोः॥बन्धम्॥प्रति एकत्वे॥सति॥ =जुदा लखा जाता है॥ जैसे सोना चांदीके पिंड(बन्ध)से(=प्रति)एकपन होनेपर

अपि*वर्णादिभेदवत्*तद्भेददर्शन—अर्थम्॥आह॥ =भी(पीत—शुक्ल)रूपादिक भेदवत् है॥ उसके भेद दिखानेके लिये कहते हैं कि

(१) इस सूत्रमें इस दूसरे अध्यायके प्रथम सूत्रसे जीवस्य शब्दकी अनुवृत्ति आती है। (२) व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतुर्लक्षणमुच्यते

व्यतिकीर्णवस्तु—व्यावृत्तिहेतुः॥ =परस्पर मिलेहुये पदार्थोंमें जो उनके भेद-ज्ञान करानेमें हेतु है वा पहचान करानेवाला कारण है

लक्षणम्॥उच्यते॥ =सोलक्षण कहा जाताहै भावार्थ परस्पर मिली हुई वस्तुओंमेंसे किसीएकवस्तुको भिन्न करनेमें जो कारण हो उसका नाम लक्षण है। जिस प्रकार अग्नि उष्ण है यहां पर पदार्थ समूहसे अग्निको जुदा करनेवाला उष्णत्वहै अतः यह लक्षण है (३) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है

(४) उपयोग=आत्माका चैतन्यस्वभाव, आत्माका परिणाम, आत्माकी परिणति, आत्माका परिणमन॥

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

स उपयोगो द्विविधः । ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति ॥ ज्ञानोपयोगोऽष्टभेदः । मतिज्ञानं, श्रुतज्ञानं, अवधिज्ञानं, मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, मत्यज्ञानं, श्रुताज्ञानं, विभङ्गज्ञानं चेति ॥ दर्शनोपयोगश्चतुर्विधः । चक्षुर्दर्शनं, अचक्षुर्दर्शनं, अवधिदर्शनं, केवलदर्शनं चेति ॥ तयोः कथं भेदः ? । साकारानाकारभेदात् । साकारं ज्ञानमनाकारं दर्शनमिति ॥ तच्छद्मस्थेषु क्रमेण वर्तते ।

॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—सः१।द्विविधः१।अष्टचतुर्भेदः१। =वह (उपयोग) दो प्रकार है(उनमेंसे) एक आठप्रकारहै दूसरा चारप्रकार है

टीकायनुवादः—सः१।उपयोगः१।द्विविधः१।ज्ञान–उपयोगः१। =वह चैतन्यस्वभाव दो प्रकार है ज्ञान उपयोग

दर्शन–उपयोगः १। च*इति*ज्ञान–उपयोगः १। =और (=च) दर्शन उपयोग इस प्रकार है ज्ञान उपयोग

अष्टभेदः१। मतिज्ञानम् १।।।श्रुतज्ञानम् १।।। =आठ प्रकार है (अर्थात्) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान,

अवधिज्ञानम् १।।।मनःपर्ययज्ञानम्१।।। केवलज्ञानम् १।।। =अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान, (तथा)

मतिअज्ञानम् १।।।श्रुतअज्ञानम् १।।।विभङ्गज्ञानं१।।। च*इति*=मतिअज्ञान वा कुमति,श्रुतअज्ञान वा कुश्रुतऔर विभंगज्ञान वाकुअवधि इसप्रकारहैं

दर्शन–उपयोगः१।चतुर्विधः१।चक्षुर्दर्शनम् १।।। =दर्शन उपयोग चार है (अर्थात्) चक्षुर्दर्शन

अचक्षुर्दर्शनम् १।।।अवधिदर्शनं१।।।केवलदर्शनम् १। च* =अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन,और केवलदर्शन

इति तयोः६।।। कथम्*भेदः१। ? =इस प्रकार हैं इन दोनों (ज्ञान तथा दर्शनउपयोग) में कैसे भेद है

साकार–अनाकार भेदात् ५।साकारम् १।।। ज्ञानम् १।।। =(उत्तर) साकार और निराकार के भेदसे(अर्थात्)आकार सहित ज्ञान है

अनाकारम्१।।।दर्शनम् १।।। इति* =निराकारदर्शन है इसप्रकारहैं(अर्थात्) दर्शनसत्तामात्रआकाररहितका ग्रहणहै

तद् १।।।छद्मस्थेषु ७।।।क्रमेण३।। वर्तते T =वे(ज्ञान दर्शन)छद्मस्थ असर्वज्ञजीवोंमें क्रम(प्रथमदर्शनपीछे ज्ञान) से वर्तते हैं

निरावरणेषु युगपत्। पूर्वकालभाविनोऽपि दर्शनात् ॥ ज्ञानस्य प्रागुपन्यासोऽभ्यर्हितत्वात् ॥ सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पंचविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः ॥ इह पुनरुपयोगग्रहणाद्विपर्ययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध उच्यते ॥ यथोक्तेनानेनाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता योगिनस्ते द्विविधाः— ॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

निरावरणेषु ७।
युगपत्*पूर्वकालभाविनः६।अपि*दर्शनात्५।१।
ज्ञानस्य६।१।प्राक्*उपन्यासः१।अभ्यर्हितत्वात्५।१।

सम्यग्ज्ञान-प्रकरणात्५।१।
पूर्वम्१।१। पंचविधः१। ज्ञानउपयोगः१। व्याख्यातः१।
इह*पुनः*उपयोगग्रहणात्५।१। विपर्ययः१। अपि*
गृह्यते। इति*अष्टविधः१। उच्यते।
अनेन३। अभिहित-परिणामेन ३।
सर्वात्मसाधारणेन३।यथोक्तेन३।उपयोगेन३।
ये १। उपलक्षिताः१। योगिनः१।ते १। द्विविधाः१।

=कर्मरूपआवरण रहित सर्वज्ञजीवोंमें अर्थात् केवलज्ञानियोंमें
=(ज्ञान–दर्शन)एककालमें होते हैं ॥ प्रथम होनेवाले दर्शनोपयोगसे भी
=(सूत्रमें) ज्ञानका पहिले कहना प्रधानपना अथवा श्रेष्ठताके कारणसे है
अर्थात् ज्ञान प्रधान है इससे इस सूत्रमें दर्शनसे पहिले ज्ञानको कहा है
=सम्यग्ज्ञानकेविषय में वा सम्यग्ज्ञानकेप्रकरणमें
=पहिले(प्रथम अध्याय सूत्र ९में) पांच प्रकार ज्ञान उपयोग कहागया है
=बहुरि यहां(=इह)उपयोग शब्द लानेसे विपर्ययज्ञान भी
=ग्रहणकियागया है इस प्रकार (ज्ञानोपयोग) आठ प्रकार कहागया है।
=(अब दशवांसूत्रकी उत्थानिका कहते हैं कि)ग्रहणकिया है परिणाम इसने
=(और) सर्वआत्मामें साधारण (समान) यथोक्त जो उपयोग है ताकरि
=उपलक्षित ये योगी(=उपयोगी जो आत्मा हैं)ते दो प्रकार हैं अर्थात्
आठवां नववां दो सूत्रोंमें कथित यह परिणाम वा उपयोग जो समस्तजीवोंमें
साधारणतः दिखाया गया है ते जीव निम्नकथित सूत्रानुसार दो प्रकार हैं

॥ [1]संसारिणो मुक्ताश्च[2] ॥ १० ॥=ते जीवाःसंसारिणो मुक्ताश्च द्विविधाः भवन्ति

ते १।जीवाः१।संसारिणः१।मुक्ताः१।च द्विविधाःभवन्ति=तेजीवसंसारी और(=च)मुक्त दोप्रकारहोते हैं। अर्थात्जोजीवकर्मसहितहैं

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)चशब्दः-(प्रश्न) 'संसारिणो मुक्ताश्च' यहांपर

संसरणं संसारः परिवर्तनमित्यर्थः।

कर्मों की पराधीनताके कारण अनेक जन्म मरणोंको करते हुए संसारमें भ्रमण करते रहते हैं वे संसारी कहे जाते हैं और जो समस्त कर्मोंको काटकर मुक्त होगये हैं उनको मुक्त जीव वा सिद्धजीव कहते हैं

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस आठवें सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

वृत्त्यर्थः—संसरणम् १।।संसारः१।परिवर्तनम् १।। इति॰अर्थः१। =परिभ्रमणरूप संसार है वही परिवर्तन है ऐसा अर्थ है अर्थात् अपने भावकरि बांधे

ऐसा द्वंद्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ेगा
वाक्यरूपसे सूत्रका उल्लेख न कर संसारिणश्च मुक्ताश्च 'संसारिमुक्ताः' ऐसा द्वंद्व समास मानना चाहिये लाभ यह है कि चशब्द कहना न पड़ेगा
इसलिये लाघव होगा तथा सूत्र का जो अर्थ है उसअर्थमें किसी प्रकारकी बाधा भी न होगी (उत्तर) संसारी और मुक्त दोनों शब्दोंमें मुक्त
शब्द पूज्य और अल्पाक्षर है इसलिए द्वंद्वसमास करने पर मुक्तशब्दका ही पूर्व निपात होनेसे मुक्तसंसारिणः ऐसा सूत्र करना पड़ेगा तथा 'मुक्तः
संसारो येन भावेन स मुक्तसंसारः तद्वंतो मुक्तसंसारिणः' अर्थात् जिस स्वरूपसे संसारकाछूट जाना हो वह मुक्तसंसार और उससे विशिष्ट वा सहित
मुक्त संसारी है यह मुक्तसंसारी शब्दका अर्थ होगा एवं उससे ज्ञानदर्शनस्वरूप उपयोगवान मुक्तसंसारी अर्थात् सिद्धजीव ही कहे जायगे
संसारी जीव न कहे जायगे इस रीतिसे द्वंद्व समास मानने पर इस दूसरे अर्थकी प्रतीतिसे विपरीत अर्थ होगा अतः द्वंद्वसमास न मानकर
"संसारिणो मुक्ताश्च" यह वाक्यार्थ ही उपयुक्त है॥ यदि यहां पर फिर ये शंकाकी जाय कि संसारिणो मुक्ताश्च यहां पर च शब्द का अर्थ
समुच्चय माना है तथा "आपस में विशेषणविशेष्य रूपकी अपेक्षा न कर अनेक शब्दोंका वाक्य में भिन्न भिन्न रूपसे रहना" यह समुच्चय शब्दका
अर्थ है यहां पर भी संसारी और मुक्त दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं यह बात बतलाने के लिये सूत्रमें 'च' शब्दका उल्लेख किया है परन्तु जिस
प्रकार 'पृथिव्यप्तेजोवायुः' इस वाक्यमें पृथिवी आदि शब्दों में आपसमें विशेषणविशेष्य भाव नहीं है तथा अर्थ भी भिन्न भिन्न है इस लिये वे भिन्न
भिन्न माने जाते हैं उसी प्रकार 'संसारिणोमुक्ता' यहां पर भी आपस में विशेषण विशेष्य भाव नहीं तथा अर्थ भी भिन्न है इसलिये संसारी और मुक्त
दोनों शब्द भिन्न भिन्न हैं अतः उनमें भेद प्रकट करनेके लिये समुच्चयार्थक चशब्द का उल्लेख करना व्यर्थ है (उत्तर) च शब्दके समुच्चय और
अन्वाचय ये दोनों अर्थ हैं तथा एकको प्रधान और दूसरों को गौण बतलाना यह अन्वाचय शब्द का अर्थ है सूत्रमें जो चशब्द है उसका अर्थ
यहां अन्वाचय है और एकस्थान में उपयोग गौणरूप से रहता है और दूसरे स्थान में मुख्यरूपसे रहता है यह वहांपर चशब्द द्योतन करता है
इसरीतिसे "भैक्ष्यं चर देवदत्त चानय" अर्थात् भिक्षा का आचरण करो और देवदत्त को लेआओ इस अन्वाचय के प्रसिद्ध उदाहरण में जिस प्रकार
भिक्षाका आचरण करना प्रधान है और देवदत्तका लाना गौण है उसी प्रकार संसारी और मुक्तजीवों में संसारीजीव प्रधानतासे उपयोगवान
हैं और मुक्तजीव गौणरूप से उपयोगवान है यह चशब्दसे प्रदर्शित अर्थ है। इस लिये सूत्रमें 'चशब्द' व्यर्थ नहीं है॥

स एषामस्ति ते संसारिणः॥ तत्परिवर्तनं पञ्चविधं द्रव्यपरिवर्तनं, क्षेत्रपरिवर्तनं,कालपरिवर्तनं,भवपरिवर्तनं,भावपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र द्रव्यपरिवर्तनं द्विविधं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं कर्मद्रव्यपरिवर्तनं चेति ॥ तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं नाम,त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्या ये पुद्गला एकेन जीवेन एकस्मिन्समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीताननन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीतांश्च

जे कर्म तिनके वशहोकरि भवसे भवांतरकी प्राप्तिको संसार कहते हैं

सः।१।१। एषाम्।६।३। अस्ति। ते।१।३। संसारिणः।१।३। तत् परिवर्तनम्।१।१। =यह(संसार)जिनकेहै,ते संसारी है। यह परिवर्तन संसरण वा परिभ्रमण

पंचविधं।१।१। द्रव्यपरिवर्तनं।१।१। क्षेत्रपरिवर्तनं।१।१। =पाँच प्रकार है द्रव्यसंसरण, क्षेत्रसंसरण

कालपरिवर्तनम्।१।१। भवपरिवर्तनम्।१।१। च * =कालसंसरण, भवसंसरण और

भावपरिवर्तनम्।१।१। इति* तत्र*द्रव्यपरिवर्तनम्।१।१। =भावसंसरण इस प्रकार है तहाँ द्रव्यपरिभ्रमण

द्विविधं।१।१। नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं।१।१। कर्मद्रव्यपरिवर्तनं।१।१। च इति =दो प्रकार(द्विविधम्) है नोकर्मद्रव्यसंसरण और कर्मद्रव्यसंसरण इसप्रकार हैं

तत्र नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम्।१।१। नाम।१।१। =तहाँ नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन नाम(इसप्रकार है कि) [श्वासोश्वास-भाषा-मन

त्रयाणाम्।६।३। शरीराणाम्।६।३। षण्णाम्।६।३। =तीन(औदारिकवैक्रियकआहारक)शरीर और छह (आहार-शरीर-इन्द्रिय-

पर्याप्तीनाम्।६।३। योग्याः।१।३। ये।१।३। पुद्गला।१।३। एकेन।३।१। जीवेन।३।१। =पर्याप्तिके योग्य जे पुद्गल परमाणुके स्कंध एक चेतन करि

एकस्मिन्।७।१। समये।७।१। गृहीताः।१।३। स्निग्धरूक्षवर्णगन्धादिभिः।३।३। =एक समयमें ग्रहणकिये (ते) स्निग्धरूक्षवर्णगंध आदिकरि

तीव्रमन्दमध्यमभावेन।३।१। च यथावस्थिताः।१।३। द्वितीयादिषु।७।३। =और तीव्र मन्द मध्यम भावकरि जैसे तिष्ठते द्वितीयादिक

समयेषु।७।३। निर्जीर्णाः।१।३। अगृहीतान्।२।३। =समय में खिरे (बहुरिद्वितीयादिक समयमें) बिनाग्रहे (परमाणु)

अनन्तवारान्।२।३। अतीत्य÷मिश्रकान्।२।३। च* =अनन्तवार ग्रहणकियेका उलंघकरि और मिश्रपरमाणुओंको

अर्थात् पहिले ग्रहेथे तिनमेंके ग्रहीत भी बहुरि नये ग्रहणकिये तेभी

अनन्तवारान्।२।३। अतीत्य÷मध्ये।७।१। गृहीतान्।२।३। च* =अनन्तवार(ग्रहणमेंआएहुओंको)उल्लंघ करि और बीचमेंग्रहीतपरमाणु

अनन्तवारानतीत्य त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्समुदितं नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ कर्मद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते--एकस्मिन्समये एकेन जीवेनाष्टविधकर्मभावेन पुद्गला ये गृहीताः समयाधिकामावलिकामतीत्य द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तेनैव प्रकारेण तस्य जीवस्य कर्मभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च

अनन्तवारान् २। अतीत्य ÷ ते १। एव * तेन ३। एव * =अनन्तवार ग्रहणमें आयेहुओंको उलंघिकरि (अब) तेही तिसही

प्रकारेण ३। तस्य ६। एव * जीवस्य ६। नोकर्मभावम् २। आपद्यन्ते ↑ =प्रकारकरि तिसही जीवके नोकर्मभावको प्राप्त होते हैं अर्थात् वही जीव जिसने पहिले समयमें परमाणु ग्रहे थे तेही तैसे स्पर्शादिकके अविभागप्रतिच्छेदनिकी संख्या लिये तथा तितने ही परमाणु को लिये समयप्रबद्ध ग्रहण करै।

यावत् * तावत् * समुदितम् १।१ नोकर्मद्रव्य- =सारा (=यावत्) इतना (=तावत्) (काल) इकट्ठा होय है (तब) नोकर्मद्रव्य-

परिवर्तनम् १।१ कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् १।१ उच्यते ↑ =परिवर्तन होता है। (अब) कर्मद्रव्यपरिवर्तन कहा जाता है

एकस्मिन् ७। समये ७। एकेन ३। जीवेन ३। अष्टविधकर्म- =(तहां) एक समयमें एकजीवकरि आठप्रकार कर्म--

भावेन ३। पुद्गलाः १। ये १। गृहीताः १। =स्वभावकरि जे पुद्गल ग्रहणकिये (ते)

समय-अधिकाम् २। आवलिकाम् २। अतीत्य ÷ =समय अधिक आवलीकालको उल्लंघकर

द्वितीयादिषु ७। समयेषु ७। निर्जीर्णाः १। पूर्वोक्तेन ३। =द्वितीयादिक समयोंमें निर्जीर्ण भये (फिर) पहिले कथित

एव * क्रमेण ३। =(नोकर्मद्रव्यपरिवर्तकीज्यों) हीक्रमकरि (अर्थात् अगृहीतऔरमिश्रगृहीत और मध्यगृहीतपरमाणुओंका ग्रहण करते करते जब कोई समय ऐसा होय जिसमें)

ते १। एव * तेन ३। एव * प्रकारेण ३। तस्य ६। जीवस्य ६। =तेही (कर्मयोग्य पुद्गल) तिस ही प्रकारकरि तिस जीवके (जब)

कर्मभावम् २। आपद्यन्ते ↑ यावत् * तावत् * =कर्मभावको प्राप्त होते हैं (तब) सारा (यावत्) इतना (=तावत्)

कर्मपरिवर्तनम् १।१ उक्तम् १।१ च * =(काल) कर्म परिवर्तन है ॥ कहा गया भी (च) है

(२) नोकर्मद्रव्य परिवर्तनका और कर्म द्रव्यपरिवर्तनका समान ही काल है और कर्मद्रव्यपरिवर्तन में समस्त विधि नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कीभांति है॥ केवल अंतर इतना है कि नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनमें नोकर्मवर्गणाओंका ग्रहण है और कर्मद्रव्यपरिवर्तनमें कर्म वर्गणाओंका ग्रहण है॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥१॥ क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते- सूक्ष्मनिगोदजीवोऽपर्याप्तकः सर्वजघन्यप्रदेशशरीरो लोकस्याष्टमध्यप्रदेशान्स्वशरीर-मध्यप्रदेशान् कृत्वोत्पन्नः क्षुद्रभवग्रहणं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैवावगाहेन द्विरुत्पन्नस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येवं यावद्घनांगुलस्यासंख्येयभागप्रमिताकाशप्रदेशास्तावत्कृत्वस्तत्रैव ॥

सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण । असइ अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्टसंसारे ॥ १ ॥
=पुग्गलपरियट्टसंसारे असइ अणंतखुत्तो सव्वेऽवि पुग्गला खलु कमसो भुत्तुज्झिया य जीवेण ॥ १ ॥

पुग्गलपरियट्टसंसारे ;।(पुद्गलपरिवर्तनसंसारे ;।)असइ ;।	=इस (=असइ=अस्मिन) पुद्गलपरिवर्तनरूप संसारमें
अणंतखुत्तो * (अनंतकृत्वः*)	=अनंत (=अणंत) कृत्वः (=बार)
सव्वे ;। अवि* पुग्गला ;। (सर्वे ;। अपि* पुद्गलाः;।)	=सबही पुद्गल
खलु* कमुसो* (खलु* क्रमशः*)	=निश्चयकरि अनुक्रमसे
भुत्तुज्झिया ;।य*जीवेण;। (भुक्तोज्झिता;।च जीवेन;।)	=जीवद्वारा ग्रहण किये जाकर छोड़ दिये गये हैं अर्थात् "इस पुद्गलपरिवर्तन रूप संसार विषै इस जीवनें सर्व ही पुद्गल निश्चयकरि अनंतवार अनुक्रमसे ग्रहण करि करि छोड़े हैं' जयचंद वचनिका पृष्ठ २४६
क्षेत्रपरिवर्तनम् ;।। उच्यते T सूक्ष्मनिगोदजीवः;।	=क्षेत्र परिवर्तन कहा जाता हैं (जब) कोईजीव सूक्ष्मनिगोदिया
अपर्याप्तकः ;। सर्वजघन्यप्रदेशशरीरः ;। लोकस्य ;।	=अपर्याप्तक समस्त जघन्य (अवगाहनारूप) शरीरवाला लोकके
अष्टमध्यप्रदेशान् ;।स्वशरीरमध्यप्रदेशान्;।कृत्वा — उत्पन्नः;।	=आठ मध्यके प्रदेशोंको अपने शरीरके मध्य प्रदेश करि उपजा अर्थात् लोकके अष्टमध्यप्रदेशोंको अपने शरीरका अष्टमध्यप्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ और
क्षुद्रभवग्रहणम् ;। जीवित्वा — मृतः;।	=क्षुद्रभव (स्वासके अठारहवां भागस्थिति रहने वाला) पाय जीकर मरा
सः;। एव*पुनर्*तेन;।एव*अवगाहेन ;। द्विः	=बहुरि वो(जीव)ही तिस ही अवगाहनकरि दूसरी वार
उत्पन्नः;।तथा*त्रिः तथा*चतुर् इति*	=तथा तीसरीवार तथा चौथीवार जन्मा (और मरा इस प्रकार)
एवं*यावत्*घनांगुलस्य ;।। असंख्येयभागप्रमिता—	=ही जितने घनांगुलके असंख्यातवां भाग प्रमाणित(=प्रमिता)
आकाश—प्रदेशाः ;। तावत्*कृत्वः* तत्र*एव*	=आकाश प्रदेश हैं तितने वार (=कृत्वः) तहांही वा उस स्थानमें ही

(३) क्रिया विशेषण वार वार के अर्थ प्रकाशक द्वि, त्रि, और चतुर् अंकों में स् लगादेनेसे और शेषमें कृत्वस् लगादेनेसे बनते हैं और कृत्वस् *

जनित्वा पुनरेकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वो लोक आत्मनो जन्मक्षेत्रभावमुपनीतो भवति यावत्तावत्क्षेत्रपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च-- सव्वं हि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं । ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ १ ॥

अर्थात् बीच में अनंतवार अन्य अवगाहना तथा अन्य क्षेत्र में उपजा वह इस परिवर्तन के प्रमाण रहित

जनित्वा-पुनः* एक-एक प्रदेश-अधिकभावेन ३ =उपजकर बहुरि(पश्चात् उसक्षेत्रसे लोकके)एक एक प्रदेश अधिकमें(क्रमसे जन्मलेकर)
सर्वः १ लोकः १ आत्मनः ६ =समस्त लोक (तीनसेतैंतालीस घनराजू प्रमाण)आत्मा वा अपने (=आत्मनः)
जन्मक्षेत्रभावम् २ उपनीतः १ भवति I =जन्म क्षेत्रपनको वा जन्मक्षेत्ररूप को प्राप्त किया हुआ (=उपनीतः) होता है
अर्थात् वही जीव उस क्षेत्रसे पश्चात् लोकके एक एक प्रदेश अधिकमें जन्म लेकर समस्त लोकके सब प्रदेशोंको क्रमानुसार ही (अनुक्रम विना जन्मले वह न गिनियें) स्पर्शकरि अपना जन्म क्षेत्र करता है वा बना लेता है ॥
यावत्*तावत्*क्षेत्रपरिवर्तनम् १॥ उक्तं १॥ च* =(तब) सारा (=यावत्)इतना(=तावत्)क्षेत्रपरिवर्तन है । बहुरि कहा गया है कि

सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं। ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे॥१॥

=ओगाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे । सव्वंहि लोयखेत्ते कमसो तं णत्थि जं ण उप्पण्णं

ओगाहणेण ३॥बहुसो*(अवगाहनेन ३॥बहुशः*) =अनेक(=बहुश)अवगाहना(रूपशरीर को प्राप्तकरि
परिभमिदो१॥खेत्तसंसारे७॥(परिभ्रमतः१॥ क्षेत्रसंसारे७॥) =चारों ओरसे(=परि)भ्रमताहुआ (इस) क्षेत्र संसारमें
सव्वम्हि ७॥लोयखेत्ते७॥(=सर्वस्मिन्७॥लोकक्षेत्रे ७॥) =सर्वलोक क्षेत्र में
कमसो*तं १॥णत्थि I(क्रमशः*तत्१॥ न*अस्ति) =अनुक्रमसे वहां ऐसा स्थान नहीं है
जं१॥ण*उप्पण्णं१॥(यत्१॥न*उत्पन्नम् १॥) =जहां(यहजीव)नहीं जन्मा है अर्थात् इसक्षेत्र संसार विषै भ्रमता यहजीव सोअनेक अवगाहनरूपशरीरकूंपायइस सर्वलोकका क्षेत्रविषै अनुक्रमतेउपजा तहांऐसाक्षेत्र न रहा जहां न उपजा।

लगाने पर अंतका न् गिर जाता है जैसे द्विः, त्रिः चतुः और पञ्चन् से पंचकृत्वः तावत् से तावत्कृत्वः अर्थात् तितनी बार ॥

कालपरिवर्तनमुच्यते–उत्सर्पिण्याःप्रथम समये जातःकश्चिज्जीवःस्वायुषः परिसमाप्तौ मृतः स एव पुनर्द्वितीयाया उत्सर्पिण्या द्वितीयसमये जातःस्वायुषःक्षयान्मृतः स एव पुनस्तृतीयाया उत्सर्पिण्यास्तृतीयसमये जात एवमनेन क्रमेणोत्सर्पिणी परिसमाप्ता, तथा अवसर्पिणी च। एवं जन्मनैरन्तर्यमुक्तं मरणस्यापि नैरन्तर्यं तथैव ग्राह्यम्

कालपरिवर्तनं॥उच्यते। उत्सर्पिण्याः॥प्रथमसमये॥जातः॥=कालपरिवर्तन कहा जाता है उत्सर्पिणीकालके पहिले समयमें उपजा

कश्चित्*जीवः॥स्व–आयुषः॥ परिसमाप्तौ॥ मृतः॥ =कोई जीव अपनी आयुके परिपूर्णहोनेपर मरा।

सः॥एवपुनः द्वितीयायाः॥उत्सर्पिण्याः॥द्वितीयसमये॥जातः॥=बहुरिवोही(जीव)दूसरेउत्सर्पिणीकालकेदूसरेसमयमेंउत्पन्नहुआ(और)

स्व–आयुषः॥क्षयात्॥मृतः॥सः॥एव*पुनः*तृतीयायाः॥ =अपनी आयु पूर्णकरि (=क्षयात्) मरा। बहुरि वोही (जीव) तीसरे

उत्सर्पिण्याः॥तृतीयसमये॥ जातः॥एवम्* अनेन॥ =उत्सर्पिणी(काल)के तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ इसप्रकार इस

क्रमेण॥ उत्सर्पिणी॥ परिसमाप्ताः॥ =क्रमसे (दसकोड़ाकोड़ी सागरका) उत्सर्पिणी काल परिपूर्ण किया

अर्थात् उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ा कोड़ी सागर के जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें क्रमानुसार उसी जीवने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमें जन्म लिया सो गिनतीमें नहीं आवे हैं॥

तथा*अवसर्पिणी॥ च*एवम्* =बहुरि(तथा)अवसर्पिणी (काल) भी (=च) इसीप्रकार(एवम्)

जन्म–नैरन्तर्यम्॥ उक्तम्॥ =लगातार वा अविच्छेद (=नैरन्तर्यम्) जन्मलेनेमें कहागया है

अर्थात् अवसर्पिणी काल के दश कोड़ा कोड़ी सागरके जितनेसमय हैं उन समस्तसमयोंमें क्रमानुसार उसी जीव ने जन्म लिया क्रमको छोड़कर और समयोंमेंजन्म लिया सोगणनामेंनहींआवैहै

मरणस्य॥अपि*नैरन्तर्यं॥तथा*एव*ग्राह्यम्॥ =तैसेही(उसीजीवका)मरणभी अविच्छेद वा लगातार ग्रहणयोग्यहैअर्थात्बीस कोड़ा कोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके जितने समय हैं उन समस्त समयोंमें वही जीव जिसने अनुक्रमसे बीसकोड़ाकोड़ी सागरके उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालके सर्वसमयोंमें जन्म लिया है क्रमनुसार ही मरण करता है क्रमको छोड़करऔर और समयोंका मरण गणनामें नहीं लिया जाता है।

एतावत्कालपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥ १ ॥ भवपरिवर्तनमुच्यते--नरकगतौ सर्वजघन्यमायुर्दशवर्षसहस्राणि,तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः परिभ्रम्य तेनैवायुषा तत्रैव जातः, एवं दशवर्षसहस्राणां यावन्तः समयास्तावत्कृत्वस्तत्रैव जातो मृतः पुनरेकैकसमयाधिक भावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि,

---

एतावत्*कालपरिवर्तनम् १/१॥ उक्तम् १/१॥ च * =इतना काल परिवर्तन है और कहीं भी है कि

उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । जादो मुदो य बहुसो भमणेण दु कालसंसारे ॥१॥

=उवसप्पिणिअवसप्पिणिसमयावलियासु णिरवसेसासु । भमणेण दु कालसंसारे जादो मुदो य बहुसो ॥१॥

उवसप्पिणि१।अवसप्पिणि१॥(उत्सर्पिणि१॥अवसर्पिणि१॥)=उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी(काल)के
णिरवसेसासु ३॥(=निरवशेषासु३॥) =समस्त
समय–आवलियासु ३॥ (समय–आवलियासु ३॥) =समय और आवलियों में
भमणेण३॥दु*कालसंसारे१(भ्रमणेन३॥तु*कालसंसारे१)=भ्रमण वा पर्यटनकरि(यहजीव) कालपरिवर्तनरूप संसारमें
जादो१मुदो१य*बहुसो*(जातः१मृतः१य*बहुशः*) =बहुतवार अर्थात् अनंतवार जन्मा और (=य=च) मरा है ॥
भवपरिवर्तनम् १/१॥ उच्यते T नरकगतौ ७/१॥ =भवपरिवर्तन कहाजाता है, नरकगतिविषै
सर्वजघन्यम् १/१॥आयुः१/१॥दशवर्षसहस्राणि १/३॥ =सबसे कम आयु दशहजार बरसकी है
तेन३/१॥आयुषा३/१॥तत्र*उत्पन्नः१/१पुनः*परिभ्रम्य ÷ =तिस आयु(को प्राप्त)करि तहां उत्पन्नहुआ(जीव) बहुरि परिभ्रमनकरि
तेन३/१॥एव*आयुषा३/१॥तत्र*एव*जातः१/१एवम्* =तिस ही आयुकरि तहांही उत्पन्न होता है इस प्रकार
दशवर्षसहस्राणाम् ६/३॥यावन्तः१/३ समयाः१/३तावत्कृत्वः* =दशहजारबरसकेजितनेसमयहैंतितनीवार(दशदशहजारबरसकीआयुपायकरि)
तत्र*एव*जातः१/१मृतः१/१पुनः*एक–एक–समय– =तहांही उत्पन्न होता है(और) मरता है बहुरि एक एक समय
अधिक–भावेन३/१त्रयस्त्रिंशत्सागर– =अधिक (आयु)वाला(एक एकबारमें)जन्मलेकरि(=भावेन)तेतीससागरकेसमय
उपमाणि२/३॥परिसमापितानि २/३॥ (करोति) T =प्रमाण परिपूर्ण करता है भावार्थ यह है कि नरकगति विषैं सर्वजघन्य आयु
दश सहस्र बरस की है। तिस आयुको पाय तहां प्रथम नरक के पहिले पाथड़े में उपजा जीव पीछे

ततःप्रच्युत्य तिर्यग्गतावन्तर्मुहूर्तायुःसमुत्पन्नः पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त्रीणि पल्योपमानि तेन परिसमापितानि,एवं मनुष्यगतौ च तिर्यञ्चवत्, देवगतौ नारकवत्,अयं तु विशेषः—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद्भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तं च—

अन्यगत्यादि विषै भ्रमण करते करते फिर कोई काल विषैं तिस ही आयु को पाय तिस पाथड़े में उपजा ऐसे ही दशसहस्र वरस के जितने समय होंय तितनीवार तो तिस ही आयुसहित तहां ही उत्पन्न होतारहा बीचमें अन्य स्थानमें उत्पन्न हुआ सो गणना में नहीं आता है ॥ पीछे एक समय अधिक दशसहस्र वर्षकी आयु पाय उपजा ॥ पश्चात् दश हजार वरस दो समय अधिककी आयु पाय उपजा इसही अनुक्रमसे जितने तेतीस सागरके समय हैं तितने जन्मसे तथा मरणसे पूर्ण करता है क्रम रहित बीच बीच अन्यगति तथा अन्य आयुकरि उपजै सो तिस गिनती में नहीं आते हैं॥

ततः*प्रच्युत्य—तिर्यग्गतौ॥अन्तर्मुहूर्तआयुः॥ =वहाँ (नरक) से निकलकरि तिर्यचगतिमें अन्तर्मुहूर्तआयुवाला।

समुत्पन्नः ॥ पूर्वोक्तेन ॥ एव * क्रमेण ॥ =उत्पन्न होता है पहिले कहे हुए ही क्रमकरि

त्रीणि ॥ पल्योपमानि ॥ तेन ॥ परिसमापितानि ॥ =तीन पल्य प्रमाण तिस(जीव) करि परिपूर्ण होते हैं अर्थात् वही जीव तिर्यचगतिमें जघन्य आयुअन्तर्मुहूर्तकी पाय फिर समाप्तकरि अन्तर्मुहूर्तके जितने समय होय तितनीवार जघन्य आयुधारि पीछे एक एक समय अधिक अनुक्रमकरि तीन पल्य पर्यंत समस्त स्थितिविषै जन्मधारिपरिपूर्ण करै है

एवम्*मनुष्यगतौ ॥ च*तिर्यञ्चवत्* =इस प्रकार नरगति में भी(=च)तिर्यच सदृश है

देवगतौ ॥ नारकवत्*अयम् ॥ तु*विशेषः॥ =देवगतिविषैं नरकके सदृश है परन्तु(=तु) भेद यह है (कि)

एकत्रिंशत्सागरोपमाणि॥ परिसमापितानि ॥(करोति)=इकतीस सागर प्रमाण(पूर्वोक्तक्रमसे) परिपूर्ण करता है(अर्थात्) इकतीस सागरसे अधिक आयुके धारक नौ अनुदिश पांच अनुत्तर ऐसे चौदह विमानों में उपजे देवोंके परिवर्तन नहीं होता है क्योंकि वे सम्यग्दृष्टी हैं

यावत्तावत्*भवपरिवर्तनम् ॥ उक्तम् ॥ च * =सारा (=यावत्) इतना(=तावत्) भवपरिवर्तन है। कहा भी है

णिरयादिजहण्णादिसु जावदु उवरिल्लिया दु गेवेज्जा। मिच्छत्तसंसिदेण हु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो ॥१॥ भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रियः सञ्ज्ञी पर्याप्तको मिथ्यादृष्टिः कश्चिज्जीवः सर्वजघन्यां स्वयोग्यां ज्ञानावरणप्रकृतेः स्थितिमन्तःकोटीकोटीसंज्ञिकामापद्यते, तस्य कषायाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि भवन्ति,

---

णिरयादिजहण्णादिसु (नरकादिजघन्यादिषु) =नरककी जघन्यसे लगाय
उवरिल्लिया * दु * (उपरिम् * तु *) =उपरिम् वा उत्कृष्ट तो (दु=तु)
जावदु * गेवेज्जा (यावत् * ग्रैवेयकाः) =ग्रैवेयक तक
मिच्छत्तसंसिदेण । हु * (मिथ्यात्वसंसर्गेण तु*) =मिथ्यात्वके संसर्ग सहित (यह जीव)
बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो(बहुशःअपिभवस्थितिभ्रमितः)=भवों की स्थिति वा आयु पाय पायकर अनेकबार भ्रम्या है
भावपरिवर्तनम् ॥उच्यते । पञ्चेन्द्रियः। सञ्ज्ञी। =भवपरिवर्तन कहा जाता है। पंचेन्द्रिय संज्ञक
पर्याप्तकः। मिथ्यादृष्टिः। कश्चित्*जीवः। =पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि कोई जीव
सर्वजघन्याम्॥स्वयोग्याम्॥ज्ञानावरणप्रकृतेः॥ =अपने उचित सबसे जघन्य ज्ञानावरण कर्मकी प्रकृतिकी
स्थितिम्॥ अन्तःकोटीकोटीसञ्ज्ञिकाम्। आपद्यते। =कोड़ा कोड़ी सागरके नीचे और कोड़िके ऊपर संज्ञावाली स्थितिकोप्राप्तहोय है
तस्य।कषाय-अध्यवसायस्थानानि ॥ =तिस(जीव)के कषायभावस्थान
असंख्येयलोकप्रमितानि॥षट्स्थानपतितानि॥ =असंख्यात लोक प्रमाण छहस्थान पति (अर्थात्हानिवृद्धिरूप) सहित
तत्स्थितियोग्यानि ॥ भवन्ति। =उस स्थितिके योग्य होते हैं अर्थात् उस अन्तःकोड़ा कोड़ी सागर की जघन्य स्थिति बंधनेका कारण कषाय भावके स्थान हैं और वे गणनामें असंख्यात लोकके जितने प्रदेश होते हैं तितने हैं॥ तिस एक एक स्थान विषै अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं जिनमें अनन्तभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानि औरअनंतभागवृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि अनंतगुणवृद्धि इसप्रकार छह स्थान पति हानि वृद्धि संभवे है॥

तत्र सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनुभागाध्यवसायस्थानान्यसंख्येयलोकप्रमितानि भवन्ति, एवं सर्वजघन्यां स्थितिं सर्वजघन्यं च कषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यमेवानुभागबन्धस्थानमास्कन्दतस्तद्योग्यं(एकं)सर्वजघन्यं योगस्थानं भवति, तेषामेव स्थितिकषायानुभागस्थानानां द्वितीयमसंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तं योगस्थानं भवति, एवं च तृतीयादिषु योगस्थानेषु

तत्र*सर्वजघन्यकषाय-अध्यवसायस्थाननिमित्तानि१।३ =तहां समस्त जघन्यकषायभावस्थान हैं कारण जिनको ऐसे

अनुभागअध्यवसायस्थानानि१।३असंख्येयलोक- =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक

प्रमितानि १।३ भवन्ति। =परिमाण हैं अर्थात् इनसर्वजघन्यकषाय अध्यवसाय स्थानके एक एक विषै अनुभाग बंधको कारण जे परिणाम(=अनुभागबंधअध्यवसायस्थान) ते असंख्यात लोकके जितने प्रदेश हैं तितने गणनामें हैं

एवम्*सर्वजघन्याम् २।१ स्थितिम् २।१ सर्वजघन्यम् २।१ च =इस प्रकार सर्वजघन्यस्थितिको और सर्वजघन्य

कषायअध्यवसायस्थानम् २।१सर्वजघन्यम् २।१ एव* =कषायभावस्थानको सर्वजघन्य ही

अनुभागबंधस्थानम् २।१ आस्कन्दतः६।१ =अनुभागस्थानकोप्राप्तहोनेवाले

तद्*योग्यम् १।१(एकम् १।१)सर्वजघन्यं१।१योगस्थानम् १।१=तिसके योग्य एक सर्वजघन्य योगस्थान

भवति। तेषाम्६।३एव*स्थिति-कषाय- =होता है तिनही(अर्थात् विनापलटे हुए सर्वजघन्य ही)स्थिति कषाय

अनुभागस्थानानाम् ६।३ द्वितीयम् १।१ =अध्यवसाय और अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थानों के दूसरा

असंख्येयभागवृद्धिसंयुक्तम्१।१योगस्थानम्१।१भवति। =असंख्यातभागवृद्धिसहित योगस्थान होता है अर्थात् अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों तो जघन्यही बंधे परन्तु योगस्थान पलटि दूसरा होय है और ये जघन्य योगस्थान जो श्रेणीके असंख्यातवांभाग परिमाण है गणना में असंख्यात हैं और ये योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेदनि करि असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि सहित चतुस्थान रूप ही हैं ॥

एवम्*च*तृतीयादिषु७।३योगस्थानेषु ७।३ =बहुरि इस प्रकार तीन आदिक योगस्थानोंमें

चतुःस्थानपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि योगस्थानानि भवन्ति। तथा तामेवस्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानं च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यवसायस्थानं भवति,तस्य च योगस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि। एवं तृतीयादिष्वपि अनुभवाध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः। एवं तामेव स्थितिमापद्यमानस्य द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति,तस्यापि

चतुःस्थानपतितानि॥ श्रेण्यसंख्येयभागप्रमितानि॥ =चार स्थानपति हानि सहित श्रेणीका असंख्यातवांभागप्रमाण
योगस्थानानि॥ भवन्ति। =योगस्थान(अनुक्रमसे होते है)अर्थात् दूसरे जघन्य योगस्थान
के पश्चात् तीसरा योगस्थान होय परन्तु अनुभागस्थान, कषायस्थान, स्थितिस्थान, येतीनों जघन्य ही बंधते हैं॥
पीछे चौथा पांचवां छठवां सातवां आठवाँ इत्यादिक योगस्थान होते होते श्रेणीके असंख्यातवांभागतक असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसे पलटिजाय परन्तु अनुभाग कषाय स्थिति ये तीनों जघन्य ही रहें और कोई दो जघन्य योगस्थानके बीचमें अन्य कषायस्थान अन्य अनुभागस्थान अन्ययोग स्थान होते जांय ते गणना में न आवें हैं

तथा*ताम्॥एव*स्थितिम्॥तद्॥एव* च* =तथा वो ही स्थिति और(=च) वोही
कषायाध्यवसायस्थानम्॥प्रतिपद्यमानस्य॥ =कषायभावस्थानको प्राप्तकरनेवाले (जीव) में
द्वितीयम्॥अनुभव-अध्यवसायस्थानम्॥भवति। =दूसरा अनुभाग अध्यवसाय स्थान होता है
तस्य॥च*योगस्थानानि॥ पूर्ववत्* =और तिस(दूसरे अनुभागभावस्थान)के योगस्थान पहिलेकी भांति
(श्रेणीके असंख्यातवांभाग प्रमाण-असंख्यात प्रमाणगणनामें अनुक्रमसेहोना)
वेदितव्यानि॥एवम्*तृतीयादिषु॥अपि* =जानना चाहिए इस प्रकार तीन आदिक भी
अनुभवअध्यवसायस्थानेषु॥ आ* =अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान(अनुक्रमसे) होते होते
असंख्येयलोक-परिसमाप्तेः॥ एवम्*ताम्॥ एव* =असंख्यात लोक परिपूर्ण तक होते हैं (तब) वास्तविक (=एवम्) वोही
स्थितिम्॥ आपद्यमानस्य॥द्वितीयम्॥ =स्थितिस्थान को प्राप्तकरनेवाले जीव के (=आपद्यमान) दूसरा
कषाय-अध्यवसायस्थानम्॥भवति तस्य॥अपि* =कषाय अध्यवसाय स्थान होताहै तिस(द्वितीय कषायाध्यवसाय भावस्थानके) भी

अनुभवाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च पूर्ववद्वेदितव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि कषाया ध्यवसायस्थानेषु आ असंख्येयलोकपरिसमाप्तेर्वृद्धिक्रमो वेदितव्यः। उक्ताया जघन्यायाः स्थितेः समयाधिकायाःकषायादिस्थानानि पूर्ववदेकसमयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितेस्त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोटीपरिमितायाःकषायादिस्थानानि (पूर्ववत्) वेदितव्यानि ॥

अनुभव–अध्यवसायस्थानानि³॥योगस्थानानि³॥च* =अनुभाग अध्यवसाय स्थान और योग स्थान
पूर्ववत् *वेदितव्यानि³॥ =पहिलेकी भांति जानना योग्य है ।

भावार्थ ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थाननिविषैं एक एकविषैं योगस्थान श्रेणीके असंख्यातवां–भाग असंख्यातप्रमाण गणनामें अनुक्रमसे होते जांय और अनुभागस्थान असंख्यात लोकप्रमाण अनुक्रमसे होयचुकें तब एक कषाय स्थान पलटता है (दूसरा कषाय स्थान होता है)

एवम् *तृतीयादिषु³॥ अपि* कषायअध्यवसायस्थानेषु³॥ =इस भांति तीन आदिक भी कषायअध्यवसायस्थान होते होते
आ *असंख्येयलोकपरिसमाप्तेः⁵॥ वृद्धिक्रमः¹॥ वेदितव्यः¹॥ =असंख्यात लोकपरिपूर्णतक (=आ) क्रमानुसार वृद्धि जानना योग्य है

अर्थात् तीसरे कषायस्थानविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग स्थान अनुक्रमसे होय और अनुभाग स्थाननि एक एक विषैं श्रेणीके असंख्यातवां भाग प्रमाण अनुक्रमसे योग स्थान होते जांय है इसी प्रकार चौथा कषाय स्थान पलटे और पांच आदिक कषाय स्थान क्रमानुसार होते होते असंख्यात लोक प्रमाण होजाय तबपूर्वकथितअंतःकोड़ा कोड़ी सागर स्थितिसे एक समय अधिक ज्ञानावर्णीयकर्मकी स्थिति बंधे हैं ॥

उक्तायाः⁵॥जघन्यायाः⁵॥स्थितेः⁵॥समयअधिकायाः⁵॥ =कही हुई जघन्य स्थितिसे समय अधिकके
कषाय–आदिस्थानानि³॥पूर्ववत्* =कषायभावस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान,क्रमानुसारपहिलेकीभांतिहोते
एकसमयअधिकक्रमेण³॥आ*उत्कृष्टस्थितेः⁵॥ =(होते) एक(एक)समय अधिक क्रमसे उत्कर्ष स्थिति पर्यन्त
त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटीपरिमितायाः⁵॥ =तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण (=प्रमितायाः) तक (अनुक्रमसे)
कषायआदिस्थानानि³॥(पूर्ववत्)वेदितव्यानि ³॥ =कषायभागस्थान,अनुभागअध्यवसायस्थान,योगस्थान पहिले की भांति जानो

अनन्तभागवृद्धिः असंख्येयभागवृद्धिः संख्येयभागवृद्धिः संख्येयगुणवृद्धिः असंख्येयगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः इमानि षट्स्थानानि, वृद्धिर्हानिरपि तथैव। अनन्तभागवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिरहितानि चत्वारि स्थानानि ज्ञातव्यानि। एवं सर्वेषां कर्मणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो वेदितव्यः। तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम्॥ उक्तं च—

अर्थात् श्रेणीके असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यातगुणनामें जब योगस्थान क्रमसे पलटि जांय तब एक अनुभाग स्थानपलटै और असंख्यात लोकप्रमाण जब अनुभागस्थान एक एक करि क्रमानुसार पलटि जांय तब एक कषायस्थानपलटै और जब असंख्यात लोक प्रमाण (कषायस्थानों विषैं एक एक विषैं असंख्यातलोक प्रमाणअनुभागस्थान क्रमानुसार होते होते ये समस्त असंख्यातलोक प्रमाण) कषायस्थान क्रमानुसार पलटि जांय तब एक समय अधिक होकरि स्थिति पलटै॥

अनन्तभागवृद्धिः १/१ असंख्येयभागवृद्धिः १/१ =(यद्यपि) अनन्तभागवृद्धि असंख्येयभागवृद्धि

संख्येयभागवृद्धिः १/१ संख्येयगुणवृद्धिः १/१ =संख्येयभागवृद्धि संख्येयगुणवृद्धि

असंख्येयगुणवृद्धिः १/१ अनन्तगुणवृद्धिः १/१ इमानि १/३ षट्स्थानानि वृद्धिः =असंख्येयगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि ये छहस्थानप्रतिवृद्धि (और अनन्तभाग असंख्येयभाग, संख्येयभाग, संख्येयगुण असंख्येयगुण, अनन्तगुण)

हानिः १/१ अपि* तथा* एव* अनन्तभागवृद्धिः १/१ =हानिभी है तो भी अनन्तभागवृद्धि

अनन्तगुणवृद्धिः १/१ =अनन्तगुणवृद्धि (और अनन्तभागहानि अनन्तगुणहानि) [प्रतिच्छेदोंमें

रहितानि १/३ चत्वारि १/३ स्थानानि १/३ =वर्जित शेषचारस्थानप्रति (वृद्धिहानिइनजघन्ययोगस्थानोंकेअविभाग

ज्ञातव्यानि १/३ एवम्* सर्वेषाम् ६/३ कर्मणाम् ६/३ =जानना चाहिये इस प्रकार समस्त कर्मो की

मूलप्रकृतीनाम् ६/३ उत्तरप्रकृतीनाम् ६/३ परिवर्तनक्रमः १/१ =मूलप्रकृतियोंका बहुरि उत्तरप्रकृतियोंकी पलटनक्रम

वेदितव्यः १/१ तद् १/१ एतद् १/१ सर्वम् १/१ समुदितम् १/१ =जानना चाहिये (=तद्) यह (=एतद्) समस्त इकट्ठा होय तब

भावपरिवर्तनम् १/१ उक्तं १/१ च* =भावपरिवर्तन होता है। कहा भी है

सर्वार्थ
४४

सव्वा पयडिट्ठिदिओ अणुभागपदेसबंधठाणाणि। मिच्छत्तसंसिदेण य भमिदा पुण भावसंसारे ॥ १ ॥ उक्तात्पञ्चविधात्संसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ताः। संसारिणां प्रागुपादानं तत्पूर्वकत्वान्मुक्तव्यपदेशस्य ॥ य एते संसारिणस्ते द्विविधाः——

सव्वा ¹/₃ पयडि–ट्ठिदिओ ¹/₃ (सर्वाः ¹/₃ प्रकृति–स्थितयः ¹/₃) =समस्त प्रकृति बंध(और) स्थितिबंध
अणुभाग–पदेस–बंध–(=अनुभाग–प्रदेशबन्ध–) =अनुभाग बन्ध(और) प्रदेश बन्धके
ठाणाणि ¹/₃ मिच्छत्तसंसिदेण ³/₁ (स्थानानि मिथ्यात्वसंसर्गेण) =स्थान मिथ्यात्वके संसर्गकरि
य *भमिदा ¹/₃ पुण *भावसंसारे ⁷/₁ (च भ्रमिताः ¹/₃ पुनः भावसंसारे ⁷/₁) =ही (*य=च) निश्चय (=पुनः) भाव संसार में
=भ्रमे जाते हैं भावार्थ इस जीवने भाव संसार विषैं भ्रमण करि करि प्रकृति–बंध,स्थितिबन्ध,अनुभागबन्ध और प्रदेश बंधके समस्त स्थानोंको निश्चय करके प्राप्त किया है ॥

उक्तात् ⁵/₁ पञ्चविधात् ⁵/₁ संसारात् ⁵/₁ निवृत्ताः ¹/₃ =कथित (वा उपर्युक्त) पांच प्रकारके संसारसे रहितहुये
ये ¹/₃ ते ¹/₃ मुक्ताः ¹/₃ संसारिणाम् ⁶/₃ प्राक् ⁽¹⁾ *उपादानम् ¹/₁ =जे (जीव) ते मुक्त (=सिद्ध हैं) संसारियोंका (इस सूत्र में) पहिले ग्रहणहै
तत्पूर्वकत्वात् ⁵/₁ मुक्तव्यपदेशस्य ⁶/₁ =क्योंकि मोक्षका कथन वा उपदेश उस (संसार)पूर्वक वा संसार निमित्तक है अर्थात् मोक्षके व्यपदेशका संसार कारण है ॥

यदि संसार न होता तो मोक्षभी न होती क्योंकि मोक्ष संसारी जीवोंकी होती है जब वेही नहीं तो मोक्ष किसकी होती और जब मोक्ष गमन न होता अथवा मोक्षका अस्तित्व न होता तो फिर व्यपदेश मोक्षका कैसे संम्भव होता)

ये ¹/₃ एते ¹/₃ संसारिणः ¹/₃ ते ¹/₃ द्विविधाः ¹/₃ =जो ये संसारी (जीव) हैं वे दो प्रकार(निम्नलिखित सूत्रानुसार)हैं

संसारियोंके भेद बहुत हैं और मोक्ष जीवोंके कोई भेद नहीं है तथा संसारी जीव अनुभव गोचर हैं और मोक्ष जीव अत्यन्त परोक्ष हैं इन दो कारणोंसे भी संसारियोंका प्रथम ग्रहण है ॥ पश्चात् मोक्ष जीवोंका ग्रहण है ॥

सि
४४

॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥

मनो द्विविधं, द्रव्यमनो भावमनश्चेति ॥ तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः ॥ वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः ॥ तेन मनसा सह वर्तन्त इति समनस्काः। न विद्यते मनो येषां त इमे अमनस्काः ॥

समनस्का[1]ऽमनस्काः[2] ॥ ११ ॥

संसारिणः समनस्काः अमनस्काः च * =संसारी(जीव)संज्ञीवासैनी(=समनस्क) और(=च) असंज्ञी वा असैनी अमनस्क हैं अर्थात् जो मनसहित हैं वे समनस्क संज्ञी वा सैनी हैं और जो मनरहित हैं वे अमनस्क असंज्ञी असैनी हैं भावार्थ जो हितमें प्रवर्तने और अहितसे दूर रहनेकी शिक्षाग्रहण करता है वह संज्ञी है और जो शिक्षा क्रिया उपदेश इत्यादिकाग्रहण नहीं करता है वह असंज्ञी है ॥

मनस् द्विविधम् द्रव्यमनः भावमनः च*इति* =मन दो प्रकार है द्रव्यमन और भावमन

तत्र*पुद्गल–विपाकिकर्म उदय–अपेक्षम् द्रव्यमनः =तहां पुद्गल विपाकीकर्मप्रकृतिके उदयकी अपेक्षा जिसको सो द्रव्यमन है अर्थात् जो हृदयस्थानविषैं अष्ट पांखुड़ीका फूलकमलके आकार सूक्ष्मपुद्गलका प्रचयरूप तिष्ठता है सो द्रव्यमन है

वीर्यान्तरायनोइन्द्रिय–आवरणक्षयोपशम– अपेक्षया आत्मनः विशुद्धिः भावमनः तेन =वीर्यांतराय तथा नोइन्द्रियावरणनामा (ज्ञानावरणीयकर्मके)क्षयोपशमके कारणसे आत्माकी विशुद्धि सो भावमन है। उस

मनसा सह*वर्तन्त I(=वर्तन्ते I)इति*समनस्काः =मनकर सहित हैं(=वर्तन्ते) इस प्रकार (=इति)समनस्क हैं

न*विद्यते I मनः येषाम् त (=ते)इमे अमनस्काः =नहीं है विद्यमान वा वर्तमान(=विद्यते)मन जिनके ते इतने अमनस्का हैं

---

(१) समनस्काऽमनस्काः यह वाक्य द्वंद्व समास है इसमें समुच्चार्थ उपसर्ग और दूर कर दियाजाता है समासको खोलदेनेसे ऐसा वाक्य हो जाताहै (समनस्काः च अमनस्काः च)इसी कारणसे भाषा अनुवादमें 'और' शब्द लाये हैं (२) इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकहै।

एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विविधा विभज्यन्ते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामनस्का इति ॥ अभ्यर्हितत्वात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपातः॥कथमभ्यर्हितत्वं ? । गुणदोषविचारकत्वात् ॥ पुनरपि संसारिणां भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

एवम्*मनसः॥भाव–अभावाभ्याम्॥	=इस प्रकार मनकी विद्यमानता अविद्यमानता करि वा सद्भाव अभाव करि
संसारिणः॥द्विविधाः॥ विभज्यन्ते। समनस्काः॥च*=	संसारी(जीव) दो प्रकारमें विभाजित हैं वा विकल्पनीय हैं और (च)समनस्का
अमनस्काः॥ च* समनस्कामनस्काः॥ इति*	=और (=च) अमनस्का पदोंका द्वंद्वसमासमें समनस्कामनस्का ऐसा(वाक्य)हुआ
अभ्यर्हितत्वात्॥	=पूज्यपनासे वा श्रेष्ठपनासे वा प्रधानपन (केहेतु) से (अभ्यर्हित्वात्)(सूत्र में)
समनस्कशब्दस्य॥पूर्वनिपातः॥कथम्*अभ्यर्हितम्॥	=समनस्क शब्दका पहिले ग्रहणहै (प्रश्न)कैसे,श्रेष्ठपना वा पूज्यपना (समनस्कशब्दके)है
गुणदोषविचारकत्वात्॥	=(उत्तर) समनस्क गुण दोष का विचारवाला होनेसे अमनस्कसे श्रेष्ठ वा पूज्य है
पुनः*अपि*संसारिणाम्॥ भेदप्रतिपत्त्यर्थम्॥आह।	=फिर भी संसारी जीवोंके भेद जाननेके लिये कहते हैं कि

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥१२॥

संसारिणः॥ त्रसस्थावराः॥ भवन्ति।	=संसारी (जीव) त्रस और स्थावर हैं अर्थात् द्वीन्द्रिय (स्पर्शन और रसना सहित) त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका सहित) चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका, चक्षुःसहित)और पंचेन्द्रिय(स्पर्शन,रसना,नासिका, चक्षु,और कान सहित),जीवोंको त्रस कहते हैं और एकेन्द्रिय (त्वक्‌मात्र सहित) जीवोंको स्थावर कहते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस बारहवां सूत्रपर सर्वार्थ सिद्धि वृत्तिकाः शब्दशः हिन्दीअनुवाद

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एक है और अर्थ भी एक है(२)संसारिणस्त्रसस्थावराः अर्थात् संसारी जीव त्रस तथास्थावर हैं ऐसा कहने से यह फलित हुआ कि मुक्त जीव नतो त्रस हैं और न स्थावर हैं देखो 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ४२ ॥

संसारिग्रहणमनर्थकं,प्रकृतत्वात् ॥ क प्रकृतं?। संसारिणो मुक्ताश्चेति । नानर्थकम्। पूर्वापेक्षार्थं,ये उक्ताः समनस्कामनस्काश्चेति संसारिण इति॥ यदि हि पूर्वस्य विशेषणं न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहणं संसारिणो मुक्ताश्चेत्यनेन यथासंख्यमभिसंबंध्येत । एवं च कृत्वा संसारिग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्नं भवति। तत्पूर्वापेक्षं सदुत्तरार्थमपि भवति ॥

प्रक्रतत्वात् [५/१]॥ =(आचार्यसे शिष्यका प्रश्न) प्रकरण वा प्रसंग वा प्रबंधके कारण से (इस सूत्र में)

संसारिग्रहणम् [१/१]॥ अनर्थकम् [१/१]॥ क ? प्रकृतम् [१/१]॥ =संसारीका उपादान (=ग्रहण) निरर्थकहै (शिष्यके प्रश्नपर आचार्य) कहां प्रकरण है ?

संसारिणः [१/३]। मुक्ताः [१/३]। च* इति* =(शिष्यका उत्तर) संसारिणो मुक्ताश्च ऐसा दशवें सूत्रमें प्रकरण है (आचार्यकाउत्तर)

न*अनर्थकम् [१/१]॥ पूर्व-अपेक्षा-अर्थम् [१/१]॥ =(इस सूत्रमें संसारीका ग्रहण)निरर्थक नहींहै(इससे)पहिले(सूत्रके)सम्बन्धकेलियेग्रहणहै

ये [१/३]। उक्ताः [१/३]।समनस्कामनस्काः [१/३]।च*इतिसंसारिण [१/३]।इति*= कि ये कथित समनस्क और अमनस्क संसारी (जीव) हैं

यदि*हि*पूर्वस्य [६/१]॥ विशेषणम् [१/१]॥ न स्यात् [समनस्क=क्योंकि (=हि) जो (यदि) पहिले ११ वें सूत्रका विशेषण न होता तो समनस्क

अमनस्कग्रहणम् [१/१]।संसारिणः [१/३] मुक्ताः [१/३]।चइतिअनेन [३/१]॥=अमनस्का (इससूत्र) के ग्रहणको संसारिणो मुक्ताश्च इस (सूत्र) से (=अनेन)

यथासंख्यम् [१/१]॥ अभिसम्बन्ध्येत । =यथासंख्य सम्बन्ध होजाता (भावार्थ) यदि इसबारहवां सूत्रसे ग्यारहवां

सूत्रका विशेषण संसारी शब्द लाकर नकिया जाता तो दशमें सूत्रके संसारी शब्दका ग्यारहवां सूत्रके समनस्का शब्द से और मुक्त शब्दका अमनस्का शब्द से सम्बन्ध होकर ऐसा अनिष्ट अर्थ होजाता है कि संसारी जीव हैं वे मनस्का वा मन सहित हैं और मुक्त जीव हैं ते अमनस्का व मन रहित हैं ॥

एवम्*च*कृत्वा संसारिग्रहणम् [१/१]॥आदौक्रियमाणम् [१/१]॥=ऐसे करके(इससूत्रमें)संसारीका उपादान वा ग्रहण आदिविषैकरना (क्रियमाणं)

उपपन्नम् [१/१]॥भवति । =युक्ति युक्त वा प्रमाणसे भरा हुआ (=उत्पन्नं) होता है

तत्-पूर्व-अपेक्षम् [१/१]॥ सत् । =उस(संसारी शब्द)का (ग्रहण) प्रथम (ग्यारहवां सूत्रके) अपेक्षा होकर

उत्तर-अर्थम् [१/१]॥ अपि* भवति । =अगले (बारहवां सूत्र) के लिये भी होता है कि

संसारिणो द्विविधाः(१)। त्रसाः स्थावराः इति ॥ त्रसनामकर्मोदयवशीकृतास्त्रसाः। स्थावरनामकर्मोदयवशवर्तिनः स्थावराः॥ त्रस्यन्तीति त्रसाः स्थानशीलाः स्थावरा इति चेन्न। आगमविरोधात् ॥ आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रियादारभ्य आ अयोगकेवलिन इति। तस्मान्न चलनाचलनापेक्षं त्रसस्थावरत्वम्। कर्मोदयापेक्षमेव ॥ त्रसग्रहणमादौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वादभ्यर्हितत्वाच्च। सर्वोपयोगसम्भवादभ्यर्हितत्वम् ॥ एकेन्द्रियाणामपिबहुवक्तव्याभावात्

संसारिणः द्विविधाः त्रसाः स्थावराः इति*	=संसारी जीव दो प्रकार हैं त्रस हैं स्थावर हैं
त्रसनामकर्मोदय–वशीकृताः त्रसाः स्थावरनामकर्म–	=त्रसनामकर्मकी प्रकृतिके उदयके वशसे हुए त्रस हैं स्थावरनामानामकर्मकी प्रकृतिके
उदयवशवर्तिनः स्थावराः त्रस्य–अन्ति(त्रस्यान्ति)इति*	=उदयके वशसे हुए स्थावर हैं(प्रश्न)डरते हैं वा भयभीत होते हैं ऐसे(=इति)
त्रसाः स्थानशीलाः स्थावराः इति*चेत् *	=त्रस(और) तिष्ठनेका है स्वभाव जिनका (ऐसे)स्थावर हैं ऐसी शंका (=चेत्)है
न*आगमविरोधात् आगमे हि*काय–अनुवादेन	=(उत्तर)शास्त्रके विपरीत होनेसे ऐसा नहीं है क्योंकि(=हि)शास्त्रमें कायकी अपेक्षासे
त्रसाः द्वि–इन्द्रियात् आरभ्य –– आ*अयोगकेवलिनः इति	=त्रस जीव दो इन्द्रियसे प्रारम्भकर अयोगकेवलीपर्यंत (=आ) हैं
तस्मात् न*चलनाचलन–अपेक्षं त्रसस्थावरत्वम् ॥	=जिसमें चलने न चलनेकी अपेक्षासे त्रस स्थावरपना नहीं है
कर्मउदय–अपेक्षम् एव*त्रसग्रहणम् ॥	=कर्मउदयकी अपेक्षासे ही(त्रसस्थावरपना)है(इससूत्रमें)त्रसका उपादान
आदौ क्रियते। अल्पाच्तरत्वात् अभ्यर्हितत्वात् च*	=पूर्वमें किया है क्योंकि(त्रसशब्दके स्थावरशब्दसे) स्वर थोड़े हैं और प्रधानपना है
सर्व–उपयोगसम्भवात् अभ्यर्हितत्वम् ॥	=क्योंकि(त्रसके)समस्त उपयोग सम्भव होनेसे पूज्यपना है अर्थात् त्रसके प्रधानपना सर्व उपयोग संभव है उस उपयोगकी अपेक्षासे है
एकइन्द्रियाणाम् अपि*बहुवक्तव्य–अभावात्	=एकेइन्द्रियोंके भी बहुतकथन वा भेद(वक्तव्य)नहोनेके कारणसे

---

(१) द्विशब्दके साथ विधाः स्त्रीलिंग बहुवचन इस कारण लाए हैं कि स्थावरों को भी बहुत जाते हैं और त्रस भी अनेक प्रकार के हैं

(२) त्रस् दिवादि चतुर्थ गणका धातु है य विकरण वर्तमानकालके चिन्ह के प्रथम आता है इस प्रकार 'त्रिस्' का 'त्रस्य' हुआ इसके पहिले 'अन्ति' प्रत्यय लगानेसे त्रस्य–अन्ति होता है परंतु अन्ति के 'अ' के पहिले 'अ' का लोप होजाता है अर्थात् गिरजाता है इसलिये त्रस्यन्ति वर्तमान काल परस्मैपद बहुवचन इस सूत्रमें है अर्थ डरते हैं वा भयभीत होते हैं। आरभ्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है॥

उल्लंघ्यानुपूर्वीं स्थावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

स्थावरनामकर्मभेदाः पृथिवीकायिकादयः सन्ति,

उल्लंघ्य — आनुपूर्वीं॥ स्थावर—भेद—प्रतिपत्ति—अर्थम्॥ आह=(कथनकरनेका)क्रम(=आनुपूर्वी)छोड़करस्थावरके भेद कहनेके लिये कहते हैं कि

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥

पृथिवी—अप्—तेजस्—वायु—वनस्पतयः॥ स्थावराः॥=पृथिवी कायिक,अप्कायिक,तेजःकायिक,वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर(जीव)हैं

वृत्त्यनुवादः—स्थावरनामकर्मभेदाः॥ पृथिवीकायिक—=स्थावरनामा नामकर्मकी प्रकृतिके भेद पृथिवीकायिक
आदयः॥ सन्ति। =अप्कायिक, तेजः कायिक, वायुकायिक, वनस्पति कायिक (=आदयः) हैं

(१) दोनों आम्नायोंके १३, १४ सूत्रका पाठ भेद और अर्थ भेद एकसाथ लिखनेसे सुगम होगा। इसलिये नीचे दोनों आम्नायोंके चारों सूत्र लिखते हैं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयःस्थावराः॥१३॥ अर्थ ऊपर देखो॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः॥१४॥ दोइन्द्रिय,तीनइन्द्रिय चारइन्द्रिय पांचइन्द्रियवाले त्रस हैं पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः॥१३॥ सभाष्यतत्त्वार्थ.धिगमसूत्र पृष्ठ॥ ४१॥ तेजोवायू द्वीन्द्रियादयाश्च त्रसाः सभाष्य० में १४ वां सूत्र पृष्ठ ४२ पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक (ये)स्थावर जीव हैं॥ तेजः कायिक,वायुकायिक और=च, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले चारइन्द्रियवाले पांच इन्द्रियवाले त्रस जीव हैं॥ दोनों आम्नायोंके १३ वां और १४वां सूत्रोंके मिलानसे प्रगट है कि तेजस्-वायु दो शब्द हमारे यहांके १३ वां सूत्रके श्वेताम्बर आम्नाय के १४वां सूत्र में अन्तर्गत हैं यह तो दोनोंके१३वां सूत्रमेंपाठभेद हुआ। सभाष्य० के १४ वां सूत्रमें हमारे यहां के १४ सूत्रसे 'तेजो-वायु' 'च' अधिक हैं शेष पाठ एकसा है। हमारे यहां तेजकायिक और वायुकायिक दोनों को स्थावर जीव माना है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें इनको त्रस जीव माना है जैसा कि सभाष्य० के १४ वाँ सूत्र और हमारे यहाँ के १३ वां सूत्र से प्रकट है। अवशेष तात्पर्य्य दोनों आम्नायके दोनों दोनों सूत्रों का एक है अर्थात् पृथिवी कायिक, अप् (जल)कायिक,वनस्पति कायिक को स्थावर दोनोंमें माना है और दो इन्द्रियवालेजीव,तीन इन्द्रियवाले जीव,चार इन्द्रियवाले जीव पांच इन्द्रियवाले जीवोंको दोनोंमें त्रस माना है।

(२) 'कायादयः' सर्वार्थसिद्धिकी एकप्रति हस्त लिखितमें, दोनों मुद्रित आवृत्तियोंमें, तथा राजवार्तिकमें पाते हैं। जिसका 'जीव' निकलगयाहो सो काय है। जीव सहित हो सो कायिकहै। यहां पर जीवसहित से अभिप्रायहै। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३२५ के निम्न वाक्यमें 'कायिक' शब्द लाये हैं। "पृथिव्यः कायिकादि नामकर्मोदयवशात्पृथिव्यादयो जीवाःपृथिवी कायिकादयः स्थावराः प्रत्येतव्या न पुनर जीवास्तेषामप्रस्तुतत्वात् "॥

तदुदय निमित्ता अमी इति जीवेषु पृथिव्यादयः संज्ञा वेदितव्याः ॥ प्रथनादिप्रकृति निष्पन्ना अपि रूढिवशात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ॥ एषां पृथिव्यादीनामार्षे चातुर्विध्यमुक्तम्। प्रत्येकं तत्कथमिति चेदुच्यते ॥ पृथिवी। पृथिवीकायः। पृथिवीकायिकः। पृथिवीजीव इत्यादि ॥ तत्र अचेतना वैस्रसिकपरिणामनिर्वृत्ता काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी। अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकायनामकर्मोदये प्रथनक्रियोपलक्षितैवेयम्। अथवा पृथिवी सामान्यम्—

तद्–उदय–निमित्ताः अमी इति जीवेषु	=उस (स्थावरनामा नामप्रकृति) के उदयके कारण इनजीवोंमें
पृथिवी–आदयः	=पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक (=आदयः)
सञ्ज्ञाः वेदितव्याः प्रथन–	=संज्ञा वा नाम जानो (पृथिवी, अप्, तेजः, वायु, वनस्पति ये पांचों शब्द) प्रथन
आदि–प्रकृति–निष्पन्नाः अपि रूढिवशात्	=आदिक (भिन्नभिन्न) धातुओंसे (=प्रकृति) निकले हैं। फिरभी (=अपि) रूढिके आश्रयसे
प्रथन–आदि–अनपेक्षाः वर्तन्ते ।	=(इनपांचों शब्दोंकी) प्रथनादिक अर्थात् विस्तारादिक (अर्थ) की विवक्षा नहीं है
एषाम् पृथिवी–आदीनाम् आर्षे चातुर्विध्यम्	=इन पृथिवी आदिकोंके ऋषियों रचित धर्मशास्त्रमें (=आर्षे) चार चार भेद
उक्तम् प्रत्येकम् तत् कथं इति चेत् उच्यते ।	=कहेगये हैं वह (=तत्) प्रत्येक कैसे हैं? ऐसी शंका होने पर कहाजाता है कि
पृथिवी पृथिवीकायः पृथिवीकायिकः पृथिवीजीवः इति	=पृथिवी, पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव ऐसें
आदि ॥	=और भी हैं अर्थात् अप्–अप्काय, अप्कायिक, अप्जीव; तेजः, तेजःकाय, तेजःकायिक, तेजोजीव; वायु–वायुकाय–वायुकायिक–वायुजीव; वनस्पति–वनस्पतिकाय-वनस्पतिकायिक-वनस्पतिजीव हैं
तत्र अचेतना–वैस्रसिक–परिणाम–निर्वृत्ता	=वहां अचेतन स्वभावसिद्ध (=वैस्रसिक) परिणामसे रचित
काठिन्यगुण–आत्मिका पृथिवी अचेतनत्वात्	=अपने (=आत्मिक) कठिनतागुणकरि सहित पृथिवी है। जड़पनासे
असति अपि, पृथिवीकायनामकर्मउदये प्रथन–क्रिया–	=पृथिवीकायनामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदय न होनेपरभी प्रथन वा फैलावक्रिया
उपलक्षिता–एव इयम् अथवा पृथिवी सामान्यम्	=आदिसे युक्त (=उपलक्षित) यह (पृथिवी) है ही ॥ वा पृथिवी सामान्य (शब्द) है

उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात्। कायः शरीरं पृथिवीकायिकजीवपरित्यक्तः पृथिवीकायः। मृतमनुष्यादिकायवत्। पृथिवीकायः अस्यास्तीति पृथिवीकायिकः। तत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा समवाप्तपृथिवीकायनामकर्मोदयः कार्मणकाययोगस्थो यो न तावत्पृथिवीं कायत्वेन गृह्णाति स पृथिवीजीवः

उत्तरत्रये ७/१ अपि * =क्योंकि अगले तीनों भेद (पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक, पृथिवीजीव)में भी (यहशब्द)

सद्भावात् ५/१ कायः १/१ शरीरम् १/१ पृथिवीकायिकजीव- =विद्यमान है। काय वा शरीर जो पृथिवी कायिक जीवकरि

परित्यक्तः १/१ =त्यागित होगया है अर्थात् जिसमेंसे पृथिवी कायिक जीव मरकर निकल गया है

पृथिवीकायः १/१ मृत-मनुष्यादिकायवत् * =सो पृथिवी काय है। मरेहुये मनुष्यादिकके शरीर सदृश (पृथिवी काय) है

पृथिवीकायः १/१ अस्य ६/१ अस्ति इति पृथिवीकायिकः १/१ =पृथिवीकाय जिस (जीव)के है ऐसा (जीव) पृथिवी कायिक है ॥ "सो यहु" जीव "पृथिवी शरीरके संबंध सहित है" जय०वचनिका पृष्ठ २५६. अर्थात् जिस जीवका उस पृथिवी कायसे संबंध है वह पृथिवी कायिक है ॥

तत्काय-सम्बन्धवशीकृतः १/१ आत्मा १/१ =उस (पृथिवी) शरीरके संबंध वशीभूत आत्मा (अन्य कायके शरीरसे छूटकर)

समवाप्त(सम्-अव-आप्त) पृथिवीकायनामकर्मोदयः १/१ =पृथिवीकाय नामा नामकर्मकी प्रकृतिका उदय प्राप्त हुआ जिसको

कार्मणकाययोगस्थः १/१ यः १/१ =(जितने अंतरालमें) कार्माण काययोगमें तिष्ठा हुआ जो (जीव जब तक)

नतावत्पृथिवीम् २/१ कायत्वेन ३/१ गृह्णातिसःपृथिवीजीवः =पृथिवीको कायपनाकरि ग्रहण नहीं करता तब तक (=तावत्) वह पृथिवी जीव है अर्थात् जिस जीवके पृथिवी कायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको कायस्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाययोगमें ही विद्यमानहै वह पृथिवी जीव है

भावार्थ कोई जीव किसी शरीर में था उसने अपनी आयु पूर्ण करने पर उस शरीर को त्यागकर पृथिवी काय नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयसे पृथिवी कायिक होने वाला है तो उस जीवको विग्रहगति (=नया शरीर धारण करने के लिये गमन अवस्था)में कार्माण योगहै जितने काल तक विग्रहगति है तब तक वह जीव पृथिवी काय वा शरीरको ग्रहणकरनेमें असमर्थ है उस काल तक उसको पृथिवी जीव कहेंगे। उक्त विग्रह काल किसी जीवका एक समय,किसीजीवका दो समय,किसी जीवका तीन समय तक होता है तीन समय से अधिक नहीं हो सकता है ॥ और विग्रह गति में (जीवके) कार्मण योग रहता है ॥

उक्तं च—पुढवी पुढवीकायो पुढवीकाइय पुढविजीवो य। साहारणोपमुक्को सरीरगहिदो भवंतरिदो ॥ १ ॥ एवमबादिष्वपि योज्यम् ॥ एते पञ्चविधाः प्राणिनःस्थावराः। कति पुनरेषां प्राणाः?। चत्वारः। स्पर्शनेन्द्रियप्राणःकायबलप्राणःउच्छ्वासनिःश्वासप्राणःआयुःप्राणश्चेति ॥ अथ त्रसाः के ते?इत्यत्रोच्यते ॥

उक्तं च। पुढवी पुढवीकायो (पृथिवी पृथिवीकायः) =बहुरि कहागया है कि पृथिवी, पृथिवीकाय,
पुढवीकाइय पुढविजीवो य(पृथिवीकायिक पृथिवीजीवः च) =पृथिवीकायिक और (=य=च) पृथिवीजीव है [पृथिवी काय है
साहारणोपमुक्को (साधारण—उपमुक्तः) =(सो यह पृथिवी)साधारण है। जिससे जीव अभी निकला है (सो
सरीरगहिदो (शरीरगृहीतः) =शरीरग्रसित वा शरीर सहित जीव है (सो पृथिवी कायिक है)
भवंतरिदो (भवान्तरितः) =भवान्तर अवस्थावाला वा विग्रहगतिसहितजीवहै(सो पृथिवी जीव है)

भावार्थ पृथिवी,पृथिवीकाय, पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव ये चार भेद पृथिवीके हैं। उनमेंसे अचेतन स्वभावसिद्ध परिणामसे रचित और कठिनता आदिगुण स्वरूप पृथिवी कहीजाती है इसलिये पृथिवी यह एक साधारण और सामान्यनाम ही है ॥ (२) कायका अर्थ शरीर है पृथिवीकायिक जीवने जिस शरीर को छोड़ दिया है वह पृथिवीकाय कहाजाता है यह मरे हुये मनुष्यादिक कीकाय(काया)के समान है, (३) शरीर गृहीत वा शरीर ग्रसित जीव अर्थात् वह पृथिवी जिसमें इस समय जीव विद्यमान है वह पृथिवीकायिक है ॥ (४) जिस जीवके पृथिवीकायिक नामकर्मका उदय है परंतु पृथिवीको काय स्वरूपसे ग्रहण न कर वह कार्माणकाय योगमेंही विद्यमान है अर्थात् विग्रहगति अवस्था में है वहपृथिवीजीव है ॥

एवम्*अप्—आदिषु*अपि*योज्यम् ॥ =ऐसे अप् आदिकमेंभी(चार चार भेद) लगाना योग्य है
एते पञ्चविधाः प्राणिनः स्थावराः कति पुनः एषां प्राणाः? =ये पांच प्रकार प्राणवाले स्थावर हैं। पुनि इनके कितने प्राण हैं ?
चत्वारः स्पर्शनेन्द्रियप्राणः कायबलप्राणः =(उत्तर)चार प्राण हैं(अर्थात्)स्पर्शन इन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,
उच्छ्वासनिःश्वासप्राणः आयुःप्राणः च*इति* =उच्छ्वासनिःश्वासप्राण, और आयुप्राण
अथ*त्रसाः के ते? इति*अत्र*उच्यते T =अब त्रसजीव हैं ते कौन हैं ऐसा प्रश्न होनेपर यहां कहाजाता है कि

॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

द्वे इन्द्रिये यस्य सोऽयं द्वीन्द्रियः, द्वीन्द्रियः आदिर्येषां ते द्वीन्द्रियादयः ॥ आदिशब्दो व्यवस्थावाची। क्व व्यवस्थिताः। आगमे। कथम्। द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रियःपञ्चेन्द्रियश्चेति॥ तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः ॥

सूत्रम्(१)— द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः(२)(३) ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—द्वि-इन्द्रिय-आदयः त्रसाः	=दो इन्द्रियोंको आदिलेकर(पंचेन्द्रियतक)त्रस (जीव) हैं अर्थात् दोइन्द्रिय तीनइन्द्रिय,चारइन्द्रिय,पंचेइन्द्रिय जीव आगममें त्रसनामसे व्यवस्थित हैं ॥
इत्यनुवादः—द्वे इन्द्रिये यस्य सः अयम् द्वीन्द्रियः	=दो हैं इन्द्रिय जिसकें सो यह दो इन्द्रिय है (और)
द्वीन्द्रियः आदिः येषां ते द्वीन्द्रिय-आदयः	=दो इन्द्रिय हैं आदिमें जिनकें ते द्वीन्द्रिय आदि हैं
आदिशब्दः व्यवस्थावाची है	=(सूत्रमें)आदिशब्द मर्यादावाची है अर्थात् इन्द्रियोंकी गणनाको परमितकरताहै।
क्व व्यवस्थिताः आगमे कथम्	=(प्रश्न)कहां व्यवस्था वा मर्यादा है। (उत्तर)शास्त्रोंमें है (प्रश्न) कैसे है
द्वीन्द्रियः त्रीन्द्रियः चतुरिन्द्रियः च पंचेन्द्रियः इति	=(उत्तर)दो इन्द्रिय,तीन इन्द्रिय,चार इन्द्रिय,और पांच इन्द्रिय,वाले जीव हैं
तद्गुणसंविज्ञानवृत्तिग्रहणात्	=तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासके उपादानके निमित्तसे है
द्वीन्द्रियस्य अपि अन्तर्भावः	=दो इन्द्रियवालेका भी(आदिशब्दविषैं)ग्रहण(=अन्तर्भाव)हैअर्थात् इस समास में

जिस पदार्थके पीछे आदिशब्द आता है तो वह अपने पहलेके पदार्थको ग्रहण करते हुये दूसरी शेष वस्तुओंको भी गिना देता है जैसे इस सूत्रमें आदि शब्दने अपने पहिलेकी संख्या द्विइन्द्रियकी गणना करतेहुये

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके पाठ और अर्थमें जो भेद है वह इस अनुवादके तेरहवां सूत्रमें दियागया है ॥ (२) मर्यादावाची,तेन पञ्चेन्द्रियादूर्ध्वं षडिन्द्रियादिर्जीवो न भवतीत्यभिप्रायः ॥ (३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे उदाहरणं लम्बकर्णः। अतद्गुणसंविज्ञाने बहुधनः ॥

कति पुनरेषां प्राणाः? । द्वीन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणा पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिकाः । त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिकाः । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुः प्राणाधिकाः । पंचेन्द्रियस्य तिरश्चोऽसंज्ञिनो नव त एव श्रोत्रप्राणाधिकाः । सञ्ज्ञिनो दश त एव मनोबलप्राणाधिकाः ॥ आदिशब्देन निर्दिष्टानामनिर्ज्ञातसंख्यानामियत्तावधारणं कर्तव्यमित्यत आह

त्रिइन्द्रिय, चतुः इन्द्रिय पंचेन्द्रिय, को भी त्रस जीवोंके भेदोंमें गिना दिया ॥

कति पुनः एषाम् प्राणाः ? =(प्रश्न)पुनि कितने इन(प्रत्येक द्वीन्द्रिय–त्रीन्द्रिय–चतुरिन्द्रिय–पंचेन्द्रिय)के प्राणहैं

द्वि–इन्द्रियस्य तावत् षट् प्राणाः पूर्वोक्ता एव =प्रथम(=तावत्)द्वीन्द्रियजीवकें छैप्राण हैं । प्रथम कथित ही(चार स्पर्शनेन्द्रियप्राण, कायबलप्राण,उच्छ्वासनिःश्वासप्राण,औरआयुप्राणजोएकेन्द्रियजीव केंहोते हैं) हैं

†

रसन–वाक्प्राण–अधिकाः =रसनाइन्द्रिय,वचनबल प्राण, अधिक हैं

त्रीन्द्रियस्य सप्त ते एव घ्राणप्राण–अधिकाः =तीनेन्द्रियजीवके सात(प्राण)हैं । वे ही(छहऔर) नासिका इन्द्रियजिनकें अधिकहैं

चतुरिन्द्रियस्य अष्टौ ते एव चक्षुर्प्राण–अधिकाः =चतुरिन्द्रियजीवके,आठ (प्राण) हैं वे(=ते)ही(=एव–सात) (और)चक्षुप्राणजिनकें अधिक हैं ।

पञ्चेन्द्रियस्य तिरश्चः असञ्ज्ञिनः नव ते एव श्रोत्रप्राण–अधिकाः =पंचेंद्रिय तिर्यंच असैनीकें नो (प्राण) हैं वेही(आठ)(और)कर्ण इन्द्रियप्राण जिनकें अधिक हैं ।

सञ्ज्ञिनः दश ते एव मनोबलप्राण–अधिकाः =(पंचेंद्रिय)सैनीके दस(प्राण)हैं वेही(नौऔर)मनबलप्राण जिनकें अधिक हैं ।

आदिशब्देन =(इससूत्रमें) आदि शब्दकरि

निर्दिष्टानाम् निर्ज्ञातसंख्यानाम् इयत्ता–अवधारणम् कर्तव्यम् इति अतः आह =उपदेशकीहुई(=निर्दिष्टानाम्) (परंतु) विनाजानी हुई गणनाओंकी मर्यादा =निश्चय करना(=अवधारणम्)कर्तव्य है वा निश्चकरना चाहिये अतः कहते हैं कि

(२) मर्यादावाची । तेन । पंचेन्द्रियात् । ऊर्ध्वम् षड्इन्द्रियादिजीवः । न भवति इति अभिप्रायः । =मर्यादावाचक(=व्यवस्थावाची)है तिस(आदि शब्द)करि पंचइन्द्रियसेऊपर =छेइन्द्रियादिजीव नहीं होतेहै । ऐसाआशयसूत्रमेंआदिशब्दकाजोव्यवस्थावाचीहै, है

(३) तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिसमासे । उदाहरणम् । लम्बकर्णः । अतद्गुणसंविज्ञाने । बहुधनः । =बहीगुणज्ञापकबहुव्रीहि समासमें दृष्टान्त, लम्बकर्ण है वा लम्बेकानवाला है =(और)अतद्गुणसंविज्ञान(बहुव्रीहिसमासमें)बहुतहैधनजिसकेऐसा(उदाहरण) है ।

† द्वीन्द्रियस्य से पंचेन्द्रियस्य तक एकएकवचनमें है अतःअनुवाद एकवचनमेंहैऔरपांचस्थानोंमें 'अधिकाः' शब्दबहुवचनमें है इससेअनुवादबहुवचनमेंहै ॥

॥ पंचेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

इन्द्रियशब्दो व्याख्यातार्थः। पञ्चग्रहणमवधारणार्थं, पञ्चैव नाधिकसंख्यानीति॥ कर्मेन्द्रियाणां वागादीनामिह ग्रहणं कर्तव्यम्। न कर्तव्यम्। उपयोगप्रकरणात्॥ उपयोगसाधनानामिह ग्रहणं कृतं, न क्रियासाधनानामनवस्थानाच्च॥ क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानां सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न पंचैव कर्मेन्द्रियाणि॥

सूत्रम्— पंचेन्द्रियाणि=पंचेन्द्रियाणि (नाधिकानि) भवन्ति

सूत्रार्थः—पंचेन्द्रियाणि¹।।न-अधिकानि¹।।भवन्ति।=इन्द्रियें(सब)पांच हैं अधिक नहीं होती हैं अर्थात् इससूत्रका आरम्भनियमकेलियेहै, औरछह आदिकी संख्याकेनिषेधके लिये है। जो"इन्द्रकहिये आत्मा(=संसारीजीव)ताकालिंगकहिये जनावनेका चिन्हतथा इन्द्रजोनामकर्म ताकरि रचे जेआकार ते इन्द्रिय हैं"पं०जय०वचनिकापृष्ठ२५८।

इत्यर्थः—इन्द्रियशब्दः¹।व्याख्यातअर्थः¹।पञ्चग्रहणम्¹।।=इन्द्रिय शब्दका अर्थ पहिले विवरण कियागया है। पंचशब्दका उपादान अवधारणअर्थं¹।।पञ्च¹।।एव न-अधिक-संख्यानि¹।।इति=निश्चयके लिये है। पांचही(इन्द्रियां) हैं अधिक संख्या वा गणाना नहीं है

कर्म-इन्द्रियाणाम्¹।।वाग्-आदीनाम्¹।।इह*ग्रहणम्¹।।	=कर्मइन्द्रियें वचन,हाथ-पांव-गुदा-लिंग(=आदीनाम्)का यहां ग्रहण
कर्तव्यम्¹।।न*कर्तव्यम्¹।।उपयोग-प्रकरणात्¹।।	=करनाचाहिये। (कर्मइन्द्रियोंकाग्रहण)नहींचाहिये। क्योंकि(यहां)उपयोगकाविषयहै
उपयोग-साधनानाम्¹।।इह*ग्रहणं¹।। कृतम्¹।।	=(अतः) उपयोगके कारणोंका यहां ग्रहण किया गया है [वस्थाप्रसंग आताहै
च*न*क्रियासाधनानाम्¹।।अनवस्थानात्¹।।	=औरनकिक्रियाकेसाधनोंका क्योंकि(यदि क्रियाकेसाधनोंको इन्द्रियकहैं तो)अन-
क्रियासाधनानाम्¹।।अङ्गोपाङ्गनामकर्मनिर्वर्तितानाम्¹।।	=क्योंकि क्रियाकेसाधन अंगोपांगनामा नामकर्म करिरचित हैं
सर्वेषाम्¹।। अपि*क्रियासाधनत्वम्¹।।अस्ति।इति*	=इसलिये(=अपि-देखो वैद्यकोशपृष्ठ४१)समस्तके क्रियाका साधनपना है
न*पञ्च¹।।एव*कर्मइन्द्रियाणि¹।।	=नकि पांचोंही कर्मइन्द्रियोंके (क्रिया साधनपना है) भावार्थ ऐसा है कि

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥(२)सांख्यमती चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसना-त्वक् ये पांच बुद्धीन्द्रियां,वचन,हाथ,पांव, गुदा,लिंग येपांच कर्मेन्द्रियां,और मन ऐसें ग्यारह इन्द्रियां मानतेहैं। कोईछै इन्द्रियांमानते हैं उनकेखंडनार्थ औरसंख्याकी इयत्ता के लियेयह सूत्रहै

तेषामन्तर्भेदप्रदर्शनार्थमाह

द्विविधानि ॥ १६ ॥

विधशब्दः प्रकारवाची, द्वौ विधौ येषां तानि द्विविधानि, द्विप्रकाराणीत्यर्थः ॥ कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ? । द्रव्येन्द्रियं भावेन्द्रियमिति ॥

जो पदार्थ ज्ञान और दर्शन स्वरूप उपयोगमें कारण हो उसीका नाम इन्द्रिय माना है। स्पर्शनआदि पांच इन्द्रियां उपयोगमें कारण हैं इसलिये उन्हें इन्द्रिय मानना युक्त है। वाक् पाणि पांव गुदा और लिंग उपयोगमें कारणनहीं, इसलिये उन्हें इन्द्रिय नहीं कहा जासकता यदि यहांपर जो क्रियाके साधनहों वे भी इन्द्रिय हैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण किया जायगा तो यद्यपि बोलना आदि क्रियाओंके कारणहोनेसे वाक् आदिइन्द्रियां कहीजावेंगी परंतु क्रियाके साधन तो मस्तक आदि सबही अंग उपांग हैं। सबोंको इन्द्रिय कहना पड़ैगा फिर किसको इन्द्रिय कहना किसको न कहना अथवा वाक् पाणि आदिपांचको कर्मेन्द्रिय कहना औरोंको न कहना यह अवस्थाही न बन सकैगी इस लिये जो क्रियाके साधन हों वे इन्द्रियहैं यह इन्द्रिय सामान्यका लक्षण न मानकर 'जो उपयोगमें कारण हों वे इन्द्रियहैं' यही इन्द्रियका लक्षण मानना चाहिये॥ अतः जो सूत्रमें कहीहैं वे उपयोगमें कारण हैं और वे हीइन्द्रियें हैं॥

तेषाम् ६।३ अन्तर्भेद–प्रदर्शन–अर्थम् २।१ आह T =उन (इन्द्रियों) के प्रभेद दिखानेके लिये (निम्नलिखित सूत्रमें आचार्य) कहते हैं कि

सूत्रम्—द्विविधानि = द्विविधानीन्द्रियाणि भवन्ति॥ १६॥ ('इन्द्रिय' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसेली)

सूत्रार्थः—इन्द्रियाणि १।३ द्विविधानि १।३ भवन्ति T =इन्द्रियें दो भेदरूप हैं अर्थात् पांचों इन्द्रियोंमेंसे प्रत्येक इन्द्रियके दो द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय भेद हैं।

इत्यर्थः—विधशब्दः १।१ प्रकारवाची १।१ द्वौ १।२ विधौ १।२ येषाम् ६।३ (=इससूत्रमें) 'विध' शब्द प्रकारअर्थमें है। दो हैं भेद जिनके तानि १।३ द्विविधानि १।३ द्विप्रकाराणि १।३ इति * अर्थः १।१ =वे द्विविधानि हैं अर्थात् दो दो प्रकार सब इन्द्रियें हैं। ऐसा आशय है

कौ १।२ पुनः * द्वौ १।२ प्रकारौ १।२ द्रव्येन्द्रियं १।१ भावेन्द्रियम् * इति =फिर कौन दो प्रकार हैं द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ऐसे हैं

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्त्यर्थ (निर्ज्ञापनार्थ) माह—

॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

निर्वर्त्यते निष्पाद्यते इति निर्वृत्तिः ॥ केन निर्वर्त्यते? कर्मणा ॥ सा द्विविधा बाह्याभ्यन्तर-भेदात् । उत्सेधांगुलासंख्येयभाग प्रमितानां

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपत्तिअर्थ (निर्ज्ञापन—अर्थ)म् [१] ॥ आह=तहां द्रव्येन्द्रियकेस्वरूपके निर्णय वा जाननेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— [१] निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥

=निर्वृत्त्युपकरणे (इन्द्रिये—द्विविधे)द्रव्येन्द्रियम् =निर्वृत्ति—इन्द्रियम्—उपकरणेन्द्रियम् च द्विविधं द्रव्येन्द्रियम् भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—निर्वृत्ति—इन्द्रियम् [१] ॥ च*उपकरणेन्द्रियम् [१] ॥ =निर्वृत्ति—इन्द्रिय और उपकरणेन्द्रिय

द्विविधम् [१] ॥ द्रव्येन्द्रियम् [१] ॥ भवति। =दोप्रकार द्रव्येन्द्रिय है अर्थात् निर्वृत्तिऔरउपकरणके भेदसे द्रव्येन्द्रिय दो प्रकार है॥

वृत्त्यनुवादः—निर्वर्त्यते। निष्पाद्यते। इति*निर्वृत्तिः [१] ॥ =रचागया है बनायागया है यह निर्वृत्ति है

केन [३] ॥ निर्वर्त्यते। कर्मणा [३] ॥ =(प्रश्न)किससे रचगया है। (उत्तर) कर्म करि [विशेषहो सो निर्वृत्ति है)

सा [१] ॥ द्वि—विधा [१] ॥ बाह्य—अभ्यन्तर—भेदात् [५] । =वह(निर्वृत्ति)बाह्यअभ्यन्तर भेदसे दो प्रकार है(नामकर्मके उदयसे जोरचना—

उत्सेध—अंगुल—असंख्येयभागप्रमितानाम् [६] =उत्सेध अंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण

(१: सूत्र १६,१७ का पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एक है ॥'इन्द्रिय'और 'विधि'शब्दोंकी अनुवृत्ति क्रमसे १५,१६ सूत्रोंसे इस सूत्रमेंलीगई है ॥

(२)उत्सेधांगुलमिति व्यवहारांगुलं घनरूपं तदेवात्र गृह्यते। परमागमे देहगेहग्रामनरकादिप्रमाणमुत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात् ॥

उत्सेध—अंगुलम् [१] ॥ इति व्यवहार—अंगुलम् [१] ॥ घनरूपं = उत्सेधअंगुल(=आठआड़ेजौप्रमाण)हैसोव्यवहारअंगुलहै। घनरूप(लंबाई—चौड़ाईउचाईमेंसम)

तद्*एव*अत्र*गृह्यते। परमागमे [१] ॥ देह—गेह—ग्राम— = वही (उत्सेधअंगुल)यहां लियागया है। शास्त्रमें शरीर,गृह,ग्राम,

नरक—आदि—प्रमाणम् [२] ॥ उत्सेध—अंगुलेन [३] ॥ एव* =नरकादिकका प्रमाण उत्सेध अंगुलसे ही है॥

इति*नियमितत्वात् [५] ॥ =क्योंकि ऐसा नियमित वा विधित है॥ इस उत्सेधअंगुलसे पांच सौ गुणा प्रमाणांगुलहै इससे महापर्वत,नदी,समुद्रादिकका परिमाण कहाजाता है। भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्योंका अपने २ कालमें जो अंगुल है उसे आत्मांगुल कहते हैं इससे झारी कलश,धनुषादिका प्रमाण होता है॥

शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतचक्षुरादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिरभ्यन्तरा निर्वृत्तिः। तेष्वात्मप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेशभाक्षु यः प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापादितावस्थाविशेषः पुद्गलप्रचयः सा बाह्या निर्वृतिः। येन निर्वृते रूपकारः क्रियते तदुपकरणम्॥ पूर्ववत्तदपि द्विविधम् तत्राभ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलम् बाह्यमक्षिपत्रपक्ष्मद्वयादि॥ एवं शेषेष्विन्द्रियेषुज्ञेयम्॥

शुद्धानाम् आत्मप्रदेशानाम् प्रति- नियतचक्षुःआदिइन्द्रियसंस्थानेन॥ अवस्थितानां वृत्तिः =शुद्धचेतना वा आत्माके प्रदेशोंकी(=केवल आत्माके प्रदेशोंकी)न्यारे न्यारे(=प्रति) निश्चितनेत्रआदिकइन्द्रियोंकेआकारकरिअवस्थितवृत्ति(अर्थात्तिष्ठनेकीदशा)

अभ्यन्तरा॥ निर्वृत्तिः॥ =सो अभ्यन्तर निर्वृत्ति है। अर्थात् उत्सेधअंगुलके असंख्यातवांभागप्रमाण विशुद्धआत्मप्रदेशोंका जो भिन्न भिन्न रूपसे नेत्र इन्द्रियकेमसूरकेआकार, कर्ण इन्द्रियके जवकी मध्यनालीके आकार सदृश, नासिका इन्द्रियके तिल पुष्प आकार समान, रसना इन्द्रियके अर्द्ध चन्द्रके आकारसम, स्पर्शन इन्द्रियके अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न आकारके समान, और इन सबका प्रमाण स्वरूप परिणत होना है वह अंतरंग निर्वृत्ति है॥

तेषु आत्मप्रदेशेषु इन्द्रियव्यपदेशभाक्षु =तिन आत्माके(विशुद्ध) प्रदेशनिमें इन्द्रियनामके दियेजानेपर वा धारनेपर

यः प्रतिनियत-संस्थानः नामकर्म-उदय-आपादित- =जो प्रतिनियत(=न्यारे न्यारे वा निश्चित)आकार सहित नामकर्मकेउदयजनित

अवस्थाविशेषः॥ पुद्गलप्रचयः सा॥ बाह्या॥ निर्वृत्तिः॥ =विशेष दशा वा अवस्थासहित पुद्गलके समूह सो बहिरंग निर्वृत्ति है। अर्थात् उन्हीं आत्माके विशुद्ध प्रदेशोंमें इन्द्रियोंके नामसे कहेजानेवाले भिन्नभिन्न आकारोंके धारक संस्थान नामकर्मकेउदयसे होनेवाले अवस्था विशेषसे युक्त जो पुद्गलपिंड है वह बाह्य-निर्वृत्ति है॥

येन निर्वृतेः॥ उपकारः क्रियते T तद्॥ =जिससे निर्वृत्तिका उपकार कियाजाता है वा सहायता कीजाती है वह

उपकरणम्॥ पूर्ववत्* तद्॥ अपि* द्विविधम्॥ =उपकरण है। पहलेकी भांति(अर्थात्जैसे निर्वृत्ति दो प्रकारहै)वहभीदोप्रकार है

तत्र* अभ्यन्तरम्॥ कृष्ण-शुक्ल-मण्डलम्॥ बाह्यम्॥ =तहां(नेत्रविषैं)अंतरंग(उपकरण)काला शुक्ल(वर्ण)मंडल है। बाह्य (उपकरण)

अक्षिपत्र-पक्ष्म- द्वय-आदि॥ एवम्* शेषेषु॥ इन्द्रियेषु॥ ज्ञेयम्॥ =बाफनी(=भावणी)वा बिफी(=अक्षिपत्र)और आँखके पलक (=अक्षि-पक्ष्मना) दो आदिक हैं। ऐसे शेष(स्पर्शन-घ्राण-रसना-श्रोत्र)इन्द्रियोंमें जानना चाहिये॥

भावेन्द्रियमुच्यते—

॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥

लम्भनं लब्धिः । का पुनरसौ? । ज्ञानावरणक्षयोपशमविशेषः ॥ यत्सन्निधानादात्मा द्रव्येन्द्रियनिर्वृतिंप्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मनः परिणाम उपयोगस्तदुभयं भावेन्द्रियमिन्द्रियफलम्

भावेन्द्रियम् १।१ उच्यते T	= भावइन्द्रिय कहीजाती है कि
	लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥ १८ ॥
सूत्रार्थः—लब्धि–उपयोगौ१।२ भाव–इन्द्रियम् १।१	=लब्धि और उपयोग (ये दो) भाव इन्द्रिय हैं
वृत्त्यनुवादः–लम्भनम्१।१ लब्धिः१।१ का१।१ पुनः*असौ१।१	=लाभ है(वही) लब्धि है ।(प्रश्न)फिर वह(लब्धि) क्या (=का) है
ज्ञानावरण–क्षयोपशम–विशेषः१।१	=(उत्तर)ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशमरूप व्यक्ति वा प्रकाश है (सोलब्धि)है । अर्थात्ज्ञानावरणीयकर्मकेविशेषक्षयोपशमसेआत्माकेजोविशुद्धतारूपीशक्तिहैसोलब्धिहै
यत्सन्निधानात्५।१ आत्मा१।१ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्तिम्२।१ प्रति*	=जिस(लब्धि)केनिकटहोकरिआत्माद्रव्येन्द्रियरूप निर्वृत्ति प्रति
व्याप्रियते तत्–निमित्तः१।१ आत्मनः६।१ परिणामःउपयोगः	=व्यापारकरताहै,प्रवर्तहै उस लब्धिनिमित्तकआत्माका(विषयप्रति)परिणमन उपयोगहै अर्थात् जो ज्ञेयके आकार परिणमनेरूप ज्ञानहो सो उपयोग है
तद्१।१ उभयम्१।१ भावेन्द्रियम्१।१ इन्द्रिय–फलम्१।१	=वह दोनों भाव इन्द्रिय हैं । इन्द्रियका फल वा कार्य जो

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संप्रदायोंमें एक है । इस १८ वां सूत्र और स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत्राणि उन्नीसवां सूत्रके मध्यमें श्वेताम्बरआम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र 'पृष्ठ ४४ में "उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा सूत्र अधिक है ॥ स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोगः इत्यर्थः । स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्द(इन्द्रियोंके विषयमें)मतिज्ञानका उपयोग होताहै । ऐसा अर्थ इस सूत्रका है । हमारे यहां इसको मूलसूत्र नहीं माना है । सभाष्य०के अनुवादकने यह टिप्पणी इस सूत्रमें दी है कि किसी किसीके मतमें यह मूलसूत्र नहीं है कोई कोई कहते हैं,यह मूल सूत्र हा हैभाष्यनहीं॥ (२)जैसे किसी जीवकी सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग जो चैतन्यका परिणमन है सो अन्यत्रहो,अन्य वस्तुओंमें लगरहा हो तोसुनतानहीं । और कोई जाननाचाहताहै और क्षयोपशम शक्ति नहीं है तो जान नहीं सकता इसलिये लब्धि और उपयोग जब दोनों ही मिलें तब ज्ञानकीसिद्धि होती है ॥

उपयोगः तस्य कथमिन्द्रियत्वम्? कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात्। यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घट इति ॥ स्वार्थस्य तत्र मुख्यत्वाच्च। इन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमिति यः स्वार्थः स उपयोगो मुख्यः। उपयोगलक्षणो जीव इति वचनात्। अत उपयोगस्येन्द्रियत्वं न्याय्यम्॥ उक्तानामिन्द्रियाणां संज्ञानुपूर्वीप्रतिपादनार्थमाह:—

उपयोगः तस्य कथम् इन्द्रियत्वम् =उपयोग है। तिस (उपयोग)के इन्द्रियपना कैसे है

कारणधर्मस्य कार्ये दर्शनात् =(उपयोगको इन्द्रियका कार्य होतेसंते) कार्यमें कारणधर्मके देखनेसे वा व्यवहारसे (उपयोगके इन्द्रियपनेका उपचार किया गया) है अर्थात् जो कारणका धर्म हो तिसको कार्य विषैं भी देखिये है

यथा घटाकारपरिणतं विज्ञानं घटः इति =जैसे घड़ाके आकार परिणम्याज्ञान घट ऐसा (कहा जावा) है

स्व-अर्थस्य तत्र मुख्यत्वात् च =और क्योंकि तहां स्वअर्थके प्रधानपना है अर्थात् कार्यभी लोकमें कारण मानागया है जिस प्रकार घटाकार परिणत ज्ञान घटसे जो समान होनेसे घटका कार्य है तथापि उस विज्ञानको घट कहदिया जाता है उसी प्रकार उपयोग यद्यपि इंद्रियोंसे जायमान होनेसे उनका फल है तथापि वह(उपयोग)इन्द्रिय कहाजासकता है इसलिये उपयोगको भावेन्द्रिय मानने में कोई आपत्ति नहीं

इन्द्रस्य लिङ्गम् इन्द्रियम् इति यः स्वार्थः =आत्मा(=इन्द्र)का लिंग इन्द्रिय है। ऐसा जो स्व-अर्थ है

सः उपयोगः मुख्यः उपयोगलक्षणः जीवः =सो उपयोग मुख्य है। उपयोग है लक्षण जिसका वह जीव है

इति वचनात् अतः उपयोगस्य इन्द्रियत्वम् =क्योंकि ऐसा वचन है॥ इसलिये उपयोगके इन्द्रियपना

न्याय्यम् उक्तानाम् इन्द्रियाणाम् सञ्ज्ञा- =यथार्थ वा ठीक है। कथित इन्द्रियोंके नाम (और उनका)

आनुपूर्वी(-अनुपूर्वी-)प्रतिपादनअर्थम् आह =क्रम(अनुपूर्वी वा आनुपूर्वी)कहने के लिये कहते हैं कि

॥ स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्याविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्ष्णा सुष्ठु पश्यामि, अनेन कर्णेन सुष्ठु श्रृणोमीति।ततःपारतन्त्र्यात्स्पर्शनादीनां करणत्वं। वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमा-

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९ ॥

=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि (एतानि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति) । (पंद्रहवां सूत्र अनुवृत्ति रूपमें इस सूत्र में आताहै)

सूत्रार्थः—स्पर्शन–रसन–घ्राण–चक्षुःश्रोत्राणि॥एतानि॥ =त्वचा(त्वक) जीभ,नाक(नासिका),नेत्र और कान ये

पञ्चेन्द्रियाणि॥ भवन्ति । =पांच इन्द्रियां हैं अर्थात् ज्ञानकरानेमें सहायक होनेसे इनको इन्द्रिय कहते हैं

वृत्त्यनुवादः—लोके॥इन्द्रियाणाम्॥पारतन्त्र्या–विवक्षा॥ =लोक वा संसारमें इन्द्रियोंके पराधीन विवक्षा वा अपेक्षा

दृश्यते।अनेन॥अक्ष्णा॥सुष्ठु॰पश्यामि । =देखी जाती है।इसनेत्रसे भलेप्रकार देखताहूं॥(अक्ष्णा॥'अक्षि'शब्दका है)

अनेन॥कर्णेन॥सुष्ठु॰श्रृणोमि।इति॰ततः॰पारतन्त्र्यात्॥ =इस कानसे नीके सुनताहूं । तहां पराधीनतासे

स्पर्शनादीनां॥ करणत्वम्॥ =त्वचा(इन्द्रिय)आदिके करणपना है अर्थात् लोकमें इन्द्रियोंके स्वकार्य करनेमें परतंत्रता अनुभवमें आती है इसलिये

स्पर्शन आदि करणसाधन हैं क्योंकि जिस समय इन्द्रियोंकी परतंत्ररूपसे विवक्षाकी जाती है और आत्माको स्यातंत्र्य मानाजाता है उस समय'मैं इस आंखद्वारा भले प्रकार देखता हूं'।'मैं इस कान द्वारा भले प्रकार सुनताहूं'। 'मैं इस नासिका द्वारा भले प्रकार सूंघताहूं'।'मैं इस जीभ द्वारा भले प्रकार चखताहूं'। मैं'इस हाथ द्वारा वा शरीर के किसी अन्य अवयव द्वारा भले प्रकार स्पर्शनकरताहूं'ऐसा व्यवहार होता है । यदि इन्द्रियोंको करणसाधन न माना जावै तो संसारमें व्यवहार नहीं होसकता ॥ (आचार्य करण साधनको नीचे विशेषरूपसे समझाते हैं)

वीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशम– =वीर्यान्तरायनामा मतिज्ञानावरणी कर्मका क्षयोपशम और

(१) श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में यह सूत्र शब्दशःवही है जो हमारे यहां है अर्थभी एक है परंतु सभाष्य॰में इस सूत्रकी संख्या बीसवींहै क्योंकि अठारहवां सूत्रकेपीछे सभाष्य॰में"उपयोगः स्पर्शादिषु" ऐसा उन्नीसवां सूत्रहै । और हमारे यहां ऐसा उन्नीसवां सूत्र नहीं है ॥

(अ)ङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भात् आत्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम्।रस्यतेऽनेनेति रसनम्। घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम्। चक्षेऽनेकार्थत्वाद्दर्शनार्थविवक्षायां चष्टे अर्थान्पश्यत्यनेनेति चक्षुः। श्रूयतेऽनेनेति श्रोत्रम्॥स्वातन्त्र्यविवक्षायां च दृश्यते।इदं मे अक्षि सुष्ठु पश्यति। अयं मे कर्णः सुष्ठु शृणोति। ततःस्पर्शनादीनां कर्तरि निष्पत्तिः। स्पृशतीति स्पर्शनम्। रसतीति रसनम्। जिघ्रतीति घ्राणम्। चष्टे इति चक्षुः।

अङ्गोपाङ्गनामलाभअवष्टम्भात् आत्मना	=अंगोपांग नामा नामकर्मके (उदयके) लाभके आलम्बनकरि आत्मासे
स्पृश्यते। अनेन इति*स्पर्शनम्॥	=जिस (इन्द्रिय)करि स्पर्शाजाय है ऐसी स्पर्शन (इन्द्रिय) है।
रस्यते। अनेन॥इति*रसनम्॥घ्रायते। अनेन॥	=जिसद्वारा रसलिया जायहै ऐसी रसना(इन्द्रिय)है। जिससे सूंघाजाय है
इति*घ्राणम्॥चष्टे।	=ऐसी घ्राण(इन्द्रिय)है। चक्ष्(धातु)के(कहना-छोड़ना-समझाना-देखनाइत्यादि)
अनेक-अर्थत्वात्॥दर्शन-अर्थ-विवक्षायाम्॥	=बहुत अर्थहोनेसे(इससूत्रमें) अवलोकन अर्थकी अपेक्षामें (=आया है) कि
चष्टे। अर्थान्॥पश्यति। अनेन॥इति*चक्षुः॥	=पदार्थोंको देखता है (=चष्टे)। जिसकरि(=आत्मा)देखता है ऐसा चक्षुः है
श्रूयते। अनेन॥ इति*श्रोत्रम्॥	=जिसकरि(आत्मा)सुनता है ऐसा श्रोत्र है॥ (इन्द्रियोंकीकरणसाधनव्युतपत्तिहुई)
च*स्वातन्त्र्यविवक्षायाम्॥दृश्यते। इदं॥मे॥ अक्षि॥	=और(=च)(इन्द्रियोंकी)स्वतन्त्रतारूप अपेक्षामें देखा जाताहै कि यह मेरी आंख
सुष्ठु*पश्यति। अयं॥मे॥कर्णः॥सुष्ठु*शृणोति।	=भले प्रकार देखती है। यह मेरा कान भले प्रकार सुनता है।
ततः*स्पर्शनादीनां॥कर्तरि॥निष्पत्तिः॥	=तहां त्वचा आदिक(इन्द्रियां)कीकर्ताप्रयोगमें सिद्धिहै(इन्द्रियें कर्तृ साधनभी हैंजैसे)
स्पृशति। इति*स्पर्शनम्॥रसति। इति*रसनम्॥	=छूता है-स्पर्शन करता है ऐसा स्पर्शन है, चखता है ऐसा रसन है।
जिघ्रति। इति*घ्राणम्॥चष्टे। इति*चक्षुः॥	=सूंघता है ऐसी घ्राण वा नासिका है देखता है ऐसा नेत्र है

(१) 'चक्ष्' अदादि द्वितीयगणका आत्मने पदी (यहां) सकर्मक धातु है। इसमें क्रियाके प्रत्यय विना किसी विकरणके लगाये जाते हैं॥ 'चक्ष्'=चक्ष् 'क्' 'स्कोःसंयोगाद्योरन्ते च(झलि)' अष्टाध्यायी ८-२-२९ वां सूत्र से गिरजाता है और 'चष्' में 'ते' अन्य पुरुष एकवचन आत्मनेपदी वर्तमान कालकी क्रियाका प्रत्यय लगानेसे =चष्+ते हुआ। 'ते' का '(स्तोः) ष्टुना ष्टुः' ८।४।४१ वां सूत्रसे टे में परिवर्तनहोकर 'चष्टे' बनगया॥

शृणोतीति श्रोत्रम्। एषां निर्देशक्रमः एकैकवृद्धिक्रमप्रज्ञापनार्थः। तेषामिन्द्रियाणां विषयप्रदर्शनार्थमाह

शृणोति । इति॰श्रोत्रम् १॥ =सुनता है ऐसा कान है, कर्ण है। 'श्रणोति' अशुद्ध है (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ २२३)

भावार्थ संसारमें इन्द्रियोंकी स्वकार्यके प्रति स्वतन्त्रता रूपसेभी विवक्षा है अतः वे कर्तृ साधन भी हैं क्योंकि यह नाक मेरी भलेप्रकार पदार्थोंको सूंघतीहै, यह जीभ मेरी भलेप्रकार चखतीहै इत्यादि ऐसेही अन्य इन्द्रियों के संबंध में व्यवहार होता है। इन्द्रियावरणकर्मके क्षयोपशमसे एवं अंगोपांग नामक नामकर्मके बलसे जो स्वयं पदार्थोंको स्पर्श करै वह स्पर्शन है, स्वयं रसोंको चखै वह रसना, स्वयं पदार्थोंको सूंघे वह घ्राण, स्वयं पदार्थोंको देखे वह चक्षु और स्वयं शब्दोंको सुने वह श्रोत्र है। ऐसे पांचों इन्द्रियोंकी यह कर्तृ साधन व्युत्पत्तिहै

एषाम् ६। निर्देशक्रमः १। =इन (इन्द्रियों) का (इस सूत्रमें) कथन वा उपदेशका क्रम (एक इन्द्रियादिक जीवोंके)

एक-एक-वृद्धिक्रम-प्रज्ञापन- अर्थः १। =एक एक (इन्द्रियके) बढ़नेके अनुक्रम वा आनुपूर्वी जनावने के लिये है।

भावार्थः-एक इन्द्रिय जीवकें एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन प्रथम कही क्योंकि इसी अध्यायके बाईसवां सूत्रमें कहा है कि 'वनस्पत्यंतानामेकम्' अर्थात् पृथिवीको लेकर वनस्पतिपर्यंत समस्त जीवोंकें एकही स्पर्शन इन्द्रिय होती है। समस्त संसारी जीवों कें स्पर्शन इन्द्रिय होती है इससे सूत्रमें स्पर्शन पहिले कहा गया, दो इन्द्रिय जीवकें केवल रसना और होती है इससे सूत्रमें स्पर्शनके लगताई रसना कही। इसी प्रकार तीन इन्द्रियवाले जीवकें स्पर्शन, रसन, घ्राण इसी क्रमसे होयं अन्य एर फेर नहीं होता है इसकारण सूत्रमें रसनके अनन्तर घ्राण कही, चौ इन्द्रिय जीवकें स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः इन चारही इन्द्रियोंका ग्रहण होय अन्य नहीं होय इस हेतुसे सूत्रमें घ्राण के निकटही चक्षुः कही। श्रोत्र इन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवकें होती है अन्य किसी जीवकें नहीं होती और श्रोत्र इन्द्रिय उसी जीवकें होगी जिसकें स्पर्शन रसन घ्राण और चक्षु ये चारो इन्द्रिय पहिलेसे ही विद्यमानहैं इससे सूत्रमें चक्षुके लगताही श्रोत्र इन्द्रिय कही इस वृद्धिक्रमको जनावनेके लिये सूत्रमें स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र ऐसा क्रम है॥

तेषाम् ६।।। इन्द्रियाणां ६।।। विषय-प्रदर्शन-अर्थम् १।।। आह=उन (स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्र) इन्द्रियोंके विषय दिखानेकेलियेकहतेहैं कि

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥ २० ॥

द्रव्यपर्याययोःप्राधान्यविवक्षायां कर्मभावसाधनत्वं स्पर्शादिशब्दानां वेदितव्यम् ॥ द्रव्यप्राधान्यविवक्षायां कर्मनिर्देशः । स्पृश्यत इति स्पर्शः । रस्यत इति रसः । गन्ध्यत इति गन्धः । वर्ण्यत इति वर्णः । शब्द्यत इति शब्द ॥ पर्यायप्राधान्यविवक्षायां

सूत्रम्— स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः(१) ॥ २० ॥

=स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाःतद्-अर्थाः(यथाक्रमम्)(२) ॥२०॥

सूत्रार्थः—स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण–शब्दाः१ यथाक्रमम्*=स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द (ये पांच) क्रमसे

तद्–अर्थाः१ =उन(पांचो इन्द्रियों)के विषय हैं अर्थात् इनमें स्पर्शन इन्द्रियका विषय स्पर्श वा छूना है, रसना इन्द्रियका विषय स्वाद लेना है, घ्राणइन्द्रियका विषय सुगंध और दुर्गंध सूंघना है । नेत्र इन्द्रियका विषय वर्ण अर्थात् रंग है और श्रोत्र इन्द्रियका विषय शब्दोंका सुनना है ॥

वृत्त्यनुवादः—द्रव्यपर्याययोः६।प्रधान्यविवक्षायाम्७।कर्म– =द्रव्य और पर्यायकी मुख्य अपेक्षामें कर्म (साधनपना और)

भाव–साधनत्वम्१।स्पर्शादिशब्दानाम्६।वेदितव्यम्१। =भाव साधनपना(यथासंख्य)स्पर्शादिक शब्दोंके जानना चाहिये ।

द्रव्य–प्राधान्यविवक्षायाम्७।कर्म–निर्देशः१।स्पृश्यतेT =द्रव्यप्रधान विवक्षाविषैं कर्मणि प्रयोग है । जो स्पर्श्या जाता है

इति*स्पर्शः१। रस्यते T इति*रसः१। =ऐसा स्पर्श है । जो आस्वादा जाता है ऐसा रस है

गन्ध्यते T इति*गन्धः१।वर्ण्यते T इति*वर्णः१। =जो सूंघाजाता है ऐसागंध है । जो देखा जाता है ऐसा वर्ण है

शब्द्यते T इति*शब्दः१।पर्याय–प्राधान्यविवक्षायाम्७। =जो सुनाजाता है ऐसा शब्द है । पर्यायकी मुख्य अपेक्षासे

---

(१)''तदर्थाः''वाक्यके स्थानमें श्वेताम्बरआम्नायके'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में'तेषामर्थाः''वाक्य आया है । इससे अर्थमें कुछ भेद नहीं पड़ता क्योंकि'तदर्थाः'का तात्पर्य'तिनकेविषय' हैं, ऐसा है । यही अर्थ ''तेषाम् अर्थाः'' वाक्यका है । अर्थात् क्रमसे तिन पांच इन्द्रियोंके विषय हैं ॥

(२) इस सूत्रमें'यथाक्रमम्' शब्दकी अनुवृत्ति इसी अध्यायके द्वितीय अथवा दूसरे सूत्रसे लीगई है ॥

भावनिर्देशः स्पर्शनं स्पर्शः रसनं रसः। गन्धनं गन्धः। वर्णनं वर्णः शब्दनं शब्दः एषां क्रम इन्द्रियक्रमेणैव व्याख्यातः अत्राह यत्तावन्मनोऽनवस्थानादिन्द्रियं न भवतीति प्रत्याख्यातं तत्किमुपयोगस्योपकारी उत नेति?तदप्युपकार्येव तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्यभावात् किमस्यैषां सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

भावनिर्देशः ३। =भावे प्रयोग है अर्थात् व्याकरणमें कर्मवाच्य,कर्तृवाच्य और भाववाच्य तीनप्रकारके धातुओंके प्रयोग है। सूत्र उन्नीसवांमें बहुत विशेषरूपसे कर्मवचनका अनुवाद पृष्ठ६१ के पंक्ति ६से १८ तक और पृष्ठ ६२ के पंक्ति ७ से १२ तक और कर्तृवचनका पृष्ठ६२ के पंक्ति १४से १८तक और पृष्ठ६३ के पंक्ति ३ से ८ तक उल्लेख किया है॥ भावसाधन,भाववचन, अथवा भावप्रयोग अर्थात् क्रियाको इसप्रकारसे वाक्यमें लाना कि जिससे उसकी भावरूपी अवस्था वा दशा प्रगट होजावै, इस पृष्ठ ६५ की पंक्ति ११,१२ नीचे में कहते हैं कि

स्पर्शनं १॥स्पर्शः १रसनं १॥रसः १ =स्पर्शना वा छूना सो स्पर्श है। रसना सो रस है

गन्धनं१॥गन्धः१वर्णनं१॥वर्णः१शब्दनम्१॥शब्दः१॥ =सूंघना सो गंध है। देखना सो वर्ण है। शब्दहोना सो शब्द है

एषाम्६क्रमः१इन्द्रियक्रमेण३ एव*व्याख्यातः१ =इन(विषयों)का अनुक्रम इन्द्रियोंके क्रमकरिही कहा गया है

अत्र*आह। यत्१॥तावत्*मनोऽवस्थानात्५इन्द्रियं१॥ =यहां पूंछता है कि जो मन तो (=तावत्) अनवस्थित होनेसे इन्द्रिय

न*भवति। =नहीं है अर्थात् मनके अवस्थान वा स्थिति नहीं है इससे इन्द्रिय नहीं है

इतिप्रत्याख्यातं१॥तत्१॥किम्१॥उपयोगस्य६उपकारी१=ऐसे(मनके इन्द्रियपना) निषेध्या है। क्या (वह मन) उपयोगका उपकारी है

उत*न*इति*तत्१॥अपि*उपकारी१एव*तेन३॥विना* =वानहीं।(जोकहोकि)तबभी(=तदपि)(वहमन)उपकारीहीहैक्योंकितिस(मन)विना

इन्द्रियाणां६॥विषयेषु७स्वप्रयोजनवृत्ति—अभावात्५ =इन्द्रियोंके विषयोंमें अपने अपने प्रयोजनरूप प्रवृत्तिका अभाव है

किम्*अस्य६॥एषाम्६॥सहकारित्वमात्रम्१॥ =क्या इन(इन्द्रियों)के इस(मन)का सहकारिपन मात्र

एव*प्रयोजनम्१॥उत*अन्यत्*अपि*अतः*आह। =ही प्रयोजन है, अथवा और भी (कुछ प्रयोजन) है॥ इसलिये कहते हैं भावार्थ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंके समान मनका कोई निश्चित स्थाननहीं इसलियेवह इंद्रिय नहीं कहा जासकता इसरूपसे ऊपरके लेखमें मनके इन्द्रियपनेका निषेध किया गया है

॥ श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

श्रुतज्ञानविषयोऽर्थः श्रुतम्। स विषयोऽनिन्द्रियस्य। परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमस्यात्मनः श्रुतस्यार्थे

यहां पर यह शंका उठती है कि यह अनिन्द्रिय स्वरूप मन ज्ञान दर्शन स्वरूप उपयोगका उपकारक है अथवा नहीं ? यदि यह कहा जायगा कि मनका सहारा बिना लिये इन्द्रियोंकी अपने २ विषयमें प्रयोजनीय प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती इसलिये मन उपयोगमें अवश्यही उपकारी है तब यहां यह कहना है कि अपने २ विषयोंमें इन्द्रियोंकी सहायता मात्र करना ही मनका कार्य है वा और कुछभी उसका कार्य है? उत्तरमें(इन्द्रियोंके उपकारके अतिरिक्त अन्य भी मनका कार्य है) मनके अन्य कार्य को कहते है कि—

सूत्रम्[1]—श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ =श्रुतमनिन्द्रियस्य (अर्थः[2] भवति)

सूत्रार्थः—श्रुतम्[1]॥ अनिन्द्रियस्य[6]॥ अर्थः[1] भवति । =श्रुतज्ञान (=श्रुतम्) मनका विषय है अर्थात् श्रुतज्ञानका विषय पदार्थ हैं वा श्रुतज्ञान गोचर पदार्थ हैं सो मनका (=अनिन्द्रियस्य) विषय (अर्थ) हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—श्रुतज्ञानविषयः[1] अर्थः[1] श्रुतम्[1]॥ =श्रुतज्ञानका विषयभूत जो पदार्थ (=अर्थ) सो श्रुत है अर्थात् श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ हैं वह श्रुत है। (यहां श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची हैं)

सः[1] विषयः[1] अनिन्द्रियस्य[6]॥ परिप्राप्तश्रुतज्ञान- =सो श्रुत अनिन्द्रिय वा मनका विषय है(क्योंकि) प्राप्तहुआ है श्रुतज्ञान आवरण-क्षयोपशमस्य[6] आत्मनः[6] श्रुतस्य[6]॥अर्थे[7] =आवरण कर्मका क्षयोपशम जिसके ऐसा आत्माके श्रवनकिये पदार्थ(केविचारने)में

---

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं पर 'मनिन्द्रियस्य' है कहीं पर मनिन्द्रियस्य पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं। सूत्रमें जो श्रुत शब्द है उससे श्रुत ज्ञानके विषय भूत पदार्थकाज्ञानहै। उसको मन विषय करता है क्योंकि जिसने श्रुत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम प्राप्त कर लिया है ऐसे आत्माके मनके आश्रयसे जायमान ज्ञानकी श्रुतज्ञानके विषयभूत पदार्थमें प्रवृत्ति होती है अथवा श्रुतशब्दका अर्थ श्रुतज्ञान है यह मनसे होता है इसलिये मनपूर्वक होनेसे यह श्रुत ज्ञानही मनका कार्य है ऐसे इन्द्रियोंके व्यापारकी अपेक्षा नकर श्रुतज्ञानका उत्पन्न करना मनका स्वतंत्र प्रयोजन या कार्य है अर्थात् श्रुतज्ञानमन पूर्वकही होता है॥

(२)इस सूत्रमें 'अर्थ' शब्दका अनुवृत्ति इस अध्यायके २०वींसर्वा सूत्र से आती है॥ श्रुत, अनिन्द्रिय, नोइन्द्रिय एकार्थ वाची शब्द हैं॥

ऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्तेः॥ अथवा श्रुतज्ञानं श्रुतं तदनिन्द्रियस्यार्थः प्रयोजनमिति यावत्॥ स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य ॥ उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्वनिर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पर्शनं तस्य तावत्स्वामित्वावधारणार्थमाह—

॥ वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अनिन्द्रिय-आलम्बन-ज्ञान-प्रवृत्तेः ६।१ =मनके आलम्बन स्वरूप ज्ञानकी प्रवृत्ति है भावार्थ ऐसा है कि कर्ण इन्द्रियसे श्रवणमात्र किया सो तो मतिज्ञान है परंतु तिस पूर्वक पदार्थका विचार सो श्रुतज्ञान है

अथवा श्रुतज्ञानम् १।१ श्रुतम् १।१ तद् १।१ यावत् * =अथवा श्रुतज्ञान श्रुत है वह(श्रुतज्ञान) निश्चय(=यावत्) मनका अर्थ

अनिन्द्रियस्य ६।१ अर्थः १।१ प्रयोजनम् १।१ इति * इदम् १।१ =या प्रयोजन है यह मनका (=अनिन्द्रियस्य) प्रयोजन स्वाधीन ही साध्यरूप है

अनिन्द्रियस्य ६।१ प्रयोजनम् १।१ स्वातन्त्र्यसाध्यम् १।१ =अर्थात् यह मनका प्रयोजन किसीभी अन्य इन्द्रियके आधीन नहीं है स्वतंत्र है।

उक्तानाम् ६।३ इन्द्रियाणाम् ६।३ प्रतिनियतविषयाणाम् ६।३ =कथित इन्द्रियोंके नियमित (अर्थात् न्यारे न्यारे) विषयोंका

स्वामित्व-निर्देशे ७।१ कर्तव्ये ७।१ यत् १।१ प्रथमम् १।१ =स्वामीपना वा अधिपतिपना निर्देशकरनेमें जो पहिले

गृहीतम् १।१ स्पर्शनम् १।१ तस्य ६।१ तावत् * =ग्रहणकिया स्पर्शन इन्द्रिय तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का प्रथम (=तावत्)

स्वामित्व-अवधारण-अर्थम् १।१ आह (=स्वामीपना-अधिपतिपनाके नियमके अर्थ कहते हैं कि

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥ =वनस्पत्यन्तानामेकम् (इन्द्रिय भवति)

सूत्रार्थः-वनस्पति-अन्तानाम् ६।३ =(तेरहवां सूत्रमें) वनस्पति है अन्त में जिन (जीवों)के उनके, अर्थात्
=पृथिवी कायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिको कै

एकम् १।१ इन्द्रियम् १।१ भवति T =पहिली(स्पर्शन)इन्द्रिय है। ये पांच स्थावर जीव हैं एकमात्र स्पर्शन इन्द्रियके धारक

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इस सूत्रका पाठ' वाय्वन्तानामेकम्''= वायु अन्तानाम्-एकम् ॥ २३ ॥ सभाष्य०का १३ वां १४ वां सूत्र 'पृथिव्यब्वनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ तेजो वायु द्वीन्द्रियादयश्च त्रसाः' ॥ १४ ॥ तेरहवें चौदहवें सूत्रको २३ वां सूत्रके साथ मिलाने से २३ वां सूत्रका अर्थ यह होता है कि वायु है अन्तमें जिनके (अर्थात् पृथिवीकायिक-अप् वा जलकायिक-वनस्पतिकायिक-तेजोकायिक वा अग्निकायिक-वायुकायिकके) प्रथम स्पर्शन इन्द्रिय है। ऊपरके अर्थ से प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रके पाठ भेद होनेपर भी अर्थ एक है ॥ सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर ज्ञातहोता है कि श्वेताम्बर आम्नायमें 'पृथिवीकायिक-अप्कायिक-वनस्पतिकायिक इनतीनको थावर मानकर और अग्निकायिक (=तेजोकायिक) वायुकायिक इन दोको त्रस मानकर पांचोंके स्पर्शन इन्द्रिय मानी है। हमारे यहां पांचोंको थावर मानकर स्पर्शन इन्द्रिय मानी है॥

एकं प्रथममित्यर्थः । किं तत् । स्पर्शनम् । तत्केषाम् । पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां वेदितव्यम् ॥ तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते ॥ वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शेषेन्द्रियसर्वघातिस्पर्धकोदये च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तितायां च सत्यां स्पर्शनमेकमिन्द्रियमाविर्भवति ॥ इतरेषामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनार्थमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥

वृत्त्यनुवादः—एकम् प्रथमम् इति* अथः किम् तत्=(सूत्रमें)एक शब्दका) पहिला,प्रथम ऐसा अभिप्राय है । वह(पहिला) क्या है ?
स्पर्शनम् तत् केषाम् पृथिवी—आदीनाम् =स्पर्शन अर्थात् त्वचा(इन्द्रिय)है । वह(स्पर्शन इन्द्रिय)किनके है । पृथिवी आदिक
वनस्पति—अन्तानाम् वेदितव्यम् तस्य उत्पत्ति- =वनस्पति पर्यंतनिके जानना चाहिये । तिस (स्पर्शन इन्द्रिय) का उत्पत्तिका
कारणम् उच्यते । वीर्यान्तराय—स्पर्शनेन्द्रिय- =कारण कहाजाता है । वीर्यान्तराय और स्पर्शन इन्द्रिय
आवरणक्षयोपशमे सति च* शेष- =आवरणनामा(ज्ञानावरण)कर्मके क्षयोपशम होनेपर और रसना आदिअवशेष
इन्द्रिय-सर्वघातिस्पर्धक-(१)उदये =इन्द्रिय संबंधी(ज्ञानावरणकर्मका)सर्वघाति स्पर्द्धकोंका उदय (होने) पर
शरीर(२)नामलाभ-अवष्टम्भे च* =शरीर नामा नामकर्मके उदयके लाभका अवलम्बन(होने)पर और(=च)
एकेन्द्रियजातिनाम-उदय-वशवर्तितायाम् =एकेन्द्रिय जाति नामक नामकर्मके उदयके वशवर्तिपना वा वशीभूतपना
सत्याम् स्पर्शनम् एकम् इन्द्रियम् आविर्भवति । =होनेपर(=सत्याम्)(जीवके) एक स्पर्शन इंद्रिय प्रगट होती है ॥
इतरेषाम् इन्द्रियाणाम् स्वामित्व-प्रदर्शन-अर्थम् आह=अन्य इन्द्रियोंके स्वामीपना दिखावनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्(३)-कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।('स्पर्शनइन्द्रिय'कीअनुवृत्ति१९, १५सूत्रोंसेहै)

सूत्रार्थः—कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनाम् =लट,गिंडार(=कृमि)आदिकके,चिउंटीआदिकके,भौंराआदिकके,मनुष्यआदिकोंके

(१) "उदये" शब्दके आगे ऐसा जान पड़ता है कि 'सति' वाक्यशेष है क्योंकि इससे 'वीर्यान्तराय-स्पर्शनेन्द्रिय-आवरणक्षयोपशमसति" वाक्यका मिलानकरो ॥ (२) 'शरीरनामलाभअवष्टम्भे' वाक्यके स्थानमें राजवार्तिक में 'शरीरांगोपांगलाभावष्टम्भे' पाठ है इससेपं०पन्नालालजीने अर शरीर अंगोपांग नामा नामकर्मका लाभकी प्राप्तिनेहोता संता ऐसाअनुवाद किया है । संस्थाके अनुवादकोंने "शरीर और अंगोपांगनामकर्मके लाभ रहनेपर" ऐसा अनुवाद किया है ॥ (३) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है ॥

एकैकमिति वीप्सायां द्वित्वम् । एकैकेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि ॥ कृमिमादिं कृत्वा, स्पर्शनाधिकारात् स्पर्शनमादिं कृत्वा एकैकवृद्धानीत्यभिसम्बन्धः क्रियते ॥ आदिशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पर्शनं रसनाधिकम् । पिपीलिकादीनां स्पर्शनरसने घ्राणाधिके ।

एक-एकम् ॥ वृद्धानि ॥ =(स्पर्शन इन्द्रिय पश्चात्) एक एक(इन्द्रिय)बढ़ती है अर्थात् लट इत्यादिकोंके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय हैं । चिउटी इत्यादिकोंके स्पर्शन,रसन, घ्राण ये तीन इन्द्रियें हैं भौंरा,मक्षिका,टीडी,इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः ये चार इन्द्रियें हैं और , मनुष्य,मत्स्य गौ, सर्प इत्यादिकोंके स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्र ये पांचों ही इन्द्रियां हैं

वृत्त्यनुवादः—एकैकम् ॥ इति*वीप्सायाम् ॥ द्वित्वम् ॥ =एक-एक ऐसा वारवारकेअर्थमें (=वीप्सायाम्) दो वार (सूत्रमें) है

एक-एकेन ॥ वृद्धानि ॥ =एक एक(क्रमानुसार दो इन्द्रियसे पांच इन्द्रियतक)बढ़तीहैं वा अधिक होती जातीहैं

एकैकवृद्धानि ॥ स्पर्शन-अधिकारात् =सो "एकैकवृद्धानि" है ।(बाईसवांसूत्रमें) स्पर्शनइन्द्रियका प्रकरणहोनेसे वा विषयहोनेसे

कृमिम् आदिम् कृत्वा ÷ स्पर्शनम् ॥ आदिम् ॥ कृत्वा=(इससूत्रमें) कृमिको आदिकर और (इन्द्रियनिमें)स्पर्शन को आदिकर (क्रमसे)

एक-एक-वृद्धानि ॥ इति*अभिसम्बन्धः क्रियते । =एक एक (इन्द्रिय) बढ़ती है । इसप्रकार सम्बन्ध (इस सूत्रमें) किया है

आदिशब्दः प्रत्येकम्*परिसमाप्यते । =आदिशब्द(कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्य)प्रत्येकको लगाया गया है वा जोड़ागयाहै

इस समस्त उपर्युक्तका सरांश यह है'कि वनस्पत्यन्तानामेकम्'सूत्रसे स्पर्शन(=एकम्)कीअनुवृत्ति इस सूत्रमें लेकर इन्द्रियोंकी अपेक्षासे स्पर्शन इन्द्रियको प्रथम ग्रहणकरि पश्चात्'स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्राणि' इस सूत्रसे क्रमानुसार एक एक इन्द्रियकी वृद्धि रसना से श्रोत्र पर्यंत प्रत्येक कृमिआदिकके, प्रत्येक पिपिलिका आदिकके, प्रत्येक भ्रमर आदिकके और प्रत्येक मनुष्य आदिकके यथासंख्य होतीजाती है जैसाकि वृत्तिमें निम्नलिखित उदाहरणों से प्रगट है ॥

कृमिआदीनाम् ॥ स्पर्शनम् ॥ रसना(रसन)अधिकम् ॥ =कृमि आदिकें रसनाकरि अधिक स्पर्शन इन्द्रियहै।अर्थात्कृमिआदिकें स्पर्शन-रसन है

पिपीलिका-आदीनाम् घ्राण अधिके ॥ स्पर्शन-रसने ॥ =चिउटीआदिकोंकेंनासिकाकरि,अधिकत्वचा,रसनाहै।अर्थात्त्वचा,रसन,औरघ्राणहैं

भ्रमरादीनां स्पर्शनरसनघ्राणानि चक्षुरधिकानि । मनुष्यादीनां तान्येव श्रोत्राधिकानीति यथासंख्येनाभिसम्बन्धो व्याख्यातः ॥ तेषां निष्पत्तिः स्पर्शनोत्पत्त्या व्याख्याता उत्तरोत्तर-सर्वघातिस्पर्धकोदयेन ॥ एवमेतेषु संसारिषु द्विभेदेषु

भ्रमर-आदीनाम् ६/३ चक्षुः अधिकानि १/३ स्पर्शन-रसन-घ्राणानि १/३ =भौंरा आदिकोंके नेत्रकरि अधिक त्वचा-जीभ और नासिका हैं अर्थात् स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षुः हैं

मनुष्यादीनाम् ६/३ श्रोत्र-अधिकानि १/३ तानि १/३ एव* इति* =मनुष्यादिकोंके श्रोत्रकरि अधिक वे ही (स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु) हैं।

यथासंख्येन ३/१ अभिसम्बन्धः १/१ व्याख्यातः १/१ =ऐसे क्रमानुसार संबन्ध वर्णित हुआ

तेषाम् ६/३ निष्पत्तिः १/१ स्पर्शन-उत्पत्त्या ३/१ व्याख्याता १/१ =तिन (रसनादिक इन्द्रियों) की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियकी उत्पत्तिके सदृश (कर्मोंके निमित्तसे) कही गई है।

उत्तरोत्तर— =(स्पर्शन, इन्द्रियसे) आगे आगे (जिन जीवोंकै जो जो इन्द्रिय नहीं हैं तिनजीवोंके उन उन इन्द्रियावरणकर्मके)

सर्वघातिस्पर्द्धक-उदये ७/१ न* =सर्वघाति स्पर्द्धकोंके उदय होनेपर (विवक्षित इन्द्रिय) नहीं है अर्थात् रसना-घ्राण-चक्षुः—श्रोत्र इन्द्रियों की उत्पत्ति स्पर्शन इन्द्रियके समान है और

"तहां आगै आगै जे इन्द्रिय जिनकै नाहीं, तिनकै तिनि इन्द्रियावरण कर्मका सर्वघाति स्पर्द्धकनिका उदय जानि लैना" वच० २६५

( ) वीर्यांतराय और रसनेन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम, घ्राणादि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं द्वींद्रिय जाति नामकर्मके उदय रहनेपर रसना इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और घ्राणेंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम चक्षुआदि इन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अंगोपांग नामा नामकर्मका लाभ रहने पर एवं त्रींद्रिय जाति नामकर्मके उदय रहने पर घ्राण इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

( ) वीर्यांतराय और चक्षुः इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम श्रोत्रेन्द्रिय संबंधी सर्वघातिया स्पर्द्धकोंका उदय, शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर एवं चतुरिंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहनेपर चक्षुःइन्द्रियकी उत्पत्ति होती है

( ) वीर्यांतराय और श्रोत्रेंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्मका लाभ रहनेपर और पचेंद्रिय जाति नामक नामकर्मके उदय रहने पर श्रोत्र इन्द्रियकी उत्पत्ति होती है ॥

एवम्* एतेषु ७/३ संसारिषु ७/३ द्वि-भेदेषु ७/३ =इस प्रकार से संसारी जीव दो भेद (संसारिणस्त्रसस्थावराः) में

इन्द्रियभेदात्पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्यानुक्तस्य प्रतिपादनार्थमाह—

॥ सञ्ज्ञिनःसमनस्काः ॥ २४ ॥

मनो व्याख्यातम् । सह तेन ये वर्तन्ते ते समनस्काः । सञ्ज्ञिन इत्युच्यन्ते । पारिशेष्यादितरे संसारिणः प्राणिनोऽसञ्ज्ञिन इति सिद्धम् ॥ ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गतार्थत्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम्। यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा। सञ्ज्ञाऽपि सैवेति ॥ नैतद्युक्तम्। सञ्ज्ञाशब्दार्थव्यभिचारात् ।

इन्द्रिय–भेदात् पंचविधेषु ये पञ्चेन्द्रियाः =(और) इन्द्रिय भेदसे पांच भेदों (२२, २३ सूत्र) में हैं ॥ ये पंचेन्द्रियजीव
तद्–भेदस्य अनुक्तस्य प्रतिपादन–अर्थम् आह =तिनके (=तद्) अकथित भेद के कहने के लिये उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ (दोनों आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है)

सूत्रार्थः–संज्ञिनः समनस्काः =जो जीव मनकरि सहित हैं(=समनस्काः)वेसंज्ञी हैं,सैंनी हैं अर्थात् जिन्हें अपने हित अहितका वा गुण दोषादिका विचार हो तथा शिक्षा क्रिया आलापके ग्रहण करनेरूप संज्ञा हो उनको संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं ॥

टत्यनुवादः–मनः व्याख्यातम् सह*तेन ये =मन (इसीअध्यायके११वांसूत्रमें) वर्णन किया गया है । तिस(मन) सहित, जो
वर्तन्ते ते समनस्काः सञ्ज्ञिनः इति*उच्यन्ते =प्रवर्तते हैं वे समनस्क हैं । सैनी इसप्रकार कहेगये हैं
पारिशेष्यात् इतरे =इन(मनसहित सैनी जीवों) से अवशेष अर्थात् संज्ञी समनस्कको छोड़कर अन्यशेष
संसारिणः प्राणिनः असंज्ञिनः इति*सिद्धम् ॥ =संसारीजीव असैनी हैं ऐसा सिद्ध हुआ
ननु*च*सञ्ज्ञिनः इति*अनेन एव*गत-अर्थत्वात् =बहुरि प्रश्न संज्ञी (सैनी) इस (शब्द) द्वाराही (सूत्रमें) अर्थ प्राप्तहोने (केहेतु) से
समनस्काः इति*विशेषणम् अनर्थकम् =‘समनस्काः’(संज्ञीका) ऐसा विशेषण निष्प्रयोजन है
यतः*मनस्‌व्यापारः हितप्राप्तिपरीक्षा =क्योंकि(यतः) मनका व्यापार हितके प्राप्तिकी परीक्षा और
अहितपरिहार-परीक्षा संज्ञा अपि*सः एव*इति*=अहितकेपरिहारकी परीक्षा(करना)हैसंज्ञीभी सोहीहैअर्थात्संज्ञीकेमनःऔरबुद्धिअर्थ हैं
न*एतद् युक्तम् संज्ञाशब्द-अर्थ-व्यभिचारात् =(उत्तर)यह ठीक नहीं है क्योंकि संज्ञा शब्दके अनेक अर्थ होनेसे दोष आता है।

संज्ञा नामेत्युच्यते । तद्वन्तः सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्गः ॥ सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषां प्राणिनां ज्ञानात्मकत्वादतिप्रसङ्गः ॥ आहारादिविषयाभिलाषः सञ्ज्ञेति चेत्तुल्यम् तस्मात्समनस्का इत्युच्यते ॥ एवं च कृत्वा गर्भाण्डजमूर्च्छितसुषुप्त्याद्यवस्थासु

सञ्ज्ञा[1/1] नाम[1/1] इति * उच्यते । तद्वन्तः[1/3] सञ्ज्ञिनः[1/3] =(जैसे) संज्ञा नाम है ऐसा कहागया है। उस (नाम) वाले संज्ञी हैं

इति * सर्वेषाम्[6/3] अतिप्रसंगः[1/1] =ऐसे समस्त(जीवों)कै अति प्रसंगहुआ अर्थात् संज्ञाका अर्थ नाम है किसीका। नामरूप संज्ञा जिसकै हो सो संज्ञी ऐसे कहनेसे सबही प्राणी नाम सहित हैं अतःमनसहित प्राणी भी संज्ञीहुये और मनरहितभी संज्ञीहुये अतःअतिप्रसंगहुआ

संज्ञानम्[1/1] संज्ञा[1/1] ज्ञानम्[1/1] इति * चेत् * =यदि(=चेत्)संज्ञान(=भलाज्ञान)संज्ञा ज्ञान हो तो

सर्वेषाम्[6/3] प्राणिनाम्[6/3] ज्ञान-आत्मकत्वात्[5/1] अतिप्रसङ्गः[1/1] =समस्तजीवोंके ज्ञानस्वरूप होनेसे अतिप्रसंग (आता) है

आहार-आदिविषय-अभिलाषः[1/1] संज्ञा[1/1] इति * चेत् * =यदि(=चेत्)आहार आदिक भोगोंकी(=विषय) कामना (=अभिलाष) संज्ञा है

तुल्यम्[1/1] =(तौभी)तुल्यहै वा समान है अर्थात् तौभी वहीबात है भावार्थ तौभी अतिप्रसंग आता है क्योंकि भोगोंकी अभिलाषा तौ सैनी असैनी सबही जीवोंकै होती है॥ तीनोंकाभावार्थ ऐसाहै कि(१)यदि संज्ञा शब्दका अर्थ रूढि'नाम'माना जायगा तो वह सैनी असैनी समस्त प्राणियोंमें पाया जाता है क्योंकि नाम विना कोई भी प्राणी नहीहै। तो असैनी जीवोंको भी संज्ञी कहना पड़ेगा(२) 'संज्ञानं संज्ञा' भलाज्ञानही संज्ञाहै तो वह ज्ञानभी सैनी असैनी सब प्रकारके जीवोंमें विद्यमान है इसलिये असैनी जीवोंकोभी संज्ञी मानना पड़ैगा (३) यदि आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञी शब्दका अर्थ माना जाय तो ये चारो आहार-भय-मैथुन-परिग्रह संज्ञायें भी समस्त संसारी जीवोंकै विद्यमान हैं इसलिये संज्ञा शब्दका आहार आदि अर्थ माननें परभी असैनी जीवोंकी व्यावृत्ति नहीं होसक्ती इसलिये असैनी जीवोंकी व्यावृत्तिके लिये सूत्रमें'समनस्का'पदका उल्लेख सार्थक है

तस्मात् * समनस्काः[1/3] इति * उच्यते । एवम् * च * =तिससे (सूत्रमें) समनस्काःऐसा(पद) कहा गया है। और (=च) इस प्रकार

कृत्वा --- गर्भ-अण्डज-मूर्च्छित-सुषुप्ति-आदि-अवस्थासु[7/3] =(सूत्रमेंसमनस्काःविशेषणकाग्रहण)करकेगर्भ,अंडज,मूर्च्छित,शयन,आदिकदशाओंमें

---

(१)अतिप्रसंग = प्रसंगको छोड़कर जिसका संबन्ध दूसरेकेसाथ रहै।लक्ष्यमेंजोलक्षणका संबंधहोताहैउसे प्रसंगकहतेहैंजोइसके विपरीत वहअतिप्रसंगहै॥

हिताहितपरीक्षाभावेऽपि मनः सन्निधानात्सञ्ज्ञित्वमुपपन्नं भवति ॥ यदि हिताहितादिविषयपरिस्पन्दः प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वकः अथाभिनवशरीरग्रहणं प्रत्यागूर्णस्य विशीर्णपूर्वमूर्तेर्निर्मनस्कस्य यत्कर्म, तत्कुत इत्युच्यते—

॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

हित–अहित–परीक्षा–अभावे७ अपि* =(जीवोंको) हित अहितकी परीक्षाके अभाव होनेपर भी

मनः–सन्निधानात्५।। सञ्ज्ञित्वम्१।।उपपन्नम्१।।भवति I =मनके सद्भावसे सैनीपन सिद्ध (=उपपन्न)होता है अर्थात् सूत्रमें यदि समनस्क शब्द न लाया जाता केवल संज्ञी शब्दका ही उल्लेख होता और संज्ञी शब्दका अर्थ हित-अहितकी परीक्षा करनेवाला माना जायगा तो जो जीव गर्भ वा अंडेके भीतर हैं वा मूर्च्छित वा सोये हुये हैं वेभी यद्यपि मन उनके विद्यमान हैं हित अहित की परीक्षासे शून्य हैं इसलिये वेभी संज्ञी न कहेजावेंगे इसलिये सूत्रमें समनस्क शब्दका उल्लेख सार्थक है ॥

यदि*हित–अहित–आदि–विषय–परिस्पन्दः१ =(प्रश्न) जो हित अहित आदिक विषयोंकी रचना वा हिलन (=परिस्पन्दः)

प्राणिनाम्६।मनः–प्रणिधान–पूर्वकः१।अथ* =जीवोंके मनके प्रयत्न (=प्रणिधान) निमित्तक है तो अब (=अथ)

अभिनव–शरीर–ग्रहणम्२।।प्रति*आगूर्णस्य६। =नया शरीर ग्रहण(करने)को (=प्रति) उद्यमी

विशीर्णपूर्व-मूर्तेः६।।निर्मनस्कस्य६। =और प्रथम शरीरके छूटजानेसे वा अभावहोजाने से(=विशीर्ण)मनरहित(आत्माके)

यत्१।। कर्म१।। तत्१।। कुतः*इति*उच्यते I =जोकर्म(कार्य(सूत्र)हैवह कहांसे(=कुतः)वा क्योंकर(=कुतः)हैऐसेप्रश्नपरकहागयाहैकि

विग्रहगतौ[1] कर्मयोगः[2] ॥ २५ ॥

सूत्रार्थः–विग्रह–गतौ७।। =नवीन शरीर (ग्रहण वा धारण करने) के लिये गमन करनेमें (=गतौ)

कर्मयोगः१। =कार्मण(शरीर ही)योग है अर्थात् कार्मण शरीर द्वारा आत्माके प्रदेश सकंप होतेहैं।यहकार्मण शरीर समस्तकर्म ग्रहणकरनेका बीजहैऔर विग्रहगतिसेअन्यत्रतोकाय,वाग्औरमनोयोगहोताहै॥

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक साहै ॥ (२)कर्मयोग=कार्मण शरीरयोग

विग्रहो देहः । विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः ॥ अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहः व्याघातः कर्मादानेऽपि नोकर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः । विग्रहेण गतिः विग्रहगतिः ॥ सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतं कार्मणं शरीरं कर्मेत्युच्यते । योगो वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्त आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः । कर्मणा कृतो योगः कर्मयोगः । विग्रहगतौ भवतीत्यर्थः ॥ तेन कर्मादानं देशान्तरसंक्रमश्च भवति ॥ आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दतां

टीकाऽनुवादः—विग्रहः देहः । विग्रह—अर्था गतिः =विग्रहका अर्थ शरीर है । नवीन शरीरके लिये गमन(वह)
विग्रहगतिः ॥ अथवा विरुद्धः ग्रहः विग्रहः =विग्रहगति है अथवा विरुद्ध ग्रहण है सो विग्रह है अर्थात्
व्याघातः कर्म-आदाने अपि नोकर्म–पुद्गल– =व्याघात वा रोकना है । कर्मका आस्रव होनेपरभी नोकर्म पुद्गलके
आदान-निरोधः इति अर्थः । विग्रहेण गतिः =आस्रव वा ग्रहणकी रोक ऐसा आशय वा अभिप्राय है । विग्रहकरि गमन
विग्रहगतिः सर्वशरीरप्ररोहणबीजभूतम् =सो विग्रहगति है । समस्त शरीरोंका उत्पन्नकरने वाला बीजभूत
कार्मणम् शरीरम् कर्म इति उच्यते । योगः =कार्मण शरीर है सो (सूत्रमें) कर्म ऐसा कहागया है ॥ योग (वह है कि)
वाङ्मानसकायवर्गणानिमित्तः =वचन मन कायके पुद्गल वर्गणा हैं निमित्त जिसको (इनवर्गणाओंके द्वारा)
आत्म–प्रदेश-परिस्पन्दः =ऐसे आत्माके प्रदेशोंका चलाचलहोना है अर्थात् कायवर्गणा भाषाऔरमनो वर्गणा आदिके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंके अंदर जो हलनचलन होना सो योग है ॥
कर्मणा कृतः योगः कर्मयोगः विग्रहगतौ =कार्मण शरीरसे कियायोग कर्मयोग है । नवीन शरीरके लिये गमनकरनेमें
भवति । इति अर्थः तेन कर्म–आदानम् =(कार्मण शरीर होयोग)होता है ऐसा अभिप्राय है । तिस (योग) से कर्मका ग्रहण
देशान्तर–संक्रमः च भवति । =और देशांतरका जाना वा संक्रमण होता है अर्थात् आत्माके प्रदेशोंके भीतर हलनचलनरूप योग विग्रहगतिमें कार्मण शरीरके द्वारा होता है उसीयोगके द्वारा विग्रहगतिमें आत्माकें कर्मोंका आदान तथा मनसे रहितभी उस आत्माकी नवीन शरीर धारण करनेके लिये गति ये दोनों कार्य होते हैं ॥
आह । जीव-पुद्गलानाम् गतिम् आस्कन्दताम् =(शिष्य) पूंछता है कि जीव पुद्गल गतिको प्राप्त–होनेवालोंके

देशान्तरसंक्रमः किमाकाशप्रदेशक्रमवृत्त्या भवति, उताविशेषेणेत्यत आह—

॥ अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदेशानां क्रमसन्निविष्टानां पंक्तिः श्रेणिरित्युच्यते । अनुशब्दस्यानुपूर्व्येण वृत्तिः ।

देशान्तरसंक्रमः किम् आकाश-प्रदेश-क्रम-	=देशान्तर–गमन (गति) क्या आकाशके प्रदेशोंकेक्रम-
वृत्त्या भवति	=वर्तनकरि होता है अर्थात् आकाशके प्रदेशोंके अनुसार श्रेणीबद्ध होता है
उत *अविशेषेण इति *अतः *आह	=अथवा अविशेषकरि होता है इसलिये कहते हैं कि

'अनुश्रेणिगति.=(आकाशप्रदेशानाम्)अनुश्रेणिः (जीवानाम् पुद्गलानाम् च)गतिः(भवति)

सूत्रार्थः–आकाशप्रदेश-अनुश्रेणिः	=आकाशके प्रदेशोंके श्रेणीरूप वा सीधी पंक्तिमें
जीवानाम् च*	=(मृत्युहोनेपर नवीन शरीर धारण करनेके लिये) जीवोंका तथा
पुद्गलानाम्	=(जब चौदहराजू शुद्ध परमाणु एक समयमें गमन करैं तब ऐसे) पुद्गलोंका
गतिः भवति	=गमन होता है ॥(आकाशप्रदेशानुश्रेणि जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवति)
वृत्त्यनुवादः–लोकमध्यात् आरभ्य ऊर्ध्वम्*अधः*तिर्यक्*च*	=लोकके बीचसे लगाय ऊपर नीचे और तिर्यक् (इधर उधर)
आकाशप्रदेशानाम् क्रमसन्निविष्टानाम् पंक्तिः॥	=आकाशके प्रदेशोंका अनुक्रमसे पंक्तिरूप अवस्थान
श्रेणिः इति*उच्यते। अनुशब्दस्य अनुपूर्वेण वृत्तिः॥	=ऐसी श्रेणी कहीगई है। अनुशब्दका अर्थ (=वृत्ति.) यथा क्रमकरि है

(१) विग्रहका अर्थ शरीरहै। उस शरीरके लिये जो गमन कियाजाताहै वह विग्रहगति कही जाती है। जीव जिस समय दूसरा नवीन शरीर धारण करनेके लिये प्रवृत्त होता है उस समय पहिले शरीरका परित्याग करिही प्रवृत्तहोता है॥ तत्त्वार्थसार श्लोक९६। योगोंकी चंचलता हुयेविना शरीर संबंधी कुछभी हीनाधिकता नहीं होनेपाती इसलिये विग्रहगतिमेंभी कोई योग होना चाहिये।विग्रहगतिमें कर्मादान अर्थात्कर्मबंधकाकार्य और नवीन शरीर धारणकरनेकाकार्य ये दोकार्य होतेहैंजोकि किसीयोगकीअपेक्षा रखतेहैं।दूसरा कोईयोग वहांहो नहीं सकता इसलिये उक्त दोनों कार्योंका साधक कार्मण योगहीहै ऐसा भगवान जिनेस्वरने कहा है कर्मोंकेपिंडकानाम कार्मण शरीहै उसका अवलंबनलेकर आत्मा वहां उक्त दोनों कार्य करता है श्लोक ९७॥ (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ यहांश्रेणि से आकाशके प्रदेशोंकी पंक्ति लीगई है इससे इससूत्रमें "आकाशप्रदेशा" वाक्यका अध्याहार किया है॥ जीवानाम् की अनुवृत्ति प्रथम सूत्रसे है। गतिः शब्द सूत्रमें आया है इससे पुद्गलानाम् का अध्याहार किया है जीवानाम् और पुद्गलानाम् को मिलानेके लिये च समुच्चायी उपसर्गका अध्याहार किया है॥

श्रेणेरानुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां पुद्गलानां च गतिर्भवतीत्यर्थः॥ अनधिकृतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चेत्गतिग्रहणात्। यदि जीवानामेव गतिरिष्टा स्यात् गतिग्रहणमनर्थकमधिकारात्तत्सिद्धेः। उत्तरत्र जीवग्रहणात् पुद्गलसम्प्रत्ययः॥

श्रेणेः ५।१ आनुपूर्व्येण ३।१ अनुश्रेणिः १।१ इति * जीवानाम् ६।३ =श्रेणीके अनुकूल सो अनुश्रेणि है। ऐसे जीवोंका

च * पुद्गलानाम् ६।३ गतिः १।१ भवति। इति * अर्थः १।१ =और पुद्गलोंका गमन(श्रेणिके अनुकूल) होता है ऐसा आशय है अर्थात् जीवोंकीमृत्युहोनेपर नवीनशरीर धारणकरनेकेलिये गमन,मुक्तजीवोंकाऊर्ध्वगमन, जीवोंका ऊर्ध्वलोकसे अधोलोकजाना, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोकजाना, तिर्यग्लोकसे अधोलोकगमन वा ऊर्ध्वलोक गमन श्रेणीके अनुकूल होगा, पुद्गलके शुद्ध परमाणुका एक समयमें चौदह राजूगमन आकाशके श्रेणिके अनुकूलही होगा अन्य अवस्थाओंमें जीव और पुद्गलोंका गमन भजनीय है श्रेणिके अनुकूल भी गमन करसक्ते हैं। प्रतिकूल भी, कोई नियम नहीं है॥

अनधिकृतानाम् ६।३ पुद्गलानाम् ६।३ कथम् * ग्रहणम् १।१॥ =प्रकरण रहित पुद्गलोंका(यहां) कैसे ग्रहण है॥

इति * चेत् * गतिग्रहणात् ५।१॥ यदि * जीवानाम् ६।३ एव * =ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं किसूत्रमें) गतिके आदानसेजो प्राणियोंकाही

गतिः १।१ इष्टा १।१ स्यात्। गतिग्रहणम् १।१ अनर्थकम् १।१॥ =गमन इच्छितहोता तो(इससूत्रमें)'गतिः'शब्दका लाना निष्प्रयोजन होजाता

अधिकारात् ५।१ तत् १।१ सिद्धेः ५।१॥ =क्योंकि (विग्रहगतौ कर्मयोगः सूत्रमें गमनकरनेके) प्रकरणसेउस('गतिः') कीसिद्धिहै (फिरइससूत्र'अनुश्रेणिःगतिः'मेंगतिशब्दनहीलाते यदिपुद्गलगमनकाआशयनहोतातो)

च * उत्तरत्र * जीवग्रहणात् ५।१॥ और(=च)क्योंकिइससूत्रसे(=अत्र) अगलेसूत्र'अविग्रहा जीवस्य'मेंजीवकेग्रहणकरनेसे

पुद्गलसम्प्रत्ययः १।१। =(इससूत्रमें)पुद्गलका ग्रहण(भी) प्रतीति वा प्रत्यय होताहै इससबका भावार्थयहहैकि

किसीकेतर्क करनेपर कि यहां तो जीवका प्रकरण वा विषय है पुद्गलका गमन 'अनुश्रेणिः गतिः' सूत्रमें कैसे आसकता है उसके उत्तरमें कहते हैं कि'विग्रहगतौ कर्मयोगः''सूत्रसे प्रगटहैकि यहांपर गतिका अधिकार है क्योंकि गतिका विषयहै और गति जीव तथा पुद्गल दोनोंके होती है इसी कारण इस''अनुश्रेणिःगतिः''में गतिःशब्द लाये हैं यदि केवल जीवकी गति सेही सूत्रका अभिप्राय होता हैतो यहसूत्र''अनुश्रेणिः''इतनाहीहोता क्योंकि गति शब्द'विग्रहगतौ कर्मयोगः' सूत्रमें विद्यमान है उसकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आजाती॥

ननु चन्द्रादीनां ज्योतिष्काणां मेरुप्रदक्षिणाकाले विद्याधरादीनां च विश्रेणिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते अनुश्रेणिगतिरिति? कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्यः ॥ तत्रकालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भावान्तरसंक्रमे मुक्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गतिः। देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगतिः। अधोलोकादूर्ध्वगतिः। तिर्यग्लोकादधोगतिः ऊर्ध्वा वा। तत्रानुश्रेण्येव ॥ पुद्गलानां च या लोकान्तप्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव।

और "अविग्रहा जीवस्य" सूत्रभी यदि इस छब्बीसवां सूत्रमें केवल जीवकी गतिसे अभिप्राय होतातो 'अविग्रहाः' ऐसे होता जीवस्य शब्द न होता अतःइनतीनां सूत्रोंको मिलाकर पढ़ने और विचार करनेसे यह फल हुआकि 'विग्रहगतौ कर्मयोगः' में केवल जीवकीगतिहै 'अनुश्रेणिःगतिः' में गति शब्दलायागयाहैइससे जीव और पुद्गल दोनोंकीगतिलीगईहै पश्चात् 'जीवस्य' वाक्यका प्रयोग २७वां सूत्रमें होनेसे केवल शुद्धअर्थात् मुक्तजीवकी ही गति वा गमनसे अभिप्राय है ॥

ननु*चन्द्रादीनाम्[६] ज्योतिष्काणाम्[६] मेरु-प्रदक्षिणा- =प्रश्न(=ननु)शशि आदिक ज्योतिषी (देव) निका मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणाके
काले[७] विद्याधरादीनाम्[६] च*विश्रेणि- =समयमें और (=च) विद्याधर आदिकोंका आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तिके विरुद्ध
गतिः[१] अपि*दृश्यते। तत्र*किम्[१] अनुश्रेणि- =गमन भी देखागया है वहां(अर्थात्२६वां सूत्रमें) क्योंकर श्रेणीके क्रमानुसार
गतिः[१] इति*उच्यते। कालदेशनियमः[१] अत्र*वेदितव्यः[१]=गमन ऐसा कहागया है॥(उत्तर)यहां(इससूत्रमें)कालनियम तथा देशनियम जानो ॥
तत्र*कालनियमः[१] तावत्*जीवानाम्[६] मरणकाले[७] =तहां कालनियम है कि समस्त (=तावत्) संसारी प्राणियोंका मृत्युसमयमें
भवान्तर-संक्रमे[७] च*मुक्तानाम्[६] ऊर्ध्वगमनकाले[७] =अन्यभवको जानेपर और मुक्तजीवोंका ऊर्ध्वगतिकालमें
अनुश्रेणी[१] एव*गतिः[१]। देशनियमः[१] अपि* =(आकाशके प्रदेशोंकी) पंक्तिरूपही गमन है। क्षेत्र नियम भी है कि
ऊर्ध्वलोकात्[५] अधोगतिः[१] अधोलोकात्[५] ऊर्ध्व- =ऊर्ध्वलोकसे अधोलोक गमन, अधोलोकसे ऊर्ध्वलोक
गतिः[१] तिर्यग्लोकात्[५] अधोगतिः[१] ऊर्ध्वा[१] वा* =गमन(और)तिर्यग्लोकसे अधोलोक गमन अथवा ऊर्ध्व (गमन)
तत्र*अनुश्रेणी[१] एव*च*पुद्गलानाम्[६] या[१] =तहां श्रेणीके अनुसारही है तथा(=च) पुद्गलोंकी जो
लोकअन्त-प्रापिणी[१] सा[१] नियमात्[५] अनुश्रेणी[१] एव*=लोकका अन्त प्राप्तकरनेवाली (शुद्धपरमाणु) है सो नियमसे श्रेणीके अनुकूल है
अर्थात् जब पुद्गलकी शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजू गमन करती है तब
वह आकाशके प्रदेशोंके पंक्तिरूपही सीधी गमन करती है ...

इतरा गतिर्भजनीया ॥ पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

विग्रहो व्याघातः कौटिल्यमित्यर्थः। स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गतिः ॥ कस्य?। जीवस्य॥ कीदृशस्य?। मुक्तस्य ॥ कथं गम्यते मुक्तस्येति?। उत्तरसूत्रे संसारिग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते ॥ ननु च अनुश्रेणि गतिरित्यनेनैव श्रेण्यन्तरसंक्रमाभावो व्याख्यातः। नार्थोऽनेन।

इतरा¹ गतिः² भजनीया³ =अन्य गमन नियम रहित है अर्थात् सीधागमन भी होता है वक्र भी होता है

पुनः*अपि*गति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्² आह I=फिरभी गमनके प्रभेद कथनके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्--अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥ =अविग्रहा(गतिः) मुक्तजीवस्य (भवति)

सूत्रार्थः—अविग्रहा¹ गतिः¹ मुक्तजीवस्य⁶ भवति I =वक्रतारहित,मोड़ारहित गमन मुक्त आत्माका होता है अर्थात् मुक्त जीव एक समयमें सीधासात राजू गमन करता हुआ सिद्ध क्षेत्रमें चला जाता है इधर उधर मुड़ता नहीं है

शब्दानुवादः-विग्रहः¹ व्याघातः¹ कौटिल्यम्¹ इति*=विग्रह है सो व्याघात, वक्रता वा कुटिलता ऐसा

अर्थः¹ सः¹ यस्यां⁷ न*विद्यते I असौ¹ अविग्रहा¹ =अर्थमें है। वह (विग्रह वा वक्रता)जिसमें विद्यमान नहीं है सो अविग्रह

गतिः¹ कस्य⁶ ? जीवस्य⁶ =गमन है। (वह मोड़ारहित गति) किसकी है?।(वह वक्रतारहित गति) चेतनकी है

कीदृशस्य⁶ मुक्तस्य⁶ कथं*गम्यते I मुक्तस्य⁶ इति* =किस प्रकारके(जीव)की है। मोक्षजीवकी है। मुक्तजीवका नाम कैसे जानाजाय?

उत्तरसूत्रे⁷ संसारिन् ग्रहणात्⁵ इह* =अग्रिम(२८वां)सूत्रमें संसारी शब्दके ग्रहणकरनेसे यहां (इस सूत्रमें)

मुक्तस्य⁶ इति*विज्ञायते I ननु*च*अनुश्रेणिः¹ गतिः=मोक्षजीवका (ग्रहण) ऐसा जानाजाता है॥ अन्य प्रश्न'अनुश्रेणिगतिः'

इति*अनेन³ एव*श्रेणि-अन्तर-संक्रम-अभावः¹ =इस (सूत्र)करिही श्रेणीसे विरुद्धगमनका अभाव

व्याख्यातः¹ ?न*अर्थः¹ अनेन³ =वर्णित है(इसलिये) इस (सूत्र) से(=अनेन) प्रयोजन नहीं है अर्थात्

इस सत्ताईसवां सूत्रका बनाना निष्फल वा अभिप्राय रहित है क्योंकि

'अनुश्रेणिगतिः'इस छब्बीसवां सूत्रमेंही श्रेणीके अनुकूल मुक्त जीवका गमनसिद्ध है।

पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति ज्ञापनार्थमिदं वचनम् ॥ ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त किं न? अतस्तत्सिद्धेः ॥ यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवधृतकाला प्रतिज्ञायते, सदेहस्य पुनर्गतिः किं प्रतिबन्धिनी, उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

पूर्व-सूत्रे॥ क्वचित्* विश्रेणि- =(उत्तर) पहिले(छब्बीसवां)सूत्रमें(अनुश्रेणिगतिः) है परंतु कहीं श्रेणीके विरुद्ध
गतिः॥अपि अस्ति इति ज्ञापनअर्थइदम्॥वचनं=(जीवऔर पुद्गलोंका)गमन भी है। ऐसा सूचितकरनेके लिये यह सूत्र है
ननु*तत्र*एव*देशकालनियमः॥उक्तः॥ =प्रश्न वहां (अनुश्रेणिगतिःसूत्रमें) ही क्षेत्र तथा कालका नियम कहा गया है
अर्थात्'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रमें काल और देशके नियमको ग्रहण कियाहै और उसकाल नियममें मुक्तजीवोंके ऊर्ध्व गमन करतेसमय श्रेणिके अनुकूल गति बतलाई है इसलिये मुक्तजीवोंकी मोड़ारहित गति'अनुश्रेणिगतिः'सूत्रसे सिद्ध होनेपर पुनः'अविग्रहाजीवस्य' इस सूत्रका निर्माण वा प्रतिपादन निरर्थक ही है॥

किम्॥ न* ? =(उत्तर)क्या ? (पिछले सूत्रमें देश,कालका नियम कहां कहागयाअर्थात्) नहीं (कहागया)
अतः*तत्-सिद्धेः॥ =इसलिये उस(देश,कालके नियम)की सिद्धिका (यहसूत्र)है अर्थात् आचार्य उत्तरमें कहते हैं कि काल और देशका नियम'अनुश्रेणिगतिः''सूत्रमें तो कहा नहीं गया किंतु' अविग्रहा जीवस्य ' इसी सूत्रके द्वारा वहांपर काल,देशके नियमकी सिद्धिहै॥, "किम् " निंदा वा तिरस्कारके अर्थमें आया जान पड़ता है

यदि*असङ्गस्य॥आत्मनः॥अप्रतिबन्धेन॥गतिः॥=यदिकर्म रहित(=असंगस्य)आत्माका बन्धकारि रहित गमन
आ-लोकान्तात्॥ अवधृतकाला॥प्रतिज्ञायते। =लोकके अंत तक(=आ) एकसमयमात्र कालवान्गति प्रतिज्ञारूप करिये हैं वा लोकके अंततक एकसमय मात्र कालकेनियम रूप विदित (=प्रतिज्ञायते) है तो

पुनः*सदेहस्य॥गतिः॥किम्॥ प्रतिबन्धिनी॥=फिर(=पुनः) शरीरसहित (आत्मा)का गमन क्या अटकाव सहित वा मोड़ासहित है
उत*मुक्त-आत्मवत्*इति*अतः*आह। =वा (=उत) मुक्तआत्मा सदृश है इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

विग्रहवती चसंसारिणः प्राक्तुर्भ्यः ॥ २८ ॥

=विग्रहवती(गतिः) अविग्रहा गतिः(=च) संसारिणः प्राक्-चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः-विग्रहवती॥गतिः॥अविग्रहा॥गतिः॥च* =मोड़ेरूपगति या विग्रहसहित गमन और विग्रहरहित गमन भी (=च)
संसारिणः॥ प्राक्*चतुर्भ्यः॥ =संसारी जीवका चार समयसे पहिले २ होता है भावार्थ विग्रहगतिमें

सीधीगति, एक मोड़ावालीगति दो मोड़ावालीगति, तीन मोड़ावालीगति ऐसे ये चारगतियां होती हैं। आगममें क्रमसे इन गतियोंकी इषुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति, और गोमूत्रिका गति इसप्रकार चार संज्ञामानी हैं। चारोंगतियोंमें इषुगति मोड़ारहित है और शेष गतियां मोड़ासहित हैं॥ इन चारो गतियोंका स्पष्ट अर्थ ऐसे है कि जिस प्रकार अपने लक्ष्य स्थानतक बाणकी गति सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ारहित सीधीगति होती है उसको इषुगति कहते हैं। इस इषुगति विषैं एक समय लगता है अर्थात् एकही समयमें शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य होजाते हैं॥ इसलिये इषुगतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं होताहै।जिस प्रकार हाथसे तिरछी ओर फेंके हुये पदार्थकीगति एक मोड़ालेकर होती है। उसी प्रकार संसारी जीवकी जो गति एक मोड़ालेकर हो वह पाणिमुक्तागति कहलाती है और उसगतिमें दो समय लगते हैं। ( )जिस प्रकार लांगल हलमें दो जगह मोड़रहती है उसी प्रकार जिस गतिमें दो मोड़ेलेनेपड़े उसे लांगलिकागति कहते हैं। और उसके होनेमें तीन समय लगते हैं॥ ( ) तथा जिस प्रकार गौके मूत्रमें बहुत मोड़ेरहते हैं

(१) विग्रहवती = मोड़ेरूप. मोड़ेवाली. मोड़ेसहित,वक्रतासहित. विग्रहसहित कुटिलगति (२) दोनों आम्नायोंमें इससूत्रका पाठ औरअर्थएकसाहै
(३) सूत्रमें जो'च'शब्द है वह उपरादृत्तममें जानेके लिये संसारी जीवों की सीधी भी गति होती है और मोड़ेवाली कुटिलगति भी होती है
इस प्रकार दोनों भांतिकी गतियोंके समुच्चय के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी अविग्रहगति भी होती है और विग्रहगति भी होतीहैपरंतु मुक्तजीवकी
केवल अविग्रहगति होती है और 'एक समया विग्रहा' सूत्र के अनुकूल इस अविग्रहगतिका काल एक समय है मुक्तजीवका भी और संसारी
जीवकाभी। संसारीजीवअविग्रह गति में (ऋजुगति,सीधीगति, इषुगति में)एकही समयमें शरीर त्यागकर जन्म लेलेताहैऔर ऐसी अवस्था में अनाहारक
नहीं होता आहारक बना रहता है॥ बहुतसे महाशयोंकी जैसा कि हमको अनुभव है यह धारणा है कि संसारीजीव जन्म लेनेमें अवश्यही
एक वा दो या तीनसमय तक अनाहारक'एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः' सूत्रके अनुकूल रहता ही है कोई संसारी जीव उनकी धारणाके अनुसार ऐसा
नहींहैजो अनाहारक न होताहो विग्रहगतिमें आहारकही बना रहताहो, उनके इस भ्रमको दूरकरनेके लिये यह टिप्पणी विशेष रूप सेपृथक् मेंलिखतेहैं॥

उसी प्रकार जिसगतिमें तीन मोड़ेलेनेपड़े वह गो मूत्रिकागति है. और उसके होनेमें चार समय लगते है। चारोंगतियोंमें पहिली

और सिद्धकरते हैं कि ऋजुगतिमें संसारी जीव आहारक बना रह सकता है॥ टोड़लमलजीकृत गोम्मटसार गाथा ६७० के नीचे लिख लेख है॥ "आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होहिं तितने समय प्रमाण आहारकका काल हैं। इहां प्रश्न जो मरण नो आयु पूरी भए पीछें होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका समाधान- जो मरण भए जिस जीवके वक्ररूप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताकै अनाहारकपणा न होहै आहारकपणा ही रहैहै तातैं आहारकका पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपनेकरि कह्या है। बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारहवां भाग जानना जातैं क्षुद्रभव विषैं विग्रहगतिके समय घटाय इतना काल हो है बहुरि अनाहारकका काल कार्मण शरीर विषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातैं विग्रहगति विषैं इतने काल पर्यंतही नो कर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है॥टोड़लमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६७० ॥"

( )इस अट्ठाईसवां सूत्रमें "च शब्दःसमुच्चयार्थः। विग्रहवती चाविग्रहवती चेति" (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति इसी सूत्रके नीचे देखो) = चशब्द समुदय वा समूहके लिये है।(संसारी जीवकीगति क्योंकि यह अट्ठाईसवां सूत्रकेवल संसारी जीवोंसे संबन्ध रखताहै)विग्रहसहित भी(=च)और विग्रहरहितभी(=च है॥

( )"तहां इषुगति तौ विग्रहरहितहै। ताकाद्रष्टांत जैसे इषु कहिये तीर चालै सो सूधा ठिकाणैं पहुचैं तैसे इषुगतिहै॥ याका काल एक समय ही है सोसंसारीनिकैं भी होहै बहुरि मुक्तजीवकैं भी हो है। बहुरि पाणिमुक्ताविषैं एक मोड़ा होहै।याका काल दोय समयहै,, ...जयचंदजीकृत। वचनिकापृष्ठ२७२

( )"चशब्दःसमुच्चयार्थः-॥ २ ॥ चशब्द उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्वी गतिरविग्रहा, कुटिला विग्रहवती"तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ६७ ॥ इस अट्ठाईसवां सूत्रमें चशब्द समुदयके लिये है अर्थात् चकार उपपाद क्षेत्र प्रति ऋज्वीगति कहिये अविग्रहागति और कुटिलागति कहिये विग्रहवतीगति जे हैं तिनके समुच्चयके लियेहै भावार्थ इस अट्ठाईसवा सूत्रमें जो केवल संसारी जीवोंके कथनमेंहैसर्वगति(विग्रहागति औरअविग्रहगति)काग्रहणके अर्थ "च"है॥

( )"आसां चतसृणां गतीनामार्षोक्ताःसंज्ञाः इषुगतिःपाणिमुक्ता = ये आर्षोक्त चारगतियोंके नाम हैं कि इषुगति, पाणिमुक्तागति,

लांगलिका,गोमूत्रिका,च इति। तत्राविग्रहा प्राथमिकी, = लांगलिकागति,और गोमूत्रिकागति ऐसेहैं।तहांप्रथमकीइषुगति जोहैसोतौ अविग्रहागतिहै अर्थात् मोड़ारहितगति इषु जो बाण तिसके समान सरलहैसीधीगति है ऋजुगतिहैऔर

शेषा विग्रहवत्यः = अवशेष तीन(पाणिमुक्तागति,लांगलिकागति,गोमूत्रिकागति)विग्रहवानहैमोड़ासहितहैं

इषुगतिरिवेषुगतिः (=इषुगतिःइव इषुगतिः) क उपमार्थः? = तिनमें इषुगतिके समान जो है सो इषुगतिहै। यहां उपमाअर्थ क्या है॥

यथेषोर्गतिरालक्ष्यदेशादृज्वी,तथासंसारिणांसिध्यतांचजीवानां = जैसे बाणकीगति लक्ष्यस्थानपर्यंत सरल है तैसे संसारिनिकैं तथा सिद्ध हुये जीवनिकैं

ऋज्वीगतिरेकसमयिकी" तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठम् ६७ = सरलगतिहै सो एक समयकीहै भावार्थ जिस प्रकार अपने लक्ष्यस्थानतक बाणकीगति

कालावधारणार्थं प्राक्चतुर्भ्य इत्युच्यते। प्रागितिवचनं मर्यादार्थं, चतुर्थात्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति ॥ कुत इति चेत्--सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्तनिष्कुटक्षेत्रे उत्पित्सुः प्राणी निष्कुटक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिषुगत्यभावे निष्कुटक्षेत्रप्रापणनिमित्तां त्रिविग्रहां गतिमारभते नोर्ध्वाम्। तथाविधोपपादक्षेत्राभावात् ॥

इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु शेष गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

अन्वयानुवादः--काल-अवधारण-अर्थं प्राक्-चतुर्भ्यः इति =कालके निश्चय करने के लिये चार (समय) से पहिले ऐसा (वाक्य सूत्रमें)
उच्यते। प्राक् इति वचनम् मर्यादा-अर्थम् =कहा गया है। प्राक् ऐसा वाक्य सीमा के लिये है
चतुर्थात् समयात् प्राक् विग्रहवती गतिः भवति। =चौथे समयसे पहिले विग्रह गति होती है
न चतुर्थे इति। कुतः इति चेत् =चौथे (समय) विषैं (विग्रह कहिये मोड़ा) नहीं है। ऐसा क्योंकर होता है ?
सर्वोत्कृष्ट-विग्रह-निमित्त-निष्कुट-क्षेत्रे उत्पित्सुः =(उत्तर) सर्वोत्कृष्ट विग्रह है कारण जिसको ऐसे निष्कुट क्षेत्रमें उपजनेवाला
प्राणी निष्कुट-क्षेत्र-आनुपूर्वी-अनुश्रेणि-अभावात् =जीव निष्कुट क्षेत्र (=लोकका अग्रकोण) आनुपूर्वी सहित अनुश्रेणीके नहोनेसे
इषुगति-अभावे निष्कुटक्षेत्र-प्रापण-निमित्ताम् =बाणगति वा सीधीगतिके अभाव होने पर निष्कुट क्षेत्र में पहुंचनेके लिये
त्रि-विग्रहाम् गतिम् आरभते। न ऊर्ध्वाम् =तीन मोड़ेवाली गतिको प्रारम्भे है न कि अधिक (मोड़ेवाली गति) को (आरम्भे है)
तथा विध--उपपादक्षेत्र--अभावात् =क्योंकि इसप्रकारसे (=तथाविध) उपजनेका अन्यक्षेत्रविद्यमान नहीं है अर्थात् निष्कुट क्षेत्रके उपरांत कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें जीव तीन मोड़ेसे अधिकलेके उपजे

सीधी होती है उसी प्रकार संसारी और सिद्ध जीवोंकी जो मोड़ा रहित सीधी गति है होती है उसे इषुगति वा बाणगति कहते हैं इस इषुगतिमें एक समय लगता है अर्थात् एक ही समय में शरीर छोड़ना और दूसरा शरीर ग्रहण करना ये सब कार्य हो जाते हैं। इसीलिये इषु गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं है आहारक ही रहता है उक्त चारों गतियों में पहिली इषुगति संसारी और मुक्त दोनों प्रकारके जीवोंके होती है परंतु अवशेष तीन गतियां केवल संसारी जीवोंके होती हैं ॥

( ) यही बात कि संसारी जीव और मुक्त जीव दोनों के अविग्रह गति होती है और अविग्रह गतिका एक समय है। अविग्रह गतिमें संसारी जीव अनाहारक नहीं रहता है श्लोकवार्तिकके पृष्ठ ३३३-३३४से और सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके ३०वां सूत्र के इनवाक्योंसे ["कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीर सद्भावे उपपाद क्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः" = कर्म वर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है, कार्मण शरीरकी विद्यमानतामें उपजनेके क्षेत्रकी ओर मोड़ारहितगमन (= ऋजुगति) में जीव आहारक है अन्य तीन समयोंमें (जिनमें एक मोड़ा, दो मोड़ा वा तीन मोड़े लिये जाते हैं) जीव अनाहारक है] स्पष्ट है कि ऋजुगति वाला संसारी जीव विग्रहगति में भी आहारक है ॥

चशब्दः समुच्चयार्थः । विग्रहवती चाविग्रहवती चेति ॥ विग्रहवत्या गतेः कालोऽवधृतः । अविग्रहायाः कियान् काल इत्युच्यते—

॥ एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥

एकः समयो यस्याः सा एकसमया । न विद्यते विग्रहो यस्याः सा अविग्रहा ॥ गतिमतां हि जीवपुद्गलानामव्याघतेनैकसमयिकी गतिरालोकान्तादपीति ॥

च*शब्दः [१] समुच्चय-अर्थः [१] =(इस सूत्रमें) चकार समुदय (=समुच्चय) के लिये है अर्थात् संसारी जीवकी (गति)

विग्रहवती [१] च*अविग्रहवती [१] च* इति* =विग्रह सहित भी (=च) है विग्रह रहित भी इस प्रकार है

विग्रहवत्याः [६] गतेः [६] कालः [१] अवधृतः [१] =विग्रहवाले (जीव) निका गमनका काल निश्चय वा निर्णीत किया

अविग्रहायाः [६] =विग्रहरहित(जीव) निका(अर्थात् इन संसारी जीवोंका जो विग्रहगतिमें ऋजुगति धारण करते हैं एक ही समयमें शरीर छोड़कर उसी समय में जन्म धारण करलेते हैं और विग्रहगतिमें भी अनाहारक नहीं होते आहारक ही बने रहते हैं और मुक्तजीवोंका जो सीधे मोक्षको प्राप्त होते हैं

कियान् [१] कालः [१] इति * उच्यते T ॥ =क्या काल है इस प्रकार(प्रश्न होने पर)कहा जाता है कि

एक[१]समयाऽविग्रहा[२] ॥ २९ ॥ =एक समयाऽविग्रहा (गतिः भवति) ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एकसमया[१] अविग्रहा[१] गतिः[१] भवति T =एक समय है काल जिसका एसी मोड़ारहित गति, ऋजुगति वा इषुगति है अर्थात् मोड़ा रहित गति एक समय मात्र ही होती है । गतिवान जीव और पुद्गल की मोड़ा रहित गति लोक के अग्रभाग पर्यंत भी एक ही समय में निष्पन्न हो जाती है ।

वृत्यर्थः—एकः[१] समयः[१] यस्याः[६] सा[१] एकसमया[१] न=एक है समय जिसका सो एक समया है । नहीं है

विद्यते T विग्रहः [१] यस्याः[६] सा [१] अविग्रहा [१] =विद्यामान वा वर्तमान विग्रह जिसके सो अविग्रह है

गतिमताम् [६] हि *जीव—पुद्गलानाम् [६] अव्याघातेन [३]=गतिवान (=गतिसहित) ही जीव और पुद्गलोंको विग्रह शून्य वा अविग्रहकारि

एकसमयिकी[१] गतिः[१] आ-लोकअन्तात्[५] अपि*इति=एक समय मात्र गमन क्षेत्रकी अपेक्षा से लोक पर्यंत भी है

१ श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "एक समयोऽविग्रहः" = विग्रह रहित गति एक ही समयमें होती है । दोनों आम्नायोंमें एकअर्थ है

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादिप्रत्ययवशात्कर्माण्याददानो विग्रहगतावप्याहारकः प्रसक्तस्ततो नियमार्थमिदमुच्यते—

॥एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः॥ ३० ॥

अनादिकर्मबन्धसन्ततौ मिथ्यादर्शनादि-प्रत्यय-	=अनादिकर्मबन्धकी संतानविषैं मिथ्यादर्शनादिकके कारण (=प्रत्यय)
वशात् कर्माणि आददानः विग्रहगतौ अपि	=वशसे (यह जीव) कर्मोंको ग्रहण करता है। विग्रहगतिमें भी
आहारकः प्रसक्तः ततः नियमार्थं इदम् उच्यते।	=आहारक(का)प्रसंग आता है तिस(हेतु)से नियमके अर्थ यह कहा जाता है कि
[1]एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः[2]	=जीवो विग्रहगतौ एकं द्वौ त्रीन् वा समयाननाहारकःभवति
सूत्रार्थः-जीवः विग्रहगतौ एकम्	=जीव नवीन शरीर धारण करनेके लिये गमन करनेमें एक समय
द्वौ त्रीन् वा समयान् अनाहारकः भवति।	=दो समय अथवा तीन समयतक अनाहारक(=नोकर्मवर्गणाके ग्रहणरहित)है।

भावार्थ जो जीव सीधा जाय उपजै है आहारक है। यह जीव उसी समय शरीर त्याग करताहैऔर उसी समयमें ऋजुगति द्वारा जन्म लेलेताहैअनाहारक नहीं होता है आहारकही बना रहता है और जो एक मोड़ालेकर उपजता है सो एक समय अनाहारक है दूजेसमय आहारक है जो दोय मोड़ालेकर उपजता है सो दोय समय अनाहारक है तीजे समय आहार ग्रहण करता है और जो तीन मोड़ालेकर उत्पन्न होता है सो तीन समय तक अनाहारक है चौथे समय आहारक है अर्थात् चौथे समयमें शरीर प्राप्तिको ग्रहण करके आहारक होजाता है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में" एकं द्वौ वानाहारकः" ऐसा पाठ इस सूत्रका है। हमारे यहां के पाठसे"त्रीन्" शब्द न्यून है। इस पाठके ही अनुकूल उनके यहां –एक वा दो समय तक जीव अनाहारक रहता है" ऐसा अर्थ किया है हमारे यहांके अनुसार 'एकसमय दोसमय वा तीनसमयतक जीव विग्रहगति में अनाहारक रहता है यही अर्थभेद है। जब दोनों सम्प्रदायोंका ' विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः" इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है तब श्वेताम्बरोंके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इससूत्रके पाठमें त्रीन् शब्द होना चाहिये नहीं तो'विग्रहवती च संसारिणःप्राक् चतुर्भ्यः'और इससूत्रका अर्थ आपसमें मेल नहीं खाता संभव है कि त्रीन् शब्द रहगया हो ॥

(२) 'प्रश्न-एक दो तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है' यहां पर आहार क्रियाका अधिकरण काल है। जहां अधिकरण अर्थ होता है वहां पर सप्तमी विभक्ति होती है इसलिये 'एकं द्वौ त्रीन्' यहांपर 'एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु ' यह सप्तमी विभक्ति होनी चाहिये ? (देखो सप्तम्यधिकरणे च २।३।३६ अष्टाध्यायी=अधिकरण अर्थमें सप्तमी विभक्ति होतीहै। आधारो अधिकरणम् ।१। ४। ४५ । अधिकरणका अर्थ आधारहै॥(उत्तर)यहांपरकालकृत

अधिकारात्समयाभिसम्बन्धः। वाशब्दो विकल्पार्थः। विकल्पश्च यथेच्छातिसर्गः॥ एकं वा द्वौ वा त्रीन्वा समयाननाहारको भवतीत्यर्थः॥ त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलग्रहणमाहारः। तदभावादनाहारकः॥ कर्मादानं हि निरन्तरं, कार्मणशरीरसद्भावे॥ उपपादक्षेत्रं प्रति ऋज्व्यां गतौ आहारकः। इतरेषु त्रिषु समयेषु अनाहारकः॥ एवं गच्छतो

वृत्त्यनुवादः-अधिकारात्५।१ समय-अभिसम्बन्धः१।१ वाशब्दः१।१	=प्रकरण(वश)से (इससूत्रमें) समयका संबन्ध है। (सूत्रमें) वा शब्द
विकल्प-अर्थः१।१ विकल्पः१।१ च*यथा-इच्छा-	=विकल्पके लिये है। और(=च) विकल्प है सो इच्छानुकूल (चलना) है
अतिसर्गः१।१	=(उक्त विकल्प है सोही) अतिसर्ग है (=जो चाहो सो करो)
एकम्२।१ वा*द्वौ२।२ वा त्रीन्२।३ वा समयान्२।३	=एकको अथवा दोको अथवा तीन समयको (जीव)
अनाहारकः१।१ भवति। इति*अर्थः१।१ त्रयाणाम्६।३	=अनाहारक होता है ऐसा आशय है। तीन (औदारिक-वैक्रियिक-आहारक)
शरीराणाम्६।३ षण्णाम्६।३ पर्याप्तीनाम्६।३	=शरीर,छह(आहार-शरीर-इन्द्रियश्वासोच्छ्वास-भाषा-मन)पर्याप्तोंके
योग्य-पुद्गल-ग्रहणम्१।१ आहारः१।१ तद्-अभावात्५।१	=योग्य पुद्गल(वर्गणाओं) का आदान सो आहार है उसके विद्यमान न होनेसे
अनाहारकः१।१ कर्म-आदानम्१।१ हि*निरन्तरम्१।१।	=अनाहारक है। कर्मवर्गणाओंका ग्रहण लगातार ही है।
कार्मणशरीरसद्भावे७।१ उपपादक्षेत्रम्२।१ प्रति*	=कार्मणशरीरके रहनेपर उपजनेके क्षेत्रकी ओर
ऋज्व्याम्७।१ गतौ७।१ आहारकः१।१ इतरेषु७।३ त्रिषु७।३	=मोड़ारहितगमन(=ऋजुगति)में(जीव)आहारक है। अन्य तीन
समयेषु७।३	=समयोंमें(जीव) अर्थात् एक विग्रहागतिमें, दो विग्रहागतिमें,तीन विग्रहागतिमें
अनाहारकः१।१। एवम्* गच्छतः६।१	=(नोकर्मकी अपेक्षा) अनाहारक है। ऐसे (भवान्तरप्रति) गमन करतेहुये जीवको

अत्यन्त संयोगकी विवक्षा है अर्थात् एक समय दो समय तीन समयोंमें अखंडरूपसे अनाहारक रहता है किसी एक खंडमें नहीं यह यहां पर विवक्षा है तथा यह नियम है कि जहांपर कालकृत अत्यन्त संयोग रहता है वहांपर अधिकरण अर्थके विद्यमान होते संतेभी सप्तमी विभक्तिकी बाधक द्वितीया विभक्तिही होती है इसलिये सूत्रमें 'एकं द्वौ त्रीन्' द्वितीया विभक्तियोंका प्रयोग ही ठीक है॥ द्वितीया विभक्तिका प्रमाण यह है कि अष्टाध्यायी२-३-५ कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे(द्वितीया)अत्यन्त संयोग गम्यमानहो तो काल और अध्ववाची(मार्गवाची) शब्दोंमें द्वितीया विभक्ति हो॥ मासमधीते(=मासम् अधीते)=अखंडरूपसे मासभर पढ़ता है। यहां मासेके स्थानमें मासम् द्वितीया विभक्ति लाये हैं। मासस्य द्विरधीते=मासमें दोबार पढ़ता है क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः=कोशके एक भागमें पर्वत है यहां दोनोंउदाहरणोंमें अत्यन्त संयोग नहीं है अतः द्वितीया विभक्ति नहीं है॥

ऽभिनवमूर्त्यन्तरनिर्वृत्तिजन्मप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म ॥ ३१ ॥

त्रिषु लोकेषूर्ध्वमधस्तिर्यक् च देहस्य समन्ततो मूर्च्छनं सम्मूर्च्छनमवयवप्रकल्पनम्। स्त्रिया उदरे शुक्रशोणितयोर्गरणं

अभिनवमूर्ति-अन्तर-निर्वृत्ति-जन्म-	=नवीन अन्य शरीरकी रचना(=निर्वृत्ति) को और जन्मके
प्रकार-प्रतिपादन-अर्थम् ४।। आह ?	=भेद जनावनेके लिये वा कहनेके लिये कहते हैं कि

(१) **सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाज्जन्म॥३१॥=सम्मूर्च्छनात्-गर्भात्-उपपादात्(२)-जन्म ॥ ३१ ॥**

सूत्रार्थः—सम्मूर्च्छनात् ५।।	=सम्मूर्च्छन(अर्थात् तीनलोकमें जहां तहां अवयव सहित शरीरके बनने) से
गर्भात् ५।	=गर्भ (अर्थात् माताकेरज और पिताके वीर्यके संयोग वा संबन्ध) से
उपपादात् ५।	=उपपाद (अर्थात् जिस स्थानमें आकार उत्पन्नहो वहां) से—उपपादशय्यासे अथवा उपपाद स्थानसे। (उपपाद=देवऔरनारकियोंके उत्पन्न होनेके स्थान)
जन्म १।।	=(जीवके) नवीन शरीरका धारण(=जन्म) है ॥ इस सूत्रका सारांश यह है कि सम्मूर्च्छनजन्म,गर्भजन्म,उपपादजन्म ये ही तीन भेद जन्मके हैं ॥

सूत्रकाअन्यपाठः--सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—सम्मूर्च्छन-गर्भ-उपपादाः १।जन्म १।।	=सम्मूर्च्छन,गर्भ और उपपादशय्यारूप (जीवकेये) तीन जन्म हैं
इत्यनुवादः-त्रिषु ७।लोकेषु ७। ऊर्ध्वम्*अधस्*तिर्यक्*च	=तीनलोकमें ऊपर नीचे और (=च) तिर्यक्
देहस्य ६।। समन्ततः*मूर्च्छनम् १।।सम्मूर्च्छनम् १।।	=चारों ओर वा जहां तहां (=समन्ततः) शरीरका बनजाना (=मूर्च्छन)सो सम्मूर्च्छन है
अवयव-प्रकल्पनम् १।।	=(अर्थात् देहके)अवयवकी (सर्वत्र) रचना वा उत्पत्ति(प्रकल्प) है सो सम्मूर्च्छन है ॥
स्त्रियाः ६।।उदरे ७।।शुक्र-शोणितयोः ६।।गरणम् १।।	=नारीके उदरमें वीर्य (=शुक्र) और लोहू (=शोणित) मिलना (=गरणं)

१ श्वेताम्बरस०के सभाष्य०में "उपपाद" वाक्यके स्थानमें 'उपपाता' लाये हैं अर्थात् 'सम्मूर्च्छनगर्भोपपाता जन्म' ऐसा पाठ है अर्थ दोनोंकाएकहै॥
(२) यहांपर जैसेकि 'उपपादाः' बहुवचनमें है उपपादेभ्यः पंचमी बहुवचनमें यह शब्द क्योंनहीं है॥हमारे यहां पूर्वोक्त दोनों पाठ विद्यमान हैं ॥

मिश्रणं गर्भः । मातोपभुक्ताहारगरणाद्वा गर्भः। उपैत्युपपद्यतेऽस्मिन्निति उपपादः । देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा ॥ एते त्रयः संसारिणां जीवानां जन्मप्रकाराः शुभाशुभपरिणामनिमित्तकर्मभेदविपाककृताः॥

अथाधिकृतस्यसंसारिविषयोपभोगोपलब्ध्याधिष्ठानप्रवणस्यजन्मनोयोनिविकल्पावक्तव्याइत्यतआह

मिश्रणम्१/१ गर्भः१/१ वा॥मातृ-उपभुक्त-आहार- गरणात्५/१ गर्भः१/१	=मिश्रित होना(=मिश्रणं) सोगर्भ है । अथवा मातासे खायेहुये (उपभुक्त) आहारके =निगलनेसे होना सोगर्भहै अर्थात् माताके आहारको अपना आहार बनाया जाय
उपैति । उपपद्यते । अस्मिन्७/१ इति॥उपपादः१/१	=जिसमें पहुंचता है(=उपैति)वा जिसमें उपजता है (=उपपद्यते) ऐसा उपपाद है अर्थात् जिसमें पहुंचकरि या जिसको प्राप्तहोकर उपजता है सो उपपाद है
देव-नारक-उत्पत्ति-स्थान-विशेष-सञ्ज्ञा १/१॥	=देव और नारकियोंके उपजनेके स्थानका(उपपाद यह) विशेष नाम है
एते त्रयः१/३ संसारिणां६/३ जीवानां६/३ जन्म-प्रकाराः१/३	=ये तीन भेद संसारी प्राणियोंके जन्मके हैं वा भवधारण करनेके हैं।
शुभ-अशुभ-परिणाम-निमित्त-कर्मभेद- विपाककृताः१/३	=(येतीनों जन्म)अच्छे बुरे भावोंके कारणसे कर्मोंके भेदोंके =उदयसे किये जाते है अर्थात् परिणामोंके कार्य कर्म बन्धके भेद हैं और कर्म बन्धोंके फल जन्म भेद हैं क्योंकि कारणके अनुकूलही लोकमें कार्य दीख पड़ताहै। शुभअशुभ जिसप्रकारका कर्म होता है उसीके अनुकूल जन्मोंकी उत्पत्ति होती है।
अथ॥अधिकृतस्य६/१	=अब जिस(जन्मका)ऊपरसे अधिकार वा प्रकरण चलाआरहाहै और
संसारि-विषय-उपभोग-उपलब्धि- अधिष्ठान-प्रवणस्य६/१ जन्मनः६/१	=जो संसारीजीवोंको विषयभोगोंकी (संसारि-विषयोपभोग) प्राप्ति(=उपलब्धि) के =आधारभूत शरीरकी उत्पत्तिमें(=अधिष्ठान)कारण है वा प्रवीणहै (=प्रवणस्य) उसजन्मके
योनिविकल्पाः१/३ वक्तव्याः१/३ इति॥अतः॥आह ।	=योनियोंके भेद(=विकल्पाः)कहना चाहिये। इस लिये कहते हैं कि

(१) उपैति – उप उपसर्ग समीपके अर्थमें है एति में ए गुण ईका है। ई अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद "जाना" के अर्थमेंहै अध्याय२पृष्ठ ५६ के अनुसार ई का गुण ए हो कर ति अन्य पुरुष एक वचन,परस्मैपद, वर्तमान कालको जोड़ा एति बना उप॥एति = उपैति = समीप (= उप) जाता है = एति,शब्दार्थ समीप जाताहै अर्थात् पहुंचता है ॥(२)उपपद्यते = उप-पद्-य-ते ॥ उप = आरम्भ(पद्मचन्द्र०कोशपृष्ठ७५) पद् दिवादि चतुर्थ गणका आत्मने पदी धातु जिसका अर्थ प्राप्त होना—है। य विकरण है जो चतुर्थ गणकी धातुओं के पीछे औरए–से–ते इत्यादि प्रत्ययों के पहिले जोड़ा जाताहै और ते आत्मनेपद एक वचन अन्य पुरुष वर्तमान कालका प्रत्ययहै॥ उपपद्का शब्दार्थ आरम्भता को (संसारमें) प्राप्त होता है ऐसा है अर्थात् उपजता है ॥

॥ सचित्तशीतसंवृताःसेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

[1]सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः–सचित्त–शीत–संवृताः१/३॥ =सचित्त,शीत,संवृत(और सचित्त–शीत–संवृत इन एक एकके)

सा—इतराः१/३॥ =प्रतिपक्षी,विपक्षी वा उलटे(जो अचित्त–उष्ण–विवृत) सहित (=सा)

च॰एकशः॰मिश्राः१/३॥ =और(सचित्त–शीत–संवृत)एकएकके मिश्र (जैसेसचित्ताचित्त,शीतोष्ण,संवृतविवृत)सहित

तद्–योनयः१/३॥ =उन(सम्मूर्च्छनादि जन्मों)की योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं(=योनयः) अर्थात्

(१) सचित्तयोनि जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जो चेतना सहित हो जैसे असाधारण शरीर वाले जीवोंके एकही शरीरमें बहुत जीव हैं तिससे परस्पर आश्रयसे सचित्त हैं

(२) अचित्त योनि-जीवका वह उत्पत्तिस्थानहैजहांपुद्गलस्कन्धवापुद्गलप्रचय अचित्त हों जैसेदेवनारिकीयोंके उपजनेकेस्थानअचित्त हैं

(३) सचित्ताचित्त-जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां चेतना और अचेतन पुद्गलके स्कंन्धहों जैसे जो जीव गर्भसे जायमान हैं गर्भज हैं वे सचित्ताचित्तस्वरूप मिश्रयोनिके धारक हैं क्योंकि उनके उत्पत्तिके स्थानस्वरूप माताके उदरमें वीर्य, और रज(लोहू) अचित्त पदार्थ हैं उनका संबन्ध सचेतन माताके आत्माके साथ है ॥

(४) शीतयोनि–जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीत स्पर्शरूप पुद्गलहों जैसे किसी किसी देव और नारिकियोंके शीतरूप पुद्गलकेस्कन्धही उत्पत्तिकास्थान है (किसी किसी देव नारकियोंके उष्णरूपही पुद्गलके स्कन्ध उत्पत्तिका स्थान हैं) देवनारकियोंकेबहुतोंकेउपपादस्थान उष्णहोते हैंबहुतोंकेशीतरहते हैंअतःवेशीतयोनिवालेभीहोते हैंऔरउष्ण योनिवालेभीहोते हैं

(५) उष्णयोनि-जीवकावहउत्पत्तिस्थानहैजहांउष्णस्पर्शरूपपुद्गलहोंजैसेअग्निकायिकनामवर्ती त्रसकायिकोंकेउत्पत्तिस्थानउष्णरूप ही हैं

(६) शीतोष्णयोनि–जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जहां शीतोष्णके मिश्ररूप पुद्गलहों अर्थात् देव और नारकी और अग्निकाय जीवोंसे भिन्न जो जीव हैं उनमें बहुतसे शीत योनिवाले होतेहैं बहुतसे उष्णयोनिवाले होतेहैंऔर बहुतसे शीतोष्णस्वरूप मिश्रयोनिवाले होते हैं इसप्रकार उनमें शीत,उष्ण,और शीतोष्णतीनों प्रकारकी योनियोंका होना संभव है ॥

(१) हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें 'संवृता' पाठ है कहीं कहीं पर (संवृत्ता) पाठ है जहां हमारे यहां (संवृता) पाठ है उसके अनुकूल दोनों आम्नायोंका पाठ एक है अर्थ भी एक है संवृत=ढका हुआ छिपाहुआ, । संवृता और संवृत्ता दोनों पाठ ठीक हैं ॥

आत्मनश्चैतन्यविशेषपरिणामश्चित्तम्। सह चित्तेन वर्तत इति सचित्तः॥शीत इति स्पर्शविशेषः। शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्तं द्रव्यमप्याह॥ सम्यग्वृतः संवृतः। संवृत इति दुरुपलक्ष्यःप्रदेश उच्यते॥ सह इतरैर्वर्तन्त इति सेतराः। सप्रतिपक्षा इत्यर्थः॥के पुनरितरे?। अचित्तोष्णविवृताः॥

---

(७) संवृतयोनि–जीवका वह उत्पत्ति स्थान है जिसके पुद्गल आच्छादित वा ढके हों जैसे देव, नारकी और एकेन्द्रियजीव संवृत योनि वाले हैं–जिस स्थान पर इनकी उत्पत्ति होती है वह स्थान ढका हुआ रहताहै उघड़ा हुआ नहीं रहता है।

(८) विवृत वा निवृतियोनि } जीवका वह उत्पत्तिस्थान है जिसके पुद्गलरूप स्कन्ध प्रगट दीखें—जैसे जो जीव दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय हैं वे विवृत योनि वाले हैं—उनकी उत्पत्ति का स्थान उघड़ाहुआ वा खुलाहुआ रहता है॥

(९) संवृतविवृतयोनि—जीवका वह उत्पत्ति स्थानहै जिसके पुद्गलके स्कंध कितने ही गूढ़ हों कितने ही उघड़े रूप हों जैसे जो जीव गर्भजहैंवे संवृतविवृतरूप मिश्रयोनि वालेहैं।उनकी उत्पत्तिका स्थान कुछ ढकाहुआ तो कुछ उघड़ा हुआ रहताहै।

वृत्त्यनुवादः आत्मनः[६] चैतन्य-विशेष–परिणामः[१] चित्तं[१]	=आत्माका चैतन्यका विशेषरूप परिणाम सो चित्तहै
सह*चित्तेन[३] वर्तते। इति*सचित्तः[१]।	=चित्तकरि सहित(=सह)होता है ऐसा सचित्त है
शीतः[१]इति*स्पर्शविशेषः[१]।शुक्लादिवत्* उभय-	=शीत ऐसा स्पर्शका भेदहै। श्वेतादिक(वर्णकेभेद)सदृश दोनों(द्रव्यऔरगुण)का
वचनत्वात्[५] तद्-युक्तम्[२] द्रव्यम्[२]	=वाचक होनेसे उस(शीत)मिलित(=युक्त)द्रव्य (अर्थात् शीतलद्रव्य) को
अपि*आह।	=भी(शीत)कहते हैं अर्थात् शीतगुणवचन और द्रव्यवचन दोनों हैं इसलिये शीत शीतलद्रव्यको भी कहते हैं॥
सम्यग्वृतः[१]संवृतः[१]	=भले प्रकार घिराहुआ आच्छादित वा आवृत है सो संवृत है
दुर्–उपलक्ष्यः[१]प्रदेशः[१]इति*संवृतः[१] उच्यते।	=नहींदेख्याऔरनहींलख्यागयाहै जिसका (=दुरुपलक्ष्यः)प्रदेशऐसासंवृतकहाजाताहै
सह* इतरैः[३] वर्तन्ते ।इति* सेतराः[१]॥	=उलटा करि सहित प्रवर्तता है ऐसा सेतरा(शब्दका अर्थ) है
स–प्रतिपक्षाः[१] इति*अर्थः[१] के[१] पुनः*इतरे[१]?	=विपक्षी वा विरोधवालीपंक्ति का है ऐसा अभिप्राय है। और इतर कौन हैं
अचित्त–उष्ण–विवृताः[१]	(=उत्तर)अचित्त और उष्ण और विवृत(यथासंख्य सचित्त-शीत-संवृत से उलटे)हैं

उभयात्मको मिश्रः। सचित्ताचित्तः शीतोष्णःसंवृतविवृत इति ॥ चशब्दः समुच्चयार्थः। मिश्राश्च योनयो भवन्तीति॥ इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषणं स्यात् ॥ एकश इति वीप्सार्थः॥ तस्य ग्रहणं क्रममिश्रप्रतिपत्त्यर्थम्॥ यथैवं विज्ञायेत। सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च संवृतश्च विवृतश्चेति।मैवं विज्ञायि सचित्तश्च शीतश्चेत्यादि। तद्ग्रहणं जन्मप्रकारप्रतिनिर्देशार्थम्।तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जन्मनां योनय इति त एते नव योनयो वेदितव्याः॥योनिजन्मनोरविशेष इति चेत्

	(सचित्त–शीत–संवृत को यथासंख्य अचित्त–उष्ण–विवृतसे मिलाओ तो)
उभय-आत्मकः १।१ मिश्रः १।१ सचित्ताचित्तः १।१ शीतोष्णः१।१	=दोनों रूप मिश्र हैं ॥ (वे) सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, और
संवृतविवृतः१।१ इति*चशब्दः १।१ समुच्चय-अर्थः १।१	=संवृतविवृत इस प्रकार(मिश्र)हैं। चकार समुच्चय केलिये है
मिश्राः १।३ च* योनयः १।३ भवन्ति।इति*इतरथा * हि*	=(अर्थात्) मिश्र भी (=च) योनियें होती हैं क्योंकि (=हि)अन्यथा होतो अर्थात्
	(यदि च शब्द समुच्चय वा समाहारके लिये न हो तोऔर मिश्रयोनियेंनहोंतो)
पूर्व-उक्तानाम् ६।३ एव*विशेषणम् १।१॥ स्यात् ।	=पहिले कहे हुये (सचित्त–शीत-संवृत) का ही (मिश्रशब्द) विशेषण हो जाय॥
एकशः*इति*वीप्सा-अर्थः १।१तस्य ६।१ ग्रहणम् १।१॥	=एकएक(=एकशः)ऐसा(शब्द)वारवारकेलियेहै। तिस(एकशःशब्द)काआदान
क्रम–मिश्र–	=क्रमसे(सचित्त-शीत-संवृतका यथासंख्य अचित्त-उष्ण-विवृतके साथ) मिश्रकी
प्रतिपत्ति-अर्थम्१।१॥यथा*एवम्*विज्ञायेत ।	=प्राप्ति वा प्रवृत्तिके लिये है। जैसे इसप्रकार जानो कि
सचित्तः१।१ च*अचित्तः१।१ च*शीतः१।१ च*उष्णः१।१ च*	=सचित्त और अचित्त और (=च) शीत और (=च)उष्ण
संवृतः१।१ च*विवृत १।१ च*इति*मा*एवम्* विज्ञायि ।	=और(=च)संवृत और(=च)विवृत ऐसे(इनकामिश्र)हैं। ऐसे मतिजानो कि
सचित्तः१।१ च*शीतः१।१ च*इत्यादि१।१॥तद्-ग्रहणम्१।१॥	=सचित्त और शीत इत्यादिका(मिश्र) है। (इससूत्रमें)तद्(शब्द) का आदान
जन्म-प्रकार प्रति निर्देश-अर्थम्१।१॥ तेषाम् ६।३	=जन्मके भेदोंके जनावनेके लिये है। तिन
सम्मूर्च्छनादीनाम् ६।३ जन्मनाम् ६।३॥ योनयः१।३ इति*	=सम्मूर्च्छन आदिक जन्मकी(येनव)योनियें वा उत्पत्तिस्थान हैं
ते १।३ एते१।३ नव १।३ योनयः१।३ वेदितव्याः१।३	=ते इतनी नव योनियें जानना चाहिये
योनि-जन्मनोः६।२॥ अविशेषः१।१इति*चेत्*	=योनि और जन्ममें भेदनहीं(=अविशेष) ऐसी शंकाहोनेपर (उत्तरमें कहते हैं कि)

न आधाराधेयभेदात्तद्भेदः ॥ त एते सचित्तादयो योनयः आधारा । आधेया जन्मप्रकाराः ॥ यतः सचित्तादियोन्यधिष्ठाने आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जन्मना शरीराहारेन्द्रियादियोग्यान्पुद्गलानुपादत्ते ॥ देवनारका अचित्तयोनयः । तेषां हि योनिरुपपाददेशपुद्गलप्रचयोऽचित्तः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः । तेषां हि मातुरुदरे । शुक्रशोणितमचित्तं, तदात्मना चित्तवता मिश्रणान्मिश्रयोनिः॥सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः । केचित्सचित्तयोनयः ।अन्ये अचित्तयोनयः।अपरे मिश्रयोनयः ॥ सचित्तयोनयःसाधारणशरीराः । कुतः । परस्पराश्रयत्वात् ॥इतरे अचित्तयोनयो-

न॥आधार-आधेय-भेदात् =नहीं, (योनि और जन्ममें भेद है)। आधार और आधेय के भेद से

तद्-भेदः । ते । एते । सचित्त-आदयः । योनयः । =उन(योनि और जन्म)में भेद है । वे इतनी(=एते)सचित्त आदिक (योनियें)

आधाराः । आधेयाः। जन्म-प्रकाराः । यतः॥ सचित्त- =आधार वा आश्रय हैं। जन्मके भेद हैं वे आधेय वा आश्रित हैं। क्योंकि सचित्त

आदि-योनि-अधिष्ठाने।आत्मा।सम्मूर्च्छन-आदिना। =आदिक योनियोंके आधारविषैं चैतन्य (आत्मा) सम्मूर्च्छन आदिक

जन्मना।शरीर-आहार-इन्द्रिय-आदि योग्यान्। =जन्मकरि शरीर आहार इन्द्रिय आदिक योग्य

पुद्गलान् । उपादत्ते। देव-नारकाः । अचित्त-योनयः। =पुद्गलोंको ग्रहण करता है । देव और नारिकी अचित्त योनिवाले हैं

तेषाम्।हि॥योनि-उपपाददेश-पुद्गल-प्रचयः। =क्योंकि तिन(देव-नारकियों)कीयोनि उपजनेकास्थान(=उपपाददेश)पुद्गलकास्कंध

अचित्तः। गर्भजाः। मिश्रयोनयः। तेषाम्। हि॥मातुः। =अचित्तहै।गर्भसेउत्पन्नहुयेजीवमिश्र(अचित्ताचित्त)योनिवाले हैंक्योंकितिनकीमाताके

उदरे।शुक्र-शोणितम्।अचित्तम्।तद्-चित्तवता। =उदरमें वीर्य और लोहू(रज)अचित्त है । उस(माता)का चितवान्

आत्मना।मिश्रणात्।मिश्रयोनिः।सम्मूर्च्छनजाः। =आत्मासे(शुक्र-शोणितअचित्तके) मिलापसे मिश्रयोनि है । सम्मूर्च्छनजन्मवाले

त्रि-विकल्पयोनयः।केचित्॥सचित्त-योनयः।अन्ये। =तीन प्रकारके योनिवाले हैं । कितने सचित्त योनिवाले हैं । दूसरे

अचित्त-योनयः। अपरे। मिश्र-योनयः। =अचित्तयोनिज है। (इनतें)भिन्न मिश्रयोनिवाले अर्थात् सचित्ताचित्त योनिवाले हैं

सचित्त-योनयः। साधारणशरीराः। =सचित्तयोनिज साधारणशरीरवाले हैंअर्थात् जिनकेंएकहीशरीरमेंबहुतजीवहोते हैं

कुतः॥परस्पर- =क्योंकर(साधारणशरीरवाले सचित्तयोनिज हैं)क्योंकि आपसमें(एकजीवदूसरेके)

आश्रयत्वात्। इतरे। अचित्त- =आश्रयसे वा आधारसे है ।(साधारण शरीरसे) भिन्न(सम्मूर्च्छनजीव)अचित्त

योनयः। =योनिवाले हैं अर्थात् उनके उपजनेका स्थान अचेतन पुद्गलके स्कन्धही हैं ॥

मिश्रयोनयश्च ॥ शीतोष्णयोनयो देवनारकाः तेषां हि उपपादस्थानानि कानिचिच्छीतानि, कानिचिदुष्णानीति । उष्णयोनयस्तेजस्कायिकाः ॥ इतरे त्रिविकल्पयोनयः केचिच्छीतयोनयः केचिदुष्णयोनयः अपरे मिश्रयोनय इति ॥ देवनारकैकेन्द्रियाः संवृतयोनयः॥ विकलेन्द्रिया विवृतयोनयः ॥ गर्भजा मिश्रयोनयः ॥ तद्भेदाश्चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या आगमतो वेदितव्या ॥ उक्तं च ।

णिच्चिदरधादु सत्त य तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव।सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा।

मिश्रयोनयः च* शीत-उष्ण-योनयः देवनारकाः =और(=च) सचित्ताचित्त योनिज हैं । देव और नारकी शीतोष्ण योनिज हैं

तेषाम् हि* उपपादस्थानानि कानिचित्* =क्योंकि(=हि) तिन (देव-नारकिन) के उपजनेके ठिकाने कितने

शीतानि कानिचित्* उष्णानि इति तैजःकायिकाः =शीत हैं कितने उष्ण हैं । तैजसकायके जीव

उष्ण-योनयः इतरे त्रिविकल्प-योनयः केचित्* =उष्णयोनिवाले हैं । भिन्न प्राणी तीन प्रकारके योनिवाले हैं । केई

शीतयोनयः केचित्* उष्णयोनयः अपरे =शीत योनिज हैं । केई उष्ण योनिज हैं । अन्य

मिश्रयोनयः इति* देव-नारकएकेन्द्रियाः =मिश्र(शीतोष्ण) योनिवाले हैं । देव और नारकी और एकेन्द्रिय जीव

संवृतयोनयः विकल-इन्द्रियाः =संवृतयोनिवाले हैं । विकलइन्द्रिय जीव अर्थात् द्विइन्द्रियसे चौइन्द्रियतक

विवृतयोनयः गर्भजाः मिश्रयोनयः =विवृत वा निवृत योनिज हैं । गर्भज मिश्रयोनिज हैं अर्थात् गर्भसे उत्पन्न हुये जीवोंकी संवृत विवृत योनि हैं भावार्थ योनिके केते प्रदेशगूढ़ हैं केतेप्रदेश उघड़े हैं

तद्भेदाः चतुरशीतिशतसहस्रसंख्या ॥ =तिन(नवयोनियों)के भेद चौरासीसो सहस्र गणना अर्थात् चौरासीलाख गिनती

आगमतः* वेदितव्याः उक्तम् च* =शास्त्रसे जानना चाहिये । कहाभी है

णिच्चिदरधादु(=नित्य-इतर-धातु) =नित्यनिगोद, इतरनिगोद, धातु(पृथिवीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक)की

सत्त य* तरुदस च(=सप्त च तरुदश च) =सात सात और (=य=च) वनस्पतिकायिककी, दश और (=च)

वियलिंदिएसु छच् एव(विकलेन्द्रियेषु षट् एव)=विकलेन्द्रिय जीवविषैं छह ही अर्थात् द्वीन्द्रियमें दो, त्रीन्द्रियमें दो, चतुरिन्द्रियमें दो

सुर-णिरिय-तिरिय-चउरो(सुर-निरय-तिर्यक्-चतस्रः)=सुर-नारक और तिर्यंचोंकी चार चार(और)

चोद्दसमणुए सदसहस्सा(चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राणि)=चोदहलाख मनुष्यविषैं हैं(अर्थात् ४२+१०+६+१२+१४ सब चौरासीलाख हैं)

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेदसङ्कटे त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृतामनियमेन प्रसक्ते तदवधारणार्थमाह—

॥ जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

भावार्थः—नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक, इन छहकी सात सात लाख योनियें[1] ऐसे४२लाखहुईं; वनस्पतिकायिकी दशलाख योनियें, दोइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, तीनइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख, चारइन्द्रियवाले जीवोंकी दोलाख ऐसे इनविकलेन्द्रियोंकी छहलाख योनियें हुईं। देवोंकी चारलाख नारकियोंकी चारलाख पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चारलाख ऐसे ये बारहलाखयोनियें हुईं मनुष्योंकी चोदहलाख योनियें मिलकर ऐसबं (४२+१०+६+१२+१४) चौरासीलाख हुईं

एवम् एतस्मिन् नवयोनि-भेदसङ्कटे = ऐसें तिस नवभेदरूपयोनि संकट विषैं
त्रिविधजन्मनि सर्वप्राणभृताम् अनियमेन = तीन प्रकार जन्म समस्त संसारी जीवोंकें नियमकरिरहित
प्रसक्ते तद्–अवधारण-अर्थम् आह = प्राप्तहोनेपर उस(नियम)के निश्चय करणके लिये अर्थात् निश्चय करनेके लिये कहते हैं कि

[2] **सूत्रम्-जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः=जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः (जन्म) ॥ ३३ ॥**

सूत्रार्थः-जरायुज–अण्डज = जरायुमें उत्पन्नहोनेवाले(जीव)निका, और अंडेमें उपजनेवाले (जीव) निका, और
पोतानाम् गर्भः जन्मः = पोत(जीव) निकागर्भजन्महै अर्थात् जोजीव जालके समान मांस और रुधिर से व्याप्त एक प्रकारकी थैलियोंसे लिपटेहुए पैदा होते हैं उनको जरायुज कहते हैं जैसे मनुष्य (क) माताकेरुधिर पिताकेवीर्यसे नखकी त्वचाकेसमान कठिनसंगोल २ आवरणको अंडा कहते हैं और जो अंडेसे जो उत्पन्नहोंउन्हें अंडजकहते हैं जैसे कुकट (ख)जिसकेऊपरजरा वा अंडा कुछभी आवरण नहीं होता, माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै वह पोतज है जैसे हाथी, बिल्ली, सिंह, बंदर इत्यादि

(१) आकार योनि और गुण योनिके भेदसे योनि दो प्रकारकी है यहांपर ये भेद गुण योनिकी अपेक्षासे कहे हैं आकार योनिके तीन भेद हैं शंखावर्त कूर्मोन्नत और वंशपत्र। शंखावर्त योनिमें गर्भ नहीं ठहरता। कूर्मोन्नत योनिमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र और उनके भाईयोंके अतिरिक्त कोई उत्पन्न नहीं होता और वंशपत्र योनिमें शेषगर्भ जन्मवाले सर्व जीव उत्पन्न होते हैं।

(२)हमारे यहां कहीं कहीं पर जरायुजाण्डज और कहीं कहीं पर जरायुजांडज पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥ देखो अध्याय१ पृष्ठ ५४०,५४१की टिप्पणी॥ इस सूत्रमें 'जन्म'शब्दकी अनुवृत्ति सूत्र ३१ वांसे आती है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०का पाठ"जराय्वण्ड पोतजानां गर्भः"ऐसा है॥हमारे यहांके पाठमें जकार जरायु और अंड के साथ है सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पाठमें 'पोत' के साथ है जो तीनों जरायु-अंड-पोत पर लागू है अर्थात् जरायुजस्यगर्भः जन्म, अंडजस्य गर्भः जन्म, पोतजस्य गर्भः जन्म, ऐसे रूप होजाते हैं जिससे प्रगट है कि दोनों आम्नायोंमें अर्थ एकसा है॥

यज्जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं तज्जरायुः । यन्नखत्वक्सदृशमुपात्तकाठिन्यं शुक्रशोणितपरिवरणं परिमण्डलं तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गतमात्र एव परिस्पन्दादि सामर्थ्योपपेतः पोतः ॥ जरायौ जाता जरायुजाः । अण्डे जाता अण्डजाः । जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोताः गर्भयोनयः ॥ यद्यमीषां जरायुजाण्डजपोतानां गर्भोऽवध्रियते, अथोपपादः केषां भवतीत्यत आह—

वृत्त्यनुवादः—यद् जालवत्*प्राणि-परिवरणं =जो जालके सदृश जीवका आच्छादन (=परिवरण)
वितत-मांस-शोणितम् तद् जरायुः यद् नख- =जो मांस और रुधिर(=शोणित)करि व्याप्तहो सो जरायु है। जो नों (=नख) के
त्वक्-सदृशम् उपात्त-काठिन्यम् =त्वचा वा छिलकेकेसमान कठोरता वा कड़ापन गृहीत (=उपात्त) हो
शुक्र-शोणित-परिवरणम् परिमण्डलम् =जिस (त्वचा)में वीर्य लोहू वेष्टित हो गोलाकारसा हो
तद् अण्डम् =सो अंड है अर्थात् जो नखकी छालके समान कठिनहो, वीर्य और रजसे आच्छादितहो और गोलाकारहो उसको अंडकहते हैं
किञ्चित्-परिवरणम् अन्तरेण*परिपूर्ण-अवयवः =कोई वस्तु (=किञ्चित्) आवरण विना (=अन्तरेण) संपूर्ण अवयव सहित
योनि-निर्गतमात्रः एव*परिस्पन्द-आदि-सामर्थ्य- =योनिसे निकलने परही हलन चलन आदि सामर्थ्य
उपपेतः पोतः =सहितहो सो पोत है अर्थात् जिसके ऊपर जरा वा अंड कुछभी आवरण नहीं होता है माताके उदरसे निकलतेही चलने फिरने लगताहै उसे पोत कहते हैं
जरायौ जाताः जरायुजाः अण्डे जाताः अण्डजाः =जरायुमें उत्पन्नहुये जरायुज हैं। अंडेविषै उपजै सो अंडज हैं
जरायुजाः च*अण्डजाः च*पोताः च* =और जरायुसे उपजनेवाले और अंडेसे उत्पन्न होनेवाले और पोत
जरायुज-अण्डज-पोताः गर्भ-योनयः =(यथासंख्य) जरायुज-अंडज-पोत हैं (और ये सब) गर्भयोनिवाले हैं
यदि*अमीषाम् जरायुज-अंडज-पोतानाम् =जो इन (=अमीषाम्) जरायुज-अंडज-पोतोंका (उपजनेका स्थान)
गर्भः अवध्रियते अथ*उपपादः केषाम् =गर्भ निश्चयकियागया है तो अब उपपाद (जन्म)किन(जीवों) के
भवति इति* अतः*आह =होताहै इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

देवानां नारकाणां च उपपादो जन्म वेदितव्यम् ॥ अथान्येषां किं जन्मेत्यत आह--

॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

गर्भजेभ्यःऔपपादिकेभ्यश्चान्ये शेषाः। तेषां सम्मूर्छनंजन्मेति॥एते त्रयोऽपि योगा नियमार्थाः।

सूत्रम्—[१]देवनारकाणामुपपादः	=देवनारकाणामुपपादः (जन्म भवति) ॥३४ ॥
सूत्रार्थः—देव-नारकाणाम्[६/३]।	=(भवनवासी आदि चारों प्रकारके)देव और नारकियोंके
उपपादः[१/१]। जन्मः[१/१]॥ भवति T	=उपपाद जन्म होता है। (जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इसमें आती है)
वृत्त्यनुवादः-देवानाम्[६/३]नारकाणाम् [६/३]। च	=देव और (=च) नारकियोंके
उपपादः[१/१]जन्म[१/१]॥वेदितव्यम्[१/१]॥अथ*अन्येषाम्[६/३]।	=उपपाद जन्म जानना चाहिये। अब दूसरे(जीव)निकें अर्थात् जरायुज अंडज और पोतोंको और देवनारिकियोंको छोड़कर अवशेष जीवोंका
किम्*जन्म[१/१]॥ इति* अतः* आह T	=कौन जन्म है इस लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्—[२]शेषाणां सम्मूर्च्छनम्	=शेषाणां सम्मूर्च्छनम् (जन्म भवति) ॥ ३५ ॥
सूत्रार्थः-शेषाणाम्[६/३]	अवशेष(जीव)निकें अर्थात् गर्भज और उपपाद जन्मोंके अतिरिक्त
सम्मूर्च्छनम्[१/१]॥ जन्म[१/१]॥ भवति T	=सम्मूर्च्छन जन्म होताहै।(जन्म शब्दकी अनुवृत्ति इकतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै)
वृत्त्यर्थःगर्भजेभ्यः[५/३]औपपादिकेभ्यः[५/३]चअन्ये[१/३]शेषाः[१/३]	=गर्भजजीवोंसे उपपाद जन्मवाले(देव नारकियों) से भिन्न शेष (जीव रहते) हैं
तेषाम्[६/३] सम्मूर्च्छनम्[१/१]॥ जन्म [१/१]॥ इति*	=तिन (गर्भज और औपपादिकों से अतिरिक्तजीवोंके) सम्मूर्च्छन जन्म होता है
एते [१/३] त्रय[१/३] अपि* योगाः[१/३] नियमार्थाः[१/३]।	=ये तीनों ही युक्तियें अर्थात् तेतीसवां,चौतीसवां,पैंतीसवां सूत्र) नियमके लिये हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्र का शुद्ध पाठ सर्वत्र एक है।"नारकदेवानामुपपातः"ऐसा पाठ सभाष्य० का है दोनों आम्नायों में अर्थ एक सा है॥

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै। तत्त्वार्थसूत्रकी प्रतियोंमें सम्मूर्च्छन, संमूर्च्छन, सम्मूर्छन, संमूर्छन, ये चार पाठ प्राप्त हैं चारों ठीक हैं (अध्याय १ पृष्ठ ५४०, ५४१,७०;) सूत्रके अंतमें जहां"संमूर्च्छनं"हैवह पाणिनि और शाकटायनकेमतमें अशुद्ध है।संमूर्च्छनम् चाहिये॥

उभयतो नियमश्चद्रष्टव्यः॥जरायुजाण्डजपोतानामेव गर्भः। गर्भ एव च जरायुजाण्डजपोतानाम्॥ देवनारकाणामेवोपपादः। उपपाद एव देवनारकाणाम्॥ शेषाणामेव सम्मूर्च्छनम्। सम्मूर्च्छनमेव शेषाणामिति॥ तेषां पुनः संसारिणां त्रिविधजन्मनामाहितबहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभनामकर्मविपाकनिर्वर्तितानि बन्धफलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणिकानीत्यत आह—

च * उभयतः * नियमः १ द्रष्टव्यः १। =और (=च) (इन गर्भज, औपपादिक और सम्मूर्च्छनोंके) दोनों ओर नियम जानो

जरायुज–अण्डज–पोतानाम् ६ एव* गर्भः १ =(सो उपर्युक्त नियम दोनों तरह ऐसे है कि) जरायुज, अंडज, पोतनिकें ही गर्भ है

च* गर्भः१ एव* जरायुज–अण्डज–पोतानाम्६ =और (च) गर्भ ही है (जन्म) जरायुज, अंडज, पोतनिकें भावार्थ दोनों वाक्योंका यहहै कि जरायुज, अंडज और पोतनिकें ही गर्भ जन्म है दूसरे प्रकारके जीवोंकें गर्भ जन्म नहीं है वा गर्भ जन्म ही न कि और कोई जन्म है जिनकें ऐसे जरायुज-अंडज पोतज हैं।

देव–नारकाणाम् ६ एव* उपपादः १ =देव और नारकियोंके ही उपपाद (जन्म) है (नकि किसी और जीवोंकें)

उपपादः १ एव* देवनारकाणाम् ६। =उपपाद ही है (जन्म न कि कोई और जन्म) जिनकें ऐसे देव नारकी हैं

शेषाणाम् ६ एव* सम्मूर्च्छनम् १। =बचे हुये (जीव) निकें ही सम्मूर्च्छन (जन्म) है (न कि किसी और जीवोंकें)

सम्मूर्च्छनम् १ एव* शेषाणाम् ६ इति* =सम्मूर्च्छन जन्म (नकि कोई अन्य जन्म) है बचे हुये जीवोंकें॥

पुनः त्रिविध-जन्मनाम्६ तेषाम्६ आहित-बहु-विकल्प- =और तीन प्रकारके हैं जन्म जिनकें और ग्रहण किये हैं (=आहित) बहुत विकल्प रूप

नवयोनिभेदानाम्६ संसारिणाम्६ शुभ-अशुभ- =नव योनिके भेद जिनने ऐसे संसारी जे हैं तिनकें शुभ, अशुभ

नामकर्म-विपाक-निर्वर्तितानि१ बन्ध-फल-अनुभव =नाम कर्म करिके और बंधको जो फल है तिसके अनुभव करने के

अधिष्ठानानि१ शरीराणि१ कानि१ इति अतः* आह =स्थान वा आधार शरीर (ते) कितने हैं। इस लिये कहते हैं कि अर्थात् गर्भ आदि तीन प्रकारके जन्म और अनेक भेदोंसे युक्त नौ प्रकारकी योनियोंके धारक संसारीजीवोंकेशुभ-अशुभ नाम कर्मों से रचित और कर्म बन्धके फलके अनुभव के स्थान शरीर कितने हैं सूत्रकार उन्हें गिनाते हैं कि

॥ औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥३६॥

विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तीनि शीर्यन्त इति शरीराणि ॥ औदारिकादिप्रकृतिविशेषदयप्राप्तवृत्तीनि औदारिकादीनि ॥ उदारं स्थूलम् । उदारे भवमौदारम् । औदारं प्रयोजनमस्येति औदारिकम् ॥ अष्टगुणैश्वर्ययोगादेकानेकाणु-

सूत्रम्— [1]औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानिशरीराणि ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः-औदारिक-वैक्रियिक- =इन्द्रियोंसेदेखनेयोग्यस्थूलशरीर, जिसमेंएकअनेकस्थूलसूक्ष्महलकाभारीइत्यादिविकारहोनेकी-[योग्यताहो;

आहारक- =जोसूक्ष्मपदार्थकेनिर्णयकेलिये वा ऋद्धिविशेषका सद्भाव जाननेकेलिये वा असंयमके दूरकरनेके लिये प्रमत्त ही गुणस्थानवर्ती मुनियोंके प्रगटहो

तैजस-कार्मणानि[1]॥ =जो तेजका कारणहो वा जिसमें तेज रहता हो, ज्ञानावरणादि आठकर्मोंका जो कार्य हो [वा उन कर्मोंका समूहहो

शरीराणि [1]॥ =(संसारी जीवोंके ये औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, क्रमसे पांच)शरीर हैं॥

वृत्त्यर्थः-विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित-वृत्तीनि[1]॥=शरीर नामा नामकर्मके (=विशिष्टनामकर्म) उदयसेजो प्राप्त हुये (=वृत्तीनि)

शीर्यन्ते ।इति*शरीराणि[1]॥औदारिक- =सो गलते हैं-सड़ते हैं वा झड़ते हैं (शीर्यन्ते) ऐसे शरीर हैं जो औदारिक

आदि-प्रकृति- =वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, (शरीरनामा नामकर्मकी) प्रकृतियोंके

विशेष-उदय-प्राप्त-वृत्तीनि[1]॥ =विशेषरूप उदयकरि(=उदय प्राप्त)प्रवर्तते हैं (=वृत्तीनि) ते(क्रमानुसार)

औदारिक-आदीनि[1]॥उदारम्[1]॥स्थूलम्[1]॥ =औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण हैं (=आदीनि)। उदार है सो स्थूल है

उदारे[1]॥भवम्[1]॥औदारम्[1]॥ औदारम्[1]॥ =स्थूलविषैं हो सो औदार है। स्थूलहोना व स्थूलपना है

प्रयोजनम्[1]॥अस्य[1]॥ इति*औदारिकम्[1]॥ =प्रयोजनजिसका ऐसा औदारिक है

अष्टगुण-ऐश्वर्य-योगात्[1] एक-अनेक-अणु- =[2]आठगुण वा विभूतियोंके ईश्वरपनेके संयोगसे वा सम्बन्धसे एक अनेक छोटा

(१) हमारेयहां जहां शुद्ध लेख है वहां सर्वत्र इस सूत्रका एक ही पाठ है। सभाष्य० में "वैक्रियिक" शब्दके स्थान में "वैक्रिय" शब्द है। दोनों आम्नायोंमें शेष पाठ और अर्थ एक है। (२) आठ प्रकारकी सिद्धियां और विभूतियोंके नाम अमरकोश स्वर्गवर्ग श्लोक३०में ऐसे हैं कि "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिःप्राकाम्यमीशित्वं। वशीत्वं चाष्टसिद्धयः (ध) अणिमन् (पु०) छोटापन अर्थात् जिससे जीव छोटासा रूपधर सब स्थानोंमें

महच्छरीरविविधकरणं विक्रिया, सा प्रयोजनमस्येति वैक्रियिकम् ॥ सूक्ष्मपदार्थनिर्ज्ञानार्थमसंयमपरिजिहीर्षया वा प्रमत्तसंयतेनाह्रियते निर्वर्त्यतेतदित्याहारकम् ॥ यत्तेजोनिमित्तं तेजसि वा भवं तत्तैजसम् ॥ कर्मणां कार्यं कार्मणम् ॥ सर्वेषां कर्मनिमित्तत्वेऽपि

महत्–शरीर–विविधकरणम् १।। विक्रिया १। =बड़ा शरीर अनेक प्रकार(=विविध) करना सो विक्रिया है

सा १। प्रयोजनम् १।। अस्य ६। इति * वैक्रियिकम् १।। =विक्रिया (=सा) है प्रयोजन जिसका ऐसा वैक्रियिक है

सूक्ष्म–पदार्थ–निर्ज्ञान–अर्थम् १।। वा असंयम– =सूक्ष्म पदार्थोंके निर्णयके लिये अथवा असंयमके

परिजिहीर्षया ३। प्रमत्तसंयतेन ३। =दूरकरनेकी इच्छासे प्रमत्तविरत छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकरि

आह्रियते T निर्वर्त्यते T =रचाजाता वा प्रगट किया जाता है परिपूर्ण किया जाता है वा सिद्धि किया जाताहै

तत् १।। इति * आहारकम् १।। =सो ऐसा आहारक(शरीर)है। सारांशयहहैकि छठवें गुणस्थानवर्ती ही मुनिकेतत्त्वोंमेंकोई शंका होनेपर केवली वा श्रुतकेवलीके निकट जानेके लियेमुनिके मस्तकमेंसे जो एक हाथका पुतला निकलता है उसको आहारक शरीर कहते हैं ॥

यत् १।। तेजस्–निमित्तम् १।। वा तेजसि ७।। भवम् १।। =जो तेजका कारण अर्थात् देहको दीप्ति रूप करनेको निमित्त अथवा तेजकेविषैंभया

तत् १।। तैजसम् १।। कर्मणाम् ६।। कार्यम् १।। कार्मणम् १।। =सो तैजस है। कर्मोंका कार्य सो कार्मण है

सर्वेषाम् ६।। कर्मनिमित्तत्वे ७।। अपि * =सर्व (शरीरों) का कर्म कारण होनेपर भी अर्थात् कर्मके कारण सर्व शरीर हैं तौभी

जासके वा गमन करसके (र) महिमन् (पुल्लिंग) महत्त्व, बड़ापन, जिससे जीव बड़ी मूर्तिबन स्थानोंमें जासकै (ल) गरिमन् (पुल्लिंग) भारीपन (व) लघिमन् = लघुत्व. हलकापन (श) प्राप्तिः (स्त्री०) = जिससे मन मांगी वस्तु मिलती है (ष) प्राकाम्यं (न०) प्राकाम, इच्छानभिघात रूप ऐश्वर्य, ॥ (स) ईशित्वं (नं०) ईशिता, अणु मादि आठ ऐश्वर्यों मेंसे सबपर मालिक पना (ह) वशित्वं (न०) = वशिता, स्वाधीनता अर्थात् जितेन्द्रिय स्वातन्त्र्य, जिसमें इन्द्रियजीतली हैं दूसराश्लोक पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ में यह है "अणिमा लघिमा प्राप्तिः। प्राकाम्यं महिमा तथा। ईशित्वंच वशित्वंच तथा कामा वसायिता ॥ दोनों श्लोकोंके मिलानेसे प्रगट होता है कि इस श्लोकमें गरिमन् के स्थानमें "कामावशा (सा) यता" है ॥ कामावशायिता = (स्त्री०) अणुमादि आठ प्रकारके ऐश्वर्यमें सत्य संकल्पता(जो इच्छा करै सो पूरी हो जाय) रूप ऐश्वर्य ॥ पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ १०५ ॥ (१) धातुमें य जोड़कर आत्मनेपद प्रत्यय" लगाने से कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग बनाये जाते हैं" यदि धातुके अंतका अक्षर ऐसा ऋ हो जिसके पहिले संयोग व्यंजन नहीं हो तो ऋ के स्थानमें "रि होताहै जैसे = हृ = ह्रि अतःआ + ह्रि + य + ते = आह्रियते॥ निर् + वर्त् + य + ते = निर्वर्त्यते॥

रूढिवशाद्विशिष्टविषये वृत्तिरवसेया ॥ यथौदारिकस्येन्द्रियैरुपलब्धिस्तथेतरेषां कस्मान्न भवतीत्यत आह—

॥ परम्परं सूक्ष्मम्॥३७॥

परशब्दस्यानेकार्थवृत्तित्वेऽपि विवक्षातो व्यवस्थार्थगतिः ॥

रूढिवशात् विशिष्ट-विषये	=रूढिके वशसे विशेषपनामें(१)कार्माणशरीर ही को कर्मका कार्यरूप)
वृत्तिः अवसेया यथा*औदारिकस्य इन्द्रियैः	=निरुक्ति बतलाई गई है। जैसे औदारिक (शरीर) का इन्द्रियोंकरि
उपलब्धिः तथा*इतरेषाम्	=ग्रहण है (=उपलब्धिः) तैसे अन्य(वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्माण शरीर) निका
कस्मात् न*भवति । इति*अतः*आह ।	=क्योंकर वा किसलिये(इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण)नहीं होता है। इसलिये कहते हैं कि
सूत्रम्-परम्परंसूक्ष्मम्(२)	=(तेषाम् औदारिकादिशरीराणाम् परंपरंसूक्ष्मम्(भवन्ति)॥३७
सूत्रार्थः—(३)तेषाम् परम् परम्	=उन(औदारिक,वैक्रियिक,आहारक,तैजस,कार्माण)मेंसे अगले अगले
सूक्ष्मम् भवन्ति ।	=(पूर्वपूर्वकी अपेक्षासे)सूक्ष्म वा अस्थूलहैं अर्थात् औदारिककीअपेक्षासेवैक्रियिकसूक्ष्महै, वैक्रियिककी अपेक्षासेआहारकसूक्ष्महै,आहारकसेतैजससूक्ष्महै, तैजससेकार्माणसूक्ष्महै,॥
वृत्त्यनुवादः-परशब्दस्य अनेक-अर्थ-वृत्तित्वे अपि	=परशब्दके बहुतसे अर्थ होनेपर (=वृत्तित्वे) भी
विवक्षातः*व्यवस्था(४)—अर्थ—गतिः	=विवक्षासे(यहां पर) व्यवस्था (अर्थात् विशेष अवस्था)के अर्थमें प्राप्तिहै वा पवर्ते है ॥

(१)अन्य शरीरको कार्मण निमित्त है तो कार्मणको क्या निमित्त है?कार्मणका कार्मणही निमित्त है वा जीवके परिणाम मिथ्यादर्शनादिकनिमित्तहैं॥
(२)श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्य०में तेषाम्'शब्द हमारे यहांके पाठसे अधिकहै॥ शेषपाठ एकहै और अर्थभी एकहै॥हमारे यहां बहुतसी पुस्तकोंमें परं परं सूक्ष्मम् ऐसा पाठ है कहीं कहीं पर"परं परं सूक्ष्मं' पाठ है ॥ कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अनूकूल यह पाठ भी शुद्ध है परंतु पाणिनिमुनि तथा शाकटायनमुनि इत्यादिके मतमेंअशुद्धहै॥(देखोटिप्पणीअध्याय२ पृष्ठ६)(३)यहांषष्ठीविभक्ति सप्तमीकेअर्थमेंआईहै(देखोटिप्पणीअध्याय१ पृष्ठ१३८)
(४)पूर्वापेक्षया परत्वमिति परशब्दो व्यवस्थार्थः ॥

पूर्व-अपेक्षया परत्वम्	=पहिले (शरीर) की विवक्षाकरि अगले (शरीर) का (सूक्ष्म) होना (=परत्वम्)
इति*परशब्दः व्यवस्था-अर्थः।	=ऐसे(सूत्रमें) पर शब्द विशेष अवस्थाके अर्थ है (व्यवस्थाके अर्थमें आया है)

पृथग्भूतानां शरीराणां सूक्ष्मगुणेन वीप्सानिर्देशः क्रियते परम्परमिति ॥ औदारिकं स्थूलं, ततः सूक्ष्मं वैक्रियिकं, ततः सूक्ष्ममाहारकं, ततः सूक्ष्मं तैजसं, तैजसात्कार्मणं सूक्ष्ममिति ॥ यदि परम्परं सूक्ष्मं, प्रदेशतोऽपि नूनं परम्परं हीनमिति विपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

पृथक् * भूतानाम् ॥ = { संज्ञा(नाम)लक्षण(स्वरूप) प्रयोजन आदिके भेदसे } पृथग् भूत

शरीराणाम् ॥ सूक्ष्मगुणेन ॥ वीप्सानिर्देशः ॥ =(औदारिक आदिक) शरीरजे है तिनको सूक्ष्मगुणकरि वीप्सारूपनिर्देश

क्रियते । परम्परम् ॥ =कियागया है कि परे परे सूक्ष्म हैं अर्थात् नाम स्वरूप प्रयोजन आदिके भेदसे भिन्न जो औदारिकआदिक शरीर हैं उनका यहां सूक्ष्मगुणके साथ वीप्साका निर्देश है कि आगे आगे के शरीर सूक्ष्म सूक्ष्म है

इति * औदारिकं ॥ स्थूलं ॥ ततः सूक्ष्मं ॥ वैक्रियिकम् ॥ =इसप्रकारकि औदारिक शरीर स्थूल है । तिस (औदारिक)से सूक्ष्म वैक्रियिक है

ततः सूक्ष्मम् ॥ आहारकम् ॥ ततः * सूक्ष्मम् ॥ =तिस (वैक्रियिक शरीर)से सूक्ष्म आहारक (शरीर)है । तिस(आहारक)से सूक्ष्म

तैजसम् ॥ तैजसात् ॥ कार्मणं ॥ सूक्ष्मम् ॥ इति * =तैजसशरीर है । तिस तैजस(शरीर) से सूक्ष्म कार्मण (शरीर) है

यदि * परम्परं ॥ सूक्ष्मम् ॥ प्रदेशतः * =जो अगले अगले(शरीरपूर्वपूर्वकी अपेक्षासे) सूक्ष्म है तौ परमाणुओंकी अपेक्षासे

अपि * नूनम् * परम्परम् ॥ हीनम् ॥ =भी निस्सदेहकरि (=नूनं)उत्तर उत्तर शरीर हीनहोंगे अर्थात् प्रत्येक अग्रिमअग्रिम शरीरमें पहिले पहिले शरीर से थोड़े थोड़े प्रदेश होंगे

इति * विपरीत-प्रतिपत्ति-निवृत्ति-अर्थम् ॥ आह । =ऐसी विरुद्ध प्रवृत्तिके दूर करनेके लिये कहते हैं कि

(१) **प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्=परंपरं प्रदेशतः असंख्येयगुणं प्राक्तैजसात्॥३८॥**

सूत्रार्थः—परं ॥ परं ॥ प्रदेशतः * प्राक् * तैजसात् ॥ =अग्रिम अग्रिम (शरीर) प्रदेशोंकी अपेक्षासे, तैजससे पहिलेके (शरीर)

असंख्येयगुणम् ॥ =असंख्यात गुणेहैं अर्थात् औदारिक शरीरमें जितने परमाणु हैं उनसे संख्यातगुणे

(१)दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै ॥ परं परं वाक्य की अनुवृत्ति सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें आतीहै ।

(२)पाठक यह न समझो कि यहांपर न्यूनम् शब्दहै क्योंकि न्यूनके अर्थमें हीनम् शब्द आगे है नूनम् का अर्थ निसंदेह है देखो वैद्यकोश पृष्ठ३६१

सि
सूत्र३
३

१०

·प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः परमाणवः । संख्यामतीतोऽसंख्येयः । असंख्येयो गुणोऽस्य तदिदमसंख्येयगुणम्॥ कुतः?प्रदेशतः। नावगाहतः । परम्परमित्यनुवृत्तेराकार्मणात्प्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह प्राक्तैजसादिति ।

परमाणु वैक्रियिक शरीरमें हैं और वैक्रियिक शरीरसे असंख्यात गुणे परमाणु आहारकशरीरमें हैं

इत्यनुवादः-प्रदिश्यन्ते[1/3] इति*प्रदेशाः[1/3]परमाणवः[1/3] =जो अविभाज्यहोकर प्ररूपण कियेगये हैं ऐसे प्रदेश हैं वा परमाणु हैं ॥ वा जिनकरि प्रमाणकरिये है ऐसे प्रदेश हैं अर्थात् जिनके द्वारा भिन्न भिन्न अंशकिये जायं सो प्रदेश हैं ॥

संख्याम्[2/1]।।अतीतः[1/1]असंख्येयः[1/1]असंख्येयः[1/1]गुणः[1/1] =जो गणनासे बाहिरहों वे असंख्यात हैं असंख्यात हैं गुणाकार(१) वा(१) गुणक

अस्य[6/1] तद्[1/1]।। इदम्[1/1]।।असंख्येयगुणम् [1/1]।। कुतः*?=जिसका सो यह असंख्येयगुणा है क्योंकर वा कहांसे (असंख्येयगुणा) है

प्रदेशतः * अवगाहतः * =परमाणुओं (की अपेक्षा)से (असंख्येयगुणा) है अवगाहना (की विवक्षा) से

न* =(असंख्येयगुणा) नहीं है अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक शरीर असंख्यातगुण है और वैक्रियिकसे आहारक असंख्यातगुण है सो औदारिकसे गणनामें वैक्रियिककी परमाणुओंकी गणना असंख्यातगुणा) है नकि उसकी अवगाहना असंख्यातगुणी अधिक है इसी प्रकार वैक्रियिकसे आहारकके परमाणुओंकी गिनती वा संख्या असंख्यातगुणी है नकि आहारक शरीरकी अवगाहना वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणी अधिक है

परम्[1/1]।।परम्[1/1]।।इति*अनुवृत्तेः[5/1]।। =(पूर्व सैंतीसवां सूत्रसे इससूत्रमें)"परं परं" ऐसी अनुवृत्ति(के कारण) से

आ*कार्मणात्[5/1]।। प्रसङ्गे [7/1] =कार्मण (शरीर) पर्यन्त(=आ) (इस परं परं की अनुवृत्तिका) संबंधहोनेपर

तद्-निवृत्ति-अर्थम् [2/1]।। =तिस (प्रसंग) के निषेधके लिये वा निवारणके लिये (इससूत्रमें)

प्राक्*तैजसात् [5/1]।। इति*आह T =तैजस शरीरसे पहिले पहिले (=प्राक् तैजसात्) ऐसा वाक्य कहा है

(१) गुण्य = जिसअंकको गुणिये जैसे यदि १६ को ९ से गुणाकरना होतो १६ गुण्य है ॥ गुणक वा गुणाकार जिसअंकसे गुणाकरो यहां ९ गुणक वा गुणाकार है १६ × ९ = १४४ को गुणनफल कहते हैं । गुणाकरनेकी क्रियाको गुणन कहते हैं ॥

औदारिकादसंख्येयगुणप्रदेशं वैक्रियिकम् ॥ वैक्रियिकादसंख्येयगुणप्रदेशमाहारकमिति ॥ कोगुणाकारः? पल्योपमासंख्येयभागः ॥ यद्येवं परम्परं महापरिमाणं प्राप्नोति । नैवम् । बन्धविशेषात्परिमाणभेदाभावः। तूलनिचयायःपिण्डवत्॥ अथोत्तरयोः किं समप्रदेशत्वमुतास्ति कश्चिद्विशेष इत्यत आह—

औदारिकात्॥ असंख्येयगुण-प्रदेशं॥ वैक्रियिकं॥ =(इसलिये) औदारिकशरीरसे असंख्यातगुणे प्रदेशवाला वैक्रियिक शरीर है
वैक्रियिकात्॥ असंख्येयगुणप्रदेशम्॥ इति* =वैक्रियिक शरीरसे असंख्यातगुणे हैं परमाणु जिसके ऐसा
आहारकम्॥ कः॥ गुणाकारः॥ ? =आहारक शरीर है। (प्रश्न) क्या गुणक है अर्थात् जब असंख्यातके असंख्याते भेद हैं फिर किस प्रकारके असंख्यातको गुणाकार वा गुणक यहां पर मानैं
पल्योपम-असंख्येय-भागः॥ यदि*एवम्* =पल्योपमके असंख्यातवां भागजो है (सो गुणक यहां लेना) यदि ऐसा है अर्थात् एकएक अग्रिम अग्रिम शरीरके परमाणु उसके पूर्व पूर्व शरीरसे असंख्यात गुणे हैंतो
परम्॥ परम्॥ महान्-¹परिमाणम्॥ प्राप्नोति। =अग्रिम अग्रिम(=परंपरं)शरीर महान् आकार वा स्थूलताको प्राप्तहोता है
न* एवम्* =(उत्तर) ऐसा नहीं है (कि अगले अगले शरीरके परमाणु असंख्यात गुणे पूर्व पूर्व शरीरसे होनेसे उन अग्रिम अग्रिम शरीरमें स्थूलपनाका प्रसंग आवै)
बन्ध-विशेषात्॥ परिमाण-भेद-अभावः॥ =क्योंकि बन्धके विशेषतासे वा बन्धकेढंगसे डीलडौलके भेदका अभाव होजाता है
तूल-निचय-अयस्-पिण्डवत्* =रुईका समूह और लोहेके पिंडके सदृश अर्थात् रुईके समूहमें परमाणु थोड़े हैं परंतु परिमाणमें बड़ा है उसलोहेके पिंडसे जिसमें परमाणु उस रुईके गड्डेसे बहुत अधिक हैं परंतु डीलडौलमें छोटा है
अथ*उत्तरयोः॥ किम्॥ समप्रदेशत्वम्॥ अस्ति। =अब(=अथ)अगले दो (तैजसशरीरऔर कार्मणशरीर) में क्या समान प्रदेशता है?
उत*कश्चित्*विशेषः॥ इति*अतः*आह। =अथवा(=उत)कुछ(=कश्चित्)भेद है। इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) संस्कृतसर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'महागुणाकार' शब्द है, परन्तु उसके द्वितीयसंस्करणमें, और हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'महापरिमाण' शब्द है। तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें कईस्थानोमें 'परिमाण' शब्द आया है इसलिये 'परिमाण' शब्द हमनेभी पाठमें लिया है।

॥ अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

प्रदेशत इत्यनुवर्तते, तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-आहारकात्तैजसं प्रदेशतोऽनन्तगुणं, तैजसात्कार्मणं प्रदेशतोऽनन्तगुणमिति ॥ को गुणाकारः? अभव्यानामनन्तगुणः । सिद्धानामनन्तोभागः॥ तत्रैतस्याच्छल्यकवत् । मूर्तिमद्द्रव्योपचितत्वात्संसारिणोजीवस्याभिप्रेतगति-

सूत्रम्— [१]अनन्तगुणे परे	=(प्रदेशतः परं परं) अनन्तगुणे परे (भवतः) ॥ ३९ ॥
सूत्रार्थ :- परम् [१/१]॥ परम् [१/१]॥ परे [१/३]॥	=अग्रिम अग्रिम (=परं परं) अवशेष वा अन्य दो (तैजस और कार्मण शरीर)
प्रदेशतः * अनन्तगुणे [१/३]॥ भवतः T	=प्रदेशोंकी अपेक्षासे (पूर्व पूर्व शरीरोंसे) अनन्तगुणे हैं अर्थात् आहारक शरीरसे तैजसशरीरमें अनन्तगुणे प्रदेश अधिक हैं और तैजस शरीरसे कार्मण शरीरमें अनन्त गुणे प्रदेश अधिक हैं ॥
इत्यनुवादः—प्रदेशतः * इति *	=(अड़तीसवां सूत्रसे इससूत्रमें) प्रदेशतः (=प्रदेशोंकी अपेक्षासे) ऐसा (वाक्य)
अनुवर्तते T तेन [३/१]॥ एवम् *	=अनुवर्तताहै वा आकर्षित होता है। तिस (प्रदेशतः वाक्य) करि इस प्रकार
अभिसम्बन्धः [१/१] क्रियते T आहारकात् [५/१]॥ तैजसम् [१/१]॥	=संयोग कियागया है कि आहारकशरीरसे तैजसशरीर
प्रदेशतः* अनन्तगुणम् [१/१]॥ तैजसात् [५/१]॥ कार्मणम् [१/१]॥	=परमाणुओंकी अपेक्षासे अनन्तगुण हैं तैजसशरीरसे कार्मणशरीर
प्रदेशतः * अनन्तगुणम् [१/१]॥ इति *	=प्रदेशोंकी विवक्षासे अनन्तगुण है ॥
कः [१/१] गुणाकारः [१/१]	=गुणाकार वा गुणक कौन अनन्त है (क्योंकि अनन्तके अनन्त भेद हैं)
अभव्यानाम् [६/३] अनन्तगुणः [१/१] सिद्धानाम् [६/३] अनन्तः [१/१]	=(उत्तर) अभव्य राशिका अनन्तगुणा है सिद्धराशिका अनतवां-
भागः [१/१] शल्यकवत् *	=भाग है (सो अनन्त गुणक है) (प्रश्न) भाल वा तीरके फाल (=शल्यक) के सदृश
तत्र*एतत् [१/१]॥ स्यात् T॥ मूर्तिवत्*द्रव्यउपचितत्वात् [५/१]॥	=तहां यह होता होगा कि मूर्तिमान् वस्तुके संचय होनेसे
संसारिणः [६/१] जीवस्य [६/१] अभिप्रेत–गति–	=(तैजस और कार्मण शरीर सहित) संसारी जीवके जानेयोग्य (=अभिप्रेत) गमनमें

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसाहै ॥ हमारे यहा कहीं कहीं पर "अनन्तगुणे परे" पाठ है और कहीं कहीं पर "अनंतगुणो परे" पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं(अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१,)॥ परं परं की अनुवृत्ति ३७ वां सूत्र से और प्रदेशतःकी३८वांसेआतीहै

निरोधप्रसङ्ग इति । तन्न । किं कारणम् । यस्मादुभेऽप्येते—

अप्रतीघाते ॥ ४० ॥

निरोध–प्रसङ्गः ३। इति ※ =रुकावटका प्रसंग होता होगा ॥ अर्थात् वाण मूर्तिमान द्रव्योंका पिंडस्वरूपहै इसलिये जिस प्रकार पर्वत आदि से उसकी गतिका निरोध हो जाताहै–वह आगे नहीं जा सकता है उसी प्रकार तैजस शरीर और कार्मण शरीर भी अनंते अनंते मूर्तिमान परमाणुओंके पिंड हैं और संसारी जीवके सदाकाल उनका संबंध रहता है (यह संबंध आगे सूत्र ४१ में कहा जायगा) इसलिये उनके संबंधसे संसारी जीवोंके भी जाने योग्य गतिका निरोध होगा ॥

तद्–न※ =उस (अभिमत गति) में (रुकावट) नहीं होती है।(प्रश्न)क्या कारणहै (किरुकावट नहीं होती)

किम्※कारणम्१॥यस्मात्५।उभे१॥अपि※एते१॥=(उत्तर) इस कारणसे कि (तैजस और कार्मण शरीर) ये दोनों ही (अप्रतीघात हैं)

सूत्रम्-(१)अप्रतीघाते ॥४० ॥=अप्रतीघाते (परे) भवतः

सूत्रार्थः– परे १॥ अप्रतीघाते १॥ भवतः T=(तैजस शरीर और कार्मण शरीरये)शेपदो वा अंतिम दो अप्रतिघात हैं अरोक हैं अर्थात्वलवान भी मूर्तिमान पदार्थोंसे इनका रुकना नहीं होता भावार्थ मूर्तीक पदार्थसे मूर्तीक पदार्थका रुकजाना प्रतीघात है। अग्निका परिणमन सूक्ष्म है इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिस प्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरका परिणमन भी सूक्ष्म है इसलिये वज्र पटल आदि कैसे भी कठिन पदार्थ क्योंन पड़े दोनों शरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्न रूपसे प्रवेशकर जाते हैं इसलिये वे तैजस और कार्मण दोनों शरीर अप्रतिघात कहेजाते हैं ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एक है॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में अप्रतिघात शब्दका अर्थ न रोकना और नरुकना ऐसा कियाहै जैसाकि निम्न
वाक्यसे प्रगट है॥ तैजस और कार्मण "ये अन्तिम दो शरीर अप्रतिघात अर्थात् प्रतिघात शून्य हैं। तात्पर्य्य यह है कि ये दो तैजस और कार्मण कहीं
किसीसे नहीं रुकते, और न ये किसीको रोकतेहैं पृष्ठ ५२॥" प्रतिघात (दूसरेसे रुकनेवाला वा दूसरोंको रोकनेवाला) होकर अप्रतिघाति हो, तथा अप्रति-
घाति होकर प्रतिघाति हो॥ यह वैक्रियक शरीरके संबन्धमें लेखहै॥ सभाष्य० पृष्ठ ५७ उक्त शरीर न किसीको रोकतेहैं ऐसा अर्थ इससूत्रका इस सर्वार्थ-
सिद्धि वृत्तिमें, तत्त्वार्थ राजवार्तिक, जयचंदजी कृतवचनिका, अर्थ प्रकाशिका, सदासुखजीकृत तत्त्वार्थलघु टीका में नहीं कियाहै और न तत्त्वार्थ राज-
वार्तिकके दो अनुवादों में से किसी में ऐसा अर्थहै॥ प० पन्नालाल जी अनुवादित मोक्षशास्त्र का अर्थ सभाष्य०केअर्थसे मिलताहै जैसे उक्त मोक्षशास्त्रके
पृष्ठ९८ में तैजस और कार्मण शरीर भी वज्रमय पटलोंसे नहीं रुकतेहैं और न किसी अन्य पदार्थको रोक सकते हैं" संस्कृत कोशोंसे भी यह आशय
निकलताहै, हमारी समझमें ठीक है क्योंकि दूसरेके रोकनेके समय भर यह स्वयम् भी रुका रहेगा नहीं तो रोकैगा कैसे ॥

मूर्तिमतो मूर्त्यन्तरेण व्याघातः प्रतीघातः। स नास्त्यनयोरित्यप्रतीघाते ॥ सूक्ष्मपरिणामादयःपिण्डे तेजोऽनुप्रवेशवत्तैजसकार्मणयोर्नास्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः॥ ननु च वैक्रियिकाहारकयोरपि नास्ति प्रतीघातः। सर्वत्राप्रतीघातोऽत्र विवक्षितः। यथा तैजसकार्मणयोरालोकान्तात् सर्वत्र नास्ति प्रतीघातः। न तथा वैक्रियिकाहारकयोः॥

वृत्त्यनुवादः–मूर्तिमतः मूर्ति–अन्तरेण व्याघातः =मूर्तिमानका (=मूर्तिमतः) अन्य मूर्तिमानकरि रुकावट (=व्याघात) है सो प्रतीघातः सः न अस्ति अनयोः =प्रतिघात है। सो (प्रतिघात=प्रतीघात) दोनों (तैजस और कार्मण शरीरोंके नहीं) है इतिअप्रतीघाते सूक्ष्मपरिणामात् अयस्-पिण्डे तेजस्–ऐसें दोनों प्रतिघात रहित हैं। सूक्ष्मपरिणमन(केकारण) से लोहेके पिंडमें अग्निका अनुप्रवेशवत्-तैजस-कार्मणयोः =क्रमसेप्रवेश(=अनुप्रवेश) के समान तैजस और कार्मण(शरीरों)का (प्रवेश)है॥

न अस्ति वज्रपटलादिषु व्याघातः =नहीं है (इन दोनों शरीरोंका)प्रतिघात वा रुकावट वज्रपटलादिकोंमें अर्थात् अग्निका परिणमन सूक्ष्म है॥ इसलिये कठिन भी लोहेके पिंडमें सूक्ष्म परिणमनके कारण जिसप्रकार अग्निका प्रवेश नहीं रुकता उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीरोंका परिणमन भी सूक्ष्महै इसलिये वज्रपटल आदि कैसेभी कठिन पदार्थ क्योंन बीचमें आपड़ें दोनोंशरीरोंका रुकना नहीं होता वे निरवच्छिन्नरूपसे प्रवेश करजाते हैं

ननु च वैक्रियिकआहारकयोः अपि न अस्ति प्रतीघातः =बहुरि प्रश्न वैक्रियिक और आहारक(शरीर) निकें भी व्याघात वा रुकावट नहीं है

सर्वत्र अप्रतीघातः अत्र विवक्षितः =(उत्तर) सब स्थानोंका अव्याघात यहां (इससूत्रमें) अपेक्षित है अर्थात् इससूत्रमें इस अप्रतिघातका कथन है जो सब स्थानोंमें संबंध रखताहो

यथा-तैजस-कार्मणयोः आ लोकान्तात् सर्वत्र न अस्ति प्रतीघातः =जैसे तैजस और कार्मण(शरीरों)का लोकके अन्ततक(=आ-लोकान्तात्)सब स्थानोंमें व्याघात नहीं है॥

न तथा वैक्रियिक-आहारकयोः =तैसे नहीं है वैक्रियिक और आहारक (शरीरों) का (व्याघात) अर्थात् लोकके अन्त पर्यंत तैजस और कार्मणशरीरोंका कहीं भी प्रतिघात नहीं होता वैक्रियिक और आहारक शरीरोंका वैसा अप्रतिघात नहीं किंतु उनका प्रतिघात ऐसे होजाता है कि केवली और श्रुत केवलीके विना जिसका समाधान न हो सकै ऐसी तत्त्वविषयक गूढ शंका हो जानेपर उसकी निवृत्तिके लिये प्रमत्त गुणस्थान वर्ती संयमी

आह किमेतावानेव विशेष उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

॥ अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

चशब्दो विकल्पार्थः । अनादिसम्बन्धे सादिसम्बन्धे चेति ॥

मुनिके आहारकशरीरकी प्रकटता होती है और जहां केवली वा श्रुतकेवली विराजते हैं वहांतक जाकर फिर आहारक शरीर लौट आता है। केवलियोंकी स्थिति ढाई द्वीपसे बाहिर नहीं होती इसलिये आहारक शरीरका गमन अधिकसे अधिक ढाई द्वीप पर्यंत ही है। मनुष्योंका वैक्रियिक शरीर मनुष्यलोक(=ढाईद्वीप) पर्यंत ही गमन करता है तथा देवोंका वैक्रियिक शरीर त्रसनाली पर्यंत गमन करता है अधिक नहीं इसलिये ये दोनों शरीर तैजस और कार्मण शरीरोंके समान सर्वत्र अप्रतिघात नहीं हैं॥ अतः इस सर्वत्र गमनकी विशेष अपेक्षासे तैजस और कार्मण शरीरोंको इससूत्रमें अप्रतिघात कहा है॥

आह I किम्*एतावान्[1] एव*विशेषः[1] =पूछता है कि क्या(इन तैजस और कार्मण शरीरोंके विषयमें)इतना ही विशेष है

उत*कश्चित्*अन्यः[1] अपि*अस्ति I इति*आह I =अथवा(=उत) कुछ और (=अन्य) भी है। (निम्नसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—[1]अनादिसम्बन्धे च॥४१॥=(परे जीवस्य) अनादि सम्बन्धे च भवतः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—परे[1] जीवस्य[6] =अन्य दो (=परे=तैजस और कार्मण शरीर) जीवके

अनादि-सम्बन्धे[1] च*भवतः I =अनादिकालसे भी(और सान्त होनेतक)संबंध रखनेवाले हैं अर्थात् तैजस औरकार्मण ये दो शरीर जीवकेसाथ अनादिकालसे भी संबंधवाले हैं सादिकालसे भी संबन्धवाले हैं

वृत्त्यनुवादः-चशब्दः[1] विकल्प-अर्थः[1] अनादिसंबंधे[1] =(इससूत्रमें) चशब्द विविध कल्पनकेलिये है (अर्थात्) अनादि संबन्धवाले

च*सादिसम्बन्धे[1] इति* =भी(=च)हैं और सादिसम्बन्ध वालेहैं भावार्थ सूत्रमें चशब्द है उसका अर्थ विकल्प है और तैजस और कार्मण इनदोनों शरीरोंका आत्माके साथ अनादिऔर

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आचार्योंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'संबंधे'पाठ है और कहीं कहीं पर 'सम्बन्धे' पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं(देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५४०,५४६ और टिप्पणी पृष्ठ ५, ६,)॥

कार्यकारणभावसन्तत्या अनादिसम्बन्धे, विशेषापेक्षया सादिसम्बन्धेऽपि च बीजवृक्षवत् ॥
यथौदारिकवैक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि, न तथा तैजसकार्मणे ।

सादिकालसे दोनों प्रकारका संबन्धहै यह उस चशब्दका प्रयोजनहै। चशब्दका ऐसा अर्थ प्रश्नोत्तर रूपमें उसका शब्दशःअनुवादलेनेमें यों निकल आताहै कि अनादिसम्बन्धवाले भी(=च)हैं तौ प्रश्नउठता है कि कोई और प्रकारका संबंधवालेभी तैजसऔर कार्मण शरीरहैंवह संबंधक्याहै?वोसादि संबंधहै।चशब्दकायह प्रभावहै॥

कार्य-कारणभाव-सन्तत्या॥अनादि -सम्बन्धे॥=कार्यकारणके होनेरूप(=भाव)संतान (कीअपेक्षा) से अनादि सम्बन्धवाले हैं
च*विशेष-अपेक्षया॥सादिसम्बन्धे॥ अपि* =और(=च) विशेष विवक्षासे सादि संबंधवाले भी
बीजवृक्षवत्* =बीज और वृक्षके सदृश हैं अर्थात् जिस समय बीजसे वृक्ष,वृक्षसेबीज,बीजसेवृक्ष,वृक्षसे बीज, इस प्रकार सामान्यरूपसे कार्यकारणरूप संबंधकी विवक्षाकी जाती है उस समय बीज और वृक्षका कार्यकारणरूप अनादि संबंध माना जाताहै और जिस समय अमुक बीजसे अमुकवृक्ष,अमुकवृक्षसे,अमुकबीज इसप्रकार विशेषरूपसे कार्यकारणकी विवक्षा मानी जाती है उस समय बीज और वृक्षका यह सम्बन्ध सादि माना जाता है उसी प्रकार जिस समय आत्माके साथ तैजस कार्मण शरीरके निमित्त नैमित्तक सम्बन्धकी समान्यरूपसे विवक्षा कीजाती है उस समय आत्मा और तैजस,कार्मण शरीरोंका अनादि संबन्धहै क्योंकि अनादिकालसे ऐसा कोई भी समय नहीं बीता जिसमें तैजस कार्मणकी आत्मासे पृथक्ता हुई हो और जिस समय अमुक तैजस कार्मणका अमुक अवस्थापन्न आत्माके साथ संबन्ध है पुरातन अनंत परमाणु दोनों शरीरोंकी समय समय निर्जरै हैंऔर नवीन नवीन अनंत परमाणु संचयरूप होतीहैंइस विशेषकी अपेक्षासे ये तैजस और कार्मण दोनों शरीर सादि संबन्धवाले हैं। इसप्रकार विशेष विवक्षा है उस समय उनकी आपसमें निमित्तनैमित्तक सम्बन्ध सादि है। इस प्रकार सामान्य और विशेषकी अपेक्षा आत्मा और तैजस कार्मणका अनादि सादि दोनों प्रकारका संबंध सिद्ध है॥

यथा*औदारिकवैक्रियिकआहारकाणि॥जीवस्य॥=जैसे औदारिक,वैक्रियिक और आहारक शरीर जीवके
कादाचित्कानि॥न*तथा*तैजस–कार्मणे॥ =कभी कभी होनेवाले होते हैं नहीं है तैसे(कभी कभी होनेवाले) तैजस कार्मण शरीर

(१) कादाचित्क पदचन्द्रकोश पृष्ठ१०२में त्रिलिंगी है इसका अन्यपुरुष (=प्रथम पुरुष,) बहुवचन,नपुंसकलिंग'कादाचित्कानि' है।

नित्यसम्बन्धिनी हि ते आसंसारक्षयात् । नए ते तैजसकार्मणे किं कस्यचिदेव भवत उताविशेषेणेत्यत आह

॥ सर्वस्य ॥ ४२ ॥

सर्वशब्दो निरवशेषवाची । निरवशेषस्य संसारिणोजीवस्य ते द्वे अपि शरीरे भवत इत्यर्थः ॥ अविशेषाभिधानात्तैरौदारिकादिभिः सर्वस्य संसारिणो यौगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्गे

---

[1] नित्यसम्बन्धिनी॥ हि॥ ते॥ आ॥संसारक्षयात्॥ =क्योंकि(=हि)वेदोनों(=ते)नित्य संबंधवाले(जीवके)संसारकेनाश होनेतक(=आ) हैं॥
ते॥ एते॥ तैजस-कार्मणे॥ किम्॥कस्यचित्॥ =वे (ये) तैजस और कार्मण शरीर क्या किसी (जीव) के
एव॥भवतः[2]। उत॥अविशेषेण॥इति॥अतः॥आह। =ही होते हैं(=भवतः)अथवा(=उत)विशेषरहित(सबजीवोंके) । इसलिये कहते हैं कि

सूत्रम्- सर्वस्य[3] =सर्वस्य(संसारिणो जीवस्य)(परे-तैजसकार्मणेशरीरेभवतः)

सूत्रार्थः-सर्वस्य॥संसारिणः॥ जीवस्य॥परे॥ =समस्त संसारी जीवके परेके दो
तैजस-कार्मणे॥ शरीरे॥ भवतः। =तैजस और कार्मण शरीर होते हैं अर्थात् तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर सामान्यरूपसे सब संसारी जीवोंके होते हैं यदि किसीके ये दोनों शरीर न होंगे तो वह जीव संसारीही नहीं कहा जा सकता ॥

सर्व-शब्दः॥निर्-अवशेष-वाची॥निरवशेषस्य॥ =(इससूत्रमें)सर्वशब्द निर्विशेष वा निःशेषका वाचक है । निखिल वा समस्त
संसारिणः॥जीवस्य॥ ते॥ द्वे॥ अपि॥शरीरे॥भवतः =संसारी जीवके(=अपि)ही वे दो(तैजस और कार्मण)शरीर होते हैं
इति॥अर्थः॥ अविशेष-अभिधानात्॥ =ऐसा आशय वा अभिप्राय है । सामान्यरूप (=अविशेष) कहनेसे (=अभिधानात्)
तैः॥ औदारिक-आदिभिः॥ सर्वस्य॥ =उन औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण शरीरोंके साथ, सब
संसारिणः॥[4] यौगपद्येनसम्बन्ध-प्रसङ्गे॥ =संसारी(जीव)के एककालमें (समकालमें=यौगपद्येन) संबंधका प्रसंग आनेपर

---

(१)सम्बन्धिन् शब्द त्रिलिंगीहै पुलिङ्ग में प्रथमा विभक्ति एक वचन सम्बन्धिनीहै यहां ते शब्द तद् एकलिंग द्विवचन तद् शब्दकाहै और तैजस कार्मण दोनों शरीरोंके लियेआयाहैअतःयहांपर सम्बन्धिनी प्रथमाद्विवचन नपुंसक लिंगहै क्योंकि सम्बन्धिन्का प्रथमाविभक्ति द्विवचननपुंसक सम्बन्धिनीहै (२)भवतः(भू = होना) धातुका अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान कालकी क्रिया है।भवतः = दोनों होतेहैं॥ (३) इससूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमेंएकहै (४)यौगपद्येन युगपत् क्रियाविशेषण है। एककालमें,ऐसा अर्थहै॥ यौगपद्य,यौगपद्य = समकालता एककालता ॥ यौगपद्यिक = एककालिक (यहां विशेषणहै)

सम्भविशरीरप्रदर्शनार्थमिदमुच्यते—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३॥

तच्छब्दः प्रकृततैजसकार्मणप्रतिनिर्देशार्थः । ते तैजसकार्मणे आदिर्येषां

सम्भवि-शरीर-प्रदर्शन-अर्थम्[१] इदम्[२] उच्यते । =(एक जीवमें) एकसाथ होनेवाले (=सम्भविन्) शरीरोंके दिखानेकेलिये यह कहा जाताहै कि

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः=[1] तद्-आदीनि भाज्यानि युगपद् एकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः

सूत्रार्थः—तद्-आदीनि[१] भाज्यानि[१] =उन (तैजस, कार्मण) को आदिलेकर विभाजितकिये हुये वा विकल्परूप कियेहुये

युगपद् (युगपत्) एकस्मिन्[७] आ-चतुर्भ्यः[५] भवन्ति । =एककालमें एक (जीवों) में चार (शरीर) तक होते हैं अर्थात् दो शरीर होंतौ तैजस और कार्मण होते हैं। तीन हों तौ औदारिक तैजस और कार्मण होते हैं वा वैक्रियिक, तैजस और कार्मण ये तीन भी होते हैं परन्तु ये देव तथा नरक गतियोंमें हीहोते हैं। यदि किसीकें एक साथ चार शरीर हों तौ औदारिक, आहारिक, तैजस, और कार्मण अथवा औदारिक, वैक्रियिक, तैजस और कार्मण होते हैं। यह नियम है कि जिसकें वैक्रियिक होता है उसकें आहारक नहीं होता और जिसकें आहारक होता है उसकें वैक्रियिक नहीं होता है॥ एक शरीर वाला कोई भी जीव संसारमें नहीं है॥

वृत्त्यनुवादः-तद्-शब्दः[१] प्रकृत-तैजस-कार्मण-प्रति =(इससूत्रमें) तद् शब्दहै सो प्रकरण कियेहुये वा विषयभूत तैजस और कार्मणको

निर्देश-अर्थः[१] ते[१] तैजस-कार्मणे[१] आदिः[१] येषाम्[६] =प्रगट करनेके लिये है। वे तैजस और कार्मण शरीर हैं आदि जिनकें

(१) हमारे यहां बहुधा पुस्तकों में उपर्युक्त पाठ है किसी किसी पुस्तक में (जैसे पं० पन्नालालजी बाकलीवाल अनुवादित मोक्ष शास्त्र पृष्ठ १६ में) एकस्मिन् शब्दके स्थानमें "एकस्य" शब्द है परंतु इस पाठ से अर्थ भेद नहीं हुआ। क्योंकि एकस्मिन्+आ-चतुर्भ्यः=एक (जीव) में चार तक होते हैं वही तात्पर्य रखता है जो एकस्य-आ चतुर्भ्यः=एक (जीव) कें चार तक होते हैं रखता है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "एकस्याऽऽचतुर्भ्यः" पाठहै सो हमारे यहां के एक पाठ से मिलताहै। अर्थ भी जब उनके यहां तैजसको अनादि मानाहै तब एक है। परंतु सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ५३में यह भी लेखहै कि "तैजसके अनादि सम्बन्धताके खंडन पक्षमें, एक ही शरीर का जब अनादि संबंध है तब केवल कार्मण ही एक हो सकता है। दो की सत्तामें कार्मण और औदारिक होसकते हैं अथवा कार्मण और वैक्रियिक हो सकते हैं। तथा तीनकी योग्यता में कार्मण औदारिक और वैक्रियिक हो सकते हैं वा कार्मण, औदारिक और आहारक हो सकते हैं और चारकी योग्यता में कार्मण तैजसऔदारिक और वैक्रियिक होसकतेहैं वा कार्मण तैजस, औदारिक और आहारक होसकते हैं। परंतु कदाचित् भी एक कालमेंएककें पांचोंनहींहोते।

तानि तदादीनि। भाज्यानि विकल्पानि आ कुतः। आ चतुर्भ्यः। युगपदेकस्यात्मनः॥ कस्यचित् द्वे तैजसकार्मणे। अपरस्य त्रीणि औदारिकतैजसकार्मणानि, वैक्रियिकतैजसकार्मणानि वा। अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतैजसकार्मणानीति विभागः क्रियते॥ पुनरपि तेषां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥

तानि[१।३] तदादीनि[१।३]	=ते(=तानि)तदादीनि अर्थात् तिन (तैजस-कार्मण शरीरों) को आदिमें लेकर है
भाज्यानि[१।३] विकल्पानि[१।३] आ*कुतः*	=भाज्य है सो विकल्पतारूप वा विभागरूप करना है।(विभागरूप)कहां तक (=आ) है
[२]आ-चतुर्भ्यः[५।३] युगपत्*एकस्य[६।१] आत्मनः[६।१]	=चार पर्यन्त एककालमें एक जीवकें हैं।
कस्यचित्*द्वे[१।२] तैजस-कार्मणे[१।२] अपरस्य[६।१]	=किसी (जीव) कें दो तैजस और कार्मण (जो विग्रहगतिमेंहोते) हैं। दूसरे (जीव) कें
त्रीणि[१।३] औदारिक-तैजस-कार्मणानि[१।३]	=तीन(अर्थात्प्रायःमनुष्य-तिर्यंचोंकें)औदारिक,तैजस और कार्मण शरीर हैं
वा*वैक्रियिक-तैजस-कार्मणानि[१।३]	=अथवा(देव-नारकियोंकें) वैक्रियिक,तैजस,कार्मण (ये तीन शरीर) होते हैं
अन्यस्य[६।१] चत्वारि[१।३]	=अन्य(जीव--अर्थात् प्रमत्त संयमी छठवां गुणस्थानवर्ती किसीकिसीमुनि) कें चार
औदारिक-आहारक-तैजसकार्मणानि[१।३] इतिविभागः	=औदारिक,आहारक, तैजस,कार्मण हैं इसप्रकार विभाग वा बांट
क्रियते। पुनः*अपि*तेषाम्[६।३]	=कियाजाता है। फिरभी उन(औदारिक-वैक्रियक-आहारक-तैजस-कार्मण शरीरों)कें
विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[१।१] आह।	=विशेष जाननेकेलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[१]-निरुपभोगमन्त्यम् ॥४४॥ =अन्त्यम् कार्मणम् निरुपभोगम् भवति॥४४॥

सूत्रार्थः-	(औदारिक-वैक्रियिक-आहारक-तैजस, कार्मण छत्तीसवांसूत्रमें कहेहुये शरीरों में)
अन्त्यम्[१।१] निर्-उपभोगम्[१।१]	=अन्तिम कार्मण शरीर (मन और इन्द्रियों द्वारा शब्दादिके) उपभोगसे रहित है।

अर्थात् जैसेऔदारिक,वैक्रियिक,आहारक,शरीर आत्माको मन और पांच इन्द्रियोंद्वारा उपभोगकाकारण होतेहैंतैसे कार्मण शरीर पांच इन्द्रियऔर मनकीसहायता से जीवको उपभोगकाकारण नहीं है

जीवकें पांचों शरीर नहीं होते हैं॥ और वैक्रियिक तथा आहारक भी एककालमें नहीं होते क्योंकि वैक्रियिक तथा आहारकके स्वामीमें विशेषभेदहैं
(१)दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ अर्थ एकहै॥हमारे यहांकहीं कहींपर मन्त्यम् केस्थानमें मन्त्यं है सोकातन्त्ररूपमाला व्याकरणकेमतकेअतिरिक्तअशुद्ध है
(२)यहांआङ् = आ काअर्थअभिविधिहैइससेचारतक शरीर होसकते हैं,यदिमर्यादा अर्थ मानाजातातो चारसेभीतरकेशरीरअर्थात्तीनतकहोतें जोअनिष्टहै॥

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत्? कार्मणम् ॥ इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम् ॥ विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलब्धौ द्रव्येन्द्रियनिर्वृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभोगाभाव इति ॥ ननु तैजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमुच्यते निरुपभोगमन्त्यमिति ॥

इत्यनुवादः—अन्ते७। भवम्१।।	=(छत्तीसवां सूत्रमें औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, के)अन्तमें जो है
अन्त्यम्१।। किम्१।। तत्१।। कार्मणम्१।।	=सो अंतिम वा अंतका(=अन्त्यम्) है । वह क्या है? (वह) कार्मण (शरीर) है ।
इन्द्रिय-प्रणालिकया३।।शब्द-आदीनाम्६।।उपलब्धिः१ ।।	=इन्द्रियोंके द्वारकरि(=प्रणालिकया)शब्द,स्पर्श,रस,गन्ध,वर्णोंका(=आदीनाम्)ग्रहण है
उपभोगः१। तत्-अभावात्५। निर्-उपभोगम्१।।	=सो उपभोग है । इस(उपभोग)की अविद्यमानतासे 'निरुपभोग' है ॥
विग्रह–गतौ७।। इन्द्रिय–	=नवीन शरीर(ग्रहण वा धारणकरने)के लिये गमनमें(जीवके)इन्द्रियोंकी
लब्धौ७। सत्याम् ७।। अपि*	=(क्षयोपशमरूप)लब्धि होनेपर भी अर्थात् क्षयोपशमरूप लब्धिके निमित्तसे भावस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना और उनके विद्यमान रहनेपर भी
द्रव्य-इन्द्रिय-निर्वृत्ति-अभावात्५।।शब्द आदि-उपभोग-	=द्रव्यइन्द्रियोंकी रचनाके(=निर्वृत्ति) न होने (केहेतु) से शब्दादिक उपभोगका
अभावः१।इति*	=अभाव है अर्थात् विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहतेभी(देखो सूत्र १८) द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंकी रचना (देखो सूत्र १७) का अभाव है इसलिये शब्दादिका अनुभव न होनेसे कार्मणशरीर निरुपभोग ही है(सोपभोग नहीं है=स–उपभोगनहींहै)
ननु*तैजसम्१।।अपि*निर्-उपभोगम् १।।तत्र*	=प्रश्नः-तैजस(शरीर)भी उपभोगसे रहित है । तहां (विग्रहगतिमें भावस्वरूप इन्द्रियोंके रहनेपर और द्रव्यस्वरूप इन्द्रियोंके रचनाके अभावमें)
किम्१।।उच्यते I निर्-उपभोगम्१।।अन्त्यम्१।।इति*	=अन्तका(कार्मण शरीर)उपभोगरहित ऐसा क्यों कहागयाहै?प्रश्नका आशय यह है कि विग्रहगतिमें जैसे इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे कार्मण शरीर

भावइन्द्रियों के रहनेपर भी निरुपभोग है वैसेही तैजस शरीर भी विग्रहगतिमें भावइन्द्रियोंके होनेपर भी इन्द्रियोंद्वारा शब्दादिके ग्रहणरूप उपभोगसे रहित है । जब दोनोंकी अवस्था एकसी है फिर कार्मण शरीर ही निरुपभोग क्यों कहागया, तैजसभी उसके साथ साथ क्यों न निरुभोग कहागया ॥

तैजसं शरीरं योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभोगविचारेऽनधिकारः ॥
एवं तत्रोक्तलक्षणेषु जन्मसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किमविशेषेण भवन्ति, उत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

तैजसं।। शरीरं।। योगनिमित्तम्।। अपि न भवति = (उत्तर)(१) तैजस शरीर (मनःवचन कायके) योगका कारण भी नहीं होता है
ततः अस्य। उपभोग-विचारे। अनधिकारः। तिससे (ततः) इस(तैजस)का उपभोगके निर्णयमें प्रकरण वा अधिकार नहीं है

भावार्थ योगके पन्द्रह भेदहैं उनमें औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र आहारक, आहारकमिश्र और कार्मण ये सात भेद काययोगके मानेगये हैं इनमें तैजस योग नामका कोई भी भेद नहीं है इसलिये तैजस शरीर योगका कारण नहीं मानागया है और यहां पर उपभोगके विचारमें केवल वे शरीर प्रकरणमें लियेगये हैं वा वे शरीर विषयभूत हैं जो योगका कारण हैं अतः तैजस शरीर उपभोगके विचारमें अधिकृत वा प्रकरणभूत नहींहै। इसीहेतुसे औदारिक वैक्रियिक आहारक और कार्मण योगनिमित्त शरीरोंमें से अन्तमें रहनेवाला कार्मण शरीरको निरुपभोग कहा है। ऐसाअर्थ यहांविवक्षित है॥

एवम् तत्र उक्त-लक्षणेषु।। जन्मसु।। अमूनि।। = इसप्रकार तहां कहेगये हैं लक्षण जिनके ऐसे जन्मजे हैं तिनमें ये (=अमूनि)
शरीराणि।। किम्।। अविशेषेण। प्रादुर्भावम्। = शरीर क्या विशेषकरिरहित प्रगटपना को
आपद्यमानानि।। भवन्ति उत कश्चित् अस्ति प्रतिविशेषः। = प्राप्त होते हैं (अर्थात् उत्पन्न होते हैं) अथवा (=उत) कुछ विशेष है ॥ उत्तर
इति अतः आह = (तीनों प्रकारके जन्मोंमें इन पांचों शरीरोंकी उत्पत्तिमेंविशेषहै) अतःऐसे कहतेहैंकि

(१) निरुपभोगमिति वचनात् अर्थादापन्नमेतदितराणि सोपभोगानीति = निरुपभोगम् इति वचनात्, अर्थादापन्नम् एतद् इतराणि स-उपभोगानि इति ॥ तत्त्वार्थ राज वार्तिक पृष्ठ १०६ = निरुपभोगम् ऐसे वचनसे अर्थापत्ति प्रमाण तें यह सिद्ध होता है कि और शरीर उपभोग सहित है ॥ सामर्थ्यादन्यत्सोपभोग गम्यते = सामर्थ्यात् अन्यत् स-उपभोग गम्यते = संगतअर्थतासे अन्य शरीर उपभोग सहित जानेजाते हैं तत्त्वार्थ श्लोक-वार्तिक पृष्ठ ३५० में और अन्य अनुवादकोंने भी यही लिखा है कि अन्य शरीर उपभोग सहित हैं॥ मेरी समझमें इन सबका यह अभिप्राय है कि योगोंके कारणकी विवक्षासे तीन औदारिक, वैक्रियिक आहारक शरीर उपभोग सहित हैं (= सोपभोग हैं)और कार्मण शरीर उपभोगरहित है अब रहा तैजस सो योगोंका कारण नहीं है इससे सूत्रमें उसको विषय प्रकरण वा अधिकारसे बाहर समझकर उसका विशेषरूपसे कथन नहीं किया है। सदासुखजीकृत 'अर्थप्रकाशिकामें' तैजस शरीर के संबंधमें निम्नलेख है "तैजस शरीर योगका निमित्त भी नाहीं है यातें तैजस शरीर निरुपभोग है ही यातें याकूं सूत्रमें नहीं कह्या याकी बिना कह्याही निरुपभोग्य है ॥ तैजस कार्मण शरीरके अंगोपांग भी नाहीं हैं यातें वचनका बोलना सुनना इत्यादिक नहीं ॥ यातें ए दोऊही शरीर निरुपभोग हैं। परन्तु सभाष्यपृष्ठ५४० में श्वेताम्बर 'शेषाणि तु सोपभोगानि' ऐसालेख है

११२

॥ गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् ॥४५॥

सूत्रक्रमापेक्षया आदौ भवमाद्यम् । औदारिकमित्यर्थः ॥ यद्गर्भजं यच्च सम्मूर्च्छनजं तत्सर्वमौदारिकं द्रष्टव्यम् ॥ तदनन्तरं यन्निर्दिष्टं, तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥४६॥

उपपादे भवमौपपादिकम् । तद्-

सूत्रम्—[1]गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यम् =गर्भजम् सम्मूर्च्छनजम् च आद्यम् भवति ॥ ४५॥

सूत्रार्थः–गर्भजम् १।१ सम्मूर्च्छनजम् १।१ =जो गर्भसे उत्पन्न होता है और सम्मूर्च्छनसे उत्पन्न होता है

आद्यम् १।१ भवति । =सो (छत्तीसवां सूत्रमें वर्णित) आदिका वा पहिला (औदारिक शरीर) है अर्थात् वह आदिका औदारिक शरीर गर्भरूप और सम्मूर्च्छनरूप जन्ममें उत्पन्न होता है अथवा जिसकी उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्मसे है वह औदारिक शरीर है

वृत्त्यनुवादः–सूत्र-क्रम-अपेक्षया आदौ ७।१ भवम् १।१ आद्यम् =(औदारिक, वैक्रियिक आदि छत्तीसवां) सूत्रकीक्रम विवक्षासे आदिमें हो सो आद्य है

औदारिकम् १।१ इति*अर्थः १।१ यद् १।१ गर्भजम् १।१ =औदारिक (शरीर) है ऐसा अभिप्राय है । जो गर्भ से उत्पन्न होता है

यद् १।१ च*सम्मूर्च्छनजम् १।१ तत्-सर्वम् १।१ औदारिकं द्रष्टव्यम् =और जो सम्मूर्च्छनसे उपजता है सो सब औदारिक (शरीर) समझना चाहिये

तद्–अनन्तरम् १।१ यद् १।१ निर्दिष्टम् १।१ =(उस औदारिक शरीर)के अत्यन्त समीप जो वर्णन कियागया (वैक्रियिक शरीर)

तद् १।१ कस्मिन् ७।१ जन्मनि ७।१ इति*अतः*आह । =सो किस जन्म में है । इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्–[2]औपपादिकं वैक्रियकम्॥४६॥=औपपादिकं वैक्रियिकम् भवति ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थः–औपपादिकम् १।१ वैक्रियिकम् १।१ भवति । =उपपाद जन्ममें हो सो वैक्रियिक (शरीर) होता है ॥

वृत्त्यनुवादः–उपपादे ७।१ भवम् १।१ औपपादिकम् १।१ तद् =उपपाद (जन्म) विषैं हो सो औपपादिक है । सो (उपपाद जन्म में)

(१) इस सूत्रका दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एक है । आद्यम् के स्थानमें जहां 'आद्यं' है वह कातंत्र रूपमाला व्याकरणमतके अतिरिक्त अशुद्ध है (अध्याय १ टिप्पणी पृष्ठ ५ देखो) (२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य*में "वैक्रिय मौपपातिकम्" पाठ है ॥ पाठ भिन्न होने पर भी दोनों का अर्थ एकसा है ॥

सर्वंवैक्रियिकंवेदितव्यम् ॥यद्यौपपादिकं वैक्रियिकं,अनौपपादिकस्य वैक्रियिकत्वाभाव इत्यत आह-

॥ लब्धिप्रत्ययं च॥४७॥

चशब्देनवैक्रियिकमभिसम्बध्यते।तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिर्लब्धिः। लब्धिःप्रत्ययःकारणमस्यलब्धिप्रत्ययम्।वैक्रियिकंलब्धिप्रत्ययं चभवतीत्यभिसम्बध्यते ॥ किमेतदेव लब्ध्यपेक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यतआह-

॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥

सर्वम्[१]॥वैक्रियिकम्[१]॥वेदितव्यम्[१]॥;यदि* =समस्त वैक्रियिक(शरीर)ज्ञात कियेजाना चाहिये । जो
औपपादिकं[१]॥ वैक्रियिकम्[१]॥अन्-औपपादिकस्य[१] =उपपादजन्म वैक्रियिक (शरीर) होता है तो उपपादजन्म न होनेवालेके
वैक्रियिकत्व-अभावः[१]इति*अतः*आह T =वैक्रियिकपना का अभाव होगा । इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-[1]लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७॥ =लब्धिप्रत्ययं च(वैक्रियिकं भवति)॥ ४७ ॥

सूत्रार्थः—लब्धि—प्रत्ययम्[१]॥च*वैक्रियिकम्[१]॥भवति T=तपोविशेषरूपऋद्धिकी प्राप्ति(=लब्धि)हैकारणजिसको ऐसाभीवैक्रियिक(शरीर)होताहै
अर्थात् तपकेद्वाराउत्पन्नहुई ऋद्धिके निमित्तसेभी वैक्रियिक शरीर मनुष्य,तिर्यंचकें होताहै

वृत्त्यनुवादः-च-शब्देन[१]वैक्रियिकम्[१]॥अभिसंबध्यते T=(इससूत्रमें)च शब्दकरि वैक्रियिक शरीर संबंधित है वा लियागया है
तपस-विशेषात्[१]ऋद्धिप्राप्तिः[१]॥लब्धिः[१]॥ ॥लब्धिः[१]॥=तपके विशेषसे ऋद्धिकी प्राप्ति सो लब्धि है । लब्धि है
प्रत्ययः[१]कारणम्[१]॥अस्य[१]लब्धि—प्रत्ययम् [१]॥ =निमित्त कारण जिसका सो लब्धिप्रत्यय है
वैक्रियिकम्[१]॥ लब्धिप्रत्ययम्[१]॥ च*भवति T इति*=वैक्रियिक (शरीर) लब्धि निमित्तक भी (=च) होता है ऐसा
अभिसम्बध्यते। किं[१]॥एतद्[१]॥एव*लब्धि—अपेक्षम्=सम्बंध कियागया है । क्या वह(वैक्रियिक शरीर) ही लब्धिके निमित्तसे है
उत*अन्यत्*अपि*अस्ति T इति*अतः*आह T =वा और भी(कोई शरीर लब्धिप्रत्यय)है इसलिये(अग्रिम सूत्रमें)कहते हैं कि

सूत्रम्-तैजसमपि[2] ॥ ४८ ॥ =तैजसमपि (शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति) ॥ ४८ ॥

(१)इस सूत्रका श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें पाठ और अर्थ एकसाहै।इससूत्रमें'वैक्रियिक'शब्दकी अनुवृत्ति छ्यालीसवांसूत्रसेलीगईहै॥
(२)सभाष्यमें यहसूत्र, सूत्ररूपमें नहीं दियाहै।शुभंविशुद्धम् इत्यादि सूत्रकी व्याख्यामें "तैजसमपि शरीरं लब्धिप्रत्ययं भवति"ऐसावाक्यपायाजाताहै

अपिशब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तैजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ॥

वैक्रियिकानन्तरं यदुपदिष्टं तस्य स्वरूपनिर्द्धारणार्थं स्वामिनिर्देशार्थं चाह—

॥ शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥४९॥

सूत्रार्थः—[1] तैजसं [1/1] अपिशरीरं [1/1] लब्धिप्रत्ययम् [1/1] =तैजस शरीर भी (=अपि) तपोविशेषरूपऋद्धि प्राप्तिके निमित्तसे

भवति T =होताहै अर्थात् तैजस शरीर भी ऋद्धिहोनेसे प्राप्तहोताहै अतः वहभी[2] लब्धिकारणक है

वृत्त्यनुवादः—अपिशब्देन [3/1] लब्धिप्रत्ययं [2/1] अभिसंबध्यते =(इससूत्रमें) अपि शब्दकरि "लब्धिप्रत्यय" वाक्य (इसीसूत्रमें) लगाया जाता है

तैजसं [1/1] अपि=लब्धिप्रत्ययं [1/1] भवति T इति* =तैजस(शरीर) भी ऋद्धिकेप्राप्ति—निमित्तक—(वा ऋद्धिकी प्राप्तिके कारणसे) होताहै

वैक्रियिक—अनन्तरम् [1/1] यद् [1/1] उपदिष्टम् [1/1] तस्य [6/1] =वैक्रियिक (शरीर)के अत्यन्त समीप निर्देश कियागया (आहारकशरीर) तिसके

स्वरूप—निर्धारणार्थं [4/1] चस्वामिन्—निर्देशार्थं [4/1] आह=स्वभाव निर्णय वा निश्चकेलिये और(तिसके)अधिपति के निरूपणके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्— शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ॥ ४९ ॥

=शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव[3] मुनेर्भवति

सूत्रार्थः- आहारकम् [1/1] शुभम् [1/1] =आहारक शुभहै—शुभकर्मका कारण है—इसकेहोते शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है

(१) "तैजसके दोय भेद है। एक निः सरण स्वरूप। दूसरा अनिः सरण स्वरूप॥ तहां निःसरण तैजस शुभाशुभ भेदकरि दोय प्रकार है। तिनमें जो तपश्चरणके धारक मुनिकै कोऊ क्षेत्रमें रोग मारी दुर्भिक्षादिकरि लोकनिकं दुःखी देखि जो करुणा अत्यन्त उपजिआवै तदि दक्षिणस्कंधमें तैं तैजसपिंड निकलिकरि द्वादश योजन प्रमाण क्षेत्रके जीवनिका दुःख मेटि आत्मा में प्रवेश करै सो शुभ तैजस है॥ अर कोऊ क्षेत्रके लोकनि ऊपर अत्यंत क्रोधित होय तदि ऋद्धिके प्रभावतैं वामस्कंधतें सिंदूर समान रक्तवर्ण अग्निरूप आत्माके प्रदेश निकलैं सो आदि में तो सूच्यंगुलके असंख्यातवांभाग प्रमाण अर अंत पर्यंत क्रमतैं बधता काहलके (=बिलावके) आकार निकसि द्वादश योजन प्रमाण समस्त जीव पुद्गलनिकूं भस्मकरि उलटा शरीरमें प्रवेश करि मुनिकूं दग्ध करै है सो मुनि तो नरककूं प्राप्त होय है" ॥ ऐसा शुभ अशुभ निः सरण स्वरूप तैजस शरीर है॥ अर अनिः सरण स्वरूप तैजस समस्त संसारी जीवनिकै देहकी दीप्तिका कारण है सो लब्धि प्रत्यय नहीं है॥"देखो अर्थप्रकाशिकामें सूत्र४६॥
(२ छत्तीसवां सूत्रके क्रमसे तैजसके कथन से पहिले आहारकका कथन होना चाहिये,परंतु लब्धिप्रत्ययकी अनुवृत्ति लेनेके लिये "तैजसमपि" प्रथम कहा पीछे आहारक (३) हमारे पाठ सर्वत्र एक है॥ सभाष्य० में "प्रमत्त संयतस्यैव" के स्थान में "चतुर्दशपूर्वधरस्यैव" वाक्य है। शेष पाठ एक है।

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेशः । शुभकर्मणः आहारककाययोगस्य कारणत्वाच्छुभमित्युच्यते । अन्नस्य प्राणव्यपदेशवत्॥ विशुद्धकार्यत्वाद्विशुद्धव्यपदेशः । विशुद्धस्य पुण्यस्य कर्मणः अशबलस्य निरवद्यस्य कार्यत्वाद्विशुद्धमित्युच्यते ।

च॰ विशुद्धम् १॥	=विशुद्ध है अर्थात् विशुद्ध वा निर्दोष कर्मका कार्य है और (=च)
अव्याघाति १॥	=किसीदूसरेद्वारा रुकनेवाला नहींहै अन्यकिसी दूसरेको रोकनेवाला भी नहींहै (और)
प्रमत्तसंयतस्य६॥ मुनेः६॥ एव॰भवति I	=प्रमत्तसंयमी छठवां गुणस्थानवर्ती मुनिकेही (=एव) होता है । अन्य किसी दूसरे गुणस्थानवर्ती मुनिके नहीं होता है । उक्तमुनिके औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर तो होते ही हैं । परंतु सब प्रमत्तसंयमी मुनियोंके आहारक नहीं होता है
इत्यनुवादः—शुभ-कारणत्वात्५॥शुभ-व्यपदेशः१॥	=शुभका कारण होनेसे (आहारक-शरीर इससूत्रमें) शुभ-ऐसा नाम है (अर्थात्)
शुभ-कर्मणः६॥आहारककाययोगस्य६॥कारणत्वात्५॥	=आहारककाययोगके शुभकर्मका निमित्त होनेसे
शुभम्१॥इति॰उच्यते I	=(इसके होने) शुभ प्रकृतिहीका बन्ध होता है (तिससे) शुभ ऐसा कहागया है
अन्नस्य६॥ प्राण-व्यपदेशवत्॰	=अन्नको प्राण कहनेके समान है अर्थात् जैसे अन्न है सो प्राण यथार्थमें नहीं है वरन प्राणके रखनेका कारण है तैसेही आहारक शरीर वास्तविकमें शुभ नहीं है शुभका कारण है अन्नको प्राण कहना और आहारक को शुभ कहना दोनों स्थानोंमें कारणमें कार्यका उपचार वा व्यवहार किया है
विशुद्ध-कार्यत्वात्५॥ विशुद्ध-व्यपदेशः १	=निर्दोष(=विशुद्ध)कार्यहोनेसे (इससूत्रमें) विशुद्धऐसा नाम (आहारक शरीरका) है ।
विशुद्धस्य६॥ अशबलस्य६॥ निरवद्यस्य६॥	=विशुद्ध, विशदवा निर्मल (=अशबलस्य) दोष रहित (निरवद्यस्य)
पुण्यस्य६॥कर्मणः६॥कार्यत्वात्५॥विशुद्धम्१इति॰उच्यते	=पुन्यकर्मका (आहारक काययोगके)कार्यहोनेसे विशुद्ध ऐसा कहा जाता है

उक्त सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में जहां आहारक शरीर के स्वामी का कथन किया है वहां "आहारक के स्वामी चौदह पूर्वके धारक संयत मनुष्य हैं" ऐसा वाक्य पृष्ठ ५= में लाये हैं इस से प्रगट है कि श्वेताम्बर समाज में प्रमत संयमी और अप्रमत संयमी दोनों गुण स्थान वर्तियों मुनियोंके आहारक शरीर होता है हमारे यहां केवल प्रमत्त संयमी छठवें गुण स्थानवर्ती मुनिके ही मस्तक से उत्पन्न होता है ॥

तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत् ॥ उभयतो व्याघाताभावादव्याघाति ॥ न ह्याहारकशरीरेणान्यस्य व्याघातः। नाप्यन्येनाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयार्थः चशब्दः क्रियते ॥ तद्यथा कदाचिल्लब्धिविशेषसद्भावज्ञापनार्थं, कदाचित्सूक्ष्मपदार्थ, निर्द्धारणार्थं संयमपरिपालनार्थं च ।

तन्तूनाम् ६। कार्पास–व्यपदेशवत्* =(कपासके) धागे वा डोरोंको कपास कहनेके सदृश। भावार्थ जैसे तंतु कपासके कार्य हैं और कपास कारण है तथापि उपचारसे कार्यको कारणमानकर तंतुओंको कपास कहदिया जाता है और 'कार्पासाः तांतवः' तंतु कपासहैं ऐसा संसारमें व्यवहार होताहै वैसेही आहारक शरीर भी विशुद्ध निर्मल वा स्वच्छ(=अशबलस्य)निर्दोष(=निरवद्यस्य)पुन्यकर्मका कार्य है इसलिये वह आहारक शरीरभी उपचारसे विशुद्ध कहदिया गया है ॥

उभयतः*व्याघात-अभावात् ५। अव्याघाति १॥ =दोनों रीतिसे रुकनेके अभावसे (आहारक शरीर) अव्याघाति है

न*हि*आहारक–शरीरेण ३।अन्यस्य ६। व्याघातः १। =क्योंकि (=हि) नहीं है आहारक शरीरसे दूसरेका रुकाव

न*अपि*अन्येन ३। आहारकस्य ६॥ इति* =(और)न दूसरेकरि आहारक शरीरकाभी (रुकावट वा प्रतिघात)होता है

तस्य ६। प्रयोजन-समुच्चय-अर्थः १। चशब्दः १। क्रियते । =तिस (आहारक)के प्रयोजनोंके समुदायके लिये (सूत्रमें) चकार लायागया है

तद्यथा*कदाचित्*लब्धि-विशेष–सद्भाव-ज्ञापन–अर्थम् २। कदाचित्*सूक्ष्म–पदार्थ-निर्द्धारण-अर्थम् २॥ =जैसे कभी ऋद्धि(=लब्धि) विशेषकी विद्यमानता (=सद्भाव) जाननेके लिये । कभी सूक्ष्म वस्तुके निर्णय वा निश्चयकरनेके लिये

च*संयम-परिपालन-अर्थम् २॥ =और(=च) (कभी) संयमकी रक्षाकेलिये अर्थात् किसी समय कोई विशेष लब्धि प्राप्त होजाय उस समय उसकी सत्ता जाननेके लिये आहारक शरीर प्रयोजनीय होताहै।किसी समय सूक्ष्म-पदार्थके निर्धारणके लिये आहारक शरीरका प्रयोजन पड़ताहै, असंयम दूर करनेके लिये अथवा संयमको पालनेके लियेभी उसका प्रयोजनहै ॥ संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीर इस भांति प्रयोजनीय होता है कि जिस समय भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें तीर्थंकरोंकी विद्यमानता न हो और प्रमत्त संयमी मुनिको ऐसी तत्त्व विषयक शंकाहो जाय कि जिसका समाधान केवली वा श्रुतकेवलीके विना न होसके इसलिये महाविदेह क्षेत्रोंमें जहांकि केवली विराजमान हों

[illegible]

प्रमत्तसंयतस्येत्युच्यते ॥ इष्टतोऽवधारणार्थमेवकारोपादानम्। यथैवं विज्ञायेत प्रमत्तसंयतस्यैवाहारकं नान्यस्येति। मैवं विज्ञायि, प्रमत्तसंयतस्याहारकमेवेति। माभूदौदारिकादिनिवृत्तिरिति॥ एवं विभक्तानि शरीराणि बिभ्रतां संसारिणां प्रतिगति किं त्रिलिङ्ग-

वहां उनके जानेकी इच्छा होजाय और यदि मैं औदारिक शरीरसे जाऊंगा तो जीवोंका विघातरूप महा-असंयम होगा ऐसा विचारकर वह मुनि औदारिक शरीरसे जाना उचित न समझें उस समय वह संयमकी रक्षाके लिये आहारक शरीरका निर्माण करते हैं, इसलिये संयमकी रक्षाभी आहारक शरीरका प्रयोजन है ॥

प्राक्–उक्तस्य आहारकम् इतिमत्याम्नायः =पहिले वा उपर्युक्त कहेहुये(शुभ-विशुद्ध-अव्याघाति)को(केलिये सूत्रमें)आहारकऐसापाठहै अर्थात् आहारकशरीर शुभ,विशुद्ध,अव्याघातिहै यह बतानेको सूत्रमें 'आहारक'काग्रहण है

यदा*आहारकशरीरम् निर्वर्तयितुम् =जिस समय (मुनि) आहारक शरीर रचनेको (=निर्वर्तयितुम्–हेत्वर्थकृदन्त है)

आरभते। तदा*प्रमत्तः भवति। इति* =आरम्भ करता है। तब (वह मुनि) प्रमादसहित वा प्रमादयुक्त होता है ॥ (क्रियारूप प्रवर्तनेको यहां प्रमादकहा है नकि अविरतकीज्यों प्रमादहोता है तिसकोकहा)

प्रमत्तसंयतस्य इति*उच्यते। =(इसलिये) प्रमत्तसंयमीमुनिकें (=प्रमत्तसंयतस्य)ऐसा (वाक्य सूत्रमें) कहा गया है

इष्टतः*अवधारण-अर्थम् एवकारः उपादानम् =वाञ्छित नियमकेलिये (सूत्रमें) 'एव'शब्दका ग्रहण है

यथा*एवम्*विज्ञायेत। प्रमत्तसंयतस्य =क्योंकि (=यथा) ऐसा जानो (विज्ञायेत) कि प्रमत्तसंयमी(मुनि) कें

एव*आहारकम् न*अन्यस्य इति* =ही आहारक शरीर होता है नकि और किसी (गुणस्थानवर्ती) मुनिकें

मा*एवम्*विज्ञायि। प्रमत्तसंयतस्य =इस प्रकार न जानो कि प्रमत्तसंयमी(छठवांगुणस्थानवर्ती) मुनिकें

आहारकम् एव*इति* (१)माभूत्। =केवलएक(=एव) आहारक शरीर है। (क्योंकि उक्तमुनिकें) नहीं होगया है (माभूत्)

औदारिक-आदि-निवृत्तिः इति* =औदारिक शरीर,तैजस कार्मण शरीरोंका (=आदि) निषेध ॥

एवम्*विभक्तानि शरीराणि बिभ्रताम् =इसप्रकार भिन्न भिन्न वा पृथक् पृथक् शरीर धारणकरनेवाले(=बिभ्रताम्)

संसारिणाम् प्रतिगति*(२)किम्*त्रिलिङ्ग– =संसारी (जीव) निकी प्रत्येकगतिमें क्या तीनोंवेद (स्त्री–पुरुष-नपुंसक) के

(१) 'मा'निषेधवाची अव्ययहै,लुङ्(अद्यतनीभूत क्रिया) केसाथ आनेपर लुङ् के 'अट्'(अ)कालोप होताहै 'भू'का लुङ् एकवचन अभूत् है।उसका'अ'जातारहा

(२) प्रतिगति'अव्ययीभाव समास है। अकारांत शब्दोंमें अम्(=म्)का आदेश होताहै। इकारान्त,उकारान्त हलन्त शब्दोंकी विभक्तियोंका लोप होजाताहै

सन्निधानं, उत लिङ्गनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वक्ष्यन्ते, नरकेषु भवा नारकाः। सम्मूर्च्छनं सम्मूर्च्छः स येषामस्तीति सम्मूर्च्छिनः। नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नारकसम्मूर्च्छिनः ॥ चारित्रमोहविकल्पनोकषायभेदस्य नपुंसकवेदस्याशुभनाम्नश्चोदयान्न स्त्रियो न पुमांस इति नपुंसकानि भवन्ति ॥

सन्निधानम्[1/1] =संन्निकर्षण वा निकट है अर्थात् प्रत्येक गतिमें तीनों तीनों लिंग होते हैं
उत*लिङ्गनियमः[1/1]कश्चित्*अस्ति इति*अतः आह। =अथवा कोई और लिङ्गोंका नियम है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि =नारकाश्च सम्मूर्च्छिनश्च नपुंसकानि भवन्ति ॥ ५० ॥

सूत्रार्थः-नारकाः[1/3]च*सम्मूर्च्छिनः[1/3] च* =नारकी जीव और सम्मूर्च्छन जीव भी
नपुंसकानि[1/3]भवन्ति। =नपुंसक होते हैं। (उनमें कोईभीजीव स्त्रीलिंग और पुल्लिंग नहीं होता है)
वृत्त्यनुवादः-नरकाणि[1/3]वक्ष्यन्ते। नरकेषु[7/3] =नरक(तीसरे अध्यायके प्रथमसूत्रमें)कहेजावेंगे। नरकविषैं
भवाः[1/3] नारकाः[1/3] =जन्में वा उपजें वा होवें(=भवाः)वे नारक हैं॥
सम्मूर्च्छनम्[1/1] सम्मूर्च्छः[1/1] =अवयवसहितशरीरका जहांतहां वा सर्वत्र बनजाना (=संमूर्च्छन) सम्मूर्च्छ है
सः[1/1]येषाम्[6/3]अस्ति। इति*सम्मूर्च्छिनः[1/3] =सो(सम्मूर्च्छ=अवयवसहित सर्वत्र रचाहुआ शरीर) जिनकें हो ऐसे सम्मूर्च्छिन हैं
नारकाः[1/3]च*सम्मूर्च्छिनः[1/3]च*नारकसम्मूर्च्छिनः[1/3] =तथा नारकी और सम्मूर्च्छिन हैं सो नारकसम्मूर्च्छिनः (द्वंद्वसमास पद सूत्रमें) है
चारित्रमोह-विकल्प-[2]नोकषाय-भेदस्य[6/1] =चारित्र मोहनीय कर्मकाभेद (=विकल्प) जो नो कषाय तिस (नोकषाय) का भेद
नपुंसकवेदस्य[6/1]च*अशुभनाम्नः[6/1]उदयात्[5/1] =नपुंसकवेद जो है तिसके और (=च) अशुभनामक नामकर्मके उदयसे
न*स्त्रियः[1/3]न*[4]पुमांसः[1/3]इतिनपुंसकानि[1/3]भवन्ति=न स्त्रियां हैं नपुरुष हैं ऐसे नपुंसक होते हैं भावार्थ मोहनीयकर्म

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२)नोकषाय वेदनीय=ईषत्कषाय वेदनीय=अकषाय वेदनीय एकार्थवाची वाक्यहैं
(३) स्त्री शब्दका बहुवचन, स्त्रीलिंग स्त्रियः है॥ (४) पुंस् (मनुष्य) शब्दका पुल्लिंग बहुवचन पुमांसः है॥

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकान्येवेति नियमः ॥ तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनोज्ञशब्दगन्धरूप-रसस्पर्शसम्बन्धनिमित्ता स्वल्पाऽपिसुखमात्रा नास्ति ॥ यद्येवमवधियते, अर्थादापन्नमेत-दुक्तेभ्योऽन्ये संसारिणस्त्रिलिङ्गा इति॥ यत्रात्यन्तं नपुंसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनार्थमाह-

दो प्रकारका है एक दर्शन मोहनीय दूसरा चारित्र मोहनीय । दर्शन मोहनीयके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व तीन भेद हैं और चारित्र मोहनीयके भी कषाय वेदनीय और नो कषायवेदनीय दो भेद हैं। नोकषाय वेदनीयके हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुंवेद और नपुंसक वेद ये नौभेद हैं उन में नपुंसक वेद और अशुभनामा नामकर्म (इन दोनों) के उदय से जो जीव न स्त्री हों और नपुरुष हों वे नपुंसक होते हैं

नारक-सम्मूर्च्छिन:(१/३)नपुंसकानि(१/३)।।एव*इति*नियम:(१/१)	=नारकजीव और सम्मूर्च्छिन जीव नपुंसकही हैं ऐसा नियम (स्वरूप कथन) है
तत्र * हि *स्त्री-पुंसविषय-	=क्योंकि(=हि)उस अवसर में(=तत्र)अर्थात् नपुंसक भवमें,स्त्रीपुरुषसंबंधी(=विषय)
मनोज्ञ-शब्द-गन्ध-रूप-	=मनोज्ञशब्द(कासुनना)मनोज्ञगन्ध(कासूंघना)मनोहर(=मनोज्ञ) रूप (कादेखना)
रस-स्पर्श-सम्बन्ध-	=इष्ट (=मनोज्ञ) रस(काचाखना) और इष्ट(=मनोज्ञ)स्पर्श(कास्पर्शनकरना)रूप(संबंध)
निमित्ता(१/३)स्वल्प*अपि*सुखमात्रा(१/१)।।न*अस्ति*	=कारणोंसे होनेवाला थोड़ा भीसुख(नारकी और सम्मूर्च्छिन जीवोंका) नहीं है
यदि*एवम्* अवधियते ।	=जो इसप्रकार निश्चय कियागया है(किनारक और सम्मूर्च्छिन नपुंसक हैं तो)
अर्थात्(५/१)आपन्नम् (१/१)।। एतद्(१/१)।।	=अर्थसे यह(=एतद्)प्राप्तहोता है(=आपन्नं)कि भावार्थ अर्थापत्तिप्रमाणसे (नकहेगये अभिप्रायको समझनेवाले ज्ञानसे)यह निकलता है कि
उक्तेभ्यो (५/३)अन्ये (१/३)।	=कहेहुये(नारक और सम्मूर्च्छिन जीवों)निसे अवशेष वा बचेहुये (=अन्य)
संसारिण:(१/३)त्रि-लिङ्गा(१/३)इति*;यत्र*अत्यन्तं (१/१)।।	=संसारीजीव तीन लिंगवाले हैं । जहां (जिसजन्ममें) अत्यन्त वा अतिशय
नपुंसकलिङ्गस्य (६/१) अभाव: (१/१) तद्-	=नपुंसकलिंगका अस्तित्व नहीं है। तिस (अत्यन्त नपुंसक लिंगके अभाव)के
प्रतिपादन-अर्थम् (१/१)।। आह ।	=समर्थनके लिये वा स्पष्टीकरनेके लिये(अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ न देवाः ॥ ५१ ॥

स्त्रैणं पौंस्नं च यन्निरतिशयं सुखं सुर(शुभ)गतिनामोदयापेक्षं, तद्देवा अनुभवन्तीति न तेषु नपुंसकलिङ्गानि सन्ति ॥ अथेतरे कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥ ५२ ॥

सूत्रम्—[1] नदेवाः ॥ ५१ ॥ =न देवाः (नपुंसकानि भवन्ति) ॥५१॥

सूत्रार्थः-न*देवाः¹ नपुंसकानि¹ भवन्ति T =(भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, और कल्पवासी) देव नपुंसक लिंगी नहीं होते हैं अर्थात् सब प्रकारके देवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद केवल दोही वेद होते हैं

इत्यनुवादः-स्त्रैणं¹ पौंस्नं¹ च यत् निरतिशयं¹ सुखम्¹ =स्त्री संबंधी तथा पुरुष संबंधी जो परमोत्कृष्ट(=निरतिशय पत्रकोश२१५)सुख है और

सुर(शुभ)-गतिनाम-उदय-अपेक्षम्¹ =जो(भली वा अच्छी)सुरगति नामक (नामकर्मकी प्रकृतिके) उदयकी विवक्षासे है

तद्¹ देवाः¹ अनुभवन्ति T इति*तेषु¹ =तिस (सुख)को देव भोगते हैं वा अनुभव करते हैं। उन (देवों) में

नपुंसकलिङ्गानि¹ न*सन्ति T =नपुंसकलिङ्ग नहीं है (केवल स्त्रीवेद और पुरुषवेद दोही वेद होते हैं)

अथ*इतरे¹ [2] कियत्-लिङ्गाः¹ इति*अतः*आह T =अब अन्य(नारक, सम्मूर्च्छन, देवोंके अतिरिक्त)कितने लिङ्गवाले हैं।इसलिये कहते हैंकि

सूत्रम्-शेषास्त्रिवेदाः[4] ॥ ५२ ॥ =शेषाः जीवाः त्रिवेदाः भवन्ति ॥ ५२ ॥

सूत्रार्थः-शेषाः¹ जीवाः¹ =बचेहुये जीव (अर्थात् नारक, सम्मूर्च्छन और चारों प्रकारके देवोंके अतिरिक्त जे कर्मभूमिके गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच ते स्त्री-पुरुष-नपुंसक)

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है (२) तत्त्वार्थराजवार्तिकमें तथा हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिमें "शुभगतिनामोदयापेक्षं" इत्यादि पाठ है'सुर'शब्द नहीं है पं० पन्नालाल दूनीवालोंने 'शुभगतिका अर शुभनामकर्मका उदयकी है अपेक्षा जाविषै"इत्यादि अनुवाद किया है अर्थात् शुभगति और शुभनाम कर्म दोके उदय की अपेक्षा मानीहै॥'सुर'शब्द होनेसे हमने केवल सुरगति जो शुभ होती है उसके उदयकी अपेक्षा मानी है मुद्रित वृत्तिके द्वितीय संस्करणमें"गति नामोदयपेक्षं"पाठ है॥ (३) कियत् त्रिलिंगी शब्द है कियान् प्रथमाविभक्ति पुल्लिंग एक वचन है कियती प्रथमा एक वचन स्त्रीलिंग है और कियत् प्रथमा एक वचन नपुंसक लिंग है यहां पर बहुवचन में प्रयोग है अर्थात् "कियल्लिङ्गाः"कितने लिङ्गवान हैं इसलिये हमने इस'कियल्लिङ्गा'को समास मानकर अनुवाद किया है ॥ (४) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में यह सूत्र नहीं है ॥ भाष्यकारने भाषा में इस सूत्रका आशय देदिया है ॥ 'शेषस्त्रिवेदः'ऐसासूत्र पं० सदासुखजी कृत सूत्रभाषा में अशुद्ध है ॥

त्रयो वेदा येषां ते त्रिवेदाः॥ के पुनस्ते वेदाः। स्त्रीत्वं, पुंस्त्वं नपुंसकत्वमिति॥ कथं तेषां सिद्धिः! वेद्यत इति वेदः। लिङ्गमित्यर्थः॥ तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं चेति॥ द्रव्यलिङ्गं योनिमेहनादिनामकर्मोदयनिर्वर्तितम्॥ नोकषायोदयापादितवृत्ति भावलिंगम्॥ स्त्रीवेदोदयात् स्त्यायत्यस्यां गर्भ इति स्त्री। पुंवेदोदयात् सूते

त्रि–वेदाः (१/३) भवन्ति T =तीनों लिंगवाले वा तीनों लिंगवान होते हैं (परन्तु भोगभूमिके उपजे मनुष्य और तिर्यंचोंके और म्लेच्छखंडके स्त्रीपुरुषोंके पुरुषलिंग और स्त्रीलिंग ये दो वेदही होते हैं। देखो अर्थप्रकाशिकासूत्र५१)

वृत्त्यनुवादः-त्रयः(१/३) वेदाः(१/३) येषाम्(६/३) ते(१/३) त्रिवेदाः(१/३) =तीनहैं लिंग वा वेद जिनके वे त्रिवेदा हैं (यह त्रिवेदापदका विग्रह वा समासके अर्थका द्योतकवाक्यहै)

के(१/३) पुनः* ते(१/३) वेदाः(१/३) स्त्रीत्वम्(१/१) पुंस्त्वम्(१/१) =पुनि वे लिंग कौन हैं, स्त्रीपन अर्थात् स्त्रीलिंग, पुरुषपने अर्थात् पुल्लिंग

नपुंसकत्वम्(१/१) इति* कथम्* तेषाम्(६/३) सिद्धिः(१/१) =नपुंसकपन वा क्लीवत्व ऐसे हैं। उन (वेदों) की कैसे निष्पत्ति वा व्युत्पत्ति है

वेद्यते T इति* वेदः(१/१) =जो "वेदिये" ऐसा वेद है अथवा "जो अनुभवकियाजाय" (=वेद्यते) ऐसा वेद है

लिङ्गम्(१/१) इति* अर्थः(१/१) तत्(१/१) द्विविधम्(१/१) =लिंङ्ग ऐसा अर्थ वा अभिप्राय है। वह लिंग दो प्रकार है

द्रव्यलिंङ्गं(१/१) भावलिंङ्गं(१/१) च इति* द्रव्यलिंगम्(१/१) =द्रव्यलिंग और(=च) भावलिंग ऐसा है। द्रव्यलिंग वह है

योनि– =जो(तिर्यंचनी वा स्त्रीके) भग और [रचित है

मेहन–आदि–नामकर्म–उदय–निर्वर्तितम्(१/१) =(मनुष्य वा तिर्यंचके) लिंग(=मेहन) आदि (शरीरके आकार) नामकर्मके उदयसे निष्पादित वा अर्थात् नामकर्मके उदयसे योनि, लिंग रज, वीर्य, आदिका रचना द्रव्यलिंग है

नोकषाय–उदय–आपादित– =(स्त्रीवेद–पुरुषवेद–नपुंसकवेद) नो कषाय(चारित्र मोहनीयकर्म)के उदयसे प्राप्तहुआ(=आपादित)

वृत्तिः(१/१) भावलिंगम्(१/१) =आत्माके अंतःकरण परिणामकी प्रवृत्ति (=वृत्तिः) सो भावलिंग है अर्थात् नोकषाय कर्मके उदयसे स्त्री आदि लिंगोंके अनुकूल इच्छाका होना सो भावलिंग है

स्त्रीवेद–उदयात्(५/१) स्त्यायति T यस्याम्(७/१) गर्भः(१/१) =स्त्रीवेदके उदयसे इकट्ठाहोता है तिष्ठता है वा ठहरता है (=स्त्यायति) गर्भ जिसमें

इति* स्त्री(१/१); पुंवेद–उदयात्(५/१) सूते(१/१) =ऐसी स्त्री है। पुरुषवेदके उदयसे उदरमें (=सूते)

जनयत्यपत्यमिति पुमान् । नपुंसकवेदोदयात्तदुभयशक्तिविकलं नपुंसकम् ॥ रूढिशब्दाश्चैते । रूढिषु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थैव। यथा गच्छतीति गौरिति ॥ इतरथा हि गर्भधारणादिक्रियाप्राधान्ये, बालवृद्धानां तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां कार्मणकाययोगस्थानां च

जनयति I अपत्यम्²॥ इति* पुमान्¹॥ । नपुंसक-	=संतानको (=अपत्यम्) उत्पन्न करता है (=जनयति) ऐसा पुरुष है । नपुंसक
वेद-उदयात्⁵॥ तद्-उभय-	=वेदके उदयसे जो दोनों (उदरमें गर्भकीस्थिति और संतान उत्पन्नकरनेकी)
शक्ति-विकलम्¹॥ नपुंसकम्¹॥ रूढि-शब्दाः¹³ च एते¹³	=शक्तिसे रहित,वा शक्तिसे विहीन नपुंसक है और ये (स्त्री-पुंस्-नपुंसक) रूढि शब्द हैं
(¹)रूढिषु⁷³ च* क्रिया¹॥ व्युत्पत्ति-अर्थ-एव*	=और(=च) रूढि(शब्दों)में क्रिया (अर्थात् धातुका अर्थ) है सो निरुक्तिमात्र (=एव)के लिये है
यथा* गच्छति I इति* गौः¹॥ इति*	=जैसे गमन करतीहै ऐसी गायहै भावार्थ यदि'गो' शब्दकी निरुक्ति पूर्णतासे ग्रहणकी जावै तो गाय(पशु)जिससमय चलै फिरै उसकाल ही गौ कहना चाहिये और वही(पशु) जिस काल सोता हो, खड़ाहो, लेटाहो, बैठाहो, उस समय व्युत्पत्तिके अनुसार गौ नहीं कहना चाहिये परन्तु ऐसा लोक व्यवहारमें नहीं होता सर्वकालमें रूढ़ि वा प्रसिद्धके वशसे उस पशुको गौ कहते हैं अतः क्रियाका अर्थ शब्दोंमें केवल व्युत्पत्ति मात्र ही है ॥
इतरथा* हि*	=क्योंकि अन्यथा अर्थात् यदि नामोंमें रूढिकी प्रधानता न मानी जावै तो
गर्भ-धारण-आदि-क्रिया-प्रधान्ये ⁷॥	=गर्भधारणक्रियाको तथा सन्तान उत्पादन क्रियाको (=आदि) मुख्यमाननेमें (अर्थात् यही बातमानें कि जब गर्भधारणकी सामर्थ्य है तब स्त्री है चलते-फिरते-बैठते-उठते-रसोई बनाने इत्यादि क्रियामें स्त्री नहीं हैं और जब संतान उत्पादनकी सामर्थ्य है तबहीपुंस् वेदीहै अन्य अवस्थाओंमें वा अन्यक्रिया जैसे व्यौपार इत्यादिकमें पुरुषवेदी नहींहैतो
बालवृद्धानाम्⁶³ (²)तिर्यङ्मनुष्याणाम् देवानाम्⁶³ च*	=बाल-वृद्ध तिर्यंचोंके और बालवृद्ध मनुष्योंके और देवोंके और (=च)
कार्मणकाययोगस्थानाम् ⁶³	=कार्मणकाययोगमें स्थित जीवोंके अर्थात् विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंके

(१) रूढि शब्द स्त्रीलिंग है परंतु यहां पर "शब्दों" ऐसा इसके आगे लिखा हुआ है ॥ अर्थ है'रूढि शब्दों' में इसलिये हमने पुलिंग में रक्खा है ॥
(२)'तिर्यङ्मनुष्याणां देवानां'ये शब्द हमारी समझमेंयहां पर उपलक्षणरूपमें प्रयोग किये गयेहैं ॥ उपलक्षण=पास रहनेहारे और अपनेसे संम्बन्ध-

तदभावात्स्त्रीत्वादिव्यपदेशो नस्यात्

तद्-अभावात् ५/१ =उस (गर्भधारण और सन्तान उत्पादन क्रिया) के अभावसे वा सामर्थ्य न होनेसे
स्त्रीत्व-आदि-व्यपदेशः१/१ =स्त्रीपणा और पुंस्पनाका नाम वा कथन (स्त्री-पुंस्की व्युत्पत्ति पृष्ठ १२२, १२३ में देखो)
न* स्यात् T =नहोसकैगा भावार्थ इसका यह है स्त्यायति यस्यां गर्भःइति स्त्री=स्थितिहोता है गर्भ जिसमें वह स्त्री है और सूते जनयति अपत्यम् इति पुमान्= उदरमें संतानको उपजावै सो पुमान् है (पुंस् का प्रथमा विभक्ति एकवचन पुंल्लिंग पुमान् है (=पुरुष, मनुष्य) उक्त अर्थ केवल व्युत्पत्तिके लिये है प्रधानतासे नहीं है, यदि उन्हें मुख्यतासे माना जायगा तो जिस समय गर्भधारण क्रिया और संतान-उत्पादन क्रिया आदि होंगी उसी समय स्त्री पुंस् आदि उनको कह सकते हैं किन्तु बालक, बालिकायें, वृद्ध पुरुष, वृद्ध तिर्यंच, वृद्ध तिर्यंचनी, तिर्यंच तिर्यंचनियोंके बच्चे और देवी देवताओंको और विग्रहगतिमें विद्यमान जीवोंको जिनमें कि गर्भधारण संतान उत्पादन आदिकी सामर्थ्य नहीं स्त्रीवेदी वा पुरुषवेदी आदि नहीं कहसकते इसलिये स्त्री, पुरुष, गौआदिक शब्द रूढि हैं (१) यौगिक(=व्युत्पन्न व्युत्पत्तिसहित सामासिक) शब्द नहीं हैं ॥ और इन तीनों स्त्री पुरुष और नपुंसक वेदोंमें स्त्रीवेदको अगर समान माना है । पुरुषवेदको फूंसकी अग्नि सदृश माना है और

रखने वालेका ज्ञान जिससे हो । जैसे "कौओंसे दही बचाया जाय" यहां कौआ पद अपने और अपने से भिन्न कुत्ते, बिल्ली आदिका भी बोधक है ॥ "कौओं से दही बचाया जाये" इसका यह सारांश है कि दही की रक्षा केवल कौओं से ही न कीजाय वरन् जितने भी कुत्ते-बिल्ली-बंदर और इतर जीव जो दही को बिना किसी स्वत्वके खाजाय सब से उसको बचाया जाय ॥ इसी प्रकार उक्त वाक्य में तिर्यंच, तिर्यंचनी उनके बच्चे, मनुष्य, मनुष्यणी, उनके बच्चे, देवी, देव, इत्यादि और अन्य जितने शब्द व्युत्पत्ति को ध्यानमें न रखकर रूढ़ि में बोले जाते हैं और उक्त सूत्रसे संबंधित हैं सब आजाते हैं ॥ जयचंद्राय जीने "रूढि शब्दाश्चैते" से ·····"व्यपदेशो न स्यात्" तक की (इस अनुवाद के देखो पृष्ठ १२३ १२४) वचनिका में मनुष्य और तिर्यंच और देव शब्दोंको ध्यान में न रखकर उनकी स्त्रियों पर वाक्यों को ऐसे संबंध किया है कि स्त्री, पुरुष, नपुंसक "इनिकी संज्ञा है सो रूढि शब्द रूप है । रूढि शब्द की व्युत्पत्ति कीजिये है सो तिस व्युत्पत्तिमात्र प्रयोजनके अर्थि ही है । जैसे गऊ शब्द की निरुक्ति करिये, जो चालै ताकूं गऊ कहिये । सो यहां निरुक्ति रूढिहीन जाननी। जातें बैठा सोवता गऊको भी गऊही कहिये । ऐसै रूढि जाननी । जो ऐसे न मानिये तो गर्भ धारण क्रियाहीकूं प्रधान मानिये तो बाल स्त्री तथा वृद्ध स्त्री तिर्यंचनी मनुष्यणी तथा देवांगना तथा कार्मण काययोग विषै अंतरालमें तिष्ठती स्त्रीनिकें गर्भ धारण नाहीं, तब स्त्री पणाका नाम न ठहरै । तथा पुत्रादिक उपजाये विनां इनिका पुरुष पणाका नाम न ठहरै । तातैं उहां नाम विषै रूढी ही प्रधान है ॥ वचनिका पृष्ठ २६४ (१) यौगिक-धातु और प्रत्यय से समझ पड़ने योग्य अर्थको बतलाने हारा शब्द अर्थात् जो दो वा अधिक शब्दों से मिलकर बना हो जैसे शिवालय,जीवधारी, जलचारी, दयासागर, उसके तद्धित, कृदन्त, समास तीन भेद हैं

त एते त्रयो वेदाः शेषाणां गर्भजानां भवन्ति ॥ य इमे जन्मयोनिशरीरलिंगसम्बन्धाहित-विशेषाः प्राणिनो निर्दिश्यन्ते देवादयो विचित्रधर्माधर्मवशीकृताश्चतसृषु गतिषु शरीराणि धारयन्तस्ते किं यथाकालमुपभुक्तायुषो मूर्त्यन्तराण्यास्कन्दन्ति, उतायथाकालमपीत्यत आह-

नपुंसक वेदको ईटकी अग्निके अर्थात् अवेकी अग्निके समान मानाहै सारांश यहहैकि पुरुषकी कामाग्नि फूंसकी अग्निके समान जल्दी शांत होजाती है। अंगारकी अग्नि गुप्त और कुछ ठहरनेवाली होती है। इसलिये स्त्रीकी कामाग्नि कुछ कालतक ठहरनेवाली होती है। जहां पर ईंट पकाई जाती है उस भट्टेकी आग बहुत कालतक रहती है और सर्वदा धधकती रहती है इसलिये नपुंसककी कामाग्नि अधिक कालतक रहती है।

ते[1/3] एते[1/3] त्रयः[1/3] वेदाः[1/3] शेषाणाम्[6/3] गर्भजानाम्[6/3] =सो ये तीन (स्त्री-पुरुष-नपुंसक) लिंग अवशेष जे गर्भज उनके भवन्ति । =होते हैं ॥

ये[1/3] इमे[1/3] जन्म-योनि-शरीर-लिंग-सम्बन्ध- =जो ये जन्म, उत्पत्तिस्थान (=योनि), शरीर और वेदोंका सम्बन्धकरि

आहित-विशेषाः[1/3] प्राणिनः[1/3] देव-आदयः[1/3] =ग्रहणकिये हैं (=आहित)भेद प्रभेद (=विशेष) जिननें ऐसे प्राणी देवादिक

निर्दिश्यन्ते । विचित्र-धर्म-अधर्म-वशीकृताः[1/3] =दिखाये गये हैं वा उल्लेख किये गये हैं ते नानाप्रकारके पुन्य और पापोंके वशीभूत

चतसृषु[7/3] गतिषु[7/3] शरीराणि[2/3] धारयन्तः[1/3] =चारोगतिमें शरीर धारणकरनेवाले

ते[1/3] किम्[1/1] उपभुक्त-आयुषः[1/3] यथाकालम्* =क्या वे पूर्ण भुज्यमान आयुवाले होते हैं और ठीक समयपर (=यथाकालम्)

मूर्त्यन्तराणि[2/3] आस्कन्दन्ति । =अन्य वा दूसरे शरीरोंको धारणकरते हैं अथवा ग्रहणकरते हैं अर्थात् वे देव, मनुष्य, तिर्यंच नारकी,आदि जितनी आयु बांध चुके हैं उतनी आयुके पूर्णहोजानेपर वर्तमान शरीरको छोड़कर-मृत्युपानेपर दूसरे शरीरोंको धारण करते हैं

उत*अयथाकालम्*अपि*इति*अतः*आह । =वा विना आयु पूर्णकिये भी(अन्य शरीरोंको धारण करते हैं) इसलिये[1] कहते हैं कि

(१) स्मरण रहे कि त्रेपनवां सूत्र का अर्थ कठिन है बड़े ही परिश्रम और अन्वेषण से लिखा गया है उस को बहुत ध्यान पूर्वक पाठकों को पढ़ना चाहिये नहीं तो कुछ इच्छित परिणाम न होगा ॥ कोई पाठक यदि इसपर भिन्न प्रकाश डालें तो वे मुझको कृपया सूचितकरें ॥

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

सूत्रम्—औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥
(द्वितीयपाठ[1])औपपादिकचरमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५३ ॥

(१) सर्वार्थ सिद्धिवृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ १९३, १९४ और द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ ११३ में" चरमदेहा इति वा पाठः" अर्थात् "चरमोत्तम देहाः" के स्थानमें विकल्पकरिके " चरमदेहाः" ऐसा पाठ है। शेषपाठ एक है। तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १११ में " चरमदेहा इति केषांचित् पाठः" अर्थात् "चरमदेहाः" ऐसा पाठ कितनोंका है। 'चरमोत्तमदेहेति अस्मिन् स्थाने चरमदेहेति केचित् पठंतीति' ='चरमोत्तमदेहाः' ऐसे इस स्थानमें चरमदेहा ऐसा कोईएक पाठ मानते हैं। श्रुतसागरटीका॥ भावार्थ "चरमोत्तमदेहाः" के स्थानमें "चरमदेहाः" उपर्युक्त सूत्रमें पढ़ा जावेगा इसलिये शेषपाठ एक ही रहा॥ द्वितीय पाठ वही हुआ जो हमने ऊपर लिखा है।

(२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषासंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ ५३ ॥ ऐसा पाठ है। सूत्र संख्या ५२ वीं है॥ 'औपपादिक' के स्थानमें 'औपपातिक' है। 'चरमोत्तमदेहाः' वा 'चरमदेहाः' के स्थानमें 'चरमदेहोत्तमपुरुषाः' है। शेषपाठ एकसा है॥ इससूत्रके तीन पाठ होनेपर भी अर्थ अन्तमें सबका एकसा है पाठ भेद होनेसे अर्थ भेद नहीं हुआ क्योंकि उपर्युक्त दो पाठोंमें "चरमदेहाः" और ' चरमोत्तमदेहाः" मेंसे "चरमदेहाः" का अर्थ,चरमशरीरी,अन्तिमशरीरवाले, उसीदेहसे मोक्षजानेवाले, तद्भवमोक्षगामी, जो वर्तमान शरीर है वह संसारमें रहनेका चरम (=अन्तिम) शरीर है अर्थात् इसी देह या शरीरसे मोक्षकोजावेंगे, इसी शरीरसे सिद्ध होजावेंगे ऐसा है॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक पृष्ठ३४३ में "उत्तमग्रहणं चरमस्यानुत्तमत्वव्युदासार्थं,=सूत्रमें उत्तम (शब्द) का ग्रहण है सो चरमो की अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरमी होगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा भावार्थ चरमीके या तद्भवमोक्षगामीके सदैव उत्तम (वज्रवृषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थानयुक्त) शरीर अवश्यहोगा इससे यह परिणाम निकला कि चरमदेहधारी(=चरमदेहाः) सदैव उत्तम शरीरका धारक होगा। पं०गजाधरलालजी पृष्ठ ७६५ तत्त्वार्थराजवार्तिक संस्थाद्वारा प्रकाशितमें लिखते हैं कि "वास्तवमें चरम शरीरका अर्थ यही है कि अब दूसरा शरीर धारण नहीं करना होगा इसी शरीरसे मोक्ष प्राप्तहोजायगी इसीलिये जो शरीर मोक्षका साक्षात कारण है वह स्वयं उत्तम है उसकी उत्तमता प्रगट करनेके लिये किसी भी शब्दकी आवश्यकता नहीं इसलिये वार्तिककारने 'चरमदेहाः इति केषांचित् पाठ ऐसाभी कहा है॥ इसलिये सूत्रमें जो 'उत्तम' शब्दका उल्लेख कियागया है वह केवल चरम शरीरके स्वरूप प्रगट करनेके लिये है" ॥ 'चरमोत्तमदेहाः' वाक्यमें उत्तम शब्द उसी प्रकारसे अधिक है जैसे कि 'प्रकाश्यमान' शब्द 'प्रकाश्यमान सूर्य' में व्यर्थ है क्योंकि सूर्य तो स्वयम् ही सप्रकाश है उसी प्रकार चरमदेह तो स्वयम् ही उत्तमहै ऐसा कोई चरम देह है ही नहीं जो अनुत्तम होता हो॥ इसलिये हमने अन्तीकतर विद्वानोंके मतानुकूल 'उत्तम' शब्दको अनावश्यकीय माना है॥

"एभ्य औपपातिकचरमदेहासंख्येयवर्षायुर्भ्यः शेषा मनुष्यास्तिर्यग्योनिजाः सोपक्रमा निरुपक्रमाश्चापवर्त्यायुषोऽनपवर्त्यायुषश्च भवन्ति" =इनऔपपातिक,चरमदेह,और असंख्येयवर्ष आयुष्वालोंसे शेष मनुष्य तथा तिर्यग्योनिज जो उपक्रमसहित तथा उपक्रमरहितहैं वे अपवर्त्य आयुष्वाले और अनपवर्त्य आयुष्वाले भी होते हैं॥ सभाष्य०पृष्ठ ६१॥ इससे ये फलनिकला कि जैसे हमारे यहां देवनारकी,चरमशरीरी,भोगभूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोगभूमियां ये अकाल मृत्युवाले नहीं होते आयुको परिपूर्णकरके ही वर्तमान शरीरका त्यागन करतेहैं उसीप्रकार श्वेताम्बर आम्नायके

सूत्रार्थः–औपपादिक– =उपपाद जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् चारों प्रकारके देव और समस्त नारकी
चरम-उत्तम १-देहाः३– =अन्तिम उत्कृष्ट शरीर वाले,अन्तिम श्रेष्ठशरीरकेधारक,अंतकी पर्यायवाला उत्तम शरीर वा देह अर्थात् चरमोत्तम शरीरी,तद्भवमोक्षगामी,पूर्ण होगा संसार जन्म जिनका इसी उत्तम देहसे उसी जन्ममें,चरमोत्तम शरीरी,
असंख्येय–वर्ष–आयुषः३=असंख्यात वर्षकी आयुवाले, अर्थात् उत्तम,मध्यम,और जघन्य भोग भूमिके मनुष्य तिर्यंच और कुभोग भूमियां
अन्–अपवर्ति–आयुषः३=परिपूर्ण आयुवाले होते हैं अर्थात् देवनारकी,चरमोत्तम शरीरी, भोगभूमियां कुभोगभूमियां इन सबकी आयु विष,शस्त्र, कंटक,अग्नि,जल,सर्प,अजीर्ण भोजन,वज्रपात,शूली,हिंसक जीव और वज्रादिके अभिघात आदिसे तथा द्वन्द्वसे (=उपद्रवसे) आरम्भहोनेवाले क्षुत् पिपासा और शीतोष्णसे भी न्यून नहीं होती है अकाल मृत्यु इनकी नहीं होती है ॥

द्वितीयपाठः–औपपादिक- =उपपाद संज्ञक जन्ममें उत्पन्न होनेवाले अर्थात् समस्त देव और समस्त नारकी
चरमदेहाः३ (इत्यादि) =अन्तिम शरीर वाले,उसीभवसे मोक्ष जानेवाले (जिस देहसे सिद्ध होते हैं वह चरम देह वा शरीर कहलाताहै) (उपर्युक्त अर्थोंसे प्रगट है कि "चरमदेहा" का वही अर्थ है जो "चरमोत्तमदेहा" का है क्योंकि उत्तम शरीर वाले ही तद्भव मोक्षगामी हो सक्ते हैं अन्य नहीं और चरमदेहवाले कर्मभूमिके मनुष्य ही होते हैं अन्य देवादिक नहीं हो सक्ते हैं । शेष दोनों पाठ एक हैं अतः उनका अर्थ भी एक है॥ चरम=अंतकी पर्याय, चरमदेह=अंतिम पर्याय वाला शरीर वा देह ।

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुकूल येही अनपवर्त्य आयुष्वाले होते हैं॥ इसमें संदेहनहीं कि इसी भाष्यमें 'औपपातिक, चरमदेह अर्थात् अन्तिम शरीरवाले उत्तमपुरुष और असंख्येयवर्ष आयुष्वाले ये चारों अनपवर्त्य (अपवर्तन न करने योग्य) आयुष्वाले होते हैं ॥ ऐसा उल्लेख है परंतु इस वाक्यके नीचे उपर्युक्तभाष्य दिया है उससे इसका निषेध होता है क्योंकि जो पश्चात् कहा जाता है वही ठीक समझाजाता है और यह भी है कि सुभौमचक्रवर्ति और अंतिम ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति और वासुदेव अंतिम अर्द्धचक्री तीनोंकी आयु अपवर्त्यहोकर अर्थात् घटकर न्यूनहोकर अकाल मृत्यु हुई थी और ये तीनों उत्तमपुरुष थे॥

(१) हम अभी लिखचुके हैं कि 'उत्तम' शब्द सूत्रमें लानेसे वही अर्थ होता है जो न लानेसे इसलिये 'उत्तम' शब्दकी सूत्रमें आवश्यकता नहीं है इस'उत्तम' शब्दके कारण भाष्यकारोंको, अनुवादकोंको तथा टीकाकारोंको बहुतकुछ अपने अपने भाष्य टीका और अनुवादोंमें इस 'उत्तम' शब्दके संबंधमें लिखना पड़ा है । प्रथम इसके कि हम इसपर अपने स्वतंत्र विचार तथा शास्त्रानुकूल कुछ उल्लेख कर इसबातको लिखें कि किन किन महानुभावों ने इसको किस किस शब्दका विशेषण और विशेष्यमाना है ॥

(क) चरम–उत्तम विशेषण हैं देह शब्द विशेष्य है (ख) में उत्तम शब्द विशेषण है चरमदेह विशेष्य है ॥ (ग) में चरम शब्द विशेषणहै उत्तम शब्द विशेष्य है (घ) में उत्तम शब्द विशेषण है चरम शब्द विशेष्य है ॥

(क) "चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः" सर्वार्थसिद्धिःपृष्ठ१६३,तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३४३, तत्त्वार्थराजवार्तिकम् पृष्ठ १११ वार्तिक ७

"ऐसा चरम उत्तम देह जिनकै होय ते चरमोत्तम देह कहिये" जयचंदजी वचनिका पृष्ठ २६४ चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देह वाले हैं। (चरमोत्तम ये देहके विशेषण हैं अकेला उत्तम शब्द देह का विशेषण नहीं है क्योंकि यदि उत्तम शरीर वाले अनपवर्त्य आयुवाले होते तो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और वासदेव अर्द्धचक्रीकी अकाल मृत्यु न होती

(ख) चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तम-ग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥ सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ१६३ तस्य (=चरमस्य-देहस्य) उत्तमत्वप्रतिपादनार्थत्वात् (उत्तमग्रहणम्) राजवार्तिकम्पृष्ठ०१११वार्तिक ८ देखो

"इहां चरमदेहका उत्तम विशेषणहै सो उत्कृष्टपनाके अर्थि है,अन्य अर्थ नाहीं है" जय०वच०२६५ अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये उत्तम (शब्दकासूत्रमें ग्रहण है अन्यअर्थविशेषके लिये नहींहै,"उस चरमदेहके उत्तम पणांको प्रतिपादनार्थ पनाहेयातें" सूत्रमेंउत्तमशब्दकाग्रहणहै अर्थात् वो चरम देह ही सबमें उत्तिम है सो अर्थ कहिये है॥ भावार्थ चरम देह समस्त देहोंमें उत्तम देह है इस तात्पर्यके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें उत्तम शब्दका ग्रहणकियागयाहै॥

उत्तमग्रहणं चरमस्य-अनुत्तमत्व-व्युदासार्थम् (तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३)

=(सूत्रमें)उत्तम(शब्द)का ग्रहण है सो चरमोंके अश्रेष्ठताके निवृत्तिके लिये है अर्थात् जो चरम-शरीरीहोगा वह उत्तम शरीरका धारी अवश्यहोगा, चरमोंके वा तद्भव मोक्ष गामीके उत्तम शरीर अवश्य होगा भावार्थ चरम देहधारीके अनुत्तमपना होताही नहीं इसलिये उत्तम शब्द सूत्रमें लाये हैं। इसलिये यहां 'उत्तम' शब्द विशेषणहै 'चरमदेह' विशेष्यहै।

(ग) चरमविशेषणमुत्तमस्याचरमस्य निवृत्त्यर्थं चरमविशेषणम्-उत्तमस्य-अचरमस्य-निवृत्ति-अर्थम्। तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकम् पृष्ठ ३४३

चरम विशेषण उत्तम शब्दका है सो अचरम के निवारण के लिये है अर्थात् उत्तम देहधारी हो =और चरम देहधारी न हो तो वह अनपवर्त्य आयुवाला न होगा जैसे सुभौमचक्रवर्ति और अन्तका ब्रह्मदत्त चक्रवर्ति और अन्तके अर्द्धचक्री वासदेव (कृष्णजी) तथा इनके समान और भी जिनका उत्तम शरीर तो था परन्तु चरम शरीर नथा उनकी वाह्य कारणोंसे अकाल मृत्यु हुई आयुका अपवर्तन होगया॥ यहां 'चरम' शब्द विशेषणहै 'उत्तम' शब्द विशेष्य है

(घ)अन्त्यचक्रधरवासुदेवादीनामायुषोऽपवर्तनदर्शनादव्याप्तिः (तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र५३ वार्तिक , ६ पृष्ठ १११)

('उत्तम देहधारी अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं' इसपर प्रश्न करताहै कि यह ब्रह्मदत्त अंतिम चक्रवर्ति और कृष्ण अर्द्धचक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्तिइत्यादिमें नहीं घटताहै नहीं लागूहोताहै क्योंकि तीनों उत्तम देहके धारी होने पर भी अकाल मृत्युको प्राप्तहुये उत्तरमें कहते हैं कि

नवा चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात् ॥७॥ (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकम् सूत्र ५३, वार्तिक ७ पृष्ठ१११)

=यह दोष नहीं क्योंकि चरम शब्दका उत्तम शब्द विशेषण है। इसलिये जो चरम और उत्तम देहका धारक होगा वही अनपवर्त्य आयुवाला हो सकताहै किन्तु जो केवल उत्तम देहका धारक होगा वह अनपवर्त्य आयुवाला नहीं हो सकता सुभौमचक्रवर्ति, ब्रह्मदत्त-चक्रवर्ति कृष्णजी आदि उत्तम देहके धारी थे चरम शरीरी नहीं थे इससे तीनोंकी अकालमृत्यु हुई॥

प्रथम इसके कि हम इस बातपर विचार करें कि सूत्रका यथार्थ पाठ क्या है विद्वद्वर्य पं० भूधरदासजीने इसमूत्रका अर्थ अपने रचित 'चर्चा समाधान में 'कियाहैइसपर कुछ समालोचना करें।शब्दशः उनका लेख इसप्रकार है कि"औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः' अर्थ–एते अनपवर्त्यायुषा भवन्ति । इतने अनपवर्त्यायुवाले जानना। जिनकी आयुका अपवर्तन कहिये फेरफार न होय समय समयसौं पूरी होइ। विर शस्त्रादिके योगकरि उपकमसौ पूरी न होइ ते अनपवर्त्यायुवाले जानना। ते कौन हैं? औपपादिक चरमोत्तमदेहा असंख्येय वर्षायुषः–औपपादिक कहिये देव नारकी चरमोत्तमदेह कहिये तीर्थंकर असंख्येयवर्षायुषः कहिये भोग भूमिके तथा कुभोगभूमिके जीव। भावार्थ चरमोत्तमदेहवाले तीर्थंकर याते कहे कि चरमदेहवाले गुरुदत्त पाडवादिक उपसर्गकरि मुक्त हुये। उत्तमदेहवाले सुभौमचक्री तथा ब्रह्मदत्तचक्रीकी अकाल मृत्यु हुई। जरत्कुमारके बाणसूं कृष्णजी की अपमृत्यु हुई। इत्यादि सकल चक्री अर्धचक्रीनिके भी अनपवर्त्यायुका नियम नाहीं। यह कथन न्याय कुमुद चन्द्रोदय नाम शास्त्रहै तथा राजवार्तिकालंकार शास्त्र है तहां कहा है। याते चरमोत्तमदेह तीर्थंकरकी ही है। इस सूत्रविषै यह सिद्धान्त हुआ – देव नारकी तीर्थंकर भोगभूमिके जीव इनके विष शस्त्रादिक योग से आम्रफलके पाकवत् आयुकी उदीरणा न होइ। इन बिना कर्मभूमिके मनुष्य तिर्यंचनिविषै होइ। जैसे प्रदीप तेलसे भरा होर पवनके जोगसे बुझ जाय तैसे पूर्ण आयुकी स्थितिका छेद निमित्तान्तरसे होइ जाय" ॥ राजवार्तिकमें 'चरमोत्तमदेह' से तीर्थंकर लिये गये हैं यह लेख हमको नहीं मिला है॥

उपर्युक्त लेखसे तथा हमसे अन्य अन्य विद्वानोंसे जो वार्तालाप हुआ उससे यह परिणाम अथवा फल निकलताहै कि'चरमदेह'के अर्थके संबंधमें विद्वानोंके दो मत हैंकुछ कहते हैं कि चरमदेह वाले तद्भव मोक्ष गामी तो होते हैं परंतु उनकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसे अर्जुन,भीम,युधिष्ठर, इससे इस सूत्रमें'उत्तम'विशेषण'चरम'का है कि'चरमोत्तम'देह वालोंकी अकाल मृत्यु नहीं होतीहै,परंतु'चरमदेह' वालों की अकाल मृत्यु हो जाती है ॥ अन्य विद्वज्जनों का मत है कि जब सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १८४ और तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ ११६ 'चरमदेहा इति वा पाठः' 'चरमदेहा इति केषांचित्पाठः' इस सूत्रके अन्य पाठ क्रमसे दिये हैं तब यदि हम 'चरमदेह' वालोंकी अकाल मृत्यु मानलें तो उपर्युक्त पाठ व्यर्थ हुये जाते हैं और कहते हैं कि यदि चरमदेहवालोंकी अकाल मृत्यु मानें तो समुद्घात तो वह कर नहीं सकते हैं क्योंकि एक साथ वा तत्कालही उपसर्ग उपद्रव इत्यादिसे अकाल मृत्यु हो जाती है और यह नियम है कि "आयुके छह मास शेष पीछे केवल ज्ञान उपजै तेते मुनी नियमथकी समुद्घात करै हैं और जिनके छह मास पूर्व केवल ज्ञान उपजा हो ते समुद्घात करै भी और नहीं भी करै करनेका सर्वथा नियम नाहीं" और बलदेकर कहते हैं कि जब समुद्घातनकरेंगे तो क्या विना वेदनीय, गोत्र और नामकर्मके खिपायेहुये मोक्षपदको प्राप्त होंगे (उत्तर में कहते हैं कि) उपसर्गमें केवल ज्ञानके पश्चात् केवलि समुद्घातके लिये कोई बात बाधक नहीं जान पड़ती है॥ उक्त समुद्घातमें आठ ही समय लगतेहैं जो बहुत थोड़ा, काल है क्योंकि "असंख्यात समय एक आवली बखानी ज्ञानी संख्य आवली मिलें तें होत एक स्वांस है" ॥ यदि 'चरमदेहा इति वा पाठः (='चरमोत्तमदेहाः'के स्थानमें चरमदेहा ऐसा पाठ विकल्पसेहै) भाष्यकारोंके मतमें न होता तो"पं०भूधरदासजीका समाधान हृदयको बहुत चुभता हुआ होता क्योंकि 'चरमदेहवालोंमें उक्ततीन पांडवोंकी उपसर्गसहनकर मोक्षहुई अकाल मृत्युहुई यद्यपि वे चरम शरीरीथे और उत्तमदेहधारीयोंमें श्रीकृष्ण ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति सुभौमचक्रवर्ति इत्यादिकी अकाल मृत्युहुई इससे न तो केवल चरमदेहवाले और न केवल उत्तमदेहधारी अनपवर्त्य आयु वाले होसके हैं केवल वेही अनपवर्त्य आयुवाले होसकते हैं जिनमें दोनों गुणका (चरमदेहत्व और उत्तमदेहत्वका) समावेश हो ऐसे तीर्थंकर और अन्य भी जीव तीर्थंकरोंके अतिरिक्त होसके हैं क्योंकर यदि तीर्थंकरोंसेही उमास्वामीका अभिप्राय होता तो सूत्र ऐसाहोता और साथही लघु और स्पष्टता लिये हुये भी होजाता कि" औपपादिक तीर्थंकराऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः" ॥ इसलिये यहांपर अब प्रश्नयह है कि तीनों

(चरमदेहाः; चरमोत्तमदेहाः; चरमदेहोत्तमपुरुषाः)पाठों में से कौनसा पाठ उमास्वामी कृत है। वास्तवमें हम इस प्रश्नका उत्तर देनेमें असमर्थ हैं क्योंकि इसके ढूंढनेके लिये हमारे पास न तो साधन ही हैं और न समय ही है परंतु निम्न लिखित हेतुओंसे यह जान पड़ताहै कि दोनों आम्नायोंमें "चरमदेहाः"सब पाठोंसे उत्तम और सूत्रके बनानेकी विधिके अनुकूल है और यही पाठ उमास्वामी कृत होना चाहिये—क्योंकर
(च)'चरमदेहाः'इस पाठ का हमारे यहां सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक, श्रुतसागरीटीका तथा जयचंदजीकृत वचनिकामें भी उल्लेख है और हम सिद्ध करचुके हैं कि'चरमदेहाः" का वही अर्थ है जो'चरमोत्तमदेहाः"का श्वेताम्बर आम्नायकी तीनोंकी टिप्पणीसे प्रतिभास होताहै कि उनके यहां भी यथार्थमें'चरमदेहाः' पाठ था नकि"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" जब'चरमदेहा': का वही अर्थ है जो 'चरमोत्तमदेहा.' का तब आचार्य 'उत्तम'शब्दका प्रयोग निष्कारण क्यों करते ॥इस औपपातिक इत्यादि सूत्रमें(श्वेताम्बरीय टिप्पणी यहहैकि)"उत्तम पुरुषसे यहां तीर्थंकर चक्रवर्ती बलदेव, तथा वासुदेव आदिकका ग्रहण है। कोई कहते हैं कि सूत्रमें उत्तमपुरुषका ग्रहण नहीं है तो तीर्थंकरादिकका ग्रहण कैसे होगा? इसपर कहते हैं कि चरमदेह ग्रहणसे तीर्थंकरादिकका ग्रहण होगा। क्योंकि चरमशरीरी उत्तमपुरुष अवश्य होते हैं और उत्तम पुरुषोंको चरमदेह प्राप्य है। इस हेतुसे उत्तम पुरुष ग्रहण अनार्ष है। दोनों प्रकारके भाष्य है। अनिन्दित होनेसे प्रथम उत्तम पुरुष ग्रहण किया और तीर्थंकरादि उसका विवर्णकिया और पुनः उत्तर कालमें उत्तम पुरुषका ग्रहण किया, परन्तु निरुपक्रम सोपक्रम कथनसे यह संदेह भाष्यसे होता है, अतएव उसी भाष्यकारके श्रावक प्रज्ञप्तिमें उत्तम पुरुष ग्रहण किया है। यहां भी यही समझना चाहिये"
(छ)श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायोंका'चरमदेहा'पाठ मिलता है,और"चरमोत्तमदेहाः"और"चरमदेहोत्तमपुरुषाः" पाठ मिलान नहीं करते ॥
(ज) 'उत्तम' शब्दके लानेसे अर्थमें बहुत कठिनता होजाती है और अभिप्राय वा परिणाम कुछ भी नहीं निकलता क्योंकि केई ( )'चरम उत्तम' शब्दोंको देहका विशेषण करते हैं, ( ) केई उत्तम शब्दको 'चरम देह'शब्दोंका विशेषण कहते हैं ( ) केई चरम शब्दको उत्तम शब्दका विशेषण बतलाते हैं ( ) केई उत्तम शब्दको चरम शब्दका विशेषण कहते हैं (देखो पृष्ठ १२८)इतनी कठिनाईयां उमास्वामी'उत्तम' शब्दलाकर क्योंउपजाते
(झ) असंख्येयसमायुष्काश्चरमोत्तममूर्त्तयः। देवाश्च नारकाश्चैषामपमृत्युर्न विद्यते॥ श्री अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारकाश्लोक ॥ १३५ वां ॥
पं० वंशीधर शास्त्रीजीने उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद करनेमें हमारी संमतिके अनुकूलकि 'चरमदेह वाले' सब अनपवर्त्यआयुवाले होते हैं इस प्रकार अनुवाद किया है कि 'असंख्यात वर्षके आयुवाले भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यंच, कर्म भूमिके उसी जन्मसे मुक्त होनेवाले मनुष्य तथा, देव,नारकी,–इतने जीवोंकाजो आयु नियत हुआ हो उसका शस्त्रादि निमित्तों से अपघात नहीं हो सकता है। यद्यपि अन्तकृत केवली आदि कुछ ऐसे हुए हैं कि जिनका शरीर उपसर्गों से विदीर्ण किया गया था परन्तु उन्हें हम अनपवर्त्यायुवाले ही मानतेहैं। सूत्रकारने तथा इस ग्रंथके कर्ताने भी उन चरमशरीरी जीवों के आयुको अनपवर्त्य लिखा है कि जो उत्तम हों। परन्तु उत्तमका अर्थ चरमशरीरी की केवल प्रशंसा है। अधिक कुछ भी नियम नहीं समझना चाहिये मोक्षगामी जीव सब ही अनपवर्त्यायुवाले मानने चाहिये ॥ शेषजीवों का घात हो सकता है ॥ जो लोग उत्तमका अर्थ मोक्षगामियोंमेंसे त्रिषष्टिशलाकावाले अथवा कामदेवादि पदवी युक्त ऐसा करते हैं वह ठीक नहींहै क्योंकि "चरमांगधरावेतौ नानयोः काचन क्षतिः"यह वचन श्री जिनसेनाचार्यके महापुराण पर्व ३६ में लिखाहै। इसका अर्थ यह है कि भरत और बाहुबली ये दोनों मोक्षगामी जीव हैं। इनका कुछ नहीं बिगड़ सकता है। केवल चरमशरीरी होनेका कारण दिखाकर अक्षय बतानेसे भी यही बात सिद्ध होती है कि यावत् चरमशरीरी जीव कीअनपवर्त्यायुही होनी चाहिये। विष,वेदना, रक्तक्षय,भय,शस्त्रघात,श्वासावरोध,तथा आहार निरोध ये असमय मरनेके कारण हैं (पं०)वंशीधर अनुवादित तत्त्वार्थसार मुद्रित पृष्ठ ९२,९३ ॥'उत्तम' शब्द के संबंध में विद्वज्जन विशेष खोज करके कृपया मुझे सुचित करें। औरभी

औपपादिका व्याख्याताः देवनारका इति ॥ चरमशब्दोऽन्त्यवाची । उत्तम उत्कृष्टः । चरम उत्तमो देहो येषां ते चरमोत्तमदेहाः। विपरीतसंसारास्तज्जन्मनिर्वाणार्हा इत्यर्थः॥ असंख्येयमतीतसंख्यानमुपमाप्रमाणेन पल्यादिना गम्यम्

शब्दानुवादः-औपपादिकाः 1/3 व्याख्याताः 1/3 देव-नारकाः 1/3 इति*=उपपाद जन्मसे उत्पन्नहोनेवाले(४६वांसूत्रमें)कहेगये हैं (वे) देव नारकी हैं

चरमशब्दः 1/1 अन्त्यवाची 1/1, उत्तमः 1/1 उत्कृष्टः 1/1 =(सूत्रमें)चरम शब्द अन्तका(=अन्त्य) बोधक है उत्तम है सो उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है

चरमः 1/1 उत्तमः 1/1 देहः 1/1 येषाम् 6/3 ते चरमोत्तम-देहाः 1/3 =अन्तिम श्रेष्ठ है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहवाले हैं अर्थात् चरमोत्तम है शरीर जिनका वे चरमोत्तम देहके धारी हैं।देहके विशेषण'चरम उत्तम'शब्द हैं॥

विपरीत-संसाराः 1/3 तत्-जन्म-निर्वाण-अर्हाः 1/3 =छूटनेवाला है संसार जिनका उसीजन्ममें वा भवमें मोक्षहोने योग्य हैं(=अर्हाः 1/3)जे

इति*अर्थः 1/1;अतीत-संख्यानम् 1/1 असंख्येयम् 1/1 =ऐसा अभिप्राय है । गणनासे रहित है सो असंख्यात है

उपमा-प्रमाणेन 3/1 पल्यादिना 3/1 गम्यम् 1/1 =उपमाप्रमाण(=उत्कृष्टप्रमाणित)पल्यआदिसे अर्थात् अद्धापल्यादिकसे जानी जाय है

(अ)जिसमें थोड़े अक्षर हों जो संदेहरहित अर्थवाला हो सारगर्भित और वृथा शब्दसे रहित हो उसको सूत्र कहते हैं जैसाकि निम्न लिखित श्लोकसे विदित है और वैयाकरणको यदि सूत्रके रचनेमें आधा वा एक मात्राका भी लाभ होजावै तो उसको पुत्रके जन्म सदृश हर्ष होता है अब जैसाकि निम्न सूत्र उल्लेख करता है जितने उपर्युक्त गुण सूत्रमें होना चाहिये वे समस्त सूक्ष्मदृष्टिसे देखनेपर "चरमदेहाः" पाठमें गर्भित हैं क्योंकि 'उत्तम' शब्दके नलानेसे सूत्रका प्रथम गुण"थोड़े अक्षर" की निष्पत्ति होजाती है ॥ इसी शब्दको पाठमें न लानेसे सूत्रका अर्थ सर्वथा संदेहरहित, सीधा साधा,स्पष्ट और सरल होजाता है अर्थ करनेमें दूसरोंको समझानेमें कुछ भी संदेह नहीं रहता । एसे 'चरमदेहाः'पाठ सूत्रका द्वितीय गुण कि संदेहरहित अर्थ वाला हो पूर्ण करता है । उत्तम शब्दके निकालदेनेसे सार-सत गर्भित सूत्र रहजाता है इसप्रकार सूत्रका तीसरा गुण पूर्ण हुआ जब उत्तमशब्द पाठसे पृथक् करदिया तब व्यर्थ और निष्प्रयोजनीय भाग निकल जाता है और सूत्रके चौथेगुणकी कि सूत्र व्यर्थ शब्दोंसे रहित हो पूर्णता हो जाती है ॥

श्लोक ॥ १ ॥ अल्पाक्षरमसंदिग्धं (=अल्पअक्षरम् 1/1 असंदिग्धम् 1/1)=थोड़े अक्षरहों- संदेहरहित (अर्थयुक्त) हों

सारवद्विश्वतो मुखं (=सारवान् 1/1 विश्वतः*मुखम् 1/1) =सत वा सार गर्भितहो सर्वतः(=विश्वतः)श्रेष्ठ (=मुख्य) हो

अस्तोभमनवद्यं च (=अ-स्तोभं 1/1 अनवद्यम् 1/1 च*)=निरर्थक शब्द(=स्तोभ)रहित [=अ] और[=च]दूषण वर्जितहो

सूत्रं सूत्रविदो विदुः [=सूत्रं 2/1 सूत्रविदः 1/3 विदुः T]=सूत्रज्ञाता [उसको] सूत्र कहते हैं ॥ १ ॥

श्लोक ॥ २ ॥ एको वार्द्धमात्रायाः[=एकः 1/1 वा अर्द्धमात्रायाः 6/1]=एक अथवा आधी मात्राका

सूत्रस्य कृतिलाघवे [=सूत्रस्य 6/1 कृति 7/1 लाघवे 7/1]=सूत्रकी रचनामें लाभहोनेपर वा न्यूनहोनेपर

पुत्रजन्मोत्सवस्तुल्यो[=पुत्र-जन्म-उत्सवः 1/1 तुल्यः 1/1]=पुत्रके जन्मके हर्षसमान वा पुत्रके जन्ममें हर्षहोनेके सदृश

वैयाकरणो मन्यते [=वैयाकरणः 1/1 मन्यते T]=व्याकरणज्ञाता वा व्याकरण को जाननेवाला मानता है ॥ २ ॥

आयुर्येषां त इमे असंख्येयवर्षायुषस्तिर्यङ्मनुष्या उत्तरकुर्वादिषु प्रसूताः ॥ औपपादिकाश्च चरमोत्तमदेहाश्च असंख्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमोत्तमदेहासंख्येयवर्षायुषः॥ बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रस्वं भवतीत्यपवर्त्यम्। अपवर्त्यमायुर्येषां ते इमे अपवर्त्यायुषः । न अपवर्त्यायुषःअनपवर्त्यायुषः॥ न ह्येषामौपपादिकादीनां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्त्यते इत्ययं नियमः। इतरेषामनियमः॥ चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्वप्रदर्शनार्थमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति ॥

आयुः।येषाम्।ते।इमे।असंख्येय–वर्ष–आयुषः। =आयु जिनकी ते ये असंख्यात वर्षकी आयुवाले
तिर्यङ्–मनुष्याः। उत्तर–कुरु–आदिषु। प्रसूताः। =तिर्यंच और मनुष्य उत्तर कुरु आदि (भोगभूमि)विषैं उत्पन्न होते हैं (=प्रसूताः)
च*औपपादिकाः।च*चरमोत्तमदेहाः।च*असंख्येय-=और औपपादिक और चरमोत्तमदेहाः और असंख्येय
वर्षायुषः।औपपादिकचरमोत्तमदेहा– =वर्षायुष हैं । सो (सूत्रमें) औपपादिकचरमोत्तमदेह–
असंख्येयवर्षायुषः। बाह्यस्य।उपघात- =असंख्येयवर्षायुषः(इनका ऐसा द्वन्द्वसमास) हुआ । बाहिरके अभिघात (घातक)
निमित्तस्य।विषशस्त्रादेः।सति।सन्निधाने।ह्रस्वम्।=निमित्त जे माहुर और शस्त्रादिकके वशमेंहोनेपर घटजाती
भवति।इति*अपवर्त्यम्।अपवर्त्यम्।आयुः– =है । ऐसा अपवर्त्य है । न्यून होजाती है आयु
येषां।ते।इमे।अपवर्त्य–आयुषः। =जिनकी ते इतने अपवर्त्य आयुवाले हैं
न*अपवर्ति-आयुषः। अन्-अपवर्तिआयुषः। =न्यून आयुके धारी नहीं हैं सो अनपवर्त्य आयुवाले हैं
न*हि*येषाम्।औपपादिक-आदीनाम्। =निश्चयसे(=हि)नहीं इन औपपादिक,चरमोत्तमदेहधारी,भोगभूमियोंकी,कुभोगभूमियोंकी
बाह्य-निमित्त-वशात्। आयुः। अपवर्त्यते।इति* =बहिरंग कारणोंके वशसे आयु न्यून होती है ऐसा
अयम्।नियमः। इतरेषाम्। अनियमः। =यह नियमहै।अन्य(जीवोंकी आयु)का नियम नहींहैअर्थात् देवनारकी,चरमोत्तमदेहधारी भोगभूमियोंके,कुभोगभूमियोंके अतिरिक्त अन्य जीवोंकीसमयपर मृत्युहो वा अकालमृत्युहोजावै कोई नियम नहींहै॥
चरमस्य।देहस्य।उत्कृष्टत्व–प्रदर्शन–अर्थम्। =अन्तके शरीरकी श्रेष्ठताके प्रतिपादनके लिये
उत्तम-ग्रहणम्। न*अर्थान्तर-विशेषः।अस्ति। =उत्तम(शब्द)का(इससूत्रमें)उपादान है,अन्य(किसी) विशेष प्रयोजनके लिये नहीं है

चरमदेहा इति वा पाठः ॥ २ ॥

जीवस्वभावलक्षणसाधनाविषयस्वरूपभेदाश्च

चरम-देहाः[१/३]इति*वा*पाठः[१/१]	=अथवा('चरमोत्तमदेहाः'केस्थानमें)'चरमदेहाः'ऐसा(भीसूत्रका अन्य प्रकारका)पाठ है
जीवस्वभावः[१/१] जीवस्वभावभेदाः[१/३]	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव (सूत्र१) चेतनके निजभावकेभेद (दूसरे से सातवां सूत्र तक)
जीवलक्षणम् [१/१]	=जीवका लक्षण अर्थात् वह चिन्ह जो जीवका भेदज्ञान अन्य पदार्थोंसे करासके(देखो आठवां सूत्र)
जीवलक्षणभेदाः[१/३]	=जीवका उपयोगरूप लक्षणके प्रभेद अर्थात् ज्ञानके आठ भेद और दर्शनके चार भेद(देखो सूत्र ९)
जीवसाधनम् [१/१]	=जीवोंकी मर्यादा अथवा प्रमाण अर्थात् जीवोंकी संसाररूप और मोक्षरूप मर्यादा करना(देखोसूत्र१०)
जीवसाधनभेदाः[१/३]	=जीवके साधन वा उपकरणकेभेद अर्थात् दो मर्यादा जो ऊपर कहीगई हैं तिनके भेद (देखो सूत्र ११, २४, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८,१९, २२, २३)
जीवविषयः[१/१]	=जीव (की इन्द्रियों) के विषय (देखो सूत्र २० और २१)
जीव-विषय-भेदाः[१/३]	=जीव(की इन्द्रियों)के विषयभेद अर्थात्(i) शीत,उष्ण;रूक्ष, सचिक्कन; कठोर, कोमल; हलका, भारी; ये स्पर्शविषयके आठ भेद हैं। (ii)तिक्त,कटु,कषायला, खट्टा और मीठा ये पांच रस विषयकेभेद हैं (iii)सुगंध,दुर्गंध दो गंधविषयके भेद हैं(iv)स्वेत,पीत,नील,अरुण,और कृष्ण वर्णविषयके पांच भेद हैं (v)अच्छी-बुरी-प्रिय-अप्रिय इत्यादिध्वनिऔरनादादिकयेशब्दविषयकेभेद हैं येसबसूत्र२०,२१मेंगर्भित हैं
जीवस्वरूपं[१/१](२)च*जीवस्वरूपभेदाः[१/३](२)	=चेतनके निजभाव वा स्वतत्वभाव(सूत्र१)और(=च,)चेतनके निजभावके भेद (दूसरेसे सातवां सूत्र तक)

(१)"जीवस्वभावलक्षणसाधनविषयस्वरूपभेदाश्च गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्ति इति सम्बन्धः" ये दोनों वाक्य कठिन और गंभीररूपमें हैं इससे इनके पृथक् पृथक् पदच्छेद करके अर्थ किये गये हैं ॥ (२) हमारी समझमें स्वरूप शब्द इस वाक्यमें व्यर्थ और अधिक भूलसे छपगयाहै क्योंकि "स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्चाथ वेपथुः" अमरकोश वर्ग ८ श्लोक ३८ वां के प्रथमपादसे प्रगट है कि स्वभाव, स्वरूप और निसर्ग तीनों शब्द समानार्थक हैं और वेपथु का अर्थ थरथराना वा कांपनेका है । हस्त लिखित प्रतिमें भी यही पाठहै,उक्त 'जीवस्वरूप,जीवस्वरूपभेद'के वही अर्थहैं जो इस जीवस्वभाव और जीवस्वभावभेद'के अर्थहैं जैसाकिअनुवादसे प्रगट है।यदि पूज्यपादस्वामी ने ही ऐसी रचना की है तो जब'स्वभाव'शब्द आरम्भमेंही ग्रहण कियाहै तो फिर स्वरूप शब्द क्यों दिये और किस अर्थ में लाये?॥पाठक निर्णयकरें

गतिजन्मयोनिदेहलिङ्गानपवर्तितायुष्कभेदाश्चाध्यायेऽस्मिन्निरूपिता भवन्तीति सम्बन्धः॥इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां द्वितीयोऽध्यायः॥

च*गतिभेदाः १/३	=(=च) और (जीव पुद्गलके) गमनके भेद (२५ से ३० सूत्र पर्यंत)
जन्मभेदाः १/३	=(जीवके) नया शरीर धारण करनेके भेद (३१, ३३, ३४, ३५ सूत्र)
योनिभेदाः १/३ देहभेदाः १/३	=(जीवके) उत्पत्तिके स्थान(नौभेद)बत्तीसवांसूत्र । शरीरोंकेभेद (३६से ४९सूत्र पर्यंत)
लिङ्गभेदाः १/३	=लिङ्ग वा वेदोंके भेद (५०, ५१, ५२, सूत्र)
अनपवर्तित–आयुष्कभेदाः १/३	=नहीं घटनेयोग्य वा न्यून होनेयोग्य आयुवालोंके भेद(देखो सूत्र५३)
अध्याये७/१ अस्मिन्७/१ निरूपिताः१/३	=इस (=अस्मिन्) (दूसरे) अध्यायमें वर्णित वा कहेगये
भवन्ति T इति*सम्बन्धः १/१	=हैं (=भवन्ति) ऐसा संबंध अथवा संयोग है अर्थात् इस दूसरे अध्यायमें उपर्युक्त वस्तुओं वा विषयोंका कथन है ॥

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौ७/१ =इसप्रकारतत्त्वोंकेस्वरूप(=अर्थ)विवरणमें[=वृत्तौ]

सर्वार्थसिद्धि- =सर्वार्थसिद्धि

संज्ञिकायाम्७/१ =नामक(ग्रन्थ)में

द्वितीयः१/१ अध्यायः१/१ =दूसरा अध्याय(समाप्त)हुआ॥ * मंगलहो *

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिषु नारकाः श्रुतास्ततः पृच्छति के ते नारका इति । तत्प्रतिपादनार्थं तदधिकरणनिर्देशः क्रियते ॥

॥ रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥ १ ॥

अथ * तृतीयः १। अध्यायः १। = (मोक्ष शास्त्र वा तत्त्वार्थ सूत्र का) तीसरा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है
भवप्रत्ययः १। अवधिः १। देवनारकाणां ६। इति एवम् = जन्मनिमित्तक अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है ऐसेही (= एवम्)
आदिषु ७। नारकाः १। श्रुताः १। = प्रथम (अध्याय १ सूत्र २१, अध्याय २ सूत्र २१, ३४, ४६, ५०, ५३) में नारकी सुने गये हैं
ततः * पृच्छति १ के १। ते १। नारकाः १। इति * तत्- = उस कारण से (= ततः) पूछता है कि वे नारकी कौन हैं। उन (नारकियों) के
प्रतिपादन-अर्थं १॥ तत्-अधिकरण-निर्देशः १ क्रियते १ = जनाबने वा बतला देने के लिये, उनके आधार (= निवासस्थान) का कथन किया जाता है

सूत्रम्—रत्नशर्करावालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभा भूमयो घनाम्बुवाताकाश प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।

पदच्छेदः—रत्नप्रभा—शर्कराप्रभा—वालुकाप्रभा—पङ्कप्रभा—धूमप्रभा—तमःप्रभा—महातमःप्रभा—भूमयः घनवात—अम्बुवात—(तनु)वात—आकाश—प्रतिष्ठाः (भवन्ति) सप्त अधस् अधस् ॥ १॥

सूत्रार्थः—रत्नप्रभा-शर्कराप्रभा-वालुकाप्रभा = रत्न के समान दीप्ति, शर्करा के सदृश चमक, वालू के सम झलक,
पङ्कप्रभा-धूमप्रभा-तमः प्रभा- = कीचड़ के सदृश झलक, धूमवत् प्रभा, अंधकार के समान आकृति,
महातमः प्रभाः १॥ भूमयः १॥ = महा अंधकार के समान झलक (यथा गुण तथा नाम की) भूमियें (नारकस्थान)
(जिनके रूढ़िनाम धम्मा, वंशा, मेघा, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी हैं)

---

(१) सप्ताधपठने 'पृथुतराः' अन्त में अधिक है जिसका अर्थ पृथु अतिरुढ़तरत् अधिक २ विशाल होती गई है अर्थात् ऊपर ऊपर छोटी छोटी तथा

रत्नं च शर्करा च वालुका च पङ्कश्च धूमश्च तमश्च महातमश्च रत्नशर्करावालुकापङ्कधूम-तमोमहातमांसि । प्रभाशब्दः प्रत्येकं परिसमाप्यते ।

घनाम्बुवात-(१) = घन (= स्थूल) उदधि (= अम्बु, जल) वात (= पवन) अर्थात् घनोदधि वातवलय।

घनवात- = घन (सघन, स्थूल) वात (= पवन, बयार) अर्थात् घनवनवलय।

(तनु) वात-आकाश-प्रतिष्ठाः १। भवन्ति T = तनुपवन वा सूक्ष्मवायु अर्थात् सूक्ष्मवातवलय, और आकाश के आधार वा आश्रय हैं। भावार्थ ये भूमियें घनोदधिवातवलय जो सघन पवन और जलमिश्रित हैं, आधार हैं, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के जो स्थूल-सघन वायुका है आश्रय है, घनवातवलय तनुवातवलय के जो सूक्ष्मवायुका है आधार है और तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने आधार है और स्वयं आधेय है उसका कोई अन्य आधार नहीं इसलिये वह अपने आप आधार है।

सप्त १।। अधः * अधः * = (ये भूमियें सब) सात (ही) हैं (और क्रम से एक दूसरे के) नीचे नीचे ही हैं।

वृत्त्यनुवादः—रत्नं १।।। च शर्करा १।। च वालुका १।। च = और रत्न और शर्करा (कंकरीली) तथा वालुका

पङ्कः १। च धूमः १। च तमः १।।। च महातमः १।।। च = बहुरि पंक अर धूम और तम तथा महातम (शब्द आपस में)

रत्न-शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमः-महातमांसि १।।। ; = रत्नशर्करावालुकापंकधूमतमोमहातमांसि रूप में इतरेतर योगद्वंद समास हैं।

प्रभाशब्दः १। प्रत्येकं १॥। परिसमाप्यते T = प्रभा शब्द पृथक् पृथक् रत्न, शर्करा, वालुका इत्यादि पर जोड़ा जाता है।

हुई छतरी उसके नीचे की विशाल विशाल छतरी के सम है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ११३ वार्तिक ११ के अनुकूल हमारे यहां भी किसी किसी आचार्य के मत में "पृथुतराः" पाठ भी है अतः दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा हुआ॥ परन्तु वार्तिककार का मत है कि रत्नप्रभा भूमिमें तरप् प्रत्यय का अर्थ लागू नहीं होसकता उसका पृथुतर नाम नहीं बन सकता क्योंकि उससे अन्य कोई नरक भूमि विस्तार वेदना वा आयु की अपेक्षा न्यून हो तब तो रत्न प्रभा से पृथुतर कहा जासकता है किन्तु सो तो है नहीं इसलिये "पृथुतरा" शब्द के उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं।

(१) वातश्च वातश्च वातौ यह यहां पर एकशेष समास माना है। एकशेष समास का यह नियम है कि समान अनेक शब्दों में एक ही शब्द अवशिष्ट रह जाता है अन्य का लोप हो जाता है इसलिये यहां पर एक वात शब्द का लोप होगया है इसलिये घनाम्बुवात शब्द से यहां पर घनोदधि वात और घनवात समझना चाहिये तथा घन शब्द सामान्य है वह तनुरूप विशेष की आकांक्षा रखता है इसलिये वात शब्द से यहां तनुवात का भी ग्रहण है इसप्रकार घनाम्बुवात शब्द घनोदधिवात, घनवात और तनुवात इन तीन वातवलयों का द्योतक है।

साहचर्यात्ताच्छब्द्यम् ॥ चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमिः रत्नप्रभा, शर्कराप्रभासहचरिता भूमिः शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभासहचरिता भूमिः वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमिःपंकप्रभा,धूमप्रभासहचरिता भूमिः धूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिः तमःप्रभा, महातमः प्रभासहचरिता भूमिः महातमःप्रभा इति ॥ एताः सञ्ज्ञा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते॥ भूमिग्रहणमधिकरणविशेषप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि, न तथानारकावासाः । किं तर्हि, भूमिमाश्रिता इति॥

साहचर्यात् ५।।	=(रत्न–शर्करा–वालुका आदिकी प्रभा के) सदृश होनेसे वा सहचारी होने से
तात्–शब्द्यम् १।।	= उन (भूमियों) के (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा आदि) नाम धरेगये हैं
चित्र- आदि–रत्नप्रभा–सहचरिता १।। भूमिः १।। रत्नप्रभा१।।	= चित्रादिक रत्नों की दीप्ति सदृश पृथिवी सो रत्नप्रभा है ।
शर्करा–प्रभा–सहचरिता १।। भूमिः १।। शर्कराप्रभा १।।	= कंकरकी दीप्ति सदृश पृथिवी सो शर्कराप्रभा है ।
वालुकाप्रभा–सहचरिता १।। भूमिः १।। वालुकाप्रभा १।।	= वालुका की चमक सम पृथिवी सो वालुका प्रभा है ।
पङ्कप्रभा १।। सहचरिता १।। भूमिः १।। पङ्कप्रभा१।।	= कीचड़ अथवा कर्दम की झलक सम पृथिवी सो पंकप्रभा है ।
धूमप्रभा १।। सहचरिता १।। भूमिः १।। धूमप्रभा१।।	= धूंवां की दीप्ति तुल्य पृथिवी सो धूमप्रभा है ।
तमःप्रभा १।। सहचरिता १।। भूमिः १।। तमःप्रभा १।।	= अन्धकार की झलक सम पृथिवी सो तमःप्रभा है ।
महातमःप्रभा १।। सहचरिता १।। भूमिः १।।	= अत्यन्त अन्धकार की प्रभा तुल्य पृथिवी
महातमः प्रभा १।। इति । एताः १।। संज्ञाः १।। अनेन ३।।	= सो महातमः प्रभा है। (ये रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि) नाम । इस (= अनेन)
उपायेन ३।। व्युत्पाद्यन्ते ।	= साधनकरि निरुक्ति कियेगयेहैं अर्थात् व्याकरणकी रीतिसे सिद्ध कियेगयेहैं।
भूमि–ग्रहणं १।।। अधिकरण -विशेष -प्रतिपत्ति–अर्थम् १।।।	= (इस सूत्र में) भूमि (शब्द) का आदान आधार विशेषके जतलाने के लिये है ।
यथा स्वर्ग पटलानि १।।। भूमिम्२।। अनाश्रित्य:व्यवस्थितानि १।।।	= जैसे स्वर्गपटल भूमि को आधार न कर के पृथक् २ व्यवस्थित वाठहरे हुए हैं
न* तथा * नारक–आवासाः १।।	= तैसें नारकियोंके वासस्थान नहीं हैं अर्थात् उनके वासस्थान भूमिके आधार हैं
किम् * तर्हि * भूमिम् २।। आश्रिताः १।। इति *	= तो (= तर्हि) भूमिका क्या आधार–अधिकरण है अर्थात् किसपर तिष्ठी है

तासां भूमीनामालम्बननिर्ज्ञानार्थं घनाम्बुवातादिग्रहणं क्रियते ॥ घनाम्बु च वातश्च आकाशं च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासां ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः ॥ ❋घनं च

४ घनो मन्दो महान् आयतः इत्यर्थः । अम्बु च जलं उदकमित्यर्थः । वातशब्दोऽन्त्यदीपकः । ततः एवं सम्बन्धनीयः । घनो घनवातः ।

तासां [illegible]।। भूमीनां [illegible]।। आलम्बन–निर्ज्ञान–अर्थम् [illegible]।।	=तिन भूमियों के अवलम्बन के निर्णय के लिये अर्थात् जो भूमि नरकोंका अवलम्बन बतलाई गई हैं उन का अवलम्बन क्या है। यह प्रगट करने के लिये
घन–अम्बु–वात आदि ग्रहणं [illegible]।। क्रियते T	=(सूत्र में) घन–अम्बु–वातादि (वाक्य) का आदान किया गया है।
घन– अम्बु [illegible]।। च * वातः [illegible] च * आकाशं [illegible] च *	=बहुरि घन–अम्बु(=महान् उदक और वात और आकाश शब्दोंका द्वंद समास
घनअम्बुवातआकाशानि [illegible]।। ; तानि [illegible]।।	=घनाम्बु–वात–आकाशानि है। ते (घनाम्बुवात–आकाश)
प्रतिष्ठाः [illegible]।। आश्रयः [illegible]। यासां [illegible]।। ताः [illegible]।। घनाम्बु-	=आधार वा आश्रय जिन (भूमियों) को हैं ते घनाम्बुवाताकाश
वाताकाशप्रतिष्ठाः [illegible]।।	=प्रतिष्ठा(कहलाती)हैं अर्थात् सात नरकोंकी भूमियें महान्जलपवनआकाशकेआश्रयहैं
घनं* [illegible]।। च * घनः [illegible] मन्दः [illegible] महान् [illegible] आयतः [illegible]।	=बहुरिघन है सो गाढ़ा =घन) मोटा(=मन्द) बड़ा (महान्) लम्बाचौड़ा आयत है
इति–अर्थः [illegible] ;	=ऐसा आशय है, अर्थात् घन, मन्द, महान् और आयत समानार्थवाची शब्द हैं ।।
अम्बु [illegible]।। च * जलं [illegible]।। उदकम् [illegible]।। इति* अर्थः [illegible]।	=और अम्बु है सो पानी.नीर ऐसा अभिप्राय है (अम्बु–जल–उदक एकार्थी हैं)
वात–शब्दः [illegible]। अन्त्य–दीपकः [illegible]।	=(सूत्र में) वात शब्द (घन–अम्बु के) अन्त का प्रकाशक है अर्थात् घन और अम्बु प्रत्येक शब्दके अन्तमें रहनेवाला है उसको प्रत्येकके साथ जोड़ो।
ततः* एवं* सम्बन्धनीयः [illegible]। घनः [illegible]। घनवातः [illegible]।	=तिस से ऐसे सम्बन्ध होना चाहिये, कि (घनाम्बुवात वाक्यमें) घन है सो घनवातहै अर्थात् घनवात(वलय) है सो गाढ़ा वा स्थूलवा सघन पवनका है।

❋ चतुष्कोणकंसस्थः पाठः तालपत्र पुस्तके एव वर्तते=चौकोन रूप में स्थित वा निविष्ट ऐसा पाठ ताडपत्र पर लिखित पुस्तकमें विद्यमान है।

अम्बु अम्बुवातः[१]। वातस्तनुवातः। इति महदपेक्षया तनुरिति सामर्थ्यगम्यः। अन्य पाठः॥ सिद्धान्तपाठस्तु घनाम्बु च वातं चेति वातशब्दः सोपस्क्रियते। वातस्तनुवात इति वा॥]

अम्बु१॥ अम्बुवातः१। = अम्बु है सो अम्बुवात है अर्थात् सूत्र में "घनाम्बुवात" वाक्य में जो अम्बु शब्द है उसको अम्बुवातके समान वातशब्द के अन्त्यदीपक होनेसे समझना चाहिये यह वायुमंडल जल मिश्रित है अतः इसको घनोदधि वातवलय कहते हैं॥

वातः१। तनुवातः१। इति * महत्-अपेक्षया३॥ = वात है सो तनुवात है ऐसे (सूत्र में घन-सघन की (= महत्) अपेक्षा से

तनुः१॥ इति * सामर्थ्यगम्यः१। = सूक्ष्म (= तनु) संगत अर्थता से प्राप्य है अर्थात् 'तनु' शब्दकी प्राप्ति यहां आशय के प्रसंग से हुई है क्योंकि जब सूत्र में घन (सघन) वर्तता है तो घन तो जबही विद्यमान होसकता है और उसी समय सूत्र में लासकते हैं जब उसका विरोधक सूक्ष्म वा तनु हो॥ तनुवात सूक्ष्म वा पतले वायुमंडल को कहते हैं॥

अन्यः१। पाठः१। = (घनं च घनो इत्यादि सामर्थ्यगम्यः पर्यन्त) दूसरा वा भिन्न पाठ हुआ

सिद्धान्त-पाठः१। तु * घन-अम्बु१॥ च वातं१॥ च इति = परन्तु (= तु) सिद्धान्त का पाठ घनाम्बु और (= च) वात ऐसा है

वातशब्दः१। सोपक्रियते T . = (घनाम्बु में) वात शब्द ऊपर से जोड़ागया है (तब) घनाम्बुवात, घनवात हुए

वा * वातः१। तनुवातः१। इति * ॥] = और (= वा) वात है सो तनु (सूक्ष्म) वात है ये सब मिलकर घनाम्बुवात घनवात तनुवात हुये। 'घनाम्बुवात' वाक्य का यही विग्रह है जो सिद्धान्तके पाठ के अनुकूल लेकर सूत्र का अर्थ किया गया है (देखो ३ अध्याय पृष्ठ २)

६ सर्वा एता भूमयो घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः। घनोदधिवलयं घनवातवलयप्रतिष्ठम्। घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठम्। तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम्। आकाशमात्मप्रतिष्ठं, तस्यैवाधाराधेयत्वात्॥ त्रीण्यप्येतानि वलयानि प्रत्येकं विंशतियोजनसहस्रबाहुल्यानि॥ सप्तग्रहणं संख्यान्तरनिवृत्त्यर्थम्। सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति॥ अधोऽधोवचनं

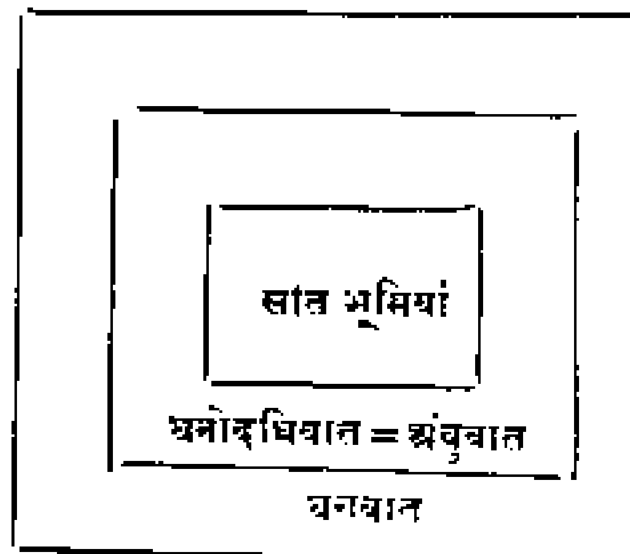
सर्वाः १॥ एताः १॥ भूमयः १॥ घनोदधिवलय-	= समस्त ये पृथिवीं घनोदधिवलय के (जो जल और पवन मिश्रत है) अर्थात् घनोदधिवात जिसकी गीली वा आर्द्रवायु है।
प्रतिष्ठाः १॥ घनोदधिवलयम् १॥ घनवातवलय-	= आधार है (= प्रतिष्ठा) घनोदधिवलय घनवातवलयके (जो सघन पवनका है)
प्रतिष्ठम् १॥ घनवातवलयं १॥ तनुवातवलय-	= आश्रय है॥ घनवातवलय तनुवातवलयके (जो सूक्ष्म, पतली वायुका है)
प्रतिष्ठं १॥; तनुवातवलयं १॥ आकाश-प्रतिष्ठं १॥	= आधार है॥ तनुवातवलय आकाशके आधार है
आकाशं १॥ आत्म-प्रतिष्ठं १॥ तस्य ६॥ एव * आधार-	= आकाश अपने (= आत्मन्) आधार है क्योंकि तिस (आकाश) के ही आधार
आधेयत्वात् ५॥	= और आधेयभाव है अर्थात् वह स्वयं ही आधार और स्वयं ही आधेय है
त्रीणि १॥ अपि * एतानि १॥ वलयानि १॥ प्रत्येकम् १॥	= ये तीनों ही वातवलय पृथक् पृथक्
विंशति-योजन-सहस्र-बाहुल्यानि १॥ सप्तग्रहणम् १॥	= बीस हजार योजन मोटे हैं। सूत्र में 'सप्त' शब्द का उपादान
संख्या-अंतर-निवृत्ति-अर्थम् -१॥ सप्त १॥ भूमयः १॥	= अन्य संख्या के निराकरण के लिए है॥ सात ही पृथिवी हैं
न-अष्टौ १॥ न नव १॥ च * इति-अधः * अधः * वचनं १॥	= न आठ और न नौ। सूत्र में अधो अधो (नीचे नीचे) वाक्य है सो

"भूमयः घनोदधिवलय प्रतिष्ठाः" तत्त्वार्थश्लोक वार्तिकके रचयिता और श्रुतसागरि सूरिके मतमें ये भूमियां घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय अम्बुवातवलय (अर्थात् घनोदधिवातवलय) के आधार है और अम्बुवातवलय तनुवातवलय के आधार है आचार्य तत्त्वार्थराजवार्तिककारके, सर्वार्थसिद्धिकेकर्त्ताके, श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके अनुसार तथा पं० जयचन्द्रराय जो, सदासुख जी इत्यादिके अनुसार तो ये समस्त पृथिवीं घनोदधिवातवलय के आधार हैं और घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है, और घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाशके आधार है परन्तु श्लो० वा० और श्रुतसागरीटीकाके अनुसार भूमियां घनवातवलयके आधार हैं और घनवातवलय घनोदधिवातवलयके आधार है जैसा निम्नलिखित वाक्यों से प्रगट है॥ (क) "स च तनुवात प्रतिष्ठोम्बुवातो घनवातस्य स्थितिहेतुः सोऽपि भूमेर्नकूर्मादिः

६

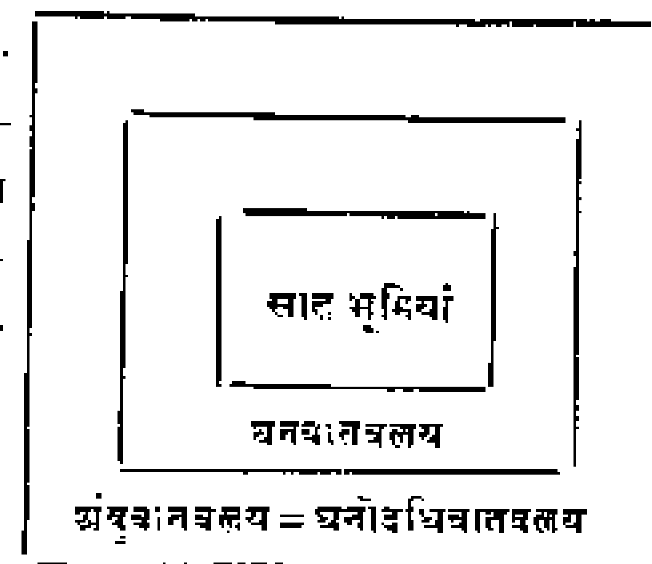
अर्थः—अम्बुवातवलय (=घनोदधिवातवलय) वह तनुवातवलय के आधार है (कैसा है अम्बुवातवलय कि) घनवातवलय की स्थिति का कारण है और वह घनवात (वलय) भूमिकी स्थिति का हेतु है। भूमि की स्थिति का हेतु कछुवा इत्यादि नहीं है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ २४५ ॥

(ख) सर्वाः सप्त भूमयः घनवात प्रतिष्ठा वर्तन्ते स च घनवात अम्बुवातप्रतिष्ठोऽस्ति। स च अम्बुवात तनुवातप्रतिष्ठो वर्तते। सच तनुवात आकाशप्रतिष्ठो वर्तते इत्यादि इसी सूत्र के नीचे श्रुतिसागरि टीका पृष्ठ २८६से उद्धृत॥ सर्वार्थ सिद्धिवृत्तिकारका मत पृष्ठ ६ में उल्लेख करदियाहै ॥



तनुवात

सर्वा एता भूमयः घनोदधिवलयप्रतिष्ठाः, घनोदधिवलयं घनवात-वलयप्रतिष्ठं, 'घनवातवलयं तनुवातवलयप्रतिष्ठं, तनुवातवलय-माकाशप्रतिष्ठम्' राजवार्तिकपृष्ठ १.२ ॥ "तदेवं खरपृथिवी पङ्कप्रतिष्ठा पङ्कं घनोदधिवलयप्रतिष्ठो, घनोदधिवलयं घनवात-वलयप्रतिष्ठं ॥ तनो महातमो भूतमाकाशम् ॥ सभाष्यतत्त्वार्था-धिगमसूत्र पृष्ठ ६४ ॥



तनुवातवलय

"तीनसौ तेताल राजु घनाकार सब लोक घनोदधि, घन(वात) तनुवात के आधार हैं। कविवर द्यानतरायके चरचाशतकसे उद्धृत। कैसा है? सर्वलोक घनोदधिवातवलय (जो जल और पवन मिश्रित है) ताके आधार है और घनोदधिवातवलय घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय तनुवातवलयके आधारहै" ॥

"ए भूमि तो घनोदधिवातवलय के आधार हैं। बहुरि घनोदधिवातवलय घनवातवलय के आधार है बहुरि घनवातवलय तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधार है ॥ पं० जयचन्द्रायजी कृता वचनिका पृष्ठ मुद्रित २८६ ॥

"तहां ते समस्त पृथिवी तो घनोदधिवातवलयके आधार है। और घनोदधिवातवलय है सो घनवातवलयके आधारहै। अर घनवातवलय है सो तनुवातवलय के आधारहै' सदासुखजी कृता अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १५३ ॥

तिर्यक्प्रचयनिवृत्त्यर्थम् ॥

किं ता भूमयो नारकाणां सर्वत्रावासा आहोस्वित्क्वचित्क्वचिदिति तन्निर्धारणार्थमाह—

8

॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तिर्यक् * प्रचय-निवृत्ति-अर्थम् ४।॥ = चौरस (तिर्यक्) वा तिरछा (तिर्यक्) फैलाव (= प्रचय) के निषेध के लिये अर्थात् ये पृथिवी एक दूसरेके नीचे २ अवस्थित हैं तिरछे, चौरस, फैलाव वा ऊर्ध्व में नहीं हैं

किम् * ताः १॥ भूमयः १॥ नारकाणाम् ६। सर्वत्र * आवासाः १। = (प्रश्न) क्या वे भूमियें नारकियोंके सर्वत्र वासस्थान हैं

आहोस्वित् * क्वचित् * क्वचित् * इति * तद्- = अथवा (= आहोस्वित्) कहीं कहीं पर हैं। इस (बात) के

निर्धारण-अर्थम् ४।॥ आह = निर्णयके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि—

तासु त्रिंशत्पंचविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैकनरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

= तासु त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि पंचविंशतिनरकशतसहस्राणि, पंचदशनरकशतसहस्राणि, दशनरकशतसहस्राणि, त्रिनरकशतसहस्राणि, पंचोनएकनरकशतसहस्राणि, च, पंच एव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

सूत्रार्थः—तासु ७॥ त्रिंशत्नरकशतसहस्राणि १॥ = इन (भूमियों) में तीस लाख बिल (= नरक)

पञ्चविंशतिनरकशतसहस्राणि १॥ पंचदश- = पच्चीस लाख बिले, पंद्रह

नरकशतसहस्राणि १॥ दशनरकशतसहस्राणि १॥ = लाख बिले (= आवास) दश लाख बिले (= निवासस्थान)

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रके स्थानमें "तासु नारका" केवल इतना सूत्र है इसका अर्थ है कि उन (रत्नप्रभादि भूमियों) में नरक हैं और उक्तसभाष्य०के भाष्यकारने इस कथनको कि प्रथम भूमिमें तीसलाख बिले हैं दूसरीमें पच्चीसलाख तीसरीमें में पंद्रह लाख चौथीमें दशलाख, पांचवींमें तीनलाख छठीमें पांचघाटि एकलाख और सातवीं भूमिमें केवल पांच नरक बिले वा निवासस्थान हैं भाष्यमें अन्तर्गत करदिया है और इसी सूत्रके भाष्यमें यह कथन कि पहिले नरकभूमिमें तेरह, दूजीमें ग्यारह, तीसरीमें नव, चौथीमें सात, पांचवींमें पांच, छठवींमें तीन, सातवींमें एकही प्रतर हैं गर्भित है। पूज्यपाद स्वामीने प्रतरकी गणनाका कथन इसी सूत्रकी वृत्तिमें करदिया है यथार्थमें हमारे 8

६ तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाण्यनेन संख्यायन्ते यथाक्रमम् ॥ रत्नप्रभायां त्रिंशन्नरकशतसहस्राणि, शर्कराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि, वालुकाप्रभायां पञ्चदश नरकशतसहस्राणि, पङ्कप्रभायां दश नरकशतसहस्राणि, धूमप्रभायां त्रीणि नरकशतसहस्राणि, तमःप्रभायां पञ्चोनमेकं नरकशतसहस्रं, महातमःप्रभायां पञ्च नरकाणि ॥ रत्नप्रभायां नरकप्रस्तारास्त्रयोदश ।

त्रि-नरकशतसहस्राणि १।।। पंचोनं-एकनरक-	= तीन लाख (बिले), पांच घाटि एक
शतसहस्रं १।।। पंच १।।। च॰एव॰यथाक्रमम् १।।।	= लाख और (= च) पांच ही (= एव) क्रमानुसार (नारकियोंके आवास-निवासस्थान हैं) अर्थात् प्रथम पृथिवीके अब्बहुल भागविषैं तीसलाख, दूसरीमें पचीस लाख, तीसरीमें पंद्रह लाख, चौथीमें दश लाख, पांचवींमें तीन लाख, छठवींमें ९९९९५ बिले हैं सातवीं भूमिमें केवल पांच बिले हैं ॥
वृत्त्यर्थः— तासु ७।। रत्न-प्रभादिषु ७।। भूमिषु ७।।	= उन रत्नप्रभादिक भूमियों में
नरकाणि १।।। अनेन ३।।। संख्यायन्ते यथाक्रमम्॰	= बिले वा नारकियोंके निवासस्थान इस अनुक्रमसे गणना किये जाते हैं कि
रत्नप्रभायाम् ७।। त्रिंशत् १।। नरकशतसहस्राणि १।।।	= रत्नप्रभा (प्रथमभूमि) विषैं (अर्थात् उसके अब्बहुल भागमें) तीसलाख बिले हैं
शर्कराप्रभायां ७।। पञ्चविंशति १।। नरकशतसहस्राणि १।।।	= शर्कराप्रभा (दूसरी पृथिवी) में पचीस लाख बिले हैं
वालुकाप्रभायां ७।। पञ्चदश १ नरकशतसहस्राणि १।।।	= वालुकाप्रभा (तीसरी भूमि) में पन्द्रह लाख नरक बिले हैं
पङ्कप्रभायां ७।। दशनरकशतसहस्राणि १।।।	= पंकप्रभा (चौथी पृथिवी) में दश लाख बिले हैं
धूमप्रभायां ७।। त्रीणि १।।। नरकशतसहस्राणि १।।।	= धूमप्रभा (पांचवीं भूमि) में तीन लाख नरक बिले हैं
तमःप्रभायां-पञ्च-ऊनं १।।। एकं-नरक-शतसहस्रं १।।।	= तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में पांच घाटि एक लाख बिले हैं
महातमःप्रभायां ७।। पञ्च १ नरकाणि १।।।	= महातमः प्रभा (सातवीं भूमि) में पांच नरक बिले हैं
रत्नप्रभायां ७।। नरकप्रस्ताराः १।। त्रयोदश १	= रत्नप्रभा (भूमि) में नरक पटल तेरह हैं (पटल = पाथड़ा)

यहांका सूत्र और वृत्तिका कथन सभाष० के सूत्र और उसके भाष्यसे मिलजाता है इसलिये कह सकते हैं कि दोनों आम्नायका तात्पर्य जहांतक इन सूत्रोंसे संबंध रखता है एक है।

६

ततोऽधः आसप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्रस्तारौ हीनौ ॥ इतरो विशेषो लोकानुयोगतो वेदितव्यः ॥

अथ तासु भूमिषु नारकाणां कः प्रतिविशेष इत्यत आह—

१० ॥ नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

ततः * अधः * आसप्तम्याः[५]।। द्वौ[१]। द्वौ[१]। नरक-प्रस्तारौ[१]। = तिस (प्रथम भूमि) से नीचे सातवीं (भूमि) तक दो दो नरक पटल
हीनौ[१]। = न्यून हैं अर्थात् सातवीं भूमि में एक, छठी में तीन, पांचवीं में पांच, चौथी में सात, तीसरी में नौ, दूसरी में ग्यारह, पहली में तेरह पटल वा पाथड़े हैं

इतरः[१]। विशेषः[१]। लोक-अनुयोगतः * वेदितव्यः[१]। = (सात नरकोंके) अन्य भेद (विशेष) लोक नियुक्त वा नियोजित शास्त्रसे जानना चाहिये

अथ * तासु[७]।। भूमिषु[७]।। नारकाणां[६]। कः[१]। = आगे (= अथ) उन भूमियों में नारकियोंके क्या

प्रति-विशेषः[१]। इति * अतः * आह[1] = अन्य भेद प्रभेद (= प्रतिविशेष) हैं। इसलिए (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः ॥ ३ ॥

= नारकाः नित्य अशुभतरलेश्याः, नारकाः नित्य अशुभतर परिणामाः; नारकाः नित्य अशुभतर देहाः; नारकाः नित्य अशुभतरवेदनाः, नारकाः नित्य अशुभतर विक्रियाः ॥

(१) हमारे पास तत्वार्थ सूत्रकी बहुतसी प्रतियोंके अतिरिक्त एक प्रति तत्वार्थ सूत्रकी ज्ञानचन्द्रजी वैद्य द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशित है इस पुस्तक में दूसरे सूत्रके पीछे "प्रथमायामप्रस्तरास्त्रयोदशाधोऽधो द्विहीना:" ऐसा सूत्र अधिक है इसके पश्चात् 'नारका नित्या इत्यादि' सूत्र है इसका अर्थ यह है कि पहली भूमि में तेरह प्रतर हैं और नीचे २ की भूमियोंमें दो दो घाटि हैं अर्थात् प्रथम नरक भूमि में तेरह प्रतर हैं दूसरी में ग्यारह, तीसरी में नौ, चौथी में सात, पांचवीं में पांच, छठीमें तीन, और सातवींमें एक प्रतर है। अन्य ग्रंथोंमें इसे सूत्र नहीं माना है परन्तु सर्वार्थसिद्धि वृत्ति, तत्वार्थराजवार्तिक, पं० जयचन्द्रजीकी वचनिका तथा अर्थप्रकाशिका इत्यादि ग्रंथों में इसी सूत्रकी वृत्तिमें अथवा टीकामें उक्त सूत्रका आशय गर्भित कर दिया है देखो सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ १६८, राजवार्तिक पृष्ठ ११४, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ६५, ६६, वचनिका पृष्ठ ३०२, ३०३, अर्थप्रकाशिका पृष्ठ १४५, इन सबमें उक्त तेरह पटलोंका कथन है ॥ १०

हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य० में नारका शब्द नहीं है शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एकसा है ॥ उक्त सभाष्य० के 'तासु नरका:' इस दूसरे सूत्रसे तीसरे सूत्रमें अनुवृत्ति आती है तब 'नरका:' शब्द जोड़ने से पाठ लगभग एकसा होजाता है, तात्पर्य दोनोंका एक है ॥

सूत्रार्थः——नारकाः[१]। नित्य-अशुभतर-लेश्याः[१]। = नारकी जीव हैं वे निरन्तर अशुभतर लेश्याओं सहित अर्थात् अशुभतर कापोत नील और कृष्ण लेश्याओं सहित

नित्य-अशुभतर-परिणामाः[१]। नित्य-अशुभतर देहाः[१]। = निरन्तर अशुभतर परणतियुक्त, सदा अशुभतर शरीरवाले

नित्य-अशुभतर-वेदनाः[१]। नित्य-अशुभतर विक्रियाः[१]। = सदैव अशुभतर पीड़ा सहित, सदा अशुभतर विक्रिया करने वाले होते हैं क्योंकि उनकें सदा अशुभ कर्मका उदय है इस कारण निरन्तर उनके लेश्या परिणाम, देह और वेदना और विक्रिया अशुभ ही होते हैं॥ इस सूत्र का भावार्थ यह है कि तिर्यंच गतिसे अशुभतर लेश्याओंकी अपेक्षासे रत्नप्रभा प्रथम भूमिमें अशुभतर लेश्या हैं। रत्नप्रभासे शर्कराप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देहवेदना, विक्रिया हैं, शर्कराप्रभा से वालुकाप्रभा में अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना विक्रिया हैं वालुकाप्रभासे पङ्कप्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; पंकप्रभासे धूमप्रभामें अशुभतरलेश्या, परिणाम, देहवेदना,

(१) "अशुभतर" तर = कुछ अधिक, तम = बहुत अधिक। यदि दो वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता प्रगट करनी हो तो उस शब्द के अन्त में 'तर' प्रत्यय लाते हैं जैसे इस सूत्र में "अशुभतर लेश्या"। और यदि बहुतसी (दो से अधिक) वस्तुओंमेंसे एकके शुभ गुण अथवा अशुभ गुणकी अधिकता उन सबके ऊपर प्रगट करनी हो तो 'तम' प्रत्यय लाते हैं "जैसे अशुभतम लेश्याः" इत्यादिसे जानना।

(२) लेश्या शब्दका एकवचन स्त्रीलिंग 'लेश्या' शब्द है, उसका बहुवचन स्त्रीलिंग 'लेश्याः' ऐसा है। परन्तु समासमें "नित्याशुभतर लेश्याः" आया है जिसका अर्थ यह है कि निरन्तर अशुभतर हैं लेश्या जिनके (ऐसे नारकी हैं) अर्थात् 'नारकाः' शब्द का विशेषण है, अतः पुलिङ्ग बहुवचनमें रक्खा है।

(३)वेदना और विक्रिया शब्दों का क्रम से एक वचन स्त्रीलिङ्ग वेदना और विक्रिया हैं उनके बहुवचन स्त्रीलिङ्ग क्रमसे 'वेदनाः, विक्रियाः' होते हैं परन्तु समास में 'नित्यअशुभतरवेदना' 'नित्यअशुभतरविक्रिया' आये हैं जिनके क्रम से अर्थ हैं 'निरन्तर अशुभतर है वेदना जिनके,' और 'निरन्तर अशुभतर हैं विक्रिया जिनके' अर्थात् 'नारकाः' शब्दका गुणवाचक हैं अतः 'वेदनाः' 'विक्रियाः' शब्दों को बहुवचन पुलिङ्ग में रक्खा है॥

लेश्यादयो व्याख्यातार्थाः ॥ अशुभतरा इति प्रकर्षनिर्देशः । तिर्यग्गतिविषयाशुभलेश्याद्यपेक्षया, अधोऽधः स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्यः ॥ नित्यशब्द आभीक्ष्ण्यवचनः ॥ नित्यमशुभतरा लेश्यादयो येषां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारकाः ॥

१२

विक्रिया हैं; धूमप्रभा से तमः प्रभामें अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं; और तमःप्रभामें महातमः प्रभामें (सातवीं भूमिमें) अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना, विक्रिया हैं ॥

वृत्त्यर्थः—लेश्या-आदयः१। = लेश्या, परिणाम-देह-वेदना-विक्रिया (आदयः) हैं

व्याख्यात-अर्थाः१। = उनके अर्थ (दूसरे अध्याय के ६, ८, ३६ सूत्रों की वृत्तिमें क्रमसे) कहेगये हैं

अशुभतराः१। इति *प्रकर्ष-निर्देशः१।; तिर्यंच- = (इस सूत्र में) अशुभतर ऐसा (विशेषण) अधिकपनाके अर्थ है। तिर्यंच-

गतिविषय-अशुभलेश्या-आदि-अपेक्षया३।। च अधः*अधः = गतिविषय, अशुभलेश्यादिकोंकी अपेक्षासे तथा (= च) नीचे २ (नरकोंमें)

स्वगति-अपेक्षया३।। = अपनी गति (अर्थात् नरकगति) की अपेक्षासे (अशुभतर लेश्याओं की प्रधानता)

वेदितव्यः१। = जाननी चाहिये भावार्थ जैसे तिर्यंचोंके अशुभलेश्यादि हैं उनकी अपेक्षासे नरक-गति में अशुभतर लेश्या हैं और नारकियों के परस्पर की अपेक्षासे ऊपर के नारकियोंसे नीचे नीचेके नारकियोंके अशुभतरलेश्या, अशुभतरपरिणाम, अशुभतरदेह, अशुभतरवेदना, अशुभतर विक्रिया हैं

नित्य-शब्दः१। आभीक्ष्ण्य-वचनः१। नित्यम्१।। = (इस सूत्रमें) नित्य शब्द बारंबार अथवा निरन्तर होनेका वाचक है निरन्तर

अशुभतराः१। लेश्या-आदयः१। येषाम्६। = अशुभतर हैं लेश्या, परणति, शरीर, पीड़ा, और विक्रिया (= आदयः) जिनके

ते१। नित्य-अशुभतर-लेश्या-परिणाम- = वे नित्य अशुभतर लेश्या वाले तथा निरन्तर अशुभतरपरणतियुक्त और

देह-वेदना- = सदा अशुभतर शरीर सहित तथा निरंतर अशुभतर वेदना वा पीड़ा सहित

विक्रियाः१। नारकाः१। = और सर्वकाल अशुभतर विक्रियासहित नारकी जीव हैं ॥

प्रथमाद्वितीययोः कापोती लेश्या, तृतीयायामुपरिष्टात्कापोती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला, पञ्चम्यामुपरि नीला अधः कृष्णा, षष्ठ्यां कृष्णा, सप्तम्यां परमकृष्णा । स्वायुषः प्रमाणावधृता द्रव्यलेश्या उक्ताः ॥ भावलेश्यास्तु अन्तर्मुहूर्तपरिवर्तिन्यः ॥ परिणामाः स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदुःखहेतवोऽशुभतराः ॥ देहाश्च तेषामशुभनामकर्मोदयादत्यन्ताशुभतरा विकृताकृतयो हुण्डसंस्थाना दुर्दर्शनाः ॥ तेषामुत्सेधः ॥ प्रथमायां सप्त धनूंषि, त्रयो हस्ताः षडंगुलयः ।

प्रथमा-द्वितीययोः ॥ कापोती ॥ लेश्या ॥ तृतीयां ॥ = पहिली (रत्नप्रभा) तथा दूसरी (शर्कराप्रभा) में कापोतलेश्या है । तीसरी (वालुकाप्रभा) में

उपरिष्टात् * कापोती ॥ = ऊपर (के विलोंके रहनेवाले नारकियोंके) कापोत लेश्या है ।

अधः * नीला ॥ चतुर्थ्याम् ॥ = (इस तीसरी वालुकाप्रभा भूमिके) नीचे नील लेश्या है । चौथी (पंकप्रभा भूमि) में

नीला ॥ ; पञ्चम्याम् ॥ उपरि * = नील लेश्या है । पांचवीं (धूमप्रभा भूमि) में ऊपर (विलोंमें रहनेवाले नारकियोंके)

नीला ॥ ; अधः * कृष्णा ॥ = नीललेश्या है । (इसके) नीचे (के विलोंमें रहनेवाले नारकियोंके) कृष्णलेश्या है

षष्ठ्याम् ॥ कृष्णा ॥ सप्तम्याम् ॥ परम कृष्णा ॥ = छठी (तमःप्रभा भूमि) में कृष्ण लेश्या है; सातवीं (महातमःभूमि) में उत्कर्ष कृष्णलेश्या है

स्व-आयुषः । प्रमाण-अवधृता ॥ द्रव्य लेश्या ॥ उक्ताः ॥ = अपनी २ आयुके परिमाण द्वारा निश्चित कीगई द्रव्य लेश्यायें कही गई हैं अर्थात् नारकियोंके उपर्युक्त क्रमसे कही गई द्रव्य लेश्यायें आयुतक एकसी रहती हैं।

भावलेश्याः ॥ तु * अन्तमुहूर्त-परिवर्तिन्यः ॥ = परन्तु भावलेश्या अन्तर्मुहूर्त में पलटती रहती हैं ।

परिणामाः । स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दाः ॥ ; क्षेत्र-विशेष = परिणाम-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-और शब्द हैं । स्थानभेदके

निमित्त-वशात् । अतिदुःखहेतवः । अशुभतराः । = निमित्तके वशसे (वे परिणाम) अति दुखःके कारण अशुभतर हैं ।

देहाः । च * तेषां । अशुभ-नामकर्म-उदयात् । = और (= च) उन (नारकी जीवों) के शरीर अशुभ नामकर्मके उदयसे

अत्यन्त-अशुभतराः । विकृत-आकृतयः । हुंड— = अतिशय अशुभतर हैं (और) बुरी आकृतिवाले, हुंडक—

संस्थानाः । दुर्दर्शनाः ॥ ; तेषां । उत्सेधः । प्रथमायां ॥ = संस्थानरूप कुदर्शनीय (= देखनेमें बुरे) हैं उन (नारकियों) की उंचाई प्रथम भूमिमें

सप्त ॥ धनूंषि ॥ त्रयः । हस्ताः । षड् । अंगुलयः । = सात चाप तीन हाथ छै अंगुल है । अर्थात् सवा इकतीस हाथ है

अधोऽधो द्विगुणाद्विगुणा उत्सेधः ॥ अभ्यन्तरासद्वेद्योदये सति अनादिपारिणामिकशीतोष्णबाह्यनिमित्त-जनिताः सुतीव्रा वेदना भवन्ति नारकाणाम् ॥ प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीषु उष्णवेदनान्येव नरकाणि पंचम्यामुपरि उष्णवेदने द्वे नरकशतसहस्रे । अधः शीतवेदनमेकं शतसहस्रम् । षष्ठीसप्तम्योःशीत-वेदनान्येव ॥ शुभं करिष्याम इति अशुभतरमेव विकुर्वन्ति, सुखहेतूनुत्पादयाम इति दुःखहेतूनेवो-त्पादयन्ति । त एते भावा अधोऽधोऽशुभतरा वेदितव्याः ॥

किमेतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—

अधस् अधः* द्विगुण-द्विगुणाः१ उत्सेधः१ अभ्यन्तर-	= नीचे २ (ऊपरके नरकसे प्रत्येक नरकमें) दूनी २ ऊंचाई है । अन्तरंग
असत्-वेद्य-उदये७ सति७ अनादि-पारिणामिक-	= असाता वेदनीय कर्मके उदय होनेपर अनादिकाल परिणमनरूप (भूमिका)
शीत-उष्ण-बाह्य-निमित्त-जनिताः१ सुतीव्राः१ वेदनाः१	= बाह्यनिमित्तक-शीत-उष्णकरि (नारकियोंके) तीव्र पीड़ा
भवन्ति T नारकाणां६ प्रथमा-द्वितीया-तृतीया-	= होती है । नारकियोंके पहिली (भूमि)में दूसरी (शर्कराप्रभा)में तीसरी (वालुकाप्रभा)में
चतुर्थीषु७ उष्णवेदनानि१ एव* नरकाणि१	= चौथी (पङ्कप्रभा पृथिवी)में उष्ण वेदना रूप ही बिल हैं
पंचम्याम्७ उपरि* उष्णवेदने१ द्वे१	= पांचवी (धूमप्रभाभूमि)में ऊपरके उष्णवेदनारूप दो
नरकशत-सहस्रे१ अधः* शीतवेदनम्१	= लाख बिले हैं । (पांचवीं भूमिके शेष) नीचेके शीतवेदनारूप
एकम्१ शत-सहस्रम्१ षष्ठी-सप्तम्योः७	= एक लाख (बिले) हैं । छठी (तमःप्रभा भूमि) में और सातवीं (महातमःप्रभा भूमि)में
शीत-वेदनानि१ एव* शुभम्२ करिष्यामः T इति*	= शीतवेदना ही है । अच्छी (विक्रिया) हम करेंगे ऐसे (नारकी विचारे हैं)
अशुभतरम्२ विकुर्वन्ति T सुखहेतून्२ उत्पादयामः T	= परन्तु अशुभतर ही करते हैं । सुख के कारण हम पैदा करेंगे ।
इति* दुःखहेतून्२ उत्पादयन्ति T	= इस प्रकार (नारकी जीव विचार करते हैं परन्तु) दुःखके कारणही उपजाते हैं
ते१ एते१ भावाः१ अधः* अधः* अशुभतराः१	= ते ये परिणाम (एक नरककी अपेक्षासे दूसरेमें) नीचे नीचे अशुभतर
वेदितव्याः१ किम्* एतेषाम्६ नारकाणाम्६	= जानना चाहिये ॥ (प्रश्न) क्या इन नारकियोंके
शीत-उष्ण-जनितम्१ एव* दुःखम्१ उत*	= शीत और उष्णसे उत्पन्न हुआ ही दुःख है अथवा
अन्यथा * अपि * भवति T इति * आह T	= अन्य प्रकार भी (नारकी जीवोंको दुःख) होता है अतः (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

॥ परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वं नारकाणाम् । भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोदयाद्विभङ्गव्यपदेश-
१५ भाजा च दूरादेवदुःखहेतूनवगम्योत्पन्नदुःखाःप्रत्यासत्तौ परस्परालोकनाच्च प्रज्वलितकोपाग्नयः
पूर्वभवानुस्मरणाच्चातितीव्रानुबद्धवैराश्च शृगालादिवत्स्वाभिघाते प्रवर्तमानाः

सूत्रम्—परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥ = (नारकाः)परस्पर-उदीरित-दुःखाः (भवन्ति) ॥४ ॥

सूत्रार्थ—नारकाः[१]। परस्पर-उदीरित-दुःखाः[१]भवन्ति = नारकीजीव परस्पर उत्पन्नकियाहुआ दुःख (एक दूसरेको) देनेवाले होते हैं। अर्थात् कुत्तोंकी भांति निरन्तर एक दूसरेके साथ लड़ते झगड़ते रहते हैं।

वृत्त्यनुवादः—कथं*परस्पर-उदीरित— = (प्रश्न) कैसे आपसमें (एक दूसरे को) कियाहुआ अथवा उपजायाहुआ

दुःखत्वं[१]। नारकाणाम्[६]। मिथ्या-दर्शन-उदयात्[५]। = नारकीजीवोंके दुख होता (= दुखत्वं) है। मिथ्या दर्शनके उदय होनेसे

विभंग-व्यपदेश-भाजा[३]। भवप्रत्ययेन[३]। अवधिना[३]। च*(४) = विभंगनामक या विभंग नामकाधारक भवनिमित्तक अवधिज्ञानकरि

दूरात्[५]। एव* दुःखहेतून्[२]। अवगम्य— = दूरसे ही (नारकी जीव) दुःखके कारणोंको जानकर

उत्पन्न-दुःखाः[१]। च*प्रति-आसत्तौ[७]। परस्पर- = पीड़ा उपजावें हैं और (= च)अति निकट होनेपर आपसमें (एक दूसरे को)

आलोकनात्[५]।प्रज्वलित-कोप-अग्नयः[१]।च* = देखनेसे कोपरूपी अग्नि प्रज्वले है जिनके अर्थात् तीव्र क्रोधयुक्त होजाते हैं॥ तथा

पूर्व-भव-अनुस्मरणात्[५]। अतितीव्र- = पहिले जन्मके बुरे या निकृष्ट (= अनु) स्मरणसे अतितीव्र और

अनुबद्ध-वैराः[१]। च* शृगाल-आदिवत्* = दृढ़(= अनुबद्ध) वैररूप होय हैं और (= च)सियार अथवा गीदड़ आदिके सदृश

स्व-अभिघाते[७]। प्रवर्तमानाः[१]। = अपने घात (करने) में प्रवर्तते हैं अर्थात् जैसे गीदड़ कुत्ते आदि अन्य गीदड़-कुत्ते आदिको देख कर निर्दयता पूर्वक क्रोध करते हैं तथा परस्पर दांतोंका प्रहार करते हैं तैसेही नारकी-जीव एक दूसरेके और अपने घात करनेमें प्रवर्तते हैं।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है। (२) दूरात् शब्द त्रिलिंगी है। (३) अवगम्य शब्द सम्बन्धक भूत कृदन्त है। (४) च वाक्य भूषणके लिये है। (५) अनु शब्दका अर्थ पद्मचन्द्रकोशमें निकृष्ट दिया है 'निकृष्ट स्मरणसे' अभिप्राय है कि नारकी जीवोंको कुअवधिसे पूर्व भवकी बुरी बातोंकी सुधि आती है भली बातो की नहीं।

स्वविक्रियाकृतासिवासिपरशुभिण्डिमालशक्तितोमरकुन्तायोघनादिभिरायुधैः स्वकरचरणदशनैश्च छेदनभेदनतक्षणदंशनादिभिः परस्परस्यातितीव्रं दुःखमुत्पादयन्ति ॥

किमेतावानेव दुःखोत्पत्तिकारणप्रकारः उतान्योपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

॥ संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक्चतुर्थ्याः ॥ ५ ॥

स्व-विक्रिया-कृत-असि-वासि-परशु-	= अपनी कीहुई विक्रियासे तरवार (= असि, कुल्हाड़ा (= वासि) फरसा (परशु)
भिण्डि-माल-शक्ति-तोमर-कुन्त-	= बन्दूक (= भिण्डि) चक्र (= माल) शक्ति बर्छी लोहेके डंडे (तोमर) भाला सेल (= कुन्त)
अयस्घन-आदिभि-[3]॥आयुधैः[3]॥च॥स्व-कर-	= लोहेके घन आदिक अस्त्र शस्त्र द्वारा (= आयुधैः) और (= च) अपने हाथ
चरण-दशनैः[3]। छेदन-भेदन-तक्षण-दंशन-	= पग दांतोंकरि छेदनाभेदना छीलना (= तक्षण) काटना (दंशन)
आदिभिः[3]। परस्परस्य[6]। अतितीव्रं[2]॥दुःखम्[2]॥	= आदिक (क्रिया) से आपसकी अतितीव्र पीड़ाको
उत्पादयन्ति T किम्॥ एतावान्[1]। एव दुःख-उत्पत्ति-	= उत्पन्न करते हैं। क्या इतने ही दुःख उत्पन्न होनेके
कारण-प्रकारः[1]। उत॥अन्यः[1]। अपि॥कश्चित्॥ अस्ति इति॥	= हेतु अन्य भेद हैं अथवा कुछ दूसरा (= अन्य) भी है
अतः आह T	= इस लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि—

सूत्रम्—संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्चप्राक्चतुर्थ्याः = नारकाःसंक्लिष्टा-असुर-उदीरित-दुःखाश्चप्राक्-चतुर्थ्याः

सूत्रार्थः— नारकाः[1]। प्राक्॥चतुर्थ्याः[5]॥	= नारकीजीव चौथी (पंकप्रभा भूमिसे पहिले) तीसरी भूमि पर्यंत
संक्लिष्ट—असुर-	= क्लेश (परिणामोंकरि) युक्त असुरोंद्वारा वा क्लेश भावोंके धारक असुरोंकरि
उदीरित—दुःखाः[1]। च॥	= उत्पादित (= उदीरित) दुःख भी सहते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है। (२) अनुवादक के पास इस समय मूल सूत्रों की बहुत सी प्रतियें हैं। उनमेंसे सदासुखजीकी दो प्रतियोंमें और ज्ञानचन्द्रजी लाहौरकी एक प्रतिमें "प्राक् चतुर्थ्यः" ऐसा पाठ है और शेष प्रतियोंमें "प्राक् चतुर्थ्याः" ऐसा पाठ है। इन तीन प्रतियोंका पाठ अनुचित ज्ञात पड़ता है क्योंकि एक, द्वि, त्रि, चतुर् से नवन् दशन् इत्यादि उन्नीस पर्यन्त ए संख्यायें जिस संख्यासे सम्बन्ध रखती हैं उस संज्ञा का विशेषण कहलाती हैं। एक द्वि, त्रि, चतुर् तक संख्याओंका वही विभक्ति वही वचन और वही लिङ्ग संस्कृतभाषाके

१७

व्याकरणोके सूत्रोंके अनुसार होता है जो सम्बन्धित संख्याका होता है जैसे श्रीणि बलयानि इस वाक्य में बलयानि शब्द प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिङ्गमें है। त्रीणि शब्द भी जो वलियानि शब्द का विशेषण है प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसक लिंगमें है परन्तु पञ्चन् से नवदशन् (उन्नीस) तक की विभक्ति और वचन वही होता है जो संज्ञा का, लिङ्ग वही होने की आवश्यकता नहीं है जैसे "सप्त भूमयो न अष्टौ न नव चेति" (संस्कृत पृष्ठ १६०) यहां पर सप्त अष्टौ नव तीनों शब्दों का बहुवचन प्रथमा विभक्ति (कारक) ही है जो भूमि शब्दका है परन्तु भूमि शब्द का बहुवचन स्त्रीलिङ्ग भूमयः है, लिंग-सप्त-अष्टौ-नव-शब्दों का कोई भी समझलो क्योंकि ये तीनों शब्द बहुवचन ही होते हैं और तीनों लिंगों में एकसे ही रूप धरते हैं चतुर्थ शब्द भूमि के लिये सूत्र में आया है न कि नरक शब्द के लिये। अब प्राक् शब्द के साथ पंचमी विभक्ति है सो चतुर्थ्याः पंचमी विभक्ति एकवचन स्त्रीलिंग चतुर्थी शब्द का है परन्तु चतुर्भ्यः पंचमी विभक्ति बहुवचन और पुल्लिंग अथवा नपुंसक लिंग है। नरक शब्द पुल्लिंग है इस अध्यायके किसी सूत्रमें दूसरे सूत्रको छोड़कर नरक शब्द नहीं लाये हैं नरक शब्द दूसरे सूत्रमें बिलोंके अर्थमें है रत्नप्रभा शर्कराप्रभा वालुकाप्रभा पंकप्रभा धूमप्रभा तमःप्रभा महातमःप्रभाके अर्थ में नहीं है। नारका शब्द तीसरे सूत्र में लाये हैं उसका अर्थ नरकके दुःख सहन करनेवाले नारकी जीवोंके है। इससे नरक शब्दकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लेना अयुक्त है पहिले सूत्रमें भूमि शब्द लाये हैं इससे भूमि शब्द की अनुवृत्ति पांचवां सूत्रमें आती है न कि नरक शब्दकी।

यदि हम चतुर्भ्यः ऐसा पाठ पढ़ें तो अर्थमें भिन्नता होगी अर्थात् भूमिके स्थानमें नरक(=नारकियोंके रहनेका बिल) ऐसा अर्थ होजावेगा जो आगम विरुद्ध है, सूत्र व्याकरणके अनुसार अशुद्ध भी होजायगा। प्राक् चतुर्थ्याः = चौथी पंकप्रभा भूमिसे पहिले अर्थात् तीसरी दूसरी और पहिली भूमि तक

प्राक् चतुर्भ्यः = चार(नरकों)से पहिले अर्थात् तीन चार बिलोंके पहले पहले॥

चतुर्भ्यः यह वाक्य पहिले अध्याय के तीसवां सूत्र में "एकस्मिन्-आ चतुर्भ्यः" दूसरे अध्याय के अट्ठाईसवां सूत्रमें "संसारिणः-प्राक् चतुर्भ्यः" और ४३वां सूत्रमें "आ चतुर्भ्यः" लाये हैं आङ् (=आ)का अर्थ तक या पर्यन्त है और प्राक् का अर्थ पहिले पहिले है आ चतुर्भ्यः, पहिला "ज्ञान शब्द का विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। दूसरा 'आ-चतुर्भ्यः' शरीरोंका विशेषण है जो नपुंसकलिंग है। तीसरा 'प्राक-चतुर्भ्यः' समय शब्दका गुणवाचक है समय शब्द पुल्लिंगहै। स्मरण रहे कि चतुर्भ्यः चतुर् शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंग और पुल्लिंग है अर्थात् चतुर् शब्दकी पंचमीविभक्ति नपुंसक और पुल्लिंगमें एकही रूप "चतुर्भ्यः"धारण करती है॥अतः "प्राक्चतुर्भ्यः" स्त्रीलिंग नहीं होसकता है इसलिये यह अशुद्धहै।

देवगतिनामकर्मविकल्पस्यासुरत्वसंवर्तनस्य कर्मण उदयादस्यन्ति परानित्यसुराः। पूर्वजन्मनि सम्भावितेनातितीव्रेण संक्लेशपरिणामेन यदुपार्जितं पापकर्म तस्योदयात्सततं क्लिष्टाः संक्लिष्टाः। संक्लिष्टा असुराः संक्लिष्टासुराः। संक्लिष्टा इति विशेषणान्न सर्वे असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति। किं तर्हि, अम्बावरीषादय एव केचनेति ॥

देवगति-नामकर्म-विकल्पस्य ६।१। असुरत्व-संवर्तनस्य ६।१।	= देवगति नामक नामकर्मका भेद जो असुरत्वसंवर्तन तिस
कर्मणः ६।१। उदयात् ५।१। अस्यन्ति परान् २।३। इति असुराः १।३।	= कर्मके उदयसे दूसरोंको फेंकते हैं अर्थात् दुख देते हैं ऐसे असुर हैं
पूर्व-जन्मनि ७।१। सम्भावितेन ३।१। अतितीव्रेण ३।१।	= पहिले भवमें होसकने योग्य बहुत तीव्र
संक्लेशपरिणामेन ३।१। यत् १।१। उपार्जितं १।१। पापकर्म १।१।	= संक्लेश भावकरि जो पापकर्म उपार्जन किया है
तस्य ६।१। उदयात् ५।१। सततं २।१। क्लिष्टाः १।३। संक्लिष्टाः १।३।	= तिसके उदय से निरन्तर क्लेशयुक्त वा क्लिशित (= क्लिष्ट) ते संक्लिष्ट हैं
संक्लिष्टाः १।३। असुराः १।३। संक्लिष्ट-असुराः १।३।	= निरन्तर क्लेशयुक्त परिणामवाले (= संक्लिष्टाः) असुर (हैं वे) संक्लिष्ट असुर हैं
संक्लिष्ट इति * विशेषणात् ५।१।	= संक्लिष्ट ऐसे विशेषण से अर्थात् असुर शब्दके पहिले जो 'संक्लिष्ट' विशेषण है उसमें (अभिप्राय है कि)
सर्वे १।३। असुराः १।३। नारकाणां ६।३। दुःखम् २।१। न * उत्पादयन्ति[1]	= सब असुरकुमार नारकियोंको पीड़ा नहीं उत्पन्न करते हैं
किम् * तर्हि *	= तो (नारकियोंको) कौन (असुर कुमार पीड़ा देते) हैं
अम्ब-अवरीष-आदयः १।३। एव * केचन * इति *	= अम्ब, अवरीष (= अम्बरीष) आदि (जातिके असुर) ही कोई ऐसे पीड़ा देतेहैं

(१) "अम्बावरीषादयः" के स्थान में सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें अम्बाबरीषादय है।

अम्ब अम्बरीष-श्याम-शबल-रुद्र-उपरुद्र-काल-महाकालस्य-असिपत्रवन	= अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकालस्य, असिपत्रवन,
कुम्भी-वालुका-वैतरणी-खर-स्वर-महाघोषा	= कुम्भी, वालुका, वैतरणी, खर, स्वर और महाघोष
पंचदश १।३। एते संक्लिष्टाः १।३। असुराः १।३।	= ये पंद्रह जाति के क्लेश परिणाम के धारक असुर
नारकीणाम् ६।३। वेदनाः २।३। समुदीरयन्ति	= नारकियोंको वेदना (पीड़ा) उत्पन्न करतेहैं (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० ७१, ७२)

१८

अवधिप्रदर्शनार्थं प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् ॥ उपरि तिसृषु पृथ्वीषु संक्लिष्टासुरा बाधाहेतवो नातःपरमिति प्रदर्शनार्थम् ॥ चशब्दः पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयार्थः ॥ सुतप्तायोरसपायननिष्टप्तायःस्तम्भालिङ्गनकूटशाल्मल्यारोहणावतरणायोधनाभिघातवासीक्षुरतक्षणक्षारतप्ततैल-

अवधि-प्रदर्शन-अर्थम्-१।।। प्राक्चतुर्थ्याः५।।	= मर्यादा दिखावनेके लिये (इस सूत्रमें) प्राक् चतुर्थ्याः (अर्थात्-चौथी पंकप्रभाभूमिसे पहिले पहिले तीसरी वालुकाप्रभा पृथिवी पर्यंत)
इति*विशेषणम्१।।। उपरि*तिसृषु७।।	= ऐसा गुणवाचक (वाक्य) है । ऊपरकी तीन (रत्नप्रभा,शर्कराप्रभा,वालुकाप्रभा)
पृथ्वीषु७।। संक्लिष्ट-असुराः१। बाधा-हेतवः१।	= भूमियोंमें संक्लिष्ट परिणामवाले असुर (नारकियोंको) पीड़ा (उपजाने) के कारण हैं
न*अतः* परम्*	= नहीं हैं इस (तीसरी वालुकाप्रभाभूमि)से आगेके(पंकप्रभा,धूमप्रभा, तमःप्रभा महातमः प्रभा भूमियोंमें इन असुरों द्वारा पीड़ा उपजावनेका हेतु)
इति*प्रदर्शन-अर्थम्१।।।	= ऐसा दिखावने के लिये (प्राक्-चतुर्थ्याः वाक्य सूत्रमें) है ।
च-शब्दः१। पूर्व-उक्त-	= (इस सूत्रमें) चशब्द पहिले कहेगये (= तीसरे और चौथे सूत्रोंमें कि अशुभतर—लेश्या परिणामादिसे उत्पन्न तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न)
दुःख-हेतु-समुच्चय-अर्थः१।	= दुखोंके कारणोंके संचयके लिये हैं तात्पर्य यह है कि अशुभतर लेश्या परिणामादिकसे उत्पन्न वेदना तथा परस्पर कारणसे उत्पन्न पीड़ा और असुरोंके द्वारा (तीसरे नरक तक) उत्पन्न बाधा इसप्रकार नारकी जीवोंको तीन प्रकारके दुःख होते हैं ।
सुतप्त-अयस्-रस-पायन-निष्टप्त-अयस्-	= अति संतप्त लोहे (अयस्)के रसके पिलानेसे, अति संतप्त लोहेके
स्तम्भ-आलिंगन-कूट-	= खम्भसे आलिंगन करानेसे, माया रचित अथवा मिथ्याभूत
शाल्मलि (शाल्मली)-आरोहण-अवतरण-	= सेंभलके वृक्ष अर्थात् शूलीपर चढ़ानेसे, और उतारनेसे,
अयस्-घन-अभिघात-वासी-	= लोहेके (अयस्)घनसे ताड़नादि करि(अभिघात),कुल्हाड़ा(वासी) बसूला(वासी)तथा
क्षुर-तक्षण-क्षार-तप्ततैल-	= छुरद्वारा काटने(= तक्षण)छोलना(तक्षण)से, खारेपानी(= क्षार)तथा अतिउष्णतेलसे

ऽवसेचनायःकुम्भीपाकाम्बरीषभर्जनवैतरणीमज्जनयन्त्रनिष्पीडनादिभिर्नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति ॥ एवं छेदनभेदनादिभिः शकलीकृतमूर्तीनामपि तेषां न मरणमकाले भवति। कुतः? अनपवर्त्यायुष्कत्वात् ॥ यद्येवं, तदेव तावदुच्यतां नारकाणामायुःपरिमाणमित्यत आह–

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अवसेचन-अयस-कुम्भी-पाक-अम्बरीष-भर्जन-	= सीचनेसे, लोहेके घड़ेमें पकानेसे भाड़में भूजनेसे
वैतरणी-मज्जन-यन्त्र-निष्पीडन-आदिभिः३।	= वैतरणीनदीमें डुबानेसे, (कोल्हू आदि) कलों (यन्त्र)में पेलनादि करि
नारकाणाम् दुःखं१॥उत्पादयन्ति;एवंछेदन-भेदनादिभिः	= नारकीनकैं वेदना उपजाते हैं। इस प्रकार छेदन भेदनादिक करि
शकलीकृत-मूर्तीनाम्६॥अपि*तेषाम्६।	= शरीरके खंडखंड कियेजानेपर(=कृत)भी तिन(नारकियों)की (विना आयु पूर्णकिये)
न*मरणम्१॥। अकाले७। भवति॥कुतः*?	= अकालमें वा अवसरमें मृत्यु नहीं होतीहै। (प्रश्न)क्योंकर(नारकियोंकीअकाल मृत्युनहीं)
	(उत्तर) क्योंकि (दूसरे अध्यायके त्रेपनवां सूत्रके अनुसार नारकीजीव)
अन अपवर्त्य-आयुष्कत्वात्५॥	= परिपूर्ण आयुवाले होतेहैं अर्थात् नारकीजीव अपनी आयु परिपूर्ण
	किये विना मृत्युको प्राप्त नहीं होते हैं
यदि*एवम्*तद्-एव-तावत्-नारकाणाम्६।आयुष्—	= जो ऐसे है(नारकी पूर्णआयुवालेहैं) तो(=तावत्)वो(तद्)ही(एव)नारकियोंकी आयुकी
परिमाणं१॥ उच्यताम्॥ इति अतः*आह	= मर्यादा कहीजाय (=उच्यताम्) इसलिये (आचार्य उत्तरसूत्रमें) कहते हैं कि...

सूत्रम्–तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

= तेषु-एकसागरोपमा-त्रिसागरोपमा-सप्तसागरोपमा-दशसागरोपमा-सप्तदशसागरोपमा-द्वाविंशतिसागरोपमा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा-सत्त्वानां परा स्थितिः (यथाक्रमम्) ॥ ६ ॥

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। 'यथाक्रमम्'की अनुवृत्ति इस अध्यायके दूसरे सूत्रसे लीगई है देखो टिप्पणी पृष्ठ २१

इस सूत्रमें नरक शब्दकी अनुवृत्ति सप्तमी विभक्ति बहुवचन पुलिंगमें ली है और सत्त्वानां शब्द षष्ठी विभक्ति बहुवचन पुलिंग वा नपुंसकलिंगमें लाये हैं जिसका अर्थ जीवोंकी है और पूज्यपादस्वामीकृत संस्कृतवृत्तिमें सत्त्वानां शब्दको सूत्रमें लानेका यह कारण बताया है कि "एक तीन सप्त इत्यादिक" सागरोंकी स्थिति "भूमयः" शब्दसे सम्बन्ध न करजाय अर्थात् ऐसा अर्थ रोकनेके लिए लाये हैं कि एक तीन सप्त इत्यादिक सागरोंकी स्थिति भूमियों वा पृथ्वीयोंकीहैं। इसका यह आशय निकला कि एक-तीन-सप्त इत्यादि सागरोंकी स्थिती जीवोंकी है 'पृथिवी अथवा भूमि'की नहींहै।

(क) स्थितिका सम्बन्ध भूमि शब्दके साथ न होजावें (ख) तेषु (ग) सत्त्वानां इनके संबंधमें जो विचार और भाव मेरे हृदयमें उत्पन्न हुए हैं उनका उल्लेख पाठकोंकी सेवामें नम्रतापूर्वक इस प्रकार है कि—

(क) 'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्' = (वाक्यका) यथार्थ आशय (= विशेषप्रतिपत्तिः) व्याख्यानसे (अर्थात् परस्पर शब्दोंका संबंध वा अन्वय करनेसे) निकलता है क्योंकि (वाक्योंमें) संदेहरूप वा संदिग्धार्थ शब्दसे (= संदेहात्) अलक्षणता अर्थात् अनिश्चितभाव वा अर्थ (= अलक्षणम्) नहीं (नहि) होती है इस परिभाषाके अनुसार नारकियोंसे स्थिति शब्दका संबंध होजाता है नकि भूमि शब्दसे।

(ख) तेषु (= तिनमें, उनमें) = नरकेषु (= नरकोंमें) ॥ पूज्यपाद स्वामीने 'तेषु'का यही अर्थ लिया है। नरक शब्द उमास्वामी दूसरे सूत्रमें 'बिलों'के अर्थमें अर्थात् नरक (= निवासस्थान) के अर्थमें लाये हैं प्रथम रत्नप्रभा भूमिमें ऐसे तीसलाख बिलें वा निवासस्थान हैं। और इस अध्यायके किसी सूत्रमें नरक शब्द नहीं आया है पश्चात् पूज्यपाद स्वामीने 'भूमि'का अर्थ लेलियाहै जैसाकि "तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयःस्थितयोऽभि सम्बन्ध्यन्ते॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेक सागरोपमा" इत्यादि सात वाक्योंसे संस्कृतवृत्तिमें प्रगट है ॥ स्मरण रहे कि प्रथम भूमिमें तीसलाख, दूसरीमें पचीसलाख इत्यादि नरक हैं। तब अर्थ यह हुआ कि तीसलाख नरकोंमें एकसागरकी उत्कृष्ट स्थिति नारकजीवोंकी है! पचीसलाख नरकोंमें नारकीजीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीनसागरकी है इत्यादि। 'तास्वेक' (= तासुएक = तिन भूमियोंमें एकसागर इत्यादि) पाठसे सब क्लिष्टता जाती रहती है और पूज्यपाद स्वामीके अनुकूल सीधासाधा अर्थ निकल आता है कि तिन भूमियोंमें क्रमसे उत्कृष्ट स्थिति एक तीन इत्यादि सागरो की है॥ तासु = तासु भूमिषु ॥ तासु शब्द दूसरे सूत्रमें भी आया है। 'तासु' शब्दकी अनुवृत्तिभी इस सूत्रमे लेसकते हैं परन्तु तेषु (= तासु) स्पष्टताके लिये है।

(ग) सत्त्वानां = जीवोंकी, तीसरे नरकतक असुरकुमारदेव, स्वर्गके देव इत्यादि भी आते हैं॥ इसलिये 'सत्त्वानां'से आशय 'नारकाणांसत्त्वानां' वाक्यसे है अर्थात् नारकी जीवोंकी भावार्थ 'नारकाः' शब्द इस अध्यायके तीसरे सूत्रमें आया है और उसकी अनुवृत्ति चौथे और पांचवें सूत्रमें लीहै। इस सूत्रमें भी षष्ठी विभक्ति बहुवचनके रूपमें ('नारकाः' शब्दकी अनुवृत्ति) आती है। 'नारकाणां' की अनुवृत्तिसे भी बिना 'सत्त्वानां' शब्दके लायेहुये काम चल सकता था परन्तु उमा स्वामीने 'सत्त्वानां' शब्दका प्रयोग इसकारणसे किया है कि सूत्र स्पष्ट होजावे और सत्त्वानां शब्दको देखकर पाठक सरलतासे समझलें कि इसमें 'नारकाणां' की अनुवृत्ति अवश्य आती है 'सत्त्वानां' से केवल काम नहीं चल सकता क्योंकि भ्रम उत्पन्न होता है कि 'जीवोंकी' उत्कृष्ट स्थिति है कि नारकी जीवोंकी (उत्कृष्ट स्थिति है)॥ हमारे कई मित्रोंका विचार है कि यदि 'सत्त्वानां' शब्द न लाते तौभी ज्ञापकरूपसे और उपर्युक्त परिभाषासे पाठक समझ लेते कि नारकियोंकी स्थितिसे प्रयोजन है।

यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यथासंख्यमेकादयः स्थितयोऽभिसम्बन्ध्यन्ते ॥ रत्नप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिरेकसागरोपमा । शर्कराप्रभायां त्रिसागरोपमा । वालुकाप्रभायां सप्त-सागरोपमा । पङ्कप्रभायां दशसागरोपमा । धूमप्रभायां सप्तदशसागरोपमा ।

सूत्रार्थः—तेषु॥ एकसागरोपमा॥ त्रिसागरोपमा॥ । = तिन (नरकों) में एकसागर प्रमाण तीनसागर प्रमाण

सप्तसागरोपमा॥ दशसागरोपमा॥ । सप्तदशसागरोपमा॥ = सात सागर प्रमाण, दश सागर प्रमाण, सत्रह सागर प्रमाण

द्वाविंशतिसागरोपमा॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा॥ = बाईस सागर प्रमाण और तेतीस सागर प्रमाण

नारकाणां॥ सत्त्वानां॥ परा॥ स्थितिः॥ यथाक्रमम्* = नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट आयु यथासंख्य अथवा क्रमानुसार है अर्थात् पहिली रत्नप्रभा भूमिमें एकसागरकी उत्कृष्ट (नारकीजीवों)की आयु है ।

दूसरी शर्कराप्रभा पृथिवीमें तीन सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है तीसरी वालुकाप्रभा भूमिमें सातसागरकी उत्कृष्ट स्थिति है । चौथी पङ्कप्रभा भूमिमें दश सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है, पांचवीं धूमप्रभा पृथिवीमें सत्रह सागरकी उत्कृष्ट आयु है, छठवीं तमः प्रभा भूमिमें बाईस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है और सातवीं महातमः पृथिवी विषैं तेतीस सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है ॥

वृत्त्यनुवादः—यथाक्रमम्*इति-अनुवर्तते = (इस सूत्रमें दूसरे सूत्रसे) 'यथाक्रमं' ऐसा अनुकर्षण है अथवा अनुवृत्ति आती है अर्थात् दूसरे सूत्रसे इस सूत्रमें यथाक्रम शब्द लियागया है

तेषु॥ नरकेषु॥ भूमि-क्रमेण॥ = तिन नरकोंमें (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, इत्यादिक पृथिवीयोंके क्रमसे

यथासंख्यम्*एकादयः॥ स्थितयः॥ = एक आदिक (सागरोपमा) स्थिति यथासंख्य अर्थात् संख्याके अनुसार

अभिसम्बन्ध्यन्ते रत्नप्रभायाम्॥ उत्कृष्टा॥ = लगाईजाती है जोड़ीजाती है (इसलिये) रत्नप्रभा पहिली पृथिवीमें उत्कर्ष

स्थितिः॥ एकसागरोपमा॥ शर्कराप्रभायाम्॥ = आयु एक सागरोपमा है । शर्कराप्रभा (दूसरी भूमि) में (उत्कृष्ट स्थिति)

त्रिसागरोपमा॥ वालुकाप्रभायाम्॥ = तीन सागरोपमा है । वालुकाप्रभा (तीसरी पृथिवी) में (उत्कृष्ट स्थिति)

सप्तसागरोपमा॥ पङ्कप्रभायाम्॥ दशसागरोपमा॥ = सातसागरोपमा है। पंकप्रभा (चौथी भूमि)में (उत्कर्ष आयु) दशसागरोपमा है

धूमप्रभायाम्॥ सप्तदश-सागरोपमा॥ = धूमप्रभा (पांचवीं भूमि) मे (उत्कृष्ट आयु) सत्रह सागरोपम है ।

२३

तमःप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा। महातमःप्रभायां त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा इति॥ परा उत्कृष्टेत्यर्थः॥ सत्त्वानामिति वचनं भूमिनिवृत्त्यर्थम्॥ भूमिषु सत्त्वानामियं स्थितिः। न भूमीनामिति॥

उक्तः सप्तभूमिविस्तीर्णोऽधोलोकः॥ इदानीं तिर्यग्लोको वक्तव्यः। कथं पुनस्तिर्यग्लोकः। यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचयविशेषेणावस्थिता द्वीपसमुद्रास्ततस्तिर्यग्लोक इति॥ के पुनस्तिर्यग्व्यवस्थिता इत्यत आह—

तमःप्रभायां॥ द्वाविंशति-सागरोपमा॥ = तमःप्रभा (छठवीं पृथिवी) में उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागर प्रमाण है॥

महातमःप्रभायां॥ त्रयस्त्रिंशत्-सागरोपमा॥ इति* = महातमःप्रभा (सातवीं भूमि) में उत्कृष्ट आयुः तेतीस सागरप्रमाण है

परा॥ उत्कृष्टा॥ इति*अर्थः॥ सत्त्वानां॥ इति*वचनं॥ = (इस सूत्रमें) परा (शब्द) उत्कृष्ट ऐसे अर्थमें है। सत्त्वानां ऐसा वाक्य

भूमि-निवृत्ति-अर्थम्॥ = भूमिका (स्थितिके साथ सम्बन्ध हो इस) निषेधके लिये है

भूमिषु॥ सत्त्वानां॥ इयम्॥ स्थितिः॥ न भूमीनां॥ इति* = भूमियों विषै जीवोंकी यह आयु है न कि (रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा इत्यादि भूमियोंकी एक तीन इत्यादिक सागरोंकी स्थिति है

सप्त-भूमि-विस्तीर्णः॥ अधस्* = सात (रत्नप्रभा शर्कराप्रभा इत्यादिक) भूमिरूप है विस्तार जिसका ऐसा अधो-

लोकः॥ उक्तः॥ इदानीं* तिर्यग्लोकः वक्तव्यः॥ कथं* पुनः* = लोक कहागया है अब तिर्यग्लोक कहना चाहिये। बहुरि कैसा

तिर्यग्लोकः॥ यतः* स्वयम्भूरमणपर्यंताः॥ = तिर्यग्लोक है अर्थात् तिर्यग्लोक ऐसा नाम कैसे हुआ। क्योंकि स्वयम्भूरमणसमुद्र तक

असंख्येयाः॥ तिर्यक्-प्रचय-विशेषेण॥ अवस्थिताः॥ = असंख्याते तिर्यक् प्रचयरूप विशेषकरि (गोल वृत्ताकारमें फैलेहुए) स्थापित

द्वीप-समुद्राः॥ ततः॥* तिर्यग्लोकः॥ इति* के॥ पुनः* = द्वीप और समुद्र हैं जिससे तिर्यग्लोक ऐसा (नाम) है। बहुरि कौन

तिर्यग्व्यवस्थिताः॥ इति* अतः* आह = तिर्यग् रूप अवस्थित (द्वीप तथा समुद्र) हैं। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

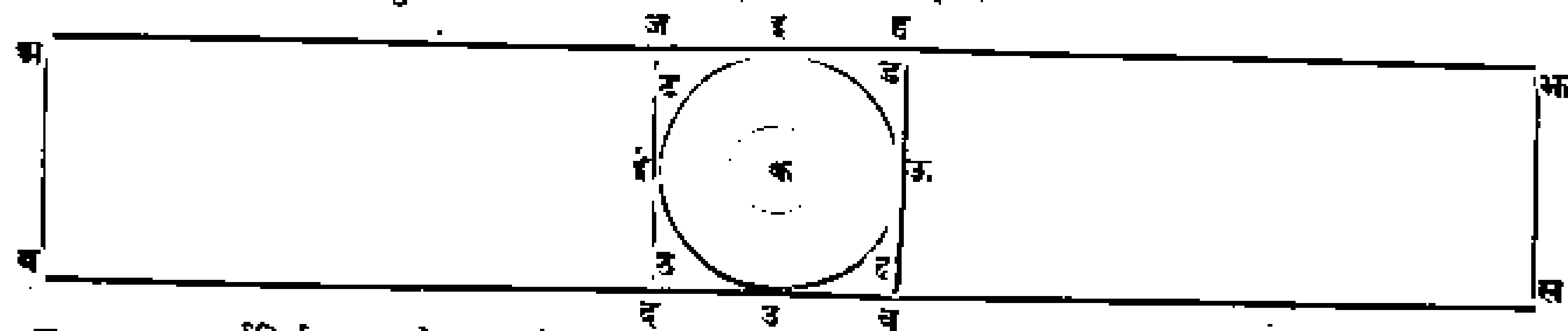
तिर्यग्लोक, मध्यलोक, तिर्यग्लोक मनुष्यलोक किसको कहते हैं? तिर्यग्लोक और मध्यलोकमें क्या अन्तर है? प्रथम परिभाषा दीगई है पश्चात् शास्त्र द्वारा प्रमाण दिया गया है।

(उत्तर) तीनसौतेतालीस घनाकार राजू क्षेत्र को अर्थात् एक राजू लम्बे एक राजू चौड़े एक राजू ऊंचे ऐसे तीनसौतेतालीस भागवाले क्षेत्रको

२३

जिसको घनोदधिवातवलय घनवातवलय और तनुवातवलय घेरे हुए हैं लोक कहते हैं। इसही क्षेत्रको तिर्यंचलोक कहते हैं क्योंकि तिर्यंचलोक वह है जिसमें तिर्यंच रहते हों। अब लोककी त्रसनाड़ीमें जो एकराजू लम्बी है और एकही राजू चौड़ी है और चौदहराजू ऊंची है त्रस और स्थावरोंके रहने का स्थान है और शेष भाग लोकमें तीनसौउनतीस घनाकार राजुओंमें स्थावर रहते हैं स्थावर भी तिर्यंच संज्ञामें अन्तर्गत हैं अतः लोक, सामान्यलोक और तिर्यंचलोक (क्योंकि लोकमें लगभग सब स्थानोंमें तिर्यंच रहते हैं) ये तीनों समानार्थ वाचक कहे जासकते हैं। त्रसनाड़ीमें स्थावर भी हैं तो भी क्योंकि प्रधानता से इसमें त्रस पायेजाते हैं इससे त्रसनाड़ी कहते हैं। "सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागानोक्तः" सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २५२, राजवार्तिक सूत्र २७, वार्तिक ४. ५, और श्लोकवार्तिक सूत्र २१ देखो॥ सर्व लोकमें फैले हुए होनेसे तिर्यंचोंका क्षेत्र विभाग नहीं कहागया है।

पूरब पश्चिम एक राजू चौड़ा और उत्तर दक्षिण ७ राजू लम्बे और मेरुकी जड़से एक लाख चालीस योजन (चूलिका तक) ऊंचे क्षेत्रको मध्यलोक कहते हैं॥ जम्बूद्वीपसे लेकर स्वयम्भूरमण समुद्रतक तिर्यक् प्रचयपगति अर्थात् गोल चूड़ाकार रूपमें फैले हुए असंख्याते द्वीप समुद्रोंको अन्तर्गत करनेवाला क्षेत्र एकराजू है व्यास जिसका सो तिर्यग्लोक (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २०२ के अनुसार द्वितीय संस्करण पृष्ठ ११७के अनुसार,)है॥ ढाई द्वीपके क्षेत्रको मनुष्यलोक कहते हैं॥ उपर्युक्त परिभाषाओं का प्रमाण इस प्रकार है कि



पुनः सामान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्यालापः क्रियते—=पुनः सामान्य-अध:ऊर्ध्व-तिर्यग्-मनुष्यलोकान् पंचसंस्थाप्य-आलापः क्रियते (गोम्मटसार जीव काण्ड सद्वाण समुद्घादे इत्यादि ५४३ गाथा पृष्ठ ६४०) =पुनि सामान्यलोकको, अधोलोकको, ऊर्ध्वलोकको, तिर्यग्लोकको, मनुष्यलोकको, (ये) पांच स्थापनकर सम्भाषण वा कथन कियागया है॥ "समस्त जो लोक सामान्य लोक है। मध्यलोक तैं नीचे सो अधोलोक है। मध्यलोकके उपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक विषैं एकराजू चौड़ा लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौड़ा लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक हैं" गोम्मटसार जीवकाण्ड पृष्ठ ६२५॥ पं० टोडरमलजीके ये शब्द कि "मध्यलोकविषैं"(मध्यलोकमें)तिर्यक्लोक है प्रगट करते हैं कि तिर्यग्लोक छोटीवस्तु है जो मध्यलोकमें है। बस यह वही तिर्यक्लोक है जिसका व्यास एकराजू है। चौड़ा एकराजू परिधिके किसी बिन्दुसे सामनेके ठीक दूसरे बिन्दु तक है और एक लाख योजन मेरुकी जड़से मेरु की ऊंचाई तक है। शिष्यके प्रश्न करनेपर (सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २०२ द्वितीयसंस्करण पृष्ठ ११७) कि "कथं पुनस्तिर्यग्लोकः" उत्तरमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं कि "यतोऽसंख्येयाः स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तिर्यक्प्रचय विशेषेणावस्थिता द्वीप-

समुद्रास्तत: तिर्यग्लोक इति ॥ अर्थात् (जंबूद्वीपसे) स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत गोल वृत्ताकारमें फैले हुए स्थापित असंख्याते द्वीप तथा समुद्र हैं तिससे तिर्यग्लोक ऐसा है ॥ तिर्यंच इस शब्दका अर्थ देव-नारकी-मनुष्योंको छोड़कर अवशेष जीवोंका है और 'तिर्यग्लोक' इस शब्दका अर्थ गोल-वलयाकार-वृत्ताकार ऐसा लिया गया है ॥ पृष्ठ २४ के चित्रमें अ-स को पूरबमें एकराजू माना है अ-ब को पश्चिममें एकराजू माना है। अ-भ को उत्तरमें सात राजू माना है दक्खिनमें सात राजू अ-ल को माना है तो "अबसभ" समस्त चित्र मध्यलोक होगा जिसमें उदयह क्षेत्रभी सम्मिलित है। और उसके कोन ट-ठ-ड-ढ (देखो पृष्ठ २५) जो स्वयम्भूरमण समुद्रके बाहर हैं सम्मिलित हैं ("अंतिम स्वयम्भूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयम्भूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है देखो श्रीमाघनंदिकृत श्रावकाचार तथा जैनसिद्धान्तप्रवेशिका पृ०१३४) परन्तु तिर्यग्लोकमें केवल इईउऊ वृत्त ही सम्मिलित होगा जिसमें "क" जम्बूद्वीप और उसको वलयाकार घेरे हुए लवणोदधि-धातुकीखंड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध आदि असंख्यात द्वीप समुद्र स्वयम्भूरमण समुद्र तक (घेरे हुए) सम्मिलित हैं ॥

कितने ही महाशयोंने मध्यलोक और तिर्यक्लोककी उचाई मेरुकी जड़से एक लाख योजनकी लिखी है कितने ही महाशयों ने एक लाख चालीस सहस्रका उल्लेख किया है। जिन्होंने मेरुपर्वतकी चूलिकाकी उचाई ग्रहण की है उनकी अपेक्षासे एकलाख मय जड़के सुमेरुपर्वतकी उचाई होती है और चालीस सहस्र चूलिकाकी उचाई होजाती है। इसमें कोई बात सन्देह या शंकाकी नहीं उत्पन्न होतीहै ॥ समस्तलोककी उचाई चौदह राजू है ॥ सुमेरुकी जड़से ऊपर सात राजू है मध्यलोककी उचाई निकालनेसे चूलिकासे लोक अंत पर्यंत सात राजूसे कुछ न्यून हो जाता है परन्तु एक राजूकी लम्बाई इतनी अधिक है कि एक लाख चालीस योजन उसके समीप कुछ भी नहीं होते इसलिए सामान्यरूपसे स्वर्गके प्रथम पटलसे उचाई लोक पर्यंत सातराजू ही कही है। मेरुकी जड़से नीचे सातराजू अधोलोक है जिसका क्षेत्रफल १९६ घनरूप राजू है अर्थात् एकराजू लंबे एकराजू चौड़े एकराजू ऊंचे ऐसे १९६राजुओंके टुकड़े हैं॥ मेरुकी जड़से सिद्धालय पर्यंत १४७घनाकार राजू हैं अर्थात् मेरुकी जड़से ब्रह्मब्रह्मोत्तर स्वर्गतक ७३½ घनाकारराजू हैं और ब्रह्मब्रह्मोत्तरसे ऊपर सिद्धालय पर्यंत ७३½ घनाकारराजू और हैं १९६ + ७३½ + ७३½ सर्वयोग ३४३ राजूका हुआ ॥ बहुतसे साधारण भोले भाले महाशय "तिर्यंच लोक" क्या है। कहते हैं मध्यलोक है इसका कारण यह है कि यथार्थमें "तिर्यग्लोक" का अपभ्रंश करते करते तिर्यंच-लोक कहने लगे और तिर्यग्लोकको मध्यलोकके अर्थमें समझने लगे। 'तिर्यग्लोक' जैसा कि हम लिख कर चुके हैं मध्यलोकका भाग है ॥ वास्तविक तिर्यंचलोक वही है जिसका उल्लेख कर चुके हैं ॥ २५

विद्यार्थियोंको विशेषरूपसे मध्यलोकका स्वरूप जानना उचित है अतः इसप्रकार है कि मध्यलोकके अत्यन्त बीचमें एकलाख योजन चौड़ा, गोल (थालीके आकार) जंबूद्वीप है। जंबूद्वीपके बीचमें एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत है। जिसका एक सहस्र योजन भूमिके भीतर मूल है निन्याणवे हजार योजन पृथिवीके ऊपर है। और चालीस योजनकी चूलिका (चोटी) है। जंबूद्वीपके बीचमें पश्चिम पूर्वकी ओर लम्बे छह कुलाचल पर्वत पड़े हुए हैं। जिनसे जंबूद्वीपके सात खंड हो गये हैं। इन सातों खंडोंके नाम इस प्रकार हैं-भरत १, हैमवत २, हरि ३, विदेह ४, रम्यक ५, हैरण्यवत ६, और ऐरावत ७। विदेह क्षेत्रमें मेरुसे उत्तरकी ओर उत्तरकुरु और दक्षिणकी ओर देव कुरु हैं। जंबूद्वीपके चारों ओर खाईकी भांति वेढ़े हुए दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र है। लवण समुद्रको चारों ओरसे वेढ़े हुए चार लाख योजन चौड़ा धातकी खंडद्वीप है। इस धातकी खंड द्वीपमें दो मेरुपर्वत हैं और क्षेत्र कुलाचलादिकी सब रचना जंबूद्वीपसे दूनी है धातकी खंडको चारों ओरसे वेढ़े हुए आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधिसमुद्र है। और कालोदधिको वेढ़े हुये सोलहलाख योजन चौड़ा पुष्करद्वीप है। पुष्करद्वीपके बीचों बीच वलयके आकार चौड़ाई पृथिवीपर एकहजार बाईस योजन, बीचमें सातसौ तेईस योजन, ऊपर चारसौचौबीस योजन, ऊंचा सतरहसौइकईस योजन और पृथिवीके भीतर चारसौसवातीस योजन जिसकी जड़ है ऐसा मानुषोत्तरनामा पर्वत पड़ा हुआ है। जिससे पुष्कर द्वीपके दो खंड हो गये हैं। पुष्करद्वीपके पहिले अर्द्ध भागमें जंबूद्वीपसे दूनी २ अर्थात् धातकी खंडद्वीपके बराबर सब रचना है जंबूद्वीप धातुकी खंड द्वीप और पुष्करार्द्ध द्वीप तथा लवणोदधि समुद्र और कालोदधि समुद्र इतने क्षेत्रको नरलोक कहते हैं। पुष्करद्वीपसे आगे परस्पर एकदूसरेको वेढ़ेहुए दूने२ विस्तारवाले मध्यलोकके(पूर्वपश्चिम)अंतपर्यंत द्वीप और समुद्र हैं पांच मेरु सम्बन्धी पांच भरत, पांच ऐरावत, देवकुरु और उत्तर कुरुको छोड़कर पांच विदेह इसप्रकार सब मिलकर १५ कर्मभूमि हैं। पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत इन दश क्षेत्रोंमें जघन्य भोगभूमि है। पांच हरि और पांच रम्यक इन दशक्षेत्रोंमें मध्यम भोगभूमि है॥ और पांचदेव कुरु और पांच उत्तर कुरु इन दश क्षेत्रोंमें उत्तम भोग भूमि हैं। जहांपर असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प और वाणिज्य इन षट् कर्मोंकी प्रवृत्ति हो उसको कर्मभूमि कहते हैं जहां इनकी प्रवृत्ति न हो उसको भोग भूमि कहते हैं। मनुष्यक्षेत्रसे बाहरके समस्त द्वीपोमें जघन्य भोग भूमिकी सी रचना है। किंतु अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीपके उत्तरार्द्धमें तथा समस्त स्वयंभूरमण समुद्रमें और चारों कोनोंकी पृथिवियोंमें कर्मभूमिकी सी रचना है लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अंतर्द्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है। वहां मनुष्य ही रहते हैं। उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है। यदि इन टिप्पणी पृष्ठ २१, २४, २५, २६ में किसी प्रकारकी भूल हो तो पाठकगण कृपया मुझको सूचित करें।

॥ जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः। लवणोदादयः समुद्राः। यानि लोके शुभानि नामानि तन्नामानस्ते॥ तद्यथा— १ जम्बूद्वीपो द्वीपः। लवणोदः समुद्रः। २ धातकीखण्डो द्वीपः। कालोदः समुद्रः। ३ पुष्करवरो द्वीपः।

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥ ७ ॥

= जम्बूद्वीप–आदयः ११। लवणोद -आदयः ११। शुभ-नामानः ११। द्वीपसमुद्राः ११। ॥ ७ ॥

सूत्रार्थः—जम्बूद्वीप-आदयः११ लवणोद-आदयः११। च* = (इस चित्रा पृथिवीपर) जम्बूद्वीप आदिक तथा लवण समुद्र आदिक

शुभनामानः ११। द्वीप-समुद्राः ११। = उत्तम नामके धारक द्वीप और समुद्र हैं अर्थात् सबके बीचमें जम्बूद्वीप है उस (जम्बूद्वीप) के चारों ओर लवण समुद्र है। उसके चारों ओर धातुकी खंड द्वीप है उसके चारों ओर कालोदधि समुद्र है (आगे आगे जैसेजैसे द्वीपका नाम है वैसे२ समुद्रका नाम है) उस (कालोदधि समुद्र)के चारोंओर पुष्करवर द्वीप है और उसके चारों ओर पुष्करवर समुद्र है उसके पश्चात् चारों ओर वारुणीवर द्वीप है और उस वारुणीवर द्वीपके चारों ओर वेष्ठित वारुणीवर समुद्र है ऐसेही एकदूसरेको वेढ़ेहुए अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं।

जम्बूद्वीप-आदयः११। द्वीपाः११। लवणोद-आदयः११। समुद्राः ११। = जम्बूद्वीप आदिक द्वीप हैं। लवणोदधि आदिक समुद्र हैं

यानि ११।। लोके ७१ शुभानि ११।। नामानि ११।। = जो लोक विषं उत्तम उत्तम (=शुभानि) नाम हैं

तद्-नामानः ११। ते ११। तद्यथा*जम्बूद्वीपः ११। द्वीपः ११। = ते (द्वीप और समुद्र) उन नामोंसे युक्त हैं जैसे जम्बूद्वीप द्वीप है

लवणोदः ११। समुद्रः ११। = लवणोदधि समुद्र है अर्थात् लवण या नोन सारिखा जलके योगसे लवणोद नाम है

धातुकी खण्डः११। द्वीपः११। कालोदः११। समुद्रः११। पुष्करवरद्वीपः ११। = धातुकी खण्ड द्वीप है कालोदधि समुद्र है। पुष्करवर द्वीप है

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "लवणोदादयः" वाक्यके स्थानमें लवणादयः है। शेष पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है अर्थ भी एक है (२) उदस् = जल (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७२) नोन या लूनके स्वादयुक्त जलके योगसे जो समुद्र सो लवणोद है

पुष्करवरः समुद्रः । ४ वारुणीवरो द्वीपः । वारुणीवरः समुद्रः । ५ क्षीरवरो द्वीपः । क्षीरवरः समुद्रः । ६ घृतवरो द्वीपः । घृतवरः समुद्रः । ७ इक्षुवरो द्वीपः । इक्षुवरः समुद्रः । ८ नन्दीश्वरो द्वीपः । नन्दीश्वरवरः समुद्रः । ९ अरुणवरो द्वीपः । अरुणवरः समुद्रः । इत्येवमसंख्येया द्वीप-समुद्राः स्वयम्भूरमणपर्यंता वेदितव्याः । अमीषां विष्कम्भसन्निवेशसंस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥

पुष्करवरः १/१। समुद्रः १/१। वारुणीवरः १/१ द्वीपः १/१।	= पुष्कर वर समुद्र है। वारुणीवर द्वीप है
वारुणीवरः १/१। समुद्रः १/१। क्षीरवरः १/१। द्वीपः १/१।	= वारुणीवर समुद्र है। क्षीरवर द्वीप है
क्षीरवरः १/१। समुद्रः १/१। घृतवरः १/१। द्वीपः १/१।	= क्षीरवर समुद्र है। घृतवर द्वीप है
घृतवरः १/१। समुद्रः १/१ इक्षुवरः १/१। द्वीपः १/१।	= घृतवर समुद्र है। इक्षुवर द्वीप है
इक्षुवरः १/१। समुद्रः १/१। नन्दीश्वरः १/१। द्वीपः १/१।	= इक्षुवर समुद्र है। नन्दीश्वर द्वीप है
नन्दीश्वरवरः १/१। समुद्रः १/१। अरुणवरः १/१। द्वीपः १/१।	= नन्दीश्वर समुद्र है। अरुणवरद्वीप है
अरुणवरः १/१। समुद्रः १/१। इति*एवम्*	= अरुणवर समुद्र है। इसप्रकार निश्चयसे (=एवम्)
असंख्येयाः १/३। द्वीपसमुद्राः १/३। स्वयम्भूरमण-	= असंख्यात द्वीप तथा समुद्र स्वयम्भूरमण (समुद्र)
पर्यंताः १/३। वेदितव्याः १/३। अमीषां ६/३। विष्कम्भ-	= तक जानना चाहिये। इन (द्वीप तथा समुद्रों) की चौड़ाई
सन्निवेश-संस्थान–विशेष–प्रतिपत्ति–अर्थं १/१।। आह	= अवस्थान (=सन्निवेश) और आकार(=संस्थान)के विशेष जाननेकेलिये कहते हैं कि

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतयः=(जम्बूद्वीप लवणोदादयः)द्विःद्विःविष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणः वलय-आकृतयः१/३।

सूत्रार्थः—जम्बूद्वीप–आदयः१/३ लवणोद–आदयः१/३।च	= जम्बूद्वीप, आदिक और लवण समुद्र आदिक (प्रत्येक समुद्र तथा द्वीप एक दूसरेसे)
द्विः द्विः विष्कम्भाः १/३। पूर्वपूर्व-	= दुगने दुगने विष्कुम्भ वाले हैं और पहिले पहिले (द्वीप और समुद्र अग्रिमअग्रिमसे)
परिक्षेपिणः १/३।	= चारों ओरसे घिरे हुए वा लिपटे हुए हैं (बहुरि सबही द्वीप तथा समुद्र)

(१) इस सूत्रका पाठ औरअर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है (२)वलयाकृति = वलयाकार = वृत्ताकार = वलयरूप = वृत्तरूप (लपेटे हुए) ये सब एकार्थक हैं।

द्विर्द्विरिति वीप्सायां वृत्तिवचनं विष्कम्भद्विगुणत्वव्याप्त्यर्थम् ॥ आद्यस्य द्वीपस्य यो विष्कम्भः तद्द्विगुणविष्कम्भो लवणजलधिः । तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो द्वीपः ।

वलय-आकृतयः[१] =वलयाकार अथवा वृत्ताकार हैं अर्थात् लवण समुद्रके एक ओरके व्यासखंड जम्बूद्वीपके व्याससे दुगणे हैं और जम्बूद्वीपको चारों ओरसे वेढेहुए हैं ऐसेही धातुकीखंडके एक ओरके व्यासखंडका प्रमाण लवणसमुद्रके व्याससे दुगना है और सर्वतः लवणसमुद्रको लपेटेहुए हैं ऐसेही कालोदधि पुष्करवर इत्यादि असंख्यातद्वीपसमुद्रोंको स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यंत जानना

[१]द्विः॰द्विः॰इति॰वीप्सायाम्[१] वृत्ति- वचनम्[१]=द्विः द्विः (दुगुण दुगुण) ऐसा बार बारके अर्थमें समासरूपमें द्विः द्विः वाक्य है

विष्कम्भ-द्विगुणत्व- =सो विस्तार अर्थात् व्यास एक ओरके खंडके प्रमाणका (=विष्कम्भ) दूनापनाके फैलानेके

व्याप्ति-अर्थम्[१] आद्यस्य[६] द्वीपस्य[६] यः[१] विष्कम्भः[१] =लिये है प्रथम द्वीपका जो व्यास प्रमाण है

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[१] लवणजलधिः[१] =उससे दुगुण व्यासभागप्रमाण वाला लवण समुद्र है अर्थात् जम्बूद्वीपकी परिधि पर एक बिन्दु लेकर उसीकी सीधमें दूसरा बिन्दु लवण समुद्र की परिधि पर लेकर यदि दोनों बिन्दुओंको मिलाकर सीधी रेखा खींच दें तो इस रेखाकी लम्बाई दो लाख योजनकी होगी

तद्-द्विगुण-विष्कम्भः[१] द्वितीयः[१] द्वीपः[१] =उस (लवनोदधि) से दूने व्यास भागवाला (=विष्कम्भ) दूसरा (धातुकी खंड) द्वीप है

(१) यह बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास तीन प्रकारका है (क) उत्तर पदार्थ प्रधान (ख) उभय पदार्थ प्रधान (ग) अन्यपदार्थ प्रधान यहाँ पर प्रथमभेद उत्तर पदार्थ प्रधान है। जैसे द्विदशाः। द्विर्वारौ दश इति विग्रह दो बार दश जिसमें हो ऐसा विग्रह है जिसका अर्थ बीस है। उभय पदार्थ प्रधान वह है जिसमें दोनों ही पद प्रधान हो जैसे द्वित्राः द्वौ वा त्रयो वा इति विग्रह भावार्थ दो वा तीन। अन्य पदार्थ प्रधान वह है जिसमें अन्य अर्थात् अन्तिम पद प्रधान हो जैसे उपविंशाः उपसमीपम् गता विंशतिर्येषामिति विग्रह = समीपको प्राप्त होगयेहैं बीस जिन्होंके लगभग बीस अर्थ है।

(२) विष्कम्भ:-इसका अर्थ पद्मचन्द्र कोषके पृष्ठ ३६१ में "विस्तार फैलाव" का है विस्तार वा फैलावका अर्थ क्षेत्रफल भी समझा जासके है परन्तु यहाँपर यह आशय नहीं है क्योंकि जम्बूद्वीपसे लवणोदधि का क्षेत्रफल लगभग चौबीस गुणा अधिक होता है यहां पर विष्कम्भ का आशय यह एक ओरका व्यासखंड है जो जम्बूद्वीपकी परिधिपर एक बिन्दु लेकर उसकी सीधमें दूसरा बिन्दु लवणोदधिकी परिधि परसे लेकर दोनों बिन्दुओंको मिलानेसे बनता है ॥ जम्बूद्वीपसे लवणोदधि लगभग चौबीस गुणा है और धातुकी खंड जम्बूद्वीपसे लगभग एकसौ चवालीस गुणा है जैसा कि

तद्द्विगुणविष्कम्भो द्वितीयो जलधिरिति॥द्विर्द्विर्विष्कम्भो येषां ते द्विर्द्विर्विष्कम्भाः॥पूर्वपूर्वपरिक्षेपिवचनं ग्रामनगरादिवद्विनिवेशो मा विज्ञायीति॥वलयाकृतिवचनं चतुरस्रादिसंस्थानान्तरनिवृत्त्यर्थम्॥

३० तद्-द्विगुण-विष्कम्भः १|१ द्वितीयः १|१ जलधिः १|१ इति* =जिस (धातु की खंड द्वीप) से दुगना व्यास खंडका धारक दूसरा समुद्र (कालोदधि) है
द्विः द्विः विष्कम्भः १|१ येषां ६|३ ते द्विः द्विः विष्कम्भाः १|३ =दूना दूना विष्कम्भ है जिनका ते दूने दूने विष्कम्भ वाले हैं
पूर्व-पूर्व- =(इस सूत्रमें) पहिले पहिले (द्वीप तथा समुद्र एक दूसरे को)
परिक्षेपिन्-वचनम् १|१ =चारों ओर से अथवा सर्वतः घेरे हुए इस वाक्य(=वचन) से प्रगट है कि
ग्राम-नगर-आदिवत्*विनिवेशः १|१ मा*विज्ञायि इति* =ग्राम तथा नगरादिकके सदृश अवस्थान (इन द्वीप तथा समुद्रोंको) मत जानो
वलय-आकृति-वचनं १|१ चतुरस्र-आदि-संस्थान- =वृत्ताकार वा वलयाकार वाक्य चौकोर आदिक आकार (=संस्थान) की
अन्तर-निवृत्ति-अर्थम् १|१ =अवधिके निषेधके लिये है

द्यानतराय आगरा निवासीके जिन्होंने धर्मविलासग्रन्थ संवत् १७८०में पूर्ण किया उसके प्रकरण "द्रव्यादि पचीसी"के निम्नलिखित सवैया इकतीसासे प्रगट है। जम्बू एक लाख दो दो दोनों ओर लौनोदधि, सब पांच सूची गुनी पचीस फलाइये। द्वीप एक लौनिकार चौबीस समुद्रधार, जम्बू सौं चौबीस गुणे उदधि बताइये॥ धात खंड चार चार सब सूची तेरह की, गुनौ सौ उनहत्तरि पच्चीस घटाइये। जम्बू सेती एकसौ चवाल गुनौ धात खंड-आगे दधि द्वीप यौं ही जिनवानी गाइये॥ १०॥ एक समुद्र वा द्वीपके सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक की रेखाके प्रमाणको जो कि केन्द्रमें होकर जाती है सूची कहते हैं। इस प्रकार १ लाख जम्बूद्वीप दोनों ओर दो दो लाख लवण समुद्र सब मिलकर पांच लाख इसको इसीसे गुणनेसे पच्चीस हुए इसमें जम्बूद्वीप एक लाख को घटाने पर जम्बूद्वीप से लवण समुद्र चौबीस गुणा भया। इसी प्रकार लवण समुद्र के दोनों ओर चार चार धात की खंड है कुल मिल कर १३ हुए। इसको इसीसे गुणनेसे १६९ हुए इसमें से पच्चीस घटाने से १४४ गुना जम्बूद्वीप से धातकी खंड भया इसी प्रकार सर्वत्र जानना॥

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः—पूर्वोक्त वर्णित "एक ओर का व्यास खंड" की लम्बाई दूनी दूनी एक द्वीप से उसके निकटके समुद्र की है उसके पश्चात्के द्वीप की वैसा ही व्यास खंड उस समुद्रके व्यास खंड से दूना है जैसे जम्बूद्वीप पटल रूप अथवा प्रस्तर रूप वृत्त है और उसका पूर्ण व्यास एक लाख योजन का है लवण समुद्रका एक ओरका व्यासखंड दो लाख योजन लम्बा है॥ इसी प्रकार धातुकी खंड द्वीपका एकओरका व्यास-खंड जो लवणोदधि और धातुकी खंड की परिधियों पर एक सीधमें दो बिन्दुओं के मिलने से बनता है चार लाख योजन है और कालोदधिका एक ओरका व्यासखंड जो धातुकी खंड और कालोदधिकी परिधियों पर एक दूसरे के सीधमें दो बिन्दु लेकर मिलानेसे बनता है आठलाख योजन का है इसी प्रकार अन्तके स्वयम्भूरमणसमुद्र पर्यंत जानना॥ ऐसा अभिप्राय द्विर्द्विर्विष्कम्भः वाक्य का है॥

अत्राह, जम्बूद्वीपस्य प्रदेशसंस्थानविष्कम्भा वक्तव्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भादिविज्ञानस्येत्युच्यते

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥९॥

अत्र*आह, जम्बूद्वीपस्य, प्रदेशसंस्थान-विष्कम्भाः[१] वक्तव्याः =यहाँ प्रश्न है कि जम्बूद्वीपका ठिकाना (=प्रदेश) आकार, व्यासप्रमाण कहना चाहिए

तद्मूलत्वात्[५] =उस (जम्बूद्वीप के) स्थित आदिक होने से अर्थात् निर्णय आदिक होने से

इतर-विष्कम्भादि-विज्ञानस्य[६] इति*उच्यते[१] =दूसरे (द्वीप तथा समुद्र) के विस्तारादिक जाननेको इसप्रकार (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाता है कि

[१]सूत्रम्—तन्मध्ये[२] मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—तद्मध्ये[७] मेरुनाभिः[१] =उन (सर्वद्वीप समुद्रों) के बीचाबीचमें मेरुपर्वत है नाभि जिसकी अथवा मेरु पर्वत जिसकी नाभि (=मध्य) में है ऐसा

[३] वृत्तः[१] =वलयाकार (सूर्य के मंडल सदृश वा कुलाल के चक्र सदृश आकारवान्)

[४] योजन-शतसहस्र-विष्कम्भः[१] [५] जम्बूद्वीपः[१] =एकलक्ष योजन व्यासधारक जम्बूद्वीप है अर्थात् जम्बूद्वीप प्रतर पटल वृत्त है शेष समुद्र और द्वीप स्वयम्भूरमण समुद्र तक वलयाकार चूड़ी, चक्र, अथवा कड़े के आकारवत् हैं सो इस जम्बूद्वीपके प्रत्येक व्यासकी लम्बाई एक लाख योजन है और उस जम्बूद्वीप की परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताइस योजन तीन कोश एक सौ अट्ठाइस चाप साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है (योजन २००० कोशका है)

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायों में इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है ॥ कहीं कहीं पर हमारे यहां जंबूद्वीप भी पाठ ठीक है ॥

(२) मेरुनाभिः-इस वाक्य के दो प्रकार के समास हैं (१) मेरुपर्वत है नाभि जिसकी (२) मेरु पर्वत जिसकी नाभिमें है दोनों रीतिके समासों का यह आशय है कि मेरु जिस (जम्बूद्वीप) के बीच में है ॥

(३) वृत्त = कुलालके चक्र सदृश वृत्त होता है, उसके बीचाबीच में एक बिन्दु कल्पित करें तो उस बिन्दुको केन्द्र कहेंगे ॥ इस वृत्तकी किनारेका चौगिरदा गोल रेखाको परिधि कहतेहैं इस परिधि पर दो बिंदु एकदूसरेके सामने लेकर केन्द्रमें होकर जो रेखा जाती है उसको व्यास वा सूची कहते हैं ॥ (४)यहां योजन दो सहस्र कोशका जानना चाहिये (५) व्यासका अर्थ (क) विस्तार (ख) फैलाव (ग) सूचीके हैं इसलिए यह शब्द विष्कम्भ शब्दके अनुवाद के लिए बहुत योग्य है ॥

तेषां मध्ये तन्मध्ये । केषां ? पूर्वोक्तद्वीपसमुद्राणाम् । नाभिरिव नाभिः । मेरुर्नाभिर्यस्य सः मेरुनाभिः । वृत्तः आदित्यमण्डलोपमानः । शतानां सहस्रम् शतसहस्रम् । योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम् । योजनशतसहस्रं विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजनशतसहस्रविष्कम्भः ॥ कोऽसौ ? जम्बूद्वीपः ॥ कथं जम्बूद्वीपः ? । जम्बूवृक्षोपलक्षितत्वात् ॥ उत्तरकुरूणां मध्ये जम्बूवृक्षोऽनादिनिधनः पृथिवी परिणामो

वृत्त्यनुवादः— तेषां मध्ये तन्मध्ये केषां	=तिन(द्वीप-समुद्रों)के बीचाबीचमें है सो तन्मध्ये है (प्रश्न) किनके (मध्य में) है ॥
पूर्व-उक्त- द्वीपसमुद्राणाम् नाभिः इव नाभिः	=(उत्तर) प्रथम वर्णित द्वीप तथा समुद्रोंके टुण्डी अथवा टूंडीके सदृश है सो नाभि है
मेरुः नाभिः यस्य सः मेरुनाभिः	=मेरु पर्वत है टूंडीके सदृश (जिस जम्बूद्वीप) का सो मेरुनाभि है ॥
(१) वृत्तः आदित्य-मण्डल-उपमानः	=वृत्त सूर्यके विमान (आदित्य) सदृश(उपमान) गोल (=मण्डल) है
(२) शतानां सहस्रं शतसहस्रम् योजनानां शतसहस्रं	=सौ हजार सो शत सहस्र है योजनों के सौ हजार सो
योजन-शत-सहस्रं योजन-शत-सहस्रं विष्कम्भः यस्य	=योजन शतसहस्र है अर्थात् लक्ष योजन है । सौ हजार योजन है विस्तार जिसका
सः अयम् योजन-शत सहस्र विष्कम्भः कः ?	=सो यह योजन शत सहस्र विष्कम्भ है वह (सौ योजन विस्तारवाला) कौन है
असौ जम्बूद्वीपः कथं जम्बूद्वीपः ? जम्बू-	=यह जम्बूद्वीप है जम्बूद्वीप नाम कैसे है ॥ (इस क्षेत्र में) जम्बूनामा
वृक्ष-उपलक्षितत्वात्	=वृक्ष की विद्यमानता के सहारे अथवा संयोगसे (यह जम्बूद्वीप नाम) है
उत्तर-कुरूणां मध्ये	=उत्तर कुरुभोग भूमि के बीच में अर्थात् ईशानकोण में वा पूर्व उत्तरकोण में
जम्बूवृक्षः अनादिनिधनः पृथिवीपरिणामः	=जम्बू वृक्ष आदि अन्त रहित (=अनादिनिधन) पृथिवीकायरूप

(१) यहां पर वृत्त कहना इस नियम के अर्थ है कि लवण से आदि लेकर द्वीप समुद्र वलयाकार वृत्त हैं ॥ और जम्बूद्वीप प्रतर वृत्त हैं ॥

(२) शत, सहस्र, अयुत (=10000) लक्ष, प्रयुत=(दश लक्ष) अर्बुद(=दशकोटि) अब्ज(=अर्व) खर्व, निखर्व(दशखर्व) अन्त्य (दशनील) मध्य(पद्म) परार्ध (दशपद्म) दशपरार्ध (=शंख) ये सब नपुंसक लिंगी हैं ॥ और वन शब्द वत् इनके रूप सर्व विभक्तियों में होते हैं ।

ऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः ॥

तत्र जम्बूद्वीपे षड्भिः कुलपर्वतैर्विभक्तानि सप्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत आह ॥

॥ भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०॥

भरतादयः सञ्ज्ञा अनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्ताः॥ तत्र१ भरतवर्षः क्वसन्निविष्टः? । दक्षिणदिग्भागे

अकृत्रिमः१ स-परिवारः१ =अकृत्रिम परिवार (अर्थात् अपने चारों ओर आधे आधे प्रमाण लिये एक सौ आठ छोटे जम्बूवृक्षों सहित

तद्-उपलक्षितः*अयं१द्वीपः१ =उस (प्रधान वृक्ष)के योगसे (=उपलक्षितः) यह द्वीप है

तत्र*जम्बूद्वीपे७षड्भिः३कुलपर्वतैः३विभक्तानि१॥ =तहां जम्बूद्वीप विषै छह कुलाचलनिकरि (=कुल पर्वतैः) विभाग कियेगये

सप्त१॥क्षेत्राणि१॥कानि१॥तानि१॥इति*अतः*आह=सात क्षेत्र हैं ते कौन हैं इसलिये (उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

=(जम्बूद्वीपे)भरतवर्षः, हैमवतवर्षः, हरिवर्षः, विदेहवर्षः, रम्यकवर्षः, हैरण्यवतवर्षः, ऐरावतवर्षः, क्षेत्राणि भवन्ति॥ १० ॥

सूत्रार्थः—(जम्बूद्वीपे७)भरतवर्षः१हैमवतवर्षः१ =(जम्बूद्वीप विषैं) भारतवर्ष, हैमवतवर्ष,

हरिवर्षः१विदेहवर्षः१रम्यकवर्षः१ =हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष,

हैरण्यवतवर्षः१ऐरावतवर्षः१क्षेत्राणि१॥भवन्ति१ =हैरण्यवतवर्ष, ऐरावतवर्ष(ये सात) क्षेत्र हैं

वृत्त्यनुवादः भरत-आदयः१॥सञ्ज्ञाः१॥अनादिकालप्रवृत्ताः१॥=भरतादिक नाम अनादिकालसे प्रवर्तते हैं

अनिमित्ताः१॥तत्र*भरतवर्षः१ =निमित्तरहित अर्थात् स्वयम् (प्रश्न) तहाँ (जम्बूद्वीपमें) पहिला भारतवर्ष (=भरतवर्ष)

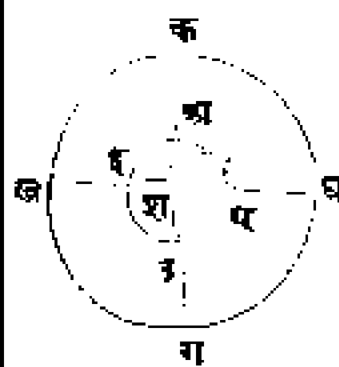
क्व सन्निविष्टः१? दक्षिण-दिग्भागे७ =कहां स्थिति है (उत्तर)जम्बूद्वीपके दक्षिण दिशाके विभागमें

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ और अर्थ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें भरत, हैमवत, इत्यादि के पहिले 'तत्र' शब्द अधिक है जिस 'तत्र' शब्द का अर्थ है "तहाँ" अर्थात् जम्बूद्वीपलवणोदादय इत्यादि" इस सातवां सूत्र से "जम्बूद्वीप" ऐसी अनुवृत्ति इस सूत्रमें लीगई है। दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्रका अर्थ एक है॥

२४ हिमवतोऽद्रेस्त्रयाणां च समुद्राणां मध्ये आरोपितचापाकारो भरतवर्षः। विजयार्द्धेन गङ्गासिन्धुभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः ॥ क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन, महाहिमवन्तं पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये २ हैमवतवर्षः ॥ निषधस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरतः पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले ३ हरिवर्षः ॥ निषधस्योत्तरान्नीलतो दक्षिणतः २४

हिमवतः६/१ अद्रेः६/१ त्रयाणाम्६/३ च* समुद्राणाम्६/३	—हिमवान-पर्वतके (अद्रेः) और (=च) तीन ओर (लवण) समुद्रके
मध्ये७/१ आरोपित-चाप-आकारः१/१ भरतवर्षः१/१	=मध्यमें चढ़ायेहुये धनुषके आकार भारतवर्ष है
विजयार्द्धेन३/१ गङ्गासिन्धुभ्याम्३/२ च* विभक्तः१/१	=वैताढ्यपर्वतसे तथा गंगा और सिंधु नदियों से पृथक् किये हुये (=विभक्तः)
षट्खण्डः१/१ क्षुद्रहिमवन्तं२/१ उत्तरेण३/१	=छह खंड हैं छोटे हिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और)
दक्षिणेन३/१ महाहिमवन्तं२/१ पूर्व-अपर-	=महाहिमवान् कुलाचलकी दक्षिण दिशासे पूर्व पश्चिमके दोनों ओर
समुद्रयोः६/२ मध्ये७/१ २ हैमवत वर्षः१/१	=लवण समुद्रके बीचमें दूसरा हैमवत वर्षधर क्षेत्र है
निषधस्य६/१ दक्षिणतः* महाहिमवतः६/१ उत्तरतः*	=निषध कुलाचलकी दक्षिण दिशासे और महाहिमवान् कुलाचलकी उत्तर दिशासे
पूर्व-अपर-समुद्रयोः६/२ अन्तराले७/१ ३ हरिवर्षः१/१	=पूर्व पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके बीचमें (अन्तराले) तीसरा हरि वर्ष है ॥
निषधस्य६/१ उत्तरात्५/१ नीलतः* दक्षिणतः*	=निषध कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) नील कुलाचलकी दक्षिण दिशासे

जम्बूद्वीप तथा लवण समुद्र आदि द्वीप और समुद्रोंका क्षेत्रफल निम्न लिखित गणितके नियमानुसार निकल आता है ॥



अइउए एक वृत्त है जिसके बीचोबीच श एक बिंदु है इस बिंदुको उक्त वृत्तका केन्द्र कहते हैं अउ रेखा और इए रेखाको व्यास कहते हैं। शअ,शउ,शइ,शए इन प्रत्येक बराबरकी रेखाको त्रिज्या, जीवा, वा व्यासार्ध कहते हैं अइउए गोल रेखाको वृत्तकी परिधि कहते हैं। इस अइउए क्षेत्रको हमने जम्बूद्वीप माना है जिसका व्यास एक लाख योजन लम्बाईमें है और अइउए और कखगघके बीचके क्षेत्रको लवण समुद्र माना है। व्यासार्ध या जीवाके वर्गको २२/७ से गुणा करनेसे जो गुणनफल हो वही क्षेत्र होता है। जैसे जम्बूद्वीपकी जीवा पचास सहस्र योजन लम्बी है $(५००००)^२ \times २२/७ = २५०००००००० \times २२/७ = ५५०००००००००/७ =$ ७८५७१४२८५७ १/७ अर्थात् जम्बूद्वीपका क्षेत्रफल सातअरब पचासीकरोड़ इकहत्तरलाख ब्यालीससहस्र आठसौसत्तावन एकबटा सात वर्गयोजन हुआ ऐसेही कखगघ वृत्तका क्षेत्र फल निकाल कर उसमेंसे जम्बूद्वीपका क्षेत्र घटानेसे लवण समुद्रका क्षेत्रफल निकल आवैगा ॥

पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे ४ विदेहस्य सन्निवेशो द्रष्टव्यः ॥ नीलत उत्तरो रुक्मिणो दक्षिणः पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये ५ रम्यकवर्षः ॥ रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणो दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशो ६ हैरण्यवतवर्षः॥शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणां समुद्राणां मध्ये ७ ऐरावतवर्षः । स विजयार्द्धेन रक्तारक्तोदाभ्यां च विभक्तः षट्खण्डः॥षट्कुलपर्वता इत्युक्तं, के पुनस्ते, कथं वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

पूर्व-[१]अपर-समुद्रयोः[६/२]अन्तरे[७/१] ४ विदेहस्य[६/१]	=पूर्व पश्चिम (लवण) समुद्रके भागोंके मध्यमें चौथा विदेह क्षेत्रकी
सन्निवेशः[१/१]द्रष्टव्यः[१/१],नीलतः*उत्तरः[१/१]	=सम्यक् स्थिति जानना योग्य है अथवा देखने योग्य है ॥ नील कुलाचलसे उत्तर
रुक्मिणः[२][६/१]दक्षिणः[१/१]पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६/२]	=रुक्मी वा रूपीकुलाचलसे दक्षिण (और) पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७/१]५ रम्यक-वर्षः[१/१], रुक्मिणः[५/१]उत्तरात्[५/१]	=बीचमें पांचवां रम्यक वर्ष है ॥ रुक्मि कुलाचलके उत्तर दिशासे और
शिखरिणः[६/१]दक्षिणात्[५/१]पूर्व-अपर-समुद्रयोः[६/२]	=शिखरी कुलाचलके दक्षिण दिशासे पूर्व और पश्चिम दोनों ओरके लवण समुद्रके
मध्ये[७/१]सन्निवेशः[१/१] ६ हैरण्यवतवर्षः[१/१] ।	=अन्तराल स्थितिमें छठवां हैरण्यवत वर्षः है ॥
शिखरिणः[६/१]उत्तरतः*त्रयाणाम्[६/३]समुद्राणां[६/३]	=शिखिरी कुलाचलकी उत्तर दिशासे (और) तीन ओर लवण समुद्रके
मध्ये[७/१] ७ ऐरावतवर्षः[१/१],सः[१/१]विजयार्द्धेन[३/१]	=बीचमें सातवां ऐरावत वर्ष है ॥ वह (ऐरावत क्षेत्र) वैताड्य पर्वतकरि
रक्तारक्तोदाभ्याम्[३/२]च*विभक्तः[१/१]षट्खण्डः[१/१]	=तथा (च) रक्ता रक्तोदा दोनों नदियोंकरि छह खंडरूपमें बटा हुआ है ॥
षट्-कुलपर्वताः[१/३]इति*उक्तं[१/१]॥के[१/३]पुनः*ते[१/३]	=छह कुलाचल पर्वत ऐसा कहा गया है अथवा वर्णित हैं । बहुरि (=पुनः) ते कोन हैं ॥
कथं*वा*व्यवस्थिताः[१/३] इति*अतः*आह	=अथवा किस प्रकार व्यवस्थित हैं । इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) लवण समुद्र वलयाकार सर्वतः जम्बूद्वीपको घेरे हुए एक ही है "समुद्राणाम्" बहुवचन और "समुद्रयोः" द्विवचन इस कारणसे लाये हैं कि "समुद्राणाम्" शब्दसे लवण समुद्रके तीन ओरके भागोंसे आशय है और समुद्रयोः शब्दसे लवणोदधिके पूर्व और पश्चिमकी सीमाओंके भागोंसे अभिप्राय है इसीलिए अनुवादमें भाग शब्द लाए हैं ॥ (२) रुक्मिणः[५/१] अथवा [६/१] दोनों हो सकते हैं पंचमी विभक्तिमें अर्थ रुक्मी कुलाचलसे दक्षिण ऐसा होगा और षष्ठी विभक्तिमें (रुक्मी कुलाचलके) दक्षिण ऐसा अर्थ है ॥

॥ तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवंशीलास्तद्विभाजिनः ॥ पूर्वापरायता इति पूर्वापरकोटिभ्यां लवण-जलधिस्पर्शिन इत्यर्थः ॥ हिमवदादयोऽनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्तसञ्ज्ञाः वर्षविभागहेतुत्वाद्वर्षधर-पर्वता इत्युच्यन्ते ॥ तत्र क्व हिमवान् ? । भरतस्य हैमवतस्य च सीमनि व्यवस्थितः॥ क्षुद्रहिम-वान् योजनशतोच्छ्रायः॥हैमवतस्य हरिवर्षस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्वियोजनशतोच्छ्रायः ॥

सूत्रम्—तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ११

सूत्रार्थः—तद्-विभाजिनः$^{1}_{3}$ पूर्व-	=तिन (भरत, हैमवत, इत्यादिक सात क्षेत्रों) को पृथक् करनेवाले पूर्व
अपर-आयताः$^{1}_{3}$ हिमवत्-महाहिमवत्-निषध-	=पश्चिम लवणोदधितक लम्बे हिमवान्-, महाहिमवान्, निषिध,
नील-रुक्मि-शिखरिणः$^{1}_{3}$ वर्षधरपर्वताः$^{1}_{3}$	=नील, रुक्मि (रुक्मी वा रूपी) शिखिरी (छह)वर्षधर पर्वत, कुलपर्वत वा कुलाचल हैं
वृत्त्यर्थः-तानि$^{2}_{3}$ क्षेत्राणि$^{2}_{3}$ विभजन्ते इति एवं शीलाः$^{1}_{3}$	=तिन (भरत हैमवत इत्यादि) क्षेत्रोंको पृथक् करते हैं ऐसे स्वभाव वा प्रकृति वाले हैं॥
तद्विभाजिनः$^{1}_{3}$ पूर्व-अपर-आयताः$^{1}_{3}$ इति *	=ते तद्विभाजन हैं (वा विभाग करने वाले हैं) (सूत्रमें) पूर्व पश्चिम लम्बे हैं ऐसे
पूर्व-अपर-कोटिभ्याम्$^{3}_{2}$ लवण-जलधि-स्पर्शिनः$^{1}_{3}$	=पूर्व पश्चिमकी अटनीयों करि (=कोटिभ्यां) लवणोदधिको छूने वाले छै कुलाचल हैं॥
इति * अर्थः$^{1}_{1}$ । हिमवत्-आदयः$^{1}_{3}$ अनादिकालप्रवृत्ताः$^{1}_{3}$	=ऐसा अभिप्राय है ॥ हिमवान आदिक (षट्कुलाचल) अनादिकालसे प्रवर्ती
अनिमित्तसञ्ज्ञाः$^{1}_{3}$ वर्षविभागहेतुत्वात्$^{5}_{1}$	=निमित्तरहित नाम वाले वा स्वयं नाम धारक क्षेत्रोंको पृथक् २ करनेके कारणसे
वर्षधर-पर्वताः$^{1}_{3}$ इतिउच्यन्ते,तत्र * क * हिमवान्$^{1}_{1}$?	=वर्षधर पर्वत ऐसे कहे जाय हैं । (प्रश्न) तहां हिमवान् (पर्वत) कहां है ।
भरतस्य$^{6}_{1}$ हैमवतस्य$^{6}_{1}$ च—सीमनि$^{7}_{1}$ व्यवस्थितः$^{1}_{1}$	=(उत्तर) भरत क्षेत्रकी बहुरि हैमवत वर्षकी सीमामें अवस्थित हैं
क्षुद्र-हिमवान्$^{1}_{1}$ योजन-शत-उच्छ्रायः$^{1}_{1}$	=क्षुद्र हिमवान् है (क्षुद्र=छोटा) जिसकी योजन सौ उचाई (=उच्छ्राय) है ॥
हैमवतस्य$^{6}_{1}$ हरिवर्षस्य$^{6}_{1}$ च * विभागकरः$^{1}_{1}$	=हैमवत क्षेत्रका तथा हरिवर्षका विभाग करने वाला
महाहिमवान्$^{1}_{1}$ द्वि-योजन-शत-उच्छ्रायः$^{1}_{1}$	=महाहिमवान् है जिसकी योजन दो सौ की ऊंचाई है ॥

विदेहस्य दक्षिणतो हरिवर्षस्योत्तरतो निषधो नाम पर्वतश्चतुर्योजनशतोच्छ्रायः ॥ उत्तरे त्रयोऽपि पर्वताः स्ववर्षविभाजिनो व्याख्याताः ॥ उच्छ्रायश्च तेषां चत्वारि द्वे एकं च योजनशतं वेदितव्यम् ॥ सर्वेषां पर्वतानामुच्छ्रायस्य चतुर्भागोऽवगाहः॥ तेषां वर्णविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

विदेहस्य दक्षिणतः हरिवर्षस्य उत्तरतः =विदेह क्षेत्रकी दक्षिणदिशासे हरिवर्षक्षेत्रके उत्तरदिशासे
निषधः नाम पर्वतः चतुर्योजन-शत-उच्छ्रायः =निषधनाम पर्वत है जिसकी चारसौ योजन ऊंचाई है ॥
उत्तरे त्रयः अपि पर्वताः स्व-वर्ष — =उत्तरदिशामें तीनोंही (नील, रुक्मि, शिखरी) पर्वत अपने(अपने) क्षेत्रोंके
विभाजिनः व्याख्याताः उच्छ्रायः च तेषां चत्वारि =विभाग करने वाले कहे गये हैं बहुरि तिनकी ऊंचाई चार
द्वे एकं च योजन-शतं वेदितव्यम् =दो तथा एक सौ योजन (क्रमसे) जानना चाहिए अर्थात् नील पर्वतकी चारसौ योजन ऊंचाई है रुक्मि पर्वतकी दोसौ योजन है व शिखरी पर्वतकी सौ योजनहै
सर्वेषां पर्वतानाम् उच्छ्रायस्य चतुर्भागः =समस्त पर्वतोंकी ऊंचाईका चौथाई भाग (क्रमानुसार) पृथिवीमें
अवगाहः प्रविष्ट है वा भूमिमें अवगाह है। (तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वतकी नीवपच्चीस योजनकी है और सौ योजन भूमिके ऊपर है। महाहिमवान् ५० योजन पृथिवीमें प्रविष्ट है २०० योजन धरासे ऊंचाहै। निषध पर्वतकी १०० योजन नीव है। और ४०० योजन धरातलके ऊपर है। इसीप्रकार नील पर्वतकी पृथिवीमें १०० योजन नीव है। ४०० योजन भूमिके ऊपर है रुक्मी पर्वत ५० योजन पृथिवीमें अवगाढ है २०० योजन पृथिवीके है ऊपर और शिखरी पर्वत २५ योजन पृथिवीमें है १०० योजन भूमिसे ऊंचाई है ॥
तेषां वर्ण-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =तिन (षट् कुलाचलों) के, रंगोंके भेद कहनेके लिए (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)**सूत्रम्—हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः। १२।** हेमार्जुन वैडूर्य पाठ भी "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" सूत्रसे शुद्ध है
=(वर्षधर पर्वताः) हेममयः, अर्जुनमयः, तपनीयमयः, वैडूर्यमयः, रजतमयः हेममयः, च (यथाक्रमम्) ॥ १२ ॥

(१)इस बारहवां १२ सूत्रसे "भरतस्य आदि" ३२ वां सूत्रतक २१ सूत्र श्वेताम्बर आम्नायक सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें नहीं है ॥ सभाष्यके पृष्ठ ८३में

सर्वार्थ त एते हिमवदादयः पर्वता हेमादिमया वेदितव्या यथाक्रमम्॥ हेममयो हिमवान् चीनपट्टवर्णः। अर्जुनमयो महाहिमवान् शुक्लवर्णः। तपनीयमयो निषधस्तरुणादित्यवर्णः। वैडूर्यमयो नीलो मयूरग्रीवाभः। रजतमयो रुक्मी शुक्लः। हेममयः शिखरी चीनपट्टवर्णः॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह— सि

३८

सूत्रार्थः — वर्षधरपर्वताः ¦ हेममयः ¦ अर्जुनमयः ¦	=कुलाचल पर्वत स्वर्ण सदृश अर्थात् पीतवर्ण शुभ्रसम अर्थात् श्वेतवर्ण
तपनीयमयः ¦ वैडूर्यमयः ¦	=तप्तसुवर्णसरीखा अर्थात् रक्तवर्ण वैडूर्य मणिवत् अर्थात् नीलवर्ण
रजतमयः ¦ हेममयः ¦ च * यथाक्रमम् ॥	=रूपा वा चांदी सम अर्थात्, शुक्लवर्ण और कंचन सदृश अर्थात् पीतवर्ण क्रमसे हैं ॥ तात्पर्य यह है कि हिमवान् पर्वत पीत वर्ण है महाहिमवान पर्वत श्वेतवर्ण है निषिध पर्वत रक्तवर्ण है, नीलपर्वत नीलवर्ण है, रुक्मि (रुक्मी, रूपी) पर्वत शुक्लवर्ण है। और शिखिरी पर्वत, पीत वर्ण है ॥
वृत्त्यनुवादः—ते ¦ एते ¦ हिमवत्-आदयः ¦ पर्वताः ¦ हेम-आदि-	=ते इतने हिमवान, आदिक पर्वत अर्थात् षट्कुलाचल स्वर्ण आदिक
मयाः ¦ वेदितव्याः ¦ यथाक्रमम् * हेममयः ¦	=सदृश-क्रमानुसार जानना चाहिये। स्वर्ण सरीखा (=मय)
हिमवान् ¦ चीन-पट्ट-वर्णः ¦ अर्जुनमयः ¦	=हिमवान् पर्वत पीला (=चीन) पाट (सम) वर्ण है। शुभ्र सम
महाहिमवान् ¦ शुक्लवर्णः ¦ तपनीयमयः ¦ निषिधः ¦	=महाहिमवान पर्वत श्वेत रंग है। तप्त वा ताये हुए सुवर्ण सदृश निषध पर्वत
तरुण-आदित्य-वर्णः ¦ वैडूर्यमयः ¦ नीलः ¦	=दुपहरी वा मध्याह्नके सूर्य वर्ण अर्थात् रक्त है। वैडूर्यमणि समान नील पर्वत
मयूर-ग्रीवा-आभः ¦ रजतमयः ¦ रुक्मी ¦	=मोरकेकंठसदृश (=आभस्) 'नीला' है। चांदी वा रूपा सरीखा रुक्मि, (रुक्मी, रूपी), पर्वत
शुक्लः ¦ हेममयः ¦ शिखिरी ¦ चीन-पट्ट-वर्णः ¦	=श्वेत है। सुवर्णवत् (शिखिरी) पर्वत पीले पट्ट वर्ण है ॥
पुनर् * अपि * तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह T	=फिर भी तिन (षट्कुलाचलों) का विशेष प्रतिपादनके लिए अग्रिमसूत्रमें कहते हैं कि

यह टिप्पणी दी है कि "इस विषयमें बहुतसे विद्वान् स्वयं और भी अनेक सूत्रोंकी रचना करके उनका व्याख्यान करते हैं। विस्तार न हो, इस लिये आचार्यने संक्षेपसे यह तत्त्व संग्रह किया है, और इसी हेतुसे शास्त्रनिपुणजन विस्तार रूपसे जो सूत्रोंका कथन है वह प्राचीन नहीं है ऐसा कहते हैं। और विस्तार ही इष्ट है तो लक्षग्रन्थकी, परिभाषारूपसे जम्बूद्वीपका विस्तार करें तो भी क्या विस्तार हुआ? अर्थात् कुछ नहीं अथवा विस्तारार्थीको उन आचार्योंके रचित सूत्रोंसे बहुत गुणयुक्त सिद्धान्त क्या निकल आता है? इस हेतु उनका अभिप्राय उपेक्षाके योग्य है ॥

३८

॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥१३ ॥

नानावर्णप्रभादिगुणोपेतैर्मणिभिर्विचित्राणि पार्श्वाणि येषां ते मणिविचित्रपार्श्वाः ॥ अनिष्टस्य संस्थानस्य निवृत्त्यर्थमुपर्यादिवचनंक्रियते ॥ चशब्दो मध्यसमुच्चयार्थः ॥ य एषां मूले विस्तारः स उपरि मध्ये च तुल्यः ॥ तेषां मध्ये लब्धास्पदा ह्रदा उच्यन्ते—

(१)सूत्रम्—मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ॥ १३ ॥

=(वर्षधरपर्वताः)मणिविचित्र-पार्श्वाः उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः॥१३॥

सूत्रार्थः—वर्षधर–पर्वताः 1/3 मणि-विचित्र-	= वर्षधरपर्वत मणियोंकरि विचित्र हैं वा रंग बरंगी हैं ॥
पार्श्वाः 1/3 उपरि* मूले 7/1 च*	= (दोनो दोनों)पार्श्वभाग वा पसवाड़े जिनके (प्रत्येक पर्वत) ऊपर नीचे मध्य में (=च)
तुल्य-विस्ताराः 1/3	= समान (भीत वा भित्ति) चौड़ाई वाले हैं
वृत्त्यनुवादः—नाना-वर्ण-प्रभादि-गुण-उपेतैः 3/3	= अनेक रंग और दीप्ति आदि गुणोंकरि सहित
मणिभिः 3/3 विचित्राणि 1/3 पार्श्वाणि 1/3 येषां 6/3 ते 1/3	= मणियोंकरि विचित्र हैं अथवा रंग बरंगे हैं।(दोनों दोनों)पसवाड़े जिनके ते
मणि-विचित्र-पार्श्वाः 1/3 अनिष्टस्य 6/1	= मणिविचित्र-पार्श्व हैं। अनिच्छित, अथवा अमानित(जो प्रमाण से माना नहीं गया)
संस्थानस्य 6/1 निवृत्ति-अर्थम् 1/1 उपरि-आदि-वचनं	= आकार के (=संस्थानस्य)निराकरण के लिये उपरि आदि वाक्य (सूत्र में)
क्रियते[T] च* शब्दः 1/1 मध्ये-समुच्चय-अर्थः 1/1	= लाया गया है (इस सूत्र में)च शब्द बीचके (चौड़ाउ) के समाहार के लिये है
ये 1/3 एषां 6/3 मूले 7/1 विस्तारः 1/1 सः 1/1 उपरि*च मध्ये 7/1	= वे जिनके जड़ में (नीचे)चौड़ाई है वह(चौड़ाई) ऊपर और (च) बीच में
तुल्यः 1/1	= समान है (अर्थात् ये छ हो हिमवान्, महाहिमवान्, निषिध, नील, रुक्मी, शिखिरी पर्वत नीचे मध्यमें तथा ऊपर समान चौड़े भीत के सदृश हैं)
तेषां 6/3 मध्ये 7/1	= तिन (षट् कुलाचलों) के मध्यमें अर्थात् पूर्व पश्चिम की सीमा के बीचाबीचके भाग में
लब्ध-आस्पदाः 1/3 ह्रदाः 1/3 उच्यन्ते[T]	= जिनने स्थान (=आस्पदाः) लाभ (प्राप्त) कियेहैं ते द्रह(उत्तर सूत्र में) कहेजाते हैं कि

(१)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस सूत्र का हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ और अर्थ है परन्तु तत्त्वार्थ-श्लोकवार्तिकमें "मणिविचित्र पार्श्वाः॥१३॥वां और उपरि मूले च तुल्य विस्तराः॥१४॥ वा सूत्र माना गया है ॥

॥पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि॥१४॥

पद्मः महापद्मः तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीनामुपरि यथाक्रममेते ह्रदा वेदितव्याः ॥ तत्राद्यस्य संस्थानविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रम्—(१)पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केसरि-महापुण्डरीक- =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक, और
पुण्डरीकाः१।३ ह्रदाः१।३ तेषाम्६।३ उपरि*यथाक्रमम्* =पुण्डरीक (ये छह) द्रह उन(छह कुलाचलों)के ऊपर अनुक्रमसे हैं

वृत्त्यानुवादः-पद्मः१।१ महापद्मः१।१ तिगिञ्छः१।१ केसरी१।१ =पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी,
महापुण्डरीकः१।१ पुण्डरीकः१।१ इति* तेषां६।३ हिमवत्- =महापुण्डरीक, पुण्डरीक इसप्रकार तिन हिमवान्
आदीनां६।३ उपरि* यथाक्रमं* एते१।३ ह्रदाः१।३ वेदितव्याः१।३ =आदिक (छह कुलाचलों) के ऊपर क्रमानुसार ये द्रह जानना चाहिये ॥

अर्थात् हिमवान पर्वतपर पद्मसरोवर है महाहिमवान पर्वतपर महापद्म सरोवर है निषधपर्वतपर तिगिंछ ह्रद है नीलपर्वतपर केसरी द्रह है रुक्मिपर्वतपर महापुण्डरीक सरोवर है और शिखिरी पर्वतपरपुण्डरीकद्रह है

तत्र* आद्यस्य६।१ संस्थान-विशेष प्रतिपत्ति-अर्थं२।१ आह१ =तहाँ प्रथम (सरोवर पद्म) के आकार विशेषके कहनेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्ध[२] विष्कम्भो ह्रदः ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—प्रथमः१।१ योजन-सहस्र-आयामः१।१ =पहिला (पूर्व पश्चिम एक)हज़ार योजन लम्बा (और)
तद्-अर्द्ध-विष्कम्भः१।१ ह्रदः१।१ =उससे आधा (अर्थात् पांचसौ योजन उत्तर दक्षिण) चौड़ा सरोवर है

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें ये दोनों सूत्र नहीं हैं (२) हमारे यहां कहीं कहीं पर अर्ध पाठ है कहीं २ पर अर्द्ध पाठ है दोनों पाठ ठीक हैं अर्ध का धकार "अचोरहाभ्याम् द्वे वा" पूर्वोक्त सूत्रसे दोहरा होगया तब अ र् ध् ध ऐसा रूप बना, यह प्रथम ध् 'झलांजशझशि'

प्राक्प्रत्यक् योजनसहस्रायामः उदगवाक् पञ्चयोजनशतविस्तारो वज्रमयतलोविविधमणिकनकविचित्रततटः पद्मनामा ह्रदः ॥ तस्यावगाहप्रकृत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहोऽधःप्रवेशो निम्नता । दशयोजनान्यवगाहोऽस्य दशयोजनावगाहः ॥ तन्मध्ये किम् ?

वृत्त्यर्थःप्राक्^१। प्रत्यक्^१। योजन-सहस्र-आयामः^१। उदक्^१। = पूर्वदिशा(=प्राक् और) पश्चिम दिशा(=प्रत्यक्) हज़ार योजन लम्बा उत्तरदिशा(=उदक्)
अवाक्^१। पञ्चयोजनशत-विस्तारः^१। वज्र-मय-तलः^१। =(तथा) दक्षिण दिशा (=अवाक्) पांचसौ योजन चौड़ा वज्र मय जिसका तल
विविध-मणि-कनक-विचित्रत-तटः^१। = नाना प्रकार के (=विविध) मणियों और सुवर्णकरि जिसका किनारा विचित्रित ऐसा
पद्मनामा^१। ह्रदः^१। तस्य^६। अवगाह-प्रकृति- = पद्मनामा सरोवर है। तिस(पद्मनामाद्रह)की गहराई के स्वरूप(=प्रकृति)के
अर्थम्^१। इदम्^१। उच्यते ¹ = लिये यह(उत्तर सूत्र में)कहा जाता है कि

(१)**सूत्रम्—दशयोजनावगाहः॥ १६ ॥** = (प्रथमो ह्रदः)दश-योजन-अवगाहः ॥ १६॥

सूत्रार्थः—प्रथमः^१। ह्रदः^१। दश-योजन-अवगाहः^१। = पहिला(पद्मनामा)द्रह है जिसकी गहराई दश योजन है॥
वृत्त्यनुवादः—अवगाहः^१। अधः*प्रवेशः^१। निम्नता^१। = अवगाह है सो नीचेको गमन अर्थात् गहराई वा गहरापन है (=निम्नता)
दश-योजनानि^१। अवगाहः^१। अस्य^६। = दशयोजन है गहराई जिसकी सो
दश-योजन-अवगाहः^१। तद्-मध्ये^७। किम्* = दशयोजन अवगाह है तिस(पहिले पद्मद्रह)के बीच में क्या है?

*सूत्र द्वारा द् में पलट गया है॥ यहसूत्र पाणिनिकृत अष्टाध्यायीके अध्याय ८ पाद ४ का ५३वां(सूत्र)है॥ अष्टाध्यायीके प्रारम्भमें १४ सूत्र दिये हैं (देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ २)पूर्वोक्त सूत्र झलां^१ जश्^१ झशि^७ से बना है झल् अक्षरों के स्थान में जश् अक्षर आते हैं यदि झश् अक्षर(परिवर्तनीय अक्षरके) पश्चात् आवें॥ क्योंकि झल् = झ्-भ्- घ्-ढ्- ध्-ज-ब् ग-ड्-द् ख् फ्-छ्-ठ्-थ्-च् ट्-त् क्-प् श्-ष्-स्-ह् इन चौबीस अक्षरोंमें से जो कोई अक्षर हो उसके स्थान मेंजश् (=ज् ब् ग्-ड्-द्)अक्षरों में से अपने अपने वर्ग के अनुसार हो जाते हैं यदि झश् = झ्-भ्-घ्-ढ्-ध् ज्-ब् ग्-ड्-द्)में से कोई अक्षर उसके पश्चात् आवे यहां पर अध्धं अथवा अर्धं (अचोरहाभ्यां द्वेवा) सूत्र से दोनों शुद्ध हैं प्रथम ध् अध्धं का झल् प्रत्याहार के चौबीस अक्षरोंमेंसे एक अक्षर है और उसके पश्चात् झश् प्रत्याहार के दश अक्षरों में से एक ध् अक्षर आया है इसलिये प्रथम ध् (अध्धंका)जश् प्रत्याहार के ज्-ब् ग्-ड्-द् अक्षरों में से द् में जो उसके वर्ग में से है पलट जाता है अद्ध ः अर्द्ध॥

(१) यह सूत्र श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें नहीं है। हमारे यहां इस सूत्र का पाठ और अर्थ एक है॥

॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाणं योजनं, क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकर्णिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् ॥ जलतलात्क्रोशद्वयोच्छ्रायनालं तावद्बहलपत्रप्रचयं पुष्करमवगन्तव्यम् ॥

इतरेषां ह्रदानां पुष्कराणां चायामादिनिर्ज्ञानार्थमाह—

सूत्रम्—तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥१७॥

सूत्रार्थः—तद्-मध्ये[७/१] योजनं[१/१] पुष्करं[१/१] = उस(पद्मनामाद्रह)के बीच में एक योजन(लंबा चौड़ा रत्नमयी)कमल है

वृत्त्यनुवादः—योजन-प्रमाणं-[१/१] योजनं[१/१] क्रोश- = योजन भर माप है सो योजन है। (एक एक)कोशकी(दोनों ओर आमने सामनेके)
आयाम-पत्रत्वात्-क्रोश-द्वय-विष्कम्भ-कर्णिकत्वात् च= लम्बाई पत्तोंकी होनेसे और दो कोशकी चौड़ाईकी कर्णिका अर्थात् (कमलके बीचका) कुंडल होने से

योजन-आयाम-विष्कम्भम्[१/१] = ऐसे एक योजन लंबाई(=आयाम) चौड़ाई(=विष्कम्भ)है अर्थात् कमलके एकओर के कमल के पत्ते की लम्बाई एक कोश और उसके सामने के पत्ते की लंबाई एक कोश और इन दोनों पातोंके बीच के कुंडल(कमल की कर्णिका) की लंबाई चौडाई दो कोश ऐसे चार कोश अथवा एक योजन का व्यास होगा इस प्रकार सर्व आमने सामने के पत्ते और बीच की कर्णिका को मिलाकर एक वृत्ताकार बनता है जिसका प्रत्येक व्यास चार कोश वा एक योजन का होगा। एकयोजन लम्बा, एक ही योजन चौड़ा सूर्यके मंडलके सदृश वलयाकार मतर वृत्तरूप पद्मद्रहके मध्यमें कमल है

जल-तलात्[५/१] कोश-द्वय-उच्छ्रायनालं[१/१] = नीरके तल दो कोशकी ऊंचाईकी(उच्छ्रास) (कमल की)नाल अथवा नली है

तावत्*बहुल-पत्र-प्रचयं[१/१] = इतनी(अर्थात् दो कोश की) मोटाई (के बहुल,बहुल)पत्तोंका समूह(=प्रचय) वाला

पुष्करम्[१/१] अवगन्तव्यम्[१/१] इतरेषां[६/३] ह्रदानां[६/३] = कमल जानना चाहिये अन्य(शेष बचे हुये पांच)सरोवरों की

पुष्कराणां[६/३] च*आयाम-आदि-निर्ज्ञान-अर्थं[१/१] आह= तथा(=च)कमलों की लंबाई आदिक निर्णयके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

*श्वेताम्बर आम्नायकसभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ (देखो इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते, तयोर्द्विगुणा द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्वं व्याप्तिज्ञानार्थम्॥ केन द्विगुणाः? आयामादिना॥ पद्मह्रदस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहो महापद्महृदः। तस्य द्विगुणायामविष्कम्भावगाहस्तिगिञ्छह्रदः। पुष्कराणि च किं? द्विगुणानि द्विगुणानीत्यभिसम्बन्ध्यन्ते ॥

(१)सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणाह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

सूत्रार्थः—तद्-द्विगुण-द्विगुणाः = उन (प्रथमपद्मद्रह और कमल)से दुगने दुगने(लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई में अगले दो महापद्म और तिगिञ्छ)

ह्रदाः पुष्कराणि च* = सरोवर हैं और (दुगने दुगने अग्रिम दो)कमल हैं भावार्थ पद्मनामाद्रहसे दुगुण-महापद्मद्रह है ॥ और महापद्म से दूना तिगिञ्छ सरोवर है इन तीनों द्रहों के बराबर ही उत्तरओरके तीनों पर्वतों के तीनों द्रह हैं तथा ह्रदों के कमलों के बराबर कमल हैं

वृत्त्यनुवादः—सः च* तद् च* ते = बहुरि वह(पद्मद्रह)तथा(=च)वह(=तद्)(पुष्कर)वे दोनों(=ते)(सूत्रमें तद् शब्दकरिगृहणकिये हैं)

तयोः द्विगुणाः द्विगुणाःतद् द्विगुणद्विगुणाः = उन(पद्मद्रह और पुष्कर)का दुगुना दुगुना है सो तद्द्विगुणद्विगुणा(सूत्रमें)

इति*द्वित्वम् व्याप्ति-ज्ञान-अर्थम् = ऐसा द्वित्व अथवा दूना २ पना व्याप्ति बोधक के हैं अर्थात् सूत्र में दो बार द्विगुण द्विगुण ह्रदों और कमलों का विस्तार जनावने के लिये ग्रहण किया है

केन द्विगुणाः आयामआदिना पद्महृदस्य = किस से दो गुना है। लम्बाई आदिक से पद्मद्रह की

द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः महापद्महृदः = दुगुणी लम्बाई(=आयाम)चौडाई(=विष्कम्भ)गहराई (=अवगाह)का महापद्म सरोवर है

तस्य द्विगुण-आयाम-विष्कम्भ-अवगाहः = तिस(महापद्मद्रह)की दूनी लम्बाई चौड़ाई गहराई का

तिगिञ्छहृदः पुष्कराणि च*किम्*द्विगुणानि = तिगिञ्छ द्रह है (प्रश्न)"पुष्कराणि च" ऐसा वाक्य सूत्र में क्यों दुगुने

द्विगुणानि इति* अभिसम्बन्ध्यन्ते T = दुगुने ऐसा(पुष्करों के साथ) लगाया जाय अथवा जोड़ा जाय है अर्थात्

(१) इस सूत्रका हमारे यहां एकसा पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है(इस अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ३७,३८)

तन्निवासिनीनां देवीनां सञ्ज्ञाजीवितपरिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ॥ १९ ॥

तेषु पुष्करेषु कर्णिकामध्यदेशनिवेशिनः शरद्विमलपूर्णचन्द्रद्युतिहराः क्रोशायामा क्रोशार्द्धविष्कम्भा देशोनक्रोशोत्सेधाः प्रासादास्तेषु निवसन्तीत्येवंशीलास्तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीन्हीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मी-

पद्मद्रहके कमलसे दूनी लम्बाई चौड़ाई और मोटाई आदिका महापद्म द्रहका कमल है और महा पद्मद्रहके पुष्करसे दूनी लम्बाई चौड़ाई मोटाई आदिका तिगिञ्छद्रहका कमल है ॥ इन तीनों ह्रदोंके बराबर ही उत्तर ओरके तीनों पर्वतोंके तीनों ह्रद हैं और तीनों ह्रदोंके कमलोंके बराबर कमल हैं ॥

तद्-निवासिनीनां|देवीनां||संज्ञा-जीवित-परिवार-प्रति-पादन-अर्थम्|||आह =तिन (कमलोंमें)निवासकरनेवालीं देवियोंके नाम आयु और परिवार =कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तन्निवासिन्योदेव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयःससामानिकपरिषत्काः १९

सूत्रार्थः-तद्-निवासिन्यः|देव्यः| =तिन(षट् रत्नमयी पुष्करोंके प्रसादों)में(क्रमसे) निवास करनेवाली(छह)देवियां

श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः|पल्योपम-स्थितयः| =श्री,ह्री,धृति,कीर्ति,बुद्धि,लक्ष्मी,(प्रत्येक)पल्योपम आयुकी धारक हैं (और)

स-सामानिक-परिषत्काः| =सामानिक जातिके देव और पारिषद जातिके देवों सहित वर्ते हैं अर्थात् रहती हैं

वृत्त्यनुवादः-तेषु|पुष्करेषु| कर्णिका-मध्यदेश-निवेशिनः| =तिन कमलोंमें कर्णिकाके मध्य भागमें (=देश)स्थिति(निवेशिनः)

शरत्-विमल-पूर्ण-चन्द्र द्युति-हराः| =शरत् ऋतुके अथवा कुंवार कार्तिकके निर्मल पूर्ण शशिकी कान्ति जीतनेवाले

क्रोश-आयामाः|क्रोशअर्द्ध-विष्कम्भाः|देश-ऊन-क्रोश- =(एक) कोशकी लम्बाईके आधे कोशकी चौड़ाईके कुछ हीन कोशकी

उत्सेधाः|प्रसादाः|तेषु|निवसन्ति|इति|एवम् =ऊंचाईके श्रेष्ठगृह तिनमें रहती हैं ॥ इस प्रकार

शीलाः|तद्-निवासिन्यः|श्री-ही-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्मी— =अच्छे स्वभाववाली तिनमें निवास करनेवाली श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि लक्ष्मी हैं

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है। (देखो टिप्पणी पृष्ठ ३७, ३८ पर)

संज्ञिकास्तेषु पद्मादिषु यथाक्रमं वेदितव्याः॥ पल्योपमस्थितय इत्यनेनायुषः प्रमाणमुक्तम् ॥ समाने स्थाने भवाः सामानिकाः। सामानिकाश्च परिषदश्च सामानिकपरिषदः। सह सामानिकपरिषद्भिर्वर्तन्त इतिससामानिकपरिषत्काः ॥ तस्य पद्मस्य परिवारपद्मेषु प्रासादानामुपरि सामानिकाः परिषदश्च वसन्ति ॥ यकाभिः सरिद्भिस्तानि क्षेत्राणि प्रविभक्तानि, ता उच्यन्ते—

संज्ञिकाः¹₃। तेषु⁷₃। पद्मादिषु⁷₃। यथाक्रमं॥वेदितव्याः¹₃। =नाम हैं जिनके तिन पद्मादिक(द्रहों)में क्रमानुसार जानना चाहिये(अर्थात् पद्मद्रह कमलके श्रेष्ठ गृहमें श्री देवी महापद्मद्रह पुष्करके उत्तम गेह (प्रासाद)में ह्री देवी, तिगिंछ सरोवर कमलके प्रासादमें धृति देवी और केसरि द्रह कमलके उत्तम घरमें कीर्ति देवी महापुंडरीक द्रह पुष्करके भवनमें बुद्धि देवी और पुंडरीकद्रह कमलके प्रासादमें लक्ष्मी देवी रहती है ॥

पल्योपम-स्थितयः¹₃।इति॥अनेन³₁। आयुषः⁶₁ = पल्योपम स्थितिवाली इस(वाक्य) करि(=अनेन) आयुकी

प्रमाणम्¹₁।उक्तम्¹₁।समाने⁷₁।स्थाने⁷₁।भवाः¹₃ = मर्यादा वा परिमाण कहा गया है समान स्थानमें होनेवाले अर्थात् ऐश्वर्य में बराबर हो

सामानिकाः¹₃। सामानिकाः¹₃।च परिषदः¹₃।च = सो सामानिक हैं और सामानिका बहुरि परिषदका द्वंद्व समास

सामानिक-परिषदः¹₃।सह॥ सामानिक- = सामानिक परिषद् है सामानिक जाति के देव(अथवा समान ऐश्वर्य वाले देव) तथा

परिषद्भिः³₃।वर्तन्ते = पारिषद् जाति के देवों(अर्थात् सभा में प्रधान वा सभासद) करि सहित वर्ते हैं

इति॥ससामानिक- परिषत्काः¹₃।तस्य⁶₁।पद्मस्य⁶₁। = ऐसे(सूत्र में) ससामानिक परिषत्का(देवियां) हैं ॥ तिस कमल के

परिवार-पद्मेषु⁷₃।प्रसादानाम्⁶₃।उपरि-सामानिकाः¹₃= परिवार कमलों विषैं भवनों के ऊपर सामानिक

परिषदः¹₃।च वसन्ति यकाभिः³₃।सरिद्भिः³₃। = जाति के देव तथा परिषद् जाति के देव बसते हैं जिन नदियों करि

तानि¹₃।क्षेत्राणि¹₃।प्रविभक्तानि¹₃।ताः¹₃।उच्यन्ते = ते(सात) क्षेत्र विभाजित हैं ते(नदियां आगे के सूत्र में)कही जाती हैं कि

---

(१) या स्त्रीलिंग यद् शब्द में क न् (=क) प्रत्यय उसी अर्थ में लगाया है अर्थात् क न् =क) लगभी जाता है अर्थ भी शब्द का नहीं पलटता है ॥

॥ गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगा ॥ २० ॥

सरितो न वाप्यः । ताः किमन्तरा उत समीपाः ? इत्यत आह तन्मध्यगाः । तेषां क्षेत्राणां मध्यं, तन्मध्यं तन्मध्येन वा गच्छन्तीति तन्मध्यगाः ॥ एकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्त्यर्थं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह-

॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥

सूत्रम्–[1]गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

सूत्रार्थः—गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या-हरित्-हरिकान्ता-सीता--	=गंगा, सिंधु, रोहित्-रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता
सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्णकूला-रूप्यकूला-रक्ता-	=सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता
रक्तोदाः[1/3] सरितः[1/3] तद्-मध्यगाः[1/3]	=और रक्तोदा नदियें उन सातों क्षेत्रों) के बीचमें गमनकरनेवालीवा बहनेवालीहैं
वृत्त्यनुवादः—सरितः[1/3] न*वाप्यः[1/3]	=(सूत्रमें सरितः शब्द लानेसे यह अभिप्राय है कि चौदह नदियें हैं नकि बावड़ियें
ताः[1/3] किम्*अन्तरा*उत*समीपाः[1/3] इति*अतः*	=वे (नदियें) क्या अन्तराल-दूर दूर हैं (अन्तरा) वा पास २ (इनक्षेत्रोंके) हैं इसीलिए
आह। तेषां[6/3] क्षेत्राणां[6/3] मध्यं[1/1] तन्मध्यं[1/1] तन्मध्येन[3/1]	=कहते हैं कि तिन क्षेत्रोंके बीच सो तन्मध्य है ॥ (तिन क्षेत्रों)के मध्यमेंसे है
वा*गच्छन्ति। इति* तन्मध्यगाः[1/3] एकत्र*सर्वासां[6/3]	=अथवा गमन करती हैं ऐसी तन्मध्यगा है। एक ठौर सब (नदियों) के
प्रसंग-निवृत्ति-अर्थम्[1/1], दिग्विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1/1] आह।	=संयोगके निषेधके लिये और दिशाके भेद कहनेके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि
सूत्रम्–द्वयोर्द्वयो पूर्वाःपूर्वगाः ॥ २१ ॥	=द्वयोः द्वयोः सरितोः पूर्वाः कथिताः (सूत्रे) पूर्वगाः गच्छन्ति
सूत्रार्थः—द्वयोः[6/2] द्वयोः[6/2] सरितोः[6/2] सूत्रे	=(नदियोंके प्रत्येक युगल युगलमेंसे वा युग्म-युग्म-मेंसे [बीसवां] सूत्रमें
पूर्वाः[1/3] कथिताः[1/3] पूर्वगाः[1/3] गच्छन्ति	=पहिली पहिली वर्णित नदी) पूर्व समुद्रको जातीहैं अर्थात् गंगा, रोहित,

हरित्-सीता नारी-सुवर्णकूला और रक्ता ये सातनदियें पूर्वकी ओर बहकर लवण समुद्रमें मिलती हैं॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ कहीं कहीं पर "सिन्धू" शब्द भी सूत्रमें लाये हैं दोनों ठीक हैं ॥

द्वयोर्द्वयोः सरितोरेकैकं क्षेत्रं विषय इति वाक्यविशेषाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसंगनिवृत्तिः कृता॥ पूर्वाः पूर्वगा इति वचनं दिग्विशेषप्रतिपत्त्यर्थम्॥ तत्र पूर्वा याः सरितस्ताः पूर्वगाः। पूर्वं जलधिं गच्छन्तीति पूर्वगाः॥ किमपेक्षं पूर्वत्वं? सूत्रनिर्देशापेक्षम्॥ यद्येवं गंगासिन्ध्वादयः सप्त पूर्वगा इति प्राप्तम्। नैष दोषः। द्वयोर्द्वयोरित्यभिसम्बन्धात्॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगा इति वेदितव्याः॥ इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्यर्थमाह—

द्वयोः६/२। द्वयोः६/२। सरितोः६/२। एक-एकं१/१। क्षेत्रं१/१। विषयः१/१	=	(सात युगल) नदियोंमें से दोदो एकएक क्षेत्र विषैं (क्रमसे) हैं
इति* वाक्यविशेष-अभिसम्बन्धात्५/१। एकत्र* सर्वासां६/३।	=	ऐसा वचन विशेष जोड़नेसे एक स्थानमें सबके
प्रसंग-निवृत्तिः१/१। कृता१/१। पूर्वाः१/३। पूर्वगाः१/३।	=	संयोगका निराकरण किया जाय है(सूत्रमें) पहिली पहिली गमन करनेवाली
इति* वचनं१/१। दिक्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१।	=	ऐसा वाक्य दिशाके विशेषके कहनेके लिये है॥
तत्र* पूर्वाः१/३। याः१/३। सरितः१/३। ताः१/३। पूर्वगाः१/३।	=	तहां(सूत्रमें) पहिलीपहिली जो नदियां हैं ते पूर्व दिशाको जानेवालीं हैं
पूर्वं-जलधिं२/१। गच्छन्ति इति* पूर्वगाः१/३। पूर्वत्वं१/१।	=	पूर्व समुद्रको गमन करती हैं ऐसीं पूर्वगा(नदियें)है(प्रश्न) पूर्वपन
किम्* अपेक्षं१/१। पूर्वत्वम्१/१। सूत्र-निर्देश-अपेक्षम्१/१।	=	क्या अपेक्षा है अर्थात् किसकी अपेक्षानुसार पहिली है(इस) सूत्रके कथनकी विवक्षा है अर्थात् सूत्रके पाठमें जो पहिले कहीं तिसकी विवक्षा से पहिली हैं ॥
यदि* एवम्*	=	जो ऐसे हैं (अर्थात् जो नदियां सूत्रपाठ में पहिले कथित हैं सो पहिली हैं) तो
गंगा-सिन्धु-आदयः१/३। सप्त१/३। पूर्वगाः१/३। इति* प्राप्तम्१/१।	=	गंगासिन्धु रोहित-रोहितास्या आदि सातपूर्वदिशाको बहनेवाली ऐसा अर्थ प्राप्त हुआ
न* एषः१/१। दोषः१/१।	=	यह दूषण नहीं है अर्थात् सूत्रमें पूर्वा शब्द लानेसे गंगा-सिन्धु-रोहित्-रोहितास्या हरित्-हरिकान्ता-सीता-ये समझी जा सकती हैं ॥
द्वयोः६/२। द्वयोः६/२। इति* सम्बन्धात्५/१।	=	क्योंकि युगल-युगलमेंसे ऐसा(पूर्व शब्दके साथ) जोड़नेसे वा सम्बन्धकरनेसे
द्वयोः६/२। द्वयोः६/२। पूर्वाः१/३। पूर्वगाः१/३। इति* वेदितव्याः१/३।	=	युग्म-युग्ममेंसे पहिली पहिली पूर्व समुद्रको जानेवाली है इसप्रकार जानना चाहिये
इतरेसां६/३। दिक्-विभाग-प्रतिपत्ति-अर्थम्१/१। आह	=	अन्य(नदियों)के दिशा विभक्तिके कहनेके लिये(आचार्य अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

द्वयोर्द्वयोर्या अवशिष्टास्ता अपरगाः प्रत्येतव्याः॥ अपरसमुद्रं गच्छन्तीत्यपरगाः॥ तत्र पद्महृदप्रभवा पूर्वतोरणद्वारनिर्गता गङ्गा॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता सिन्धुः॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहितास्या॥ महापद्महृदप्रभवाऽवाच्यतोरणद्वारनिर्गता रोहित् । उदीच्य तोरणद्वारनिर्गता हरिकान्ता तिगिंछहृद-प्रभवा दक्षिणद्वारनिर्गता हरित् उदीच्य तोरणद्वार निर्गता सीतोदा केशरि हृदप्रभवा अवाच्य

सूत्रम्—(१ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥=शेषाः[1/3]-सरितः तु अपरगाः (भवन्ति)

सूत्रार्थः—शेषाः[1/3] सरितः[1/3] तु* (२)	=और शेष नदियें (सिन्धु रोहितस्या हरिकान्ता सीतोदा नरकान्ता रूपकूला रक्तोदा)
अपरगाः[1/3] (भवन्ति	=पश्चिम दिशाको गमन करनेवाली हैं अर्थात् लवण समुद्रके पश्चिममें बहकर मिलती हैं
द्वयोः[6/2] द्वयोः[6/2] याः ताः[1/3] अपरगाः[1/3] अवशिष्टाः[1/3]	=युगल युगलमेंसे बची हुई जो (सात नदियें) हैं ते पश्चिम दिशाको जानेवाली
प्रत्येतव्याः[1/3] अपर-समुद्रं[2/1] गच्छन्ति इति* अपरगाः[1/3]	=जानना चाहिये पश्चिम समुद्रको जाती हैं ऐसी अपरगा (नदियें) हैं ।
तत्र-पद्महृद-प्रभवा[1/1] पूर्व-तोरण-द्वार-	=तहां पद्मद्रह उत्पत्तिस्थानक पूर्वतोरणद्वारसे
निर्गता[1/1] गङ्गा[1/1], अपर-तोरण-द्वार-निर्गता[1/1]	=निकली हुई गंगानदी है।(उस पद्मद्रहके) पश्चिममें तोरणद्वारसे निकली हुई
सिन्धुः[1/1], उदीच्य-तोरण-द्वार-निर्गता[1/1]	=सिंधु नदी है। [उस पद्मद्रहके] उत्तरके(=उदीच्य)तोरणद्वारसे निकली हुई
रोहितास्या[1/1], महापद्म-हृद-प्रभवा[1/1] अवाच्यतोरण-द्वार-	=रोहितास्या नदी है । महापद्मद्रह उद्भवस्थानके दक्षिण केतोरणद्वारसे
निर्गता[1/1] रोहित्[1/1] । उदीच्य-तोरण-द्वार-	=निकली हुई रोहित् नदी है । [उस महापद्मद्रहके]उत्तरके तोरणद्वारसे
निर्गता[1/1] हरिकान्ता[1/1] तिगिंछहृद-प्रभवा[1/1] दक्षिणद्वार-	=निकली हुई हरिकान्ता नदी है । तिगिंछद्रह उत्पत्तिस्थानके दक्षिणद्वारसे
निर्गता[1/1] हरित्[1/1], उदीच्य-तोरणद्वार-	=निकली हुई हरित् नदी है । [उस तिगिंछ सरोवरके]उत्तरके तोरणद्वारसे
निर्गता[1/1] सीतोदा[1/1], केसरि-हृद-प्रभवा[1/1] अवाच्य-	=निकली हुई सीतोदा नदी है । केसरीद्रह उद्भवस्थानके दक्षिणके

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है ॥
(२) तु शब्दका अर्थ "और पर तु(पद्मकोश पृ० १७३में)" दोनों हैं अत: सूत्रका अर्थ ऐसा भी होता है कि परन्तु अवशेष नदियें पश्चिमको बहनेवाली हैं
(३) अवाच् = दक्षिण और अवाच्य = दक्षिणका ॥ उदीच् = उत्तर और उदीच्य = उत्तरका ॥

तोरणद्वारनिर्गता सीता ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता नरकान्ता ॥ महापुण्डरीकह्रदप्रभवा दक्षिणद्वारनिर्गता नारी ॥ उदीच्यतोरणद्वारनिर्गता रूप्यकूला ॥ पुण्डरीकह्रदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिर्गता सुवर्णकूला ॥ पूर्वतोरणद्वारनिर्गता रक्ता ॥ अपरतोरणद्वारनिर्गता रक्तोदा ॥

तासां परिवारप्रतिपादनार्थमाह—

॥ चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

तोरण-द्वार-निर्गता॥१॥सीता॥१॥	=तोरणद्वारसे निकली हुई सीता है ॥
उदीच्य-तोरणद्वार-निर्गता॥१॥नरकान्ता॥१॥	=(उसकेसरीद्रहके) उत्तरके तोरणद्वारसे निकली हुई नरकान्ता नदी है ॥
महापुण्डरीकह्रद-प्रभवा॥१॥दक्षिण-द्वार-निर्गता॥१॥नारी॥१॥	=महापुण्डरीकद्रह उद्भवस्थानके दक्षिण द्वारसे निकली हुई नारी नदी है
उदीच्य-तोरण-द्वार-निर्गता॥१॥रूप्यकूला॥१॥	= उस महापुंडरीकद्रहके उत्तरके तोरण द्वारसे निकली हुई रूप्यकूला नदी है।
पुण्डरीक-ह्रद-प्रभवा-॥१॥अवाच्यतोरण-द्वार निर्गता॥१॥सुवर्णकूला॥१॥	=पुंडरीकद्रहके दक्षिणके तोरणद्वारसे निकली हुई सुवर्ण कूला नदी है ॥
पूर्व-तोरण-द्वार-निर्गता॥१॥रक्ता॥१॥	=(उस पुंडरीकद्रहके) पूर्व तोरण द्वारसे निकली हुई रक्ता नदी है ॥
अपर-तोरण-द्वार-निर्गता-॥१॥रक्तोदा॥१॥	=(उस पुंडरीकद्रहके) पश्चिमद्वारसे निकली हुई रक्तोदा नदी है
तासां॥६॥परिवार-प्रतिपादन-अर्थम्॥१॥आह	=[इन[नदियों]केकुटुम्बकी नदियोंके जाननेकेलिए[अग्रिमसूत्रमें]कहतेहैं कि

सूत्रम्—(१)चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥

सूत्रार्थः—चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता॥१॥गंगासिन्धु-	=चौदह सहस्र नदियों करि परिवारित गंगा तथा सिंधु
आदयः॥१॥नद्यः॥१॥	=आदिक नदियें हैं अर्थात् गंगामें छोटी२चौदह सहस्र नदियें आकर मिलीहैं

और सिन्धुमें भी छोटी २ चौदह सहस्र नदियें मिली हैं। रोहित् तथा रोहितास्या प्रत्येककी अट्ठाईस २ सहस्र परिवारकी नदियें हैं ॥ इसीप्रकार हरित और हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र हैं ॥ सीता और सीतोदाकी ४६

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥

किमर्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ? नदीग्रहणार्थम् । प्रकृतास्ता अभिसम्बन्ध्यन्ते, नैवं शङ्क्यम् । अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति अपरगाणामेव ग्रहणं स्यात् ।। गङ्गादिग्रहणमेवास्तीति चेत्पूर्वगाणामेव ग्रहणं स्यात् । अतः

भिन्न भिन्न एक एक लाख बारह बारह सहस्र हैं इनसे उत्तरकी तीन नदियोंकी क्रमसे दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान परिवारकी नदियें हैं अर्थात् नारीनरकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र नदियें, सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र तथा रक्ता रक्तोदा की चौदह चौदह सहस्र परिवारि की नदियें हैं ॥

वृत्त्यर्थः—किम्*अर्थम् ६।।।गङ्गा-सिन्धु-आदि-ग्रहणं१।।।क्रियते T= प्रश्न (इससूत्रमें) किसलिये गङ्गासिन्धु आदिकका आदान(ग्रहण) कियागयाहै

नदी-ग्रहण-अर्थम्-१।।।प्रकृताः३।। =(उत्तर) नदियों के ग्रहण के लिये (प्रश्न) अधिकृत अथवा प्रकरणकीहुई

ताः३।।अभि-सम्बन्ध्यन्ते T =ते (नदियें) (अत्यन्तसमीप अर्थात् २२वां सूत्र से) अध्याहारितवाअनुकर्षितहैं

न*एवम्*शंक्यम् १।।। =(अर्थात् २२वां सूत्र से लेकर समभी जासकती हैं)(उत्तर ऐसीशंकानकरनीचाहिये

अनन्तरस्य६।।। =(क्योंकि व्याकरणकी परिभाषानुसार) अत्यंत समीपकी

विधिः१।वा*भवति T प्रतिषेधः१।वा*इति* =विधि होती है अथवा निषेध (होता है) इस प्रकार (यदि पहिले सूत्रमें कथित नदियों के साथ सम्बन्ध इस सूत्र में करलेते तो)

अपरगाणाम् ६।।एव*ग्रहणं१।।।स्यात् T =पश्चिमको बहने वाली नदियोंका ही ग्रहण होता भावार्थ-२२वां सूत्रमें नदियोंका कथन है वहां से नदियों का इस सूत्रके लिये सम्बन्ध करलेतेगंगा सिन्ध्वादि क्यों लाये (उत्तर) यदि पूर्वोक्त सम्बन्ध करलेते तो केवल पश्चिम की बहने वाली नदियें समझी जाती पूर्वकी ओर जाने वाली नदियें छुट जाती इसलिये गंगासिन्धु आदिक से पूर्वगा और अपरगा समस्त दोनों ओरकीनदियें ग्रहणहोगई

गंगादि-ग्रहणं१।।।एव*अस्ति T इति*चेत्* =(प्रश्न)"गंगादिक"का आदानही यदि =चेत् ,ऐसा (है=इति)(अस्ति)तो(उत्तर)

पूर्वगाणां६।।एव*ग्रहणम् १।।।स्यात् T अतः* =पूर्व दिशामें जानेवाली नदियोंका ही ग्रहण होगा ॥ इसलिये

उभयीनां ग्रहणार्थं गङ्गासिन्ध्वादिग्रहणं क्रियते ॥ नदीग्रहणं द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धार्थम् ॥ गंगा चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता । सिन्धुरपि ॥ एवमुत्तरा अपि नद्यः(१) प्रतिक्षेत्रं द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति, आविदेहात्॥तत उत्तरा अर्द्धार्द्धहीनाः ॥ उक्तानां क्षेत्राणां विष्कम्भप्रतिपत्त्यर्थमाह—

भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य

उभयीनां।६।३।ग्रहण-अर्थम्।१।१।(-उभयस्यस्त्रीलिंगम्'उभयी') =दोनों(पूर्व तथा पश्चिम को बहने वाली नदियों)केउपलब्धिके लिये (सूत्रमें)
गंगा-सिंध्वादि-ग्रहणं।१।१।क्रियतेT नदी-ग्रहणं।१।१। =गंगा सिंध्वादिका उपादान किया गया है (सूत्रमें)नदी शब्दका ग्रहण
द्विगुणाः।१।३।द्विगुणाः।१।३।इति*अभिसम्बन्ध-अर्थम्।१।१। =दुगुना दुगुना ऐसे सम्बन्धके लिये है ॥
गङ्गा।१।१।चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता।१।१। =गंगा चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित है
सिन्धुः।१।१।अपि*एवं*उत्तराः।१।३।अपि* =सिन्धु भी (चौदह सहस्र नदियोंकरि परिवारित) है ऐसे अगली भी (परिवारिक)
नद्यः।१।३।प्रति-क्षेत्रं।१।१।द्विगुणाः।१।३।द्विगुणाः।१।३।आ-विदेहात्।५।१।=नदियें प्रत्येक क्षेत्रको दूनी दूनी विदेह पर्यंत (=आ)
भवन्तिT =होती है अर्थात् रोहित् रोहितास्याकी परिवारकी नदियें अट्ठाईस अट्ठाईस सहस्र हैं॥
हरित् तथा हरिकान्ताकी छप्पन छप्पन सहस्र परिवारकी नदियें हैं सीताकी एकलाख बारहसहस्र है ऐसे सीतोदाकीभी इतनीहीहैं
ततः*उत्तराः।१।३।अर्द्ध-अर्द्ध-हीनाः।१।३। =उस(विदेह)से अग्रिम आधी आधी घटती हैं(अर्थात् नारी तथा नरकान्ताकी छप्पन२ हजार परिवारकी नदियें हैं सुवर्णकूला और रूप्यकूलाकी अट्ठाईस २ सहस्र छोटी २ नदियें हैं और रक्ता व रक्तोदाकी चौदह २ सहस्र पारिवारिक नदियें हैं)
उक्तानां।६।३।क्षेत्राणां।६।३।विष्कम्भ-प्रतिपत्ति-अर्थम्।१।१।आहT=कथित क्षेत्रोंकी चौड़ाई जाननेके लिये(आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)भरतःषड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारःषट्चैकोनविंशतिभागायोजनस्य ॥ २४ ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ हमारे यहां इस सूत्रके प्रथम भागके तीन पाठ पाये जाते हैं और द्वितीयके दो "भरत.षड्विंशतिःपञ्चयोजनशत विस्तार:"(देखो ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र पृष्ठ ११)इसमें "षड्विंशतिः" "पञ्चयोजनशतविस्तार:" दो समास है पाठ ठीक नहीं है॥"बहुधा पुस्तकोंमें भरत:षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तार:" है यह पाठ ठीक है क्योंकि संस्कृतकी बोलचालमें ऐसा वाक्य आते हैं ।

षडधिका विंशतिः षड्विंशतिः । षड्विंशतिरधिकानि येषु तानि षड्विंशानि । षड्विंशानिपञ्चयोजनशतानि विस्तारो यस्य षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः ॥ भरतः किमेतावानेव, नेत्याह । षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्यविस्तारोऽस्येत्यभिसम्बध्यते ॥

सूत्रार्थः—भरतः$^{1}_{1}$ षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः$^{1}_{1}$	=भारतवर्ष (दक्षिण उत्तर में) पांचसौ छब्बीस योजन विस्तारवाला वा चौड़ाईरूप
षट्$^{1}_{3}$ च*एक-ऊन-विंशति-भागाः$^{1}_{3}$ योजनस्य$^{6}_{1}$ ॥	=और छह भाग योजनके उन्नीस भागों में से और हैं अर्थात् भारत क्षेत्रकी दक्षिण उत्तरकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ है
वृत्त्यनुवादः—षट्-अधिकाः$^{1}_{3}$ विंशतिः$^{1}_{1}$ षड्विंशतिः$^{1}_{1}$ ॥	=छह ऊपर बीस सो छब्बीस (=षड्विंशतिः) हैं ॥
षड्विंशतिः$^{1}_{1}$ अधिकानि$^{1}_{3}$ येषु$^{7}_{3}$ तानि$^{1}_{3}$ षड्विंशानि$^{1}_{3}$ ॥	=छब्बीस बढ़ती वा अधिक हैं जिनमें ते षड्विंश (=षड्विंशानि) हैं
षड्विंशानि$^{1}_{3}$ पञ्चयोजनशतानि$^{1}_{3}$ विस्तारः$^{1}_{1}$ यस्य$^{6}_{1}$	=छब्बीस और पांचसौ योजन है विस्तार वा चौड़ाई जिसकी
षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः$^{1}_{1}$ भरतः$^{1}_{1}$	=सो पांचसौ छब्बीस योजन चौड़ाईवाला वा विष्कम्भरूप है (प्रश्न) भरतक्षेत्र
किम्*एतावान्$^{1}_{1}$ एव*न*इति*आह। षट्$^{1}_{3}$ च*	=क्या इतनाही है ॥ (उत्तर) ऐसा नहीं है कहते हैं कि और छह भाग
एक-ऊन-विंशतिभागाः$^{1}_{3}$ योजनस्य$^{6}_{1}$ अभिसम्बध्यते	=योजनके उन्नीसभागोंमेंसे मिलायेजाय हैं अथवा जोड़े जाय हैं ॥

"भरतः षड्विंशपञ्चयोजनशतविस्तारः" यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियों में है और मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिकमें है । 'ति' अधिक छुपगया है क्योंकि जो 'वृत्ति' इसके नीचे दी हुई है वह 'विंश' शब्द की है और शब्दशः वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें दीहै'षड्विंशानि'एक शब्द घाटि है और 'यस्य' के स्थान में 'अस्य' है उससे विग्रह में और अर्थ में कोई भेद नहीं होता । हमारी समझ में यही पाठ उमा स्वामी कृत होना चाहिये क्योंकि (१) इस पाठमें "न्" एक अक्षर और इकार का लाभ है । और पूज्यपाद स्वामीकी कृति अनुपलब्ध'गन्धहस्त महाभाष्य'के अतिरिक्त सबसे प्राचीन है उनका जन्म संवत् ३०८ में हुआ था जैसा उल्लेख कर चुके हैं उनने जिस प्रति से पाठ लिया होगा वह बहुत ही प्राचीन प्रति होगी ॥

बहुधा पुस्तकों में "षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य" यह पाठ है तत्त्वार्थवार्तिक में "षट्चैकान्नविंशतिभागा योजनस्य" भी पाठ है अर्थात् दोनों पाठ हैं ॥ ये दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि "एकान्नविंशति (स्त्री०) एकेन न विंशतिः एक न-आदुक् इत्य वा न उन्नीस की संख्या" एक न्यूनबीस (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ८५) में 'एकान्नविंशति' का ऐसा विग्रह और व्युत्पत्ति की है परन्तु स्मरण रहे कि "एकान्न" का अर्थ (जो त्रिलिंगी है) एककालमेवान्न भक्ष्यं यत्र जहां एकबारही भोजन कियाजाता है । इकट्ठा खानेवाला एकभक्तव्रत । एकबार खाने का व्रत ऐसा अर्थ है इस सूत्रके होते हुवे बत्तीसवें सूत्रकि जंबूद्वीपका १९० हिस्सा भरतहै आवश्यकता नहीं ५२६ $\frac{10000}{19}$ = $\frac{100000}{190}$ अथवा इस २५ वां सूत्रको निकाल कर ३२ वां सूत्र इसके स्थानमें करदेतेतो यह बहुतबड़ा सूत्र बचजाता और ५२६$\frac{6}{19}$ यों निकलआतेकि १००००० ÷ १९० = $\frac{10000}{19}$ ५२६$\frac{6}{19}$

सर्वार्थ विस्तारोऽस्येति इतरेषां विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह— सिद्धि

॥ तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

५२ ततो भरतात् द्विगुणो द्विगुणो विस्तारो येषां त इमे तद्द्विगुणद्विगुणविस्ताराः ॥ के ते ? वर्षधर-वर्षाः ॥ किं सर्वे ?

विस्तारः$\frac{१}{१}$ अस्य$\frac{६}{१}$ इति* =ऐसा इस(भरतक्षेत्र) का विस्तार है अर्थात् भरतक्षेत्रका दक्षिण उत्तर विस्तार ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है

इतरेषाम्$\frac{६}{३}$ विष्कम्भ-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं$\frac{१}{१}$ आह =अन्य (क्षेत्रों तथा कुलाचलों) के विस्तारके भेद जनानेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

तद्-द्विगुण-द्विगुण-विस्ताराः$\frac{१}{३}$ =उस (भरत क्षेत्र) से दुगुनी दुगुनी (दक्षिणमें) चौड़ाई वाले

वर्षधर-वर्षाः$\frac{१}{३}$ विदेह-अन्ताः$\frac{१}{३}$ =क्षेत्र तथा पर्वत विदेह क्षेत्र पर्यंत हैं अर्थात् भरतक्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ हिमवत् कुलाचल एक सहस्र बावन योजन बारहकला ($\frac{१२}{१९}$) है। हैमवत क्षेत्र दो सहस्र एकसौ पांच योजन और पांचकला हैं। महा हिमवान कुलाचल चार सहस्र दोसोदश योजन दशकला है। हरिक्षेत्र आठ सहस्र चारसौ इक्कीस योजन एक कला है ८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन है। निषध कुलाचल सोलह सहस्र आठसौ बयालीस योजन दो कला है १६८४२$\frac{२}{१९}$ है, विदेहक्षेत्र तेतीस सहस्र छसौ चौरासी योजन चारकला है (३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन)

ततः*भरतात्$\frac{५}{१}$ द्विगुणः$\frac{१}{१}$ द्विगुणः$\frac{१}{१}$ =तिस भरतक्षेत्र से दुगुनी दुगुनी है (दक्षिण उत्तर में)

विस्तारः$\frac{१}{१}$ येषां$\frac{६}{३}$ ते$\frac{१}{३}$ इमे$\frac{१}{३}$ तद्द्विगुण-द्विगुण- =चौड़ाई जिनकी ते ये (सूत्रमें) तद्द्विगुण-द्विगुण

विस्ताराः$\frac{१}{३}$ के$\frac{१}{३}$ ते$\frac{१}{३}$ =विस्तार वाले हैं (अर्थात् भरत क्षेत्र से दूने २ चौड़ाई वाले हैं (प्रश्न) ते कौन है ? ५२

वर्षधर-पर्वताः$\frac{१}{३}$ किं*सर्वे$\frac{१}{३}$ =(उत्तर)पर्वत और क्षेत्र हैं। क्या सब(शेषके पर्वत और क्षेत्र भारतवर्षसे दूने२ चौड़ाईमें)हैं ॥

सर्वार्थ सिद्धि

नेत्याह, विदेहान्ता इति ॥ अथोत्तरेषां कथमित्यत आह—

॥ उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

न*इति*आह।विदेह-अन्ताः॥इति* =ऐसा नहीं है-कहते हैं कि (आठ) विदेह क्षेत्रतक (भारतवर्षसे पर्वत और क्षेत्र एक दूसरे से उत्तरोत्तर दुगने दुगने) हैं अर्थात् भरत क्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन चौड़ा है (१) हिमवान् कुलाचल=१०५२$\frac{१२}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ (२) हैमवत् क्षेत्र=२१०५$\frac{५}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ (३) महाहिमवान् कुलाचल=४२१०$\frac{१०}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ (४) हरिक्षेत्र=८४२१$\frac{१}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ (५) निषध-कुलाचल=१६८४२$\frac{२}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥ (६) विदेहक्षेत्र=३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन चौड़ा है ॥

अथ*उत्तरेषां॥कथं*इति*अतः*आह। =अब (विदेहक्षेत्र से) उत्तर दिशाओं का (विस्तार) कैसे है इसलिये (अगला सूत्र में)कहतेहैं कि

(१)सूत्रम्— उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

५४ इस सूत्र में यदि २५वां सूत्रसे "वर्षधर वर्षा" और "विदेह" वाक्योंका अनुकर्षण करें तो पाठ और अर्थ निम्नलिखित (१)के अनुकूल होता है और यदि केवल "विदेह" शब्दकी अनुवृत्ति लें तो पाठ और अर्थ (२) के अनुसार होता है पिछला अर्थ पूज्यपाद स्वामीकी सर्वार्थसिद्धिवृत्ति के अनुसार है और पहिला अर्थ बहुत विस्तृत भी है जैसा कि दोनों भांति के अर्थ जो नीचे लिखे जाते हैं उनसे प्रगट है ॥ ५४

(१) वर्षधरवर्षा विदेहोत्तरा दक्षिणतुल्याः ।

वर्षधरवर्षाः॥विदेह-उत्तरा*दक्षिण- =पर्वत और क्षेत्र विदेह से उत्तर दिशा के दक्षिण दिशाके (पर्वत और क्षेत्रों के)
तुल्याः॥ =समान हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रसे उत्तरदिशाके तीन नील रुक्मी और शिखरी पर्वत और तीन रम्यक, हैरण्य और ऐरावत क्षेत्र विदेहसे दक्षिणदिशाके तीन निषिध, महा-हेमवत् हेमवत् पर्वत और तीन हरिहैमवत् भरतक्षेत्रोंके बराबर विस्तारवाले हैं।

(१) हमारे यहां इस सूत्र का पाठ यह है। उत्तरा दक्षिणतुल्यः कहींकहीं पर पाठ है वह अशुद्ध है। श्वेताम्बर आम्नायमें इसको सूत्र नहीं माना है।

उत्तरा ऐरावतादयो नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणैस्तुल्या द्रष्टव्याः । अतीतस्य सर्वस्यायं विशेषो वेदितव्यः ।

पहले पचीसवां सूत्रमें दक्षिणके पर्वत तथा क्षेत्रोंका पृथक् पृथक् विस्तार कहा है सो ही उत्तरके पर्वत तथा क्षेत्रोंका समझना चाहिये ॥

(२) विदेह--उत्तरा दक्षिण–तुल्याः ॥

विदेह--उत्तरा*	=विदेहक्षेत्रसे उत्तरदिशाके (३ पर्वत, ३ क्षेत्र ३ द्रह ३कमल छह नदियें और पारिवारिक नदियें आदि)
दक्षिण–	=दक्षिण दिशाके (३ पर्वत ३ क्षेत्र ३ द्रह ३ पुष्कर छः नदियें और पारिवारिक नदियें आदिके)
तुल्याः१/३।	=समान हैं अर्थात् बराबर विस्तारवाले और बराबर गणना वाले हैं ॥

चतुर्दश नदियोंमेंसे सीतानदी केसरी द्रहसे निकलकर पूर्वी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणसमुद्रमें पूर्वकी ओर जाकर मिलतीहै और सीतोदा नदी तिगिंछद्रहसे निकलकर पश्चिमी विदेहोंके विभाग करती हुई लवणोदधिमें पश्चिमकी ओर जाकर मिलती है ॥ पर्वत, क्षेत्र, द्रहों, पुष्करों आदिका विस्तार और गणना प्रथम कह चुके हैं वही जानना ॥

वृत्त्यनुवादः–उत्तरा*ऐरावत–आदयः१/३।	=(विदेह क्षेत्रसे) उत्तरदिशाके ऐरावत आदि (३पर्वत,३क्षेत्र,३द्रह, ३ पुष्कर, छः नदियें और इनकी परिवारकी नदियें आदि)
नील–अन्ताः१/३।भरतादिभिः३/३।	=नीलकुलाचल तक भरतादिक(तीन क्षेत्र, तीन कुलाचल, तीन द्रह, तीन कमल, छः नदियों और इन नदियोंकी परिवारकी नदियें आदि)
दक्षिणैः३/३।तुल्याः१/३।द्रष्टव्याः१/३।अतीतस्य६/१।	=दक्षिण दिशासे समान जानना चाहिये ॥ अतीत अर्थात् प्रथम वर्णित
सर्वस्य६/१।अयम्१/१।विशेषः१/१।वेदितव्यः१/१।	=सब(वस्तुओं)केयह विशेष(कि उत्तर दिशाके पर्वतादिक दक्षिण दिशाके तुल्यहैं) जानना चाहिये

(१) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ७१में 'उत्तरा' शब्दका अर्थ क्रमशः ऐसे है "(स्त्री०)प्रेतकी पितृत्वप्राप्ति होनेपर सपिण्डीकरणके अनन्तर जो पितृसम्बन्धी क्रिया की जाती है, सपिण्डीकरणके पीछेकी श्राद्धक्रियायें । उत्तर दिशा, काल, देश(अव्य०)" इसलिये अनुवादमें उत्तर दिशाके अर्थमें अव्यय माना है ॥

तेन ह्रदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ॥ अत्राह, उक्तेषु भरतादिषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवादिः। आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्॥२७॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिह्रासौ । काभ्यां ? षट्समयाभ्याम् । कयोः ? भरतैरावतयोः ।

तेन३।	=तिस (विशेष अर्थात् उत्तरा दक्षिण तुल्या) करि
ह्रद-पुष्कर-	=द्रह,कमल (पर्वत, क्षेत्र, नदियें, परिवारकी नदियें)
आदीनाम्६।तुल्यता१।।योज्या१।। । अत्र*आह T	=आदिकोंकी समानता लगाई जाय है । यहाँ (शिष्य) पूछता है कि
उक्तेषु७।।।भरतादिषु७।।।क्षेत्रेषु७।।।मनुष्याणां६।।।किं*	=कथित भरतादिक क्षेत्रोंमें मनुष्योंका क्या
तुल्य-अनुभव-आदिः१।आहोस्वित्*कश्चित्*	=तुल्य अनुभव आदिक हैं अथवा कुछ
अस्ति T प्रतिविशेषः१।इति*अत्र*उच्यते T	=भिन्नता (=प्रतिविशेष है) इसलिये (=इति) यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि ॥

सूत्रम्—(१)भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्(२)॥ २७ ॥

सूत्रार्थः—भरत-ऐरावतयोः७।।	=भारतवर्ष और ऐरावतवर्षमें
	(निवास करनेवाले मनुष्य और तिर्यंचोंकी आयु, काय, अनुभव,संपदा,वीर्य,बुद्ध्यादिका)
वृद्धि-ह्रासौ१।उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीभ्याम्३।।	=बढ़ना घटना उत्सर्पिणीरूप अवसर्पिणीरूप
षट्-समयाभ्याम्३।।	=छै छै कालोंके हेतुसे (यथासंख्य) होता है ॥
वृत्त्यनुवादः।वृद्धिः१।।चह्रासः१।चवृद्धि-ह्रासौ१।काभ्यां३।।=	और बढ़ना तथा घटना है सो वृद्धि ह्रासौ है (प्रश्न) किन दो हेतुसे बढ़ना घटना है ।
षट्-समयाभ्याम्३।	=(उत्तर—उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीके)युगल छः कालोसे(बढ़ना तथा घटना)है ॥
कयोः६।भरत-ऐरावतयोः६।	=(प्रश्न)किन दोका [बढ़ना घटना है] (उत्तर)भारत ऐरावतका ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें यह सूत्र नहीं है ॥ इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी देखो ॥
(२) सर्पिणीभ्याम्के स्थानमेंजहां(सर्पिणीभ्यां)वाक्य है वह एक प्रकारसे अशुद्ध है(देखो टिप्पणी अध्याय प्रथमपृष्ठ५,६)शेष पाठ हमारे यहां एकहै॥

न तयोः क्षेत्रयोर्वृद्धिह्रासौ स्तः। असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिह्रासौ भवतः॥ अथवा अधिकरणनिर्देशः भरते ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिह्रासाविति ॥ किंकृतौ वृद्धिह्रासौ? अनुभवायुःप्रमाणादिकृतौ ॥ अनुभवः उपभोगः, आयुः

न*तयोः[६]।।क्षेत्रयोः[६]।।वृद्धिह्रासौ[१]।स्तः। =न उन (भरत, ऐरावत) के क्षेत्रफल अथवा विस्तार की बढ़ती घटती है ।।
असम्भवात्[५]।तत्- =क्योंकि (विस्तारका बढना घटना) असम्भव है। तिन (भरत ऐरावत) में
स्थानाम्[६]।मनुष्याणां[६]।वृद्धि-ह्रासौ[१]।भवतः।अथवा =रहनेवाले मनुष्योंकी बढ़ती घटती होती है ।। अथवा (षष्ठी निर्देश छोड़कर)
अधिकरणनिर्देशः[१]।भरते[७]।ऐरावते[७]।च* =सप्तमी विभक्तिके निरूपनमें भरतमें तथा ऐरावतमें (रहने वाले)
मनुष्याणां[६]।वृद्धि-ह्रासौ[१]।इति* =मनुष्योंकी बढती घटती है ऐसा है "भावार्थ ऐसा है कि" सूत्र में "भरतैरावतयोः" यह वाक्य षष्ठी वा सप्तमी विभक्ति में एक ही रूप धारण करता है इस वाक्य के साथ वृद्धिह्रासौ वाक्य के जोड़देने से षष्ठी में यह अर्थ होता है कि भरत तथा ऐरावत की वृद्धि और ह्रास अर्थात् एक प्रकारसे ऐसा आशय समझा जासका है कि भरत और ऐरावत के विस्तारकी बढ़ती तथा घटती उत्सर्पिणीकाल तथा अवसर्पिणीकालमें होती है इस पूर्वोक्त संदेहको दूर करनेके लिये आचार्य "भरतैरावतयोः" वाक्यको सप्तमीमें लेकर ऐसा कथन करते हैं कि भरत तथा ऐरावतमें (निवास करने वाले मनुष्यों की) बढ़ती और घटती होती हैं न कि भारतवर्ष तथा ऐरावतवर्षके विस्तार अथवा क्षेत्रफलकी बढती तथा घटती होती है ॥
किम्*कृतौ[१]।वृद्धि-ह्रासौ[१]। =(प्रश्न) वृद्धि-ह्रास कौन कृत वा जनित हैं। अर्थात् बढना घटना किसके किये हुये हैं
अनुभव-आयुस्-प्रमाण-आदि-कृतौ[१]। =(उत्तर) अनुभव जीवनकालका परिमाण आदिकी की हुई (बढ़ती घटती) हैं
अनुभवः[१]।उपभोगः[१]।आयुः[१]।। =अनुभव अर्थात् उपभोग वा विषयों का सुखास्वादन आयु अर्थात्

(१) यह 'आयुः' शब्द अमरकोश वर्ग १८ श्लोक १२० में "आयुस्" इस रूपमें नपुंसक लिंगमें पाया जाता है इसकी प्रथमा विभक्ति एकवचन "आयुः" नपुंसक लिंगमें पयस् शब्द के सदृश बनेगी ॥

जीवितपरिमाणं, शरीरोत्सेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिह्रासौ मनुष्याणां भवतः ॥ किंहेतुकौ पुनस्तौ ? कालहेतुकौ ॥ स च कालो द्विविधः । उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति ॥ तद्भेदाः षट् ॥ अन्वर्थसञ्ज्ञे चैते ॥ अनुभवादिभिरुत्सर्पणशीला उत्सर्पिणी । तैरेवावसर्पणशीला अवसर्पिणी ॥ तत्रावसर्पिणी षड्विधा—सुषमसुषमा । सुषमा । सुषमदुष्षमा । दुष्षमसुषमा । दुष्षमा । अतिदुष्षमा । उत्सर्पिण्यपि अतिदुष्षमाद्या सुषमसुषमान्ता

जीवितपरिमाणं१/१ शरीर-उत्सेधः१/१	=जीवनकालका परिमाण (और) शरीरकी ऊंचाई
इत्येवम्*आदिभिः३/३ वृद्धिह्रासौ१/२ मनुष्याणां६/३ भवतः	=इत्यादिक करिही (=इत्येवमादिभिः) उन्नती और घटती मनुष्योंकी होती है ॥
पुनः*तौ१/२ किम्*हेतुकौ१/२ ?	=(प्रश्न) बहुरि वे (वृद्धिह्रास) कौन निमित्तक अथवा जनित हैं ।
काल-हेतुकौ१/२ सः१/१ च*कालः१/१	=(उत्तर) समयकारणक हैं अर्थात् समृद्धि और क्षतिका हेतुकाल है । वहऔर[=च]काल
द्विविधः१/१ उत्सर्पिणी१/१ अवसर्पिणी१/१ च*इति*।	=दो प्रकार है । उत्सर्पिणी और (=च) अवसर्पिणी ऐसे हैं ।
तद्-भेदाः१/३ प्रत्येकं१/१ षट्१/३	=उन (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी) के भेद पृथक् पृथक् (प्रत्येक) छह हैं
अन्वर्थ-सञ्ज्ञे१/२ च*एते१/२ ।	=बहुरि(=च)ये(उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी)जैसा अर्थ वैसा (=अन्वर्थ) नामधारक हैं
अनुभव-आदिभिः३/३ उत्सर्पण-शीला१/१	=(पूर्वोक्त) अनुभव आदिक सहित आगेबढनेका (=उत्सर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् वृद्धि करनेकी है प्रकृति जिसकी सो
उत्सर्पिणी१/१ तैः३/३ एव*अवसर्पण-शीला१/१	=उत्सर्पिणी है तिन (अनुभव, आदि) से ही (=एव) पीछेहटनेका (=अवसर्पण) है स्वभाव जिसका अर्थात् ह्रास करने की है प्रकृति जिसकी सो
अवसर्पिणी१/१ तत्रअवसर्पिणी१/१ षड्विधा१/१ सुषमसुषमा१/१	=अवसर्पिणी है तहां अवसर्पिणी छह प्रकार है सुखमसुखमा
सुषमा१/१ सुषमदुष्षमा१/१ दुष्षमसुषमा१/१	=सुखमा, सुखमदुःखमा, दुःखमसुखमा
दुष्षमा१/१ अतिदुष्षमा१/१ । उत्सर्पिणी१/१ अपि*	=दुःखमा अतिदुःखमा उत्सर्पिणी [काल] भी है
अतिदुष्षमा१/१ आद्या१/१ सुषमसुषमा१/१ अन्ता१/१	=जिसका अति दुःखमा(काल)पहिलाहै और सुखमसुखमा(काल)सबसेपिछला(अन्ता) है

षड्विधैव भवति ॥ अवसर्पिण्याः परिमाणं दशसागरकोटीकोट्यः । उत्सर्पिण्या अपि तावतेव ॥ याऽसौ उभयी (सोभयी) कल्प इत्याख्यायते ॥ तत्र सुषमसुषमा चतस्रः सागरोपमकोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या उत्तरकुरुमनुष्यतुल्याः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमा भवति तिस्रः सागरोपम-कोटीकोट्यः । तदादौ मनुष्या हरिवर्षमनुष्यसमाः

षड्विधा¹॥एव*भवतिT =छह प्रकारकी ही होती है अर्थात् अतिदुःखमा, दुःखमा, दुःखमासुखमा, सुखमा दुःखमा, सुखमा, सुखमासुखमा ऐसे छह काल हैं ॥

अवसर्पिण्याः⁶॥परिमाणं¹॥दशसागरकोटीकोट्यः¹॥ =अवसर्पिणीकालकी मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागर अथवा १०००००००० गुणित १००००००००=१०००००००००००००००० है अर्थात् एक पद्म सागर है ॥

उत्सर्पिण्याः⁶॥अपि*तावत्*एव* =उत्सर्पिणी (काल) का भी तितना ही (एक पद्मसागर मर्यादा) है ॥

या¹॥असौ¹॥उभयी¹॥(सा¹॥-उभयी¹॥) कल्पः¹॥ =जो (=या) वह (=असौ) दोनों (उभयी¹॥) कल्प काल हैं ॥

इति*आख्यायतेTतत्र*सुषमसुषमा¹॥चतस्रः¹॥ =ऐसा कहा गया है । तहां सुखमसुखमा चार

सागरोपमकोटीकोट्यः¹॥ =कोड़ा कोड़ीसागर प्रमाण अर्थात् ४०००००००×१००००००००= ४०००००००००००००००० चालीस लाख नील सागर का है ॥

तद्-आदौ⁷॥मनुष्याः¹॥उत्तरकुरु-मनुष्य-तुल्याः¹॥ =तिस (काल) की आदिमें मनुष्य उत्तरकुरुभोगभूमिके मनुष्योंके समान हैं ॥ अर्थात् इस (काल) की आदिमें मनुष्योंकी आयु तीन पल्यकी होती है । अनु-क्रम से घटती है अन्त में दो पल्य की रहती है (२) शरीर की ऊंचाई आदि में तीन कोस अनुक्रम से अन्त में २ कोस(३)तीन दिन पश्चात् चौथे दिन बदरीफल सम आहार इत्यादि घटता घटता जाता है

ततः*क्रमेण³॥हानौ⁷॥सत्याम्⁷॥सुषमा¹॥ =तहांसे अनुक्रमसे हानि होनेपर सुखमा काल

भवति तिस्रः¹॥सागरोपम-कोटीकोट्यः¹॥तद्-आदौमनुष्याः=तीन कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण होताहै । तिस (सुखमाकाल) की आदि विषैं मनुष्य

हरिवर्ष-मनुष्य-समाः¹॥ =हरिवर्ष मध्यम भोगभूमिके मनुष्योंके तुल्य हैं (२ कोश शरीर २ पल्य आयु इत्यादि)

ततः क्रमेण हानौ सत्यां सुषमदुष्षमा भवति द्वे सागरोपमकोटीकोट्यौ । तदादौ मनुष्या हैमवतकमनुष्यसमाः ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमसुषमा भवति एकसागरोपमकोटीकोटीद्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना । तदादौ मनुष्या विदेहजनतुल्या भवन्ति ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां दुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ ततः क्रमेण हानौ सत्यां अतिदुष्षमा भवति एकविंशतिवर्षसहस्राणि ॥ एवमुत्सर्पिण्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ॥ अथेतरासु भूमिषु काऽवस्थेत्यत आह—

ततः*क्रमेण३/१।हानौ७/१।।सत्याम्७/१।।सुषमदुष्षमा१/१।।	=तहां से क्रमसे हानि होनेपर सुखमदुःखमाकाल
भवतिT द्वे१/२।।सागरोपमकोटीकोट्यौ१/२।।तद्-(१)आदौ७/१।।	=दो कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होता है। तिस (सुखम दुःखम) की आदिमें
मनुष्याः१/३।हैमवतक-मनुष्य-समाः१/३।	=मनुष्य हैमवतक जघन्य भोगभूमिके मनुष्योंके सारिखे हैं (अर्थात् एककोश शरीर, एकपल्य आयु, एकदिन पीछे आहार इत्यादि)
ततः*क्रमेण३/१।हानौ७/१।।सत्याम्७/१।।	=तहांसे क्रमकरि हानि होनेपर
दुष्षमसुषमा१/१।।एकसागरोपमकोटी-कोटी-	=दुःखमसुखमा एक कोडा कोडी सागर प्रमाण से
द्विचत्वारिंशद्वर्षसहस्रोना१/१।।भवतिT	=वियालीस सहस्रवर्ष न्यून वा हीन होता है
तद्-आदौ७/१।।मनुष्याः१/३।विदेह-जन-तुल्याः१/३।भवन्तिT	=तिस (दुःखमसुखमा) की आदि में मनुष्य विदेहक्षेत्र के मनुष्योंके समान होते हैं ॥
ततः*क्रमेण३/१।हानौ७/१।।सत्याम्७/१।।दुष्षमा१/१।।	=तहांसे यथाक्रम हानि होने पर दुःखमाकाल
भवतिT एकविंशति-वर्षसहस्राणि१/३।।ततःक्रमेण३/१।	=इकीसो सहस्र वर्षका होता है। तहांसे क्रमानुसार
हानौ७/१।।सत्याम्७/१।।अतिदुष्षमा१/१।।एकविंशति-	=हानि होनेपर अति दुःखमकाल इकीस
वर्ष-सहस्राणि१/३।।भवतिT एवम्*उत्सर्पिणी१/१।।अपि*	=सहस्र वर्षका होता है। इस प्रकार उत्सर्पिणीकाल भी
विपरीतक्रमा१/१।।वेदितव्या१/१।।	=उलटा अनुक्रमरूप जानना चाहिये

अथ*इतरासु७/३।।भूमिषु७/३।।का१/१।।अवस्था१/१।।इति*अतःआहT=आगैं (=अथ) अन्य (भूमियों) विषैं क्या दशा (=अवस्था) है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'आदि' त्रिलिंगी है, यहां "सुषमदुष्षमा" वाक्य के लिये आया है अतः स्त्रीलिंगमें रक्खा है यदि काल के लिये लेवें तो पुल्लिंग में होसका है ॥

सर्वार्थ

॥ ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

ताभ्यां भरतैरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति, न हि तत्रोत्सर्पिण्यवसर्पिण्यौ स्तः ॥

किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत आह—

६१

॥ एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥२९॥

सूत्रम्—(१)ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—ताभ्याम्[५/२] अपराः[१/३]	=तिन(भरत तथा ऐरावतवर्षों)से अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः[१/३] अवस्थिताः[१/३]	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्य हैं अर्थात् इनके क्षेत्रोंमें वृद्धि ह्रास नहीं होता है ॥
वृत्त्यनुवादः—ताभ्याम्[५/२] भरत-ऐरावताभ्याम्[५/२] अपराः[१/३]	=इन भरत तथा ऐरावत वर्षोंसे अन्य (हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत)
भूमयः[१/३] अवस्थिताः[१/३] भवन्तिT	=पृथिवीयें ज्योंकीत्योंनित्यविद्यमान (=अवस्थिताः) हैं (=भवन्ति)
न*हि*तत्र*स्तःT	=क्योंकि (=हि) नहीं हैं तहां (पूर्वोक्त पांच क्षेत्रोंमें)
उत्सर्पिणी-अवसर्पिण्यौ[१/२] । किम्[१/१] तासु[७/३] भूमिषु[७/३]	=उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणीकाल (प्रश्न) क्या तिन (पांच) भूमियोंविषैं
तुल्य-आयुषः[१/३] मनुष्याः[१/३] आहोस्वित्*कश्चित्*	=समान अवस्था वाले मनुष्य हैं ॥ अथवा (=आहोस्वित्) कुछ
अस्तिT प्रतिविशेषः[१/१] इति*अतः*आहT	=भिन्नता वा पृथक्ता (=प्रतिविशेष) है इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः ॥ २९ ॥

सूत्रार्थः—एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयः[१/३] हैमवतकाः[१/३]	=एक दो और तीन पल्य प्रमाण आयुवाले (क्रमसे) हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले
हारिवर्षकाः[१/३] दैवकुरवकाः[१/३] ॥२९॥	=हरिवर्षके निवासकरनेवाले मनुष्य और दैवकुरु(भोगभूमि)के बसनेवाले मनुष्यहैं
	अर्थात् हैमवत क्षेत्र जो जघन्य भोग भूमि का क्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी

(१) हमारे यहां इन सूत्रोंका पाठ एकसा है श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इन सूत्रोंका सूत्र नहीं मानेहैं (टिप्पणी पृष्ठ३७, ३८ देखो)

सि[illegible] ६[illegible]

हैमवते भवा हैमवतका इत्येवं वुञि सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एवमुत्तरयोरपि ॥ हैमवतकादयस्त्रयः । एकादयस्त्रयः । तत्र यथासंख्यमभिसम्बन्धः क्रियते । एकपल्योपमस्थितयो हैमवतकाः । द्विपल्योपमस्थितयो हारिवर्षकाः । त्रिपल्योपमस्थितयो दैवकुरवका इति ॥ तत्र पञ्चसु हैमवतेषु सुषमदुष्षमा सदाऽवस्थिता ।

एक पल्यकी अवस्था होती है । हरिवर्ष जहां मध्यमभोग भूमिहै यहांके निवासी मनुष्योंकी आयु दो पल्य की होती है । और देवकुरु उत्तम भोगभूमिके निवासकरनेवाले नरोंका तीन पल्योपम जीवन काल है ।

(१)हैमवते[7/1] भवाः[1/3] हैमवतकाः[1/3] इत्येवं* =हैमवतवर्षमें होनेवाले अर्थात् उपजने वाले वे हैमवतका हैं इस प्रकार

वुञि[7/1] सति[7/1] =वुञ् प्रत्यय (हैमवत शब्द के साथ) होनेमें (=सति) (उसक्षेत्रमें होनेवाले)

मनुष्य-सम्प्रत्ययः[1/1] भवति। एवं* उत्तरयोः[7/2] अपि* =मनुष्योंका ज्ञान वा बोध होता है ऐसे अग्रिम दोमें (=उत्तरयोः) भी हैं ॥ अर्थात् [illegible] और देवकुरु शब्दों के साथ वुञ् प्रत्यय लानेपर उन दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होनेवाले नरोंका बोध होताहै और हारिवर्षक, दैवकुरुवकरूप होजाते हैं॥

हैमवतक-आदयः[1/3] त्रयः[1/3] एक-आदयः[1/3] त्रयः[1/3] =(इस सूत्र में) हैमवतक आदिक तीन हैं ॥ एक आदिक तीन (संख्या) हैं ॥

तत्र* =तहां (हैमवतक-हारिवर्षक और दैवकुरुवक का एक दो तीन गणनाओंके साथ)

यथासंख्यम्[1/1]॥। =संख्याके अनुसार वा अनुसरण (=यथासंख्यम् अर्थात् पहिले को पहिली दूसरे को दूसरी तीसरे को तीसरी इस क्रमसे)

अभिसम्बन्धः[1/1] क्रियते। एक-पल्योपम-स्थितयः[1/3] =सम्बन्ध वा संयोग किया जाय है (जैसे) एक पल्योपमकी आयुधारक

हैमवतकाः[1/3] =हैमवत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि) के उपजे मनुष्य हैं ॥

द्वि-पल्योपम-स्थितयः[1/3] हारिवर्षकाः[1/3] =दो पल्योपम के जीवनकालवाले हरिवर्ष(जघन्य भोग भूमि)के निवासी मनुष्य हैं

त्रि-पल्योपम-स्थितयः[1/3] दैवकुरवकाः[1/3] इति* =तीन पल्योपमकी अवस्थावाले देवकुरु (उत्तम भोगभूमि के) रहने वाले नर हैं

तत्र* पञ्चसु[7/3] हैमवतेषु[7/3] सुषमदुःषमा[1/1] सदा* अवस्थिता[1/1]॥ =तहां पांच हैमवत देशोंमें सुखमदुःखम (काल) सर्वदाविद्यमान है ।

---

(१) 'हिमवत' शब्दमें 'अण' (=अ)प्रत्यय जोड़नेसे, हिमवत् की 'इ'की वृद्धि होकर हैमवत्+अण् बना=हैमवत, इसमें 'वुञ्' प्रत्यय जोड़ो, वुञ् का उ, ञ् इत् संज्ञिक होने से लोप हुआ और व् के स्थान में 'अक' का आदेश हुआ अतः हैमवत+अक, तके अकार का लोप होकर हैमवतक बना

तत्र मनुष्या एकपल्योपमायुषो द्विधनुःसहस्रोच्छ्रिताः चतुर्थभक्ताहारा नीलोत्पलवर्णाः ॥ पञ्चसु हरिवर्षेषु सुखमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपल्योपमायुषश्चतुश्चापसहस्रोत्सेधाः षष्ठभक्ताहाराः शंखवर्णाः ॥ पञ्चसु देवकुरुषु सुषमसुषमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्यास्त्रिपल्योपमायुषः

तत्र*एकपल्योपमआयुषः[१/३]मनुष्याः[१/३] =तहां मनुष्य एक पल्योपम आयुवाले
द्वि-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रिताः[१/३] =दो सहस्र चाप ऊंचे (=उच्छ्रित)
चतुर्थ-भक्त-आहाराः[१/३] =चौथा(=चतुर्थ)भोजन वा अन्नके(=भक्त) खानेवाले (=आहार) अर्थात् तीनवारके भोजन(के समय)को त्यागकर चोथीवारका भोजन करनेवाले तात्पर्य एकदिनको बीचमें छोड़कर भोजनकरनेवाले
नील-उत्पल-वर्णाः[१/३] पञ्चसु[७/३]हरिवर्षेषु[७/३] =और नीले कमल सम रूपकेधारक हैं। पांच हरि क्षेत्रोंमें
सुखमा[१/१]सदा*अवस्थिता[१/१]॥ तत्र*मनुष्याः[१/३] द्वि-पल्योपम =सुखमाकाल सर्वकालमें वर्तमान है। तहां मनुष्य दोपल्यप्रमाण
आयुषः[१/३] चतुर्-चाप-सहस्र-उत्सेधाः[१/३] =अवस्थाके धारक चार सहस्र धनुष ऊंचे, लम्बे अथवा ऊंचाईवाले
षष्ठ-भक्त-आहाराः[१/३] =छठवां भोजन ग्रहण करनेहारे अर्थात् दो दिनका बीचमें अवकाश देकर तीसरे दिन उसी समय भोजन करनेवाले हैं
शंख-वर्णाः[१/३]पञ्चसु[७/३]देवकुरुषु[७/३]सुषमसुषमा[१/१]। =धवल अथवा श्वेत शरीर धारक हैं। पांच देवकुरु क्षेत्रोंविषैं सुखमसुखमा
सदा*अवस्थिता[१/१]॥तत्रमनुष्याः[१/३]त्रिपल्योपमआयुषः[१/३] =सर्व कालमें अवस्थित है॥ तहां मनुष्य तीन पल्य प्रमाण स्थिति वाले हैं

चौथे दुःखमसुखमाकालमें एक बार भोजन साधारणतः प्रत्येक दिन मनुष्य करता था और पंचमकालमें बहुधा दो बार भोजन प्रत्येक पुरुष करता है। क्योंकि सर्वार्थसिद्धिकी संस्कृतवृत्ति पूज्यपाद स्वामीने जिनका जन्म विक्रम संवत् ३०८ ज्येष्ठ सुदी दशमीको हुआ था पंचमकालमें रची है। इसकारण चतुर्थ भोजन करनेवालेका तात्पर्य यह है कि 'एक दिनका अन्तर देकर भोजन करनेवाला' 'एक दिनके अवकाश से भोजन करने वाला' 'एकदिन बीचमें भोजन न करके भोजन करनेवाला' जैसे मानलो कि पंचमकालके एक मनुष्यने और जघन्य भोग भूमिके एक मनुष्यने साथसाथ रविवार को भोजन सायंकाल किया तो पंचमकालका पुरुष सोमवारकी प्रातःकालमें एक भोजन और दूसरा उसी दिवसको सायंकालको करैगा और वही मनुष्य एक भोजन मंगलवारके प्रातःकालमें करैगा तबलग जघन्य भोग भूमिका मनुष्य कोई भोजन न करैगा जब पंचमकालका मनुष्य मंगलकी सायंकालको चौथा भोजन करैगा तब भोग भूमिका पूर्वोक्त मनुष्य फिर भोजन करैगा इसलिये कहा है कि चौथा भोजन करनेवाले अर्थात् तीनवार का भोजन त्यागकर वा एक दिवसका अन्तर देकर दूसरे दिन भोजन करनेवाला ॥

षड्धनुःसहस्रोच्छ्राया अष्टमभक्ताहाराः कनकवर्णाः ॥ अथोत्तरेषु काऽवस्थेत्यत आह—

॥ तथोत्तराः ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातास्तथैवोत्तरा वेदितव्याः। हैरण्यवतका हैमवतकैस्तुल्याः। राम्यका हारिवर्षकैस्तुल्याः

षड्-धनुष्-सहस्र-उच्छ्रायाः१।३ अष्टमभक्त-आहाराः१।३ =छह सहस्र चाप ऊंचाईवाले आठवां भोजन ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् तीन दिन का बीच में अन्तर देकर चौथे दिन उसी समय भोजन ग्रहण करनेवाले

कनकवर्णाः१।३ अथ*उत्तरेषु७।३ =स्वर्ण वा कंचनरूप हैं (प्रश्न) अब उत्तर दिशाओंविषैं

का१।१ अवस्था१।१ इति*अत*आह = क्या अवस्था है इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— (१)तथोत्तरा ॥ ३० ॥ =(यथा दक्षिणाः व्याख्याताः) तथा (एव) उत्तराः (वेदितव्याः)

सूत्रार्थः—यथा*दक्षिणाः१।३ व्याख्याताः१।३ तथा*(एव*) =जैसे दक्षिण वाले वर्णन किये गये हैं तैसे (ही)

उत्तराः१।३ वेदितव्याः१।३ =उत्तरदिशाके (तीन क्षेत्र हैरण्यवत रम्यक और उत्तरकुरु के) निवासकरनेवाले (मनुष्योंको) समझना चाहिये अर्थात् हैरण्यवतक्षेत्र जो जघन्य भोगभूमिकाक्षेत्र है यहांके उपजे मनुष्योंकी एक पल्य की आयु होती है। रम्यक क्षेत्र जहां मध्यम भोग भूमि है यहां के निवासी मनुष्योंकी आयु दोपल्यकी होती है॥ और उत्तरकुरु जो उत्तम भोग भूमिका क्षेत्र है यहांके निवासकरने वाले नरोंका तीन पल्योपमाका जीवनकाल है इसप्रकार पांचमेरु सम्बन्धी दक्षिण और उत्तरदिशाओंकी सर्व तीसभोगभूमि हैं

वृत्त्यनुवादः-यथा*दक्षिणाः१।३ व्याख्याताः१।३ तथा*एव*उत्तराः=जैसे दक्षिणदिशाके(क्षेत्रों)वाले वर्णन कियेगयेहैं तैसेही उत्तरदिशाके(क्षेत्रों)वालोंको

वेदितव्याः१।३-हैरण्यवतकाः१।३ =जानना चाहिये अर्थात् हैरण्यवत क्षेत्रकेनिवासीमनुष्य

(२)हैमवतकैः३।३ तुल्याः१।३ राम्यकाः१।३ =हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंसे समान हैं। रम्यक क्षेत्रकेनिवासकरनेवाले मनुष्य

हारिवर्षकैः३।३ तुल्याः१।३ =हरिवर्षके रहनेवाले मनुष्योंसे तुल्य हैं

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसको सूत्र नहीं माना है (पृष्ठ ३७, ३८की टिप्पणी)

(२) क्योंकि यहांपर संस्कृत वृत्तिमें त्रितीया कारक है इस हेतु से अनुवादमें 'मनुष्योंसे' ऐसा लाये हैं जिसका यही अभिप्राय है जो मनुष्योंके वाक्यके लानेपर होता है अर्थात् हैमवत क्षेत्रके रहनेवाले मनुष्योंके समान हैं॥

दैवकुरवकैरौत्तरकुरवकाः समाख्याताः ॥ अथ विदेहेष्ववस्थितेषु का स्थितिरित्यत्रोच्यते—

॥ विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

सर्वेषु पञ्चसु महाविदेहेषु

दैवकुरवकैः। औत्तरकुरवकाः।	=देवकुरु क्षेत्रके उपजे मनुष्योंसे उत्तर कुरुक्षेत्रके उत्पन्न हुये मनुष्य
सम-आख्याताः। । अथ*विदेहेषु।	=समान (=सम) वर्णित कियेगये हैं ॥ (प्रश्न) अब विदेहक्षेत्रोंमें
अवस्थितेषु। का।। स्थितिः।। इति*अत्र*उच्यते।	=रहनेवाले, वा निवासकरनेवालोंकी क्या आयु है ऐसे (प्रश्नपर) यहां कहा जाता कि
(१)सूत्रम्—	विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥
सूत्रार्थ—विदेहेषु। संख्येय-कालाः।	=विदेहक्षेत्रोंकेविषैं संख्यातवर्षकी अवस्था वा आयुवाले होते हैं अर्थात् पांच मेरु सम्बन्धी पांचों विदेह क्षेत्रोंमें मनुष्य संख्यात वरसकी आयुवाले होते हैं
वृत्त्यनुवादः—सर्वेषु। पञ्चसु। (२)महाविदेहेषु।	=(पांच मेरु सम्बन्धी) समस्त पांच महाविदेहोंमें

---

(१) हमारेयहां कहीं संख्येय, कहीं संख्येय पाठ हैं दोनो पाठ ठीक हैं (अ०१पृष्ठ१४०,१४१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में इसको सूत्र नहींमाना है

(२) विगतो विनष्टो देहः शरीरं मुनीनां येषु ते विदेहाः । प्रायेण मुक्तिपदप्राप्तिहेतुत्वात् । तेषु विदेहेषु पञ्चानां मेरूणां सम्बन्धिनः पञ्चपूर्वविदेहाः पञ्च अपरविदेहा उभये मिलित्वा पञ्चमहाविदेहाः कथ्यन्ते ॥

विगतः। विनष्टः। देहः। शरीरं।। मुनीनां।	=विनशन हुआ है (=विगतः) ध्वंस हुआ है (=विनिष्टः) गात्र (देहः) काय (शरीर) ऋषियोंका
येषु। ते। विदेहाः। प्रायेण*मुक्ति-पद-प्राप्ति-	=जिन (देशोंमें) वे विदेह हैं। प्रायशः वा बहुधा (=प्रायेण) मोक्षपदकी लब्धिके
हेतुत्वात्।। तेषु। विदेहेषु। पञ्चानां। मेरूणां।	=कारणपनासे (इन देशोंके नाम विदेह) हैं। तिन विदेहोंमें पांच मेरु
सम्बन्धिनः। पञ्च। पूर्व-विदेहाः। पञ्च।अपर विदेहाः।	=सम्बन्धी पांच पूर्व दिशाके विदेह, पांच पश्चिम दिशाके विदेह
उभये।।। मिलित्वा÷पञ्चमहाविदेहाः।कथ्यन्ते।	=दोनों मिलकर पांच महाविदेह (ऊपरकी वृत्तिमें) कहगये हैं वा वर्णन कियेगये हैं ॥

संख्येयकाला मनुष्याः ॥ तत्र कालः सुषमदुःषमान्तोपमः सदाऽवस्थितः । मनुष्याश्च पञ्चधनुः शतोत्सेधाः । नित्याहाराः । उत्कर्षेणैकपूर्वकोटीस्थितिकाः ।

---

(१)संख्येय-कालाः[1/3] मनुष्याः[1/3] तत्र*कालः[1/1]	=संख्यात काल आयुके धारक मनुष्य होते हैं। वहां (विदेह क्षेत्रों में) काल
(२)सुषम-दुःषम-अन्त-उपमः[1/1] सदा*अवस्थितः[1/1]	=सुखमदुःखमा (तीसरे काल के) अन्तके सरीखा (=उपम) सर्वदा विद्यमान (अवस्थित) है
मनुष्याः[1/3] च*पञ्च-धनुःशत-उत्सेधाः[1/3]	=बहुरि मनुष्य पांचसौ धनुष ऊंचे वा लम्बे हैं अर्थात् पांचसौ धनुष उचाईमें होते हैं
नित्य-आहाराः[1/3]	=प्रति दिन (=नित्य-पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २१३) आहार वा भोजन करने वाले हैं ॥
उत्कर्षेण[3/1] एक-पूर्व(३)-कोटी-स्थितिकाः[1/3]	=उत्कृष्टकरि एक करोड़ पूर्वकी आयुके धारक हैं

---

(१) संख्यायते गणयितुं शक्यते इति संख्येयः। संख्येय कालो जीवितं येषां ते संख्येयकालाः॥

संख्यायते T गणयितुम्[1/1]॥ शक्यते T इति*संख्येयः[1/1]	=गणना के योग्य है (=संख्यायते) गिनाजासक्ता है ऐसा संख्येय है ॥
संख्येय[1/1] कालः[1/1] जीवितं[1/1]॥ येषां[6/3] ते[1/3] संख्येय-कालाः[1/3]	=गिनने के योग्य है जीवन काल जिनका वे संख्येयकाल (आयु) वाले हैं ॥

(२) सुषमदुःषमाकालान्तकालसदृशइत्यर्थः ॥ अत्र "दुःषमसुषमादिः" इति पाठभेदस्तालपत्रपुस्तके वर्तते ॥

सुषम-दुःषमा-काल-अन्त-काल-सदृश-इति-अर्थः[1/1]	=सुखमदुःखमा (तीसरे) कालके अन्त समयके समान ऐसा अर्थ या आशय है ॥
अत्र*दुःषम-सुषम-आदिः[1/1] इति*पाठ-भेदः[1/1]	=यहां दुःखमसुखम (चौथे) काल की आदि या प्रारम्भ (सदृश) ऐसा पठन विशेष
ताल-पत्र-पुस्तके[7/1]॥ वर्तते T	=ताड़वृक्ष (=ताल) के पत्तों पर लिखित पुस्तकमें है (पुरातन वा प्राचीन समय में जब कागद के परत न थे तब ताड़वृक्षके पत्तोंपर या भोजपत्र इत्यादि पर लिखाई होती थी)

(३) पूर्वाङ्गं वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा। ८४००००० ॥ तद्वर्गितं भवेत्पूर्वं ७०५६०००००००००० तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥ ७०५६०००००००००००००००००॥

पूर्व-अङ्गं[1/1]॥ वर्ष-लक्षाणां[6/3]॥ अशीतिः[1/1]॥ चतुर्-उत्तरा[1/1]॥	=पूर्वांग है (वह) बरस लाख अस्सी ऊपर(=उत्तर) चार है-अर्थात् चौरासीलाख वर्षका है ॥
८४००००० ॥ तद्	=चौरासीलाख संख्या है। उन (चौरासीलाख बरसों) को
वर्गितं[1/1]॥ भवेत् T पूर्वं[1/1]॥ ७०५६००००००००००	=आपस में गुणित (=वर्गित) हो (भवेत्) सो पूर्व है अर्थात् चौरासी लाख को चौरासी लाखसे गुणा करनेसे जो गुणनफलहो उतने वर्षोंका एकपूर्व होताहै ८४००००० × ८४००००० ७०५६००००००००००भावार्थ सातनील, पांच खर्व साठ अरब बरसोंका एक पूर्वहोता है ॥

जघन्येनान्तर्मुहूर्तायुषः ॥ तस्याश्च सम्बन्धे गाथां पठन्ति ॥ 'पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसदसहस्साइम् । छप्पणं च सहस्सा बोद्धव्वा वा सकोडीणम् ॥ १ ॥ ७०५६०००००००००० उक्तो भरतस्य विष्कम्भः । पुनः प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यर्थमाह—

जघन्येन ।। अन्तर्मुहूर्त-आयुषः । =जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त आयुवाले हैं ॥
तस्याः ।। च*सम्बन्धे ।गाथां ।।पठन्ति T =बहुरि तिस (स्थिति)के संयोगमें गाथा बांचते वा पठन करते हैं ॥
(१)पुव्वस्स ।। दु*परिमाणं ।। (पूर्वस्य ।।तु*परिमाणं ।।) =और (=दु=तु) पूर्वका प्रमाण
सदरिं ।। खलु*कोडि-सद-सहस्साइम् ।। (खलु*सप्तति-(२)कोटि-शत-सहस्राणि ।।) =निश्चयसे (=खलु) सत्तर लाख करोड़
छप्पणं ।। च सहस्सा ।। (च षट्-पञ्चाशत्-सहस्राणि ।।) =और (=च) छप्पन सहस्र
बोद्धव्वा ।वा*स-कोडीणम् ।। (१) बोद्धव्याः ।वा*स-कोटयः । (=स-कोट्यः) (१) =करोड़ (३)(बरस) सहित जानना चाहिये (सातनील पांचखर्व साठसहस्र अर्ब)
७०५६०००००००००० =(एक पूर्वके) सातनील पांचखर्व साठ सहस्र अर्ब हुये
उक्तः ।भरतस्य ।विष्कम्भः । पुनः*प्रकार-अन्तरेण* =भरतक्षेत्र की कही हुई (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई है सो पुनि अन्य प्रकारकरि
तत्—प्रतिपत्ति-अर्थम् ।।आह T =उस (चौड़ाई)के जतलानेकेलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

तत्-कोटी ॥पूर्व-कोटि (कोटी) असौ ॥ =ये करोड़ (पूर्व हैं) सो पूर्वकोटी है (जिसके)
७०५६०००००००००००००००००० ='७०५६०००००००००००००००००० अर्थात् सातसहस्र छप्पन शंख बरस होते हैं

(१) अस्यायमर्थः–सप्ततिलक्षकोटिवर्षाणि षट्पञ्चाशत्सहस्रकोटिवर्षाणि यदा भवन्ति तदैकं पूर्वमुच्यते
अस्य । अयम् । अर्थः । सप्ततिलक्षकोटि वर्षाणि ॥ =इसका यह अभिप्राय है कि सत्तर लाख करोड़ बरस (और)
षट्-पञ्चाशत्सहस्रकोटि ॥ वर्षाणि ॥ यदा* भवन्ति T =छप्पन सहस्र करोड़ बरस जब होते हैं
तदा* एकं ॥ पूर्वम् ॥ उच्यते T =तब एक पूर्व कहा जाता है (संख्यामें ७०५६०००००००००० ऐसे रखते हैं)

(२) कोटि-कोटी । दोनों शब्द करोड़के बोधक हैं ।'कोटि'शब्दका बहुवचन मति शब्दके सदृश'कोटयः' है और'कोटी'शब्दका 'दासी' शब्द के समान 'कोट्यः' प्रथमाविभक्ति बहुवचन स्त्रीलिंग है ॥ (३) बरस—ऐसा जान पड़ता है कि जहां से यह आर्या छंद लिया गया है, उस छंद से 'वर्ष' शब्द की अनुवृत्ति इसमें वर्तती है अतः इसमें 'वर्ष' शब्द नहीं लाये । अनुवादमें 'वर्ष' शब्द लाना अति आवश्यक है ॥

॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यैको भागो भरतस्य विष्कम्भः स पूर्वोक्त एव॥ उक्तं जम्बूद्वीपं परिवृत्य वेदिका स्थिता, ततः परो लवणोदः समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः।

---

[1]सूत्रम्–भरतस्य विष्कम्भो जम्बूदीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः–भरतस्य$\frac{६}{१}$। विष्कम्भः$\frac{१}{१}$। जम्बूद्वीपस्य$\frac{६}{१}$। =भारतवर्षकी (दक्षिण-उत्तर) चौड़ाई जम्बूद्वीपके (जिसका व्यास एकलक्षयोजन है)

नवतिशत-भागः$\frac{१}{१}$। =एकसौ नव्वै भागोंमें से (एक भाग) है अर्थात् ($\frac{१०००००}{१९०}$=५२६$\frac{६}{१९}$ योजन है)

सूत्र्यनुवादः—जम्बूद्वीप-विष्कम्भस्य$\frac{६}{१}$। योजन-शतसहस्रस्य$\frac{६}{१}$। =जम्बूद्वीपके विस्तारके लाख योजनके

नवतिशत-भागीकृतस्य$\frac{६}{१}$। एकः$\frac{१}{१}$। भागः$\frac{१}{१}$। भरतस्य$\frac{६}{१}$। =एकसौ नव्वे भाग किये हुओंमें से, एकभाग भरतक्षेत्रकी (दक्षिण-उत्तर)

विष्कम्भः$\frac{१}{१}$। सः$\frac{१}{१}$। पूर्व-उक्तः$\frac{१}{१}$। एव; उक्तं$\frac{२}{१}$। जम्बूद्वीपं$\frac{२}{१}$। =चौड़ाई है सो पहिले वर्णितही है। वर्णित जम्बूद्वीपको

परिवृत्य^{२}। वेदिका$\frac{१}{१}$। स्थिता$\frac{१}{१}$। =वेढ़कर वेदी तिष्ठी है अर्थात् जम्बूद्वीपके चारो ओर वेदिका है उसकेपीछे लवणोदधि है

ततः*परः$\frac{१}{१}$। लवणोदः$\frac{१}{१}$। समुद्रः$\frac{१}{१}$। द्वियोजनशतसहस्र– =तिस (वेदिका) से आगे लवणोदधि समुद्र दोलाख योजन

वलय-विष्कम्भः$\frac{१}{१}$। =वलयाकार कड़े के आकार विस्ताररूप है अर्थात् लवणोदधि की परिधिपर एकबिंदु लेकर उसकी सीधमें जंबूद्वीपकी परिधिपर दूसरा बिंदुलेकर दोनोंबिंदुओंके मिलानेवाली रेखा दोलाखयोजन लम्बी होगी।

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में इसको सूत्र नहीं माना है (इस अध्यायके पृष्ठ ३७, ३८ की टिप्पणी देखो)। (२) सबंधसूचक भूतकृदंत है॥ (३) एक भागमें भरतक्षेत्र, दो भागोंमें हिमवान् पर्वत चार भागोंमें हैमवतक्षेत्र, आठ भागोंमें महाहिमवान् पर्वत, सोलह भागोंमें हरिक्षेत्र, बत्तीस भागोंमें निषिध पर्वत, और चौसठि भागोंमें विदेह क्षेत्रका विस्तार है। ऐसे जम्बूद्वीपके एकसौ सत्ताइस (१२७) भाग तो दक्षिण सम्बन्धी हैं और नील पर्वत बत्तीस भागोंमें, रम्यकक्षेत्र सोलह भागोंमें, रुक्मी पर्वत आठ भागोंमें, हैरण्यवत् क्षेत्र चार भागोंमें, शिखरी पर्वत दो भागोंमें तथा ऐरावत क्षेत्र एक भागमें विभक्त हैं। ऐसे उत्तर सम्बन्धी ये त्रेसठ भाग, दोनों मिलानेसे (१२७+६३)=१९० भाग जंबूद्वीप के हैं। २४ वां सूत्र के होते हुये कि भरतक्षेत्र ५२६$\frac{६}{१९}$ है इसकी आवश्यकता नहीं क्योंकि एक साधारण पाठक ५२६$\frac{६}{१९}$=$\frac{१००००}{१९}$=$\frac{१०००००}{१९०}$ निकालसक्ता है कि १९० वां भाग भरत है॥ अथवा इस सूत्रको २४ वां सूत्र करदेते तो विद्यमान चौबीसवां सूत्र जो इससे बड़ा सूत्र है न बनाना होता और $\frac{१०००००}{१९०}$=$\frac{१००००}{१९}$=५२६$\frac{६}{१९}$ भरतक्षेत्रकी उत्तर दक्षिण की सूची भी निकल आती॥

ततः परो धातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥
तत्र वर्षादीनां संख्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिर्विवक्षिता । तत्र कथं सुच् ? । अध्याह्रियमाणक्रियाभ्यावृत्तिद्योतनार्थः

ततः॥पर:१।धातकीखण्डः१।द्वीपः१।चतुर्-योजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः१।तत्र॥ =उस (लवण समुद्र) से आगे धातकीखंड द्वीप चार =लाख योजन वलयाकार वा कड़ेकेआकार विस्तारवाला है । तहां

वर्षादीनाम्६।संख्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्१।।।आह। =क्षेत्रादिकोंकी गणनाके क्रम (=विधि) के ज्ञानके लिये (अग्रिमसूत्रमें)कहते हैं कि

(१)सूत्रम्—द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥ =धातकीखण्डे द्वीपे भरतादयो द्विः॥ संख्यायन्ते ॥३३॥

सूत्रार्थः-धातकीखण्डे७।द्वीपे७।भरत-आदयः१। द्विः॥संख्यायन्ते। =धातकीखंड द्वीपमें भारतवर्ष, कुलाचल, पर्वत, द्रह कमल आदि (जम्बूद्वीपसे) =दूने दूने गिनेजाते हैं ।

वृत्त्यनुवादः-भरत-आदीनां६।।।(२)द्रव्याणाम्६।।।इह॥अभ्यावृत्तिः१।।विवक्षिता१।। =भारतवर्ष(कुलाचल,द्रह,कमल)आदि द्रव्यवाची शब्दोंका यह(=इह)दुबाराकथन =(धातकीखंडद्वीपादिककी)विवक्षासे कियागयाहै अर्थात् सूत्रग्रन्थोंमें वा सूत्रशास्त्रोंमें

सूत्रकार दुबारा कभी किसी वस्तुका कथन नहीं करते, जब एकबार भरत,कुलाचल,आदिका कथन आचार्यकरचुके तब दुबारा कथन नहीं करना चाहियेथा, इसके उत्तरमें कहतेहैं कि धातकीखण्ड और पुष्कार्ध आदिका कथनअवश्यही करनाथा उनका कथन भरतादिकके विवरण किये विना होनहीं सकता है अगर ऐसा न करते तो धातकी खण्ड और पुष्करार्द्ध आदिका कथनरहजाता, तत्त्वार्थसूत्र अधूरा होजाता सो ठीक नहींथा इसअपेक्षाको लियेहुये दुबाराभरतादिकका कथन करना पड़ा ॥

तत्र॥कथम्॥सुच्१। ? =यहां(सूत्रमें द्वि शब्दको)कैसे सुच्प्रत्यय(जो रूपान्तर होकरसुच्=सु=स्=ः,होताहै

अध्याह्रियमाण-क्रिया-अभ्यावृत्ति-द्योतन-अर्थः१। =(इससूत्रमें) क्रियाके कल्पना द्वारा विवरणकी स्पष्टताके जनावनेके लिये

(१) इस सूत्रका दोनों आम्नायों में पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (२)यहां पर भरतआदि द्रव्य हैं । व्याकरणमें प्रकृति प्रत्यय लिंग संख्या विशिष्टको द्रव्य कहा जाता है भरतादि शब्द लिंग संख्या विशिष्ट होनेसे द्रव्यवाचक शब्द है ॥(व्याकरणमें)वह पदार्थ कि जिसका लिंग और संख्या से अन्वय हो द्रव्यहै । पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१८६ ॥ अतएव द्रव्य शब्दका अर्थयहांपर जीव,अजीव,धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्योंमेंसे कोईभी अपेक्षित नहीं है ॥

सुच् ॥ यथा द्विस्तावानयं प्रासादो मीयत इति ॥ एवं द्विर्धातकीखण्डे भरतादयो मीयन्ते इति ॥ तद्यथा—द्वाभ्यामिष्वाकारपर्वताभ्यां दक्षिणोत्तरायताभ्यां लवणोदकालोदवेदिकास्पृष्टकोटिभ्यां विभक्तो धातकीखण्डः पूर्वापर इति ॥ तत्र पूर्वस्य चापरस्य मध्ये द्वौ मन्दरौ । तयोरुभयतो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च

सुच् १/१	=(द्विशब्द पर) सुच्है अर्थात् स् (कर्ताका चिन्ह जो सूत्रमें 'र्' में पलट जाता है लगाया)है भावार्थ इस सूत्रके 'द्वि' शब्द पर स् (=र्) कर्ता कारकका प्रत्यय (मापना) क्रिया के (१)अध्याहार वा सूत्रके अन्तमें(मापना) क्रिया की विद्यमानताकी कल्पनाके लिये लायेहैं ॥
यथा॥ द्विः॥ तावान् १/१ अयं १/१ प्रासादः १/१ मीयते॥ इति॥	=जैसे दोगुणा(=द्विः)माप (=तावान्) यह राजभवन नापाजाय है वा परिमाण कियाजाय है
एवम्॥ द्विः॥ धातकीखण्डे ७/१ भरत-आदयः १/३	=इस प्रकार (जम्बूद्वीपसे) द्विगुने (=द्विः) धातकीखंड द्वीपमें भरतक्षेत्रादिक
मीयन्ते॥ इति॥	=नापे जाते हैं अथवा गणना किये जाते हैं भावार्थ-इस सूत्र के द्विशब्द पर स्(=र्)कर्त्ता का प्रत्यय लानेसे और सूत्रके अंतमें मापना क्रियाका अध्याहार करके यह फलनिकाला हैकि जम्बूद्वीपमेंजो भरतक्षेत्र,कुलाचल,द्रह पुष्करादिकहैं उनकी अपेक्षा धातकीखंडमें दुगुणेहैं
तद्यथा॥ द्वाभ्याम् ३/२ इष्वाकारपर्वताभ्याम् ३/२	=जैसे दो इष्वाकार पर्वतोंकरि (जो चारसौ योजन ऊंचे और सौ योजन पृथिवीमें प्रविष्ट हैं)
लवणोद-कालोद-वेदिका-स्पृष्टकोटिभ्याम् ३/२	=लवण समुद्र और कालोदधिकी वेदियों को छूनेवाले दोनों अटनियों वा सिरों तक
दक्षिण-उत्तर-आयताभ्याम् ३/२ विभक्तः १/१ धातकीखंडः १/१	=दक्षिण-उत्तर दिशामें (चार लाख योजन) लम्बे हैं । धातकी खंड
पूर्व-अपरः १/१ इति। तत्र॥ पूर्वस्य ६/१ च॥ अपरस्य ६/१ मध्ये ७/१	=पूर्व पश्चिम (दो भागों में) बटा हुआ है तहां पूर्व और पश्चिमके (भागों के) बीच में
द्वौ १/२ मन्दरौ १/२ तयोः ६/२ उभयतः॥ भरत-	=दो मेरु पर्वत हैं । तिन (दोनों मेरु पर्वतों) के दोनोंओर भरत-
आदीनि १/३ क्षेत्राणि १/३ च॥ हिमवत्-आदयः १/३	=आदिक क्षेत्र हैं और (=च) हिमवान् आदिक

'अध्याहार'–यह वाक्य जो स्पष्टता से समझमें नहीं आसका उसे किसी दूसरे शब्द की कल्पना करि स्पष्ट करदेना। अनुवृत्ति और अध्याहार में यह भेद है कि अनुवृत्ति में जो शब्द वा वाक्य किसी पहिले सूत्र वा वाक्य में आया है उसे उत्तर सूत्र वा वाक्य में खींच लेना, अनुकर्षण करना और आशय अभिप्राय को समझलेना है परन्तु अध्याहार में जो शब्द वा वाक्य पहिले सूत्र में तो आया नहीं है परन्तु किसी भी वाक्यको स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है तो उस वाक्यको स्पष्ट करनेके लिये किसी शब्द वा वचनकी कल्पना करलेते हैं जिससे कि सूत्र इत्यादिकका अर्थ समझमें आजावे ॥

वर्षधरपर्वताः । एवं द्वौ भरतौ द्वौ हिमवन्तौ इत्येवमादिसंख्यानं द्विगुणं वेदितव्यम् ॥ जम्बूद्वीप हिमवदादीनां वर्षधराणां यो विष्कम्भस्तद्विद्वगुणो धातकीखण्डे हिमवदादीनां वर्षधराणाम् ॥ वर्षधराश्चक्रारवदवस्थिताः ॥ अरविवरसंस्थानानि क्षेत्राणि ॥ जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षः स्थितः । तत्र धातकीखण्डे धातकीवृक्षः सपरिवारः । तद्योगाद्धातकीखण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् ॥ तत्परिक्षेपी कालोदः समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अष्टयोजनशतसहस्र-

---

वर्षधरपर्वताः[१/३] एवम्*द्वौ[१/२] भरतौ[१/२] द्वौ[१/२] =कुलाचल हैं इस प्रकार दो भारतवर्ष दो

हिमवन्तौ[१/२] इत्येवम्*आदि-संख्यानम्[१/१] द्विगुणम्[१/१] =हिमवान्पर्वत इत्येवं आदिक गणना (जम्बूद्वीपसे धातकीखंडमें) दूनी

वेदितव्यम्[१/१] जम्बूद्वीप-हिमवत्-आदीनाम्[६/३] =जाननी चाहिये । जम्बूद्वीपके हिमवान् आदिक

वर्षधराणाम्[६/३] यः[१/१] विष्कम्भः[१/१] तद्-द्विगुणः[१/१] =पर्वतोंका जो विस्तार है तिससे दुगुणा

धातकीखंडे[७/१] हिमवत्-आदीनां[६/३] वर्षधराणाम्[६/३] =धातकीखंडमें, हिमवान् आदिक कुलाचलोंका है

वर्षधराः[१/३] चक्र[१]-अरवत्*अवस्थिताः[१/३] अर- =कुलाचल पहियेकी आरक आर वा अरा (=अरा)के सदृश तिष्ठे हुए हैं । अरोंके

विवर-संस्थानानि[१/३] क्षेत्राणि[१/३] =छिद्रोंके आकार (=संस्थान) (वत्) (भरतादिक) क्षेत्र हैं । अर्थात् पहियेको पृथ्वीपर इसप्रकार धरिये कि उसका समस्त घेरा पृथ्वीको छूजाय तो उस पहियेकी नाभि (धुरी)और घेरेके बीचमेंडंडारूप लकड़ियें हैं तैसे पर्वत तिष्ठे हैं और पूर्वोक्त लकड़ियोंके मध्यका शून्य (खाली) स्थान रहता है तैसे क्षेत्र तिष्ठे हैं

जम्बूद्वीपे[७/१] यत्र*जम्बूवृक्षः[१/१] स्थितः[१/१] तत्र* =जम्बूद्वीपमें जहां जम्बूवृक्ष अवस्थित है वहां

धातकीखंडे[७/१] धातकीवृक्षः[१/१] सपरिवारः[१/१] तद्- =धातकीखंडमें धातकीवृक्ष छोटे छोटे परिवार (के वृक्षों) सहित स्थित) है तिसके

योगात्[५/१] धातकीखंडः[१/१] इति*द्वीपस्य[६/१] नाम[१/१] =संयोगसे वा उपलक्षणसे धातकीखंड ऐसी द्वीपकी संज्ञा

प्रतीतम्[१/१] तद्-परिक्षेपी[१/१] कालोदः[१/१] =प्रसिद्ध वा ज्ञात है । तिस (धातकीखंड द्वीप) को समस्त ओरसे घेरे हुए कालोदः

समुद्रः[१/१] टङ्कच्छिन्न-तीर्थः[१/१] अष्टयोजन-शतसहस्र- =समुद्र टांकीसे छेदे काटे वा उकेले हुए जलकेस्थान समान(=तीर्थ)आठ लाख योजन

---

(१) पहियेका नाभि अथवा धुरी वा बीचके गोलेके छेदोंमेंसे जो लकड़ियां पहियेके घेरके छेदोंमें लगाई जाती हैं उनमेंसे प्रत्येक लकड़ी डंडेरूपको आरक, आर, अरा अथवा अर कहते हैं ॥

वलयविष्कम्भः ॥ कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः षोडशयोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भः ॥
तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्कम्भद्विगुणपरिक्लृप्तिवद्धातकीखण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिप्रसङ्गे विशेषावधारणार्थमाह

॥ पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

(किं)द्विरित्यनुवर्तते।किमपेक्षा द्विरावृत्तिः?जम्बूद्वीपेभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव।जम्बूद्वीपात्पुष्करार्धेद्वौ भरतौ द्वौ

वलय-विष्कम्भः॥कालोदपरिक्षेपी॥पुष्करद्वीपः॥	=वलयाकार (अर्थात् कड़ेके आकार) विस्ताररूप है। कालोदधि को वेढ़ेहुए पुष्करद्वीप
षोडशयोजन-शतसहस्र-वलय-विष्कम्भः॥	=सोलहलाखयोजन वलयाकार(अर्थात् कड़ेके आकार)चौड़ाईका धारक है।
तत्रद्वीप-अम्भोनिधि विष्कम्भ-द्विगुण-परिक्लृप्तिवत्	=तहां(पुष्करद्वीपसेपूर्व)द्वीप और समुद्रों की द्विगुणी द्विगुणी रचनाके सदृश (परिक्लृप्तिवत्)
धातकीखण्ड-वर्ष-आदि द्विगुण-	=धातकी खंडके क्षेत्र (तथा पर्वतों) आदिक से दुगुन (दुगुन आगेके क्षेत्र तथा पर्वतोंकी)
वृद्धि-प्रसंगे॥ विशेष-अवधारण-अर्थम्॥	=वृद्धिके अवसर(आजाने) पर पृथक् अथवा भिन्न =विशेष) नियमके लिये
आह T	='आचार्य्य,अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं। भावार्थ-जम्बूद्वीपसे अगलेके समुद्र तथा द्वीपोंका विष्कम्भ दूना है और जम्बूद्वीपसे धातकी खंडकी रचना दूनी है तो इस प्रसंगके निषेधके लिये अर्थात्

ऐसा न समझ लियाजावै कि धातकी खंड़से पुष्करद्वीपकी रचना दूनीहै। उत्तर सूत्र कहते हैं कि "पुष्करार्द्धे च"॥

सूत्रम्—'पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

(= भरतादयः द्विः संख्यायन्ते) पुष्करार्द्धे च

सूत्रार्थ—च*भरत-आदयः॥द्विः*	=और =च) भारतवर्ष (कुलाचल-द्रह-कमल) आदिक (जम्बूद्वीपसे) दूने दूने
पुष्कर-अर्द्धे॥संख्यायन्ते T	=पुष्करद्वीपके आधेभागमें गिनाये गये हैं
वृत्त्यनुवादः-(किम्॥)द्विः*इति*अनुवर्तते T	=प्रश्न (क्या द्वि(शब्द) ऐसा (पहिले सूत्रसे इससूत्रमें अनुवर्तता है वा लाया गया है)
किम्॥अपेक्षा॥द्विः आवृत्तिः॥ जंबूद्वीपे॥भरत-	=किस विवक्षा द्विगुणना (=आवृत्ति) है (उत्तर) जम्बूद्वीपमें भरतक्षेत्र तथा
हिमवत्-आदि-अपेक्षया॥एव*	=हिमवान्पर्वत आदिककी अपेक्षासे ही(पुष्करार्द्धमें दूनेक्षेत्र तथा दूने कुलाचल)हैं
जंबूद्वीपात्॥पुष्करार्द्धे॥द्वौ॥भरतौ॥द्वौ॥	=(प्रश्न)जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्धविषै दो भरतक्षेत्र दो

(१) श्वेताम्बर-आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "पुष्करार्धे च" ऐसा पाठ है हमारे यहां भी जैसे तत्त्वार्थ-राज-पृ०१३६,श्लोक वार्तिकमेंभी यही पाठ "पुष्करार्धे च" है इसलिये दोनों आम्नाओंमें पाठभेद नहीं है। अर्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें एक है॥ अर्ध और अर्द्ध दोनों शब्द ठीक हैं॥

हिमवन्तौ इत्यादि। कुतः ?। व्याख्यानतः ॥ यथा धातकीखण्डे हिमवदादीनां विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमवदादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते ॥ नामानि तान्येव, इष्वाकारौ मन्दरौ च पूर्ववत्। यत्र जम्बूद्वीपे जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारम्। तत एव तस्य द्वीपस्यानुरूढं पुष्करद्वीप इति नाम॥ अथ कथं पुष्करार्द्धसञ्ज्ञा? मानुषोत्तरशैलेन विभक्तार्धत्वात्पुष्करार्धसञ्ज्ञा॥ अत्राह किमर्थं जम्बूद्वीप-हिमवदादिसंख्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे कथ्यते? न पुनः कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे? इत्यत्रोच्यते—

हिमवन्तौ|इत्यादि||कुतः*व्याख्यानतः*	=हिमवान कुलाचल इत्यादिक क्योंकर हैं (इससूत्रके) व्याख्यानसे (जंबूद्वीपसे पुष्करार्द्ध विषैं दोदोभरत दोदोहिमवान् कुलाचल इत्यादिक) हैं
यथा*धातकीखण्डे|हिमवत्-आदीनाम्|विष्कम्भः||	=जैसे धातकीखंडमें हिमवान् आदिक (कुलाचलों)का विस्तार है
तथा*पुष्करार्धे||हिमवत्-आदीनाम्|	=तैसे पुष्करार्धविषैं हिमवान् आदिक (कुलाचल) निका
विष्कम्भः|द्विगुणः|इति*व्याख्यायते। नामानि||	=(विस्तार) दुगुना है इसप्रकार विवरण कियागया है। नाम
तानि||एव*इष्वाकारौ|मन्दिरौ| च*	=तेही हैं दो इष्वाकारपर्वत और दो (पूर्वमें मन्दिर नामा और पश्चिममें विद्युन्माली)मेरु
पूर्ववत्* यत्र* जम्बूद्वीपे|जम्बूवृक्षः| तत्र*	=पहिले (धातकीखंडद्वीप) के समान हैं। यहां जम्बूद्वीपमें जंबूवृक्ष है। वहां(पुष्करद्वीपमें)
पुष्करम्||सपरिवारम्|| ततः* एव* तस्य|	=पुष्करवृक्ष (चारोंओर अपने छोटे२) परिवार(के वृक्षों) सहित है। वहांसे ही तिस
द्वीपस्य|अनुरूढम्||पुष्करद्वीपः|इति*नाम||	=द्वीपकी सार्थकसंज्ञा (=अनुरूढ)पुष्करद्वीप ऐसानाम वा संज्ञा है
अथ*कथम्*पुष्कर-अर्द्ध-संज्ञा।? मानुषोत्तर-	=आगे (=अथ)किसप्रकार (इसद्वीपका) पुष्करार्द्ध नाम है (उत्तर) मानुषोत्तर-
शैलेन|विभक्त-अर्द्धत्वात्||पुष्करार्द्ध-	=पर्वतकरि विभाग आधे आधे होनेसे पुष्करार्द्ध
संज्ञा||	=नाम है अर्थात् मानुषोत्तरपर्वत ने इसद्वीपके मध्यमें पतनकरि अथवा अवस्थित होकर दोभाग करदिये हैं इससे पुष्करार्द्ध ऐसा नाम है
अत्र*आह। किम्-अर्थम्||जम्बूद्वीप-हिमवत्-	=(प्रश्न) यहां पूछता है कि किसलिये जंबूद्वीपके हिमवान्
आदिसंख्या||द्विः*आवृत्ता|पुष्करार्द्धे||कथ्यते।	=आदिककी गणना दुगुणीवार (=द्विःआवृत्ता) पुष्करार्द्धद्वीपविषैंवर्णित है
न*पुनः*कृत्स्ने||एव*पुष्करद्वीपे||	=बहुरि समस्त (=कृत्स्ने)ही पुष्करद्वीपमें (भरतादिकक्षेत्र) क्यों नहीं कहेगये हैं। आधेमें क्यों कहेगये हैं ? (कृत्स्ने और द्वीपे पुंलिंग नपुंसकलिंग दोनों लिंगोंमें आते हैं)
इति*अत्र*उच्यते।	=ऐसा (प्रश्न होने पर) यहां (इसअवसर पर) (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यदेशभागी वलयवृत्तो मानुषोत्तरो नामशैलः। तस्मात्प्रागेव मनुष्या न बहिरिति। ततो न बहिः पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति। नास्मादुत्तरं कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अन्यत्रोपपादसमुद्घाताभ्यां। ततोऽस्यान्वर्थसञ्ज्ञा॥ एवं जम्बूद्वीपादिष्वर्धतृतीयेषुद्वयोश्चसमुद्रयोर्मनुष्या-

(१)सूत्रम्—प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः। (अन्यपाठ) प्राग्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

सूत्रार्थः—प्राग्-मानुषोत्तरात्५।१ मनुष्याः१।३	=मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले देश वा स्थानमें मनुष्य है अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीखंड और पुष्करद्वीपके उरेके आधेभागमें ऐसे अढ़ाई द्वीपमें मनुष्य हैं
वृत्त्यनुवादः—पुष्करद्वीप-बहु-मध्य-देश-भागी१।१	=पुष्करद्वीपके बहुतबीच (=बीचाबीचही) का स्थान(=देश) भागमें
वलय-वृत्तः१।१ मानुषोत्तरः१।१ नामशैलः१।१	=वलयाकार वृत्तरूप मानुषोत्तर नामक पर्वत है
तस्मात्५।१ प्राक्*एव*मनुष्याः१।३ न* (२)बहिस्*इति*	=तिस (मानुषोत्तर पर्वत) से पहिलेही मनुष्य हैं बाहिर नहीं हैं
ततः*न*बहिस्*पूर्वोक्त-क्षेत्र-विभागः१।१ अस्तिT	=तिस(मानुषोत्तर पर्वत) से बाहिर (बहिस्) प्रथमवर्णित क्षेत्रों का विभाग नहीं है।
न*अस्मात्५।१ उत्तरम्१।१ कदाचित्*अपि*विद्याधराः१।३	=न इस (मानुषोत्तर) से आगे कभी भी विद्याधर (और)
ऋद्धिप्राप्ताः१।३ अपि*(३)मनुष्याः१।३ गच्छन्तिT अन्यत्र*	=ऋद्धिधारी भी मनुष्य, उपपाद और समुद्घातोंसे अतिरिक्त, गमन करते हैं
उपपाद-समुद्घाताभ्याम्५।२	(भावार्थ-मूलदेहको न छोड़कर उपपादसे और समुद्घातसे आत्माके प्रदेश अढ़ाई द्वीपसे बाहिर जाते हैं बिना उपपाद और समुद्घातके आत्माके प्रदेश बाहिर नहीं जाते हैं)
ततः*अस्य६।१ अन्वर्थ-संज्ञा१।१ एवम्*जंबूद्वीपादिषु७।३	=तिससे इस (मानुषोत्तर पर्वत) का सार्थक नाम है। इसप्रकार जम्बूद्वीप आदिक
अर्द्धतृतीयेषु७।३ द्वयोः७।२ च समुद्रयोः७।२ मनुष्याः१।३	=अढ़ाई (द्वीपों) और दो (लवणोद और कालोद) समुद्रोंमें मनुष्य

(१) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ समुद्घात=सात प्रकार हैं, इनके विशेषके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६ से १२१ तक॥ (२) बहिस् अथवा बहिस् (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३४१) दोनों ठीक हैं॥ बहिस् के लिये देखो अमरकोश २४ अव्ययवर्ग श्लो०१७ 'समानित्ये-बहिर्बाह्ये' (३) "बहुरि जलचर जीव तथा विकलत्रयत्रस भी नहीं जाय हैं। तहां उपजे भी नहीं हैं" देखो इससूत्रपर जयचन्द्रायकृत वचनिका

वेदितव्याः ॥ ते द्विविधाः ॥

॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्त इत्यार्याः । ते द्विविधाः । ऋद्धिप्राप्तार्या अनृद्धिप्राप्तार्याश्चेति ॥ अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः । क्षेत्रार्या जात्यार्याः कर्मार्याश्चारित्रार्या दर्शनार्याश्चेति ॥ ऋद्धिप्राप्तार्याः सप्तविधाः । बुद्धिविक्रियातपोबलौषधरसाक्षीणभेदात् ॥ म्लेच्छा द्विविधाः । अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाश्चेति ॥ तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदधेरभ्यन्तरेऽष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरेषु चाष्टौ, हिमवच्छिखरिणो-

---

वेदितव्याः ते द्विविधाः =जानना चाहिये ते (मनुष्य) दो प्रकार हैं ॥

सूत्रम्–आर्या म्लेच्छाश्च ॥३६॥=(मनुष्याः) आर्या म्लेच्छाश्च भवन्ति ॥३६॥

सूत्रार्थः–मनुष्याः आर्याः म्लेच्छाः च*भवन्ति =मनुष्य आर्य और (=च) म्लेच्छ होते हैं

वृत्त्यर्थः–गुणैः गुणवद्भिः वा*अर्यन्ते इति*आर्याः =गुणों करि अथवा गुणवान पुरुषोंकरि सेवेजाय हैं ऐसे आर्या हैं

ते द्विविधाः ऋद्धिप्राप्त-आर्याः च*अन्-ऋद्धिप्राप्त- =ते (आर्या) दो प्रकार हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्या और अनऋद्धिप्राप्त

आर्याः इति*अनृद्धिप्राप्तार्याः पञ्चविधाः =आर्या । अनृद्धिप्राप्त आर्य पांच प्रकार हैं ।

क्षेत्र-आर्याः जाति-आर्याः कर्म-आर्याः चारित्रआर्याः =क्षेत्र-आर्य, जाति आर्य, कर्म आर्य, चारित्र आर्य,

दर्शन-आर्याः च*इति* । ऋद्धि-प्राप्त-आर्याः =और (=च) दर्शन आर्य ऐसे हैं । ऋद्धि प्राप्त आर्य

सप्त-विधाः बुद्धि-विक्रिया-तपस्-बल-औषध-रस- =सात प्रकार, बुद्धिऋद्धि, विक्रियाऋद्धि, तपोऋद्धि, बलऋद्धि, औषधऋद्धि, रसऋद्धि

अक्षीण-भेदात् =अक्षीणऋद्धि भेदोंकरि, हैं(इनके भेद, प्रभेदके वास्तेदेखो प०अय०वच० २३१से२४०)

म्लेच्छाः द्वि-विधाः अन्तर्द्वीपजाः कर्मभूमिजाः च इति =म्लेच्छ (म्लेच्छ, म्लिश) दो प्रकार हैं अन्तर्द्वीपमें उत्पन्नहुये, और कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये

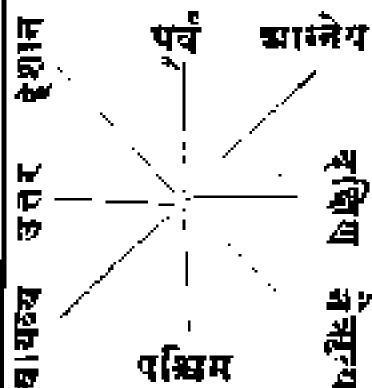
तत्र*अन्तर्द्वीपजाः लवणोदधेः =तहां अंतर्द्वीपज लवणसमुद्र के

अभ्यन्तरे अष्टासु दिक्षु अष्टौ =भीतर (=अभ्यन्तरे) आठ (पूर्व, ईशान्य वा ईशान, उत्तर, वायव्य, पश्चिम, नैऋत्य वा नैऋत, दक्षिण, आग्नेय वा अग्नि) दिशामें (दिक्षु) आठ (अन्तर्द्वीप)

तद्-अन्तरेषु च*अष्टौ हिमवत्-शिखरिणोः =तथा तिन(दिशाओं के अंतराल वा मध्यमें आठ (अंतर्द्वीप) और हिमवत् शिखिरीपर्वत

रुभयोश्च विजयार्द्धयोरन्तेष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकायास्तिर्यक्पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शैलान्तेषु द्वीपाः षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपाः शतयोजनविस्ताराः । विदिक्ष्वन्तरेषु च द्वीपास्तदर्धविष्कम्भाः ।

उभयोः च विजयार्द्धयोः अन्तेषु	=दोनोंके (पूर्व और पश्चिम) और दोनों वैताढ्यों के (पूर्व और पश्चिम के) अन्तविषैं
अष्टौ	=आठ हैं (अर्थात् सब मिलकर चौवीस अंतर्द्वीप हैं)
तत्र दिक्षु द्वीपाः वेदिकायाः तिर्यक्	=तहां (आठ) दिशाविषैं अन्तर्द्वीप (=जम्बूद्वीपकी) वेदिकाके तिर्यक्
पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति विदिक्षु च	=पांचसौ योजन (समुद्र में) प्रवेश होते हैं और (=च) विदिशा
अन्तरेषु द्वीपाः पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु	=अन्तराल में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीप की वेदिका से) पांचसो पचास योजन
गतेषु भवन्ति । शैल-अन्तेषु द्वीपाः	=परे (समुद्रमें) हैं । पर्वतों के अन्त में (आठ) अन्तर्द्वीप (जम्बूद्वीपकी वेदीसे)
षट्सु योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु	=छहसौ योजन परे (=गतेषु) (समुद्र में) है । (आठ) दिशाओंमें
द्वीपाः शतयोजन-विस्ताराः; विदिक्षु अन्तरेषु च	=अन्तर्द्वीप सौ सौ योजन विस्तार वाले हैं । बहुरि (=च) (आठ) विदिशाअंतरालमें
द्वीपाः तद्-अर्ध-विष्कम्भाः	=अन्तर्द्वीप उन (आठ आठ दिशा वाले अन्तर्द्वीपों से) आधे आधे अर्थात् पचास पचास योजन विस्तार वाले हैं



(१) ज्योतिष विषयमें आठ दिशा मानी गई हैं और यहां पर पूज्यपाद स्वामी ने अन्तर्द्वीपोंके विस्तारके संबन्धमें सामान्य कथन किया है इसलिये आठ दिशाके अन्तर्द्वीपोंका जो जम्बूद्वीपकी वेदिकासे पांचसौ योजन समुद्र में परे हैं सौ सौ योजन विस्तार कहा है परन्तु बहुधा करि संसारमें चारदिशा पूर्व, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण प्रसिद्ध हैं और चारही विदिशा ईशान, वायव्य, नैऋत्य, आग्नेय प्रसिद्ध हैं इसलिये पं० जयचन्द्ररायजी ने सर्वार्थसिद्धिकी वचनिकामें पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, चार ही दिशा मान कर और ईशान वायव्य, नैऋत, आग्नेयको विदिशा मानकर विशेषतः यह कथन किया है कि "तहां दिशानि के (चार) द्वीप तो जम्बूद्वीप की वेदी तैं पांचसौ योजन परैं समुद्र में हैं तिनका सौ सौ योजन विस्तार है। बहुरि विदिशानि कैं (चार) द्वीप वेदीनितैं पांचसो योजन परे हैं तिनका विस्तार पचावन पचावन (५५) योजन का है बहुरि दिशा विदिशानिके अन्तरालके(आठ)द्वीप वेदी तैं पांच से पचास योजन परैं हैं। तिनिका विस्तार पचास पचासयोजनका है" ॥

शैलान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्ताराः। तत्र पूर्वस्यां दिश्येकोरुकाः। अपरस्यां दिशि लांगूलिनः उत्तरस्यां दिश्यभाषकाः। दक्षिणस्यां दिशि विषाणिनः। विदिक्षु शशकर्णशष्कुलीकर्ण कर्णप्रावरण लम्बकर्णाः

शैल—अन्तेषु[७/३]	=(हिमवान्-शिखरी और दो विजयार्द्ध) पर्वतोंके (आठ) छोरोंमें वा आठ प्रान्तोंमें (आठ द्वीप)
पञ्चविंशतियोजन-विस्ताराः[१/३]	=पचीस पचीस योजन विष्कम्भ के धारक हैं
तत्र पूर्वस्याम्[७/१] दिशि[७/१] एक-ऊरुकाः[१/३]	=वहां पूर्वदिशामें (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले) एक जांघ के (ऊरुका) धारक हैं अर्थात् एक टांगवाले मनुष्य पूर्वी अन्तर्द्वीपमें निवास करते हैं
अपरस्याम्[७/१] दिशि[७/१] लांगूलिनः[१/३]	=पश्चिम दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) पूंछ वाले हैं
उत्तरस्याम्[७/१] दिशि[७/१] अभाषकाः[१/३]	=उत्तर दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) वचन रहित गूंगे हैं
दक्षिणस्याम्[७/१] दिशि[७/१] विषाणिनः[१/३]	=दक्षिण दिशा में (जो अन्तर्द्वीप है उसमें रहने वाले मनुष्य) सींग वाले हैं
(१) विदिक्षु[७/३]	=(चार) विदिशाओं (ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्य-आग्नेय) में (जो अंतर्द्वीप हैं उनके मनुष्य)
शशकर्ण—	=खरहा के सदृश कानवाले (=शशकर्ण) मनुष्य हैं (शशक-खरहा-ससा एकार्थी हैं)
शष्कुलीकर्ण —	=साकल वा शाकली कहिये पवकी नालीके समान हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य अर्थात् एक प्रकार के मच्छ सदृश हैं कान जिनके ऐसे मनुष्य होते हैं
(२) कर्ण-प्रावरण—	=कान ही है ओढ़ने और ढकने का दुपट्टा वा उपकरण जिनके अर्थात् अंतर्द्वीप के रहने वाले वे मनुष्य जिनके चादरा वा उससे और बड़े बड़े कान हैं जिनमेंसे एक कान वह बिछा सकते हैं दूसरे को ओढ़ सकते हैं
लम्बकर्णाः[१/३]	=(भिन्न भिन्न) लम्बाई के कानों सहित अन्तर्द्वीप वासी मनुष्य हैं ॥

(१) विदिक्षु:—इस शब्द को मुद्रणयंत्र वालों ने तथा लेखकोंने असावधानीसे किसी किसी हस्त लिखित लिपिमें उत्तर वाक्य "अश्व-सिंहश्वमहिश इत्यादि में मिलाकर" "विदिक्ष्वश्वसिंहश्वमहिश इत्यादि" लिखदिया है तथा छापदिया है। किसी किसी प्रतिमें इस शब्दके आगे पीछे एक एक विराम का चिह्न देकर "।विदिक्षु।" ऐसा लिखा है। कहीं पर दोनों वाक्यों को एक कर दिया है जिससे यह नहीं जान पड़ता है कि यह शब्द विदिशाओं से संबन्ध रखता है अथवा विदिशाओं के बीच २ में जो दिशायें हैं उनसे सम्बन्ध रखता है हमने इसको सबसे प्रथममें लिखा है इससे स्पष्ट होजाय कि यह प्रथम वाक्य से सम्बन्ध रखता है। और ईशान-वायव्य-नैर्ऋत्य-आग्नेय विदिशाओं का द्योतक है

(२) 'कर्ण-प्रावरण' के स्थान में 'प्रावरण' ऐसा सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें अशुद्ध छप गया है। क्योंकि हमने हस्तलिखित तीन प्रतियोंसे मिलाया तो सबमें 'कर्ण-प्रावरण' निकला दूसरे यह कि मुद्रित राजवार्तिक, तथा पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित राजवार्तिक

अन्तरेषु अश्वसिंहश्वमहिषवराहव्याघ्रकाककपिमुखाः ॥ मेघविद्युन्मुखाःशिखरिण उभयोरन्तयोः

	पूर्व-उत्तर-पश्चिम-दक्षिण चार दिशाओं तथा ईशान-वायव्य-नैऋत्य-आग्नेय चार विदिशाओंके
[१]अन्तरेषु ७।३।(दिक्षु ७।३)	=अंतरालोंमें-अन्तदिशाओंमें अर्थात् चारदिशा चार विदिशाओंके बीच बीच की(आठ)दिशाओंमें जो अंतर्द्वीप हैं उनमें रहनेवाले मनुष्य
अश्व-मुखाः १।३।सिंह-मुखाः १।३,श्व-मुखाः १।३।	=घोड़ा के सदृश मुखवाले, सिंह सरीखे मुखवाले, कुत्ता सम मुखवाले,
महिष-मुखाः १।३।वराह-मुखाः १।३,व्याघ्र-मुखाः १।३।	=भैंसा समान मुखवाले, सूकर सम मुखधारक, बघेराके सदृश मुखधारक
[२]काक-मुखाः १।३।कपि-मुखाः १।३। ॥	=काक समान मुखवाले वा कऊआ सदृश मुखके धारक, बंदरके समान मुखवाले, होते हैं ॥
मेघ-मुखाः १।३।विद्युन्मुखाः १।३।शिखरिणः ६।१।	=मेघ मुखवाले और बिजलीके सदृश मुखवाले (मनुष्य) शिखिरी पर्वतके
उभयोः ६।२।अन्तयोः ७।२।	=दोनों (पूर्व-पश्चिमके) अंतोंमें-छोरोंमें (दो अंतर्दीपों में बसने वाले) हैं

तथा दो हस्त लिखित अन्य प्रतियें जो हमको इन्द्रप्रस्थके मन्दिरोंसे प्राप्त हुई हैं सबमें ही 'कर्णप्रावरण' पाठ है। इसके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है कि 'म्लेच्छा द्विविधा वेदितव्याः इत्यादि से······सर्वे ते पल्योपमायुषः पर्यन्त सर्वार्थसिद्धिवृत्ति और राजवार्तिकका लेख लगभग एकही है ॥ तीसरे यह कि 'प्रावरण' का अर्थ दुपट्टा है केवल'प्रावरण'का बिना कर्ण शब्द लाये हुये कुछभी अर्थ नहीं होसकता है अतःपाठ शुद्ध करके लिखा है ॥

(१) 'अन्तरेषु' शब्द के सम्बन्ध में हमारी वही टिप्पणी है जो हमने पृष्ठ ७७ में 'विदिक्षु' शब्द के सम्बन्ध में दी है।

(२) 'काक' शब्दके पश्चात् 'घूक' शब्द दो हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि वृत्तियोंसे मिलाया गया उनमें किसीमें नहीं है। 'घूक' का अर्थ घुग्घू वा उल्लू है। पं० जयचन्द्रायजीने 'श्वान के सदृश मुखवाले' वा श्वानमुखा अपनी वचनिकामें नहीं लिखा है परन्तु 'उलूकमुखा' 'काक मुखा' लिखा है सम्भव है कि जिस प्रतिसे उनने वचनिका की हो उसमें "श्वमुखा"नहो और'काकघूकमुखाः'हो जैसा कि सर्वार्थसिद्धि की दोनों मुद्रित आवृत्तियों से प्रगट है ॥ राजवार्तिकको मुद्रित तथा हस्तलिखित दोनों प्रकारकी प्रतियों में "अश्व सिंह-श्व-महिष-वराह-व्याघ्र-उलूक-कपिमुखाः" ऐसा पाठ है अर्थात् "काकघूकमुखाः" के स्थान में 'उलूकमुखाः' शब्द है यदि हम यह मानलें कि शुद्धपाठ वाली सर्वार्थसिद्धिमें 'घूक' शब्द नहीं है तो 'काकमुखाः' के स्थान में'उलूक मुखाः'रहजाता है ॥ हमने एक बहुत प्राचीन हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिसे ऊपर का पाठ उद्धृत किया है उसमें 'घूक' शब्द नहीं है अतः घूक शब्द छोड़दिया है हमारे विचारमें उपर्युक्त आठ अन्तर्दिशाओंमें नो प्रकारके मुखवाले नहीं होसकतेहैं। भूल होतो पाठक कृपया सूचित करें ॥

मत्स्यमुखकालमुखाः हिमवत उभयोरन्तयोः। हस्तिमुखा आदर्शमुखाः उत्तरविजयार्द्धस्योभयोरन्तयोः। गोमुखमेषमुखाः दक्षिणदिग्विजयार्धस्योभयोरन्तयोः। एकोरुका मृदाहारा गुहावासिनः शेषाः पुष्पफलाहारा वृक्षवासिनः सर्वे ते पल्योपमायुषः॥ ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयोजनोत्सेधाः॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः॥

मत्स्य-मुखाः१।३ काल-मुखाः१।३ (१)	=मच्छ वा मच्छलीके समान मुखवाले और काले वा कालेनीले (=काल) मुखवाले
हिमवतः६।१ उभयोः७।२ अन्तयोः७।२	=हिमवान् कुलाचलके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (दो अन्तर्द्वीपोंके रहनेवाले) हैं
हस्ति-मुखाः१।३ आदर्श-मुखाः१।३	=हस्ती समान मुखवाले (मनुष्य) और दर्पन समान मुखवाले (मनुष्य)
उत्तरविजयार्द्धस्य६।१ उभयोः७।२ अन्तयोः७।२	=उत्तर वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) छोरोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
गो-मुखाः१।३ मेष-मुखाः१।३	=गौ सदृश मुख धारक (मनुष्य) और मेडा वा भेड़ समान मुखवाले (मनुष्य)
दक्षिणदिग्विजयार्धस्य६।१ उभयोः७।२ अन्तयोः७।२	=दक्षिण दिशिके वैताड्य पर्वतके दोनों (पूर्व-पश्चिम) अन्तोंमें (अन्तर्द्वीपोंमें) हैं
एक-(२)ऊरुकाः१।३ मृद्-आहाराः१।३ गुह-आवासिनः१।३	=एक जांघवाले मनुष्य मिट्टीका आहार करनेवाले हैं (और) गुफाओंमें रहनेवाले हैं
शेषाः१।३ पुष्प-फल-आहाराः१।३ वृक्ष-वासिनः१।३	=अवशेष मनुष्य (जो अंतर्द्वीपों में रहते हैं) फूल फलके आहारी हैं पेड़ोंके वासी हैं
सर्वे१।३ ते१।३ पल्योपम-आयुषः१।३। ते चतुर्विंशतिः१।१	=वे समस्त पल्य प्रमाण आयुके वा स्थितिके धारक हैं। वे चौवीसों
अपि* द्वीपाः१।३ जल-तलात्५।१ एक-योजन-उत्सेधाः१।३	=ही (अन्तर) द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं वा जोजनके उंचाई वाले हैं
लवण-उदधेः६।१ बाह्य-पार्श्वे७।१ अपि* एवम्*	=लवण समुद्रके बाहिरी चक्र वा बाहिरी परिधिमें (=बाह्य-पार्श्व) भी ऐसे
चतुर्विंशतिः१।१ द्वीपाः१।३ विज्ञातव्याः१।३	=चौवीस (अन्तर) द्वीप जानना चाहिये अर्थात् चौवीस अन्तरद्वीप जो ऊपर कहे और जो लवण समुद्रकी भीतरी परिधिमें हैं वे और चौवीस ये बाहिरी परिधिके सब ४८ भये॥
तथा* कालोदे७।१ अपि* वेदितव्याः१।३	=वैसे ही (जैसा कि ऊपर कहचुके हैं) कालोदधि समुद्रमें भी (४८ अन्तर्द्वीप) हैं अर्थात् चौवीस अन्तर्द्वीप कालोदधिकी भीतरी परिधि सम्बन्धी और चौवीस ही

(१) काल = काला, कालानीलामिश्रित (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ १०६ वैद्यमहाशयका कोशपृष्ठ १८५)॥ (२) ऊरु = जांघ, ऊरुक = जांघवाला, जांघधारक

बाहिरीपरिधि सम्बन्धी ऐसे सब कालोदधि सम्बन्धी अड़तालीस अन्तर्द्वीपहुये । अतः लवणोदधि औरकालोदधिके सब छ्यानवे अन्तर्द्वीप हुये ॥

(१) हमारे यहां आचार्योंमें पूज्यपाद स्वामीके मतमें तथा श्रीमद्विद्यानन्दिके मतमें छियानवें (अड़तालीस लवनोदधि-सम्बन्धी और अड़तालीस कालोदधि सम्बन्धी) अन्तर्द्वीप हैं राजवार्तिकके रचयिता श्रीमद्भट्ट 'अकलंकदेवके मतमें अड़तालीस (चौबीस लवनोदधि सम्बन्धी और चौबीस कालोदधि सम्बन्धी)ऐसे केवल अड़तालीस अन्तर्द्वीप हैं । "जयचंद्राय जी ने अड़तालीसका उल्लेख किया है । पं० सदासुखजीने, पं० गोपालदासजी इत्यादि ने छियानवे का ॥ श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में हिमवान् पर्वतके सम्बंधी छप्पन अंतर्द्वीप माने हैं और "इसी प्रकार छप्पन अन्तरद्वीप शिखरी पर्वत संबंधी भी" माने हैं ॥ 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' के पृष्ठ ८७ को देखो ॥

"ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः जलतलादेक योजनोत्सेधाः ॥ लवणोदधेर्बाह्यपार्श्वेऽप्येवं चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः ॥ तथा कालोदेऽपि" वेदितव्याः ॥ सर्वार्थसिद्धि वृत्ति प्रथम संस्करण पृष्ठ २४४ और द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १४१ । इसके अनुवाद के वास्ते देखो पृष्ठ ७९ ॥ हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धि का आशय यही है परन्तु पाठ तनिक भिन्न है ॥ वह इस प्रकार है कि "ते चतुर्विंशति द्वितीय पक्षेपि उभयोस्तटयोश्चत्वारिंशद्वीपा जलतलादेक योजनोत्सेधाः ॥ तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः" =वे चौबीस अन्तर्द्वीप पक्षान्तरमें (अर्थात् दूसरी कल्पनामें और दूसरे मतमें) भी (लवणोदधिके)दोनों भीतरी बाहिरी तटोंमें चौबीस चौबीस अन्तर्द्वीप जलके तलसे एक योजन ऊंचे हैं । कालोदधिकेभी इतनेही जानना चाहिये ।

"तत्राद्यास्ताश्च लवणोदस्योभयोस्तटचत्वारिंशत् तथा कालोदस्य इति षण्णवतिः" =तहां प्रथम कहे हुये तो लवण समुद्रके दोनों तटोंके अड़तालीस (अन्तरद्वीप) हैं । और कालोदधिके इसप्रकार छियानवें हैं ॥ श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३४७ ॥ जैसे लवण समुद्रमें अन्तरद्वीप अड़तालीस हैं दोऊ तट सम्बन्धी, तैसेही कालोदधि समुद्रमें अड़तालीस जानना ऐसे समस्त छियाणवैं अन्तरद्वीपनिमें कुभोग भूमिया मनुष्य हैं ॥ अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ २०८ ॥ लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रमें ९६ अन्तरद्वीप हैं जिनमें कुभोग भूमिकी रचना है । यहां मनुष्यही रहते हैं उनमें मनुष्योंकी आकृति नाना प्रकारकी कुत्सित है ॥ सिद्धान्तप्रवेशिका पृष्ठ १३४ ॥ ते चतुर्विंशतिरपिद्वीपाः जलतलादेकयोजनोत्सेधाः तथा कालोदेऽपि वेदितव्याः ॥ मुद्रित तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १४५ ॥ यही पाठ हस्तलिखितमें है ="बहुरि ये चौबीसहू अन्तरद्वीप हैं ते जलके तलमें एक एक योजन ऊंचे हैं ॥ जैसे लवणोदधिके विषैं अन्तरद्वीपनिका कथन है तैसेही कालोदधिके विषैंभी जानना" ॥ पं० पन्नालाल दूनीकृत भाषा पृष्ठ ८८६ ॥

"बहुरि ए चौबीसही द्वीपजलके तलतैं एकएक योजन उंचेहैं । ऐसेही कालोद समुद्र विषैं जानना" पं०जयचन्द्रजीकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३४१ हिमवान् पर्वत संबन्धी छप्पन अन्तर्द्वीप सभाष्य० (पृष्ठ ८६-८७) में कहने के पश्चात् उल्लेख किया है कि "इसी प्रकार छप्पन अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत सम्बन्धी भी जानना चाहिये" 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' पृष्ठ ८७ ॥ इसके पश्चात् चरणटिप्पणी ऐसे ही है । श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०की चरणटिप्पणीः— "यह अन्तरद्वीपका भाष्य प्रायः नष्ट होगया है, कई दुर्विदग्ध छ्यानवे अन्तरद्वीप भाष्यमें लिखतेहैं किन्तु यह अनार्ष है, क्योंकि आर्ष जीवाभिगमादि ५६ही मिलता है । वाचक परंपरासे यह भेद नहीं है क्योंकि सूत्रका उल्लंघन नहीं होता । इसलिये इष्टसिद्धान्त भाष्यको नष्ट किया है" ॥

त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः कर्मभूमिजाश्चशकयवनशबरपुलिन्दादयः॥ काःपुनः कर्मभूमय इत्यत आह—

॥ भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥३७॥

ते$\frac{1}{3}$।एते$\frac{1}{3}$।अन्तर्द्वीपजाः$\frac{1}{3}$।म्लेच्छाः$\frac{1}{3}$।कर्म-भूमिजाः$\frac{1}{3}$।च❀	=ते इतने अन्तरद्वीपोंमें उत्पन्नहुये म्लेच्छ हैं। और (=च) कर्मभूमिमें उत्पन्नहुये
शक-यवन-शबर-पुलिन्द-आदयः$\frac{1}{3}$।पुन❀कर्म-	=शक-यवन-शबर-पुलिन्द आदि (म्लेच्छ) हैं। (प्रश्न) पुनि कर्म-
भूमयः$\frac{1}{3}$।काः$\frac{1}{3}$।इति❀अतः❀आहT	=भूमियें क्या हैं। ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[1]सूत्रम्—	=भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः[2]।
	=भरतैरावत विदेहाः(पञ्च, पञ्च, पञ्च, एताः) कर्मभूमयः भवन्ति,अन्यत्र(पञ्च)देवकुरुभ्यः,(पञ्च)उत्तरकुरुभ्यः।३७।
सूत्रार्थः—पञ्चदेवकुरुभ्यः$\frac{5}{3}$।	=(पांच मेरु सम्बन्धी)पांच देवकुरु[3] (जहां उत्तम भोग भूमि प्रवर्तती है और)
पञ्चउत्तरकुरुभ्यः$\frac{5}{3}$।अन्यत्र❀	=(पांचमेरु सम्बन्धी पांच उत्तर कुरु[3] (जहांभी उत्तम भोग भूमि वर्ते है)कोछोड़कर
पञ्च$\frac{1}{3}$।भरताः$\frac{1}{3}$।पञ्च$\frac{1}{3}$।ऐरावताः$\frac{1}{3}$।	=(पांच मेरु सम्बन्धी) पांच भरत क्षेत्र (पांच मेरु सम्बन्धी) पांच ऐरावत क्षेत्र
पञ्च$\frac{1}{3}$।विदेहाः$\frac{1}{3}$।	=(पांच मेरु सम्बन्धी सामान्यरूपसे) पांच (महा[4]) विदेह क्षेत्र (विशेषतासे प्रत्येक मेरुसम्बंधी बत्तीस बत्तीस विदेह ऐसे एकसौ साठ विदेह)
एताः$\frac{1}{3}$।कर्मभूमयः$\frac{1}{3}$।भवन्तिT	=ये कर्म भूमिये[4] हैं॥ (इसकी विशेष टिप्पणी संख्या चारमें नीचे देखो)

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥ (२) पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरुक्षेत्र ऐसे दश क्षेत्र हुये इसलिये सूत्रमें "देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" पञ्चमी बहुवचन लाये हैं यदि एक एक क्षेत्र होता तो पञ्चमी द्विवचन 'देवकुरूत्तरकुरुभ्याम्' ऐसा वाक्य लाते।

(३) पांच मेरुसम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक क्षेत्र ये दश मध्यम भोगभूमियें, और पांच मेरुसम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोगभूमियें, अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवण समुद्र सम्बंधी और अड़तालीस कालोदधि सम्बंधी ये छियानवे जघन्य भोगभूमियें हुई इस प्रकार देवकुरु उत्तरकुरु दश उत्कृष्ट, दश मध्यम और दश जघन्य भोग भूमियें सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हुई

(४) पांच विदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहे हैं वास्तविक 'मे पांच विदेह विशेषरूपसे एकसो साठ हैं। और प्रत्येक विदेहमें पांच म्लेच्छ खंड हैं, और एक आर्य खण्ड है। और पांच मेरुसम्बन्धी पांच भरतक्षेत्र हैं। और पांच ही ऐरावत क्षेत्र हैं। और प्रत्येक भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रमें पांच पांच म्लेच्छ खंड हैं और एक एक आर्य खंड हैं। इस प्रकार विदेह और भरत और ऐरावत समस्त क्षेत्रों में १७० आर्य खण्ड हैं। और ८५० म्लेच्छ खण्ड हैं विशेषरूपसे १७० कर्मभूमियें हैं। सामान्यरूप से १५ हैं अर्थात् १६० विदेहों को पांच महाविदेह पांच मेरु सम्बन्धी कहते हैं॥

भरतैरावतविदेहाश्च पञ्च पञ्च, एताः कर्मभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ तत्र विदेहग्रहणाद्देवकुरूत्तरकुरुग्रहणे प्रसक्ते तत्प्रतिषेधार्थमाह "अन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः" इति ॥ अन्यत्र शब्दो वर्जनार्थः । देवकुरव उत्तरकुरवो हैमवतो हरिवर्षो रम्यको हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते ॥ अथ कथं कर्मभूमित्वं ? शुभाशुभलक्षणस्य कर्मणोऽधिष्ठानत्वात् ॥ ननु सर्वं लोकत्रितयं कर्मणोऽधिष्ठानमेव,

---

वृत्त्यनुवादः—भरत-ऐरावत-विदेहाः च पञ्च =भरत, ऐरावत और विदेहक्षेत्र पांच,

पञ्च एताः कर्मभूमयः इति व्यपदिश्यन्ते =पांच हैं । इतनी कर्म भूमियें इसप्रकार विवरण कीगई हैं ।

तत्र विदेह-ग्रहणात् देवकुरु-उत्तरकुरु- =तहां(सूत्रमें)विदेहके ग्रहणसे देवकुरु और उत्तर कुरुके(जोजम्बूद्वीपकेविदेहवालेभागमेंहैं

ग्रहणे प्रसक्ते तत्-प्रतिषेध- =आदान अथवा उपलब्धिका प्रसंग होनेपर तिस(ग्रहण) के निराकरणके

अर्थम् आह अन्यत्र देवकुरु-उत्तरकुरुभ्यः इति =लिये कहते हैं कि देवकुरु और उत्तरकुरु को छोड़कर (पंद्रह कर्म भूमियें हैं)

अन्यत्र शब्दः वर्जन-अर्थः देवकुरवः =(सूत्रमें) अन्यत्र शब्द निषेध के लिये है ॥ देवकुरुयें,

उत्तरकुरवः हैमवतः हरिवर्षः रम्यकः हैरण्यवतः =उत्तरकुरुयें, हैमवत, हरिवर्ष, रम्यक, हैरण्यवत, और

अन्तर्द्वीपाः भोगभूमयः इति व्यपदिश्यन्ते =अन्तर्द्वीप, भोग भूमियें इस प्रकार व्याख्यानकीगई हैं ॥ भावार्थ यह है कि पांच विदेह सम्बन्धी पांच देवकुरु (उत्तम भोग भूमियें) और पांच उत्तरकुरु (उत्तम भोग भूमियें) पांच मेरु सम्बन्धी पांच हरिवर्ष और पांच रम्यक ये दश मध्यम भोग भूमियें, और पांच मेरु सम्बन्धी पांच हैमवत और पांच हैरण्यवत ये दश जघन्य भोग भूमियें और अड़तालीस अन्तर्द्वीप लवणोदधि समुद्र सम्बन्धी और अड़तालीस ही कालोद समुद्र सम्बन्धी ऐसे छ्यानवे ये जघन्य कुभोग भूमियें, सर्व मिलकर एकसौ छब्बीस हैं । तिन सबको सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें भोगभूमियें कहीं हैं ॥

अथ कथं कर्म-भूमित्वं ? =आगे (=अथ) (पूर्वोक्त पंद्रह क्षेत्रोंके) कर्मभूमिपना कैसे है ॥

शुभ-अशुभ-लक्षणस्य कर्मणः अधिष्ठानत्वात् =(उत्तर)शुभ औरअशुभ लक्षणरूप कर्मके आश्रयतासे(पूर्वोक्तपंद्रहक्षेत्रोंमेंकर्मभूमिपनाहै)

ननु सर्वम् लोक-त्रितयम् कर्मणः अधिष्ठानम् एव =प्रश्न (=ननु) सबतीनों (=त्रितय) लोक (क्या) कर्मके आधारही हैं ॥

तत एवं प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कर्मणोऽधिष्ठानमिति ॥ तत्राशुभकर्मणस्तावत्सप्तमनरकप्रापणस्य भरतादिष्वेवार्जनं, शुभस्य सर्वार्थसिध्यादिस्थानविशेषप्रापणस्य पुण्यकर्मण उपार्जनं, तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य षड्विधस्य कर्मणः

ततः❀एवम्❀प्रकर्ष-गतिः[१।१] विज्ञायते[१] [१]प्रकर्षेण❀यत्[१।१]कर्मणः[६।१] अधिष्ठानम्[१।१] इति❀	=वहां (कर्मभूमिमें कर्मका आधारपना) वास्तविक (=एवं) उत्कर्ष =दशा (=गति) में जाना जाता है (अर्थात्) उत्कृष्टपनासे जो कर्मका =आश्रय है ऐसा भावार्थ है कि आचार्यके इस उत्तर पर कि कर्मके आश्रयपनासे इन पन्द्रह क्षेत्रोंके कर्म भूमिपना है शिष्यने फिर तर्क की कि कर्मके आधार तो तीन लोकही हैं तो तीनों लोक कर्मभूमि क्यों न कहेगये इसपर कहते हैं कि कर्मका आधार तो तीनोंलोकमें अवश्य है। परन्तु जिन स्थानोंमें कर्मका आश्रय अतिशयकरि अथवा उत्कृष्टपनासे पायाजाता है। उन पन्द्रह भूमियोंको कर्मभूमि कहा है। (आगे इस उत्कृष्ट कर्मपनाके दो दृष्टान्त देते हैं)
तत्र❀अशुभ-कर्मणः[६।१]तावत्❀सप्तम-नरक-प्रापणस्य[६।१] भरतादिषु[७।३] एव❀अर्जनम्[१।१]	=तहां अशुभरूपकर्मसे सातवां नर्क तक (=तावत्) =पानेकी(=प्रापणस्य)भरतादिक(पन्द्रहकर्मभूमियों)में ही सिद्धिवा प्राप्ति(=अर्जन)होती है।
शुभस्य[६।१] सर्वार्थसिद्धि-स्थान-विशेष-प्रापणस्य[६।१] पुन्य-कर्मणः[६।१] उपार्जनम्[१।१].तत्र❀एव❀ [२]कृषि-आदि-लक्षणस्य[६।१]षड्-विधस्य[६।१] कर्मणः[६।१]	=(और) शुभरूप (कर्मसे) सर्वार्थसिद्धि (आदिक) विशेष स्थानोंके पानेके =पुण्यकर्मका उपार्जन है। तहां (कर्मभूमियोंमें) ही =खेती करना आदिक लक्षणरूप छः प्रकारके कर्मका

(१) 'प्रकर्ष' शब्द पुल्लिंग है। जब 'प्रकर्षेण' और 'प्रकर्षात्' करण कारक और अपादान कारकोंके एकवचन उत्कृष्टता वा प्रधानताके अर्थमें आते हैं तब उनका प्रयोग अव्ययकी भांति होता है। इसलिये 'उत्कर्षेण' शब्दको पदच्छेदमें अव्यय लिखा है। देखो वैद्यकोश पृष्ठ ४५६ ॥

(२) (क) असिर्मषिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमित्यपि। कर्माणि षड्विधानिस्युः प्रजाजीवनहेतवः ॥ १ ॥ (ख) अत्रासिकर्म सेवायां मषिर्लिपिविधौ स्मृता। कृषिर्भूकर्षणे प्रोक्ता विद्या शास्त्रोपजीवने॥ग॥ वाणिज्यं वणिजां कर्म शिल्पं स्यात्करकौशलम्। तच्च चित्रकलापत्रच्छेदादिबहुधा स्मृतम् ॥३॥

पात्रदानादिसहितस्य तत्रैवारम्भात्कर्मभूमिव्यपदेशो वेदितव्यः ॥ इतरासु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्ते॥ उक्तासु भूमिषु स्थितिपरिच्छेदार्थमाह—

पात्र-दान-आदि-सहितस्य ॥ तत्र-एव आरम्भात् ॥	=प्रशस्त दानादिक (छहकर्मों) सहित तहांही प्रारम्भ होने (के निमित्त) से
कर्म-भूमि-व्यपदेशः वेदितव्यः इतरासु	=(तिन पन्द्रहक्षेत्रोंका) कर्मभूमि नाम जानना चाहिये। अन्य वा दूसरों (क्षेत्र अर्थात् उपर्युक्त छयानवैं कुभोगभूमियोंमें और पूर्वोक्त तीस उत्तम, मध्यम जघन्यभोगभूमियों)में
दश-विध-कल्प-वृक्ष-कल्पित-भोग-अनुभवन-	=दश भांतिके कल्पवृक्षोंसे इच्छित वा वांछित भोगोंका अनुभवन
विषयत्वात् ॥ भोगभूमयः ॥ इति व्यपदिश्यन्ते	=विषय होनेसे भोगभूमियें ऐसे नाम कहेजाते हैं (=व्यपदिश्यन्ते)
उक्तासु ॥ भूमिषु ॥ स्थिति-परिच्छेद-अर्थम् ॥ आह	=कथित (समस्त) भूमियोंमें आयुके अवधिके (=परिच्छेद) लिये कहते हैं कि

असिः ॥ मषिः ॥ कृषिः ॥ विद्या ॥ वाणिज्यं ॥ शिल्पं ॥ इति अपि	= असि, मषि, खेती, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ऐसे भी
कर्माणि ॥ षड्विधानि ॥ स्युः प्रजा-जीवनहेतवः ॥ १ ॥	= छह प्रकार कर्म प्रजाके जीविका (= जीवन) के कारण होते हैं ॥ १ ॥
अत्र असि-कर्म ॥ सेवायाम् ॥ मषिः ॥ लिपि-विधौ ॥	= यहां (कर्मभूमिमें) असिकर्म सेवाविषैं (और) मसी (कर्म) लेखनकार्यमें
स्मृताः ॥ । कृषिः ॥	= स्मरण किया जाता है। (खेती) कृषि
भू-कर्षणे ॥ प्रोक्ता ॥ विद्या ॥ शास्त्र उपजीवने ॥ ॥ २ ॥	= भूमिके जोतनेमें विवर्णितहै (और) विद्या(कर्म) शास्त्रकी जीवकामें वा धंधेमें है
वाणिज्यं ॥ वणिजां । कर्म ॥ शिल्पं ॥ स्यात् कर-	= वाणिज्यकर्म बनियों अथवा व्यापारियों का काम है। शिल्प (कर्म) हाथकी
कौशलम् ॥	= निपुणता, चतुरता वा प्रवीणताहै अर्थात् हस्तसे नानाप्रकारके काममेंचतुराईहै
तत् ॥ च चित्र-	= और। = च (वह शिल्पकर्म) चित्र विचित्र अर्थात् बहुरङ्गी मूर्तियांबनाना(चित्र)
कला-पत्र-	= चौंसठ प्रकारका गाना बजाना आदि (= कला) पर्ण अथवा कागदका
च्छेदादि ॥ बहुधा स्मृतम् ॥	= छेदना, काटना, बनाना, इत्यादि बहुप्रकार(की निपुणता) स्मरण कीजानीहै(२)

(१) देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः । दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

देवपूजा ॥ गुरु-उपास्तिः ॥ स्वाध्यायः ॥ संयमः ॥ तपः ॥	= देवकी पूजा, गुरुकी उपासना, अर्थात् सेवा(उपास्ति) शास्त्रका अध्ययन, संयम, तप,
दानं ॥ च इति गृहस्थानाम् ॥ षट्-कर्माणि ॥ दिने ॥ दिने ॥	= बहुरि दान इस प्रकार गृहस्थोंके छह कर्म प्रत्येक दिनमें(दिनोदिने) होते हैं।

॥ नृस्थिती परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

त्रीणि पल्योपमानि यस्याः सा त्रिपल्योपमा। अन्तर्गतो मुहूर्तो यस्याः सा अन्तर्मुहूर्ता ॥ यथासंख्येन सम्बन्धः ॥ मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिः त्रिपल्योपमा ॥ अपरा जघन्या अन्तर्मुहूर्ता। मध्ये अनेकविकल्पा ॥ तत्र पल्यं त्रिविधं व्यवहारपल्यमुद्धारपल्यमद्धापल्यमिति।

सूत्रम्—नृस्थिती परापरे[1] त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते=नृ-स्थिती-परापरे-त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते-(यथासंख्यम्)

सूत्रार्थ—नृ-स्थिती।।परा-अपरे।।त्रि-पल्योपम-अन्तर्मुहूर्ते।।	=मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट और जघन्य तीन पल्यप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त
यथासंख्यम्।।	=अनुक्रमसे है अर्थात् मनुष्योंकी आयु उत्कृष्ट (=परा) तीन पल्य प्रमाण और जघन्य (=अपरा) अन्तर्मुहूर्त है। और मध्य आयुके अनेक भेद हैं।
वृत्त्यनुवादः—त्रीणि।।पल्योपमानि।।यस्याः।।सा।।	=तीन पल्य प्रमाण है जिसकी सो
त्रि-पल्योपमा।।अन्तर्गतः।मुहूर्तः।यस्याः।।	=त्रिपल्योपमा है। भीतर वा अभ्यन्तर मुहूर्त जिसकी अर्थात् मुहूर्त वा दो घड़ी के भीतर भीतर जिसकी
सा।।अन्तर्मुहूर्ता।।यथासंख्येन।।	=सो अन्तर्मुहूर्ता है। यथासंख्यकरि अथवा संख्याके क्रमसे (इन-परा-अपरा-त्रिपल्योपमा अन्तर्मुहूर्ता शब्दोंका परस्पर)
सम्बन्धः।	=सम्बन्धहै(अर्थात् परा शब्दके साथ त्रिपल्योपमा का सम्बन्ध किया जाताहै और अपराके साथ अंतर्मुहूर्ताका तब निम्नलिखित इसप्रकार अर्थ होगा कि)
मनुष्याणाम्।परा।।उत्कृष्टा।।स्थितिः।।त्रि-पल्योपमा।।	=मनुष्योंका सबसे अधिक जीवनकाल तीनपल्य प्रमाण है ॥
अपरा।।जघन्या।।अन्तर्मुहूर्ता।।मध्ये।अनेक-विकल्पा।।	=सबसेघाटि(आयुवा)जघन्य(आयु)अन्तर्मुहूर्त है। और मध्यविषैं अनेक भेद हैं
तत्र❀पल्यम्।।त्रिविधम्।।व्यवहारपल्यम्।।	=तहां पल्य तीन प्रकार हैं। व्यवहारपल्य,
उद्धारपल्यम्।।अद्धापल्यम्।।इति❀	=उद्धारपल्य और अद्धापल्य ऐसें

---

(१) परापरे, परावरे, पराऽपरे, अथवा पराऽवरे सब वाक्य ठीक हैं ॥ कोई भी वाक्य नृस्थिती वाक्य के पश्चात् लिखा जासक्ता है ॥

अन्वर्थसञ्ज्ञा एताः ॥ आद्यं व्यवहारपल्यमित्युच्यते उत्तरपल्यद्वयस्य व्यवहारबीजत्वात् नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति। द्वितीयमुद्धारपल्यं। तत उद्धृतैर्लोमकच्छेदैर्द्वीपसमुद्राः संख्यायन्त इति। तृतीयमद्धापल्यमद्धाकालस्थितिरित्यर्थः ॥ तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते। तद्यथा—प्रमाणांगुल

अन्वर्थ-संज्ञाः[१/३] एताः[१/३]	=ये (तीनों पल्य) सार्थक नामवाले हैं अर्थात् जैसाजैसा जिसजिस पल्यका नाम है वैसा वैसा उस पल्य का अर्थ है।
आद्यम्[१/१] व्यवहारपल्यम्[१/१] इति उच्यते। उत्तर-पल्य-द्वयस्य[६/१] व्यवहार-बीजत्वात्[५/१]	=प्रथम व्यवहार पल्य (नाम) कहाजाता है क्योंकि (वह व्यवहारपल्य) अग्रिम दो पल्य (उद्धार तथा अद्धा)के व्यवहार अथवा वर्तनेका कारण (=बीजत्वात्) है अर्थात् उद्धार और अद्धापल्यकी उत्पत्ति जाननेके लिये व्यवहारपल्य है।
न अनेन[३/१] किञ्चित् परिच्छेद्यम्[१/१] अस्ति इति	=न इस (व्यवहार पल्य) करि कोई वस्तु (किञ्चित्) प्रमाण कियेजाने योग्य वा विचारनीय है अर्थात् व्यवहार पल्य किसी वस्तुके नापनेके काममें नहींआती है। केवल उसमें रोमोंकी गणना ४५ अंक प्रमाण होती है "प्रथम रोम गिनिदेय"
द्वितीयम्[१/१] उद्धारपल्यम्[१/१] ततः उद्धृतैः[३/३] लोमकच्छेदैः[३/३]	=दूसरी उद्धारपल्य है वहांसे लोमकखंड निकालकरि वा उद्धारकरि (उद्धृतैः)
द्वीप-समुद्राः[१/३] संख्यायन्ते इति तृतीयम्[१/१] अद्धापल्यम्[१/१]	=द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं "दूसरि द्वीप समुद्र गिनै"। तीसरी अद्धापल्य
अद्धा-काल-स्थितिः[१/१] इति अर्थः[१/१]	=बहुत वा उत्कृष्ट (=अद्धा) कालकी स्थितिवाली है ऐसा आशय है।
तत्र आद्यस्य[६/१] प्रमाणम्[१/१] कथ्यते। तद्यथा	=तहां प्रथम (पल्य) का प्रमाण कहाजाता है। जैसे-
प्रमाण-अंगुल	=प्रमाण अंगुल अर्थात् वह अंगुल जो उत्सेधअंगुल व्यवहारअंगुल, प्रचलित-अंगुल अथवा आठ जौके मध्यभागोंके प्रमाणमें पांचसौगुणा है जिसके

(१) तहां आदि मध्य अन्तकरि रहित जिसका दूसरा विभाग न हो ऐसा अविभागी पुद्गल का परमाणु है। सो इन्द्रियकरि ग्रह्या नहीं जाता है। जिसमें एक रस, एक वर्ण, एक गन्ध, दो स्पर्श यह पांच गुण हैं। ऐसा अनन्तानन्त परमाणुओंके समूहोंको अवसन्नासन्न कहते हैं। अवसन्नासन्न आठ मिलै तब एक संज्ञासंज्ञ(वा सन्नासन्न)होता है॥ आठ सन्नासन्न मिलै तब एक तृटरेणु होता है। आठ तृटरेणुका एक त्रसरेणु (त्रसरैन) और आठ त्रसरैन का एक रथरैन (रथरेणु) होय. आठ रथरेणुका एक उत्तम भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग है। आठ उत्तमभोग भूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग मिलै तब एक मध्यमभोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होय। आठ मध्यमभोग भूमिके मनुष्य के बालके अग्र भाग मिलै

परिमितयोजनविष्कम्भायामावगाहानि त्रीणि पल्यानि कुसूला इत्यर्थः। एकादिसप्तान्ताहोरात्र-जाताविवालाग्राणि तावच्छिन्नानि यावद्द्वितीयं कर्तरिच्छेदं नाप्नुवन्ति,

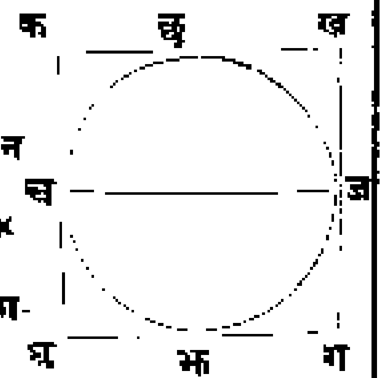
परिमित-योजन-विष्कम्भ-आयाम	=प्रमाण करि अथवा नापे हुये योजन(योजन) भर चौड़ाई (=विष्कम्भ)लम्बाई(=आयाम)और
अवगाहानि॥। त्रीणि॥। पल्यानि॥।	=गहराईवाले (गोल ढोलके आकार) तीनि खाडे वा गढ़े (=पल्यानि)
कुसूला॥ इति॥ अर्थः॥	=भड़ोले वा खत्ते (कुसूला=कुशूला) हैं ऐसा अभिप्राय अथवा आशय है।
एक-आदि-सप्त-अन्त-अहोरात्र-जात-अवि-	=एक से सात तक दिन रातके जन्मे हुये (उत्तम भोगभूमिके) मेढ़ा वा भेड़ (=अवि)के
वाल-अग्राणि॥।तावत्॥ छिन्नानि॥।यावत्॥	=केशका(वाल=बाल) अग्रभाग तब तक छेदकर काटकर जब तक (यावत्)
द्वितीयं॥। कर्तरि-च्छेदं॥। न-आप्नुवन्ति	=दूसरे (लघु) खंड कतर्नी (=कर्तरि,कर्तरी)से प्राप्ति नहीं होसकते हैं (पूर्वोक्त गडाहा)

तब एक जघन्य भोग भूमिके मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है। जघन्य भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग आठ मिलें तब एक कर्म भूमि के मनुष्यके बालका अग्रभाग होता है॥ आठ कर्म भूमिके नरके बालके अग्रभाग मिलें तब एक लीष(=लीख)हो, आठ लीख मिलें तब एक यूका (=जूं) अथवा तिलहो। आठ तिल मिलें तब एक यवमध्य अथवा जौ का मध्यभाग के प्रमाण हो। आठ यवमध्य का एक उत्सेध अंगुल होता है। इस अंगुल-करि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवोंका शरीर तथा अकृत्रिम प्रतिमाका देह मापिये है। बहुरि पांचसे पूर्वोक्त उत्सेध अंगुलका एक प्रमाण अंगुल होताहै॥ सो यह प्रमाण अंगुल अवसर्पिणी कालके पहिले चक्रवर्तीके हाथके अंगुलके बराबर होता है। तिस समय तिस अंगुलकरि गांव नगरादिकका प्रमाण होता है। अन्य काल में मनुष्यों का अपना अपना अंगुल का प्रमाण होता है। अर्थात् जिस काल में जैसा मनुष्य हो उसका अंगुल, इसको आत्म अंगुल कहते हैं। इससे भिन्न भिन्न समय के अनुसार गांव, नगर, भवन, घट, रथ, छत्र, आसन, धुजा, आदि का प्रमाण होता है॥ प्रमाण अंगुलसे द्वीप समुद्र तथा उनकी वेदी, नदी, पर्वत, विमान, नरकके प्रस्तार, जैनधाम, आदि अकृत्रिम वस्तुका विस्तार-आयाम-आदि नापे जाते हैं। छह अंगुल का एक पाद, बारह अंगुल का एक वितस्ति (विलाद, वितस्ति) दो विलांद का एक हाथ, दो हाथ का एक इषु अथवा गज, दो गजका एक धनुष दो सहस्र चापका एक कोश, चार कोशका एक योजन इस लिये पांचसौ व्यवहार योजनका एक प्रमाण योजन होय है। अर्थात् उत्सेध अंगुल के कोश दो सहस्र हों तब एक प्रमाण योजन होता है॥

तादृशैर्लोमच्छेदैः परिपूर्णं घनीभूतं व्यवहारपल्यमित्युच्यते ॥

तादृशैः³।¹लोमच्छेदैः³।¹परिपूर्णम्¹।¹।	=वैसे ही (=तादृशैः) रोमखंडकरि सम्पूर्ण (=परिपूर्ण)
घनीभूतम्¹।¹।व्यवहार-पल्यम्¹।¹।इति॥उच्यते।	=ठोसरूप भराजाता है (=घनीभूतं) सो व्यवहारपल्य इस प्रकार वर्णित की गई है ॥

(१) प्रथम एक महा योजन अथवा प्रमाण योजन लम्बे चौड़े और गहरे इस प्रकार घनाकार रूप महा योजनके गड़हाके लोमच्छेदोंकी संख्या सुगम और विस्तार रूपसे कहते हैं॥ उतनाही लम्बा उतनाही चौड़ा उतनाही गहरा अथवा ऊंचेको घनाकार कहते हैं। इस टिप्पणीको प्रमाणअंगुलकी टिप्पणी पढ़कर और समझ कर पढ़ना चाहिये ॥ एक घनाकार प्रमाण योजन का गढ़ा एक व्यवहार योजन के घनाकार गढ़ेसे पांचसौ गुना लम्बा पांचसौ गुना चौड़ा और पांचसौ गुणा गहरा होता है। और एक व्यवहार योजन चारकोश का होता है। इसलिये प्रमाण योजनका गढ़हा दो सहस्र योजन लम्बा दो सहस्र योजन चौड़ा और दो सहस्र योजन गहरा हुआ। यह प्रकरण कुछ क्लिष्ट है इसलिये निम्नलिखित पाठकोंकी सुगमताके लिये है॥



कखगघ क्षेत्रकी प्रत्येक भुजा कख, खग, गघ, घक। दो दो सहस्र कोस की मानी गई है। एक कोसके २००० चाप ८००० हाथ, ८००० × २४ = १९२००० उत्सेध अंगुल हुये, इसलिये एक महायोजन अथवा दोसहस्रकोसके १९२००० × २००० = ३८४०००००० उत्सेध अंगुल हुये = कख = खग = गघ = घक = चज व्यासके ३८४०००००० × ८ = ३०७२०००००० आड़े जौकेसमान हुये ३०७२००० ००० × ८ = २४५७६००००००० तिल हुये २४५७६००० ००० × ८ = १९६६०८००० ००० लीख, १९६६०८००० ००० × ८ = १५७२८६४००००००० कर्मभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग हुये। १५७२८६४००००००० × ८ = १२५८२९१२००००००० जघन्यभोगभूमि के मनुष्य के बाल के अग्रभाग १२५८२९१२००० ००० × ८ = १००६६३२९६००० ००० मध्यम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग। १००६६३२९६००० ००० × ८ = ८०५३०६३६८००० ००० उत्तम भोगभूमिके मनुष्यके बालके अग्रभाग इस (८०५३०६३६८०००००) संख्यासे एक प्रमाण योजन अथवा एक महायोजनकी लम्बाई, कख रेखाके लोमच्छेद हुये इस संख्या को इसी संख्यासे गुणा करनेसे (क्योंकि कख रेखा खग रेखा के बराबर है) सर्व कखगघ क्षेत्रके, क्षेत्रफलके, रोम छेद आते हैं। अर्थात् वर्ग प्रमाण योजनके लोमच्छेद निकलते हैं ॥

ततः॥वर्ष-शतेः॥। =वहां (उस कूप से) सौ (सौ) वरसमें

८०५३०६३६८००००००
८०५३०६३६८००००००

०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
०००००००००००००००
६४४२४५०९४४००००००
४८३१८३८२०८००००००
२४१५९१९१०४००००००
४८३१८३८२०८००००००
०००००००००००००००
२४१५९१९१०४००००००
४०२६५३१८४०००००००
०००००००००००००००
६४४२४५०९४४००००००

६४८५१८३४९३४१३५१४२४०००००००००००००

इन वर्ग प्रमाण योजन क्षेत्रके लोमच्छेदोंको गहराई(के लोमच्छेदों)से गुणा करदिया जावे तो घनाकार महा योजन वा घनाकार प्रमाण योजनके रोमच्छेद पैंतालीस अंक प्रमाण निम्न लिखित विधि से आते हैं॥ क्योंकि पूर्वोक्त गड्ढा अथवा खंडर की गहराई दो सहस्र कोश है और हम जानते हैं कि दो सहस्र कोशके लोमच्छेद ८०५३०६३६८००००००० हैं॥ गुणन का एक नियम यह भी है कि गुण्य और गुणक अथवा दोनोंमेंसे किसीके अंतमें

जो शून्य हो उनको शेष अंकोंके साथ गुणा करनेके पश्चात् गुणनफलके अंतमें उतनेही शून्य लगादो तो ठीक गुणनफल वैसाही निकलआता है जैसा ऊपर की क्रिया से निकला है ॥ जैसे ५० गुण्य है और ३० गुणक है तो ५ और ३ के गुणनफल १५ के अन्त में दो शून्य रखने से भी १५०० हो जाते हैं और ५०/३० इस रीति से भी १५०० आते हैं सुगमता के लिये हमने नीचे यही विधि ग्रहण की है ॥

५०
३०
००
१५०
१५००

६४८५१८३४६३४१३५१४२४००००००००००००० को

८०५३०६३६८०००००० से गुणा करना है ॥

तो निम्न लिखित अंकोंको गुणाकरके गुणनफलके अन्तमें १८ शून्य रखदो ।

६ ४ ८ ५ १ ८ ३ ४ ६ ३ ४ १ ३ ५ १ ४ २ ४
८ ० ५ ३ ० ६ ३ ६ ८

५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २
३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
१ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ५ २ ७ २
३ ८ ९ १ १ १ ० ० ७ ८ ० ४ ८ १ ० ८ ५ ४ ४
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
१ ९ ४ ५ ५ ५ ५ ० ३ ९ ० २ ४ ० ५ ४ २ ७ २
३ २ ४ २ ५ ९ १ ७ ३ १ ७ ० ६ ७ ५ ७ १ २ ०
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
५ १ ८ ८ १ ४ ६ ७ ७ ० ७ ३ ० ८ १ १ ३ ९ २

५ २ २ २ ५ ५ ९ ५ ४ ० ७ ३ ५ १ ९ ८ ० ३ ४ ७ ३ ० ६ ८ ० ३ २०००००००००००००००००

हमारा गड्ढा व्यवहार पल्यका गोलकूपके आकार है । जैसाकि वृत्ताकार जो वर्गाकार क्षेत्रके भीतर पृष्ठ ८८में है उससे प्रगट है॥चूंकि चौड़ाई क्षेत्रकी एक(योजन)मानी है। तिसका वर्ग १ हुआ तिसको दशसे गुणाकरि वर्गमूल निकालनेसे कूपकी परिधि आतीहै अर्थात् १×१×१० = १० = १०(वर्गमूल) बहुरि विष्कम्भके चौथाईसे गुणा करनेसे अर्थात् ¼ से वृत्तका क्षेत्रफल $\frac{१९}{६} \times \frac{१}{४} = \frac{१९}{२४}$ भया । आजकल पाठशालाओंमें मापप्रकाशक पुस्तकें जो पढ़ाई

आती हैं उनमें वृत्तका क्षेत्रफल मोटे रूपसे गणितके इस नियमसे सिखाया जाता है कि विवक्षित वृत्तके आधे व्यासके वर्गको $\frac{२२}{७}$ से गुणा करदो गुणनफल ही उस वृत्तके क्षेत्रका प्रमाण होगा। वस्तुतः समभग एक ही प्रमाण होगा क्योंकि यहांपर एक व्यास माना है आधेका वर्ग $\frac{१}{४}$ होगा और $\frac{१९}{६}$ मोटे रूपमें १०के वर्गमूलका परिणामहै। और $\frac{२२}{७}$ कुछ सूक्ष्म रूपसे परिणाम है इसमें $३\frac{१}{७}$से आधे व्यासको गुणा करना पड़ताहै उसमें $३\frac{१}{७}$से गुणा करना पड़ता है $\frac{२२}{७}$सेभी अधिक सूक्ष्मरूपमें १०का मापके उच्चकोटाके ग्रन्थोंमें समझायाहै(इसी अध्यायकी टिप्पणी पृष्ठ ७४ पर देखो)गहराई एकयोजन प्रमाण है इसलिये इस घनरूपक्षेत्र अथवा एक योजन कूपका घनरूप क्षेत्रफल गहराईसे गुणा करनेसे निकलता है अर्थात् $\frac{१९}{२४}\times १=\frac{१९}{२४}$ घन रूप है ॥ अब ऊपरके पैंतालीस अक्षरकी संख्याको सुगमताकेलिये घनसंख्या मानो और वाञ्छित निकलनेवाली संख्याको फल मानो तो इसप्रकार त्रैराशिक हुई कि १ को $\frac{१९}{२४}$ से वही सम्बन्ध है जो घनसंख्याको फलसंख्यासे है अर्थात् $१:\frac{१९}{२४}::$घनसंख्या फलसंख्या: इसलिये फलसंख्या = फलसंख्या $\times १=\frac{१९}{२४}\times$ घन-संख्या $=\frac{१९}{२४}\times$ घन संख्या ॥ प्रथम १९ से गुणाकरके पश्चात् भाग २४ का घन संख्यामें देंगे अर्थात् $=\frac{१९}{२४}\times$ घन संख्या ॥

५२२२५५९५४०७३५१९८०३४७३०६८०३२०००००००००००००००००० मानी हुई घन संख्या। इसको उन्नीस से गुणा किया तो गुणनफल

= ९९२२८६३१२७३९६८७६२६५९८८२९२६०८००००००००००००००००००

भाग

२४)९९२२८६३१२७३९६८७६२६५९८८२९२६०८००००००००००००००००००(४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००

९६			
३२	७३	१७९	२२०
२४	७२	१६८	२१६
८२	१९६	११८	४८
७२	१९२	९६	४८
१०८	४८	२२८	
९६	४८	२१६	
१२६	७६	१२२	
१२०	७२	१२०	
६३	४२	२९	
४८	२४	२४	
१५१	१८६	५२	
१४४	१६८	४८	
७२	१८५	४६	
७२	१६८	२४	

इस प्रकार व्यवहार पल्यके समस्त रोम छेदोंकी संख्या निम्न ४५ अक्षर प्रमाण हुई
४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२००००००००००००००००००

अंकनाम, अडिल्ल	अडिल्लका अभिप्राय। इस छंदके सब अंक और शून्य क्रमसे एक दूसरेके ऊपर होंगे
चौ इक तिय चउ पांच दोय षट् तीन हैं	= चार(ऊपर)एक(ऐसेही)तीन,चार,पांच,दो,छह,तीन
नभ तिय नभ वसु दो नभ तिय इक कीन है	= शून्य(= नभ) तीन, बिंदु, आठ, दो, बिंदु, तीन, एक
सत सत सत चौ नौ पन इक दो इक कहे	= सात, सात, सात, चार, नौ, पांच, एक, दो, एक
नौ दो आगे ठारै सुन सरध लहे (कवि द्यानतराय)	= नव,दोय,(फिर एकदूसरेके ऊपर)सब अठारह शून्य देदो तो पल्यके पैंतालीस अंक निकल आते हैं॥

एकैकलोमापकर्षणविधिना यावता कालेन तद्रिक्तं भवेत्तावान्कालो व्यवहारपल्योपमाख्यः ॥ तैरेव लोमच्छेदैः प्रत्येकमसंख्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिन्नैस्तत्पूर्णमुद्धारपल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्काल उद्धारपल्योपमाख्यः॥ तेषामुद्धारपल्यानां दशकोटीकोटय एकमुद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीयोद्धारसागरोपमानां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्राः ॥ पुनरुद्धारपल्यरोमच्छेदैर्वर्षशतसमयमात्रच्छिन्नैः

एक-एक-लोम अपकर्षण-विधिना यावता	=एक एक रोम निकालकरि (=अपकर्षणविधिना) जिस
कालेन तद्-रिक्तम् भवेत् तावान् कालः	=कालकरि वह (कूप) खाली होवै उतना काल
व्यवहार-पल्योपम-आख्यः तैः एव लोमच्छेदैः	=व्यवहार पल्य (के नामसे) प्रसिद्ध है। तिनही लोमच्छेदोंसे
प्रत्येकम् असंख्येय-वर्ष-कोटी-समय-	=एक एकके असंख्यात करोड़ वरसोंके समयके
मात्र-च्छिन्नैः तत् पूर्णम् उद्धार-पल्यम् ॥	=प्रमाण अथवा बराबर (=मात्र) खंडोंसे वह पूर्ण उद्धारपल्य होती है। अर्थात् पूर्वोक्त पैंतालीस अंक प्रमाण व्यवहारपल्यके पृथक् पृथक् रोमके इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने असंख्यात करोड़ वरसके समय होते हैं तब उद्धारपल्यके रोमोंका प्रमाण होता है और
ततः समये समये एक-एकस्मिन् रोमच्छेदे	=वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक प्रत्येक समयमें एक एक(पूर्वविभाजित)लोमछेद
अपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्-रिक्तम् भवति.	=निकालनेमें जिस कालकरि वह रीता होजाता है ॥
तावान् कालः उद्धार-पल्योपम-आख्यः	=वह काल उद्धारपल्योपम(केनाम)से प्रसिद्ध है। इतना समस्तकाल उद्धारपल्यका है।
तेषाम् उद्धार-पल्यानां दश-कोटीकोटयः एकम्	=दश कोड़ाकोड़ी तिन उद्धारपल्योंका एक
उद्धारसागरोपमम् ॥ अर्धतृतीया-	=उद्धारसागरोपम है। अढाई उद्धार
उद्धारसागरोपमानाम् यावन्तः रोमच्छेदाः	=सागर प्रमाणके जितने लोमच्छेद हैं
तावन्तः द्वीप-समुद्राः पुनर् उद्धार-	=तितने द्वीप तथा समुद्र (इस एक राजूवाले तिर्यग्लोकमें) हैं बहुरि उद्धार-
पल्य-रोमच्छेदैः वर्ष-शत-समय-मात्र-च्छिन्नैः	=पल्यके रोमच्छेदोंसे (एक एकके) सौवरसके समयोंके बराबर (मात्र)खंडोंसे

(१) अर्धतृतीया = शब्दशः यह संख्या है जिसमें अर्धभाग तीसरी संख्या हो अर्थात् दो और तीसरी संख्याका आधा अतः अढाई ऐसा अर्थ हुआ ॥

पूर्णमद्धापल्यम् ॥ ततः समये समये एकैकस्मिन्रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्रिक्तं भवति तावान्कालोऽद्धापल्योपमाख्यः ॥ एषामद्धापल्यानां दशकोटीकोट्य एकमद्धासागरोपमम् ॥ दशाद्धासागरोपमकोटीकोट्य एकावसर्पिणी ॥ तावत्यैवोत्सर्पिणी ॥ अनेनाद्धापल्येन नारकतैर्यग्योनीनां देवमनुष्याणां च कर्मस्थितिर्भवस्थितिरायुः स्थितिः कायस्थितिश्च परिच्छेत्तव्या ॥

पूर्णम्$^{1}_{1}$ ॥ अद्धापल्यम्$^{1}_{1}$ ॥	=पूर्ण अद्धापल्य होती है अर्थात् उपर्युक्त उद्धारपल्यके एक एक रोम के इतने इतने खंड किये जांय कि जितने जितने सौ बरसके समय होते हैं तब अद्धापल्यके रोमोंका प्रमाण होता है ॥
ततः*समये$^{7}_{1}$। समये$^{7}_{1}$। एक-एकस्मिन्$^{7}_{1}$।	=वहांसे समय समयमें अर्थात् प्रत्येक समयमें एक एक (पूर्वोक्त खंड किये हुये)
रोमच्छेदे$^{7}_{1}$। अपकृष्यमाणे$^{7}_{1}$। यावता$^{3}_{1}$। कालेन$^{3}_{1}$।	=लोमच्छेद निकालनेमें जिस कालकरि
तद्-रिक्तं$^{1}_{1}$ ॥ भवति। तावान्$^{1}_{1}$। कालः$^{1}_{1}$। अद्धा-पल्योपम-आख्यः$^{1}_{1}$।	=वह खाली होजाता है। उतना काल अद्धापल्योपम (के नाम) से प्रसिद्ध है।
दशकोटीकोट्यः$^{1}_{3}$ ॥ एषां$^{6}_{3}$ ॥ अद्धा-पल्यानां$^{6}_{3}$ ॥	दश कोड़ा कोड़ी इन अद्धापल्योंका
एकं अद्धासागरोपमम्$^{1}_{1}$ ॥ ।दश-अद्धासागरोपम-कोटी-कोट्यः$^{1}_{3}$ ॥	=एक अद्धासागरोपम है। दश कोड़ा कोड़ी अद्धा-सागरोपमका
एक-अव-सर्पिणी$^{1}_{1}$ ॥ ।तावत्*एव*	=एक अवसर्पिणीकाल है ॥ तितनाही (दश कोड़ा कोड़ी अद्धापल्योपमका)
उत्सर्पिणी$^{1}_{1}$ ॥ । अनेन$^{3}_{1}$ ॥ अद्धा-पल्येन$^{3}_{1}$ ॥	=उत्सर्पिणी काल है। इस अद्धापल्यकरि
नारक-तैर्यग्योनीनाम्$^{6}_{3}$। देव-मनुष्याणाम्$^{6}_{3}$। च*	=नारकियों और तिर्यंचोंकी और (=च) देव मनुष्योंकी
कर्मस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥ भवस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥	=कर्मस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥ भवस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥ अर्थात् एक भवकी स्थिति
आयुःस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥ कायस्थितिः$^{1}_{1}$ ॥ च*परिच्छेत्तव्या$^{1}_{1}$ ॥	=आयु स्थिति और (=च) कायस्थिति जानना चाहिये।

(१) एक कायमें अनेक भव धारण करै तिसको कायस्थिति कहते हैं। जैसे पृथिवी अप् तेज वायुकायिक जीवोंके कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है। तिनहीमें उपजबो करै तो एताकालताई उपजबो करै। बहुरि वनस्पतिकायका अनन्तकाल है सो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र है। बहुरि विकलत्रयका असंख्यात सहस्र बरस है। पंचेंद्रिनिकी, तिर्यंच मनुष्यनिकी पृथकत्व कोटि पूर्व अधिक तीनि पल्य है। बहुरि जघन्य कायस्थिति इन सर्वोंकी अन्तर्मुहूर्तमात्र है। बहुरि देवनारकीनिकी भवस्थिति है सोही काय स्थित है। देवसे देव नहीं होतो नारकीसे नारकी नहीं होता यह नियमहै॥

उक्ता च संग्रहगाथा—ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति बोद्धव्वा। संखादीव सम्मुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा तदिये ॥ १॥ यथैवेते उत्कृष्टजघन्ये स्थिती नृणां तथैव—

॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

उक्ता॥ च॥संग्रह-गाथा॥ =बहुरि (पल्यकी कथनकी) संचयकी हुई। अथवा एकत्र कीहुई आर्या छंदोंमेंसे एक (गाथा) कहीजाती है

ववहारुद्धार-द्धा-पल्ला॥(व्यवहार-उद्धार-अद्धा-पल्यानि॥) =व्यवहार उद्धार अद्धा पल्यं

तिण्ण-एव॥होंति-बोद्धव्वा॥(=त्रीणि॥एव॥भवन्ति बोद्धव्या॥) =तीनही हैं सो जानना

संखा-दीव-समुद्दा॥ (=संख्या-द्वीप-समुद्राः॥) =संख्या द्वीप समुद्र

कम्म-ट्ठिदि-वण्णिदा-तदिये (=कर्म्म-स्थिति-वर्णिता॥ तदिके) =(और)कर्म्मस्थिति तिन (पल्यों) करि वर्णित है। भावार्थ पहिली व्यवहारपल्यसे रोमोंकी संख्या वर्णन कीगई है अर्थात् यह संख्याकी उत्पत्ति जाननेके लिये है। उद्धारपल्यकरि द्वीप और समुद्र गिने जाते हैं और अद्धापल्य द्वारा कर्मस्थिति (भवस्थिति, आयुस्थिति, कायस्थिति) का कथन होता है।

यथा॥एव॥एते॥ उत्कृष्टजघन्ये॥ स्थिती॥ नृणां॥ तथा॥एव॥ =जैसे ही ये उत्कृष्ट और जघन्य आयु मनुष्योंकी हैं तैसेही

[1]सूत्रम्—तिर्यग्योनिजानां च॥ ३९ ॥=तिर्यग्योनिजानां च स्थिति परापरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते भवतः

सूत्रार्थः—तिर्यक्-योनिजानाम्॥ च॥ =तिर्यंच योनिसे उत्पन्न होनेवालोंकी भी अर्थात् तिर्यंचोंकी भी (=च)

परा॥ स्थितिः॥ त्रि-पल्योपमा॥भवति। =उत्कृष्ट (=परा) आयु तीन पल्य प्रमाण

अपरा॥ स्थितिः॥ अन्तर्मुहूर्ता॥भवति। =(और) जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

(१) सभाष्यमें 'तिर्यग्योनीनां च' ऐसा पाठ है। उसमें "तिर्यग्योनिजानां चेत्यपि पाठः" (=तिर्यग्योनिजानां च ऐसा भी पाठ है) यह चरण-टिप्पणी पृष्ठ ८८ में दी है "तिर्यग्योनिज" शब्दकी षष्ठी बहुवचन नपुंसकलिंग "तिर्यग्योनिजानां" वाक्य है और तिर्यग्योनि (=तिर्यंचयोनीवाले) की षष्ठी बहुवचन स्त्रीलिंग "तिर्यग्योनीनां" है॥

तिरश्चां योनिस्तिर्यग्योनिः । तिर्यग्गतिनामकर्मोदयापादितं जन्मेत्यर्थः । तिर्यग्योनौ जातास्तिर्यग्योनिजाः । तेषां तिर्यग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्योपमा ॥ जघन्या अन्तर्मुहूर्ता ॥ मध्येऽनेकविकल्पा ॥ ॐ ॥ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरि-

वृत्त्यनुवादः—तिरश्चाम्[६।३] योनिः[१।१] तिर्यग्योनिः[१।१]	=तिर्यचों का उत्पत्ति स्थान सो तिर्यग्योनि है
तिर्यग्-गति-नामकर्म-उदय-आपादितम्[१।१]	=तिर्यग्गतिनामा नामकर्मके उदयकरि गृहीत अथवा प्राप्त (आपादित)
जन्म[१।१] इति अथः[१।१] तिर्यग्योनौ[७।१] जाताः[१।३]	=जन्म (=नवीन शरीर धरना) ऐसा अर्थ है । तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुये
तिर्यग्योनिजाः[१।३] तेषाम्[६।३] तिर्यग्योनिजानाम्[६।३]	=वे तिर्यंच योनिज हैं । तिन तिर्यंच योनिमें उत्पन्न हुओंकी
उत्कृष्टा[१।१] भवस्थितिः[१।१] त्रिपल्योपमा[१।१] जघन्या[१।१]	=उत्कृष्ट भवकी आयु तीन पल्य प्रमाण है जघन्य
अन्तर्मुहूर्ता[१।१] मध्ये[७।१] अनेक-विकल्पा[१।१]	=अंतर्मुहूर्त है मध्यविषैं नानाभेद हैं ।

६५ भूबिललेश्याद्यायुर्द्वीपोदधिवास्यगिरिसरः सरिताम्॥ मानंनृणांचभेदःस्थितिस्तिरश्चामपितृतीयाध्याये ६५

भू-बिल-	=(सात) भूमियें (इन सात भूमियों में चौरासी लाख) बिले (देखो सूत्र १, २)
लेश्या-आदि-	=(कापोत, नील-कृष्ण) लेश्यादिक अर्थात् (अशुभतरलेश्यावाले, अशुभतरपरिणामवाले अशुभतरदेहके धारक, अशुभतर वेदना वाले, अशुभतर विक्रिया करनेवाले, परस्पर दुःख उत्पन्न करनेवाले नारकी जीव) (देखो सूत्र ३, ४, ५)
आयुस्-	=(नारियों की उत्कृष्ट तथा जघन्य) आयु (देखो सूत्र ६)
द्वीप-उदधि-	=द्वीप तथा समुद्र अर्थात् जम्बूद्वीपसे स्वयम्भूरमणद्वीपतक असंख्याते द्वीप और लवणोदधिसे स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यंत असंख्याते समुद्र, उनके विस्तार और आकार (देखो सूत्र ७, ८, ९)
वास्य-	=(जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रसे ऐरावतक्षेत्र लग सात) क्षेत्र (देखो सूत्र १०)
गिरि-	=(हिमवान् से शिखिरी लग छह) पर्वत(वर्ण विस्तार सहित)(देखो सूत्र ११, १२, १३,)

सरःसरिताम् ॥ मानं नृणां च भेदः स्थितिस्तिरश्चामपि तृतीयाध्याये ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

सरस्- =(पद्मसे पुंडरीकलों उन छह पर्वतोंकेह्रद) सरोवर, उन सरोवरोंके पुष्कर, माप, परिवारसहित देवियां) (सूत्र १४, १५, १६, १७, १८, १९

सरिताम्॥ =चौदह नदियें (उनके बहनेकी दिशायें, और उनकी परिवारकी नदियें छोटीछोटी) (देखो सूत्र २०, २१, २२, २३)

मानं =(क्षेत्र तथा पर्वतोंके) माप, वा नाप (देखो सूत्र २४, २५, २६, ३२)

मानं =समयकी क्रिया(पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ २९५) अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप छह समय अथवा कालोंकी वृद्धि ह्रासरूप क्रियां (देखो सूत्र २७, २८)

मानं =परिमाण अर्थात् भरतक्षेत्र,कुलाचल,पर्वत,द्रह,आदि(देखो सूत्र३३, ३४,३५)कोंका जम्बूद्वीपसे धातुकीखंड और पुष्करार्धमें दूना दूना परिमाण है। और मनुष्योंका परिमाणकि वे पुष्करद्वीपके आधे भागके इधर हैं(देखो सूत्र ३५)

नृणाम्॥ च॥ भेदः॥ =बहुरि (=च) मनुष्योंका भेद (देखो सूत्र ३६)

(नृणाम्) स्थितिः॥ =मनुष्यों की स्थिति अर्थात् जीवन काल (देखो सूत्र २९, ३०, ३१, ३८)

तिरश्चाम्-अपि-(स्थितिः॥) =तिर्यचोंकी स्थिति वा आयु (देखो सूत्र ३९) (ये सर्व ही)

तृतीय-अध्याये॥ =तीसरे अध्याय में (वर्णन किये गये) हैं

इतितत्त्वार्थ-वृत्तौसर्वार्थसिद्धि॰ =ऐसे तत्त्वार्थकी व्याख्यामें सर्वार्थसिद्धि संज्ञिकायां तृतीयःअध्यायः॥ =नामाग्रंथमें तीसरा अध्याय(पूर्ण)हुआ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणामित्येवमादिष्वसकृद्देवशब्द उक्तस्तत्र न ज्ञायते के देवाः कतिविधा इति वा तन्निर्णयार्थमाह—

॥ देवाश्चतुर्णिकायाः ॥१॥

देवगतिनामकर्मोदये सत्यभ्यन्तरे हेतौ बाह्यविभूति—

अथ* चतुर्थः। अध्यायः।	=चौथा अध्याय प्रारम्भ (=अथ) है।
भव-प्रत्ययः। अवधिः। देव-नारकाणाम्।	=भव अथवा जन्म निमित्तक अवधिज्ञान देव तथा नारकियों के होता है।
इति* एवम्* आदिषु। असकृत्-	=इस प्रकार (=एवं) इत्यादि (सूत्रों) में अनेक बार अथवा बार बार (असकृत्)
देव-शब्दः। उक्तः। तत्र* न ज्ञायते	=देव शब्द कहा गया है। वहां (ऐसा) नहीं बताया गया है कि
के। देवाः। कति। विधाः। इति वा तद्-	=देव कौन हैं अथवा (=वा) कितने प्रकार हैं। तिन (देवों) के
निर्णय-अर्थम्॥ आह	=निश्चय के लिये (आचार्य उत्तर सूत्र में) कहते हैं कि
सूत्रम्—	देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥
सूत्रार्थः—देवाः। चतुर्-निकायाः।	=देवता चार समूह (=निकाय) संयुक्त हैं अथवा देव चार समूह या संघवाले हैं। अर्थात् देवों के चार, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक समूह हैं।
वृत्त्यनुवादः—देवगति-नामकर्म-उदये।	=देव गति नामक नामकर्मका उदय
सति। अभ्यन्तरे। हेतौ। बाह्य-विभूति-	=अंतरंगकारण होने पर (=सति) (और) बहिरंग ऐश्वर्य अथवा विभवके

(१) आदि शब्देन, देवनारकाणामुपपादः। न देवाः। इति सूत्रद्वयं ग्राह्यम्॥

आदि-शब्देन। देव-नारकाणां। उपपादः। =(उपर्युक्त वृत्ति में) आदि शब्द से 'देवनारकाणां-उपपाद' अध्याय २ सूत्र ३४

न* देवाः। इति सूत्र द्वयं॥ ग्राह्यम्॥ =(और) न देवाः (अध्याय २ सूत्र ५१) ऐसे दो सूत्र लिये गये हैं

(२) यह शब्द सकृत् अव्यय है जिसका अर्थ 'एक बार' है इसलिये अ-सकृत =अन्-एक बार अर्थात् अनेक बार बारबार

(३) 'इति वा' ऐसा ज्ञान पड़ता है कि मुद्रणयंत्र की अशुद्धताले, 'वा इति' अथवा (संधि करने से) वेति (वा-इति) के स्थान में 'इति वा' छप गया है। इसी सूत्र के संबन्धमें 'तत्त्वार्थराजवार्तिक सूत्र' में 'तत्र के देवाः। कति विधा वेति' ऐसा पाठ है॥

सर्वार्थ- सिद्धि

विशेषैर्द्वीपादिसमुद्रादिषु प्रदेशेषु यथेष्टं दीव्यन्ति क्रीडन्ति ते देवाः ॥ इहैकवचननिर्देशो युक्तः
२ "देवश्चतुर्णिकायः" इति, जात्यभिधानाद्बहूनां प्रतिपादको भवति ॥ बहुत्वनिर्देशस्तदन्तर्गतभेदप्रतिपत्त्यर्थः । इन्द्रसामानिकादयो बहवो भेदाः सन्ति स्थित्यादिकृताश्च तत्सूचनार्थः ॥ देवगतिनामकर्मोदयस्य स्वधर्म-

विशेषैः ३। द्वीपादि-समुद्रादिषु ७। प्रदेशेषु ७।	=विशेषकरि द्वीपादिक समुद्रादिक स्थानो में (=प्रदेशेषु)
यथा-इष्टम् # दीव्यन्ति-क्रीडन्ति ते १। देवाः १।	=इच्छानुसार खेलतेहैं (=दिव्यन्ति) क्रीड़ा करते हैं वे देवता हैं
इह-एक-वचन-निर्देशः १। युक्तः १।	=(प्रश्न) यह (सूत्र) एक वचनमें निरूपण वा वर्णन होना उचित (युक्त) था
देवः १। चतुर-निकायः १। इति # जाति-अभिधानात् ५।।	=देवः चतुर्णिकायाः इस प्रकार क्योंकि समान जाति के कहने से
बहूनां ६॥ प्रतिपादकः १। भवति ?	=बहुतकी प्रतिपत्ति वा ज्ञान होता है अर्थात् इस सूत्र का प्रत्येक पद देवाः और चतुर्णिकायाः बहुवचन में हैं सो शिष्य प्रश्न करता है कि समान जाति के कथन करने में यदि ये पद "देवः चतुर्णिकायः" इस प्रकार एक वचन में होते तो भी बहुत के वाचक होते, तो ये दोनों पद बहुवचनान्त क्यों हैं। एक वचन में ही इन का निर्देश क्यों नहीं किया है।
बहुत्व-निर्देशः १। तद्-	=(उत्तर) बहुतता अर्थात् बहुवचन का कथन (=निर्देश) उन (चार प्रकारके देवों) के
अन्तर्गत-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः १। इन्द्र-सामानिक-	=अन्तर्भेद जानने के लिये (=प्रतिपत्ति) है (जैसे) इन्द्र-सामानिक (सूत्र ४)
आदयः १। बहवः १। भेदाः १। स्थिति-आदि-कृताः १। च # सन्ति	=आदिक बहुत भेद हैं और आयु आदिक
तद्-सूचन-अर्थः १।	=तिन (इन्द्र सामानिक, आदि, तथा स्थिति, आदिक) के ज्ञापन वा जतलाने के लिये (देवाः चतुर्णिकायाः दोनों वाक्य बहुवचन में इस सूत्र में लाये) हैं २
देवगति-नामकर्म-उदयस्य ६। स्वधर्म-	=देवगति नामा नामकर्म के उदय (और) अपने धर्म वा स्वभाव (=स्वधर्म)की अर्थात् देवगति में गमन करने वाले जीवों की।

विशेषापादितभेदस्य सामर्थ्यान्निचीयन्त इति निकायाः संघाता इत्यर्थः। चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः ॥ सिद्धि

सर्वार्थ- के पुनस्ते ? भवनवासिनो, व्यन्तरा, ज्योतिष्का, वैमानिकाश्चेति ॥ तेषां लेश्यावधारणार्थमुच्यते—

॥ आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥२॥

२ आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये वा ग्रहणं मा विज्ञायीति।

विशेष–आपादित–भेदस्य ६। सामर्थ्यात् ५॥ निचीयन्ते T =विशेष प्राप्त भेदकी सामर्थ्य वा शक्तिसे भेदरूप समूह है।

इति* निकायाः १। संघाताः १। इति * अर्थ १। =ऐसे निकाय हैं समुदाय अथवा समूह इस प्रकार अर्थ है।

चत्वारः १। निकायाः १। येषां ६। ते १। चतुर्–निकायाः १। =चार समुदाय जिनके हैं। वे चतुर्णिकायाः हैं ॥

के १। पुनः * ते १। भवन–वासिनः १। व्यन्तराः १। =बहुरि ते (चतुर्णिकाय) कौन हैं। (उत्तर) भवनवासी, व्यन्तर,

ज्योतिष्काः १। वैमानिकाः १। च इति तेषां ६। लेश्या– =ज्योतिष्क बहुरि (=च) वैमानिका ऐसे हैं। उन (चार समुदाय)की लेश्याके–

अवधारण- अर्थम् ४॥ उच्यते T =नियम (=अवधारण) के लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहा जाय है कि

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

सूत्रम्

सूत्रार्थः—आदितः * त्रिषु ७। =आरम्भसे (लेकर) तीन (समुदायके भवनवासी,व्यन्तर,ज्योतिष्क देवों) में

पीत-अन्त–लेश्याः १। =पीत पर्यन्त (अर्थात् कृष्ण, नील, कापोत पीत, ये चार ही) लेश्या हैं ॥

वृत्यनुवाद—आदितः * इति * उच्यते T अन्ते ७। =(इस सूत्रमें) आरम्भ से ऐसा वर्णित है। सो अन्त में

मध्ये ७। वा * ग्रहणं १॥ मा * विज्ञायि–इति * =अथवा बीचमें ग्रहण मति (=मा) जानो अर्थात् आदिसे भवनवासी देवों के

(१) कहीं पर 'पीतान्त' पाठ है कहीं पर पीतांत है दोनों ठीक हैं (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५४०, ५४१)। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में "तृतीयः पीत लेश्याः २॥=तीसरा (निकाय या समुदाय ज्योतिष्क देवों का) पीत लेश्या वाला है ऐसा दूसरा सूत्र है। 'पीतान्त लेश्याः' ॥ ७॥ इस सूत्र में भाष्यकार ने सभाष्य ० के छठवां सूत्र "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" से 'पूर्वयोः' शब्दकी अनुवृत्ति लेकर ऐसा अर्थ किया है (पूर्वयोर्निकाययोर्देवानां पीतान्ताश्चतस्रो लेश्या भवन्ति) =पहिले दो (भवनवासी और व्यन्तर) देवों के समुदाय के (आरंभ से लेकर) पीत पर्यंत चार (कृष्णा-नीला-कापोता पीता) लेश्या होती है॥ दिगंबरों का दूसरा, श्वेताम्बरोंका दूसरा और सातवां सूत्रोंको पढ़नेसे अर्थ भेद ऐसा हुआ कि दोनों के अनुकूल भवनवासी और व्यंतरों में उक्त चार लेश्या होती हैं। ज्योतिष्कोंमें हमारे यहां चार लेश्या मानी हैं उनके यहां पीत मानी है॥ २

आदौ आदितः ॥ द्वयोरेकस्य च निवृत्यर्थं त्रिग्रहणं क्रियते ॥ अथ चतुर्णां निवृत्यर्थं कस्मान्न भवति ? । आदित इति वचनात् ॥ षड्लेश्या उक्तास्तत्र चतसृणां लेश्यानां ग्रहणार्थं पीतान्तग्रहणं क्रियते ॥ पीतं तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ताः पीतान्ताः लेश्या येषां ते पीतान्तलेश्याः ॥ एतदुक्तं भवति- आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर-

समुदायसे पहिले तीन ग्रहण करना चाहिये न कि मध्यमे व्यन्तर ज्योतिष्कके समुदायोंसे अथवा अन्तसे वैमानिक समुदायसे (ग्रहण करो)

आदौ ७। आदितः * द्वयोः ६। एकस्य ६। च * निवृत्ति- अर्थं २॥ त्रि- ग्रहणं १॥। क्रियते T =जो आदि विषैं हो वा आदि पर हो सो आरम्भसे है (=आदित) दोयके और (=च) एकके निषेधके लिये (इस सूत्रमें) तीन (शब्द)का ग्रहण किया गया है ॥

अथ * चतुर्णां ६। निवृत्ति-अर्थं २॥। कस्मात् ५। न * भवति T आदितः * इति * वचनात् ५॥। =(प्रश्न)आगे(=अथ)चारके निराकरणका अभिप्राय अथवा प्रयोजन किसी(शब्द)से (सूत्रमें नहीं होता है (उत्तर) "आदितः" ऐसे वाक्यसे (देवोंके चौथे समुदायके ग्रहण का निषेध) होता है (क्योंकि "आदितः त्रिषु" अर्थात् आरम्भ से लेकर तीन भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंके समूह तो इससे ग्रहण होते हैं और चौथा वैमानिकोंका निकायका प्रतिषेध वा निषेध हो जाता है ॥

षट् १॥ लेश्या १॥ उक्ताः १॥ तत्र* चतसृणां ६॥ लेश्यानां ६॥ ग्रहण-अर्थं २॥ पीत-अन्त-ग्रहणं १॥। क्रियते T =छह लेश्यायें वर्णित हैं वहां चार लेश्याओं के उपलब्धि वा ग्रहणके लिये(सूत्रमें)पीत तक(ऐसा वचन)ग्रहण किया गया है

पीतं १॥। तेजः १॥। इति अर्थः १। पीता १॥ अन्ते ७। यासां ६॥ ताः १॥ पीत-अन्त-लेश्याः १॥ =पीत है सो ही तेज है ऐसा अर्थ है। पीत (लेश्या) है अन्तमें जिन(लेश्याओं के =वे पीत पर्यन्त, लेश्या हैं

(पीतान्तलेश्याः १॥) येषां ६। ते १। पीतान्तलेश्याः १। =(पीतान्त लेश्या है) जिन्होंके ते पीतान्तलेश्या वाले देव हैं

एतद् १॥। (वा एतत् १॥।) उक्तं १॥। भवति- T =(तब इस समस्त सूत्रका)यह(=एतत्)कथन अर्थात् अर्थ होता है कि

आदितः * त्रिषु ७। निकायेषु ७। भवनवासिन्—व्यन्तर— =आरम्भसे तीन समुदाय भवनवासी—व्यन्तर—

ज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेश्या भवन्ति ॥ तेषां निकायानामन्तर्विकल्प-- प्रतिपादनार्थमाह—

॥ दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

ज्योतिष्क—नामसु ७।। देवानां ६।।। कृष्णा १।। नीला १।। =ज्योतिष्क नामवालेदेवताओं के कृष्ण नील
कापोता १।। पीता १।। इति * चतस्रः १।। लेश्याः १।। भवन्ति T =कापोत पीत ऐसे चार लेश्यायें होती हैं।
तेषां ६। निकायानां ६। अन्तर्विकल्प— प्रतिपादन— अर्थम् ४।।। आह =तिन समुदायोंके अन्तर्भेद कहनेके लिये वा ज्ञान कराने के लिये =कहते हैं कि

सूत्रम्— दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥
=(देवाश्चतुर्णिकायाः) दशाष्टपञ्चद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥३॥

सूत्रार्थः—देवा १। चतुः-निकायाः १। दश-अष्ट-पञ्च =चार समुदाय वाले देव (यथासंख्य) दश, आठ, पांच,
द्वादश-विकल्पाः १। कल्प- उपपन्न- पर्यन्ताः १। =और बारह भेदों के धारक स्वर्ग में उत्पन्न होने वालों तक अर्थात् स्वर्ग-वासी देवों पर्यन्त (=कल्पोपपन्न पर्यंत) हैं। भावार्थ यह है कि दशप्रकार के भवन वासी देव हैं, आठ भेद व्यन्तर देवोंके हैं, पांच विकल्प ज्योतिषी देवोंके हैं। और बारह प्रकार के सोलह स्वर्ग पर्यन्त कल्पवासी देव हैं।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नाओंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है। (२) ऊर्ध्व लोक के दो भेद हैं कल्प और कल्पातीत। और जिन में वैमानिक देव निवास करते हैं वे भी स्थान भेद से दो प्रकार हैं। एक कल्पोपपन्न अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग तक उत्पन्न हो कर उन स्वर्गों में निवास करने वाले। इन देवों के ही बारह भेद इस सूत्र में कहे हैं। दूसरे कल्पातीतोपपन्न अर्थात् सोलहवां स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पंचानुत्तर इन तेईस स्थानों में उपजकर सोलहवां स्वर्ग से ऊपर बसते हैं। यह इन बारह भेदों में अन्तर्गत नहीं है।

चतुर्णां देवनिकायानां दशादिभिः संख्याशब्दैर्यथासंख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ दशविकल्पा भवनवासिनः । अष्टविकल्पा व्यन्तराः । पञ्चविकल्पा ज्योतिष्काः । द्वादशविकल्पा वैमानिका इति ॥ सर्ववैमानिकानां द्वादशविकल्पान्तः पातित्वे प्रसक्ते ग्रैवेयकादिनिवृत्त्यर्थं विशेषणमुपादीयते कल्पोपपन्नपर्यन्ता इति ॥ अथ कथं कल्पसञ्ज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पाः ॥ भवनवासिषु तत्कल्पना

शब्दानुवाद—चतुर्णाम् ६। देव-निकायानाम् ६।	=चार (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) देवोंके समूह या समुदायोंका
दश- आदिभिः ३। संख्या-शब्दैः ३। यथासंख्यम् *	=दश, आठ, पांच और बारह गणना शब्दों से संख्या के क्रम से
अभिसम्बन्धः १। वेदितव्यः १।	=सम्बन्ध जानना चाहिये (इस प्रकार यथासंख्य सम्बन्ध करने से)
दश-विकल्पाः ३। भवनवासिनः १। अष्ट-विकल्पाः १।	=दश भेदरूप भवनवासी (देव) हैं। आठ भेदों के धारक
व्यन्तराः १। पञ्च-विकल्पाः १। ज्योतिष्काः १। द्वादशविकल्पा १।	=व्यन्तर हैं। पांच भेद वाले ज्योतिषी देव हैं। बारह भेदरूप
वैमानिकाः १। इति *	=वैमानिक हैं अर्थात् प्रथम स्वर्ग से सोलह स्वर्ग पर्यंत उत्पन्न होने वाले देव हैं
सर्व-वैमानिकानाम् ६। द्वादश-विकल्प-अन्तः	=सब वैमानिक देवों का बारह भेदों के भीतर (=अन्तः)
पातित्वे ७।। प्रसक्ते ७।। ग्रैवेयक-आदि-निवृत्ति-अर्थम् १।।	=आजाने के (=पातित्वे) प्रसंग होने पर ग्रैवेयक आदि के निषेध के लिये
कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः १। इति * विशेषणम् १।।	=कल्पोपपन्न पर्यन्ता ऐसा (इस सूत्र में) विशेषण
उपादीयते T, अथ * कथं * कल्प-संज्ञा १।।	=लाया गया है (=उपादीयते) ।प्रश्न (अथ) (इन वैमानिक देवों की) कल्पसंज्ञा कैसे है
इन्द्रादयः १। प्रकाराः १। दश १। एतेषु ७।	=(उत्तर) इन्द्रादिक (देखिये सूत्र चौथा) दश भेद इन (वैमानिक देवों) में
कल्प्यन्ते T इति कल्पाः १।	=कल्पना किये हैं या माने गये हैं इस प्रकार कल्पा है। अर्थात् कल्पसंज्ञा इन देवों की इस हेतु से है कि इन के दश भेदों की कल्पना की गई है।
भवनवासिषु T, ७। तत्कल्पना	=(प्रश्न) भवनवासि देवों में वही कल्पना है (उत्तर) (ऐसी कल्पना)

६

सम्भवेऽपि रूढिवशाद्वैमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः ॥ कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः । कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता येषां ते कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ॥ पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

सम्भवे७। अपि* रूढि-वशात्५। वैमानिकेषु७। एव*	=सम्भव होने पर भी प्रसिद्धता के वशसे वैमानिक देवों में ही
वर्तते। कल्प-शब्दः१। कल्पेषु७। उपपन्नाः१।	=कल्पशब्द प्रवर्तता है। कल्पों अथवा स्वर्गों में उत्पन्न होने वाले हैं
कल्प-उपपन्नाः१, कल्प-उपपन्नाः१।	=वे कल्पोपन्न हैं अर्थात् स्वर्गवासी देव है। कल्पोंमें उत्पन्न होनेवाले
पर्यन्ताः१। येषाम्६। ते१। कल्पोपन्न-पर्यन्ताः१।	=तक जिनके (बारह भेद) हैं वे कल्पोपन्न पर्यन्त हैं।
पुनः-अपि* तद्-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्१॥। आह।	=फिर भी उन (देवों) का विशेष जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥४॥

पदच्छेदः— इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद-आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य-किल्विषिकाः१। च* एकशः* (देवनिकायेषु देवाः दशविधा भवन्ति)

(१) इस सूत्र का पाठ हमारे यहां एक सा है किसी २ प्रति में 'किल्विषिका' है किसी २ में 'किल्बिषिका' है कार्षों में 'किल्विष' शब्द पाप और अपराध के अर्थ में मिलता है॥ श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'पारिषद्' शब्दके स्थान में 'पारिषद्य' है शेष पाठ दोनों आम्नायों में एक सा है अर्थ भी एक है। भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में 'किल्बिषिका' पाठ है। शेष पाठ उनके यहां भी एक है॥

(२) त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस; त्रयस्त्रिंश या त्रयस्त्रिंशत्तम (=त्रयस्त्रिंशत्तम) =तेतीसवां; त्रायस्त्रिंशाः वा त्रायस्त्रिंशाः=एक प्रकार के नियमित तेतीस देवों का समूह अर्थात् इन्द्रके मंत्री, पुरोहित के समान या उनके स्थापन्न हैं वे त्रायस्त्रिंश हैं और इस जातिके ये तेतीस ही देव होते हैं॥ त्रायस्त्रिंशः=उन(३३) देवों में से एक। उक्त सर्वों शब्द ठीक हैं परन्तु हमको चोथे और पांचवें सूत्र के पाठ में 'त्रायस्त्रिंशत्' शब्द पांच स्थानों में

अर्थ प्रकाशिकामें और पांच स्थानों में पं० सदासुखजी कृत लघुटीकामें; पांचवें सूत्रमें सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें और निर्णयसागर मुद्रणयंत्र के सोलह पाठ के गुटका में भी एक स्थान में और चौथा पांचवां सूत्र हस्त लिखित बहुत सी प्रतियोंमें देखे गये उनमें भी किसी २ स्थान में त्रायस्त्रिंशत् मिलता है। साधारण पाठक प्रायः भ्रम में पड़ जाते हैं कि यह क्या बात है इससे हम इस लिखने को बाध्य हुये कि व्याकरण के अनुसार 'त्रायस्त्रिंशत्' चौथे सूत्र में तथा 'त्रायस्त्रिंशल्लोक' पांचवां सूत्र में सर्वथा अशुद्ध हैं।

पं० जयचन्द जी की वचनिका मुद्रित में, तत्त्वार्थ राजवार्तिक मुद्रित में, तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक मुद्रित में, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र मुद्रितमें, पं० पन्नालाल जी मोक्षशास्त्र मुद्रित में, जैनी जी अङ्गल भाषा में अनुवादित तत्त्वार्थाधिगम सूत्र में 'चौथे सूत्र' तथा 'त्रायस्त्रिंशलोकपाल'··· पांचवां सूत्र में त्रायस्त्रिंश शुद्ध हैं बहुत से अन्य भाष्य और भाषा की टीकाएं देखी गईं उनमें किसी किसी में शुद्ध पाठ है अधिकतर में अशुद्ध पाठ हैं परन्तु श्वेताम्बरआम्नाय की भाषानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेन सूरिरचित) हस्त लिखितमें उक्त पाठ दोनों सूत्रों का पृष्ठ ३१८ और ३१९ पर शुद्ध पाया गया है यह प्रति हस्तलिखित बहुत प्राचीन है। और इसमें बाईस सहस्रश्लोक से अधिक हैं॥ परंतु स्मरण रहे कि त्रायस्त्रिंशांल्लोकपालांश्च' (=त्रायस्त्रिंशान् लोकपालान् च) यह वाक्य ठीक है क्योंकि 'त्रायस्त्रिंश' शब्द की द्वितीया विभक्ति बहुवचन पुल्लिङ्गरूप 'रामान्' शब्द के सदृश बनता है॥ उक्त छहों शब्द 'त्रयस्त्रिंशत्', 'त्रयस्त्रिंश' त्रयस्त्रिंशत्तम' त्रायस्त्रिंशत, 'त्रायस्त्रिंशाः' 'त्रायस्त्रिंश' क्यों शुद्ध और ठीक है तथा 'त्रायस्त्रिंशत' क्यों अशुद्ध है इन सबों के लिये निम्न लिखित हेतु क्रम से देते हैं॥ विंशति, त्रिंशत्, बीस, तीस हैं इनको प्रायः सबही जानते हैं। विंशति और त्रिंशत् शब्दों के पहले एक–द्वि–त्रि–चतुर्–पञ्चन्–षष्–सप्तन्–अष्टन्–नवन् जोड़कर उनतीस और उनतालीस तकको संख्यायें बना लेते हैं परन्तु इनके बनाने में न् गिर जाता है, द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा हो जाता है हम केवल इकत्तीस से उनतालीस तक की संख्या लेते हैं एकत्रिंशत्=इकतीस, द्वात्रिंशत्=बत्तीस, त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, चतुस्त्रिंशत्=चोंतीस, पञ्चत्रिंशत्=पैंतीस, षट्त्रिंशत्=छत्तीस, सप्तत्रिंशत्=सैंतीस, अष्टात्रिंशत्=अड़तीस, नवत्रिंशत्=उनतालीस, (=एकोन चत्वारिंशत्)॥ त्रि+त्रिंशत्=त्रयः+त्रिंशत्=त्रयस्त्रिंशत् (तकारके हेतु से विसर्गका परिवर्तन स् में हो गया) इसलिये तीन+तीस=तेतीस त्रयस्त्रिंशत् शब्द बन गया ( ) विंशति और त्रिंशत् इत्यादि संख्याओं से क्रमिक संख्या के बनाने में, विंशति का ति और एकत्रिंशत्, द्वात्रिंशत्, त्रयस्त्रिंशत् आदिका व्यंजन गिरा देनेसे बन जाते है जैसे विंशति=बीस से विंश (=बीसवां) और त्रिंशत् (=तीस) से त्रिंश (=तीसवां) बन गया इस प्रकार एकत्रिंश=इकतीसवां, द्वात्रिंश=बत्तीसवां त्रयस्त्रिंश=तेतीसवां बनगया॥ ( ) क्रमिक संख्याके बनानेका दूसरा नियम यह है कि संख्याके अन्तमें 'तम' प्रत्यय लगा देते है जैसे विंशति=बीस विंशतितम=बीसवां एक विंशति=इक्कीस, एकविंशतितम=इक्कीसवां, इत्यादि। त्रिंशत्=तीस,त्रिंशत्तमः (=त्रिंशत्तमः) तीसवां॥ एकत्रिंशत्=इकतीस, एकत्रिंशत्तमः (=एकत्रिंशत्तमः)=इकतीसवां; द्वात्रिंशत्=बत्तीस, द्वात्रिंशत्तमः(=द्वात्रिंशत्तमः) =बत्तीसवां,॥ त्रयस्त्रिंशत्=तेतीस, त्रयस्त्रिंशत्तमः (=त्रयस्त्रिंशत्तमः) तेतीसवां॥ ( ) 'त्रायस्त्रिंशाः' यह नाम इन देवों का सार्थक है क्योंकि ये तेतीसही होते हैं जैसा कि 'त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः': (=तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं—सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ प्रथम संस्करण, और 'त्रयस्त्रिंशत् देवाः ते एव त्रायस्त्रिंशाः (=तेतीस देव हैं ते ही त्रायस्त्रिंश हैं—

तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२, हस्तलिखित पृष्ठ २९६, वाक्योंसे प्रगट है। यह शब्द ऐसे बना है कि

६ (क) 'त्रयस्त्रिंशति जाताः त्रायस्त्रिंशाः'=त्रयस्त्रिंशति ७॥ जाताः १॥ त्रायस्त्रिंशाः १॥ =तेतीसमें (जो) उत्पन्न हों (वे) त्रायस्त्रिंश (देव) हैं॥

" त्रयस्त्रिंशति कहिये तेतीस संख्याके आधाररूप जे होंय ते त्रायस्त्रिंशाः ऐसे कहिये देव हैं " इतिवत् विद्वद्वर्य स्वर्गीय पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थरत्नमालानामग्रन्थ के हस्तलिखित पृष्ठ ९०८ से उद्धृत॥ आधाररूप=आश्रयरूप, अधिकरणरूप॥

तत्र जातः। अष्टाध्यायी,अध्याय चौथा पाद तीन सूत्र पचीसवां और जैनेन्द्र व्याकरण ३-३-१ दोनों व्याकरणोंमेंशब्दशः एक पाठ है॥

=तत्र॥ जातः १। (समर्थात् ५। अण्-आदयः १। घ-आदयः १। प्रत्ययाः १।)॥समर्थानकी अनुवृत्ति इसीअध्यायके पादप्रथम सूत्र ८२ वां(समर्थानांप्रथमाद्वा) से लीगई है। 'अण्-आदय'और'घ-आदय'की अनुवृत्तियें,इसी अध्यायके पाद प्रथम सूत्र ८३ वां (पाद दो सूत्र २९ वां इत्यादि) (क्रमसे प्राग्दीव्यतोऽण्, महेन्द्राद् घणौ च इत्यादि) से अवसर आवश्यकता, और अर्थके अनुकूल ली गई हैं॥ प्रत्ययाःकी अनुवृत्ति अष्टाध्यायी, अध्याय तीसरा पाद प्रथम सूत्र पहले से ली गई है॥ तत्र= यहांपर, तहांपर अर्थात् एक शब्द जो सप्तमी विभक्तिमें हो, और जो तात्पर्य वा अर्थमें वाक्यके अवशेष शब्द वा पदोंसे सम्बन्ध रखता हो।

'समर्थ' का यहां पर यह आशय है कि ' वाक्यमें वह शब्द वा पद जो वाक्यके अन्य पदों के साथ मिलकर तात्पर्य वा अर्थ से सम्बन्ध रखता हो ' अर्थात् वाक्यके विग्रह करने पर उस (वाक्य) के तात्पर्य को प्रगट कर सके॥

इस लिये "तत्र जातः" सूत्रका संस्कृत अर्थ ऐसा हुआ कि "सप्तमी समर्थाज्जात इत्यर्थेऽणादयो घादयश्च प्रत्ययाः स्युः" भावार्थ ऐसा है कि

तत्र॥ जातः १। इति ॥ अर्थे ७। सप्तमी (विभक्ति अन्त) १॥ =तहां उत्पन्न हुवा ऐसे अर्थमें सप्तमी है विभक्ति अन्त में (जिसके ऐसे)

समर्थात् ५। =समर्थपद (=वाक्यमें अन्य पद वा पदोंके साथ मिलकर तात्पर्य प्रकाशक शब्द वा पद) से अर्थात् ऐसे समर्थ पदके पश्चात्

अण्-आदयः १। च ॥ घ-आदयः १। प्रत्ययाः १। स्युः T =अण् आदिक और घ आदिक प्रत्यय हों (अन्य प्रत्ययों को छोड़ कर केवल अण् को लेते हैं। अण् प्रत्यका ण् इत्संज्ञक है इस लिये अण्=अ 'त्रयस्त्रिंशति' में अण् जोड़ने से त्रयस्त्रिंशति+अ ऐसा रूप बना

त्रयस्त्रिंशति ७॥ जातः=त्रयस्त्रिंशत्+अ

अष्टाध्यायी ७-२-११७ (तद्धितेष्वचामादेः=तद्धितेषु, अचाम्, आदेः('ञिति णिति' सूत्र ११५से और 'वृद्धिः' सूत्र ११४ से अनुवर्तता है)

=ञिति, णिति तद्धितेषु अचाम् आदेः वृद्धिः=ञिति तद्धित (संज्ञक)प्रत्यय हो तो (अङ्ग शब्द के स्वरोंमें से प्रथम स्वरको वृद्धि हो) ६

इसलिये ' त्रयस्त्रिंशत्+अ ' =त्रायस्त्रिंशत्+अ॥ अब यहां पर अष्टाध्यायी, अध्याय चार पाद दूसरा सूत्र सातवां इसं सामके नीचे यह वार्तिक है

कि "जाते चार्थेयोऽन्येन बाधितः पुनरण् विधीयते स वा ङिद्वद्भवतीति वक्तव्यम्"

च जाते अर्थे यः अण् अन्येन बाधितः पुनः विधीयते =और (च) जात अर्थमें जो अण् अन्य (सूत्र) से बाधित होकर फिर विहित हो या लगाया जावे

१० सः ङित्वत् वा =वह (अण्) ङित्वत् (ङ् हो इत् संज्ञक जिसका ऐसे प्रत्ययके सदृश) विकल्पसे

भवति इति वक्तव्यम् =हो (अर्थात् जी चाहे अण् को ङित्वत् मानो वा न मानो यह कहना चाहिये

भावार्थ चौथे अध्यायके प्रथम पादके तिरासीवां सूत्रके बलसे, "अण्" प्रत्ययका अधिकार था प्रकरण 'तेन दीव्यति' इस (चौथे पाद के) सूत्रके पहिले पहिले है परन्तु 'अण्' इसी अध्यायके तीसरे पादके ग्यारहवां सूत्रसे बाधित हुआ है पश्चात् इसी पादके सोलहवां सूत्रसे विहित हुआ है या फिर लगाया गया है, फिर लागू किया गया है इस लिये इस अण को ङित्वत् विकल्पसे मान सकते हैं।

अब प्रश्न यह है कि 'ङित्वत् विकल्पसे मानने में क्या लाभ है (उत्तर) अष्टाध्यायीके छठे अध्यायके चौथे पादके एकसौ तेतालीसवां सूत्र (टेः ङिति लोपः) से यदि किसी शब्द के पश्चात् ङित् प्रत्यय आवे तो उस शब्द के टि (भाग) का अर्थात् उस शब्द के अंत के स्वरका मय उसके पश्चात् के व्यंजन का (यदि कोई हो तो) लोप हो जाता है। जैनेन्द्र व्याकरणकी शब्दार्णव चान्द्रिका नामक लघुवृत्तिक चौथे अध्यायके चौथे पादके १४०वां सूत्र, ङिति टे'(-टे ङिति ल) = (टि संज्ञकस्य ...) ... टि संज्ञाका ङित् परे लोप होजाता है जैसे शतभिषज् (जहां सैकड़ों तारा वैद्यों के समान हैं अश्विनी से चोबीसवां नक्षत्र जिसके सौ तारे हैं और त्रयस्त्रिंशत् -तेतीस इन दोनों शब्दों के उपर्युक्त नियम से दो दो रूप तत्र जातःअर्थ में इस प्रकार बन जाते हैं कि शतभिषजि जातः (जो वहां शतभिषज् में उत्पन्न हो) सो शतभिषज्+अण् -शातभिषज (यदि अण् को ङित्वत् न मानें तो रूप होगा) और (यदि अण् को ङित्वत् मानें तो अज् का लोप हो कर शातभिष, जिनके प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग रूप 'शातभिषजः और शातभिषः होंगे (देखो सिद्धान्त कौमुदीपर तत्वबोधिनी व्याख्या के तद्धित के रक्ताद्यर्थका प्रकरणको जहां शातभिषःऔर शातभिषजः दोनों शब्द सिद्ध किये हैं त्रयस्त्रिंशति जातः =जो तेतीस में उत्पन्न हो सो त्रयस्त्रिंशत्+अण् -त्रायस्त्रिंशत (यदि अण् को ङित्वत् न मानें तो) और त्रायस्त्रिंश (यदि अण् को ङित्वत् मानें तो अत् का लोप होने पर) रूप होंगे जिनके प्रथमाविभक्ति एक वचन और प्रथमाविभक्ति बहुवचन क्रम से त्रायस्त्रिंशतः त्रायस्त्रिंशताः त्रायस्त्रिंशः 'त्रायस्त्रिंशाः' होंगे इस लिये त्रायस्त्रिंशतः और त्रायस्त्रिंशाः रूप शुद्ध हैं। और त्रायस्त्रिंशत् सर्वथा अशुद्ध हैं। पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकार अनुवादित तत्वार्थ राजवार्तिक लिखित पृष्ठ ९०८ में 'त्रायस्त्रिंशत शब्द जैसेही स्वर्ग में इन्द्रनिके मंत्री और पुरोहित के स्थानीय 'त्रायस्त्रिंशत' कहिये तेतीस देव होय हैं। इस वाक्य में आया है। १०

इतः ३।१।८२ यहां पर 'इतः' ऐसा एक वचनांत शब्द का ही उल्लेखउपर्युक्त था अथवा तद्धिताः अष्टाध्यायी अध्याय चार पादएक सूत्र ७६ के तद्धित

शब्द का ही प्रयोग उचित था फिर हृतः (वा तद्धिताः) इस बहुवचनांत शब्द का जो उल्लेख किया गया है उसकी सामर्थ्य से स्वार्थ में भी अण् आदि प्रत्ययोंका विधान माना गया है। हमारे यहां के व्याकरणों में 'स्वार्थके ऽण्' वचन प्रसिद्ध है और अन्य व्याकरणों में 'स्वार्थेऽण्' ऐसा वाक्य प्रसिद्ध है त्रायस्त्रिंश तेतीस देवता (जो देव शब्द के बिना अर्थ के परिवर्तनके निकला है स्त्रीलिंग है) ओंमें से एक देवता ऐसा अर्थ है। और यह देवता शब्द प्रज्ञादि गण का है इसीलिये यहां पर 'प्रज्ञादिभ्योऽण्' = प्रज्ञादिक इत्यादि शब्दों से पश्चात् अपने अर्थ में अण् प्रत्यय हो। शाकटायन शब्दानुशासन ३।४।१३२ सूत्र लगा है अथवा प्रज्ञादिभ्य (जैनेन्द्र व्याकरण ४-२-५२ सूत्र) = प्रज्ञादिभ्यः (अण्), इस अण् की अनुवृत्ति पचासवां सूत्र 'कर्मणो अण्' से आती है। पक्षेऽण स्यादुत स्वार्थे = स्वार्थ में इन प्रज्ञादि शब्दों से परे विकल्पकरि अण् प्रत्यय हो। अथवा "प्रज्ञादिभ्यश्च" (प्रज्ञ इत्येवमादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽण् प्रत्ययोभवति = प्रज्ञ इत्यादिक प्रातिपदकों से परेस्वार्थे में अण् प्रत्यय हो। अष्टाध्यायी ५।४।३८ सूत्र लगता है। प्रज्ञ-आदिभ्यः च (अण्),इस सूत्रमें "अण् की अनुवृत्ति तद्युक्तात्कर्मणोऽण्" छत्तीसवां सूत्र से आती है। स्वार्थ की अनुवृत्ति तीसरे सूत्र "स्थूलादिभ्य प्रकार वचनेकन्" से ज्ञापकरूपमें निकलती है। यह अण् किसी दूसरे प्रत्यय से बाधित नहीं हुआ है। क्योंकि इस छत्तीवें सूत्र के "अण्" की अनुवृत्ति सेतीसवां और अड़तीसवां दोनों सूत्रों में है इसलिये यह अण् विकल्पकरि 'ङित्वत्' हमारी समझ में है और ङित्वत् होने में पूर्वोक्त कथनानुसार त्रायस्त्रिंशः और त्रायस्त्रिंशतः दो रूप बनेंगे और त्रायस्त्रिंशत् अर्थात् हलन्तत कारूप वाला शब्द कदापि नहीं बनेगा। यह अशुद्ध सर्वप्रकार से है। इसका विग्रह तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ १५१ और सर्वार्थसिद्धि वृत्ति पृष्ठ २३२ (द्वितीय संस्करण पृष्ठ १३६) में जहां स्वार्थमें "अण्" प्रत्यय किया है ऐसा है त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः = त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः = तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं अर्थात् "त्रयस्त्रिंशत् एव कहिये तेतीसही त्रायस्त्रिंश हैं, पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर और श्लोकवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ३७२ में इसका विग्रह ऐसा है कि "त्रयस्त्रिंशद्देवा एव त्रायस्त्रिंशा" 'स्वार्थिकोऽपिहृत्' इति बहुत्व निर्देशात् त्रयस्त्रिंशत् देवा एव कहिये तेतीस देव ही त्रायस्त्रिंश हैं। ऐसे हृतः बहुवचनांत निर्देश वा उपदेशसे स्वार्थ में भी (अण् तद्धित प्रत्यय आता) है इस समस्त उपर्युक्त व्याख्या का सारांश यह निकला कि त्रयस्त्रिंशत् (-तेतीस) (२) त्रयस्त्रिंश = तेतीसवां (३) त्रयस्त्रिंशत्तम = तेतीसवां (४) त्रायस्त्रिंशः तेतीस नियत देवों में से एक (५) त्रायस्त्रिंशाः तेतीस नियमित देव (६) त्रायस्त्रिंशतः तेतीस नियत देवों में से एक (७) त्रायस्त्रिंशताः तेतीस नियमित देव ये सातों शब्द ठीक और शुद्ध हैं परन्तु त्रायस्त्रिंशत् शब्द सर्वथा अशुद्ध है।

(१) त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशाः (= त्रयस्त्रिंशत् एव त्रायस्त्रिंशाः) ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १५१ में इस वाक्य के संबंध में ऐसा उल्लेख है कि "स्वार्थे के ऽण्, त्रयस्त्रिंशदेव त्रायस्त्रिंशा इति इत इति बहुत्व निर्देशादंतमादित्वत्" अपने अर्थ को द्योतक करते हुये (शब्दमें) अण् (= अ) प्रत्यय आता है और तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं ऐसा बना अर्थात् त्रयस्त्रिंशत् शब्द में अपने अर्थ में अण् लगाने से 'त्रायस्त्रिंश' बना ॥ (शंका) त्रयस्त्रिंशत् + अण् = त्रायस्त्रिंशत बनना चाहिये क्योंकि अण् ङित् वत् हुआ नहीं फिर 'अत्' का लोप न हुआ ॥ अत् को 'टि' कहते हैं (६-४-१४३, १-१-६४) (देखो उपर्युक्त टिप्पणी पृष्ठ ८-११ तक)

अन्यदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति १ इन्द्राः ॥ आज्ञैश्वर्यवर्जितं यत्समानायुर्वीर्यपरिवार-भोगोपभोग तत्समानं, तस्मिन्समाने भवाः २ सामानिकाः । महत्तराः पितृगुरूपाध्यायतुल्या ॥ मन्त्रिपुरोहित-स्थानीयाः ३ त्रायस्त्रिंशाः त्रयस्त्रिंशदेवत्रायस्त्रिंशाः

सूत्रार्थ—इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषद-	=इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद,
आत्मरक्ष-लोकपाल-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य	=आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग
किल्विषिकाः१। च* ऐकशः* देवनिकायेषु७।	=और किल्विषिक एक एक देवों के समूह में
(देवाःदशविधा* भवन्तिT)	=दश दश प्रकार के देव होते हैं अर्थात् (१) देवों का राजा (२) आज्ञा और ऐश्वर्य रहित अन्य बातों में इन्द्र के समान हों (३) मंत्री और पिरोहित के समान तेतीस देव (४) सभासद (५) शरीर रक्षक (६) कोटपाल वा गढ़पाल (७) पियादे आदिक सात प्रकार की सैना (८) प्रजाके सदृश देव (९) सेवकों के स्थानापन्न वा और (१०) नीच अधम चांडालों के सदृश देव ये एक एक देवों के समूह में दश दश प्रकार के देव होते हैं।
शब्दानुवादः—अन्य-देव-असाधारण-अणिमादि-गुण-	=अन्य देवों से असमान्य वा विशेष अणिमादिक ऋद्धिरूप गुणों के
योगात्५। इन्दन्तिT	=संयोग से जो ऐश्वर्य करिवर्ते हैं तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हुये हैं
इति(१) इन्द्राः१। आज्ञा-ऐश्वर्य-वर्जितं१।। यत्१।। समान-	=ऐसे (१) इन्द्र हैं ॥ आज्ञा और ऐश्वर्य रहित जो तुल्य वा बराबर
आयुर्-वीर्य- परिवार-भोग-उपभोगादि-	=जीवनकाल, बल, परिवारभोग और उपभोगादिक हैं।
तत्१।। समानं१।। तस्मिन्७।।	=वह समान हैं, तिस (आयु, बल, परिवार, भोग, उपभोगादिक) में
समाने७।। भवाः (२) सामानिकाः१। महत्तराः१।	=समान (इन्द्रके) हैं (२) वे सामानिक हैं(वे सामानिक) बड़े वा महत्त्वमहिमावाले हैं
पितृ-गुरु-उपाध्याय-तुल्याः१। ॥ मन्त्रि-पुरोहित-	=(और इन्द्र के) पिता, गुरु, उपाध्याय के सदृश हैं॥ (इन्द्रके) मन्त्री पुरोहित के
स्थानीयाः१। (३)त्रायस्त्रिंशाः१। त्रयस्त्रिंशत्१। एव त्रायस्त्रिंशाः	=स्थानापन्न हैं। वे त्रायस्त्रिंश हैं, तेतीस ही त्रायस्त्रिंश हैं॥

वयस्यपीठमर्दसदृशाः परिषदि भवाः ४ पारिषदाः ॥ ५ आत्मरक्षाः शिरोरक्षोपमानाः ॥ अर्थचरारक्षकसमानाः ६ लोकपालाः। लोकं पालयन्तीति लोकपालाः ॥ पदात्यादीनि सप्त ७ अनीकानि दण्डस्थानीयानि ॥ ८ प्रकीर्णकाः पौरजानपदकल्पाः ॥

वयस्य-पीठमर्द-	=मित्र (=वयस्य) और संधानकारी अथवा पिछाड़ी दाब बैठने वालोंके
सदृशाः;। परिषदि;। भवाः;। (४) पारिषदाः;। ॥	=सरीखे सभा में हों (४) वे पारिषद हैं ॥
(५) शिरस्-रक्षा-उपमानाः;। आत्मरक्षाः ;। ॥	=शिरकी रक्षा करने वालों के समान वा सदृश (५) आत्मरक्षक हैं। अर्थात् इन्द्र के शुभ शस्त्र धारी अंग की रक्षा करने वालों के सदृश हैं ॥
अर्थ-चर-	=(किसी) वस्तु-बात-विषय अथवा प्रयोजनके सन्धानी, खोजिया वा खोजी (=चर)
आ-रक्षक-समानाः;। (६) लोकपालाः;।	=और सर्वतः रक्षा करने वालों के (आ-रक्षक) सदृश (६) लोकपाल हैं
लोकं ;। पालयन्तिT इति लोकपालाः;। ॥ पदाति-	=लोक को पालते हैं अथवा रक्षा करते हैं ऐसे लोकपाल हैं ॥ पियादे (=पदाति)
आदीनि;।। सप्त;।। दण्ड-स्थानीयानि;।। ॥ ७ अनीकानि;।।	=आदिक सात (प्रकार की) सेना (=दण्ड) के स्थानापन्न (७) अनीक हैं। अर्थात् पियादे, अश्व, वृषभ, रथ, हस्ती, गंधर्व और नर्त्तकी इन सात प्रकार की सेनाओं के रूप धारण करने वाले देव हैं वे अनीक वा सैना के ठौर हैं ॥
(८) प्रकीर्णकाः;। पौर-जानपद-	=(८) प्रकीर्णक नगरवासी (=और) तथा देश से आये हुओं के (=जानपद)
कल्पाः;। ॥	=समान हैं अर्थात् प्रकीर्णक देव, इन्द्रके पुरवासी तथा राज्यकी प्रजाके सदृश हैं ॥

(१) परिषद् स्त्रीलिंग है अर्थ सभा वा धर्म सभा है परन्तु पारिषद और परिषद् और परिषद्य का अर्थ सभासद के हैं।

(२) अङ्ग-रक्षा-उपमानाः;।	=शरीर की रक्षा करने वालों के समान हैं। यद्यपि देवोंमें घातादिक नहीं हैं तथापि ऋद्धि विभवकी महिमा के लिये इस प्रकार के भेद हैं ॥
अर्थ-उत्पादक-कोट-पाल-सदृशाः;।	=प्रयोजन के निकालने वाले और गढ़ की रक्षा करनेवालोंके समान हैं

सादृश्य अर्थ में यहां "कल्पप्" प्रत्यय है जैसे "पितृ कल्प" पिता के समान "गुरु कल्प" गुरु के समान इसी प्रकार "पौर जानपदकल्पाः" नगरवासी और देशसे आये हुओं के समान ॥ "कल्प" शब्द के अर्थ नीचे लिखते हैं ॥

(१) "संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि" अमर कोश काल वर्ग श्लोक २२ संवर्त्त, प्रलय, कल्प, क्षय, कल्पांत, ये पांच (पु०) नाम प्रलयके हैं ॥
(२) "कल्पे विधि क्रमौ" कल्प, विधि क्रम ये तीन (पु०)नाम नियोग शास्त्र के हैं अमरकोश ब्रह्मवर्ग १९वें श्लोक का अंत भाग ॥
(३) अभ्रेष न्याय कल्पास्तु देशरूप समञ्जसम्" अभ्रेष (पु०) न्याय (पु०) कल्प (पु०) देशरूप (न०) समंजस (न०) ये नाम नीतिके हैं क्षत्रिय वर्ग २४ ॥

६ आभियोग्या दाससमाना वाहनादिकर्माणि प्रवृत्ता अन्तेवासिस्थानीयाः ॥ किल्बिषं पापं येषामस्ति ते १० किल्बिषिकाः ॥ एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो दश विकल्पाश्चतुर्षु निकायेषूत्सर्गेण प्रसक्तास्ततो-

सर्वार्थ- ऽपवादार्थमाह–

॥ त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

१४

(९) आभियोग्याः ३। दास-समानाः ३।	=(९) आभियोग्य (वे देव हैं जो) सेवकों और किंकरों के तुल्य
वाहन-आदि कर्मणि ३॥ प्रवृत्ताः ३। अन्ते-	=(हस्ति घोड़े इत्यादि) वाहनादिक कार्य मे प्रवर्तनेवाले हैं। (नगरके) अन्तमें
वासि-स्थानीयाः ३॥ किल्बिषं ३॥ पापं ३॥	=रहनेवालों को स्थानापन्न (और) अपराध (=किल्बिष) पातक (=पापं)
येषाम् ६। अस्ति ते ३। १० किल्बिषिकाः ३।	=जिनके (उदय) है से १० किल्बिष हैं अर्थात् पापकर्म के उदय सहित नीच जाति के देव चंडालों के समान नगर से बाहर रहने वाले और दूर ही खड़े होने वाले ऐसे किल्बिष्क देव हैं ॥ और जिनकी गणना क्रममें दर्शाई है
एक-एकस्य ६। निकायस्य ६। एकशः ७	=एक एक समुदाय के क्रम से (=एकशः)
एते ३। इन्द्रादयः ३। दश ३ विकल्पा ३। चतुर्षु ७।	= ये इन्द्रादिक दश भेद चारों
निकायेषु ७। उत्सर्गेण ३। प्रसक्ताः ३।	=समूहों में सामान्यपने से (इस सूत्र के अनुसार) प्राप्त हैं (प्रसक्ता)
ततः ● अपवाद-अर्थं २॥ आह T	=इस कारण (=ततस्)अपवाद के लिये (आचार्य अगला सूत्रमें)कहते हैं कि

(१) सूत्रम्– त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ॥५॥

=त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः (इतरे अष्टौ विकल्पा भवन्ति) ॥८॥

सूत्रार्थः–त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्याः ३। व्यन्तर-	=त्रायस्त्रिंशनामक तेतीस देव और लोकपाल को छोड़ कर व्यन्तर देवों के
ज्योतिष्काः ३। इतरे ३। अष्टौ ३। विकल्पा ३। भवन्ति T	=तथा ज्योतिष्क देवों के अन्य आठ भेद होते हैं अर्थात् चार निकायोंमेंसे व्यन्तर तथा ज्योतिष्क इन दो निकायों में इंद्र, सामानिक पारिषद, आत्मरक्ष, अनीक प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक ये आठ ही भेद होते हैं। १४

(१) इस सूत्र का श्वेताम्बर आम्नाय के सभाष्य में तथा भाष्यानुसारिणितत्त्वार्थटीका (सिद्धसेन सूरि रचित) में और हमारे यहां पाठ अर्थ एक है।

व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिंशलोकपालांश्च वर्जयित्वा इतरेऽष्टौ विकल्पा द्रष्टव्याः ॥ अथ तेषु निकायेषु किमेकैक इन्द्र उतान्यः प्रतिनियमः कश्चिदस्तीत्यत आह-

॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।६।

वृत्त्यनुवाद- व्यन्तरेषु ७। ज्योतिष्केषु ७। च * =व्यंन्तरों और (=च) ज्योतिष्कविषैं
त्रायस्त्रिंशान् २। लोक-पालान् २। च * वर्जयित्वा-इतरे १। =त्रायत्रिंशों को और लोकपालों को छोड़कर अन्य
अष्टौ १। =आठ(इन्द्र-सामानिक-पारिषद, आत्मरक्ष-अनीक-प्रकीर्णक-आभियोग्य, किल्विषिक,
विकल्पाः १। द्रष्टव्याः १। अथ * तेषु ७। निकायेषु ७। किम् * =भेद जानना चाहिये। आगे (=अथ) तिन समूहों में क्या
एक-एकः १। इन्द्रः १। उत * अन्य १। एक एक इन्द्र है अथवा(=उत)दूसरा
प्रतिनियमः १। कश्चित् * अस्ति T इति * अतः * आह T=कोई नियम है इसलिये (आचार्य अगले सूत्रमें) कहते है कि

सूत्रम्- पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥६॥ पूर्वयोनिकाययोर्द्वीन्द्रा ॥६॥

सूत्रार्थः- पूर्वयोः ७। निकाययोः ७। द्वी-इन्द्राः १। =पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) मेंप्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं अर्थात् पूर्वोक्त देवों के चार समुदायों में से पहिले दो भवनवासी देवों के प्रत्येक भेद में (देखो सूत्र १०) दो २ इन्द्र हैं और व्यन्तर देवों के प्रत्येक भेद में

(२) जब तवर्ग से ल पश्चात् आवे तो तवर्ग को ल् ही हो जैसे तत्+लय = तल्+लय = तल्लय परन्तु नकार को अनुनासिक ही लकार हो जैसे त्रायस्त्रिंशान्+लोकपालान्=त्रायस्त्रिंशांल्लोकपालान्। (२) जब अंतिम न् के उत्तर में च् छ् ' त-थ्। और ट् ठ् में से कोई आवे तो वह न् अनुस्वार और विसर्ग में पलट जाता है। जैसे लोकपालन् च = लोकपालाः च यदि विसर्ग के पश्चात् च् अथवा छ् आवे तो वह विसर्ग श् में पलट जाता है इस कारण लोकपालान् = लोकपालांश्च हुआ जैसे कि वृत्ति में है।

(३) श्वेताम्बर आम्नाय के "सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्र" का तथा श्री सिद्धसेन रचित भाष्यानुसारिणितत्त्वार्थटीका का और अधिकतम हमारे यहाँ की पुस्तकों का पाठ इस सूत्र का एक है अर्थ सर्वत्र एक है। ज्ञानचन्द्र जी मुद्रित तत्वार्थ सूत्र में "पूर्वयोर्द्वीन्द्राः" ऐसा पाठ है यह भी पाठ "अघोरहाभ्याम् द्वेवा" सूत्र से ठीक है। (४) पूर्वयोः निकाययोः प्रत्येक शब्द षष्ठी दो वचन में भी हो सकता है उस समय अर्थ ऐसा होगा कि पहिले दो समुदाय (भवनवासी और व्यन्तरों) के इत्यादि। (५) द्वी-इन्द्राः =प्रत्येक भेद के दो दो इन्द्र हैं (यह अर्थ कैसे हुआ देखो वृत्ति में यह वाक्य अन्तर्नीत वीप्सा है।

पूर्वयोर्निकाययोर्भवनवासिव्यन्तरनिकाययोः ॥ कथं द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? सामीप्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् ॥ द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रौ येषां ते द्वीन्द्रा इति । यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति ॥ तद्यथा—भवनवासिषु तावदसुरकुमाराणां द्वाविन्द्रौ चमरो

(देखो सूत्र ११) दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार भवनवासी देवोंमें बीस इन्द्र हैं और व्यन्तर देवोंके आठ भेदोंमें सोलह इन्द्र हैं सर्व छत्तीस इन्द्र हैं ॥

वृत्त्यनुवाद— पूर्वयोः १। निकाययोः ३। भवनवासि- =पहिले दो निकायोंमें भवनवासी
व्यन्तर-निकाययोः ३। =और व्यन्तरोंके निकायों विषैं (प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र) हैं
कथं * द्वितीयस्य ३। पूर्वत्वम् १॥ =(प्रश्न) दूसरे (व्यन्तरनिकाय) के कैसे प्रथमपना अथवा पूर्वपना है ॥
सामीप्यात् ५। पूर्वत्वम् १॥ उपचर्य-उक्तम् १॥ =निकटता (के कारण)से पूर्वपना उपचारकरि अथवा कल्पनाकरि कहा गया है ॥
द्वि-इन्द्राः १। इति * अन्तर्नीत-वीप्सा- ="द्वि-इन्द्रा" ऐसा(वाक्य)अन्तप्राप्त वा अन्तरगर्भित क्रमसे प्रत्येक(=वीप्सा) भेदके
अर्थः १। =लिये(=अर्थ)है अर्थात् दश भेद(देखो सूत्र १०)भवनवासी निकायके हैं सो क्रमसे प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं और व्यन्तरनिकायके आठ भेद (देखो सूत्र ११) हैं सो प्रत्येक भेदके दो दो इन्द्र हैं इस प्रकार अभ्यन्तरगत वीप्सा के अर्थ सूत्रमें "द्वि-इन्द्रा" लाये हैं ॥
द्वौ १। द्वौ १। इन्द्रौ १। येषां ६। ते १। द्वि-इन्द्रा १। इति *=दो दो इन्द्र जिन (असुरों) के हैं ते "द्वि इन्द्रा" हैं
यथा सप्तपर्णः १। =जैसे सप्तोनेका वृक्ष अर्थात् जिस (वृक्ष) के प्रति पत्ते के साथ सात सात पत्ते हों।
अष्टापदः १। इति * तद्यथा-भवनवासिषु ७। =और अष्टापद अर्थात् प्रत्येक के आठ आठ पद हों हैं ॥ जैसे भवनवासियों में
तावत् * असुरकुमाराणां ६। द्वौ १। इन्द्रौ १। चमरः १। =तो (=तावत्) असुर कुमारों के दो इन्द्र चमर

१—वीप्सा शब्द स्त्रीलिंग है अमरकोश का संक्षेप गोले महाशय ने श्लोक बद्ध किया है जो अमरसार के नाम से प्रसिद्ध है जिसकी आवृत्ति १८८८ के पृष्ठ २७१ में वीप्साक्रमसे प्रत्येक,ऐसा अर्थ लिखा है ॥ वीप्सा=बार बार उसी अर्थ में शब्दोंका दुहराना ॥ देखो वैद्य कोश पृष्ठ ६८५ ॥

वैरोचनश्च । नागकुमाराणां धरणो भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरिकान्तश्च । सुपर्णकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणां अग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वातकुमाराणां वैलम्बः प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुघोषो महाघोषश्च। उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च। द्वीपकुमाराणां पूर्णो वशिष्टश्च। दिक्कुमाराणां अमितगतिरमितवाहनश्चेति ॥ व्यन्तरेष्वपि किन्नराणां द्वाविन्द्रौ किन्नरः किम्पुरुषश्च। किम्पुरुषाणां सत्पुरुषो महापुरुषश्चेति । महोरगाणां अतिकायो महाकायश्च ।

वैरोचनः १।१ च * । नागकुमाराणां ६।३ धरणः १।१	=और (च) वैरोचन हैं नागकुमारोंके धरण
भूतानन्दः १।१ च * । विद्युतकुमाराणां ६।३ हरिसिंहः १।१	=और भूतानन्द (दो इन्द्र) हैं। विद्युतकुमारोंके हरिसिंह
हरिकान्तः १।१ च * । सुपर्णकुमाराणां ६।३ वेणुदेवः १।१	=और हरिकान्त (दो इन्द्र) हैं। सुपर्णकुमारोंके वेणुदेव
वेणुधारी १।१ च *। अग्निकुमाराणां ६।३ अग्निशिखः १।१	=और वेणुधारी (दो इन्द्र) हैं। अग्निकुमारोंके अग्निशिख
अग्निमाणवः १।१ च * । वातकुमाराणां ६।३ वैलम्बः १।१	=और (=च) अग्निमाण (ये दो इन्द्र) हैं। वातकुमारोंके वैलम्ब
प्रभञ्जनः १।१ च * । स्तनित-कुमाराणां ६।३ सुघोषः १।१	=और (=च) प्रभञ्जन (ये दो इन्द्र) हैं। स्तनित कुमारोंके सुघोष
महाघोषः १।१ च * । उदधिकुमाराणां ६।३ जलकान्तः १।१	=और (=च) महाघोष (ये दो इन्द्र) हैं। उदधि कुमारोंके जलकान्त
जलप्रभः १।१ च * । द्वीपकुमाराणां ६।३ पूर्णः १।१	=और (=च) जलप्रभः (ये दो इन्द्र) हैं। द्वीपकुमारोंके पूर्ण
वशिष्टः १।१ च * । दिक्कुमाराणां ६।३ अमितगतिः १।१	=और (=च) वशिष्ट (ये दो इन्द्र) हैं। दिक्कुमारोंके अमितगति
अमितवाहनः १।१ च * इति * । व्यन्तरेषु ७।३ अपि *	=और (=च) अमितवाहन (ये दो इन्द्र) हैं। व्यन्तरोंमें भी
किन्नराणां ६।३ द्वौ १।२ इन्द्रौ १।२ किन्नरः १।१ किम्पुरुषः १।१ च *।	=किन्नरोंके दो इन्द्र किन्नर और (=च) किम्पुरुष हैं ॥
किम्पुरुषाणां ६।३ सत्पुरुषः १।१ महापुरुषः १।१ च * इति * ।	=किम्पुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष (ये दो इन्द्र) हैं।
महोरगाणां ६।३ अतिकायः १।१ महाकायः १।१ च * ।	=महोरगों के अतिकाय और (=च) महाकाय (ये दो इन्द्र) हैं।

गन्धर्वाणां गीतरतिर्गीतयशाश्च । यक्षाणां पूर्णभद्रो माणिभद्रश्च । राक्षसानां भीमो महाभीमश्च । भूतानां प्रतिरूपोऽप्रतिरूपश्च पिशाचानां कालो महाकालश्च ॥ अथैषां देवानां सुखं कीदृशमित्युक्ते सुखावबोधनार्थमाह—

॥ कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥

गन्धर्वाणां, गीतरतिः, गीतयशाः, च* ।	=गन्धर्वोंके गीतरति और गीतयशाः (ये दो इन्द्र) हैं ।
यक्षाणां, पूर्णभद्रः, माणिभद्रः, च* । राक्षसानां,	=यक्षोंके पूर्णभद्र और माणिभद्र (ये दो इन्द्र) हैं राक्षसोंके
भीमः, महाभीमः, च* । भूतानां, प्रतिरूपः,	=भीम और महाभीम (ये दो इन्द्र) हैं । भूतोंके प्रतिरूप
अप्रतिरूपः, च* । पिशाचानां, कालः, महाकालः, च*	=और(=च) अप्रतिरूप (ये दो इन्द्र) हैं । पिशाचोंके काल और महाकाल (दो इन्द्र) हैं।
अथ* एषां,	=आगे (=अथ) इन (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी तथा स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाले)
देवानां, सुखं, कीदृशम्, इति* उक्ते, सुख-	=देवोंके सुख किसप्रकार है, ऐसे पूंछने पर सुखके
अवबोधन-अर्थम्, आह ।	=जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि
सूत्रम्— कायप्रविचारा आ ऐशानात् ॥७॥	= भवनवास्यादयो देवा आ ऐशानात् कायप्रवीचारा भवन्ति
काय-प्रवीचाराः,	=शरीरसे मैथुन विषयका उपसेवनवाले वा कामसेवनहार (भवनवासी देवोंसे)
आ ऐशानात्,	=ऐशान (दूसरे) स्वर्ग पर्यन्त (=आ) हैं अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहिलास्वर्ग) तथा ऐशान (दूसरे) स्वर्ग तकके देव, मनुष्यों के समान अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ कामसेवन करते हैं ॥

(१। गीत यशाः शब्द के रूप विश्वपाके (=सूर्य-चन्द्र-अग्नि-विश्वम्भर) जो पुल्लिंग है सदृश हैं जैसे विश्वपा का पुल्लिग एक वचन प्रथमा विभक्ति "विश्वपाः" है । वैसे ही गीतयशाः है कई महाशयोंने हिन्दीमें इस "गीतयशाः" शब्दका अनुवाद 'गीतयश' ऐसा किया है चूंकि 'गीतयशा' एक इन्द्रका नाम है वह निश्चय से एक वचन में है । हमको एक हस्त लिखित संस्कृत सर्वार्थसिद्धि में "गन्धर्वाणां गीतरतिः । गीतयशाश्च ॥ ऐसा पाठ पृष्ठ ९४ पर प्राप्त हुआ है और पं० पन्नालाल जी दूनी ने "अर गंधर्वनि के विषै गीतरति अर गीतयशा नामा दोय इन्द्र हैं" ऐसा अनुवाद किया है ॥ हमने भी क्योंकि एक इन्द्र का नाम है बिना परिवर्तनकिये हुए गीतयशा अनुवाद किया है ॥

(२) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायों में इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक सा है । कहीं प्रविचार, कहीं प्रवीचार शब्द है, दोनों ठीक हैं ॥

प्रविचारो मैथुनोपसेवनम् । कायेन प्रविचारो येषां ते कायप्रविचाराः ॥ आङ् अभिविध्यर्थः । असंहितया निर्देशः असंदेहार्थः ॥ एते भवनवास्यादय ऐशानान्ताः संक्लिष्टकर्मत्वान्मनुष्यवत्स्त्रीविषयसुखमनुभवन्तीत्यर्थः ॥ अवधिग्रहणादितरेषां सुखविभागेऽनिर्ज्ञाते तत्प्रतिपादनार्थमाह––

शब्दानुवाद—प्रविचारः ;। मैथुन-उपसेवनम् ;।॥	=प्रविचार है सो कामसेवन अथवा मैथुन विषयका उपभोग है।
कायेन ;। प्रविचारः ;। येषां ;। ते ;। कायप्रविचारः ;।	=शरीरसे कामसेवन जिनके हैं ते काय प्रविचारा हैं।
आङ् ;। अभिविधः ;। अर्थः ;।	=(सूत्रमें) आङ् उपसर्ग सीमाके लिये अर्थात् सूत्रमें आ शब्द लगा, तक वा पर्यन्त अर्थमें है जो सीमा वतलाता है
असंहितया ;। निर्देशः ;।	=(उस आ का) संधिसे रहित वा विनासंधि उच्चारण वा कहना (निर्देश)
असन्देह -अर्थः ;।	=सन्देहके निवारणके लिये हैं अर्थात् 'आऐशानात्' ऐसा सूत्रमें वाक्य है

इस आ तथा ऐशानात् की संधि करदेवें मिलादेवें तो व्याकरण की रीतिसे ऐशानात् होजावेगा फिर स्पष्ट रीतिसे यह न जान पडेगा कि ऐशानात् में आ उपसर्ग मिलाहुआ है अथवा नहीं इस सन्देह के दूर करने के लिये संधि न करके उमास्वामी ने आ ऐशानात् ऐसा उच्चारण किया है।

एते ;। भवन-वासी-आदयः ;। ऐशान-अन्ताः ;।	=ये सब भवनवासी व्यन्तर, ज्योतिषी सौधर्म (आदय) ऐशान तक
संक्लिष्ट-कर्मत्वात् ;।॥ मनुष्यवत् * स्त्री-विषय-सुखम् ;।॥	=संक्लिष्ट कर्मके (उदय) होनेसे मनुष्यके समान स्त्रीके विषय सुखको
अनु-भवन्ति T इति * अर्थः ;।	=अनुभवन करते हैं अथवा भोगते हैं ऐसा अभिप्राय है।
अवधि-ग्रहणात् ;।॥ इतरेषां;। सुख-विभागे;।	=(इस सूत्रमें) मर्यादा ग्रहण करनेसे अन्य (देवों) के सुखका विभाग
अनिर्ज्ञाते;। तत्-प्रतिपादन-अर्थम्;।॥ आहT	=न जानने पर उस (विभाग) के ज्ञानके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) यदि अ अथवा आ से परे ए ऐ ओ औ इन स्वरोंमेंसे कोई स्वर आवे तो (अ+ए) (अ+ऐ) (आ+ए) (आ+ऐ) मिलकर ऐ होजायगा और (अ+ओ) (अ+औ) (आ+ओ) (आ+औ मिलकर औ हो जावेगा इस कारण ऊपर के वाक्य में काय प्रविचारा आ ऐशानात् में आ+ऐशानात् मिलकर 'ऐशानात्' होजायगा और फिर समस्त सूत्र 'कायप्रविचारा ऐशानात्' ही होजायगा। अब 'ऐशानात्' वाक्य से यह संदेह हो सका है कि "ऐशानात्" विना आ के मिलाये हुये आचार्य ने उच्चारण किया है अथवा आ को मिलाकर "ऐशानात्" किया है। इस सन्देह के निराकरण करनेके लिये स्पष्टतया "कायप्रविचारा आ ऐशानात्" ऐसा सूत्र कथित है।

॥ शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥८॥

सूत्रम्— शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रविचाराः ॥८॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाः देवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में तथा श्री सिद्धसेन सूरि रचित 'भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीकामें' हमारे यहांके पाठसे "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य अधिक है। शेषपाठ हमारे यहांके सूत्र पाठसे मिलता है। सभाष्य० में इस सूत्रका अर्थ ऐसे लिखा है कि "ऐशानादूर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्ना देवा द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचारा भवन्ति यथासङ्ख्यम्"=ऐशानात् ऊर्ध्वं शेषाः कल्पोपपन्नाः देवाः द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचाराः भवन्ति यथासङ्ख्यम्="ऊपर कहे हुये ईशान स्वर्गसे ऊपर शेष जो कल्पोपपन्न देव हैं। वे दो दो कल्पोंके क्रमसे स्पर्श, रूप, शब्द तथा मनसे मैथुन सेवन करने वाले हैं" "द्वयोर्द्वयोः"=द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः अर्थात् दो दो कल्पोंमें। दोनों आम्नायके इन सूत्रोंके अर्थभेद समझनेमें स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य० में दश कल्प माने हैं जैसा कि पृष्ठ ९३ के "शेष आठ कल्पोंके देवोंमें से दो दो कल्पोंके देव यथासंख्य करके क्रमसे स्पर्श रूप शब्द तथा मनसे प्रवीचार करने वाले हैं" सूत्रानुवाद से प्रगट है। परन्तु श्री सिद्धसेन सूरि रचित "भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका" में बारह कल्प माने हैं। "कल्पः समुदाय सन्निवेशो विमानभावपृथिवीप्रस्तारसंनिमित्तभेदा द्वादशधा" "सूत्र २० 'सौधर्मादि' पृष्ठ ३३५।"...... आरणाच्युतावित्येव द्वादश कल्पाः तद् उपरिग्रैवेयकानिनवोपर्युपरित पंच महा विमानानि इति" पृ.३३३६॥ इस भाष्य में बाईस सहस्र श्लोक से अधिक हैं श्वेताम्बरों में सबसे महत्व का ग्रन्थ है। हमने इसके अनुसार बारह कल्प नीचे के लेखमें मानकर अन्तर दोनों सम्प्रदायों का प्रगट किया है॥ हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं॥ बांयें ओर दिगम्बर आम्नाय का लेख है और दाहिने हाथ की ओर श्वेताम्बर आम्नायका—

सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सौधर्म कल्प	ईशान कल्प	यहां काय द्वारा काम सेवन है
सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्रकल्प	यहां स्पर्शन द्वारा काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	सनत्कुमारकल्प	माहेन्द्र कल्प	यहां स्पर्शन द्वारा कामसेवन है
ब्रह्मकल्प	ब्रह्मोत्तरकल्प	} यहां रूपदर्शनद्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है	ब्रह्मलोक कल्प		} यहां रूपदर्शन द्वारा काम सेवन है
लांतवकल्प	कापिष्टकल्प	}	—एक ही इन्द्र है	लान्तक कल्प		}
शुक्रकल्प	महाशुक्र कल्प	} *शब्दश्रवण द्वारा कामसेवन है	—एक ही इन्द्र है		महाशुक्र कल्प	} यहां शब्दश्रवण द्वारा काम सेवन है
सतारकल्प	सहस्रार कल्प	}	—एक ही इन्द्र है		सहस्रार कल्प	}
आनतकल्प	प्राणत कल्प	} *मनो विकल्प से काम सेवन है	—एक एक इन्द्र है	आनतकल्प	प्राणत कल्प	} यहां मनो विकल्प से काम सेवन है
आरणकल्प	अच्युत कल्प	}	—एक एक इन्द्र है	आरणकल्प	अच्युत कल्प	}

उक्तावशिष्टग्रहणार्थं शेषग्रहणम् ॥ के पुनरुक्तावशिष्टाः ? कल्पवासिनः ॥ स्पर्शश्च रूपं च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि, तेषु प्रविचारो येषां ते स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥

=(ऐशानादूर्ध्वं) शेषाः (कल्पोपपन्नाःदेवाः) स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः (यथासंख्यम् भवन्ति)

ऐशानात् ५। ऊर्ध्वम् ॐ शेषाः १। कल्पोपपन्नाः १। देवाः १।	=ईशान स्वर्गसे ऊपर अवशेष वा बचे हुये कल्पोपपन्न देव हैं (अर्थात् तीसरे स्वर्गसे सोलहवां स्वर्ग तक के देव देवांगनाओं के)
स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्—	=स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें तथा मनके विचारनेमें
प्रविचाराः १। यथासंख्यम् १॥। भवन्ति T	=काम सेवनेवाले अनुक्रमसे हैं ॥
वृत्त्यनुवाद—उक्त—अवशिष्ट—	=(तीसरे सूत्रमें) कहे हुये (देवों)मेंसे अवशेष अथवा बचे हुये (देवों) के
ग्रहण—अर्थं १॥। शेष—ग्रहणम् १॥। पुनर्—उक्त—	=आदानके लिये (इस सूत्रमें) शेष शब्दका ग्रहण है[प्रश्न]बहुरि कथित (देवों) मेंसे
अवशिष्टाः १। के १। कल्प—वासिनः १।	=शेष कौन हैं [उत्तर, ऐशान स्वर्गसे ऊपर] स्वर्गवासी [देव शेष] हैं ॥
स्पर्शः १। च ॐ रूपं १॥। च शब्दः १। च मनः १॥।	=और स्पर्श बहुरि रूप तथा शब्द और मन [ये शब्द द्वन्द्वसमासमें]
स्पर्श—रूप—शब्द—मनांसि १॥। तेषु ७॥	=स्पर्श-रूप-शब्द-मनांसि (रूपमें) हो जाते हैं। तिन [स्पर्श-रूप-शब्द-मन]विषैं
प्रविचारः १। येषां ६। ते १। स्पर्श-रूप-शब्द-मनस्-प्रविचाराः १।	=काम सेवन है जिनके ते स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रविचारा हैं

इस सर्वके मिलाने से दोनों सम्प्रदायों के अर्थ भेदका सारांश यह निकलता है कि भवनवासी देवोंसे लेकर माहेन्द्र कल्प तक दोनों में एक है अर्थात् काय द्वारा और स्पर्शन द्वारा काम सेवन होता है ॥ आनत कल्प, प्राणत कल्प, आरण कल्प, अच्युत कल्प इनमें भी काम सेवन एकसा है परन्तु चार कल्प मानने में "द्वयोर्द्वयोः" वाक्य लागू नहीं होता है ॥ रहा ब्रह्मकल्पका, ब्रह्मोत्तरकल्पका लांतवकल्पका, कापिष्ठकल्पका सो दोनों आम्नायों में काम सेवन रूप दर्शन से होता है परन्तु उन्होंने ब्रह्मोत्तर कल्प और कापिष्ठकल्पको नहीं माना है। इसी प्रकार शुक्रकल्प, महाशुक्र कल्प, शतारकल्प, सहस्रारकल्प इनमें श्रवण द्वारा काम सेवन होता है परन्तु उनके यहां शुक्रकल्प और सतारकल्प को नहीं माना है ॥

(१)— इन शब्दों को तृतीया कारक अथवा करण कारकमें मानकरि इस प्रकार भी अनुवाद कर सकते हैं कि स्पर्शकरि, रूप के देखने से, शब्दके सुननेसे, मनके विचारनेसे, काम सेवने वाले हैं ॥

कथमभिसम्बन्धः ? आर्षाविरोधेन । कुतः पुनः प्रवीचारग्रहणं ? इष्टसम्प्रत्ययार्थमिति ॥ कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्ध आर्षाविरोधी ? । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्देवा देवाङ्गनास्पर्शमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते तथा देव्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु देवा दिव्याङ्गनानां

अर्थात् स्पर्श करनेमें, रूप देखनेमें, शब्द सुननेमें और मनके विचारनेमें कामसेवनेवाले हैं

कथम् * अभिसम्बन्धः १। =(इन देव और मैथुनके भेदोंमें) कैसे अभिसम्बन्ध है अर्थात् प्रश्न यह है कि इन शेष चौदह स्वर्गोंके देवोंका स्पर्शप्रविचार, रूपप्रविचार, शब्दप्रविचार, मनःप्रविचारोंमें से किस किस प्रकार या भांतिके प्रविचारसे सम्बन्ध है ॥

आर्ष–अविरोधेन ३। =(उत्तर) आगम अथवा धर्मशास्त्रकी विरुद्धता (=विरोध) से रहित (अभिसम्बन्ध) है

कुतः * पुनः * प्रविचार— =(प्रश्न) क्यों फिर (जब पूर्व सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है) प्रविचारका (इस सूत्रमें)

ग्रहणं १॥ इष्ट–सम्प्रत्यय–अर्थम् १॥ इति * ॥ =उपादान है । (उत्तर) अभिलषित अभिसम्बन्धके लिये है अर्थात् शिष्यके पूछने पर कि जब सातवां सूत्रमें प्रविचार शब्द विद्यमान है तब फिर इस सूत्रमें क्यों लाये हो उत्तरमें कहते हैं कि वांछित अभिसम्बन्धके (जो चौदह स्वर्गके देवोंको जिस जिस भांति के प्रविचार है) प्रगट करने के लिये लाये हैं ।

कः १। पुनः–इष्टः १। अभिसम्बन्धः १। =(प्रश्न) बहुरि क्या वांछित अभिसम्बन्ध (कथित देवों और उक्त प्रविचारोंमें) है

आर्ष-अविरोधी १। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः ७। देवाः १।=(उत्तर) आगमसे अविरोधरूप (सम्बन्ध) है। (अर्थात्) सनत्कुमार, महेन्द्र स्वर्गमें देव

देव-अङ्गना-स्पर्श-मात्रात् ५॥ एव परां २॥ प्रीतिम् २॥ =देवियोंके स्पर्श करने मात्रसे ही परम प्रीतिको

उपलभन्ते T तथा * देव्यः १॥ अपि * । =प्राप्त होते हैं । तैसे देवाङ्गना भी (परमप्रीति को प्राप्त होती हैं) ॥ २२

ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर–लान्तव– =ब्रह्म [पांचवां स्वर्ग] ब्रह्मोत्तर [छठवां स्वर्ग] लान्तव [सातवां स्वर्ग]

कापिष्ठ ७॥ देवाः १। दिव्य–अङ्गनानाम् ६॥ =कापिष्ठ [आठवां स्वर्ग] में, देव स्वर्गकी [= दिव्य] स्त्रियोंके अर्थात् देवियोंके

शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोज्ञवेषरूपावलोकनमात्रादेव परमसुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुरसङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूषणरवश्रवणमात्रादेव परां प्रीतिमास्कन्दन्ति । आनतप्राणतारणाच्युतकल्पेषु देवाः स्वाङ्गनामनःसङ्कल्पमात्रादेव परं सुखमाप्नुवन्ति ॥

अथोत्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युक्ते तन्निश्चयार्थमाह—

शृङ्गार-आकार-विलास-चतुर-मनोज्ञ-वेष-रूप-	=शृङ्गार, आकार, हर्ष (=विलास) चतुर, सुंदर (=मनोज्ञ) वेष और रूपके
अवलोकन-मात्रात् ५॥ एव* परम्-सुखम्२॥ आप्नुवन्तिT ॥	=केवलमात्र देखनेसे ही उत्कृष्ट सुखको प्राप्त होते हैं ॥
शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=शुक्र (नवमां स्वर्ग) महाशुक्र (दशवां स्वर्ग) शतार (ग्यारहवां स्वर्ग)
सहस्रारेषु७॥ देवाः१। देव-वनितानाम्६॥ मधुर-	=सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) में देव और देवियोंके प्रिय (=मधुर)
सङ्गीत-मृदु-	=नाचना-गाना-बजाना (=संगीत) अथवा गान (=संगीत) कोमल (=मृदु)
हसित-ललित-कथित-भूषण-रव-	=हास्य, मनोहर (=ललित) बोलना (=कथित) और आभूषण के शब्द (=रव)के
श्रवण-मात्रात्५॥ एव* परां२॥ प्रीतिं२॥ आस्कन्दन्तिT	=केवल (=मात्र) सुननेसे ही अतिशय प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-	=आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां) आरण (पंद्रहवां) और अच्युत (सोलहवां)
कल्पेषु७। देवाः१। स्व-अङ्गना-	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु) देव अपनी २ (=स्व) सुंदरीयोंकी (=अङ्गना) अर्थात् देवियोंका
मनः-सङ्कल्प-मात्रात्५॥ एव* परं२॥ सुखम् २॥	=मनमें विचार अथवा चितवन मात्रसे ही उत्कर्ष सुखको
आप्नुवन्तिT अथ-उत्तरेषाम् ६।	=पाते हैं । अब अग्रिम (अहमिन्द्र अथवा कल्पातीत देव) निके
किम्* प्रकारं१॥ सुखम् १॥ इति* उक्ते७। तत्-	=सुख कौन प्रकार है ऐसा पूंछने पर उस (सुख) के
निश्चय-अर्थम्२॥ आहT	=निर्धारणके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) परम् (अव्य०)=केवल, अनन्तर ॥ परम (त्रि०)=उत्कृष्ट, प्रधान, बड़ा, पहिला ॥ परमम् (अव्य०)=हां, स्वीकार, अनुज्ञा ॥ पर=का अर्थ सबसे अच्छे का भी है । (देखो परास प्रीति आस्कन्दन्ति पृ० २३६ वृत्ति०)

(२) 'कल्प' यह शब्द "सभाप्रसत्वार्याविगमसूत्रम्" में निम्न वाक्योंमें पुल्लिंगमें आया है । सौधर्मस्य कल्पस्योपर्यैशानः कल्पः । सा (=सभा) तस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः । सर्वकल्पाः (देखो पृष्ठ १०६ चौथा अध्याय सूत्र १० का)

। परेऽप्रवीचाराः ॥९॥

परग्रहणमितराशेषसंग्रहार्थम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यर्थम् ॥ प्रवीचारो हि वेदनाप्रतिकारः । तदभावे तेषा परमसुखमनवरतं भवति ॥ उक्ता ये आदिनिकायदेवा–

सूत्रम्–	परेऽप्रवीचाराः =(कल्पोपपन्नेभ्यः)[तीसरे सूत्रमें लिया]परे देवाः अप्रवीचाराः भवन्ति
सूत्रार्थ–कल्प-उपपन्नेभ्यः ५। परे १। देवाः १।	= स्वर्ग में उत्पन्न होनेवाले देवोंसे परे वा अन्य अवशेष देव अर्थात् कल्पातीत देव वा अहमिन्द्र
अप्रविचाराः १।	=काम सेवन रहित है।
वृत्त्यर्थ-पर-ग्रहणम् १।। इतर-अशेषं–	=(इस सूत्र में) पर शब्दका ग्रहण अन्य समस्त (अशेष) (देवों) के
संग्रह-अर्थम् १।। अप्रविचार-ग्रहणम् १।। परम–	=संग्रह के लिये है। अप्रविचारका ग्रहण उत्कर्ष
सुख-प्रतिपत्ति-अर्थम् १।। प्रविचारः १।। हि वेदना=	सुख के जनावने के लिये है काम सेवन ही (=हि) (मैथुन) वेदना वा पीड़ाका
प्रतिकार १। तद्-अभावे ७।	= उपाय वा चिकित्सा (प्रतिकार = प्रतीकार) है तिस (मैथुनरूपी वेदना) के न होने पर
तेषाम्६। परम-सुखं १।। अनवरतम् १।। भवति T	= तिन (कल्पातीत देवों) के उत्कृष्ट (= परम) निरंतर वा लगातार (= अनवरत) सुख होता है
उक्ता १। ये १। आदि-निकाया-देवाः १।	=कहे जे प्रथम समुदाय के देव (अर्थात् भवनवासी)

(१) इस सूत्रका पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है सामान्य रूप से अर्थ भी एक है क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में "नवअनुदिश" नहीं माने हैं तब भी विमानों की संख्या जो सोलहवां स्वर्ग से ऊपर हैं दोनों आम्नाओंमें ३२३ (तीन सौ तेईस) ऐसे हैं कि 'और ग्रैवेयकोंके अधोभागमें एक सौ ग्यारह (१११) विमान हैं। मध्य भाग में एकसौ सात (१०७) और ऊपर केवल शत (१००) विमान हैं। और अनुत्तरदेवोंके केवल पांच हैं सभाष्य० पृष्ठ१०९। तीन अधोग्रैवेयक विषै एकसौ ग्यारह विमान हैं। और तीन मध्यम ग्रैवेयक विषै एकसो सात विमान हैं। और तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयकनि विषैं इक्याणवे विमान हैं बहुरि 'नव अनुदिश विषैं नव विमान हैं और अनुत्तर विषैं पांच विमान हैं अर्थ प्रकाशिका सूत्र १९ पृष्ठ २६४ अतः ३२३ हुये
(२) पं० जयचन्द रायजीकी वचनिकामें इस वाक्यसे कि 'यहां पर शब्द का ग्रहण अवशेष रहे जे अहमिन्द्र तिन के ग्रहण के अर्थि हैं'। जान पड़ता है कि जिस संस्कृत वृत्ति से उन्हों ने वचनिका की है उसमें ऐसा पाठ होगा कि 'परग्रहणमितरावशेषसंग्रहार्थम्' अर्थात् अशेष शब्द के स्थान में अवशेष शब्द होगा। परन्तु सदासुख जी की अर्थप्रकाशिकाके इस वाक्यने कि यहां 'पर' शब्दके कहने करि कल्पातीत समस्त देवनिका संग्रह भया जान पड़ता है कि जिस प्रति से उन्हों ने भाव लिया है उसमें 'अशेष' शब्द था जैसा कि ऊपर पाठ है। दोनों पाठोंका एकही आशय है। हस्तलिखित एक प्रतिमें हमको 'अशेष' शब्द मिला है।

दशविकल्पा इति तेषां सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञापनार्थमिदमुच्यते—

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।१०।

भवनेषु वसन्तीत्येवंशीला भवनवासिनः । आदिनिकायस्येयम्

दश-विकल्पाः ।१। इति ॐ तेषां ।६। सामान्य-विशेष- सञ्ज्ञा-विज्ञापन-अर्थम् ।७।। इदम् ।१।। उच्यते T	=दश भेदरूप तिन (भवनवासी देवों) के सामान्य और विशेष संज्ञाओंके जतावनेके लिये यह (अग्रिमसूत्रमें) कहा जाय है कि

सूत्रम्— भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥१०॥

= भवनवासिन :असुरकुमाराः नागकुमाराः विद्युत्कुमाराः सुपर्णकुमाराः अग्निकुमाराः वातकुमाराः स्तनितकुमाराः उदधिकुमाराः द्वीपकुमाराः दिक्कुमाराः च दशविकल्पाः भवन्ति ॥

सूत्रार्थः— भवनवासिनः ।१। असुरकुमाराः ।१। नागकुमाराः ।१।	=भवनवासी देव, असुरकुमार, नागकुमार,
विद्युत्कुमाराः ।१। सुपर्णकुमाराः ।१। अग्निकुमाराः ।१।	=विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार,
वातकुमाराः ।१। स्तनितकुमाराः ।१। उदधिकुमाराः ।१।	=वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार,
द्वीपकुमाराः ।१। दिक्कुमाराः, ।१। च ● दश-विकल्पाः ।१। भवन्ति	=द्वीपकुमार, और (=च) दिक्कुमार, दशभेदरूप हैं
वृत्त्यनुवादः—भवनेषु ।७। वसन्ति T इति ● एवं शीलाः ।१।	=भवनोंमें बसते हैं ऐसे स्वभाव वाले (=शालाः)
भवनवासिनः ।१। आदिनिकायस्य ।६। इयम् ।१।।	=भवनवासी देव हैं (चार समूहके देवोंमेंसे) प्रथमसमुदायकी यह

(१) दोनों सम्प्रदायों में इस सूत्र का अर्थ और पाठ एक है। हमारे यहां यह दशवां सूत्र है श्वेताम्बर आम्नाय में यह ग्यारहवां सूत्र है।

(२) द्वंद्व समासमें जितने शब्द जोड़े जावें उन प्रत्येकके अन्तका एक चकार गुप्त समझ लिया जाव अथवा प्रत्येक शब्द के साथ जितने शब्द जोड़े जावें उतने ही चकार समझ लिये जावें इसलिये ऊपरके दशशब्दोंके भेदोंमें इस प्रकार दश चकार होंगे कि असुरकुमाराः च, नागकुमाराः च, विद्युत्कुमाराः च, सुपर्णकुमाराः च, अग्निकुमाराः च, वातकुमाराः च, स्तनितकुमाराः च, उदधिकुमाराः च, द्वीपकुमाराः च, दिक्कुमाराः च, इस अवस्थामें अनुवादमें भी दशवार 'और' शब्द आवेगा परन्तु अनुवादक ने केवल एक चकार लेकर ऊपरका अनुवाद किया है।

सामान्यसञ्ज्ञा । असुरादयो विशेषसञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवृत्तयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवयः स्वभावत्वेऽपि वेषभूषायुधयानवाहनक्रीडनादिकुमारवदेषामाभासन्त इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो रूढः । स प्रत्येकं परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि ॥ क तेषां भवनानीति चेदुच्यते— रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुर

सामान्य-सञ्ज्ञा ॥ असुर-आदयः ॥ =सामान्य संज्ञा है असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक

विशेष-संज्ञा ॥ विशिष्ट-नामकर्म-उदय-आपादित- =विशेषसंज्ञा है । विशेष नाम कर्मके उदयके प्रापने (=आपादित)

वृत्तयः ॥ सर्वेषाम् ॥ देवानाम् ॥ =(ये दश विशेषसंज्ञा) प्रवर्ते हैं । समस्त (भवनवासी) देवों के

अवस्थितवयः ॥ =स्थिर अथवा एकरूप (=अवस्थिति) (बालपन योवनादिक) अवस्था

स्वभात्वे ॥ अपि ॐ वेष-भूषा-आयुध- =स्वभावसे होनेपर भी वेष सजावट (=भूषा) अस्त्र (=आयुध)

यान-वाहन- =लेजानेके साधन रथ, गाड़ी आदिक (=यान) सवारी (=वाहन)

क्रीडन-आदि-कुमार-वत् ॐ एषाम् ॥ आभासते T इति =परिहास वा कौतुक आदिक कुमारके समान इन (भवनवासी देवों)के शोभे हैं अर्थात् यद्यपि समस्त भवनवासी देवोंके जन्म समयसे मरण पर्यन्त एकसी दशा अथवा अवस्था रहती है । बाल, यौवन, जरा आदिक अवस्था पलटती नहीं है तो भी इनकी कुमार संज्ञा पूर्वोक्त निमित्तसे नहीं हैं वरण इस कारणसे है कि वे वेष, आभूषण, यान, वाहन, क्रीडनकरि कुमारके समान प्रवर्तें हैं ।

भवनवासिषु ॥ कुमार-व्यपदेशः ॥ रूढः ॥ =भवनवासी (देवों) विषैं कुमारनाम प्रसिद्ध (=रूढ) है

सः ॥ प्रत्येकं ॐ परिसमाप्यते T =वह कुमार व्यपदेश वा संज्ञा प्रत्येक (दश विशेष संज्ञाओं पर) जोड़ा जाता है ।

असुर-कुमाराः ॥ इति ॐ एवम् ॐ आदि ॥ =(तब) असुरकुमार एवं आदिक (पूर्वोक्त दश संज्ञा) हैं ।

क ॐ तेषाम् ॥ भवनानि ॥ इति ॐ चेत् ॐ उच्यते T =कहां तिनके निवासस्थान हैं ? इस प्रकार शंका होनेपर (=चेत्) कहा जाय है कि

रत्नप्रभायाः ॥ पङ्कबहुल-भागे ॥ असुर- =रत्नप्रभा (पृथिवी) के पङ्कबहुल भागमें अर्थात् दूसरे भागमें असुर

(१) यह शब्द भूष् धातु जिसका अर्थ सजाना है आ लगाने अर्थात् भूष्+आ =भूषा (स्त्रीलिंगमें) होता है जिसका अर्थ भूषण, आभूषण, सजावट, मण्डनक्रिया, अलंकार, आभरण है । देखो पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३७६

कुमाराणां भवनानि । खरपृथिवीभागे उपर्यधश्च एकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासाः ॥

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणार्थमाह—

कुमाराणाम् ६। भवनानि १।३। खर-पृथिवी-भागे ७। =कुमारोंके भवन हैं (रत्नप्रभाके तीन भागोंमेंसे ऊपरके) खर पृथिवी भागमें

उपरि॰ अधस्॰ च॰ एक-एक-योजनसहस्रं २। वर्जयित्वा =ऊपर और नीचे एक एक सहस्र योजन छोड़कर

शेष-नवानाम् ६। =अवशेष (भागमें) नो (नाग, विद्युत्, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप, दिक्)

कुमाराणाम् ६। आवासाः १। =कुमारोंके निवास स्थान हैं अर्थात् रत्नप्रभा नामकी पृथिवी एक लाख अस्सी सहस्र योजनकी मोटी है। उसके तीन विभाग हैं, उन तीन भागोंमें से ऊपरका खरभाग १६००० योजन मोटा है। उसमें चित्रा, वज्रा, वैडूर्य इत्यादि एक एक सहस्र योजनकी मोटी १६ पृथिवी हैं॥ इनमेंसे ऊपर और नीचे की एक एक सहस्र योजनकी दो पृथिवी छोड़कर बीचकी चौदह सहस्र योजन मोटी और एक राजू लम्बी चौड़ी पृथिवीमें नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, इन नव प्रकारके भवनवासी देवोंके निवास स्थान हैं॥ इस खर भागके नीचे दूसरा पङ्कबहुल भाग है जो चौरासी सहस्र योजन मोटा है। उसमें असुरकुमार रहते हैं और पङ्क भागके नीचे अस्सी सहस्र वा ८००००×२०००=१६०००००० सोलह करोड़ कोस मोटा अब्बहुल भाग है उसमें प्रथम नरक है।

द्वितीय-निकायस्य ६। सामन्य-विशेष सञ्ज्ञा- =दूसरे समुदायके सामान्य और विशेष संज्ञाओंके

अवधारण-अर्थम् २।१। आह =निश्चय करने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) वर्जयित्वा संबंधकसूचक भूत कृदन्त है।

॥व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम् ॥ तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषापादिताः ॥ क्व पुनस्तेषामावासा इति चेदुच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपादसंख्येयान्द्वीपसमुद्रानतीत्य उपरिष्टे खरपृथिवीभागे सप्तानां व्यन्तराणाम्

सूत्रम्— व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥११॥

= व्यन्तराः किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः (अष्ट-विकल्पाः) भवन्ति

सूत्रार्थ—व्यन्तराः१। किन्नर-किम्पुरुष-महोरग-	=व्यन्तर, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग,
गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः१। अष्ट१। विकल्पाः१। भवन्ति	=गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आठ प्रकारके हैं।
शब्दानुवाद—विविध-देश-अन्तराणि१॥ येषाम्६।	=नाना प्रकारके अन्य देश हैं, जिनके
निवासाः१। ते१। व्यन्तराः१। इति*	=वासस्थान ते व्यन्तर हैं इस प्रकार
अन्वार्था१॥ सामान्य-सञ्ज्ञा१॥ इयम्१॥ अष्टानाम्६। अपि*	=सार्थक अथवा यथा नाम तथा गुणरूप सामान्य संज्ञा यह आठों ही
विकल्पानाम्६। तेषां६। व्यन्तराणां६। अष्टौ१।	=भेदों की है। तिन व्यन्तरोंके आठ
विकल्पाः१। किन्नर-आदयः१॥	=भेद किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच, आदिक
विशेष-सञ्ज्ञाः१॥ वेदितव्याः१॥ नाम-कर्म-	=विशेष संज्ञायें जानना चाहिये। (ये आठ विशेष संज्ञा) नाम कर्मके
उदय-विशेष-आपादिताः१॥ क्व* पुनः* तेषां६। आवासाः१।	=उदयकी विशेषतासे प्राप्त(आपादित)हैं। बहुरि तिन (व्यन्तरों)के वासस्थान कहां हैं
इति* चेत्-उच्यते। अस्मात्५। जम्बूद्वीपात्५।	=इसप्रकार प्रश्न वा शंका (=चेत्) होने पर कहाजाय है कि इस जम्बूद्वीपसे
असंख्येयान्२। द्वीप-समुद्रान्२। अतीत्य÷	=असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उलंघकरि (=अतीत्य) (इस रत्नप्रभाके)
उपरिष्टे* खर-पृथिवीभागे७। सप्तानाम्६। व्यन्तराणाम्६।	=ऊपरले अर्थात् पहिले खर पृथिवी भागमें सात व्यन्तरोंके (अर्थात् किन्नर किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत, पिशाचोंके)

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इस सूत्रको बारहवां लिखा है॥

सर्वार्थ- ५६ सि २६

आवासाः ॥ राक्षसानां पङ्कबहुलभागे ॥ तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञासंकीर्तनार्थमाह-

॥ ज्योतिष्काःसूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

आवासाः १। राक्षसानाम् ६। पङ्कबहुलभागे ७।	= निवासस्थान हैं। राक्षसोंके (निवासस्थान) पङ्कबहुलभागमें हैं।
तृतीयस्य ६। निकायस्य ६। सामान्य-	= तीसरे निकायके (देवोंकी) सामान्य और
विशेष-सञ्ज्ञा-संकीर्तन-अर्थम् ४। आह T	= विशेष संज्ञाके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्- ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

= ज्योतिष्काः सूर्या चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाः च (पंचविकल्पा भवन्ति

(१) सूर्य अथवा सूर्य्य यह शब्द दोनोंभांति शुद्ध हैं क्योंकि संस्कृतके व्याकरणसे यदि किसी शब्दमें पहिले स्वर आवे र् अथवा ह् पीछेसे आवे और पश्चात् कोई व्यंजन ह् को छोड़कर आवे तो वह व्यंजन इच्छानुसार द्वित्व होजाता है अर्थात् चाहो तो उस व्यंजनका दोहरा करदो चाहो न करो जैसे अर्क वा अर्क्क,मर्क वा मर्क्क, धर्म वा धर्म्म,कर्म वा कर्म्म,ब्रह्मा वा ब्रह्मा, अपह्नुते वा अपह्न्नुते इसी प्रकार सूर्य वा सूर्य्य दोनोंही ठीक है

(२) इससूत्र का पाठ हमारे यहां की बहुधा पुस्तकोंमें "सूर्याचन्द्रमसौ" है कहीं कहीं पर 'सूर्याचन्द्रमसौ' भी है ऊपरकी टिप्पणीसे यह प्रगट है कि दोनों पाठ ठीक हैं शेष पाठ हमारे यहां सर्वत्र एकसा है। अब प्रश्न यह है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों शब्दोंका समास "सूर्यचन्द्रमसौ" क्यों नहीं हुआ 'सूर्याचन्द्रमसौ' कैसे हुआ। (उत्तर, यहांपर सूर्याचन्द्रमसौ वाक्य देवता द्वन्द्वसमास है अर्थात् देवताओंके नामोंके द्वन्द्वसमास बनाने में पहिले अवयवके अन्तको 'आनङ् (= आ =) आदेश हो। जैसे इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, मित्रावरुणौ, इन्द्राबृहस्पती, अतः सूर्याचन्द्रमसौ हुआ, अष्टाध्यायी अध्याय ६ पाद ३ सूत्र २५,२६ देखो।

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके "सूर्याचन्द्रमसौ" वाक्यके स्थानमें "सूर्याश्चन्द्रमसो" वाक्य है अर्थात् सूर्याः (बहुत दोसे अधिक सूर्य) चन्द्रमसः ३। (बहुत वा दो से अधिक चन्द्रमा)हमारे यहां अर्थ सूर्याचन्द्रमसौ वाक्यका = एक सूर्य और एक चन्द्रमा किया है परन्तु श्वेताम्बरके 'सूर्याश्चन्द्रमसो' वाक्य का अर्थ = बहुत सूर्य बहुत चन्द्रमा किया है सभाष्यमें सूर्य-चन्द्रमाको समासमें न करनेका हेतु ऐसाहै कि इस सूत्रमें समास न करनेका और आर्षप्रमाणमें सूर्य तथा चन्द्रमा का क्रमभेद करनेका कारण यह है कि जिससे यह सूचित होजाय कि इनकी यथा क्रम ऊर्ध्व स्थिति है अर्थात् आर्ष प्रयोगमें चन्द्रमा पूर्व पठित है। और सूर्य पश्चात् वह यहां पर इष्ट नहीं है। यहां पर सूर्यका ही प्रथम कहना है क्योंकि पाठ के क्रमानुसार ऊपर इन सूर्योंकी स्थिति नहीं है। किन्तु इनकी एकके पश्चात् दूसरेकी ऊपर ऊपर स्थिति है। जैसे सबके नीचे प्रथम सूर्य है। चन्द्रमाओंके ऊपर ग्रह हैं उनके ऊपर नक्षत्र हैं। और नक्षत्रोंके ऊपर प्रकीर्णक तारका हैं। और तारा; यह तो आक्षेपसे आते अर्थात्

ज्योतिस्स्वभावत्वादेषां पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था ॥ सूर्यादयस्तद्विशेषसञ्ज्ञा नामकर्मोदयप्रत्ययाः ॥ सूर्याचन्द्रमसाविति पृथग्ग्रहणं प्राधान्यख्यापनार्थम् ॥

सूत्रार्थ—ज्योतिष्काः₁ सूर्य-चन्द्रमसौ₂ ग्रह-नक्षत्र च*	=ज्योतिष्कदेव सूर्य चन्द्रमा और (=च) ग्रह, नक्षत्र
प्रकीर्णकतारकाः₃ पञ्च₄ विधरूपाः₅ भवन्ति	=प्रकीर्णक तारे पांच प्रकार हैं
वृत्त्यर्थ— ज्योतिः-स्वभावत्वात्₃॥ एषां₁ पञ्चानाम्₂	=ज्योतरूप स्वभाव होनेसे इन पांचों (सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारों) की
अपि* ज्योतिष्का₄ इति* सामान्य-सञ्ज्ञा₅ अन्वर्था₆	=ही ज्योतिष्का ऐसी सामान्य संज्ञा सार्थक अर्थात् यथा नाम तथा गुणरूप है।
सूर्य-आदयः₁	=सूर्यादिक अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, प्रकीर्णक, तारका,
तद्-विशेष-संज्ञा₂ नाम-कर्म-उदय-प्रत्ययाः₃	=उन (ज्योतिषी देवों)की विशेष संज्ञायें (विशेष) नाम कर्मके उदयके निमित्तसे हैं
सूर्या-चन्द्रमसौ₁ इति* पृथक्* ग्रहणं₃॥	=सूर्याचन्द्रमसौ ऐसे (इस सूत्रके शेष भागसे) अलग (विभक्ति) ग्रहण
प्राधान्य-ख्यापन-अर्थम्₂॥	=(इन दोनों सूर्य चन्द्रकी)मुख्यता वा श्रेष्ठता(ग्रह नक्षत्र तारकोंपर) जतानेके लिये है

अर्थात् प्रश्न यह है कि जैसे दशवां सूत्रमें भवनवासी देवोंके दश भेद मिलाकर कहे और अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन दे दी और व्यन्तरोंके आठ भेद मिलाकर अन्तमें प्रथमा विभक्ति बहुवचन देदी।

जिनकी गति नियत नहीं ऐसे होनेसे सूर्य तथा चन्द्रमाके ऊपर तथा नीचे भी भ्रमण करते हैं और सूर्यसे दश योजन अवलम्ब होते हैं अर्थात् सूर्यसे दश योजन दूर रहते हैं ॥ ( ) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र० में हमारे यहांके 'प्रकीर्णक' शब्दके स्थानमें 'प्रकीर्ण' शब्द है। शेषपाठ एक है दोनों सम्प्रदायोंमें अर्थ लगभग एक सा है।

( ) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र'का पाठ " ज्योतिष्काः सूर्याश्चन्द्रमसो ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णतारकाश्च॥१३॥ " श्वेताम्बर समाजके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'–सिद्धसेनसूरि रचितका पाठ "ज्योतिष्काः सूर्याः चन्द्रमसो ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्ण ताराश्च"

(१) इस "पञ्चविकल्पा" वाक्यको तीसरे सूत्रसे इस सूत्रमें लिया है अथवा अनुवर्तन किया है ( ) (प्रश्न) 'चन्द्रमस्' शब्द सूत्रमें क्यों लाये? जब पुल्लिङ्गमें ही 'चन्द्र'शब्द उसी अर्थमें छोटा शब्द है। अथवा इन्दु, विधु, अब्ज, सोम, ग्लौ, इन छोटे शब्दोंमेंसे कोई शब्द लाते। अमरकोष ३ वर्ग १३ श्लोक (उत्तर)चन्द्र और शब्दोंसे प्रसिद्ध है परन्तु चन्द्रमा सब से प्रसिद्ध है बच्चे तक चन्द्रमा कहते हैं इससे सूत्रमें 'चन्द्रमस्' शब्द लाये हैं।

किं कृतं पुनः प्राधान्यं ? प्रभावादिकृतम् ॥ क पुनस्तेषामावासाः ? इत्यत्रोच्यते अस्मात्समानभूमिभागादूर्ध्वं सप्तयोजनशतानि नवत्युत्तराणि ७९० उत्पत्य सर्वज्योतिषामधोभागविन्यस्तास्तारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽशीतियोजनान्युत्पत्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्य बुधाः । ततस्त्रीणि

उसी प्रकार इन पांचों भेदोंको मिलाकर इसप्रकार सूत्र करदेते कि "सूर्य-चन्द्रमः-ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्ण-कतारकाश्च" सो ऐसा सूत्र न करके "सूर्यचन्द्रमसौ" इन दो शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति दो वचन न्यारीकी और शेष सूत्र "ग्रह-नक्षत्र प्रकीर्णकतारकाश्च" इन तीन शब्दोंकी न्यारी विभक्तिकी सो ऐसा क्यों किया। उत्तरमें कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रकी शेष तीन प्रकारके ज्योतिषी देवोंपर प्रधानता (=प्राधान्य)जतानेके लिये सूर्य-चन्द्रमाकी विभक्ति अथवा कारक न्यारा किया और शेष तीन ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारका का न्यारा कारक किया ॥

किं॥ कृतम् ॥ पुनः॥ प्राधान्यम् ॥	=(प्रश्न) बहुरि क्या प्रधानपना वा श्रेष्ठता (इन सूर्य चन्द्रकी अन्य ज्योतिषियोंपर) है
प्रभाव-आदि-कृतम् ॥ । क॥ पुनः॥ तेषाम्॥	=(उत्तर) प्रताप आदिक करि (प्रधानपना) किया है। (प्रश्न) बहुरि तिनके कहां
आवासाः॥ इति॥ । अत्र॥ उच्यते	=निवास स्थान हैं (उत्तर) यहां कहा जाय है कि
अस्मात्॥ समान-भूमि-भागात्॥ ऊर्ध्वम्॥	=इस (मध्यलोकके) समान भूमिभागसे अर्थात् चित्राभूमिसे ऊपरकी ओर(=ऊर्ध्वम्)
सप्त-योजन-शतानि॥ नवति-उत्तराणि॥ उत्पत्य	=सात सौ योजन नव्वे अधिक ७९० ऊंचा (=उत्पत्य)
सर्व-ज्योतिषाम्॥ अधस्॥ भाग-विन्यस्ताः॥	=समस्त ज्योतिषियोंके नीचे भागमें फैले हुये (=विन्यस्त)
तारकाः॥ चरन्ति ततः॥ दशयोजनानि॥	=तारे विचरते हैं वहांसे अर्थात् तिन तारकाओंसे दशयोजन
उत्पत्य॥ सूर्याः॥ चरन्ति-ततः॥ अशीति-योजनानि॥	=ऊपर सूर्य भ्रमण करते हैं। वहांसे अस्सीयोजन
उत्पत्य॥ चन्द्रमसः॥ भ्रमन्ति ततः॥ चत्वारि॥	=ऊपर चन्द्रमा विचरे हैं। वहांसे चार
योजनानि॥ उत्पत्य॥ नक्षत्राणि॥ ततः॥ चत्वारि॥	=योजन ऊपर नक्षत्र (२८) हैं। वहांसे चार
योजनानि॥ उत्पत्य॥ बुधाः॥ ततः॥ त्रीणि॥	=योजन ऊंचे बुद्ध हैं। वहांसे तीन

सर्वार्थ- ३२

योजनान्युत्पत्य शुक्राः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य बृहस्पतयः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्याङ्गारकाः । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्य शनैश्चराश्चरन्ति । स एष ज्योतिर्गणगोचरो नभोऽवकाशो दशाधिकयोजनशतबहलस्तिर्यगसंख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपर्यन्तः ॥ उक्तं च-णउदुत्तरसत्तसया—

योजनानि ;॥ उत्पत्य * शुक्राः ;। ततः * त्रीणि ;॥ =योजन ऊंचे शुक्र हैं। वहां से तीन
योजनानि ;॥ उत्पत्य * बृहस्पतयः ;। ततः * त्रीणि ;॥ =योजन ऊंचे बृहस्पति हैं। वहां से तीन
योजनानि ;॥ उत्पत्य * अङ्गारकाः ;। ततः * त्रीणि ;॥ =योजन ऊपर मंगल हैं। वहां से तीन
योजनानि;॥ उत्पत्य * शनैश्चराः ;। चरन्ति T =योजन ऊपर शनैश्चर भ्रमण करते हैं।
सः ;। एषः;। ज्योतिर्गण-गोचरः ;। नभस्-अवकाशः ;। =सो यह जोतिष्क मंडल (=गण) को विषयरूप (=गोचर) आकाशका स्थानदेना (अवकाश)
दश-अधिक-योजन-शत-बहलः ;। =दश ऊपर सौ योजन मोटा (=बहलः) है अर्थात् इस समतल भूमिसे अर्थात् चित्रा पृथिवीसे सातसौनब्बे योजनके ऊपर नौसौ योजन पर्यन्त एकसौदश योजन मोटा ज्योतिषी देवोंका पटल है
तिर्यग् * =और तिर्यग् विस्तार अर्थात् तिरछा वा दायें बायें वा इधर उधर फैलाव
असंख्यात-द्वीप-समुद्र-प्रमाण ;। घनोदधिपर्यन्तः ;। =असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण (लम्बा चौड़ा) घनोदधि वातवलय पर्यन्त है अर्थात् घनोदधिवातवलय (जो घनवातवलयके आधार है और घनवातवलय जो तनुवातवलयके आधार है तनुवातवलय आकाश के आधार है और आकाश अपने ही आधार है) गीली पवनका है उसके भीतर इनका तिर्यग् विस्तार नहीं है वरन जहां यह घनोदधिवातवलय आरम्भ हुआ है वहां इन ज्योतिष्क देवोंके विस्तारका अंत है (घनोदधि पर्यन्त वाक्य का आशय और भावार्थ मेरी समझमें ऐसाही आया है वह स्पष्ट करदिया, शेष पाठकगण निर्णय करें)
उक्तम् ;॥ च * णउदु-उत्तर-सत्तसया(नवति-उत्तर-सप्तशतानि ;॥) =कहा गया भी है कि नब्बे ऊपर सातसौ योजन अर्थात् सातसौ नब्बे योजन

* यह गाथा जिस स्थानसे ली गई है इससे पहिलेकी गाथामें 'योजन' शब्द का जो प्रकरणवश इस गाथामें नहीं है अनुवर्तन यहां करना चाहिये।

दस सीदी चदुदुगातियचउक्कम् ताराविससिरिक्खा बुहभग्गवगुरुअंगिरारसणी ॥१॥

ज्योतिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

दस:॥। सीदी:॥ चदुदुग-तियचउक्कं :॥। (दश:॥। अशीतिः॥ चतुर्द्विक-त्रयचतुष्कम्:॥।)	=दशयोजन-अस्सीयोजन-चारयोजन दो वार अर्थात् चारयोजन चारयोजन तीनयोजन चारवार अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन,
तारा-रवि-ससि-रिक्खा:। (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः॥)	=तारे, भान, चन्द्रमा, नक्षत्र (अठाईस)
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी:॥ बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः॥	=बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल (और) शनैश्चर (यथासंख्य सम भूमिसे विचरें) हैं

भावार्थ सम भूमि चित्रा पृथिवीसे सातसौ नव्वे योजन ऊंचे तारे हैं। तिन तारों से दश योजन ऊपर सूर्य हैं। तिन से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं। तिनसे चारयोजन ऊपर बुद्ध हैं। तिनसे तीनयोजन उर्ध्व शुक्र हैं। तिनसे तीनयोजन ऊपर बृहस्पति है। तिनसे तीनयोजन ऊंचे मंगल है और मंगलसे तीनयोजन ऊपर शनिश्चर हैं।

ज्योतिष्काणां:॥ विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थं:॥। आह-	=ज्योतिषी देवोंके गमन विशेषके ज्ञानके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

* पूज्यपाद् स्वामीके मतमें चन्द्रमासे चारयोजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे चारयोजन ऊपर बुद्ध (देव) हैं परन्तु तत्त्वार्थराजवार्तिकके रचयिता श्री अकलंक स्वामी तथा श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद् विद्यानंदि स्वामीके मतमें चन्द्रमासे तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं और नक्षत्रोंसे तीन ही योजनपर बुद्ध हैं इन आचार्योंके मतानुसार बृहस्पति देवोंसे चारयोजनकी उंचाईपर मंगल हैं और मंगलसे चार योजनकी उंचाईपर शनैश्चर नामके ज्योतिषीदेव भ्रमण करतेहैं अर्थात् सर्व आचार्य (।) ज्योतिष्क समस्तदेवोंके क्रमानुसार अवस्थित (॥) तथा क्रमानुसार एक दूसरेके ऊपर ऊपर होनेमें सहमत हैं (।॥) इस बातमें भी सहमत हैं कि ज्योतिष्क पटल एकसौ दशयोजन उंचाईमें गगनमें फैल रहा है। केवल मतभेद इतना है कि एकके मतमें नक्षत्र और बुद्ध चार चार योजन ऊंचे हैं और मंगल शनिश्चर तीन तीन योजन ऊंचे हैं अन्य आचार्योंके मतमें मंगल शनिश्चर प्रत्येक गण चार चार योजन ऊंचे हैं और नक्षत्र, बुद्ध (देव) तीन तीन योजन ऊपर हैं॥ श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य० में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में ऐसा आशय दिया है कि "समान भूमिभागसे आठसौ (८००) योजनपर सूर्य है, सूर्यसे अस्सी (८०) योजनपर चन्द्रमा है और चन्द्रमासे बीस (२०) योजनपर तारा हैं" श्वेताम्बर आम्नायके समाष्य तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ १०० किन्तु सम तल भूमि भागसे ऊपर सातसौ (७००) योजन अधिक नव्वे (९०) योजन, प्रथम ज्योतिष्क विमानका प्रस्तार है।

इसके दश योजन ऊपर भान वा सूर्य विमानका प्रस्तार वा पटल है। इसके ऊपर अस्सी योजन चन्द्रमाके विमानका प्रस्तार है। इस (चन्द्र-विमान) के ऊपर बीस योजन तारा ग्रहोंके विमानका विस्तार है। इस प्रकार ज्योतिषलोक एकसौ दश योजन मोटा है। देखो भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका इसी सूत्रपर पृष्ठ ३२४ जहांसे उपर्युक्त भाष्यका शब्दशः अनुवाद किया है। संस्कृतभाष्य विस्तारभयसे नहीं लिखा है। ऊपरसे प्रगट है कि उनके यहां एक दो भाष्योंमें विशेषरूपसे नहीं दर्शाया है कि जिससे हमको निर्णय करनेमें सहायता मिले। एक बातको आचार्योंके मतमें पढ़कर बहुत अचम्भित और विस्मय हुआ कि उसी एक गाथासे पूज्यपाद स्वामीने अपना मत पोषण किया है और उसी आर्या छन्दसे कुछ एक शब्दको फेराफेरी सहित अकलंक स्वामीने अपना मत पोषण किया है। अब हम उक्त तीनों आचार्योंका मत शब्दशः लिखते हैं। पूज्यपाद स्वामीका मत शब्दशः हम पृष्ठ ३१, ३२, ३३ में लिख चुके हैं विस्तारभयसे दुहरानेकी आवश्यकता नहीं।

(१) अकलंक स्वामीका मत ऐसे है कि:-

अस्मात् समात् भूमिभागात् ऊर्ध्वं सप्तयोजनशतानि	= इस समतल (चित्रा पृथिवीके) भूमिभागसे ऊपर सातसौ योजन (और)
नवत्युत्तराणि उत्प्लुत्य	= नव्वे सहित ऊंचाईपर (= उत्प्लुत्य) अर्थात् सातसौ नव्वे योजनकी ऊंचाईपर
सर्व ज्योतिषां-अधोभाविन्यः तारकाः चरन्ति	= समस्त ज्योतिषीदेवोंमें नीचे रहने वाले (= अधोभाविन्य) तारे भ्रमण करते हैं।
ततः दशयोजनानि उत्प्लुत्य सूर्याः चरन्ति	= उन (तारों) से दशयोजन ऊंचाई पर (= उत्प्लुत्य) सूर्य भ्रमण करते हैं।
ततः अशीति योजनानि उत्प्लुत्य चन्द्रमसः भ्रमंति	= उन (सूर्यों) से अस्सी योजन ऊंचाईपर वा उल्लंघनकर चन्द्रमा भ्रमण करते हैं।
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य नक्षत्राणि	= उन (चन्द्रमाओं) से तीन योजन ऊंचाईपर नक्षत्र (भ्रमण करते हैं)
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बुधाः	= उन (नक्षत्रों) से तीन योजन ऊंचाईपर बुध (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य शुक्राः	= उन (बुधदेवों) से तीन योजन ऊपर शुक्र (देव भ्रमण करते) हैं
ततः त्रीणि योजनानि उत्प्लुत्य बृहस्पतयः	= उन शुक्र (देवोंसे) तीन योजन ऊपर बृहस्पति (देव) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्प्लुत्य अंगारकाः	= उन बृहस्पति (देवों) से चार योजन ऊंचे मंगल (= अंगारकाः भ्रमण करते) हैं
ततः चत्वारि योजनानि उत्क्रम्य शनैश्चराः चरन्ति	= उन (मंगल देवों)से चार योजन ऊंचे (= उत्क्रम्य) शनिश्चर (भ्रमण करते) हैं
सः एषः ज्योतिर्गणगोचरः नभ अवकाशः दशाधिक—	= सो यह ज्योतिषियोंका समूहके गोचर आकाशका अवकाश वा आकाशदेश दशऊपर
योजनशतबहुलः	= सौ योजन मोटा है (= बहुलः = बहु रः) अर्थात् एक सौ दश योजन गगनमें फैलि रह्यो परमाणियं

तिर्यग्-असंख्यात-द्वीप-समुद्रप्रमाणः घनोदधिपर्यंत	=(और) तिरछा विस्तार असंख्याते द्वीप समुद्र प्रमाण घनोदधि वातवलय तक है।
उक्तं च-णवदुत्तरसत्तसया (नवति-उत्तर-सप्तशतानि)	=कहा जाता भी है कि नव्वे ऊपर सातसौ (योजन) अर्थात् सातसौ नव्वे योजन
दस-सीदि-चदु तिगं च दुगचदुक्कं दश-अशीति-चतुःत्रिक-च द्विक चतुष्कम्	=दशयोजन, अस्सीयोजन, चारबार तीनयोजन, और (=च) दोबार चार योजन अर्थात् तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन, तीनयोजन और चारयोजन चारयोजन (चित्रा भूमिके समतलसे ऊंचाईपर-क्रमसे)
तारा-रवि-ससि-रिक्खा (तारा-रवि-शशि-रिक्षाः)	=तारे, सूर्य, चन्द्रमें, नक्षत्र
बुह-भग्गव-गुरु-अंगिरा-रसणी बुद्ध-भार्गव-गुरु-अंगारका-शनयः	=बुद्ध-शुक्र-बृहस्पति-मंगल-शनिश्चर (देव) (विद्यमान) है

यह आर्या छंदके सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें (और एक हस्त लिखित प्रतिमें भी) और राजवार्तिक की दो मुद्रित प्रतियोंमें, पन्नालाल दूनीकी हस्तलिखित प्रतिमें तथा पन्नालाल न्यायदिवाकर हस्तलिखित और अनुवादित एक प्रतिमें भी. प्रथम, तृतीय और चतुर्थ पाद शब्दशः एक ही है केवल द्वितीय पादके अंत भागके पाठमें सर्वार्थसिद्धिका पाठ "चदुदुग तियचउक्कं" (चार दोबार, तीन चारबार) के स्थानमें तत्त्वार्थराजवार्तिक में "चदु तिगं" च "दुग चदुक्कं" पाया जाता है इसीसे अर्थमें भेद है जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं और दोनों पाठोंमें जो अन्तर है उस तृतीय पादका भी अर्थ दोनों मतानुसार ऊपर लिख चुके हैं विद्यानंदि स्वामीने 'मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके' ॥१३॥ इससूत्रके नीचे अकलंक स्वामी से सहमत होते हुये निम्न श्लोक दिये हैं :—

योजनानां शतान्यष्टौ (=शता नि अष्टौ) हीनानि दश योजनैः। उत्पत्य तारकास्तावच्चरंत्यध (तारकाः तावत् चरंति अधस्) इति श्रुतिः =आठसौ योजनमेंसे दशयोजन कमि यानि, सातसौ नव्वे योजन तो (चित्रा भूमिके समतलसे) ऊपर (=उत्पत्य) तारे (सब ज्योतिष्कोंसे) नीचे विचरते हैं ऐसा शास्त्र है ॥ ततः सूर्या दशोत्पत्य (=दश-उत्पत्य) योजनानि महाप्रभाः। ततश्चंद्रमसो शीति (ततः चन्द्रमसोऽशीति) मानि त्रीण ततश्चयः (ततः च्य) ॥४॥ उन (ताराकाओं) से दशयोजन ऊपर महाप्रभावाले सूर्य समते हैं। उन (सूर्योंसे) अस्सीयोजन (ऊपर) चन्द्रमें हैं। इन तीनोंसे (ऊपर) तीन (त्रीणि) योजन नक्षत्र हैं ॥५॥ त्रीणि त्रीणि बुधाः शुक्रा गुरवश्चोपरि (=गुरवः च उपरि) क्रमात्। चत्वार्यंगारका स्तद्वच्चत्वारि (=चत्वारि-अंगारकाः तद्वत् चत्वारि) च शनैश्चराः ॥३॥ तीन तीन (योजन) बुद्ध शुक्र बृहस्पति क्रमसे (एक दूसरेके) ऊपर हैं। वैसे ही (=तद्वत) चारयोजन ऊपर मंगल है और (=च) चारयोजन ऊपर शनीश्चर हैं ॥५॥ भाषाके टीकाकार पं० सदासुख जी और पं० जयचंद राय जी ने अकलंकदेव स्वामी और विद्यानन्दि स्वामीके मतानुसार अर्थ प्रकाशिका और सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें उल्लेख किया है परन्तु कविवर द्यानतराय जीने चरचा शतकमें (संवत् १७८०) पूज्यपाद स्वामीके मतानुसार ऐसा छप्पयछंद बनाया है कि "सात सतक अरु नव्वे तासपर तारे राजैं। ता ऊपर दशभान असीपर चन्द्र विराजैं। चार नखत बुधचार तीनपर शुक्र बतायो। तीन गुरु कुज तीन तीन पर शनि (=शनिश्चर) ठहरायो

॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरोः प्रदक्षिणाः मेरुप्रदक्षिणाः। मेरुप्रदक्षिणा इति वचनं गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीतगतिर्मा विज्ञायीति॥ नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतक्रियाप्रतिपादनार्थम्। नृलोकग्रहणं विषयार्थम्। अर्धतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोर्ज्योतिष्का नित्यगतयो नान्यत्रेति॥

सूत्रम्— मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥ =(ज्योतिष्काः) मेरु प्रदक्षिणाः नित्यगतयः नृलोके ॥१३

सूत्रार्थ— ज्योतिष्काः १।	=(ये पांच प्रकारके) ज्योतिषीदेव
मेरु-प्रदक्षिणाः १॥	=सुमेरुकी प्रदक्षिणा देते हुये अथवा मंडलाकार फिरते हुये
नृ-लोके ७। नित्य-गतयः १॥	=मनुष्य लोकमें अर्थात् अढाई द्वीप और दो समुद्रोंमें निरन्तर गमन करनेवाले हैं
शब्दानुवाद— मेरोः ६। प्रदक्षिणा १॥ मेरु-प्रदक्षिणा १॥	=सुमेरुके मंडलाकार फिरना सो मेरुप्रदक्षिणा है।
मेरु-प्रदक्षिणा १॥ इति * वचनं १॥ गति-विशेष—	=मेरुप्रदक्षिणा ऐसा वाक्य गमनविशेष
प्रतिपत्ति-अर्थम् १॥ विपरीतगतिः १॥ मा * विज्ञायि-इति	=जाननेके लिये है अन्य प्रकार गमन न जानो अर्थात् पूर्वोक्त ज्योतिषी देवोंका गमन सुमेरु पर्वतके मंडलाकार ही जानो भिन्न प्रकारसे न जानना
नित्य-गतयः १॥ इति * विशेषणं १॥ अनु-उपरत—	=(सूत्रमें) 'नित्यगतय' ऐसा गुणवाचक शब्द निरन्तर अथवा लगातार
क्रिया-प्रतिपादन-अर्थम् १॥ नृ-लोक—	=(गमनरूप) क्रियाके जनावनेके लिये है। मनुष्य लोकका
ग्रहणं १॥ विषय-अर्थम् १॥	=ग्रहण देश (=विषय) के लिये है। अर्थात् ज्योतिषी देवोंके गमनकी मर्यादा अथवा सीमाके लिये है।
अर्ध-तृतीयेषु ७। द्वीपेषु ७। द्वयोः ७। च समुद्रयोः ७।	=अढाई (=अर्धतृतीयेषु) द्वीपमें और (=च) दो समुद्रोंमें
ज्योतिष्काः १। नित्यगतयः १॥ न-अन्यत्र * इति *	=ज्योतिषीदेव नित्यगमन (करने) वाले हैं न दूसरे स्थानमें।

---

* श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रका पाठ और हमारे यहां का पाठ और अर्थ एक है परन्तु उनके यहांके 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका हस्तलिखितमें (श्री सिद्धसेनसूरि रचित) में 'मेरु प्रदक्षिणा नित्यगतयः' ऐसा पाठ है॥

ज्योतिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेन्न, असिद्धत्वात् ॥ गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगति-परिणामात्कर्मविपाकस्य वैचित्र्यात्तेषां हि गतिमुखेनैव कर्म विपच्यत इति ॥ एकादशभिर्योजनशतैरेक-विंशैर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति ॥ गतिमज्ज्योतिस्सम्बन्धेन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यर्थमाह

॥ तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

ज्योतिष्क-विमानानाम्[६।३] गति हेतु-अभावात्[५।१] =(प्रश्न) ज्योतिषी देवोंके विमानोंके गमनका कारण न होनेसे

तद्-वृत्ति-अभावः[१।१] इति * चेत् * न * =उस(गति)का प्रवर्तन नहीं(=अभाव)है। ऐसा संदेह होना चाहिये(उत्तर)(शंका)नहीं (क्योंकि यह कहना कि ज्योतिषीदेवोंके विमान स्थिर हैं इससे गमन नहीं करते हैं)

असिद्धत्वात्[५।१] गति-रत-आभियोग्य-देव-प्रेरित-गति-परिणामात्[५।१] =असिद्ध होता है। क्योंकि गमन विर्षे लीन ऐसे आभियोग्य जातिके =देवोंकरि किया (=प्रेरित) गमन परिणाम है। अर्थात् गतिरूप अवस्थामें परिवर्तन अथवा पलटाव है ॥

कर्म-विपाकस्य[६।१] वैचित्र्यात्[५।१] तेषाम्[६।३] हि ❀ =सो कर्मकी उदयकी विलक्षणतासे तिन (आभियोग्य जातिके देवों) के ही

गति मुखेन[३।१] एव ❀ कर्म[१।१] विपच्यते। इति ❀ =गमन रूप प्रधानतासे ही कर्म पकाया जाता है अर्थात् उदय होता है।

एकादशभिः[३।३] योजन-शतैः[३।३] एकविंशैः[३।३] मेरुम्[२।१] अप्राप्य =ग्यारह सौ इक्कीस योजन मेरु को छोड़कर (दूरै)

ज्योतिष्काः[१।३] प्रदक्षिणाः[१।३] चरन्ति। गतिमत्-ज्योतिस्-सम्बन्धेन[३।१] व्यवहार-काल-प्रतिपत्ति-अर्थम्[२।१] आह। =ज्योतिषी देव प्रदक्षिणा करते हैं। गमन करने वाले अथवा गतिमान्ज्योतिषियोंके =सम्बन्धसे व्यवहार कालके जाननेके लिये (अग्रिम सूत्र में) कहते हैं कि

[१]सूत्रम्— तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥

सूत्रार्थः—तत्कृतः[१।१] (=तत्-कृतः) काल विभागः =तिन गतिमान् ज्योतिषियों से (=तत्) कियागया काल वा समयका विभाग है अर्थात् गमन करतेहुये सूर्य चन्द्रमादिक द्वारा व्यवहार कालके भाग जैसे समय, आवली, पल, घड़ी, पहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, इत्यादि सूचित कियेजाते हैं

(१) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें, तथा सिद्धसेन सूरिरचित भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकामें तथा हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका एक पाठ और अर्थ है॥

तद्ग्रहणं गतिमज्ज्योतिःप्रतिनिर्देशार्थम्। न केवलया गत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परि-

सर्वार्थ

च्छिद्यते, अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च ॥

३८

वृत्त्यनुवादः- तद्-ग्रहणम्¹।।गतिमत्-ज्योतिस्-प्रति*निर्देश-अर्थम्⁴।।न*केवलया³।।गत्या³।।	=(सूत्रमें) तत् शब्दका आदान गमन सहित ज्योतिषी देवों=के (=प्रति) कथनके लिये है न अकेले गमनसे (और)
न*अपि*केवलैः³।।ज्योतिर्भिः³।।कालः¹।।परिच्छिद्यते।'	=न केवल ज्योतिषी देवों करि ही (=अपि) (यह व्यवहार) काल जानाजाता है (गमन करतेहुये ज्योतिषी देवोंकरि ही उक्त व्यवहारकाल समय आवलीआदि ज्ञात हैं)
अनुपलब्धेः¹ ⁵।।च*	=क्योंकि (व्यवहार काल) प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा नहीं देखाजासक्ता है और (=च)
अपरिवर्तनात्⁵।।।	=न (उस व्यवहार काल का) पलटना (भी दीखे है)

(१) अनुपलब्धेः और अपरिवर्तनात् ये दो शब्द व्यवहार काल से सम्बन्ध रखते हैं अथवा ज्योतिष्क देवों से अर्थात् व्यवहार काल प्रत्यक्ष नेत्रों द्वारा और उस व्यवहारकालका परिवर्तन और पलटन नहीं दीखते हैं अथवा ज्योतिषी देवोंकी गति, गमन नहीं देखा जासक्ता है और वे परिवर्तन रहितहैं अर्थात् अवस्थित हैं॥ इस 'तत्' शब्दके सम्बन्धमें हमको श्लोकवार्तिकमें, अर्थप्रकाशिकामें, पं०सदासुखजीकी लघुटीकामें, श्वेताम्बरसम्प्रदायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें तथा दो चार अन्य भाषाओंकी टीका में कुछ भी नहीं मिलता है॥ तत्त्वार्थ राजवार्तिकमें ठीक उसी आशय का लेख है जो सर्वार्थसिद्धि में है जैसे

संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका पाठ

तद् ग्रहणं गतिमज्ज्योतिः प्रतिनिर्देशार्थम्

नकेवलया गत्यानापिकेवलैर्ज्योतिर्भिःकालःपरिच्छिद्यते,अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च॥

"इहां ततशब्दका ग्रहण गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है। सो यह व्यवहार काल केवल गतिही करि तथा केवल ज्योतिषीहीनिकरि नाहीं जान्या जायहै जातैं गमनतौ इनिका काहू कू दीखै नाहीं। बहुरि गमन न होयतौ ये थिरही रहैं। तातैं दोनों सम्बन्ध लैना" पं० जयचन्द्जी कृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३७४, हस्तलिखित पृष्ठ १४७ वा १४८

तत्त्वार्थ राजवार्तिकालंकार का पाठ

तद्वचनं गतिमज्ज्योतिः प्रति निर्देशार्थम् ॥१॥

गतिमतां ज्योतिषां प्रतिनिर्देशार्थं तदित्युच्यते

नहि केवलगत्या नापि केवलैर्ज्योतिर्भिः कालः परिच्छिद्यते, अनुपलब्धेर-परिवर्तनाच्च ज्योतिः परिवर्तनसंबंधो हि कालपरिच्छेदः।

"सूत्रमें जो तत् शब्दका उल्लेख किया गया है वह गतिमान ज्योतिषि-योंके ग्रहणार्थ है ॥१॥ केवल गति कियाके आधीन कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि गतिकी अनुपलब्धि है नेत्र से नहीं दीखपड़ती॥ केवल ज्योतिषियों सेभी काल का निश्चय नहीं होसका क्योंकि

गति क्रिया रहित केवल ज्योतिषियोंका परिवर्तन रहित-स्थिर माना जायगा। स्थितिशील ज्योतिषियोंसे कालका निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये कालके निश्चयमें गतिमान ज्योतिषी ही असाधारण कारण हैं। उन्हींसे कालका निर्णय होता है "राजवार्तिक अनुवादित पं० गजाधरलाल शास्त्री, पं० मक्खनलाल न्यायालंकारद्वारा संशोधित पृष्ठ१०३५॥

"अर्थ—सूत्रके विषैं तत् शब्दका ग्रहण है सो गतिसहित ज्योतिष्क देवनिके कहनेके अर्थ है" अर्थ टीकाका—गतिरूप परिणये जे ज्योतिषी ऐसे गति विशिष्ट ज्योतिषीनिके कहने के अर्थ सूत्र के विषैं तत् शब्द कह्या है॥

तहां यह व्यवहारकाल है सो केवल गतिही करि तथा ज्योतिषीनिकरि नाहीं जान्या जायहै॥ जातैं गमनतौ इनका काहू कूं दीखै नाहीं और गमन न होय तो ज्योतिषीनिका परिवर्तनका अभाव होय तौ ये थिरही रहैं॥ ऐसे गमनकी अनुपलब्धितैं तथा ज्योतिषीनिके अपरिवर्तनतैं व्यवहार काल नहीं जाना जाय है॥

तातैं निश्चयकरि (=हि) ज्योतिषिनिके परिवर्तनतैं व्यवहारकाल जाना जाय है" पं० पन्नालाल न्याय दिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थ राजवार्तिक अर्थात् तत्त्वार्थ रत्नमाला पृष्ठ ६३३

"गतिमान ज्योतिषीनिका किया काल विभागकूं जनावने के अर्थ तत् ऐसोशब्द कहिये है। अर निश्चयकरि केवल गति करि भी काल नहीं जानिये है अर केवल ज्योतिषीनिकरि भी काल नहीं जानिये है क्योंकि अनुपलब्धितैं कि प्रत्यक्ष नहीं दीखनेतैं। अर अपरिवर्तनतैं कालकी सत्ता नहीं ज्ञात होय है अर्थात् काल प्रत्यक्ष भी नहीं दीखे है अर कालका पलटना भी नहीं दीखे है। यातैं ज्योतिषीनिका परिवर्तन करिही कालका जानपन है"॥ पं०पन्नालाल जी दूनीवाले अनुवादित राजवार्तिक पृष्ठ २१॥

मैंने पं० पन्नालालजी दूनीवाले के साथ सहमत होकर ऊपर अनुवाद किया है॥ मुझको लगभग दशवर्ष प्रथम भी संदेह हुआ था कि "अनुपलब्धेरपरिवर्तनाच्च" वाक्यका अनुवाद ठीक नहीं है उस समय मैंने उसे छोड़ दिया था अब इन्द्रप्रस्थमें नाना प्रकार के साधन प्राप्त होने पर लिखा है॥ कारण यह है कि ज्योतिषियों का गमन अनुपलब्ध नहीं है क्योंकि हम सर्व उनका गमन प्रत्यक्ष आंखों से देखते हैं निस्संदेह काल प्रत्यक्ष नहींदीखता है और कालका पलटना भी नहीं दीखता है॥ स्मरण रहे कि कितने ही ज्योतिषीदेव थिर हैं उनका गमन नहीं होता अतः नहीं देखा जासकता है॥

कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च ॥ व्यावहारिक: कालविभागस्तत्कृत: समयावलिकादि: क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छेदहेतु: ॥ मुख्योऽन्यो वक्ष्यमाणलक्षण: ॥ इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनार्थमाह—

॥ बहिरवस्थिता: ॥ १५ ॥

बहिरित्युच्यते, कुतो बहि: ? नृलोकात् ॥ कथमवगम्यते ?

काल:[१/१] द्वि-विध:[१/१] व्यावहारिक:[१/१] मुख्य:[१/१] च*	=काल दो प्रकार है व्यवहार और निश्चय (=परमार्थकाल) अर्थात् कालके अणु ॥
व्यावहारिक:[१/१] काल-विभाग:[१/१] तत्-कृत:[१/१]	=व्यवहार कालका विभाग तिन(गमन करते हुये ज्योतिषी देवों)से सूचितकियाहुआ
समय-आवलिक-आदि:[१/१] क्रिया-विशेष-परिच्छिन्न:[१/१]	=समय, आवली आदिक क्रिया विशेषकरि जाना गया है ।
अन्यस्य[६/१] अपरिच्छिन्नस्य[६/१] परिच्छेद-हेतु:[१/१]	=(सो) दूसरे बिना जाने हुयेके जनावनेका कारण है । अर्थात् उसव्यवहारकालके विभाग समय आवली घटिका, दिन, मास, वर्ष, इत्यादि दूसरे निश्चयकाल जो जाननेमें नहीं आसक्ता है । उसके सूचित करने वा जनावने का कारण है ।
मुख्य:[१/१] अन्य:[१/१] वक्ष्यमाण-लक्षण:[१/१] ॥	=दूसरा परमार्थ काल वा निश्चयकालका स्वरूप (अ०पांच २२,३९,४०सूत्रोंमें है)
इतरत्र*ज्योतिषाम्[६/३] अवस्थान-प्रतिपादन-अर्थम्[२/१] आह ।	=यहां (मनुष्यलोक)से भिन्न ज्योतिषी देवोंके अवस्थितहोनेके कथनको कहते हैं कि
[१]सूत्रम्—बहिरवस्थिता: ॥ १५ ॥	=([२]ज्योतिष्का: नृलोकात्)बहिर्-अवस्थिता:(भवन्ति)।१५।
सूत्रार्थ— ज्योतिष्का:[१/३] नृ-लोकात्[५/१]	=ज्योतिषी देव मनुष्य लोक से अर्थात् जम्बूद्वीप धातकी खंड, पुष्करार्ध और लवणोदधि और कालोदधि दो समुद्रोंसे
बहिर्*अवस्थिता:[१/३] भवन्ति ।	=बाहिर गमन रहित हैं (जहां के तहां स्थिर रहते हैं)
वृत्त्यनुवाद:—बहिर्*इति*उच्यते, कुत:*बहि:*	=बाहिर ऐसा (सूत्रमें) कहा गया है । (प्रश्न) कहां से बाहिर
नृ-लोकात्[५/१] कथम्*अवगम्यते ।	=(उत्तर) मनुष्यलोकसे (बाहिर) (प्रश्न) (मनुष्यलोकसे बाहिर यह) कैसे जानागया

(१) 'सभाष्यतत्त्वार्थधिगमसूत्र'में तथा 'भाषानुसारिणी' तत्त्वार्थबोधिनी टीकामें और हमारे यहां सर्वत्र इस सूत्रका पाठ तथा अर्थ एक है ॥

(२) (२) 'ज्योतिष्का:' बारहवां और 'नृलोकात्' तेरहवां सूत्रसेक्रमसे लियेगयेहैं । सबकोसन्धिकरनेसे "ज्योतिष्का नृलोकाद्बहिरवस्थिता:"ऐसासूत्रहोगा ॥

सर्वार्थ
अध्याय४
४१

अर्थवशाद्विभक्तिपरिणामो भवति ॥ ननु च नृलोके नित्यगतिवचनादन्यत्रावस्थानं ज्योतिष्काणां सिद्धं । अतो बहिरवस्थिता इति वचनमनर्थकमिति । तन्न । किं कारणम् ? नृलोकादन्यत्र बहिर्ज्योतिषामस्तित्वमवस्थानं चासिद्धम् । अतस्तदुभयसिद्ध्यर्थं बहिरवस्थिता इत्युच्यते ॥ विपरीतगतिनिवृत्त्यर्थं कादाचित्कगतिनिवृत्त्यर्थं च सूत्रमारब्धम् ॥

तुरीयस्य निकायस्य सामान्यसञ्ज्ञासङ्कीर्तनार्थमाह—

अर्थवशात्[5/1] विभक्ति-परिणामः[1/1] भवति[1'] =(उत्तर)अभिप्रायकेबलसे वा सामर्थ्यसे विभक्तिका पलटाउ,वा परिणमनहोजाताहै अर्थात् १२ वां सूत्रमें कहा है कि "नित्यगतयो नृलोके" (=नरलोकमें नित्यगमनकरनेवाले है) इस वाक्यसे स्वाभाविक प्रश्न आता है कि नरलोकमें तो नित्यगमनकरने वाले हैं । फिर नरलोकके बाहिर क्या है यहां पर सप्तमी विभक्ति "नरलोकमें" अभिप्रायवश पंचमी विभक्ति "नरलोकसे" में परिणमन होजानी है अथवा परिवर्तन करली जाती है

ननु*च*नृलोके[7/1] नित्य-गति-वचनात्[5/1] अन्यत्र* =बहुरिप्रश्न मनुष्यलोकमें नित्यगमन(ऐसे)वाक्यसेयहां(मनुष्यलोक)सेअन्यस्थानमें

अवस्थानम्[1/1] ज्योतिष्काणाम्[6/3] सिद्धम्[1/1] =ज्योतिषी देवोंका अवस्थान सिद्ध वा निष्पन्न है ।

अतः*बहिर्*अवस्थिताः[1/3] इति*वचनम्[1/1] =इस लिये "बहिर् अवस्थिताः" ऐसा वचन अर्थात् यह पंद्रहवां समस्त सूत्रही

अन्-अर्थकम्[1/1] इति* । तत्[1/1] न* =निष्प्रयोजन है (उत्तर) सो (=तद्) नहीं है

किम्[1/1] कारणम्[1/1] नृ-लोकात्[5/1] अन्यत्र* =क्या कारण कि मनुष्य लोकसे अन्यत्र

बहिर्*ज्योतिषाम्[6/3] अस्तित्वम्[1/1] अवस्थानम्[1/1] च*असिद्धम्[1/1] =बाहिर ज्योतिषी देवोंकी विद्यमानता और गमनका अभाव (१५सूत्रसे सिद्ध है)

अतः*तद्-उभय-सिद्धि-अर्थम्[1/1] =इसलिये उन(=तद्) दोनों (अस्तित्व सत्ता और अवस्थान स्थिरता)प्राप्तिकेलिये

"बहिरवस्थिताः"[1/3] इति*उच्यते[1'] ॥ विपरीत गति- ="बहिरवस्थिता"ऐसा(सूत्र)कहागया है। उलटागमन अर्थात् अप्रदक्षिणारूपगतिके

निवृत्ति अर्थम्[1/1] कादाचित्क-गति-निवृत्ति-अर्थम्[1/1] च* =निषेधके लिये और (=च) कभी कभी होने वाले गमन के निराकरणकेलिये

सूत्रम्[1/1] आरब्धम्[1/1] तुरीयस्य[6/1] निकायस्य[6/1] =(यह पन्द्रहवां) सूत्र प्रारम्भ कियागया है ॥ (देवोंकी) चौथे समुदायकी

सामान्य-सञ्ज्ञा-सङ्कीर्तन-अर्थम्[1/1] आह[1'] =सामान्य संज्ञा कहनेके लिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

सिद्धि
सूत्र
४१

॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥

वैमानिकग्रहणमधिकारार्थम् । इत उत्तरं ये वक्ष्यन्ते तेषां वैमानिकसम्प्रत्ययो यथा स्यादिति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेणात्मस्थान् सुकृतिनो मानयन्तीति विमानानि । विमानेषु भवा वैमानिकाः ॥ तानि विमानानि त्रिविधानि । इन्द्रकश्रेणिपुष्पप्रकीर्णकभेदेन ॥ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रवन्मध्ये व्यवस्थितानि ।

[1]सूत्रम्—वैमानिकाः ॥ १६ ॥ =([2]चतुर्थः [3]देवनिकायः)वैमानिकाः(सामान्यसञ्ज्ञा भवति)

सूत्रार्थः—चतुर्थः देवनिकायः वैमानिकाः सामान्यसंज्ञा भवति=चौथा देवोंका समुदाय वैमानिक ऐसी (उन देवों की) सामान्य संज्ञा है

वृत्त्यनुवादः—वैमानिक-ग्रहणम् अधिकार-अर्थम्	=वैमानिक शब्दका ग्रहण अधिकार वा प्रकरण के लिये है
इतस् उत्तरम् वक्ष्यन्ते तेषाम्	=यहांसे आगे जो कहे जायगे तिनकी
वैमानिक-सम्प्रत्ययः [4]यथा स्यात्	=यथायोग्य वैमानिक संज्ञा जानना चाहिये वा समझना चाहिये(=सम्प्रत्ययःस्यात्)
इति अधिकारः क्रियते ॥ विशेषेण आत्मस्थान्	=(यहां) ऐसा प्रकरण किया गया है ॥ जिनमें रहनेवाले जीवोंको विशेषकरि
सुकृतिनः मानयन्ति इति विमानानि ॥	=पुन्यवंत (अन्यजीव) मानते हैं । ऐसे विमान हैं ॥
विमानेषु भवाः वैमानिकाः । तानि विमानानि	=विमानोंमें (उत्पन्न) होनेवाले वैमानिक हैं । ते विमान
त्रिविधानि इन्द्रक-श्रेणि-पुष्पप्रकीर्णक-भेदेन	=तीन प्रकार इन्द्रक, श्रेणिबद्ध, और पुष्पप्रकीर्णक भेदसे हैं ।
तत्र इन्द्रक विमानानि इन्द्रवत् मध्ये व्यवस्थितानि	=तहां इन्द्रक विमान इन्द्रके समान बीचा बीचमें (=मध्ये) तिष्ठते हैं

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ (२) इस वाक्यकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है ।

(३) क्योंकि इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें देवोंके चार निकाय वा समुदाय कहे हैं और १०वां ११वां १२वां सूत्रोंमें भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंकी सामान्य और विशेषसंज्ञायें यथासंख्य कही हैं । तब केवल चौथासमुदाय अवशेष रहता है इसलिये चतुर्थशब्दका अध्याहार(=यह वाक्य जो स्पष्ट समझमें न आसके उसे किसी दूसरे शब्दकी कल्पना करि स्पष्ट करदेना) इस सोलवां सूत्र में किया है ॥

(४) यहां 'यथा' शब्द यथायोग्यके अर्थ में लाया गया जान पड़ता है अर्थात् जिस जिस प्रकारके वैमानिक देव हैं जैसे कल्पोपपन्न उनमें भी लौकांतिक जातिके देव और कल्पातीत वैमानिका इत्यादि हों तैसे तैसे यथायोग्य जानों ॥ यथायोग्य, यथोचित, यथाविधि विधिपूर्वक ये चारों समान अर्थ वाचक हैं ॥ संस्कृत वृत्तिहस्तलिखित दो प्रतियोंसे मिलान किया तो यथा शब्द ही पाठ प्राप्त हुआ परन्तु राजवार्तिक मुद्रित तथा दो हस्त लिखित प्रतियों में "वैमानिक संप्रत्ययः कथं स्यादित्यधिकारः क्रियते" अर्थात् 'यथा' शब्दके स्थान में कथम् शब्द है ॥ "पन्नालाल दूनीवालेने "वैमानिकपणो की भले प्रकार प्रतीति कैसे होय यातै अधिकाररूप सूत्र करिये हैं ऐसा अनुवाद किया है ॥

तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणिवदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीर्णपुष्पवद्-वस्थानात्पुष्पप्रकीर्णकानि ॥ तेषां वैमानिकानां भेदावबोधनार्थमाह—

॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पेषूपपन्नाः कल्पोपपन्नाः कल्पानतीताः कल्पातीताश्चेति द्विविधा वैमानिकाः ॥

तेषामवस्थानविशेषनिर्ज्ञापनार्थमाह—

तेषाम्[६/३] चतसृषु[७/३] दिक्षु[७/३]	=तिन (इन्द्र विमानों) की चारों दिशाओंमें
आकाश-प्रदेश-श्रेणिवत्* अवस्थानात्[५/१]	=आकाशके प्रदेशकी श्रेणीके सदृश तिष्ठनेसे
श्रेणि-विमानानि[१/३] विदिक्षु[७/३] प्रकीर्ण-पुष्पवत्*	=श्रेणिबद्ध विमान हैं ॥ विदिशाओंमें बिखरे फूलोंके समान
अवस्थानात्[५/१] पुष्पप्रकीर्णकानि[१/३]	=स्थिति होनेसे वा तिष्ठनेसे पुष्प प्रकीर्णक हैं ।
तेषाम्[६/३] वैमानिकानाम्[६/३] भेद-अवबोधन-अर्थम्[२/१] आह T	=तिन वैमानिकदेवोंके भेद जाननेके लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि
[१] **सूत्रम्—कल्पोपपन्नाःकल्पातीताश्च॥ १७॥**	**=(वैमानिकाः)कल्पोपपन्नाः कल्पातीताःच (द्विविधाभवन्ति)**
सूत्रार्थः—वैमानिकाः[१/३] कल्प-उपपन्नाः[१/३]	=वैमानिक देव कल्प (अर्थात् स्वर्गों) में उत्पन्नहोनेवाले
कल्प-अतीताः[१/३] च*	=तथा (=च) कल्पातीत अर्थात् स्वर्गोंसे ऊपर उत्पन्नहोनेवाले भावार्थ स्वर्गों को उलंघकरि (ऊपर ऊपर) नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पांचअनुत्तरोंमेंउपजनेवालेऐसें
द्वि-विधा* भवन्ति T	=दो प्रकार होते हैं
वृत्त्यनुवादः—कल्पेषु[७/३] उपपन्नाः[१/३]	=स्वर्गोंमें (=कल्पेषु)उपजने वाले हैं
कल्पोपपन्नाः[१/३] कल्पान्[२/३] अतीताः[१/३] च*	=(वे) कल्पोपपन्न हैं और (=च) स्वर्गोंको लांघने वाले (अर्थात् स्वर्गोंमें न उपज-करि उनके ऊपर नवग्रैवेयक नव अनुदिश, पांच अनुत्तर इन तेईस स्थानोंमें उत्पन्न होने वाले)
कल्प-अतीताः[१/३] इति* द्वि-विधा* वैमानिकाः[१/३]	=कल्पातीत हैं । ऐसे दो प्रकार वैमानिक देव हैं ।
तेषाम्[६/३] अवस्थान-विशेष-निर्ज्ञापन-अर्थम्[२/१] आह T	=तिनके निवासस्थानका विशेष जाननेके(=निर्ज्ञापन) लिये कहते हैं कि

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥

॥ उपर्युपरि ॥ १८ ॥

(१)सूत्रम्—उपर्युपरि (उपर्य्युपरि) =(वैमानिकाः) उपर्युपरि (अवस्थितयः भवन्ति) ॥१८॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः॥उपरि*उपरि* अवस्थितयः॥भवन्ति॥

=वैमानिक देवोंके निवासस्थान (एक दूसरेसे) ऊपर ऊपर
=अवस्थित हैं वा विराजमान हैं अर्थात् कल्पोंके युगल तथा उनके पटल तथा नवग्रैवेयक नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर अवस्थित हैं

(१) हमारे यहां 'उपर्युपरि' और कहीं कहीं 'उपर्य्युपरि' पाठ है 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' व्याकरणके सूत्रसे दूसरा पाठ भी ठीकहै ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में'उपर्युपरि'पाठहै परन्तु भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका श्रीसिद्धसेन सूरिरचितमें 'उपर्युपरि च' ऐसा पाठहै अर्थ सर्वत्र एक है ॥

(२) इससूत्रमें अनुवृत्ति किसकिस वाक्यकी है इसमें चार मतभेद हैं(क)पूज्यपाद स्वामीके मतमें "कल्पा"शब्द अनुवर्तताहै(सर्वार्थसिद्धिपृष्ठ२४३)

(ख) श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकों से अधिक हैं उसके अनुकूल 'कल्पा' शब्दअनुवर्तताहै। न तो 'देवा' न 'विमानानि' शब्द अनुवर्तन है। देखो भाष्यानुसारिणी तत्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५

(ग) तत्वार्थराजवार्तिकके अनुसार 'कल्पाः' शब्द की अनुवृत्ति सोलह स्वर्ग तकके लिये और 'विमानाः' शब्दकी कल्पोंसे(स्वर्गोंसे)ऊपरके लियेहै अर्थात् 'कल्पाः' और 'विमानाः' दो शब्द अनुवर्तते हैं ॥ (घ)तत्वार्थ श्लोकवार्तिकके अनुसार "वैमानिकाः" शब्दकी अनुवृत्ति इसहेतुसे होना चाहियेकि "वैमानिकाः" ऐसा अधिकार सूत्र सोलहवां जब कह चुके हैं तब उसके अनुकूल किसी अन्य शब्द या वाक्य का अनुवर्तन नहीं होना चाहिये। श्लोक वार्तिक पृष्ठ २८१ देखो ॥ यहां आशयके सम्बन्धमें सो "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्ति नहि संदेहादलक्षणम्" (=संदेहात्मक वाक्यका यथार्थ तात्पर्य उसकी व्याख्यासे निर्णय किया जाता है क्योंकि नियम लक्षण रहित नहीं होता है) व्याकरण के इस सिद्धान्तसे स्पष्ट होसका है ॥
सब आचार्यों के वाक्य अथवा वाक्योंके अनुवादका उल्लेख नीचे क्रमसे किया है ॥

() "उपर्युपरीत्युच्यन्ते"(सूत्रमें)ऊपर ऊपर ऐसे वर्णितहैं(प्रश्न)के ते ? ते(ऊपर ऊपर वर्णित)कौनहैं ॥ (उत्तर)कल्पाः = कल्पहैं (सर्वार्थ०पृष्ठ २४३

() 'कल्पाः सम्बन्ध्यंते। न देवा विमानानि वा यो यं निर्देशः करिष्यते" भाष्यानुसारिणीतत्वार्थ टीका पृष्ठ ३३५ देखो ॥

=इस उपर्युपरि सूत्रमें कल्पाः शब्द मिलायाजाता है न कि 'देवा' या 'विमानानि' शब्द जो यह कथन किया गया है ॥ (ऊपरके वाक्य का यह शब्दशः अनुवाद है)

() "इदं विचार्यते-किमत्रापेयत्वेन कल्प्यमानाः देवा उत विमानानि आहोस्वित् कल्पा इति किं वा कामचारः" । तत्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ१५६

=यह विचार उत्पन्न होता है कि यहां (उपरि उपरि इस वचनसे) उपादेयपणांकरि (आदेयपनाकरि) अर्थात् ग्रहण करने योग्य कल्पना कियेगये (=कल्प्यमानाः) देव (ऊपर ऊपर) हैं वा विमान (ऊपर ऊपर) हैं अथवा स्वर्ग (=कल्प)(ऊपर ऊपर) हैं अथवा वक्ताकी इच्छाका विषय स्वतन्त्र कोई पदार्थ है (=कामचारः) अर्थात् वक्ताकी इच्छानुसार कहीं देवोंका ग्रहणहै कहीं विमानोंका वा कहीं स्वर्गों का ग्रहण है ॥

भावार्थ प्रथम युगल पहले सौधर्म दूसरे ईशान स्वर्गके जो मध्य लोकसे

() देवा इतिचेन्नाऽनिष्टत्वात् ॥२॥ यदि देवा उपर्युपरीत्यनेनाभिसम्बन्ध्यन्ते । तन्न, किं कारणं, अनिष्टत्वात् देवानां हि उपर्युपरि अवस्थानमनिष्टम् ॥
=जो 'देवा' उपरि उपरि के साथ सम्बन्ध कियेजांय सो हो नहीं सकते, किस कारण कि आगमके विरुद्ध होने से अनिष्ट हैं अतः देवोंका ऊपर ऊपर अवस्थान नहीं माना जासका है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५६

() विमानानि इति चेन्न श्रेणि प्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् ॥३॥ संस्कृतअर्थ । अथ विमानान्युपर्युपरीति कल्प्यंते तदपिनोपपद्यते । श्रेणिप्रकीर्णकानां तिर्यगवस्थानात् । श्रेणिविमानानि पुष्पं प्रकीर्णक विमानानि च प्रतीन्द्रकं तिर्यगवस्थितानि इति इष्यंते ॥ राजवार्तिक पृष्ठ १५६=विमान ऊपर ऊपर हैं यदि (= अथ) ऐसी कल्पनाकी जाय सो अर्थ भी उत्पन्न नहीं होय है क्योंकि श्रेणीबद्ध विमानोंका और प्रकीर्णक विमानोंका तिर्यग् तिरछा अवस्थान है। (अर्थात्) श्रेणीबद्ध विमान, पुष्पप्रकीर्ण विमान और प्रतीन्द्रक विमान (ये) तिर्यग् अवस्थित हैं ऐसा आगममें इष्ट करये हैं

() कल्पा इति चेददोष: ॥४॥ संस्कृत अर्थ । यदि कल्पा न दोषो भवति 'यथा न दोष: तथास्तु' कल्पाहि उपर्युपरि स्थिता इति॥ राजवार्तिक १५६
=जो (ऊपर ऊपर) कल्प (स्वर्ग) अवस्थित (हैं) तब (कुछ) दोष नहीं है। जैसे दोष न होय तैसे ही ठीक है। निश्चयकरि (=हि) कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं भावार्थ यदि कहा जायगा कि कल्प ऊपर ऊपर अवस्थित हैं तब कुछ दोष नहीं। तथा जिस बातके मानने में किसी प्रकारका दोष नहीं वही बात मानना ठीक है। स्वर्गों का ऊपर ऊपर अवस्थान मानने में कोई दोष नहीं इसरीति से देव और विमानोंका ऊपर ऊपर अवस्थान बाधित होनेसे स्वर्गोंका ही ऊपर ऊपर अवस्थान सुनिश्चित है।

() कल्पातीतेषु किमभिसम्बध्यते ? विमानानि । तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १५६

(प्रश्न) कल्पातीतनिमें क्या सम्बन्ध किया जाय अर्थात् प्रश्न का सारांश यह है 'उपर्युपरि'में यदि हम केवल 'कल्पा' शब्दकी अनुवृत्ति लेतेहैं तो यह अर्थ होता है कि स्वर्ग वा कल्प ऊपर ऊपर हैं स्वर्ग से परें नवग्रैवेयक विमान, नव अनुदिश विमान, पांच अनुत्तर विमानों के अवस्थानके सम्बन्धमें कुछ न जाना तो इनके अवस्थान जानने के लिये 'उपर्युपरि' वाक्य के साथ कौन शब्द अनुवर्तता है सो कहिदीजिये ।

(उत्तर) "उपर्युपरि के साथ' विमानानि (का सम्बन्ध करना चाहिये) इस सबका सारांश यहहै कि जहां हमें कल्पोपपन्न देवोंका'अवस्थान जाननाहै वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'कल्पा.' शब्द लगाना चाहिये कि स्वर्ग और उनके पटल ऊपर ऊपर हैं और जहां अहमिन्द्रों का अवस्थान विवक्षित हैं वहां 'उपर्युपरि' के साथ 'विमानों" इस शब्द को जोड़लो और कल्पातीत विमान ऊपर ऊपर है यह अर्थ समझलैना चाहिये ॥

दो राजू तक हैं इकतीस पटल, दूसरे युगल (तीसरे चौथे स्वर्ग सानत माहेन्द्र जो मध्यलोकसे तीसरे राजूमें है) के सातपटल तीसरे युगल (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवां छठवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े तीसरे राजूमें है) के चार पटल, चौथा युगल (लांतव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां स्वर्ग जो तीसरे युगलसे आधे राजू ऊपर में है) के दो पटल, पांचवे युगल (शुक्र नवमां स्वर्ग महाशुक्र दशवां स्वर्ग जो मध्यलोक से साढ़े चौथे राजू में है) का एक पटल, छठवां युगल(शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्ग जो पांचवां युगलसे ऊपर आधे राजूमें है)का एक पटल, सातवां युगल(आनत तेरहवां स्वर्ग प्राणत चौदहवां स्वर्ग जो मध्यलोकसे साढ़े पांचवां राजूमें है)के तीनपटल, आठवां युगल(आरण पंद्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग जो सातवां युगलसे ऊपर आधे राजू में है) के तीन पटल इसप्रकार बावन पटलतो सोलह स्वर्गों के और तीन तिकड़ी ग्रैवेयक(अर्थातिकड़ी, मध्यकी

() कल्पा इत्येके = कल्पाः इति एके (मुद्रित श्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८२) = (उपर्युपरि के साथ अनुवृत्ति) 'कल्पाः' शब्दकी होना ऐसा कितनोंका मत हैं श्लोकवार्तिकका शब्दशः संस्कृत पाठ विस्तारभयसे न लिखकर पं० गजाधरलाल शास्त्रीकी टिप्पणी जो पृष्ठ १०४५ (राजवार्तिकके अनुवाद) में दी है ऐसे है कि "उपर्युपरि" यहांपर कल्प शब्दका सम्बन्ध मानना सर्वसम्मत नहीं है क्योंकि 'वैमानिकाः' इस सूत्रको अधिकारसूत्र कहआये हैं। इसलिये इस सूत्रमें उसीका सम्बन्ध मानना ठीक होगा इस रीतिसे जिस प्रकार वैमानिकदेव कल्पोपपन्न और कल्पातीतहैं(इस प्रकार 'कल्पोपपन्नाः 'कल्पातीताश्च' इस सूत्रमें वैमानिकोंका सम्बन्ध है उसी प्रकार वैमानिकदेव ऊपरऊपर हैं, इस रूपसे 'उपर्युपरि' इस सूत्रमें भी वैमानिक देवोंका ही संबंध है। यदि यहांपर यह कहाजाय कि पहिले देवोंका ऊपरऊपर अवस्थान अनिष्ट कह आये हैं। यदि 'उपर्युपरि' यहांपर वैमानिकदेवोंका सम्बन्ध कर उनका ऊपर अवस्थान माना जायगा तो अनिष्ट होगा। सो ठीक नहीं। विशेषण रहित केवल देवोंका यदि ऊपर ऊपर अवस्थान मानाजाय तब अनिष्ट कहा जा सकता है किन्तु यहांतो मध्य में स्थित इन्द्रक विमान, तिर्यग् अवस्थित श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानरूप कल्पोपपन्नत्व विशेषण विशिष्ट देवों का तथा कल्पातीतत्व (नवग्रैवेयकत्व) आदि विशिष्ट देवोंका ग्रहण हैं। इस प्रकारके विशेषण विशिष्ट देवोंका ऊपर ऊपर रहना शास्त्र सम्मत है। अतएव इष्ट है। इसलिये कल्पोपपन्न और कल्पातीत दोनों की अपेक्षा 'उपर्युपरि' यहां पर 'वैमानिक' शब्द का ही सम्बन्ध ठीक है ॥

() श्लोकवार्तिकका यह कथन यद्यपि स्थूल दृष्टि से विरुद्धसा मालूम होता है कि राजवार्तिक कारने विमानों को ऊपर ऊपर कहा है और श्लोक वार्तिक कारने देवों को ऊपर ऊपर कहा है, तथापि सूक्ष्म दृष्टिमे दोनों एक रूप ही में पड़ते हैं, श्लोक वार्तिक कारने केवल देवों को ऊपर २ नहीं कहा है किन्तु विमानोंसे विशिष्ट देवोंको कहा है, विमान सहित देव कहा जाय वा विमान कहाजाय दोनों का एक ही अर्थ है ॥ "ते कल्प उपरि उपरि हैं" पं० जयचन्दकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ३५६ ॥

हम स्वामी विद्यानन्दिके सहमत हैं कि उक्त सूत्रमें 'वैमानिकाः' की अनुवृत्ति आती है क्योंकि यह अधिकार सूत्रहै। इसीलिये अधिकार सूत्र होताहै कि उसकी अनुवृत्ति बराबर अगले अगले सूत्रोंमें चलीजावै ॥ रहा सूत्रोंका आशय सो प्रकरणके प्रसंगवश द्वारा निकल आता है ॥

किमर्थमिदमुच्यते? तिर्यगवस्थितिप्रतिषेधार्थमुच्यते॥ न ज्योतिष्कवत्तिर्यगवस्थिताः। न व्यन्तरवदसमावस्थितयः। उपर्युपरीत्युच्यन्ते॥ के ते? कल्पाः॥ यद्येवं, कियत्सु कल्पविमानेषु ते देवा भवन्तीत्यत आह—

॥ सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ १९ ॥

तिकड़ी ऊर्ध्व तिकड़ी) के नौ पटल जो मध्यलोकसे सातवां राजूसे आरम्भ होकर चौड़ाई राजूके भीतर हैं। एक पटल नव अनुदिशका जो मध्यलोकसे साढ़े छठवां राजूसे आरम्भ होता है और उसही के भीतर है और एक पटल पांचअनुत्तरका जो मध्यलोकसे पोने सातवाँ राजूसे आरम्भ होता है और उसके भीतर ही है ये सब तेरह (=आठ युगलोंके, तीन तिकड़ी ग्रैवेयकोंके, एक अनुदिशका, एक पांच अनुत्तरका) स्थानों में त्रेसठ (६३) पटल एक दूसरेके ऊपर ऊपर अवस्थित हैं॥

वृत्त्यनुवादः—किम्॥ अर्थम्॥ इदम्॥ उच्यतेT	=किसलिये यह (सूत्र) कहागया है।
तिर्यग्-अवस्थिति-प्रतिषेध-अर्थम्॥ उच्यतेT	=(उत्तर) (वैमानिकदेवोंकी) तिर्यग् अवस्थानके निषेधकेलिये(यहसूत्र)कहागया है
न*ज्योतिष्कवत्*तिर्यग्-अवस्थिताः।	=न (वे वैमानिक देव) ज्योतिषी देवोंके सदृश तिर्यग् अवस्थित हैं।
न*व्यन्तरवत्*असम-अवस्थितयः।	=न व्यन्तरों के समान विषम (अर्थात् जहां तहां) अवस्थित हैं॥
उपरि*उपरि*इति*उच्यन्तेT। के। ते। कल्पाः।	=(इसलिये)ऊपरऊपर ऐसे वर्णित हैं। वे कल्प कौन हैं? अर्थात् वे स्वर्ग क्या हैं?
यदि*एवम्*कियत्सु॥ कल्पविमानेषु॥	=जो इस प्रकार हैं अर्थात् ऊपर ऊपर हैं तो कितने कल्प विमानोंमें
ते। देवाः। भवन्तिTइति*अतः*आहT	=वे देव हैं? इसलिये (आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौच ॥ १९ ॥

पदच्छेदः (वैमानिकाः) सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,शुक्र-महाशुक्र,शतार-सहस्रारेषु, आनत-प्राणतयोः, आरण-अच्युतयोः, ग्रैवेयकेषु, नवसु, विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु-सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति ॥ १९ ॥

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[1] सौधर्म-ऐशान,	=वैमानिकदेव सौधर्म और ऐशानमें (प्रथमस्वर्ग और द्वितीयस्वर्गमें)
सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ,	=सानत्कुमार और माहेन्द्रमें, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें, लान्तव और कापिष्ठमें,

(१) हमारे यहांके सूत्रके 'ब्रह्म' शब्दके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें 'ब्रह्मलोक' शब्द है और 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके स्थानमें उक्त सभाष्य में 'ग्रैवेयेषु' शब्द है परन्तु उनके यहांकी श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें "ग्रैवेयकेषु" ही है और "सर्वार्थसिद्धौ" शब्दके स्थानमें उक्त समाजके दोनों भाष्योंमें, 'सर्वार्थसिद्धे' शब्द है। इन चारों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं है ॥ उनके दोनों ही भाष्योंमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र-शतार शब्द नहीं है अर्थात् उनके यहां केवल बारह ही स्वर्ग माने हैं, लान्तवके स्थानमें लांतक है शेष पाठ दोनों सम्प्रदायोंमें एक है ॥ इस सूत्रकी संख्याभी उनके यहां बीसवीं है ॥ हमारे यहां भी इन्द्रोंकी अपेक्षासे बारह कल्पही माने हैं ॥ देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक वार्तिक४ ॥

दिगम्बर आम्नायके उन्नीसवां सूत्रका पाठ	श्वेताम्बर सम्प्रदायके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके बीसवां सूत्रका पाठ
सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठ-	सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोक——लान्तक——
शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो,	——महाशुक्र——सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयो-
र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषुसर्वार्थसिद्धौ च	र्नवसु ग्रैवेयेषु विजयवैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धे च
	(यदि ग्रैवेयेषुके स्थानमें 'ग्रैवेयकेषु' लिखदें तो भाष्यानुसारिणी का पाठ है)

अर्थभेद—सभाष्य० और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके अनुकूल बारह स्वर्ग हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग हैं । ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र-शतारको स्वर्ग नहींमानेहैं। उक्त आम्नायके दोनों भाष्योंमें 'नवसुग्रैवेयेषु' वा 'नवसुग्रैवेयकेषु' वाक्य केवल नौग्रैवेयकोंका द्योतक है नकि नव अनुदिशविमानोंका भी । हमारे यहां सर्वभाष्योंमें तथा हिन्दीअनुवाद और टीकाओंमें, उक्त वाक्यसे 'नौग्रैवेयक, और नौ ही अनुदिश ग्रहण किये हैं जिन अनुदिशोंका केवल एकही पटलहै । क्योंकि यदि उमास्वामी नौ ग्रैवेयक ही ग्रहणकरते तो 'नव' शब्दको और ग्रैवेयक शब्दको भिन्नभिन्नसप्तमीविभक्तियोंमेंनहींलाते।

शुक्र-महाशुक्र-	=शुक्र नवमे और महाशुक्र दशवें स्वर्गों में

एक विभक्ति 'नवग्रैवेयकेषु' ऐसी करने। सारांश हमारे यहां 'नवअनुदिश' संज्ञक विमानोंको माना है। श्वेताम्बर समाजने नहीं माना है। अर्थात् उनके यहां नव अनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं स्वीकार किये हैं यद्यपि दोनों आम्नायोंमें प्रथम स्वर्ग सौधर्मसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानोंकी संख्या चौरासीलाख सतानवै सहस्र तेईस (८४९७०२३) एकसी मानी है जैसाकि निम्न लिखित लेखसे ज्ञात होता है

दिगम्बर तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १०७, अर्थ प्रकाशिका पृष्ठ२६५	श्वेताम्बर आम्नायमें देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १०६
प्रथम सौधर्म स्वर्गमें बत्तीस लाख (३२०००००) विमान हैं	प्रथम सौधर्म कल्पमें बत्तीसलाख (३२०००००) विमान हैं
द्वितीय ईशान स्वर्गमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं	द्वितीय ऐशान कल्पमें अट्ठाईस लाख (२८०००००) विमान हैं
तीसरे सानत्कुमार स्वर्गमें बारह लाख (१२०००००) विमान हैं	तीसरे सानत्कुमार कल्पमें बारहलाख (१२०००००) विमान हैं
चौथे माहेन्द्र स्वर्गमें आठलाख (८०००००) विमान हैं	चौथे माहेन्द्र कल्पमें आठलाख (८०००००) विमान हैं
पांचवां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर युगलमें चारलाख (४०००००) विमान हैं	पांचवां ब्रह्मलोक कल्पमें चारलाख (४०००००) विमान हैं
छठवां लांतवकापिष्ठ युगलमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं	छठवां लान्तक कल्पमें पचाससहस्र (५००००) विमान हैं
सातवां शुक्र महाशुक्र युगलमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं	सातवां महाशुक्र कल्पमें चालीससहस्र (४००००) विमान हैं
आठवां शतार सहस्रार युगलमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं	आठवें सहस्रार कल्पमें छहसहस्र (६०००) विमान हैं
आनत-प्राणत-आरण-अच्युत स्वर्गोंमें सातसौ (७००) विमान हैं	आनत-प्राणत-आरण-अच्युत कल्पोंमें सातसौ (७००) विमान हैं
नवम तीनअधो ग्रैवेयकनि विषैं एकसौग्यारह (१११) विमान हैं	नवम तीन अधो ग्रैवेयकनिमें एकसौ ग्यारह (१११) विमान हैं
दशम तीन मध्यकी ग्रैवेयकनिमें एकसौसात (१०७) विमान हैं	दशम तीन बीचकी ग्रैवेयकनि में एकसौसात (१०७) विमान हैं
ग्यारहवें तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनिमें इक्यानवे (९१) विमान हैं	ग्यारम तीन ऊपरकी ग्रैवेयकनि में एक शत (१००) विमान हैं
बारहवें नव अनुदिशके वा नवनवोत्तर के नौ (९) विमान हैं	(नवअनुदिश नाम न देतेहुये उन्होंने इसनौकी संख्याको ऊपर सौमें गर्भितकियाहै)
तेरहवें अनुत्तरके पांच (५) विमान हैं सर्वयोग(८४९७०२३) हुआ	अनुत्तर (बारहवीं संख्या पर) पांच विमान हैं॥ सर्वयोग (८४९७०२३) हुआ ॥

[1]शतार-सहस्रारेषु[3]	=शतार और सहस्रार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गोंमें (इन छह युगलों में)
आनत-[1]प्राणतयोः[3] आरण-[1]अच्युतयोः[3]	=आनत और प्राणत तेरहवां और चौदहवां स्वर्गोंमें, आरण और अच्युत स्वर्गोंमें

(१) यहां प्रश्न यह है कि कल्पोपपन्नदेव और कल्पातीनदेव जब सब वैमानिक हैं और विमानोंके रहनेवाले हैं तो उमास्वामीने सूत्रके अंतमें ही एकबार सप्तमी विभक्ति बहुवचनमें क्यों नहीं की सातवार सप्तमी विभक्ति क्योंकी, एक विभक्ति करनेमें छह अक्षर और च और कईएक मात्राओंका लाभ होजाता अर्थात् जिसरूपमें सूत्रहै उस रूपमें न करके ऐसा सूत्र रचते 'सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार-सहस्रारानतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकविजयवैजयन्तजयन्तापराजितसर्वार्थसिद्धिषु' ॥ १९ ॥

(उत्तर) आनत प्राणतयोः । आरण-अच्युतयोः इन दो युगलोंकी जुदी जुदी विभक्तियां करनेसे यह जानना चाहिये कि सोलह स्वर्गोंके आठ युगल हैं सो प्रत्येक युगल एक दूसरेके ऊपर है न कि एक स्वर्ग दूसरेके ऊपर है जैसे सौधर्म स्वर्गके ऊपर ऐशान स्वर्ग नहीं है वरन सौधर्म ऐशान युगलके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र युगल है इसी प्रकार और भी शेष सात युगलोंको एकसे दूसरेको ऊपर ऊपर जानो जैसाकि हम भावार्थ पृष्ठ ४५, ४६, और ४७ में लिखचुके हैं ॥ पं० जयचन्द्रायजी इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि "इहां कल्पका युगलका उपरि उपरि दोयदोय कहना अंतके दोय युगलनिके जुदी विभक्ती करी समास न किया, तातैं जाना जायहै ॥ इस सम्बन्धमें अपर वा अधिकतर प्रश्न यहहै कि श्री उमास्वामीने 'सौधर्मैशानयोः' 'सानत्कुमार माहेन्द्रयोः' 'ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोः' 'लांतवकापिष्ठयोः' 'शुक्रमहाशुक्रयोः' 'शतारसहस्रारयोः' 'आनतप्राणतयोः' 'आरणाच्युतयोः' ऐसेआठविभक्तियां क्योंन की, प्रथम बारह स्वर्गोंकी एक विभक्ति क्योंकी, फिर आनत प्राणतकी एक विभक्ति क्योंकी अन्तमें आरण-अच्युतकी एक विभक्ति क्यों की ? यदि आठ विभक्तियां करदेते तो स्पष्ट होजाताकि स्वर्गोंके आठ युगलहैं सो एकयुगलसे दूसरा युगल ऊपर है दूसरे से तीसरा ऐसेही सबसे ऊपर आठवां युगल 'कल्पोपन्ना' देवोंमेंहै ।

(उत्तर) आनतप्राणतद्वंद्वमारणाच्युतयोरिति । सूचनादंततः सा चकल्पेष्वेवैकशस्ततः" तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक श्लोक ३ पृष्ठ ३८२
= आनतस्वर्गप्राणतस्वर्गका द्वन्द्व समास है,आरण अच्युतमें (द्वंद्वसमास)है ऐसी सूचना है कि द्वन्द्ववृत्ति(=सा)का अंत कल्पोंमें ही(कल्पोंतक ही) है वहां से(अर्थात् पन्द्रहवां सोलहवां आरण अच्युत कल्पों वा स्वर्गोंसे ऊपर) एकएककी(विभक्ति) है ॥ अर्थात् आनत प्राणत और आरणअच्युतमें पृथक् पृथक् द्वन्द्व समास और विभक्तियोंसे प्रगट है कि सोलह स्वर्गतकही एक युगल दूसरे युगलसे ऊपर ऊपर है उसके ऊपर फिर एक एक है ॥ आठ युगलोंकी आठ विभक्तियां जुदी जुदी इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता । अथवा योंभी कहसकतेहैं कि आनत प्राणतकी विभक्तिसे यह भासहोताहै कि एक एक युगल दूसरे दूसरे से ऊपर ऊपर है और आरणअच्युतकी विभक्तिसे यह बातभी झलकती है कि युगलोंका अन्त सोलह स्वर्ग तक है और द्वन्द्व समास भी सोलह स्वर्ग तक ही है ॥

५०

सर्वार्थ () बहुतसे विद्वानोंका मतहै कि उमास्वामीने बारहस्वर्गोंकी एक विभक्ति और आनत प्राणत की दूसरी विभक्ति और आरण अच्युत की तीसरी विभक्ति इसहेतुसे भी की है कि सौधर्म ऐशान युगलमें दो सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है । सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें सात सागरसे कुछ सि
अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर कल्पमें दशसागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट अवस्थाहै । लांतवकापिष्ठ युगलमें चौदह सागरसे कुछअधिक उत्कृष्ट जीवन काल है । शुक्र महाशुक्र युगलमें सोलह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट आयुहै । सतार सहस्रार युगलमें अठारह सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट
५१ स्थिति है ॥ परन्तु आनत प्राणत युगलमें उत्कृष्ट स्थिति ठीक बीस सागरकी और आरण अच्युत युगलमें भी उत्कृष्ट स्थिति ठीक बाईस सागरकी क्रमसे है । छह युगलोंमें जहां पूरेसागरोंसे कुछ अधिक स्थिति थी वहां विभक्ति जुदी की और एकही द्वन्द्वसमासमें लेआये और जहां पूरी पूरी स्थिति थी वहां वहां प्रथम छह युगलोंसे पृथक् पृथक् विभक्तिकी ॥ (इसी अध्याय के देखो सूत्र २६, ३०, ३१,)

तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१ में छह युगलोंकी एक विभक्ति करना और आनतप्राणतकी भिन्न विभक्ति करना और आरणअच्युत को एक पृथक् विभक्तिमें लानेका यह हेतु दिया है कि बारह स्वर्गोंमें प्रत्येक में एक एक इन्द्र और आनतप्राणत दो स्वर्गों में एक इन्द्र और आरण अच्युत में एक इन्द्र ऐसे लोक अनुयोगके उपदेशसे इन्द्र चौदह भी कहेहैं ॥ इससे तीन विभक्ति जुदी जुदीदीहैं सम्भवहै कि उमास्वामी के मतानुसार चौदह इन्द्रहों । वार्तिक सात पृष्ठ१६१में और पृष्ठ १६६ में इन्द्र बारहभी कहे हैं । राजवार्तिकका लेख ऐसेहै कि "तथाचोत्तरयोः पृथग्वचनमर्थवत्" ॥ वार्तिक८ ॥ संस्कृतअर्थ ॥ एवंकृत्वा उत्तरयोः पृथग्वचनमर्थवत् भवति, आनत प्राणत योरारणाऽच्युतयोरिति । इतरथाहि लघ्वर्थ ए एवद्वन्द्वःक्रियते । तद्यथा ते एते लोकानुयोगोपदेशेन चतुर्दशेन्द्रा उक्ताः । इह द्वादश इष्यंते ।

तथा॥च॥उत्तरयोः॥पृथग्वचनम्॥अर्थवत्॥ = तौभी अगलेदो(युगलों) में जुदी जुदी विभक्ति है सो सार्थक है वा अर्थवत् है ॥ ८ ॥

एवम्॥कृत्वा ÷ = ऐसे करके अर्थात् सातवीं वार्तिक [प्रत्येकम्इन्द्रसम्बन्धः मध्ये प्रतिज्ञयं] में बारह इन्द्र (सौधर्म ऐशान दो स्वर्गोंमें दोइन्द्र,सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें दोइन्द्र,ब्रह्मलोक,ब्रह्मोत्तरदोमें एक ब्रह्मनाम इन्द्र, लांतव कापिष्ठ दोमें एक लांतवनामक इंद्र, शुक्रमहाशुक्र दोमें शुक नामक एक इंद्र शतारसहस्रार दोमें एकइन्द्र आनत-प्राणत दोमें एक एक ऐसे दो इन्द्र आरण अच्युत में एक एक ऐसे दो इन्द्र) कहकर (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६१

उत्तरयोः॥आनत-प्राणतयोः॥आरण-अच्युतयोः॥इति॥ = (सौधर्म ऐशान से) अगले (=उत्तरयोः) आनत प्राणतमें आरण-अच्युतमें ऐसी ३६

पृथग्॥वचनम्॥अर्थवत्॥भवतिT = भिन्न भिन्न विभक्ति है सो प्रयोजनको लिये हुये है (व्यर्थ नहीं है)

इतरथा॥हि॥ = अन्यथाही अर्थात जो प्रयोजनीय भिन्न भिन्न विभक्ति न लाते तो निश्चयकरि (=हि)

लघ्वर्थः॥एकः॥एव॥द्वन्द्वः॥क्रियतेT = लघुताकेलिये एक(आनतप्राणतारणाच्युतयोःऐसा)ही द्वन्द्वसमास करते सोठीक था इष्ट नहींथा

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने "एवंकृत्वा इत्यादि वाक्यका निम्न लिखित अर्थ पृष्ठ ९४२में किया है "ऐसे किये अगिले दोय युगल आनत प्राणत आरण अच्युत इनके विषैं भिन्न भिन्न विभक्तिकरि निर्देश है सो सार्थिक होय है ॥ आनत प्राणतयो: आरणअच्युतयो: ऐसे भिन्नविभक्तिरूप निर्देश करा है॥सो एकएक कल्पमें एकएक इन्द्रहै ॥ ऐसे च्यारिहैं" ॥ पिछला वाक्य मेरी समझमें ठीक नहीं है अशुद्ध है क्योंकि यहां कथन चौदह इन्द्रोंके सम्बन्धमें है (नकि बारह इन्द्रोंकी अपेक्षासे है जो उक्त वाक्य ठीक होता) यदि हम इन आनत प्राणत आरण अच्युत स्वर्गोंमें भी चार इन्द्र मानलें और बारह इंद्र सौधर्मसे सहस्रार स्वर्गतक मानलें तो इंद्र सोलह हुये जाते हैं ॥ पश्चात् पृष्ठ ९६३ मे और पृष्ठ ९६४में स्वयम् न्यायदिवाकरजी लिखते हैं कि आनतप्राणत आरण अच्युत स्वर्गों में "आरणनामादेवराज है———अच्युतनामा देवराजहै" इसी बातका समर्थन कि इन चारों स्वर्गोंमें आरण नामक और अच्युत नामक (चौदह इंद्रोंकी अपेक्षासे) दोही इन्द्र हैं पं० पन्नालाल दूनीवालोंने अपनी तत्त्वकौमदीमें और पं० गजाधर शास्त्रीने पृष्ठ १०७८ और १०७९ (संस्थाद्वारा अनुवादित और प्रकाशित तत्त्वार्थ राजवार्तिक) में किया है ॥

तद्यथा*............................ =जैसे सौधर्म इन्द्र, ऐशान इन्द्र, सानत्कुमारइन्द्र, माहेन्द्र इन्द्र, ब्रह्मनामक इन्द्र, ब्रह्मोत्तरनामकइन्द्र, लांतव नामक इंद्र, कापिष्ठ नामक इंद्र, शुक्र नामक इंद्र, शतार नामक इन्द्र, सहस्रार नामक इन्द्र, आरण नामक इन्द्र, अच्युत नामक इन्द्र (आनत-प्राणत नामक कोई इंद्र नहीं हैं) ते इतने लोक नियोगके उपदेशकरि चौदह इन्द्र कहेगये हैं (राजवार्तिक पृष्ठ ९६१ से ९६६ तक)

इह=द्वादश॥इष्यन्ते =यहां(=इह) (मूल सिद्धान्तकी अपेक्षासे) बारह(इन्द्र कहना)इष्ट है ॥ इसका देखो पृष्ठ ५१ ॥

इस समस्त टिप्पणीका आरम्भसे अंततक सारांश यह है कि(क)प्रथम छहयुगलों बारह स्वर्गोंकी विभक्तियां इससे नहीं की कि सूत्र बहुत बढ़जाता (ख) 'आनत प्राणतयोः' 'आरणाच्युतयोः' की दो विभक्तियोंसे प्रगट है कि एकएक युगल एक दूसरेके ऊपर है नकि एक स्वर्ग एक दूसरेके ऊपर है (ग) आरणाच्युतयो: विभक्तिसे यह भी झलकता है कि युगल युगल की विभक्ति केवल सोलह स्वर्गों तकही है (घ) उक्त तीन विभक्तियोंसे यहभी झलकताहै कि सागरोंसे कुछ अधिक देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति है सो केवल प्रथम छह युगल बारह स्वर्ग तक ही है और आनत प्राणतकी उत्कृष्टस्थित बीस ही सागर की है अधिक नहीं है और आरण अच्युतकी भी बाईस सागर पूरे की उत्कृष्टस्थिति है अधिक कुछ भी नहीं है (च) ये तीन विभक्तियां इस बातकीभी द्योतक हैं कि प्रथम बारह स्वर्गमें एक एक इंद्र है ऐसे बारह ये हुये और आनत प्राणत जहां दूसरी विभक्ति की है एक इन्द्र है और आरण अच्युत जहां दूसरी विभक्ति कीहै वहांभी एक इंद्र है ऐसे तत्त्वार्थराजवार्तिकके अनुसार लोक अनुयोगउपदेशसे चौदह इन्द्रभी मानेहैं परन्तु प्रसिद्ध बारहही इंद्र हैं ॥ श्वेताम्बरआम्नायमें १०ही मानेहैं।

¹ग्रैवेयकेषु²¹नवसु²¹विजय-वैजयन्त-जयन्त-	=(नौ) ग्रैवेयकोंमें, नव अनुदिशोंमें, विजय वैजयन्त जयन्त-
अपराजितेषु²¹च*³सर्वार्थसिद्धौ³¹	=अपराजित विमानोंमें और (=च) सर्वार्थसिद्धिमें (रहते) हैं

(१) सौधर्म स्वर्गसे आदि लेकर अच्युत पर्यंत बारह कल्प हैं अर्थात् इन्द्रोंकी अपेक्षासे श्वेताम्बर आम्नायके सदृश यहां बारह ही कल्प माने हैं (क्योंकि इन्द्र आदिकी कल्पना केवल बारहही स्वर्गोंमें है ब्रह्मोत्तर कापिष्ठ महाशुक्र सहस्रार स्वर्गोंके तो इन्द्र ब्रह्म लांतव शुक्र शतार दक्षिण इन्द्रोंके आधीन क्रमसे हैं/ अथवा सोलह स्वर्ग हैं उनके ऊपर कल्पातीत हैं इसबातके स्पष्ट करनेके लिये सौधर्म आदिसे ग्रैवेयकोंका भिन्न विभक्तिद्वारा पृथग् ग्रहण किया है।

(२) इस समस्त सूत्रको विचार पूर्वक पढ़नेसे जान पड़ता है कि जो जो विमान पहिले पहिले कहेगये हैं वे उत्तर उत्तर विमानोंसे नीचे नीचे हैं नवसु शब्दसे 'अनुदिश' दर्शाये गये हैं (=निर्दिष्ट हैं) मुद्रितसर्वार्थसिद्धि पृष्ठ २४५, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ १५३ देखो। 'नवसु' शब्द यदि 'ग्रैवेयकेषु' के पहिले मानाजावे तो 'नवअनुदिश' ग्रैवेयकोंसे नीचे हुये जाते हैं। यदि कहाजावेकि 'नवसु' शब्द नवग्रैवेयकोंकी संख्या जतलानेके लिये है तो फिर 'नवअनुदिश' छूटेजाते हैं इसलिये मैंने 'नवसु' शब्दको 'ग्रैवेयकेषु' के पश्चात् रखकर 'नवअनुदिशोंमें' ऐसा अनुवाद किया है॥ यदि यह कहाजावे कि 'नवसु' को पश्चात् लानेसे ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट नहीं होती है सो हो नहीं सकता क्योंकि 'नवसु' शब्द को जब पूर्वको आकर्षण करते हैं तब ग्रैवेयकोंकी संख्या प्रगट होजाती है जब ऊपर को ग्रहण करते हैं तब अनुदिशोंका द्योतक 'नवसु' 'शब्द होजाता है॥ यदि 'नवसु' शब्द से नव अनुदिशका अभिप्राय श्री उमास्वामीका न होता तो 'नवसु' शब्दकी जुदी विभक्ति नहीं करते, नवसु शब्दको 'ग्रैवेयक'के साथ समास ऐसे करदेते कि 'नवग्रैवेयकेषु' और एक अक्षरका लाभ होजाता। हमारे कथनका समर्थन श्लोकवार्तिकके श्लोक चार से (देखो मुद्रित पृष्ठ ३८२) ऐसे होता है कि "ग्रैवेयकेषु नवसु नवस्वनुदिशेष्विदं" = ग्रैवेयकेषु नवसु, नवसु अनुदिशेषु इदम् = ग्रैवेयक नौमें, नौ अनुदिशोंमें, यह (वृत्ति = विभक्ति भिन्नभिन्न) है

ग्रैव ग्रीव्य ग्रैवेय तथा ग्रैवेयक सब एकार्थवाचक हैं॥ अनुदिशका अर्थ यहां प्रतिदिश है अर्थात् जो प्रत्येक दिशामें हो वह अनुदिश कहाजाता है॥ 'दिशा' शब्द जिसके अन्तमें 'आ' है उसका समास 'अनु' अव्ययके साथ करने पर 'अनुदिश' शब्दकी सिद्धि होती है॥

(३) (प्रश्न) विजय,वैजयन्त,जयन्त,और अपराजितविमानोंसे सर्वार्थसिद्धिका विमान ऊंचा नहींहै फिर भिन्नविभक्तिद्वारा सूत्रमें क्यों निर्देश किया? (उत्तर)(क) उक्तचार विमानोंमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिके रहनेवाले देवोंकी उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारकी स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।

(ख) सर्वार्थसिद्धि वाला देव एक भव धारण कर मोक्ष को जाता है उक्त चार विमानोंके देव प्रायः दो भव धारण कर मोक्षको जाते हैं।

(ग) सर्वार्थसिद्धि वाले देवका जितना प्रभाव और प्रताप है उतना सर्व विजय आदि विमानके रहने वाले सब देवोंका भी नहीं है।

(घ) सर्वार्थसिद्धिवासीदेव निरंतर श्रुतभावनामें लीन रहतेहैं और उपशांतश्रेणीकेविषैं अव्यक्त मंदकषायरूप विशुद्धपरिणामोंकी उत्कृष्टसीढ़ीको प्राप्त होचुके हैं इत्यादि विशेषता प्रतिपादनके लिये वा जतलानेके लिये "सर्वार्थसिद्धौ" ऐसी भिन्न विभक्ति "विजय वैजयन्त जयन्तापराजितेषु से की।

कथमेषां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानं ? चातुरर्थिकेनाणा, स्वभावतो वा कल्पस्याभिधानं भवति ॥ अथ कथमिन्द्राभिधानं ? स्वभावतः साहचर्याद्वा ॥ तत्-

वृत्त्यनुवादः—कथम्॥एषाम्[६]।सौधर्म-आदि-शब्दानाम्[६]। =कैसे इन सौधर्म आदिक (सोलह) शब्दोंका (अर्थात् सोलह स्वर्गोंका)

कल्प-अभिधानम्[१]।।चातुरर्थिकेन[३]।अणा[३]। =कल्प नाम हुआ ? (उत्तर) चातुरर्थिक अण्(=अ-प्रत्यय)करि अर्थात् व्याकरणके तद्धितप्रकरणमें (=संज्ञामें प्रत्यय मिलाकर अर्थ बदलने रूप प्रकरणमें)

चातुरर्थिक प्रकरणके (=वह अधिकार जिसमें अण्-अञ्-ठक्-[१]वुञ्-छण् इत्यादि बहुतसे प्रत्ययोंमेंसे प्रत्येकप्रत्यय चारचार (क) [२]वह जिसमें हो (ख) [३] बनायागया (ग) [४] उसका निवास (घ) [५]अदूर अर्थोंमें विधान कियाजाता है उन प्रत्ययोंमेंसे इस) अण् (प्रत्यय) द्वारा (वह जिसमें हो—उसका निवास-इन अर्थोंमें लेकर वा ग्रहणकरि)

वा॥स्वभावतः॥कल्पस्य[६]।अभिधानम्[१]।।भवतिT =अथवा (=वा) स्वभावसे, कल्पकी संज्ञा वा नाम (अभिधान) होता है भावार्थ सौधर्म आदिकी कल्पसंज्ञा चाहे अण् प्रत्यय 'वह जिसमें हो' 'उसका निवास' अर्थोंमें लेकर सुधर्मा, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र आदि शब्दोंमें यथायोग्य लगाकर करलेनी चाहिये अथवा सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र आदि स्वभाविक नाम हैं यों समझलेना चाहिये

अथ॥कथम्॥इन्द्र-अभिधानम्[१]।।स्वभावतः॥ =प्रश्न (=अथ) इन्द्रका नाम कैसे है ? (उत्तर) स्वभावसे, प्रकृतिसे,

साहचर्यात्[५]।।वा॥ =अथवा संसर्गतासे, सहचरितासे, उसमें रहनसहनसे (अर्थात् जैसा अमुक कल्प वा स्वर्ग का नाम है वैसा उस स्वर्ग वा कल्प के इन्द्रका नाम है)

तत्[१]।। =सो (अर्थात् कल्पका अभिधान, नाम अण् प्रत्यय करि अथवा स्वभावसे और इन्द्रकी संज्ञा वा नाम स्वभावसे अथवा साहचर्यसे)

[१] वुञ् छुण्क इत्यादि ४-२-८० । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि ॥ ४-२-६७ ॥ [३] तेन निर्वृत्तम् ॥ ४-२-६८ ॥ [४] तस्य निवासः ॥ ४-२-६९ ॥ [५] अदूरभवश्च ॥ ४-२-७० ॥ उक्त पांच सूत्रोंको अष्टाध्यायी पाणिनिमुनिकृतमें देखो ॥ इन्हीं सूत्रोंके समानअर्थक निम्नलिखित सूत्र जैनेन्द्रव्याकरणमें देखना चाहिये ॥ ये सूत्र इस प्रकार हैं कि

[१] वुञ्छण्क इत्यादि । ३-२-६१ । [२] तदस्मिन्नस्तीति देशः खौ ॥ ३-२-५८ ॥ (३) तेन निर्वृत्तः । ३।२।५९ (४) (५) तस्यनिवासादूरभवौ। ३-२-६०

कथमिति चेदुच्यते—सधर्मा नाम सभा, साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्मः कल्पः। तदस्मिन्नस्तीत्यण् तत्कल्पसाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः॥ ईशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः। ईशानस्य निवासः कल्प ऐशानस्तस्य निवास इत्यण्। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि ऐशानः॥

कथम्*इति*चेत्*उच्यते सुधर्मा[1/1]।नाम[1/1]।। =कैसे है? ऐसे प्रश्न (करने) पर कहा जाता है कि सुधर्मा नाम

सभा[1/1]।सा[1/1]।अस्मिन्[7/1]।।अस्ति T इति*सौधर्मः[1/1]।कल्पः[1/1]। =सभा है। वह (सभा) जिसमें है ऐसा सौधर्म कल्प है

"तदस्मिन्नस्तीत्यण्"(=तद्[1/1]।।अस्मिन्[7/1]।अस्ति T इति*अण्[1/1]।)='तदस्मिन्नस्ति' ऐसे (अष्टाध्यायीके चौथे अध्याय पाद दो सूत्र ६७ से और जैनेन्द्रव्याकरण के तीसरा अध्याय पाद दो सूत्र ५८ से)

अण् (प्रत्ययको 'वह जिसमें हो' इस अर्थमें प्रयोग करके सौधर्म शब्द सिद्धि किया) है। भावार्थ सुधर्मा शब्दमें अण् प्रत्ययका यह प्रभाव है कि सुधर्मा शब्दके 'उ'की वृद्धिसंज्ञा होजातीहै और अण्प्रत्ययका अ जोड़ाजाता है तब सौधर्मा+अ ऐसा रूप हुआ क्योंकि 'अण्' के 'ण्' का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है शेष 'अ'रहता है अण् प्रत्ययका यहभी प्रभाव है कि शब्दके स्वरोंमेंसे अंतिम स्वरवालेभाग वा खंडको मय उस भागके व्यंजनको यदि कोई व्यंजन उस भागमें होतो गिरादेताहै और अण् प्रत्ययका अ उस शब्दके शेषभागमें जुड़जाताहै इसलिये सौधर्मा शब्दका 'आ' गिरकर और अण्का अ मिलनेसे सौधर्म शब्द ऐसे सिद्ध हुआ कि सौधर्म्+अ=सौधर्म

तद्-कल्प-साहचर्यात्[5/1]।। =उस (सौधर्म) कल्पमें रहन सहन से अथवा सौधर्म कल्पकी सहचरितासे

इन्द्रः[1/1]।अपि*सौधर्मः[1/1]। =इन्द्र भी (=अपि) सौधर्म है ॥

ईशानः[1/1]।नाम[1/1]।।इन्द्रः[1/1]।स्वभावतः* । ईशानस्य[6/1]।निवासः[1/1]। =ईशान नामा इन्द्र है सो स्वभावसे है। ईशान इन्द्रका निवास

कल्पः[1/1]।ऐशानः[1/1]।"तस्य निवासः" =सो स्वर्ग(=कल्प)ऐशान है॥ 'तस्य निवास' जैनेन्द्रव्याकरण और अष्टाध्यायीके इसी सूत्रसे ५५

इति*अण्[1/1]। =ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय(निवास अर्थमें)है कि ईशान+अण्=ऐशान्+अ=ऐशान बना

तद्-साहचर्यात्[5/1]।।इन्द्रः[1/1]।अपि*ऐशानः[1/1]। =उस (ऐशान कल्प, स्वर्ग) में रहनसहनसे अथवा सहचरितासे इन्द्र भी ऐशान है।

 सनत्कुमारो नाम इन्द्रः स्वभावतः। तस्य निवास इत्यण्। सानत्कुमारः कल्पः। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि सानत्कुमारः॥ महेन्द्रो नामेन्द्रः स्वभावतस्तस्य निवासः कल्पो माहेन्द्रः। तत्साहचर्यादिन्द्रोऽपि माहेन्द्रः। एवमुत्तरत्रापि योज्यम्॥ आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति, उपर्युपरीत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ प्रथमौ सौधर्मैशानकल्पौ, तयोरुपरि सानत्कुमारमाहेन्द्रौ तयोरुपरि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ, तयोरुपरि लान्तवकापिष्ठौ, तयोरुपरि

सनत्कुमारः[1/1] नाम[1/1] इन्द्रः[1/1] स्वभावतः* । 'तस्यनिवासः'	=सनत्कुमार नाम इन्द्र (है सो) स्वभावसे है। 'तस्य निवासः' उक्तसूत्र द्वारा
इति*अण्[1/1]	=ऐसे अण्(=अ)प्रत्यय (निवास अर्थमें) होकर (सनत्कुमार से,सानत्कुमारबनकर)
सानत्कुमारः[1/1] कल्पः[1/1]; तत्साहचर्यात्[5/1]	=सानत्कुमार स्वर्ग हुआ। उस (सानत्कुमार कल्प) में रहनेसे वा रहनसहनसे
इन्द्रः[1/1] अपि*सानत्कुमारः[1/1] । महेन्द्रः[1/1] नाम[1/1] इन्द्रः[1/1]	=इन्द्रभी सानत्कुमार है। महेन्द्र नाम इन्द्र है
स्वभावतः*तस्य[6/1] निवासः[1/1] कल्पः[1/1] माहेन्द्रः[1/1]	=सो स्वभावसे है उसका निवासस्थान स्वर्ग माहेन्द्र है ("तस्य निवासः" इस सूत्र द्वारा ऐसे अण् प्रत्यय निवास अर्थमें होकर महेन्द्र से माहेन्द्र शब्द बनाया)
तत्-साहचर्यात्[5/1] इन्द्रः[1/1] अपि*माहेन्द्रः[1/1] ॥	=उस (माहेन्द्र कल्प)के साहचर्यासे इन्द्र भी माहेन्द्र है।
एवम्*उत्तरत्र*अपि*	=इस प्रकार यहां (माहेन्द्र कल्प) से आगे (उत्तरत्र) भी
योज्यम्[1/1] ॥	=(ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर इत्यादि सोलह स्वर्ग पर्यंत इन्द्र तथा कल्पकानाम/जोड़नाचाहिये
आगम-अपेक्षया[3/1] व्यवस्था[1/1] भवति[1] इति*	=शास्त्रकी अपेक्षासे ऐसे निर्णय (=व्यवस्था) होना है कि
उपरि*उपरि*इति*अनेन[3/1] द्वयोः[6/2] द्वयोः[6/2]	=ऊपर ऊपर इस (वाक्य) करि दो दो (स्वर्गों) का
अभिसम्बन्धः[1/1] वेदितव्यः[1/1] । प्रथमौ[1/2] सौधर्म-ऐशानकल्पौ[1/2]	=सम्बंध जानना योग्य है। पहिले दो सौधर्म और ऐशान कल्प हैं।
तयोः[6/2] उपरि*सानत्कुमार-माहेन्द्रौ[1/2]	=उनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र हैं।
तयोः[6/2] उपरि*ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरौ[1/2]	=तिनके ऊपर ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर हैं।
तयोः[6/2] उपरि*लान्तव-कापिष्टौ[1/2] तयोः[6/2] उपरि*	=उनके ऊपर लान्तव और कापिष्ट हैं। तिनके ऊपर

शुक्रमहाशुक्रौ, तयोरुपरि शतारसहस्रारौ, तयोरुपरि आनतप्राणतौ, तयोरुपरि आरणाच्युतौ ॥ अध उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः । मध्ये तु प्रतिद्वयमेकः ॥ सौधर्मैशानसानत्कुमार-माहेन्द्राणां चतुर्णां चत्वार इन्द्राः । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मेन्द्रो नाम । लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवाख्यः । शुक्रमहाशुक्रयोरेकः शुक्रसञ्ज्ञः । शतारसहस्रारयोरेकः शतारनामा । आनतप्राणतारणाच्युतानां चतुर्णां चत्वारः । एवं कल्पवासिनां द्वादश इन्द्रा भवन्ति ॥ जम्बूद्वीपे महामन्दरो

शुक्र-महाशुक्रौ[१/२] तयोः[६/२] उपरि* शतार-	=शुक्र और महाशुक्र हैं ॥ तिनके ऊपर शतार
सहस्रारौ[१/२] तयोः[६/२] उपरि* आनत-प्राणतौ[१/२]	=और सहस्रार हैं । उनके ऊपर आनत और प्राणत (कल्प) हैं
तयोः[६/२] उपरि* आरण-अच्युतौ[१/२] ॥ अधः*	=तिनके ऊपर आरण और अच्युत हैं । नीचे (चार स्वर्गों में)
उपरि* च* प्रत्येकम्[१/१] इन्द्रसम्बन्धः[१/१] वेदितव्यः[१/१]	=और ऊपर (चार स्वर्गोंमें) एकएक (=प्रत्येकम्) इन्द्रका सम्बन्ध जानना चाहिये अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, इन प्रत्येक प्रत्येकमें एकएक इन्द्र ऐसे चार और आनत, प्राणत, आरण, अच्युत प्रत्येकप्रत्येकमें एकएक ऐसे आठ इन्द्र हैं
मध्ये[७/१] तु* प्रति-द्वयम्[१/१] एकः[१/१] ॥ सौधर्म-ऐशान-	=और (=तु) मध्य (आठ स्वर्गों) में प्रति युगल एक (एक) इन्द्र है सौधर्मऐशान
सानत्कुमार-माहेन्द्राणाम्[६/३] चतुर्णाम्[६/३] चत्वारः[१/३]	=सानत्कुमार और माहेन्द्र चार (स्वर्गों) के चार
इन्द्राः[१/३] (१) ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोः[६/२] एकः[१/१] ब्रह्म-	=इन्द्र हैं, ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर का एक ब्रह्म
इन्द्रः[१/१] (२) नाम* (१) लान्तवकापिष्ठयोः[६/२] एकः[१/१]	=नाम इन्द्र है, लान्तव कापिष्ठ (कल्प) का एक
लान्तव-आख्यः[१/१] (१) शुक्र-महाशुक्रयोः[६/२] एकः[१/१]	=लान्तव नाम (इन्द्र) है, शुक्र और महाशुक्र (स्वर्गों) का एक
शुक्र-सञ्ज्ञः[१/१] (१) शतार-सहस्रारयोः[६/२] एकः[१/१]	=शुक्र नामा (इन्द्र) है, शतार सहस्रार का एक
शतारनामा[१/१] आनत-प्राणत-आरण-अच्युतानाम्[६/३]	=शतार नामा (इन्द्र) है, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत
चतुर्णाम्[६/३] चत्वारः[१/३] एवम्* कल्प-वासिनाम्[६/३]	=चार (स्वर्गों) के चार (इन्द्र) हैं, इस प्रकार स्वर्गों में निवास करनेवाले (देव) निके
द्वादश[१/३] इन्द्राः[१/३] भवन्ति । जम्बूद्वीपे[७/१] महामन्दरः[१/१]	=बारह इन्द्र होते हैं ॥ जम्बूद्वीपमें सुमेरुपर्वत

(१) इन चारों वाक्योंको पृथक् पृथक् सप्तमी दो वचन मानकर 'का' के स्थानमें "में" ऐसा अनुवाद भी होसक्ता है जैसे ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर में एक ब्रह्म नाम इन्द्र है इत्यादि ॥ (२) 'नाम' यहां पर अव्यय है जैसे 'हिमालयो नाम, नगाधिराजः' कुमारसंभवसे (वैद्यकोश पृष्ठ २७५ देखो)

योजनसहस्रावगाहो भवति नवनवतियोजनसहस्राच्छ्रायः। तस्याधस्तादधोलोकः। बाहुल्येन तत्प्रमाण—(मेरुप्रमाण) स्तिर्यक्प्रसृतस्तिर्यग्लोकः। तस्योपरिष्टादूर्ध्वलोकः। मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्राया। तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थितमृजुविमानमिन्द्रकं सौधर्मस्य॥ सर्वमन्यल्लोकानुयोगाद्वेदितव्यम्॥ नवसु ग्रैवेयकेष्विति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम्?। अन्यान्यपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनार्थम्।

योजन-सहस्र अवगाहः। भवति। नव-नवति- =सहस्र योजन पृथिवीमें प्रविष्ट होता है (और) निन्यानवे
योजन-सहस्र-उच्छ्रायः। तस्य। अधस्तात्* =सहस्र योजन की ऊंचाई है। तिस (सुमेरु पर्वत की जड़) के नीचे
अधोलोकः। बाहुल्येन। =अधोलोक है बहुतायतसे अथवा प्रचुरतासे वा बहुलतासे
तत्प्रमाणः। (मेरुप्रमाणः) तिर्यक्-प्रसृतः। तिर्यग्लोकः। =उसके परिमाण (सुमेरुके बराबर मोटाई) तिर्यक् फैलवां तिर्यग्लोक है
तस्य। [1]उपरिष्टात्* [2]ऊर्ध्व-लोकः। मेरु-चूलिका। =इस (सुमेरु)के ऊपर ऊर्ध्व लोक है। मेरु पर्वतकी चूलिका
चत्वारिंशत्-योजन-उच्छ्राया। तस्याः। उपरि* =चालीस योजन ऊंचाई वाली है तिस (चूलिका) के ऊपर
केशान्तरमात्रे। व्यवस्थितं। ऋजुविमानंइन्द्रकं। सौधर्मस्य। =बालके अन्तरमात्र तिष्ठा हुआ ऋजुनामा इन्द्रक विमान सौधर्म(स्वर्ग)का है
सर्वम्। अन्यत्*लोक-अनुयोगात्। वेदितव्यम्। =अन्य(=अन्यत्)समस्त वर्णन लोकनियोग(=लोकमें प्रचलित)ग्रंथसे जानना चाहिये
नवसु। ग्रैवेयकेषु। इति*। नव-शब्दस्य। =(प्रश्न) "नवसु ग्रैवेयकेषु" इस प्रकार नव शब्दके (ग्रैवेयक शब्दसे)
पृथग्*वचनम्। किम्। अर्थम्। ? =न्यारी विभक्ति किस लिये है अर्थात् प्रश्न यह है कि जब नवग्रैवेयक हैं तो "नवग्रैवेयकेषु" ऐसा मिलाकर एकही बहुवचन कारक वा विभक्ति क्यों न की

नवसु को सप्तमी बहुवचन में भिन्न कारक किया और 'ग्रैवेयकेषु' को सप्तमी बहुवचन न्यारा कारक किया यदि एकही में दोनों को मिलाकर एकही विभक्ति करदेते तो "सु" अक्षर न्यून होजाता।

अन्यानि। अपि*नव-विमानानि। =(उत्तर) (इन नवग्रैवेयकोंसे ऊपर) इतर वा दूसरे भी नौ विमान
अनुदिशसञ्ज्ञकानि। सन्ति। इति*ज्ञापन-अर्थम्। =अनुदिशनामक हैं ऐसा जनानेको(नवसु ग्रैवेयकेषुसे न्यारीन्यारी विभक्ति की)है॥

(१) उपरिष्टात् और उपरि दोनों अव्यय हैं इनके साथ (जैसे यहां) द्वितीया और षष्ठी विभक्तियां मिलती हैं॥ (२) सुमेरु के ऊपर चालीस योजन की चूलिका है सो तिर्यग्लोक का भाग है॥

तेनानुदिशानां ग्रहणं वेदितव्यम्॥एषामधिकृतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः॥२०॥

स्वोपात्तस्यायुष उदयात्तस्मिन्भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थितिः । शापानुग्रहशक्तिः प्रभावः । सुखमिन्द्रियार्थानुभवः ।

तेन[६/३] अनुदिशानाम्[६/३] ग्रहणम्[१/१] वेदितव्यम्[१/१]॥	=तिस ('नवसु'कारक) से अनुदिश विमानों का ग्रहण जानना चाहिए ॥
एषाम्[६/३] अधिकृतानाम्[६/३] वैमानिकानाम्[६/३]	=इन प्रकरणकियेहुये वैमानिकदेवोंके
परस्परतः*विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[२/१]॥ आह	=आपसमें विशेष जाननेकेलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

(=वैमानिकाःउपर्युपरि)स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः-अवधिविषयतः अधिकाः

सूत्रार्थः—वैमानिकाः[१/३] उपरि*उपरि*	=वैमानिकदेव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति तथा पटल पटल प्रति
स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-	=आयु, प्रताप वा महिमा, सुख, दीप्ति (शरीरादि की कान्ति वा प्रकाश)
लेश्याविशुद्धि-इन्द्रियविषयतः*	=लेश्याकी विशुद्धता अथवा उज्ज्वलता, इन्द्रियोंके विषयकरि
अवधि-विषयतः*अधिकाः[१/३]	=और अवधि ज्ञानके विषयकरि (अर्थात् इन सातों बातोंमें) अधिक अधिक हैं
वृत्त्यनुवादः—स्व-उपात्तस्य[६/१]॥ आयुषः[६/१]॥ उदयात्[५/१]	=स्वप्राप्त आयुके उदयसे
तस्मिन्[७/१] भवे[७/१] शरीरेण[३/१]॥ सह*	=तिस भवमें वा जन्ममें शरीर सहित
अवस्थानम्[१/१]॥ स्थितिः[१/१]॥ शाप-	=टिकाव वा ठहराव सो स्थिति है(परका)अपकार वा निग्रह(वशमेंलाकरदंडदेने)की
(शक्तिः)-अनुग्रहशक्तिः[१/१]॥ प्रभावः[१/१]	=(सामर्थ्य और) उपकार करनेकी सामर्थ्य सो प्रभाव है
इन्द्रिय-अर्थ-अनुभवः[१/१] सुखम्[१/१]॥	=(सातावेदनीय के उदयसे) इन्द्रिय विषय (=अर्थ) का भोगना सो सुख है

(१) हमारे यहांकी पुस्तकोंमें कहीं पर "विशुद्धीन्द्रिया" पाठ है कहीं पर "विशुद्धींद्रिया"पाठ है दोनोपाठ ठीक हैं । शेषपाठ हमारे यहां सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें तथा 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें और दिगम्बरआम्नायके भाष्योंमें पाठ तथा अर्थ एकसा है ॥

शरीरवसनाभरणादिदीप्तिर्द्युतिः। लेश्या उक्ता। लेश्याया विशुद्धि र्लेश्याविशुद्धिः। इन्द्रियाणामवधेश्च विषय इंद्रियावधिविषयः। तेभ्यस्तैर्वाऽधिका इति॥ तस्मिन्नुपर्युपरि प्रतिकल्पं प्रतिप्रस्तारं च वैमानिकाः स्थित्यादिभिरधिका इत्यर्थः॥ यथा स्थित्यादिभिरुपर्युपर्यधिका एवं गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तन्निवृत्त्यर्थमाह-

॥ गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

शरीर-वसन-आभरण-आदि-दीप्तिः।द्युतिः।, =शरीर वस्त्र तथा भूषण अथवा गहना आदिक का प्रकाश सो द्युति है
लेश्या। =लेश्या अर्थात् कषायके उदयकरि रंजित योगों की प्रवृत्ति
उक्ता। लेश्यायाः। विशुद्धिः। =(दूसरे अध्यायके छटवाँ सूत्रमें) वर्णित है। लेश्याकी उज्ज्वलता वा विशुद्धता
लेश्या-विशुद्धिः। इन्द्रियाणाम्। अवधेः। च*विषयः। इन्द्रिय- =सो लेश्या विशुद्धि है। इन्द्रियोंका और अवधिज्ञानका विषय हैं सो इन्द्रिय
अवधि-विषयः। तेभ्यः। =अवधिविषय है। तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रिय,अवधि विषय)से
वा*तैः। =अथवा तिन(स्थिति,प्रभाव,सुख,द्युति,लेश्याविशुद्धि,इन्द्रियविषय,अवधिविषय)करि
अधिकाः। इति*तस्मिन्। उपरि*उपरि* =अधिक अधिक हैं ऐसें तिस (ऊर्ध्वलोक) में ऊपर ऊपर
प्रति*कल्पम्। प्रति*प्रस्तारम्। च*वैमानिकाः। स्थिति- =स्वर्गस्वर्ग प्रति और पटल प्रति वैमानिक देव स्थिति
आदिभिः। अधिकाः। इति*अर्थः। यथा*स्थिति- =आदि करि अधिक अधिक हैं ऐसा आशय है जैसे स्थिति
आदिभिः। उपरि*उपरि*अधिकाः। एवम्*गति- =आदि करि ऊपर ऊपर अधिक अधिक हैं ऐसे गमन
आदिभिः। अपि*इति*अतिप्रसंगे। =आदिकरि भी इस प्रकार अति प्रसक्ति अर्थात् विपरीत सम्बन्ध आने पर
तत्-निवृत्ति-अर्थम्। आह। =उस (विपरीत प्रसक्ति) के निषेध के लिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहतेहैंकि

सूत्रम्— गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

(वैमानिकाः उपर्युपरि) गति-शरीर-परिग्रह-अभिमानतः हीना भवन्ति ॥

सूत्रार्थः-वैमानिकाः। उपरि*उपरि* =वैमानिक देव हैं वे ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्ग प्रति पटल पटल प्रति
गति-शरीर-परिग्रह अभिमानतः*हीनाः। =गमन, शरीर की उच्चता, परिग्रह और अहंकार करि घटते घटते हैं

देशाद्देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । शरीरं वैक्रियिकमुक्तम् । लोभकषायोदयाद्विषयेषु सङ्गः परिग्रहः । मानकषायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः । एतैर्गत्यादिभिरुपर्युपरि हीनाः ॥ देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावादुपर्युपरि गतिर्हीनाः ॥ शरीरं सौधर्मैशानयोर्देवानां सप्तारत्निप्रमाणम् ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः षडरत्निप्रमाणम् ॥ ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पञ्चारत्निप्रमाणम् ॥ शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु चतुररत्निप्रमाणम् ॥ आनतप्राणतयोरर्द्धचतुर्थारत्निप्रमाणम् ॥ आरणाच्युतयोस्त्र्यरत्निप्रमाणम् ॥ अधोग्रैवेयकेषु

वृत्त्यनुवादः—देशात्(५/१)-देश-अन्तर-प्राप्ति-हेतुः(१/१)	=एक क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रके प्राप्तिका कारण
गतिः(१/१)॥शरीरम्(१/१)॥वैक्रियकम्(१/१)॥	=सो गति अथवा गमन है ॥ (देवों का) शरीर वैक्रियक है
उक्तम्(१/१)॥लोभ-कषाय-उदयात्(५/१)	=जो (दूसरे अध्याय के ४६ वां सूत्रमें) कथित है । लोभ तथा कषायके उदयसे
विषयेषु(७/३)संगः(१/१)परिग्रहः(१/१)मान-कषायात्(५/१)	=विषयोंमें सम्बन्ध सो परिग्रह है । मान और कषायके उदयसे
उत्पन्नः(१/१)अहङ्कारः(१/१)अभिमानः(१/१)एतैः(३/३)गति-	=उत्पन्न हुआ गर्व सो अभिमान है । इन गति
आदिभिः(३/३)उपरि*उपरि*	=शरीर, परिग्रह, अभिमानकरि, ऊपर ऊपर अर्थात् स्वर्ग स्वर्गप्रति पटल२ प्रति
हीनाः(१/३)देशान्तर-विषय-क्रीडा-रति-	=घटते घटते हैं । अन्य क्षेत्र-विषय-क्रीड़न-प्रीति की
प्रकर्ष-अभावात्(५/१)उपरि*ऊपरि*गति-हीनाः(१/३)	=बहुलताके न होनेसे ऊपर ऊपर गमन हीन है ।
शरीरम्(१/१)॥सौधर्म-ऐशानयोः(७/२)देवानाम्(६/३)सप्त-अरत्नि-	=शरीर सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंका सात हाथ
प्रमाणम्(१/१)॥सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः(७/२)षड्-अरत्नि-प्रमाणम्(१/१)॥	=प्रमाण है । सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोंमें छह हाथ प्रमाण (शरीर) है ।
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठेषु(७/३)	=ब्रह्मलोक तथा ब्रह्मोत्तर, लान्तव तथा कापिष्ठ (स्वर्गों) में
पञ्च-अरत्नि-प्रमाणम्(१/१)॥शुक्र-महाशुक्र-शतार-	=पांच हस्त परिमाण (शरीर) है । शुक्र तथा महाशुक्र शतार तथा
सहस्रारेषु(७/३)चतुर्-अरत्नि-प्रमाणम्(१/१)॥आनत-प्राणतयोः(७/२)	=सहस्रार स्वर्गोंमें चार हस्त प्रमाण (शरीर) है । आनत प्राणत स्वर्गोंमें
अर्द्धचतुर्थ-अरत्नि प्रमाणम्(१/१)॥आरण-अच्युतयोः(७/२)	=साढ़े तीन हाथ परिमाण (शरीर) है । आरण-अच्युत स्वर्गोंमें
त्ररत्नि-प्रमाणम्(१/१)॥अधः*ग्रैवेयकेषु(७/३)	=तीन हाथ माप (शरीर) है । नीचली ग्रैवेयक (तिकड़ी) में

अर्द्धतृतीयारत्निप्रमाणम् ॥ मध्यग्रैवेयकेष्वरत्निद्वयप्रमाणम् ॥ उपरिमग्रैवेयकेषु अनुदिशविमानेषु च अध्यर्द्धारत्निप्रमाणम् ॥ अनुत्तरेष्वरत्निप्रमाणम्॥ परिग्रहश्च विमानपरिच्छदादिरुपर्युपरि हीनः॥ अभिमानश्चोपर्युपरि तनुकषायत्वाद्धीनः ॥ पुरस्तात्त्रिषु निकायेषु देवानां लेश्याविधिरुक्तः

अर्द्ध-तृतीया-[१]अरत्नि-प्रमाणम् ॥ मध्य-ग्रैवेयकेषु	=अढ़ाई हाथ परिमाण (शरीर) है। मध्य ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अरत्निद्वय-प्रमाणम् ॥ उपरिम-ग्रैवेयकेषु	=दो हाथ माप (शरीर) है। उपरिम ग्रैवेयक (तिकड़ी) में
अनुदिश-[२]विमानेषु च*अध्यर्द्ध-अरत्नि-प्रमाणम् ॥	=और अनुदिश (नव) विमानोंविषैं डेढ़ हस्त प्रमाण(शरीर) है।
अनुत्तरेषु	=अनुत्तर (विजय, वैजयन्त,जयन्त,अपराजित और सर्वार्थसिद्धि) विषैं
अरत्नि-प्रमाणम् ॥ परिग्रहः च*विमान-[३]परिच्छद-	=एक हाथ प्रमाण (शरीर) है। बहुरि परिग्रह विमान परिवार (=परिच्छद)
आदिः ऊपरि*ऊपरि*हीनः अभिमानः च उपरि*उपरि*	=आदिक ऊपर ऊपर घाटि घाटि हैं। बहुरि अभिमान वा अहंकार ऊपर ऊपर
तनु-कषायत्वात् हीनः पुरस्तात्*त्रिषु	=थोड़ी वा मंद कषाय होने से हीन है। पहिले तीन
निकायेषु देवानाम् लेश्या-विधिः उक्तः	=समुदायके देवोंके लेश्याका नियम कहा गया।

(१) अरत्नि—(पु०)(क)कुहनी(ख)मुट्ठी(ग)-पु०स्त्री-कोहनीसे लेकर कनिष्ठका पर्यंत हाथकी लंबाई(वैद्यकोशपृष्ठ ६२) (कनिष्ठा छिगुनीको कहते हैं)

अरत्नि—(पु०) "चौची अंगुलीको फैलाकर मुट्ठी बांधा हुआ हाथ" पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ४१ ॥ चौची अंगुली, कनिष्ठा वा छिगुनीको कहते हैं॥

रत्नि—(पु०स्त्री) बंधीहुई मुट्ठी वाले हाथ का माप (पद्मचन्द्रकोष पृष्ठ ३१६ ॥ अमरकोश, १६ वर्ग, श्लोक ८६ में बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ॥ उपर्युक्त लेखसे विदित है कि अरत्नि एक छगुनी (एक कनिष्ठा अंगुली) के बराबर रत्नि से बड़ी है और एक इन्च हाथ से न्यून है जैसाकि हलायुध ग्रन्थकारके निम्न लिखित श्लोक से प्रगट है

मध्यांगुली कुर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः। (मध्य-अंगुली-कुर्परयोः)	=बीचकी अंगुली और कुहनी(=कुर्पर)के बीचमें जो मापागया है वह हाथहै॥
बद्धमुष्टि करो रत्निररत्निः सकनिष्टकः ॥ (बद्धमुष्टिकरः रत्निः अरत्नि)	=बंधी हुई मुट्ठी सहित हाथ है सो रत्नि है और बंधीहुई मुट्ठी सहित हाथ मय फैली हुई छगुनी के अरत्नि है अर्थात् कोहनी से लेकर कनिष्ठका तक लंबाई को अरत्नि कहते हैं जो हाथ भरसे एक इंच हीन होती है॥

(२) परिच्छेद—(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३० में) विशेष रूप से इयत्ताकरण, सर्ग, अध्याय, सीमा, विचार अर्थों में है परन्तु परिच्छद का अर्थ (पृष्ठ २३०) में उपकरण, सामान, कपड़ा, गहना-परिवार के हैं यहांपर परिवार के अर्थ में है॥ परिच्छद के स्थानमें परिच्छेद अशुद्ध छपगया है। हस्त लिखित प्रति पृष्ठ ८६ पर 'परिग्रहश्च विमान परिच्छदादिः' ऐसा पाठ है॥ (३) 'विमान' शब्द पुल्लिंग और नपुंसक लिंग दोनोंमें आता है॥

इदानीं वैमानिकेषु लेश्याविधिप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

इदानीं=वैमानिकेषु=लेश्या-विधि-प्रतिपत्ति-अर्थम्=आह =अब वैमानिक देवोंमें लेश्याके नियमके प्राप्तिके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

(१)सूत्रम्— पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्याद्वि त्रिशेषेषु" ऐसा है श्वेताम्बर आम्नायकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका और हमारे यहांका पाठ एकहै। हमारे यहां इस सूत्रका अर्थ सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे ऐसे दोप्रकारसे किया है। एकसा पाठ होने पर भी अर्थ भेद है जिसको सविस्तार निम्नलेख में दिखलाते हैं॥

श्वेताम्बर आम्नायकी 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका'सिद्धसेनसूरि रचितकापाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु"

'पूर्वत्र बहुव्रीहिरुत्तरत्र द्वन्द्वः। यथासंख्यं चाभि सम्बन्धः कार्यः। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादि भाष्यम् पृष्ठ २५०=इस सूत्रके पहले पीतपद्मशुक्ललेश्या तक बहुव्रीहि समास है आगे 'द्वित्रिशेषेषु' तक द्वन्द्व समासहै। 'यथासंख्य' शब्द इस सूत्रमें लगाना चाहिये। उपर्युपरि वैमानिका इत्यादिक भाष्य वा व्याख्या है॥ स्मरण रहे कि सौधर्मैशान इत्यादि सूत्र २० में ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र, शतार ये चार स्वर्ग नहीं माने हैं इसलिये उनके यहां दोनों भाष्योंके अनुकूल बारहस्वर्गहैं "समानत्वेसत्यप्युपर्युपरिविशुद्धिप्रकर्षःसौधर्मैशानयोः कनकत्वचयसुराः" सानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलोकेषु पद्मदलत्विषलांतकादिषु धवलरुचः" पृष्ठ २५० =(लेश्याओंमें) समानता होनेपर भी(=सति अपि)ऊपर ऊपरके देवोंकी लेश्या अधिक विशुद्ध है। सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्याके धारक देव हैं। सानत्-कुमार-माहेन्द्र और ब्रह्मलोक (स्वर्गों)में पद्मलेश्या वाले देव हैं। लांतकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक शुक्लेश्या के प्रेमी देव हैं।

श्वेताम्बरस०"सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"तथा भेदप्रदर्शककोष्टकका पाठ "पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वि त्रिशेषेषु" ॥ २३ ॥

भाष्यम्—उपर्युपरि वैमानिकाः सौधर्मादिषु द्वयोस्त्रिषु शेषेषु च पीतपद्मशुक्ललेश्या, भवन्ति यथासंख्यम् ॥ द्वयोः पीतलेश्याः सौधर्मैशानयोः। त्रिषु पद्मलेश्याः सानत्कुमार माहेन्द्रब्रह्मलोकेषु। शेषेषु लान्तकादिष्वासर्वार्थसिद्धाच्छुक्ललेश्याः।उपर्युपरितु विशुद्धतरेत्युक्तम् =ऊपरऊपर वैमानिकसौधर्मादिक दो(स्वर्ग वा कल्प)में,तीनस्वर्गोंमें और (=च) बचेहुये (सातस्वर्ग-नवग्रैवेयक पंचोत्तर निमें पीत-पद्म-शुक्लेश्या क्रम से हैं॥

दो सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें पीतलेश्या है। तीन सानत्कुमार माहेन्द्र-ब्रह्मलोकमें पद्मलेश्याहै।बचेहुये लांतकआदिमें अर्थात्महाशुक्रसहस्रार आनत प्राणत आरण अच्युत, नवग्रैवेयक, पांच विजय वैजयंत जयंत अपराजित (=आदिषु)निमें,सर्वार्थसिद्धि, पर्यंतमें(आ-सर्वार्थसिद्धौ) शुक्लेश्या है (और समान लेश्याओं में भी) ऊपर ऊपर के देवों की लेश्या अधिक विशुद्ध है ऐसा कहचुके हैं (सभाष्य० पृष्ठ ११२)

श्वेताम्बर आम्नायके उक्त दोनों भाष्योंके अर्थ करने पर एक ही भाव वा अभिप्राय प्रगट होता है यद्यपि सूत्र पाठमें भेद है सम्भव है कि सभाष्य०के पाठमें 'द्वि त्रि' 'द्वि त्रि'के स्थानमें अशुद्ध छपगया हो वा अशुद्ध लिखगयाहो क्योंकि शब्दशः उक्त सूत्रका कोई अनुवाद समाधान योग्य नहीं होसका है

(उपर्युपरि वैमानिकाः) पीत-पद्म-शुक्ललेश्याःद्वि-त्रि-शेषेषु (यथासंख्यम्) (भवन्ति)

उपरि*उपरि*वैमानिकाः¦पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः¦	=ऊपर ऊपर रहनेवाले वैमानिक देव पीत पद्म और शुक्ललेश्याओं के धारक
यथासंख्यम्*द्वि-	=क्रमसे (सामान्यपनेसे) दो (युगल सौधर्मैशान और सानत्कुमार माहेन्द्र) में
त्रि-	=तथा तीन (युगल ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर और लांतव-कापिष्ठ और शुक्र महाशुक्र) में
शेषेषु¦	=बचेहुये (शतार-सहस्रार और आनत-प्राणत और आरण अच्युत तथा नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों और पांच अनुत्तर)निमें हैं परन्तु विशेष रीति से

केवल शब्दशः यह अनुवाद होसकता है कि पीत पद्म और शुक्ल लेश्यायें ही प्रकार प्रकार (भिन्न भिन्न-स्वर्गों) में होती हैं यह बुद्धिप्रद नहीं है न किसी तात्पर्य को स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है। पंडित ठाकुर प्रसादजी ने "सौधर्मादि कल्पोंमें प्रथक् दो कल्पोंमें तो पीत लेश्या है, और उसके आगे तीन कल्पोंके देवोंमें पद्मलेश्या है, और आगे शेष देवोंमें शुक्ललेश्या है" अर्थ किया है सो 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका'के अनुकूल है इस सूत्रके पाठानुसार नहीं है॥ जो समझमें आया है वही लिखा है विशेष रूपसे पाठकगण अन्वेषण करलें॥

दोनों समाजोंमें सूत्रका अर्थ और उपर्युक्त टिप्पणीसे और हमारे यहां के सूत्र अर्थ से (जो विशेषरूप से किया है) इस प्रकार प्रगट होता है कि

() श्वेताम्बर आम्नायमें सौधर्म-ऐशान स्वर्गोंमें पीत लेश्या है वही पीतलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल सौधर्म-ऐशान कल्पोंमें है

() श्वेताम्बरीय भाष्योंमें सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पोंमें पद्मलेश्या है। पीतलेश्या और पद्मलेश्या दिगम्बर समाजके अनुसार सानत्कुमार माहेन्द्रमें हैं

() श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ब्रह्मलोक स्वर्गमें पद्मलेश्या है वही पद्मलेश्या दिगम्बर आचार्यों के अनुकूल ब्रह्मलोक स्वर्ग या कल्पमें है

() श्वेताम्बर आचार्योंमें लान्तक कल्पमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्मलेश्या दिगम्बर आम्नायके अनुकूल लान्तव (=लान्तक) स्वर्गमें है

() श्वेताम्बर समाजमें महाशुक्र-सहस्रार कल्पोंमें शुक्ललेश्या है परन्तु पद्म-शुक्ललेश्यायें दिगम्बर सिद्धान्तके अनुसार महाशुक्र-सहस्रारस्वर्गों में हैं

() श्वेताम्बर भाष्योंमें आनत-प्राणत-आरण-अच्युत-नवग्रैवेयक-पांच अनुत्तरोंमें शुक्ललेश्या है वही शुक्ललेश्या दिगम्बरआचार्योंमें नवअनुदिश सहितमें है ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ शुक्र-शतार स्वर्गोंको श्वेताम्बरोंमे नहीं माना है इससे मिलान नहीं होसकता है हमारे यहां ब्रह्मोत्तर कापिष्ठमें पद्म, शुक्र-शतारमें पद्मशुक्ल लेश्यायें मानी हैं

(१) 'वैमानिकाः' सोलहवांसूत्रसे और(२)उपर्युपरि अठारहवां सूत्र से अनुवर्तते हैं(३)'यथासंख्यम्' शब्दका अध्याहार सूत्रार्थ स्पष्टकेलिये कियागया है

(४) तेषाम्¦इव*लेश्याः¦॥येषां¦।	=तिन पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) के
ते¦।पीत-पद्म-शुक्ललेश्याः¦।	=ते पीत पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं।

पीता च पद्मा च शुक्ला च ताः पीतपद्मशुक्लाः। पीतपद्मशुक्ला लेश्या येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥ कथं ह्रस्वत्वम् ?।

सौधर्म ऐशानमें पीतलेश्यावाले देव और सानत्कुमार माहेन्द्रमें पीत पद्म दोनों लेश्यावाले देव और ब्रह्मलोक ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ठमें पद्मलेश्यावाले देव, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रारमें पद्म शुक्ल दोनोंलेश्यावाले देव आनत प्राणत और आरण अच्युत और नव ग्रैवेयकोंमें शुक्ललेश्यावाले देव और नव अनुदिशमें और पांच अनुत्तरोंमें देव परम शुक्ल लेश्या वाले हैं॥

वृत्त्यनुवादः-पीता[१/१]।।च*पद्मा[१/१]।।च*शुक्ला[१/१]।।च* =और पीता और पद्मा तथा शुक्ला हैं

ताः[१/३]।।पीत-पद्म-शुक्लाः[१/३]।।पीत-पद्म-शुक्लाः[१/३]।।लेश्याः[१/३]।।येषाम्[६/३]।। =वे पीतपद्मशुक्लाः (द्वंद्व समास रूपमें) हैं। पीत पद्म और शुक्ल हैं लेश्यायें जिनके

ते[१/३]।पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः[१/३]। =वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं (यह वाक्य द्वन्द्वगर्भित बहुव्रीहि समासमें है) अर्थात् 'पीतपद्मशुक्लाः[१/३]।' यह वाक्य स्त्रीलिंग द्वन्द्व समासमें है और 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः[१/३]।' यह वाक्य पुरुषलिंग द्वंद्व समास गर्भित बहुव्रीहिसमासमें है। सारांश पीत, पद्म, शुक्ललेश्या जिनके हैं वे पीत-पद्म-शुक्ल लेश्या सहित देव हैं॥

कथं*ह्रस्वत्वम्[१/१]।। ? =(प्रश्न) ह्रस्वपना वा लघुपना (पीता, पद्मा और शुक्ला शब्दों के) कैसे हुआ ? इस प्रश्न का दोहरा तात्पर्य है प्रथम यह कि पीता-पद्मा-शुक्ला तीनों शब्दोंका द्वंद्वसमास किया है तो 'पीतापद्माशुक्लाः[१/३]।' ऐसा रूप होना चाहिये क्योंकि द्वन्द्वसमासमें जो शब्द समुच्चय किये जाते हैं वे ह्रस्व हों तो ह्रस्व बने रहते हैं और दीर्घ हों तो दीर्घ बने रहते हैं द्वंद्वसमासमें पूर्व पदका कभी ह्रस्व नहीं होता है। जैसे हरिश्च हरश्च=हरिहरौ(विष्णु और महादेव)ईशश्च कृष्णश्च ईशकृष्णौ(शिव औरकृष्ण) माता च पितरा च=माता पितरौ (मा और बाप) इसलिये 'पीतापद्माशुक्लाः[१/३]।' रूप होना चाहिये। दूसरा तात्पर्य है कि यदि हम 'पीतापद्माशुक्लाः[१/३]।' द्वंद्व समासमें 'लेश्या' शब्द मिलाकर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास करदें तो 'पीतापद्माशुक्लालेश्याः[१/३]' ऐसा रूप होना चाहिये 'शुक्ला' शब्दका 'शुक्ल' ह्रस्व कैसे हुआ॥ (उत्तर)

 औत्तरपदिकम् ।

औत्तरपदिकम् =अग्रिम पद (दीर्घ) रहनेसे पूर्व पदको ह्रस्व हुआ है अर्थात् 'पीतापद्मा' द्वंद्वसमासमें 'पद्मा' अग्रिम पद स्त्रीलिंग दीर्घ होनेसे 'पीता' का तकार ह्रस्व होकर 'पीतपद्मा' हुआ परचात् 'पीतपद्माशुक्लाः॥' वाक्य में 'शुक्ला' शब्द स्त्रीलिंग दीर्घ पद होने से 'पद्मा' का ह्रस्व हुआ, अतः 'पीतपद्मशुक्लाः' ऐसा वाक्य द्वन्द्वसमास स्त्रीलिंग प्रथमा विभक्ति बहुवचनमें बनगया। स्मरण रहे कि यहांपर 'पीतापद्मा' शब्दोंको पुंवद्भाव (=पुरुषलिंगी शब्दकेसदृश तात्पर्यको प्रगट करनेवाला) नहीं हुआ, केवल पीता पद्मा ह्रस्व होगये हैं ॥ 'पीतपद्मशुक्लाः॥' वाक्य का अर्थ 'पीत और पद्म और शुक्ल' है ऐसा है। ऐसा रूप बनजानेके लिये कोई व्याकरणका नियम और वार्तिक इस विषयपर नहीं है। श्री पतञ्जलिमुनिने जिनका अस्तित्व खृष्टीयशतकसे लगभग १५० वर्ष पहिले निर्णय कियागया है और जिनने पाणिनिमुनिकृता अष्टाध्यायी पर लगभग एकलाख श्लोकका महाभाष्य रचा है उनने अध्याय १ पाद १ सूत्र ७० 'तपरस्तत्कालस्य' पर 'द्रुतायां तपर करणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' यह वार्तिक उक्तमहाभाष्यमें दी है इसमें 'मध्यमविलम्बितयोः' ='मध्यमा च विलम्बिता च मध्यमविलम्बित तयोः' का प्रयोग किया है इस द्वंद्वसमास युक्त पदमें 'विलम्बिता' उत्तर पद दीर्घ रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है। जैसे इस द्वंद्वसमास युक्तपद में 'विलंबिता' उत्तर दीर्घ पद रहनेसे 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्वकर निर्देश किया है उसी प्रकार यहांपर 'पद्मा' अग्रिम पद रहते 'पीता' को ह्रस्व किया और 'शुक्ला' को उत्तरपद रहते 'पद्मा' को ह्रस्व किया। यह एक बात प्रसिद्ध है कि यदि किसी रूपकी सिद्धिके लिये व्याकरणमें किसी सूत्र, वार्तिक वा अन्य नियमका अभाव हो और किसी शब्दको किसी रूपमें (चाहें वह व्याकरणके विरुद्धही क्योंन हो) पाणिनि,कात्यायन,पतञ्जलि योगी और श्रीकुन्दकुन्द, उमास्वामी, भद्रबाहु स्वामी इत्यादि आचार्य प्रयोग करदें वह शुद्ध मानलिया जाताहै और उसको आर्ष प्रयोग भी कहतेहैं यही दशा हमारे 'पीतापद्मा'वाक्यकी है। उक्त वार्तिकके अनुवादमें हम इसकी पूरी व्याख्या देंगे ॥'ह्रस्व'के लिये उत्तरपद दीर्घ और स्त्रीलिंगमें होना चाहिये ॥

दूसरी शंका (कि 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यमें शुक्ल शब्दका ह्रस्वहोकर 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' वाक्य कैसे होगया) का उत्तर पीत और पद्म और शुक्ल हैं लेश्या जिनके वे पीत और पद्म और शुक्ल लेश्यावाले (देव) हैं। ऐसा अर्थ 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥' इस द्वंद्व गर्भित बहुव्रीहि समास वाले वाक्य का हुआ ॥ 'शुक्ला' शब्दका

अष्टाध्यायी अध्याय छह पाद तीन सूत्र (१) चौंतीसवें अथवा जैनेन्द्र व्याकरण अध्याय चार पाद तीन सूत्र एकसौ छयालीसवें से (देखो निम्नलिखित टिप्पणी) पुंवद्भाव होकर (अर्थात् शुक्ला के आकारका अकार होकर पुरुष लिंगी शब्दके सदृश तात्पर्यको प्रगट करते हुये) 'शुक्ल' शब्द होगया अतः 'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' ऐसा वाक्य होगया भावार्थ 'पीतपद्मशुक्लाः॥लेश्याः॥येषाम्॥(=पीतपद्मशुक्ललेश्याः॥) यहांपर शुक्लाशब्द स्त्रीलिंग है उसके समान आकृति (=रूपवाला) और समान भावका (=आशय) द्योतक पुल्लिंग शब्द 'शुक्ल' है। इस स्त्रीलिंग शब्द 'शुक्ला'के अन्तमें'ऊङ्' प्रत्यय नहीं है वरन अंतमें 'आ' प्रत्यय है इस (शुक्ला शब्द)के पश्चात् वा उत्तरमें 'लेश्या' स्त्रीलिंग शब्द है यह'लेश्या' शब्द शुक्ला शब्दके साथ समानाधिकरणमें है और यह लेश्या शब्द क्रमिक संख्या (जैसे पहला दूसरा-तीसरा-चौथा इत्यादि) नहीं है और न प्रियादि गणके शब्दोंमें से एक शब्द है इसलिये यह शब्द 'शुक्ला'जो स्त्रीलिंग है अपने अनुरूप वाले 'शुक्ल' पुल्लिंग शब्दमें पलट जाता है इसलिये 'पीतपद्मशुक्लालेश्याः' वाक्यके स्थानमें उक्त सूत्र द्वारा 'पीतपद्मशुक्ल-लेश्याः' ऐसा वाक्य बनगया। इस 'शुक्ला' शब्दका उसीप्रकार से पुंवद्भाव हुआ है जिस प्रकारसे 'दर्शनीया' शब्दका पुंवद्भाव होकर 'दर्शनीय' शब्द दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य) वाक्यमें बन जाता है॥ अर्थात् दर्शनीयाभार्या यस्य स दर्शनीयभार्यः हुआ।

पूज्यपाद स्वामीने 'द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानम्' पतञ्जलि वार्तिकको प्रमाणरूपमें केवल इसीलिये दियाहै कि जैसे पतंजलिने मध्यमाका मध्यम विलंबिता अगलेपद होतेसंते करदिया उसीप्रकार उमास्वामीने 'पीता पद्मा' को शुक्ला परे होते संते क्रमसे पीत पद्म करदिया॥ उनको इस वार्तिक के वस्तुतः अर्थसे कुछ प्रयोजन नहीं और यथार्थ अर्थ इस वार्तिकका सूत्रके अर्थ वा भावसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखता वार्तिकका अर्थ पृष्ठ६८–७४ तकहै।

---

(१)स्त्रियाः पुंवद्भाषित पुंस्कादनूङ्, समानाधिकरणे स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु॥६।३।३४॥ स्त्र्युक्तपुंस्कादनूरेकार्थेऽङ्ट् प्रियादौ स्त्रियां पुंवत्॥४।३।१४६

=स्त्रियाः॥ पुंवत्*भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥समानाधिकरणे॥॥स्त्रियाम्॥अपूरणीप्रियादिषु॥ ॥(अपूरणी–अप्रियादिषु)

स्त्रियाः॥पुंवत्*समानाधिकरणे॥॥ =स्त्रीलिंग शब्दका पुंवाचक समान रूप हो जब (समास में) समानाधिकरण में अथवा एकान्वय में

स्त्रियाम्॥अपूरणी- =ऐसा स्त्रीलिंग(शब्द) उत्तरपद हो जो क्रमिक संख्या(प्रथम दूसरा-तीसरा-चौथा-पांचवा इत्यादि)न हो और

प्रियादिषु॥ =न प्रियादिगण के शब्दोंमेंसे कोई शब्द हो। (और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्दका)

भाषितपुंस्कात्॥अनूङ्॥ =पूर्वपद भाषितपुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि जिसके अन्तमें (स्त्रीलिंग) ऊङ् प्रत्यय न हो। जैसे दर्शनीय भार्यः (=दर्शनीया भार्या यस्य)। यहां 'दर्शनीया' स्त्रीलिंग शब्द है जिसका अनुरूप पुल्लिंग शब्द उसी आकृति और उसी अर्थवाला दर्शनीय शब्द है। इस 'दर्शनीया' शब्द के अन्तमें ऊङ् प्रत्यय नहीं है वरन 'आ' है इस 'दर्शनीया' शब्द के पश्चात् स्त्रीलिंगी शब्द भार्या है जो दर्शनीया शब्द के साथ एकान्वयमें है॥

यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे

यथा॥आहु[1]तपरकरणे[१]॥	=जैसा कि वे कहते हैं कि 'तपर' करनेपर अर्थात् तकार जिससे परे करना हो, जिसके पश्चात् तकार जोड़ना हो वा लगाना हो अथवा तकार से जिसको परे करना हो, तकार से जिसको पश्चात् लाना हो तो (ऐसे प्रयोग में)
द्रुतायाम्[२]॥	=द्रुता वृत्तिमें अर्थात् शीघ्र उच्चारण की चाल, ढब, क्रिया अथवा रीतिमें; शब्द के जल्दी बोलनेमें

वा सामानाधिकरणमें है और यह भार्या शब्द क्रमिक संख्या वाला नहीं है और न प्रियादिगणके शब्दोंमेंसे कोई शब्द है अत: 'दर्शनीया' शब्द अपने अनुरूपक पुलिंगशब्द 'दर्शनीय'में पलट जाता है ॥ ऐसेही दीर्घजङ्घः =दीर्घा जङ्घा यस्य दीर्घजङ्घः जिसकी जांघ बड़ी है और रूपवती भार्या यस्य = रूपवद्भार्यः॥

स्त्री[१]॥पुंवत्॥एकार्थे[१]।	=(जैनेन्द्र व्याकरणके अध्याय ४ पाद ३ सूत्र १४६ का अनुवाद) स्त्रीलिंग शब्द पुलिंग सदृश हो जब (समासमें) एक अर्थमें
स्त्रियाम्[१]॥यअङट्प्रियादौ[१]।	=ऐसा स्त्रीलिंग (शब्द) उत्तर पद हो जो संख्या न हो (=अङट्-अष्टाध्यायी ६-१-२३) न प्रियादि गण में (से) हो
उक्त-पुंस्कात्[१]।	=(और इस उत्तर पदवाले स्त्रीलिंग शब्द का) पूर्व पद भाषित पुंस्क स्त्रीलिंग ऐसा हो कि
अन्-ऊः[१]	=जिसके अन्त में ऊ प्रत्यय न (=अन्) हो ॥ ऊङ् प्रत्ययके ङ् का इत् संज्ञक होनेसे लोप होजाता है ऊ शेष रहजाता है प्रियादि शब्द ये हैं (१) प्रिया (२) मनोज्ञा (३) कल्याणी (४) सुभगा (५) दुर्भगा (६] भक्ति [७] सचिवा(८)स्वा (स्वसा) (९)कान्ता (१०) क्षान्ता (११) समा (१२) चपला (१३) दुहिता (१४)वामना (वामा) (१५)तनया [१६] अम्बा॥इन शब्दोंमें 'दृढ़भक्तिः' समास नियम विरुद्ध है ॥

(१) आहु यह शब्द हस्त लिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ ४४ पर नहीं है न राजवार्तिकमें है जिसका लेख लगभग वही है जो सर्वार्थसिद्धिमें है हस्तलिखित प्रति में 'यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिना इति" ॥ ऐसा पाठ है अर्थात् 'आहुः' शब्द नहीं है और 'द्रुतमध्यमविलंबिना इति यह वाक्य अधिक है। हमने यह पाठ नहीं लियाहै क्योंकि श्रीपतन्जलिकी वार्तिक केवल 'उपसंख्यानम्' तक है ॥

[२) द्रु—यह शब्द सकर्मक अकर्मक परस्मैपद भ्वादि प्रथम गणका धातु है यह () बहना, दौड़ना, उड़ना, दौड़पड़ना, आक्रमणकरना ()गलजाना पतला होजाना इत्यादि अर्थोंमें आता है। जब 'द्रु' (पु० । न०) में संज्ञा होता है तो काठ, काठ का बनाहुआ लोखर, इन दो अर्थों में आता है जब केवल पुलिंगमें आता है तो वृक्ष उसकी डाली इन दो अर्थों में आता है ॥ 'द्रु' में त जोड़दें तो 'द्रुत' त्रिलिंगी होजाता है और ता जोड़ने पर द्रुता स्त्रीलिंग होजाता है जल्दी, पिघला हुआ, भागा हुआ अर्थोंमें प्रयोग कियाजाताहै। द्रुत पुलिंगमें वृक्ष,बिल्ली,बीछूके अर्थोंमें आता है ॥द्रुतम् अव्यय है॥ जल्दी, शीघ्र अर्थोंमें आता है ॥ द्रुता यहांपर स्त्रीलिंग एक वचन सप्तमी विभक्तिमें "द्रुतायाम्" ऐसे रूपमें शीघ्रता के अर्थमें आया है ॥ श्लोकवार्तिक हस्त लिखित में "द्रुतायाम्" सप्तमी एक वचन स्त्रीलिंगमें है परन्तु मुद्रित श्लोक वार्तिक पृष्ठ ३०५ पर द्रुतायात् पंचमी विभक्ति एक वचन नपुंसक लिंग 'तपरकरणात्' शब्द से प्रथम आया है ॥ द्रुतायात् = यहां पर 'शीघ्रतासे' इस अर्थमें आया है ॥

मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥

मध्यम-	=मध्यमा वृत्तिका अर्थात् मध्यमकालिक उच्चारणका और
विलम्बितयोः॥उपसंख्यानम्॥॥इति॥	=विलम्बिता वृत्ति अर्थात् विलम्ब वा देरीकालिक उच्चारणका समावेश वा अन्तर्गतहोना चाहिये (इस वार्तिक सम्बन्धीय, इतिहास, व्याख्या, श्री पतञ्जलिका भाष्य अनुवाद सहित नीचे टिप्पणी में देते हैं)

खृस्त शतकसे लगभग ६५० वर्ष पूर्व श्री पाणिनिजी ने जो दाक्षीके पुत्र शालातुरीय नामक ग्राममें उत्पन्न हुये थे अष्टाध्यायीरूप व्याकरण जिसमें ३९७५ सूत्र हैं बनाया तत्पश्चात् खृष्टीय शतकसे ३५० वर्ष पहिले कात्यायन मुनिने पाणिनि मुनिके सूत्रोंमें जो त्रुटि थी उसको दूर करनेके लिये लगभग एक सहस्र अस्सी वार्तिक रचे। तत्पश्चात् पतंजलि मुनिने खृष्टीय शतकसे १५०वर्ष पूर्व अष्टाध्यायीके सूत्रों पर महाभाष्य रचा जिसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं इससे बड़ा कोई भाष्य वा वृत्ति उक्त व्याकरण पर नहीं है। खृष्टीय शतक ६५५में भर्तृरचित भागवृत्ति इसी अष्टाध्यायी पर रचीगई। इसके कुछ समय पश्चात् लगभग ६५० खृस्ताब्दीमें वामन जी और जयादित्यजीने 'काशिकावृत्ति' लगभग दशसहस्र श्लोक के रची। इसी अष्टाध्यायी की इसी काशिका वृत्तिके ऊपर जिनेन्द्रबुद्धि (द्वितीय पूज्यपाद स्वामी) ने खृष्टीय ७०० से ७५० तक 'काशिकाविवर्ण पञ्चिका' इस काशिका पर बनाई जिसकी श्लोक संख्या ३०००० सहस्र से अधिक है। इसका सम्पादन श्रीमान् शशीशचन्द्र चक्रवर्तिने कियाहै और वारिन्द्रअन्वेषण सभा,राजशाही प्रान्त से प्रकाशित हुई है। स्मरण रहै कि प्रथम पूज्यपाद स्वामी सर्वार्थसिद्धि वृत्ति के कर्ता ने विक्रम सम्वत् ५४० के लगभग जैनेन्द्र व्याकरण रचा॥ इसके पश्चात् अष्टाध्यायी पर भाषावृत्तिअर्थात् वैदिक सूत्रोंको छोड़कर संस्कृतमें ही लघुभाष्य रचा इसके रचयिता पुरुषोत्तमदेव हुये। पश्चात् भट्टोजी दीक्षितने खृष्टीय बारहवी शतकमें 'सिद्धान्त कौमदी' रची॥ इसमें पाणिनि मुनिके समस्त सूत्र हैं परन्तु सूत्रोंका क्रम भट्टोजी दीक्षितने परिवर्तन करदियाहै॥ इसकेपीछे मध्यकौमुदी रचीगई, फिर श्रीयुत् वरदराजने लघुकौमदी रची जिसमें अष्टाध्यायीके १२००सूत्रसे अधिकहैं॥

इस महाभाष्यके रचनेके सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक दन्त कथा इस प्रकार है कि एक बार पतंजलिकी माता सूर्य्यको अर्घ देरही थीं कि अर्घ देते समय लोटेमेंसे एक सांपका बच्चा भूमिपर गिरपड़ा श्रीमतीकी जिह्वासे घबराहटमें 'को भवान्' (=आप कौन हैं) के स्थान में 'कोर्भवान्' निकलगया, तब ('सर्पोऽहम्' के स्थानमें) उत्तर मिला कि 'सर्पोऽहम्' (=मैं सांप हूं)। तब माताजीने सावधानीमें आकर प्रश्न किया कि 'रेफकुतः गतः' अर्थात् सांप के बच्चे से पूछा कि तुमने अशुद्ध उच्चारण 'सर्पोऽहम्' के स्थानमे 'सपोऽहम्' क्यों किया फिर उत्तर मिलाकि 'त्वयाऽपहृतः' अर्थात् रेफ तुमने हरलिया भावार्थ 'को भवान्' के स्थानमें तुम 'कोर्भवान्' वाक्यका उच्चारण करगईं फिर मैंने 'सपोऽहम्' कहदिया। 'कोर्भवान्' का रेफ यदि 'सपोऽहम्' वाक्य में मिलादियाजावे तो दोनों वाक्य 'को भवान्' (=आप कौन हैं) और 'सर्पोऽहम्' (मैं सांप हूं) ठीक होजावेंगे। पश्चात् ऐसा

प्रसिद्ध है कि विक्रिया ऋद्धिद्वारा सांपके बच्चेमें ऋषिका रूप धारण करके इस 'महाभाष्य' को लिखा और महादेवजी इसको एक कोठरीमें से बोलते गये। पतंजलि ऋषि के लगभग एक सहस्र शिष्य थे। इस भाष्यके लेख को रोककर उक्त ऋषि कहीं आवश्यकीय कार्यको गये और शिष्योंको उपदेश करगये कि कोठरीका आवरणपट न उठाना, परन्तु आपको अनुभव होगाकि जिस कामको लड़कोंसे कहो कि मत करना, बस उसको अवश्यही करें आवरणपट खोलदिया तो ऐसा कहाजाता है कि उष्णताके कारण समस्त शिष्य भस्म होगये केवल दो चार शिष्य जो कार्यवश बाहर चलेगये थे जीवित रहे। अष्टाध्यायीके आठ भागहैं यह महाभाष्य भी आठ खंडोंमें काशी, बंबई इत्यादि देशोंमें मुद्रित हुआहै। कहतेहैंकि कुछेक भाग इस भाष्यको जहांकहीं प्रकरण ठीकठीक नहीं मिलता है नष्ट होगया है अर्थात् उपहासमें प्रसिद्ध है कि ऋषिके अनुपस्थितिमें बकरी कुछ पत्र महाभाष्यके चर गई॥

इस बातके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि पूज्यपादस्वामीने जैनेन्द्र व्याकरण रचा और बड़े प्रकर्ष वैयाकरण थे उन्होंने कहीं पर भी इस समस्त सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें अन्य मतके किसी शास्त्रका प्रमाण नहीं दिया है जैनमतके ही शास्त्रोंका प्रमाण दिया है। इस वार्तिकका प्रमाण देनेके दो कारण सम्भव हैं प्रथम यह कि प्रश्न करनेवाला कोई अन्य मतका विद्वान् हो और वह जैनमतके शास्त्रोंके प्रमाणसे इस वैयाकरणीय प्रश्नके उत्तरसे सन्तुष्ट न हुआ हो तब उक्त स्वामीजीने उसको इस महाभाष्यकी पंक्तिसे संतुष्ट किया हो जो अन्यमतमें सबसे प्राचीन, महत्वका और प्रभाव शाली महाभाष्य है। दूसरे यहकि उनको श्री उमास्वामीसे पूर्वका कोई प्राचीन प्रमाण जैनमतके ग्रन्थोंसे प्राप्त न होसका हो और उमास्वामी जिन्होंने सम्वत् १०१ में तत्त्वार्थसूत्र की रचना कीथी उनके पश्चात् के ग्रंथों द्वारा इस व्याकरणके प्रश्नका समाधान नहीं होसका है। इसीकारण से हमने उक्त इतिहास दिया है कि कोई अन्यमतका विद्वज्जन 'पीत पद्म शुक्ललेश्याः' वाक्यकी रचना पर संदेह और तर्क न कर सके।

प्रथम इसके कि हम श्री पतंजलिकी वार्तिक और उसकी संस्कृत व्याख्याका शब्दशः अनुवाद और भावार्थ लिखें 'अ' स्वरके अठारहरूप और अष्टाध्यायीके 'अणुदित्सवर्णस्य चा प्रत्ययः' सूत्र ६९॥ 'तपरस्तत्कालस्य' ॥ सूत्र७०। और विप्रतिषेधे परं कार्यम्। अध्यायप्रथम पादचौथा सूत्र दूसरे को समझादेवें कि उक्त वार्तिकका अनुवाद भले प्रकार और सरलता से पाठकोंकी समझ में आजावे।

'अ' स्वर के अठारह रूप हैं। उदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानोंके ऊपरके भागसे होता है। अनुदात्त 'अ' जिसका उच्चारण तालु आदि स्थानों के निचले भाग से होता है और स्वरित 'अ' जिसके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त दोनों वर्णधर्म समान हों अर्थात् दोनों उदात्त अनुदात्त वर्णधर्म मिले हों। इन प्रत्येक तीन के अनुनासिक उच्चारण और निरनुनासिक उच्चारण से दोदो भेद होकर छह भेद 'अ' स्वर के हुये, पश्चात् प्रत्येक छह भेद ह्रस्व (एक मात्रिक उच्चारण) दीर्घ (दो मात्रिक उच्चारण) प्लुत (तीन मात्रिक उच्चारण)से अठारह भेद इस प्रकार होजातेहैं अ-अ॒-अ॑ अँ-अँ॒-अँ॑ । आ-आ॒-आ॑ आँ-आँ॒-आँ॑ । अ३-अ॒३-अ॑३ अँ३-अँ॒३-अँ॑३ । इनमें उदात्त पर कोई चिन्ह नहीं है, अनुदात्त 'अ' के नीचे ऐसी-लकीर है और स्वरित 'अ' के ऊपर ऐसी। खड़ी लकीर है॥

प्रथम 'उदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ है। दूसरा 'अनुदात्त ह्रस्व निरनुनासिक' अ॒ है। तीसरा 'स्वरित ह्रस्व निरनुनासिक' अ॑ है। (बिना नाक बोलो)
चौथा 'उदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ है। पांचवां 'अनुदात्त ह्रस्व अनुनासिक' अँ॒ है। छठवां 'स्वरित ह्रस्व अनुनासिक' अँ॑ है। (नाकसे बोलो)
सातवां 'उदात्तदीर्घ निरनुनासिक' आ है। आठवां 'अनुदात्त दीर्घनिरनुनासिक' आ॒ है। नववां 'स्वरित दीर्घ निरनुनासिक आ॑' है। (बिना नाक बोलो)
दशवां 'उदात्तदीर्घ अनुनासिक' आँ है। ग्यारहवां 'अनुदात्त दीर्घअनुनासिक' आँ॒ है। बारहवां स्वरित दीर्घ अनुनासिक आँ॑ है। (नासिकासे बोलो)
तेरहवां 'उदात्त प्लुत निरनुनासिक' अ३ है। चौदहवां 'अनुदात्त प्लुत निरनुनासिक' अ॒३ है। पंद्रहवां 'स्वरित प्लुत निरनुनासिक' अ॑ ३ है। (बिनानाक बोलो)
सोलहवां 'उदात्त प्लुतअनुनासिक' अँ३ है। सत्रहवां 'अनुदात्त प्लुत अनुनासिक' अँ॒३। अठारहवां 'स्वरित प्लुत अनुनासिक' अँ॑ ३ है। (नाकसे बोलो)

() अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः = अण् १।, उदित् १।, सवर्णस्य ६।१, च अव्ययपदम्, अप्रत्ययः १।१ ॥ अष्टाध्यायी प्रथम अध्याय प्रथमपादका ६९ वां सूत्र

अण् १। = प्रत्याहार अण् के अक्षर अर्थात् अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, औ, ह, य, व, र, ल, जिनमें अ, इ, उ प्रत्येक के अठारह 'ऋ' के अठारह और बारह 'ऌ' के रूप मिलने से ऋकार के तीस रूप, ऐसे ही ऌ के बारह रूप और ऋ से अठारह रूप मिलने से ऐसे ऌ कारके भी तीस रूपहैं (क्योंकि ऋ, और ऌ की आपस में सवर्ण संज्ञा मानी गई है) ए, ओ, ऐ, औ, में से प्रत्येक के बारह बारह रूप, हैं। अनुनासिक औरअननुनासिक भेदों से य, व, ल प्रत्येकके दोदो रूपहैं अर्थात् साधारण य, व, ल में अनुनासिक यँ वँ लँ का भी समावेश होजाता है। र, ह यद्यपि 'अण्' प्रत्याहारमें अन्तर्गत हैं तौभी अपने एक एक रूपको ही प्रगट करते हैं क्योंकि उनका कोई सवर्णीय अक्षर नहीं है

उदित् १। = कु चु टु तु पु ये उदित् हैं अर्थात् कु = कवर्ग (= क, ख, ग, घ, ङ) चु = चवर्ग (च, छ, ज, झ, ञ) टु = टवर्ग (= ट, ठ, ड, ढ, ण), तु = तवर्ग (= त, थ, द, ध, न) पु = पवर्ग (= प, फ, ब, भ, म,) [समावेशहैं]

स्वम् १ रूपम् १ ॥ च सवर्णस्य ६ ॥ रूपम् १ ॥ = अपनेअर्थव रूपको तथासवर्णके अर्थवरूपको ग्रहणकरतेहैं (जैसे 'अमें अठारा प्रकारके 'अ' और 'कु' मेंक-ख-ग-घ-ङ

इस सूत्रमें 'स्वंरूपम्' वाक्यकी अनुवृत्ति 'स्वं रूपं शब्दस्या शब्द संज्ञा' इस ६८ वां सूत्रसे आती है। स्वम्का अर्थ अपनाहीहै अर्थात् अर्थको प्रगटकरताहै और 'रूपम्' शब्दके व्यक्तिगतआकारको प्रगट करताहै ॥ स्वम्रूपम्का अतः यह भाव है कि किसी शब्दके अर्थ और उसके आकार का द्योतक हो। जैसे कोई नियम जो अग्नि पर लागू होता है उस शब्द पर जो अ, ग्, न्, इ से बना हो लागू होगा नकि अग्नि शब्द के समानार्थक वाची शब्दों पर जैसे कि पावकः, ज्वलनः इत्यादि ॥ जैसे सूत्र आद्गुणः (६-१-८७] का अर्थ है कि 'जब एक स्वर अ के पश्चात् आवे तो दोनों स्वरोंके स्थानमें गुण संज्ञाका आदेश हो, यहांपर सूत्र में केवल ह्रस्व अ का निर्देश है परन्तु इस सूत्रसे दीर्घ 'आ' भी आजाता है जैसे केवल नर + ईशः = नरेश नहीं है परन्तु महा + ईश भी महेश है ॥ अन्य उदाहरणों के लियेदेखो ७-४-३२' ५-४-५०, ६-४-१४८ सूत्र ॥

अप्रत्ययः १। = यदि उक्त सर्व अक्षर प्रत्ययकी भांति वा प्रत्ययकी रीतिपर प्रयोगमें न लाये जायेंतो (अपने रूप और सवर्ण के रूपों

के ग्राही होतेहैं) जैसे 'सनाशंसभिक्ष उः । ३ । २ । १६८ उन धातुओंके (जिनके अन्तमें सन् प्रत्ययहो) और 'आशंस्' (=चाहना) और भिक्ष् (=मांगना) धातुओंके पश्चात् तच्छीलवाचक हो कर्ताओंके अर्थमें 'उ' प्रत्यहो जैसे भिक्ष् मांगनासे भिक्षु: भीख मांगनेवाला बना । यहांपर केवलहस्व उका ग्रहणहै, दीर्घ ऊ और प्लुत'उ३'का ग्रहणनहीं हुआ ॥

() तपरस्तत्कालस्य ॥ ७० ॥ =त-परः१। तत्कालस्य६। (स्वम्१रूपम्१)=तकार जिससे परे हो या तकारसे जो परे हो वह उतनेको संबन्धीय सवर्ण को अपने अर्थ और का ग्राहक हो ॥

तपरः१।तत्कालस्य६। =(अर्थात्) तकार (=त्) जिस अक्षर से पीछे आवे अथवा तकार (=त) से कोई अक्षर परेमें होतो वह अक्षर

स्वम्१॥रूपम्१॥ =अपने अर्थ रूप और अपने उन सवर्णीय अक्षरोंका रूप वअर्थका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें वही काल लगे, उतनाही समयलगे जितना कि पूर्वोक्त अक्षर के उच्चारणमें लगता है सूत्र ६९ में यह कथन कियागया है कि व्यक्तिगत स्वरमें उसके सर्व सवर्णीय अक्षर समावेश होजायेंगे इस प्रकारकि 'अ' में आ भी अन्तर्गत होगा और इ में ई इत्यादि । यहसूत्र निर्देश करता है कि अक्षर का वही रूप ग्रहण किया जावेगा न कि उसके जाति के सर्व अक्षर ग्रहण किये जावेंगे यह कार्य अक्षर के पश्चात् अथवा प्रथम त् लाने से होता है जैसे अत् का आशय केवल 'अ' अक्षर ग्रहण करना है न कि उसके सर्व सवर्णीय अक्षर । इसी प्रकार उत् का अभिप्राय केवल हस्व'उ' ग्रहण करने का है न कि दीर्घ और प्लुत उ । इस सूत्रमें तपरः और तत्कालस्य दोपद हैं । तपरःका अर्थ जो तकार के परे हो अथवा तकार जिसके पीछे हो, 'तत्काल' का अर्थ है उतनाही काल ॥ समय की अपेक्षासे स्वरोंकेहस्व दीर्घ, और प्लुत तीन भेद हैं. 'हस्व' स्वर में एक मात्रा होती है, दीर्घ स्वर दो मात्रिक होते हैं और प्लुत स्वर तीन मात्रा वालेहोते हैं । व्यंजन के उच्चारण में हस्व स्वर से आधा समय लगता है इसलिये एक अक्षर त् जिसके पश्चात् हो औरजो'त्'केपश्चात् हो अपने अर्थ वरूपका ग्राहक है और केवल उन सवर्णीय अक्षरोंके अर्थवरूपोंका ग्राहक है जिनके उच्चारणमें उतनाहीवासमान काल लगताहोजैसे अक्षर'अत्'में उदात्त,अनुदात्त,स्वरित अनुनासिकऔरअननुनासिक'अ'अर्थात्छह हस्वरूप'अ'केगर्भितहोंगे,दीर्घऔर प्लुत रूप अकारका एकभी समावेश न होगा ॥ यहसूत्र आज्ञा ज्ञापकहै । इस सूत्रमें 'अण्' शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे नहींआती है । अण् प्रत्याहार के चौदह अक्षरों के अतिरिक्त किसी भी अक्षर के पश्चात् तकार आवे, तब उसपर भी यह सूत्र लागू होगा । यह सूत्र पूर्व सूत्रको परिमित और समर्यादा करता है अतः इससे पूर्व सूत्रका अर्थ होगाकि 'अणप्रत्याहारके अक्षर यदि उनमेंसे किसी भी अक्षर के प्रथम वा पश्चात् में 'त्' न हो तो वे अपने अर्थ व रूपके और अपने सवर्णीय अक्षरों के अर्थ व रूपों के कमसे ग्राहक होंगे ॥ इसप्रकार कि सूत्र ७-१-९ 'अतोभिस ऐस्' शब्द जिनके अन्तमें अत् (अर्थात् हस्व अकार) हो, तो भिस्के स्थानमें ऐस् हो जैसे वृक्ष+भिस् के स्थानमें वृक्ष+ऐस् होकर वृक्षैः बना परन्तु खट्वा जिसके अन्तमें दीर्घ 'आ'है और जिसका उच्चारण काल अकारके उच्चारण कालसे भिन्नहै, उक्तसूत्र लागू न होगा और खट्वाभिः रूप बनेगा अर्थात् भिस् का ऐस् नहोगा ॥

() विप्रतिषेधे७। =(परस्पर) तुल्यबल विरोधमें (=विप्रतिषेधे) अर्थात् तुल्य वा समान बलवाले आपसमें विरोधी

परम्१॥ कार्यम्॥ =नियम वा सूत्र किसी स्थानमें (किसी कृतिमें)एक साथ लगते हों तो (अष्टाध्यायीके) पिछले दिये नियम वा सूत्रके अनुसार कार्य हो भावार्थ अष्टाध्यायीमें दिया हुआ पिछला सूत्र लागू हो इससे पूर्वका सूत्र न लगेगा ॥ श्री पतंजलिभाष्य ऐसे है कि

तपरस्तत्कालस्येत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन। यद्येवं द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कालभेदात्। द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानं कर्तव्यम्। तथा मध्यमायां द्रुतविलम्बितयोः। तथा विलम्बितायां द्रुतमध्यमयोः। किं पुनः कारणं न सिद्ध्यति कालभेदात्। ये हि द्रुतायां वृत्तौ वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते मध्यमायां ये च मध्यमायां वर्णास्त्रिभागाधिकास्ते तु विलम्बितायाम्॥ सिद्धं त्ववस्थिता वर्णाः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। सिद्धमेतत्। कथम्। अवस्थिता वर्णा द्रुतमध्यमविलम्बितासु किं कुतस्तर्हि वृत्ति विशेषः। वक्तुश्चिराचिर वचनाद् वृत्तयो विशिष्यन्ते। वक्ता कश्चिदाशुभिधायी भवति। आशु वर्णानभिधत्ते। कश्चिच्चिरेण, कश्चिच्चिरतरेण॥ कश्चिच्चिरतमेन॥ पतञ्जलि महाभाष्य, प्रथमपाद 'तपरस्तत्कालस्य' सूत्र की व्याख्यासे उद्धृत है॥

विप्रतिषेधेन३।तपरस्तत्कालस्य६।इति* = 'विप्रतिषेधेन परं कार्यम्' सूत्र द्वारा 'तपरस्तत्कालस्य' ऐसे (सूत्रकी)

एतद्*भवति1' = इस समय (= एतद्*वैद्यकोश पृष्ठ १५३ में अव्यय माना है) प्राप्ति होतीहै अर्थात् 'अणुदित्सवर्णस्यचाप्रत्ययः' सूत्रकी निवृत्ति और 'तपरस्तकालस्य' सूत्रकी प्रवृत्ति 'विप्रतिषेधेन परंकार्यम्' सूत्रसे होती है॥

यदि*एवम्* = (प्रश्न) जो ऐसेहैं अर्थात् तत्काल(= उतनाकाल)कीप्रवृत्ति करताहै और भिन्नकालकी निवृत्ति

द्रुतायाम्७/१॥तपरकरणे७/१॥मध्यम- = तो शीघ्र कालिक उच्चारणकी वृत्तिमें 'तपर' करनेमें मध्यमकालीन उच्चारणका

विलम्बितयोः६/२॥उपसंख्यानम्१/१॥कालभेदात्५/१। = और विलम्बित या देरी कालीन उच्चारणका समावेश है (उसमें) काल भेद पड़जाता है (क्योंकि उतनेही कालमें शीघ्रतावृत्ति, मध्यमावृत्ति और विलम्बिता वृत्ति नहीं होसक्ती)

द्रुतायाम्७/१।तपरकरणे७/१॥ = (अर्थात् शिष्यके प्रश्न वा शंकाका आशय यहहै कि) शीघ्र कालिक उच्चारणमें तपरकरणमें

मध्यम-विलम्बितयोः६/२।।उपसंख्यानम्१/१॥कर्तव्यम् १/१॥ = मध्यमा कालीन उच्चारण और विलम्बिता कालीन उच्चारणका समावेश करनाचाहिये

तथा*मध्यमायाम्७/१।।(तपर करणे७/१॥)द्रुत- = और मध्यमा कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुताकालीन उच्चारणका

विलम्बितयोः६/२।।(उपसंख्यानम्१/१॥) = और विलम्बिता कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)

तथा*विलम्बितायाम्७/१।।(तपरकरणे) द्रुत- = और विलम्बित कालीन उच्चारणमें (तपर करणमें) द्रुता कालीन उच्चारण का

मध्यमयोः६/२।।(उपसंख्यानम्१/१॥) = और मध्यमा कालीन उच्चारण का (समावेश करना चाहिये)

किम्१/१॥पुनः*कारणम्१/१॥ = (शिष्य बल देकर कहता है कि गुरुजी समझें) फिर क्या कारण है कि

न*सिद्ध्यतिTकालभेदात्५/१। = (ऊपर के तीनो उच्चारणोंकी) सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि (उतनाही काल नहींलगता है) काल भेद पड़जाता है॥

ये।हि#द्रुतायाम्।वृत्तौ।। =(शिष्य कथन करता है कि कितना काल भेद पड़ता है) जो ही द्रुतावृत्तिमें
वर्णाः।त्रिभाग-अधिकाः।मध्यमायाम्।। =बोलनेके क्रम (=वर्णाः—देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३३७) हैं (समयका) तीन भाग अधिक मध्यमा वृत्तिमें
ते।। =वे (बोलनेके क्रम=वर्णाः) हैं अर्थात् जो ही कालद्रुतावृत्तिमें वर्णोंके उच्चारणमें लगताहै उससे तीसराभाग अधिक(काल)मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है
ये।च#मध्यमायाम्।वर्णाः।त्रिभाग- =और (=च) जे मध्यमा (वृत्ति) में बोलनेके क्रम (=वर्णाः) हैं। तीन भाग
अधिकाः।ते।तु#विलम्बितायाम्।। =अधिक(मध्यमा वृत्तिसे)वे(बोलनेकेकम)विलम्बिता वृत्तिमेंभी(=तु-पद्म०कोश१७३)हैं अर्थात् जो (काल) मध्यमा वृत्तिके उच्चारणमें लगता है उससे तीसरा भाग अधिक विलम्बिता वृत्तिके उच्चारणमें लगता है जैसे यदि नौ पल काल द्रुता उच्चारणमें लगै तो मध्यमामें बारह पल और विलम्बितामें सोलह पल लगेंगे ॥
सिद्धम्।।तु#अवस्थिताः।वर्णाः। =(उत्तर) वर्ण वा अक्षर तोअवस्थितहैं इससे(गुरुजी कहते हैं हमारा कथन)बनजाताहै अर्थात् काल भेद होने पर भी तीनों वृत्तियोंमेंवर्ण ज्योंकेत्यों रहतेहैंइससेबनजातीहैं
वक्तुः।चिर-अचिर-वचनात्।।वृत्तयः।विशिष्यन्तेT =क्योंकि वक्ताके देर और शीघ्र उच्चारण सेही द्रुताआदि वृत्तियोंमें भेदपड़ता है
सिद्धम्।।एतत्।।कथम्# ? =(गुरुजी कहते हैं कि) यह सिद्ध होजाता है। [प्रश्न] कैसे सिद्ध होजाता है
अवस्थिताः।वर्णाः।। =(उत्तर) क्योंकि वर्ण (प्रत्येक वृत्तिमें जैसे के तैसे] अवस्थित वा स्थिर
द्रुता-मध्यमा-विलम्बितासु।। =द्रुता-मध्यमा-विलम्बिता कालके उच्चारणों में (रहते) हैं
किम्।।कुतः#तर्हि#वृत्ति-विशेषः।। =(प्रश्न (यदि वर्णाःअवस्थित हैं)तो वृत्ति भेद कहांसे हुये(तीनों वृत्तियें कहांसे हुईं)
वक्तुः।चिर-अचिर-वचनात्।।वृत्तयः।विशिष्यन्तेT =(उत्तर) वक्ताके देर और शीघ्र बोलने के कारण से वृत्तियोंमें भेद होगये ॥
वक्ता।कश्चित्#आशु#अभिधायी।भवतिT =कोई वक्ता झट (=आशु) बोलता है (अर्थात्)
आशु#वर्णान्।अभिधत्तेTकश्चित्#चिरेण# =शीघ्रता से वर्णोंका उच्चारण करता है। कोई वक्ता विलम्बसे बोलताहै
कश्चित्#चिरतरेण।कश्चित्#चिरतमेन।। =कोई वक्ता और देरसे बोलता है कोई और भी देरसे बोलता है (जैसे रथिक से घोड़ा धीरे चलता है। घोड़ा से मनुष्य धीरे चलता है और मनुष्यसे बच्चाधीरे चलता है ॥ सारांश यह है कि इनतीनों शीघ्र उच्चारण रूप वृत्तिमें मध्यम कालीन उच्चारणमें और विलम्बित कालके उच्चारण में काल भेद रहने पर भी वर्णों के अवस्थित (ज्यों के त्यों) रहने से काल भेद नहीं माना जाता है क्योंकि काल भेदमें वक्ताका जल्दी और देरसे कहना अथवा बोलना ही कारण है क्योंकि शब्द का रूप प्रत्येक अवस्थामें एकसा रहता है ॥ 'किं कुतः' के स्थानमें किसी किसी मुद्रित भाष्यमें 'किं कृतः' पाठहै अर्थ दोनों पाठोंका एकसा है ॥ पृष्ठ ७५ में भिन्नभिन्न अनुवादकोंके अनुवाद शब्दशः दिये हैं जिनसे पाठक कुछ लाभ उठासकें हमारी समझमें उनके अनुवाद नहीं आये हैं अगले एक पृष्ठ ७६ में भिन्न भिन्न पाठ इस वार्तिकके जो हमारे यहां के ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं वे दियेगये हैं ॥ इस समस्तको पाठक बहुत ध्यानसे पढ़ें ॥

पं० जयचंद्रायजीकी वचनिकासे उद्धृत

"इहां प्रश्न,जो, इहां समास विषैं पीत पद्म शुक्ल इनके ह्रस्व अकार कैसे भया ? शब्द तौ पीता पद्मा शुक्ला ऐसा चाहिये। तहां कहिये है,जो व्याकरण विषैं उत्तर पदसे ह्रस्व होना भी कहा है। जैसे द्रुता (द्रुती ?) ऐसा शब्दकातपरकरणविषैं है। तहां'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसे इहां भी जानना जय०वचनिकामुद्रित पृष्ठ ३८२ (यह पाठ दोहस्तलिखित पाठोंसेभीमिलाकर लिखाहै जिनमें 'मध्याविलंविका उपसंख्यानहै। मुद्रित में 'मध्याविलंबिता का उपसंख्यान है ऐसा पाठ है ॥

पं० पन्नालाल दूनी के अनुवादसे उद्धृत

पीतापद्मामें इहांउत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो है। सो यथा कार्यका विपरिणामतें सिद्धपणो है। अर द्रु तायां या सूत्रमें तपर करण है। तामें मध्यविलंबितयो- रुपसंख्यानं ऐसो व्याकरण को वार्तिक है। तहां मध्याविलंबिता शब्दमें उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो भयोहै, तैसेही इहां भी उत्तर पद संबंधी ह्रस्वपणो जानने योग्य है ॥ पं० पन्नालाल दूनी पृष्ठ५४ अध्याय चौथेसे उद्धृत

पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरके अनुवाद से उद्धृत

(प्रश्न) "पीतपद्मशुक्ल इन शब्दनिकै ह्रस्व अकार है यातैं पुल्लिंग है ॥ तातैं लेश्या का विशेषणकरि पीतादिकशब्दनिका निर्देश करना युक्तनाहीं होय है। किंतु पीता पद्माशुक्ला ऐसाकहना चाहिये। यातैंलेश्या शब्द स्त्रीलिंग है ताके विशेषण भी स्त्री लिंग का होना चाहिये। ऐसा शब्द शास्त्र का न्यायहै॥ समाधान। व्याकरणविषैंउत्तर पदतैं ह्रस्व होना भी कहा है। सो यथा कार्यके विपरणमनतैं सिद्ध है ॥ जैसे द्रुतायां या सूत्रमें तपर करण है ताके विषैं मध्याविलंबित का उपसंख्यान है। यह व्याकरण सूत्र है। यहां उत्तर पदका ह्रस्व होने तैं मध्यविलंबित ऐसा सिद्ध होय है। तैसे यहां भी पीतादिक शब्दनिके ह्रस्वपना करि निर्देश जानना"

पं० पन्नालाल न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखित पृष्ठ ६७४

पं० गजाधरलाल शास्त्रीके अनुवादसे उद्धृत

"पीता च पद्मा च शुक्ला च पीतपद्मशुक्लाः पीतपद्मशुक्लालेश्याः येषां ते पीतपद्मशुक्ललेश्याः। यह यहां पर द्वन्द्व गर्भित बहुव्रीहि समास है। यदि यहां पर कहाजाय कि-'पीतपद्मशुक्ललेश्याः' यहांपर द्वन्द्व समास किया जायगा तो द्वन्द्वमें पुंवद्भाव तो होगा नहीं इसलिए 'पीतपद्मशुक्ललेश्या' यह जो पुंवद्भावविशिष्ट निर्देश कियागया है अर्थात् आकार का अकार करदियागया है वह अयुक्तहै किन्तु यहां पर'पीतापद्माशुक्लालेश्याः'ऐसानिर्देश करनाचाहिए। सो ठीक नहीं। यहां पुंवद्भाव नहीं हुआ है किंतु उत्तर पद रहने से पूर्वपद को ह्रस्व हुआ है जैसे "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानम्"इस व्याकरण शास्त्रकी वार्तिकमेंमध्यमा च विलंबिता च 'मध्यमविलंबितातयोः' इसद्वंद्व समासयुक्त पदमें 'विलंबिता' उत्तर पद रहने से 'मध्यमा' शब्दको ह्रस्व करि निर्देश कियागयाहै उसी प्रकार 'पीतपद्मशुक्ला लेश्याः' यहांपर भी 'शुक्ला' उत्तरपद के रहते पीता और पद्मा इन दोनों पदों में ह्रस्व निर्देश न्याय्य है" ॥

'द्रुतायाम्' जहांतक हमनें ८, १० व्याकरण देखे हमको नहीं मिला और अन्य विद्वानभी कहते हैं कि 'द्रुतायाम्' ऐसा कोई सूत्र नहीं है ॥ जो महोदय इसेपढ़ें उनको विद्यार्थियों के लाभार्थ उचित है कि यदि 'द्रुतायाम्' कोई सूत्र है तो कृपया मुझे सूचनादें कि अनुवादमें मुद्रित कियाजावे।

अथवा पीतश्च पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वर्णवन्तोऽर्थाः । तेषामिव लेश्या येषां ते पीतपद्म-शुक्ललेश्याः ॥

अथवा*	=वा (यदि उपर्युक्त उत्तरसे अधिकतम संशयशील प्रश्न कर्ताओंका समाधान न हो तो)
पीतः।१।च*पद्मः।१।च*शुक्लः।१।च*पीतपद्मशुक्लाः।१।	=पीत और पद्म और शुक्ल हैं वे पीत पद्म शुक्ल
वर्णवन्तः।३।अर्थाः।३।	=रूपवाले पदार्थ हैं अर्थात् पीत पद्म शुक्ल ये तीनों सूत्रित शब्द पीत पद्म शुक्ल रंगवाले वस्तुओंके शब्दार्थहैं औरउन्हीं रंगवाले पदार्थोंके वाचकहैं और येतीनों शब्दपुरुषलिंगीहैं॥
तेषाम्।३।इव*लेश्याः।३।।येषाम्।३।ते।३।	=जिन (पीत पद्म शुक्ल रंगवाले पदार्थों) के सदृश हैं लेश्यायें जिन (देवों) की वे
पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्याः।१। ॥	=पीत पद्म शुक्ल लेश्या वालेहैं(यहां उक्त रंगीन वस्तुओंकी उपमा भी इन लेश्याओं को दी गईहै और उपमित समासमें ह्रस्व होता ही है अतः पीतपद्मशुक्ल उपमितसमास ह्रस्वरूपमें है ॥

() यथाहुः (यथा-आहुः) द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति ॥ सर्वार्थसिद्धि प्रथम संस्करण पृष्ठ १४३, द्वितीयावृत्ति पृष्ठ१४५ "यथा द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमिति द्रुतमध्यमविलंबिताः इति" ॥ हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ८६

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्रौत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापि वेदितव्यं" तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७०

() "द्रुतायां तपरकरणे मध्यविलंबितयोरुपसंख्यानमित्यत्र औत्तरपदिकं ह्रस्वत्वमेवमिहापिवेदितव्यं" यह पाठ पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर की हस्त लिखिततत्त्वार्थ राजवार्तिक पृष्ठ ८७४ परसे तथा पं०पन्नालालदूनीजीकी हस्तलिखित राजवार्तिक पृष्ठ ५४ अध्याय ४ परसे लिया है इनदोनों प्रतियों के पाठमें 'मध्यम' शब्दके स्थानमें मध्य'शब्द मिलता है। पं०जय०वचनिकाकी एक मुद्रित दोहस्तलिखित प्रतियोंमें'मध्य'मिलताहै॥ 'मध्यम'चाहिये

() पीतपद्मशुक्लानां द्वन्द्वे पीतपद्मयोरुत्तरपदिकं ह्रस्वत्वं 'द्रुतायान्तपरकरणान्मध्यमविडंबितयोरुपसंख्यानमित्याचार्यवचनदर्शनात् मध्यमाशब्दस्य विडंबितोत्तरपदे द्वन्द्वेपि ह्रस्वत्वसिद्धेः'। यह पाठ मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ ३८४ और दो हस्त लिखित प्रतियोंके क्रमसे पृष्ठ ३०५ और३२१ पर है ॥ यहीपाठहै इसकोहमने बहुतसावधानीसे तीनोंप्रतियोंको मिलाकर लिखाहै इसमें'विलंबिता'के स्थानमें विद्यानंदिस्वामी'विडंबिता' लायेहैं और सप्तमी विभक्तियोंके स्थानमें पंचमी विभक्तियां लाये हैं। हमारी ठीक ठीक समझमें यह नहीं आया है कि'इति आचार्य वचन दर्शनात्' वाक्य में 'आचार्य' से श्लोक वार्तिकके कर्ताका पूज्यपाद स्वामी, श्रीमदकलंक भट्ट जिन्होंने यह वार्तिक शब्दशः पतंजलि मुनिके महाभाष्यसे उद्धृत की है इनमेंसे किसी से अभिप्राय है अथवा श्रीमान् पतंजलिसे तात्पर्य है अथवा किसी अन्य आचार्य से प्रयोजन है। विद्वज्जन इसका अन्वेषण करके कृपया मुझको सूचित करें ॥

तत्र कस्य का लेश्येत्यत्रोच्यते—सौधर्मैशानयोः पीतलेश्या। सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पीतपद्मलेश्ये ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठेषु पद्मलेश्या। शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु पद्मशुक्ललेश्ये। आनतादिषु शुक्ललेश्या। तत्राप्यनुदिशानुत्तरेषु परमशुक्ललेश्या। सूत्रेऽनभिहितं कथं मिश्रग्रहणं? साहचर्याल्लोकवत्॥

तत्र*कस्य[६/१]।का[१/१]।।लेश्या[१/१]।।इति*अत्र*उच्यते — =तहां किस (देव) के कौन लेश्या है (ऐसे) यहां (=अत्र) कहा जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः[७/२]।पीतलेश्या[१/१]।।सानत्कुमार- =सौधर्म ऐशान में (देवनिके) पीत लेश्या है। सानत्कुमार

माहेन्द्रयोः[७/२]।पीत-पद्म-लेश्ये[१/२]।।ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तर- =माहेन्द्र में (देवों के) पीतपद्मलेश्या है। ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर

लान्तव-कापिष्ठेषु[७/३]।पद्म-लेश्या[१/१]।।शुक्र-महाशुक्र- =लान्तव और कापिष्ठ में (देवों के) पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्र

शतार-सहस्रारेषु[७/३]।पद्म-शुक्ल-लेश्ये[१/२]।।आनत- =शतार और सहस्रार में (देवों के) पद्म-शुक्ल दो लेश्या हैं। आनत

आदिषु[७/३]। =और प्राणत, आरण और अच्युत इन दो युगलोंमें और नवग्रैवेयकोंमें और नव अनुदिशों में और पांच अनुत्तरोंमें (देवोंके)

शुक्ल-लेश्या[१/१]।।तत्र*अपि*अनुदिश-अनुत्तरेषु[७/३]। =शुक्ललेश्या है। तहां भी (नव) अनुदिशोंमें और (पांच)अनुत्तरोंमें (देवोंके)

परम-शुक्ल-लेश्या[१/१]।।सूत्रे[७/१]।।अन्-अभिहितम्[१/१]।। =उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या है (प्रश्न) सूत्रमें अकथित

कथम्*मिश्र-ग्रहणम्[१/१]।। ? =मिश्र (लेश्या) का ग्रहण(यहां)कैसे है ? अर्थात् इस बाईसवां सूत्रमें तो किसी युगलके देवोंके दो लेश्या वर्णन नहीं की हैं इस सूत्रकी वृत्तिमें आपने कैसे कहा कि सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें पीत-पद्म दो लेश्या हैं सूत्रमें तो इस युगलमें केवल पीतलेश्या कही है और शुक्र महाशुक्र के युगलमें सूत्रमें तो पद्मलेश्या कही वृत्तिमें आपने पद्मशुक्ल दोनों लेश्यायें कैसे कही और शतार सहस्रार युगलमें सूत्रानुसार केवल शुक्ल लेश्या है आपने वृत्तिमें पद्म शुक्ल दो लेश्यायें कैसे कहीं।

साहचर्यात्[५/१]।। =(उत्तर) एक ही आश्रय होनेसे अथवा साथ साथ रहनेसे

लोकवत्* =लोक (व्यवस्था वा रीति) सदृश (मिश्र लेश्याओंका ग्रहण है अर्थात् मुख्यता करि जो जो लेश्या जिन जिन युगलोंमें है वहतो सूत्र विषैं कहीं उसके साथ लोक रीतिके समान गौण लेश्याका भी ग्रहण करना योग्य है॥

 तद्यथा—छत्रिणो गच्छन्ति इति अछत्रिषु छत्रिव्यवहारः । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहणंभवति॥ अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते ? इति चेदुच्यते—एवमभिसम्बन्धः क्रियते, द्वयोः कल्पयुगलयोः पीतलेश्या । सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेश्यायाः

तद्यथा*छत्रिणः[१]गच्छन्ति। इति* =जैसे (लोक विदित वा प्रसिद्धमें राजादिक) छत्रधारी जाते हैं इस प्रकार

अछत्रिषु[७]छत्रिन्-व्यवहारः[१] =विना छत्रवाले (साथियों) विषैं छत्रधारीका व्यवहार होता है अर्थात् राजादिक छत्रधारी और उनके साथीगण सब साथ साथ जाते हैं परन्तु पूछनेपर लोक प्रसिद्धमें यह कहा जाता है कि अमुक छत्रधारी राजा जाते हैं भावार्थ मुख्य अथवा प्रधानका तो नाम लेते हैं उसमें गौणभी गर्भित होजाते हैं ॥

एवम्*इह*अपि* =इस प्रकार यहां (लेश्याओंके कथनमें) भी

अन्यतर-ग्रहणम्[१]।। =दोनों (पृथक् और मिश्र लेश्याओं)में से एकके(सूत्रमें) ग्रहणसे

मिश्रयोः[६]भवति। =मिश्र (पीतपद्म, पद्मशुक्ल वा शुक्लपद्म लेश्याओं) का (ग्रहण) होजाताहै भावार्थ ऐसाहैकि पीत-पद्म-शुक्ल-तीन लेश्यायें पृथक् पृथक् हैं और पीतपद्म तथा पद्मशुक्ल (जोशतारसहस्रारमें भीहैं) ये दो मिश्र हैं। सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ल व्यक्तिगत लेश्याओं का ग्रहण है इन व्यक्तिगत लेश्याओंके ग्रहणसे पीतपद्म, पद्मशुक्ल इन दो मिश्र लेश्याओंका ग्रहण उसी प्रकारसे होजाताहै कि जिस प्रकार किसीसड़कपर छत्री और विनाछत्री वाले दोनों प्रकारके मनुष्य जातेहों। उनमें छत्रीवाले अधिक होंतो वहांपर 'छत्रिणोगच्छंति' अर्थात् छत्रीवाले जारहे हैं ऐसा व्यवहार होताहै और वहां पर 'छत्रीवाले' कहनेसे छत्री और विनाछत्रीवाले दोनों प्रकारके पुरुषोंका ग्रहण होजाताहै तैसेही इस सूत्रमें पीत,पद्म,शुक्ललेश्याओंसे मिश्रका भी है

अयम्[१]अर्थः[१]सूत्रतः*कथम्*गम्यते। =यहअर्थ सूत्रसे कैसे जानाजाताहै अर्थात् पीतपद्म पद्मशुक्लका ग्रहणसूत्रमेंकैसेहुआ

इति*चेत्*उच्यते।एवम्*अभि-सम्बन्धः[१] क्रियते। =ऐसा संदेह होने पर कहाजाता है कि इस प्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

द्वयोः[७] कल्प-युगलयोः[७] =दो स्वर्ग-युगलों (सौधर्म और ऐशान सानत्कुमार और माहेन्द्र) में

पीतलेश्या[१]।सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[७]पद्मलेश्यायाः[६]। =पीत लेश्या है सानत्कुमार माहेन्द्र में पद्मलेश्या का (अस्तित्व)

अविवक्षातः ॥ ब्रह्मलोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेश्या । शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेश्याया अविवक्षातः ॥ शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेश्या । पद्मलेश्याया अविवक्षातइति नास्ति दोषः ॥ आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रेदं न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

॥प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः॥ २३॥

अविवक्षातः*	=अपेक्षा रहित है अर्थात् पद्मलेश्या इस सूत्रमें गौण है इसलिये सूत्रमें कहनेकी इच्छा नहीं है भावार्थ सूत्रमें गौण लेश्याका कथन कहनेका अभिप्राय, वांछा, वा प्रयोजन नहीं है। इससे पद्मलेश्याका निर्देश इस सूत्रमें नहीं किया गया है ॥
ब्रह्मलोक-आदिषु७ त्रिषु७ कल्पयुगलेषु७	=ब्रह्मलोक, ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र तीन कल्प युगलोंमें
पद्मलेश्या १॥; शुक्र-महाशुक्रयोः७ शुक्ललेश्यायाः६॥	=पद्मलेश्या है। शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ललेश्याका (अस्तित्व)
अविवक्षातः*	=विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलमें शुक्ललेश्या गौण है इससे कहने की सूत्रमें इच्छा नहीं है
शेषेषु७ शतार-आदिषु ७ शुक्ललेश्या१॥	=शेष शतार-सहस्रार, आनत प्राणत, आरण अच्युत में शुक्ललेश्या है।
पद्मलेश्यायाः६॥ अविवक्षातः*	=(शतार सहस्रार विषैं) पद्मलेश्या का (अस्तित्व) विवक्षा से रहित है अर्थात् इस युगलके देवोंके पद्मलेश्या गौण है इससे सूत्र में कहने की इच्छा नहीं है
इति*	=इस प्रकार (कथनसे कि मुख्यताकरि दो युगलोंमें पीतलेश्या, तीन युगलोंमें पद्मलेश्या शेष तीन युगलों में शुक्ललेश्या है)
न*अस्ति T दोषः१॥	=दूषण नहींहै (क्योंकि मुख्य लेश्या तो सूत्रद्वारा कहीं गौण लोक रीतिसे जानना चाहिये)।
आह T 'कल्प-उपपन्नाः१॥' इति*उक्तम्१॥	=शिष्य प्रश्न करता है कि "कल्पोपपन्ना" ऐसा वाक्य सत्रहवां सूत्रमें कहा गया है।
तत्र *इदम्१॥ न*ज्ञायते T	=तहां यह ज्ञान नहीं कराया गया है अथवा वहां यह नहीं जतलाया गया है कि
के१॥ कल्पाः १॥ इति*अत्र* उच्यते T	=कल्प कौन हैं यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्-प्राग्ग्रैवेयकेभ्यःकल्पाः॥ २३॥ = (सौधर्म-आदयः) प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः भवन्ति ॥ २३॥

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका (श्री सिद्धसेन सूरि रचित) में केवल बारह स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह स्वर्ग मानेहैं ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तक में

इदं न ज्ञायते इत आरम्भ कल्पा भवन्तीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । तेनायमर्थो लभ्यते-सौधर्मादयः प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पा इति पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ॥

लौकान्तिका देवा वैमानिकाः सन्तः क्व गृह्यन्ते? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति चेदुच्यते—

॥ ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-आदयः१/३। प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः५/३। कल्पाः१/३।	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व (पूर्व) कल्प हैं अर्थात् सौधर्म पहिले स्वर्गसे लेकर अच्युत सोलहवां स्वर्ग पर्यन्त 'कल्प' कहेजाते हैं
वृत्त्यनुवादः—इदम्१/१।। न* ज्ञायतेT	=(सूत्रमें) यह नहीं बोध करायागया है अथवा जतायागया है कि
इतः* आरम्भ-कल्पाः१/३। भवन्तिT इति* सौधर्म-आदि-ग्रहणम्१/१।। अनुवर्ततेT	=यहांसे (=इतः) कल्प आरम्भ होतेहैं (उन्नीसवां सूत्रसे) 'सौधर्म आदिका' =(इससूत्रमें)ग्रहण प्रवर्तता है अर्थात् उन्नीसवां सूत्रसे सौधर्म आदि शब्दलियेगये हैं
तेन३/१।। अयम्१/१। अर्थः१/१। लभ्यतेT	=तिस (सौधर्म आदिके ग्रहण)से यह अर्थ प्राप्त कियागया है कि
सौधर्म-आदयः१/३। प्राग्*ग्रैवेयकेभ्यः५/३। कल्पाः१/३।	=सौधर्मसे लगाय ग्रैवेयकोंसे पूर्व २ वा पहिले २ कल्प हैं, स्वर्ग हैं ।
इति* पारिशेष्यात्५/१। इतरे१/३। कल्प-अतीताः१/३। इति*	=ऐसे इन (कल्पों) से अवशेष (=पारिशेष्यात्) अन्य (=इतरे) कल्पातीत हैं, अर्थात् प्रथम सौधर्म स्वर्गसे अच्युत सोलह स्वर्ग तक कल्प कहलातेहैं। सोलह स्वर्गों से भिन्न जो नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर पर्यन्त कल्पातीत कहेजाते हैं॥
लौकान्तिकाः१/३। देवाः१/३। वैमानिकाः१/३। सन्तः१/३। क्व* गृह्यन्तेT	=लौकान्तिकदेव वैमानिक हैं। कहां मानेगये हैं वा ग्रहण किये गये हैं ?
कल्प-उपपन्नेषु७/३। कथम्* इति* चेत्* उच्यतेT	=(उत्तर) कल्प वासियोंमें (प्रश्न) कैसे ऐसा संदेह होनेपर कहाजाता है कि
(२)सूत्रम्—ब्रह्मलोकालयालौकान्तिकाः	= ब्रह्मलोकालयाः लौकान्तिकाः (भवन्ति) ॥२४॥

जैसे ज्ञानचन्द जी (लाहौर) मुद्रित तत्त्वार्थसूत्र में तथा पं० सदा सुखजी कृत लघुटीकामें 'कल्पाः' शब्दके स्थानमें 'कल्पः' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि कल्प सोलह हैं और कल्पः शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन पुंलिंग है केवल एक स्वर्गका द्योतक है। अतः 'कल्पाः' बहुवचन होना चाहिये ॥

(२) हमारे यहां कहीं कहीं पर 'लौकांतिका' पाठ भी है। सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें, भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका (श्वेताम्बरीयभाष्य) में "लौकान्तिकाः" पाठ है दोनों पाठ शुद्ध हैं (देखो टिप्पणी अध्याय १ पृष्ठ ५,६, टिप्पणी पृष्ठ ५५०, ५५१)॥ दोनों सम्प्रदायोंमें पाठ और अर्थ एकसा है॥

एत्य तस्मिन् लीयन्त इति आलयः आवासः । ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्याः । यद्येवं सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तं? । अन्वर्थ सञ्ज्ञाग्रहणाददोषः ॥ ब्रह्मलोको लोकः तस्यान्तो लोकान्तः तस्मिन्भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषां ग्रहणम् ।

सूत्रार्थः–ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ भवन्तिT =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग है निवासस्थान जिनका ते लौकान्तिक देव हैं अर्थात् ब्रह्मलोकालय इस शब्दके साथ लौकान्तिक शब्दका सम्बंध है। ब्रह्मलोकके अंतका नाम लोकांत है और वहां पर रहनेवाले लौकान्तिक कहेजाते हैं॥ इस रीति से ब्रह्मलोकके अन्तमें रहनेवाले ही देव लौकान्तिक होसकते हैं सब ब्रह्मलोक निवासी नहीं अथवा जन्म जरा और मरण से व्याप्त स्थानका नाम लोक है ; उसका अन्त लोकान्त है जिन्हें उस लोकांतका प्रयोजन होवे, वे लौकांतिक कहेजाते हैं । ये लौकांतिक देव परीतसंसार हैं । ब्रह्मलोकसे च्युत होकर एक गर्भवास अर्थात् नर भव पाकर नियमसे मोक्ष प्राप्त करलेते हैं ऐसे दोनों प्रकारसे सार्थक नाम वाले लौकान्तिक देव हैं ॥

वृत्त्यनुवादः–एत्य* तस्मिन्$^{7}_{1}$ लीयन्तेT इति* आलयः$^{1}_{1}$ =आनकरि जिसमें मिलते हैं, छिपते हैं, वा रहते हैं ऐसा आलय
आवासः$^{1}_{1}$ ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ आलयः$^{1}_{1}$ येषाम्$^{6}_{3}$ ते$^{1}_{3}$ =निवास स्थान है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) है निवासस्थान जिनका ते
ब्रह्मलोक-आलयाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ देवाः$^{1}_{3}$ वेदितव्याः$^{1}_{3}$ =ब्रह्मलोक आलयवाले(पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले) लौकांतिक देव जानने चाहिये
यदि* एवम्* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$ =(प्रश्न)जो ऐसे हैं अर्थात् पांचवां स्वर्गमें रहनेवाले लौकान्तिक देव हैं तो समस्त
ब्रह्मलोक-आलयानाम्$^{6}_{3}$ देवानां$^{6}_{3}$ लौकान्तिकत्वं$^{1}_{1}$। प्रसक्तं$^{1}_{1}$॥?=ब्रह्मलोकमें रहनेवाले देवोंके लौकान्तिक होना पाया जाता है
अन्वर्थ-सञ्ज्ञा- =(उत्तर) (इन देवोंका) सार्थक नाम (अर्थात् जैसा नाम है वैसाही अर्थ
ग्रहणात्$^{5}_{1}$॥ अदोषः$^{1}_{1}$ ब्रह्मलोकः$^{1}_{1}$ लोकः$^{1}_{1}$ =ग्रहण करनेसे दूषण नहीं है । ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) सो लोक है
तस्य$^{6}_{1}$ अन्तः$^{1}_{1}$ लोक-अन्तः$^{1}_{1}$ तस्मिन्$^{7}_{1}$ भवाः$^{1}_{3}$ लौकान्तिकाः$^{1}_{3}$ =तिसका छोर सो लोकांत है तिस (पांचवां स्वर्गके अन्त)में (उत्पन्न)होनेवाले वे लौकांतिक हैं
इति* न* सर्वेषाम्$^{6}_{3}$ ग्रहणम्$^{1}_{1}$॥ =ऐसे समस्त (पांचवां स्वर्गके देवोंका) ग्रहण नहीं होता है ॥

तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि ॥ अथवा जन्मजरामरणाकीर्णो लोकः संसारःतस्यान्तो लोकान्तः। लोकान्ते भवा लौकान्तिकाः ते सर्वे परीतसंसाराः । ततश्च्युता एकं गर्भावासं प्राप्य परिनिर्वास्यन्ति ॥ तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

॥ सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुपिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५॥

तेषाम्। हि* विमानानि। ब्रह्म-लोकस्य। अन्तेषु। =तिन (लौकान्तिक देवों)केही विमान ब्रह्मलोक (पांचवां स्वर्ग) के अन्तमें
स्थितानि।। अथवा* जन्म-जरा-मरण-आकीर्णः। लोकः। =स्थित हैं अथवा जन्म जरा और मृत्युकरि व्याप्त (=आकीर्ण)जो भुवन (=लोक)
संसारः। तस्य। अन्तः। लोक-अन्तः। =जो जगत (=संसार) तिस (संसार)का अन्त वा छोर सो लोकान्त है
लोक-अन्ते। भवाः। लौकान्तिकाः। ते। सर्वे। =संसारके अन्तमें हों वे लौकान्तिक हैं । वे समस्त (लौकान्तिकदेव)
परीत-संसाराः। ततस्* =संसारसे विरक्त वा उदासीन(=परीत)हैं वहां(ब्रह्मलोकके अंत अपने निवासस्थान)से
च्युताः। एकम्। गर्भ-आवासम्। प्राप्य + परिनिर्वास्यन्ति[1] =पतित होकर एक गर्भवासस्थानको प्राप्त कर कर्मों के विरुद्ध अर्थात् कर्मोंको जीतकर निर्वाण जाते हैं
तेषाम्। सामान्येन।। उपदिष्टानाम्। भेद-प्रदर्शन अर्थम्।। आह। =सामान्यकरि कहेहुये तिन (लौकान्तिकदेवों)के भेद दिखावनेके लिये कहते हैं कि

(३)सूत्रम्—सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥
= सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च + (लौकान्तिका)[2] भवन्ति

सूत्रार्थः—सारस्वत-आदित्य-वह्नि-अरुण-गर्दतोय- तुषित- =सारस्वत, आदित्य वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित
अव्याबाध-अरिष्टाः। च* लौकान्तिकाः। भवन्ति। =अव्याबाध, अरिष्ट भी (= च)लौकान्तिकदेव हैं अर्थात् अन्य लौकान्तिकदेव

(१) 'परि' अव्यय जब क्रियाके साथ लगतेहैं तब उसको उपसर्ग कहते हैं । इसके क्रियाके साथमें चारोंओर; अधिक;विरुद्ध-प्रतिकूल;विपरीत; अतिशय अत्यन्त; इन चार अर्थोंमें आताहै यहां 'विरुद्ध' 'प्रतिकूल' अर्थमेंहै अतः कर्मोंके विरुद्ध प्रतिकूल ऐसाअनुवादकियाहै पृष्ठ ८६में'निर्वास्यन्ति'है।

(२) 'लौकान्तिकाः' वाक्यकी अनुवृत्ति चौबीसवां सूत्रसे है ॥ सूत्रमें 'च' शब्द अन्य सोलह प्रकारके लौकान्तिक देवोंके समुच्चय के लिये है ॥

(३) हमारे यहां सर्वत्र एक पाठ है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रका और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाका पाठ और हमारे यहां का पाठ 'सारस्वादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाध'तक एक है हमारे यहां अव्याबाधके पश्चात् "अरिष्टाश्च" पाठ औरहै । भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें 'अव्याबाध'के पीछे 'मरुतः' शब्द अधिक है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमें सूत्रमें 'अव्याबाध'के पश्चात् 'मरुतः' (अरिष्टाश्च)वाक्य अधिक है ॥

क्व इमे सारस्वतादयः । अष्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः । तद्यथा-

---

हैं और सारस्वत भीआठ प्रकारके लौकान्तिक देवहैं भावार्थ अग्न्याभ, सूर्याभ, चन्द्राभ, सत्याभ, श्रेयस्कर, क्षेमंकर, वृषभेष्ट, कामचर, निर्माणरज, दिगन्तरक्षित, आत्मरक्षित, सर्वरक्षित, मरुत्, वसु, अश्व, विश्व, ये सोलह प्रकारके लौकान्तिक देव हैं और सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, अरिष्ट भी आठ प्रकारके लौकान्तिक देव ऐसे सर्व लौकान्तिक चौबीस प्रकारके हैं।

वृत्त्यनुवादः-क्व*इमे$\frac{1}{3}$।सारस्वत-आदयः$\frac{1}{3}$,अष्टासु$\frac{7}{3}$।	=(प्रश्न) कहां हैं ये सारस्वतादिक (लौकान्तिक देव), आठों
अपि*पूर्व-उत्तर-आदिषु$\frac{7}{3}$।।	=ही पूर्व ईशान-उत्तर,वायव्य-पश्चिम-नैऋत्य (नैऋत)-दक्षिण-आग्नेय (=आदिषु)
दिक्षु$\frac{7}{3}$।यथाक्रमम्*एते$\frac{1}{3}$।सारस्वत-आदयः$\frac{1}{3}$।	=दिशाओंमें अनुक्रमसे ये सारस्वत आदिक (निम्न लिखित चौबीस प्रकारके)
देवगणाः$\frac{1}{3}$।वेदितव्याः$\frac{1}{3}$।तद्यथा*	=देवोंके समूह जानने चाहिये-जैसे

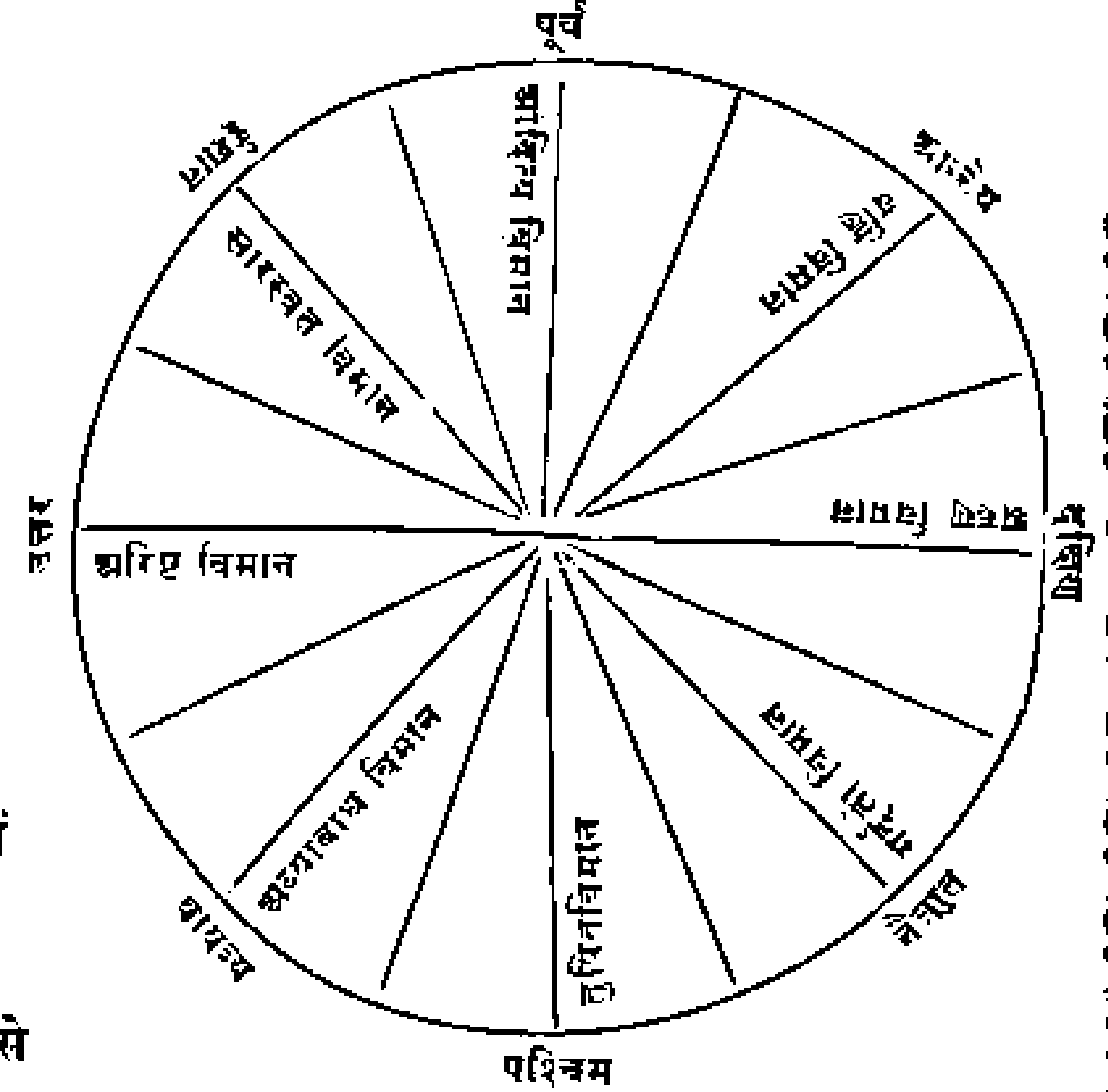
और 'मरुतः (अरिष्टाश्च)'का अनुवाद यह कियाहै कि 'उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव रहते हैं। सभाष्य०में केवल आठ प्रकारके लौकान्तिक देवोंका कथन है इससे प्रगट है कि 'मरुत्' और 'अरिष्ट' एक ही प्रकार है ॥ आठ दिशाओंमें रहनेकी अपेक्षासे हमारे यहांके लेखसे श्वेताम्बरसमाजका लेख मिलता है केवल इतना भेद है कि उत्तर दिशा में हमारे यहां 'अरिष्ट' देवोंका निवास है उनके यहां मरुत् देवों का, यदि मरुत् और अरिष्ट देवोंको अभेद रूपसे मानलें तो कुछभी अन्तर दोनोंमें नहीं रहता है जैसाकि निम्न लेखसे जो सभाष्य० के पृष्ठ ११३ और ११४ से लिया है विदित है

"जैसे पूर्वोत्तर दिशामें सारस्वत देव रहते हैं, अर्थात् पूर्व और उत्तर दिशा के कोण (ऐशानकोण) में सारस्वत रहते हैं। पूर्व दिशामें आदित्य संज्ञक देव रहते हैं। इसी प्रकार अन्य देवोंके विषयमें भी जानलेना चाहिये अर्थात् पूर्व दक्षिण (आग्नेय कोण) में वह्नि, दक्षिणमें अरुण, दक्षिणपश्चिम (नैऋत्यकोण) में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, पश्चिमोत्तर(वायव्यकोण)में अव्याबाध और उत्तरमें मरुत् अथवा अरिष्टदेव" रहते हैं। सभाष्य०में 'च' शब्द का कोई अर्थ नहीं किया है हमारे यहां चकार से सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देव लिये हैं। आठ प्रकार के देवोंमें 'अरिष्ट देव' उत्तर दिशामें रहने वाले हैं और सोलहप्रकार के देवोंमेंसे मरुत् देव हैं जो 'वायव्य और उत्तर दिशाओं के' मध्यमें रहते हैं (देखो वृत्ताकार पृष्ठ ८५ में)।

श्वेताम्बर समाजके भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका के निम्नलेखसे प्रगट है कि कोई आठप्रकारके लौकान्तिक देव मानते हैं कोई कोई नव प्रकारके "न त्वेवमनैव नवभेदा भवंति। भाष्यकृतावाष्टविधा इति मुद्रिता उच्यते। लौकांत वर्तिन एतेऽष्टभेदाः। सूरिणोपात्ताः। अरिष्ट विमान प्रस्तार वर्तिभिं नवधा भवंतीत्यदोषः" पृष्ठ ३४२ ॥

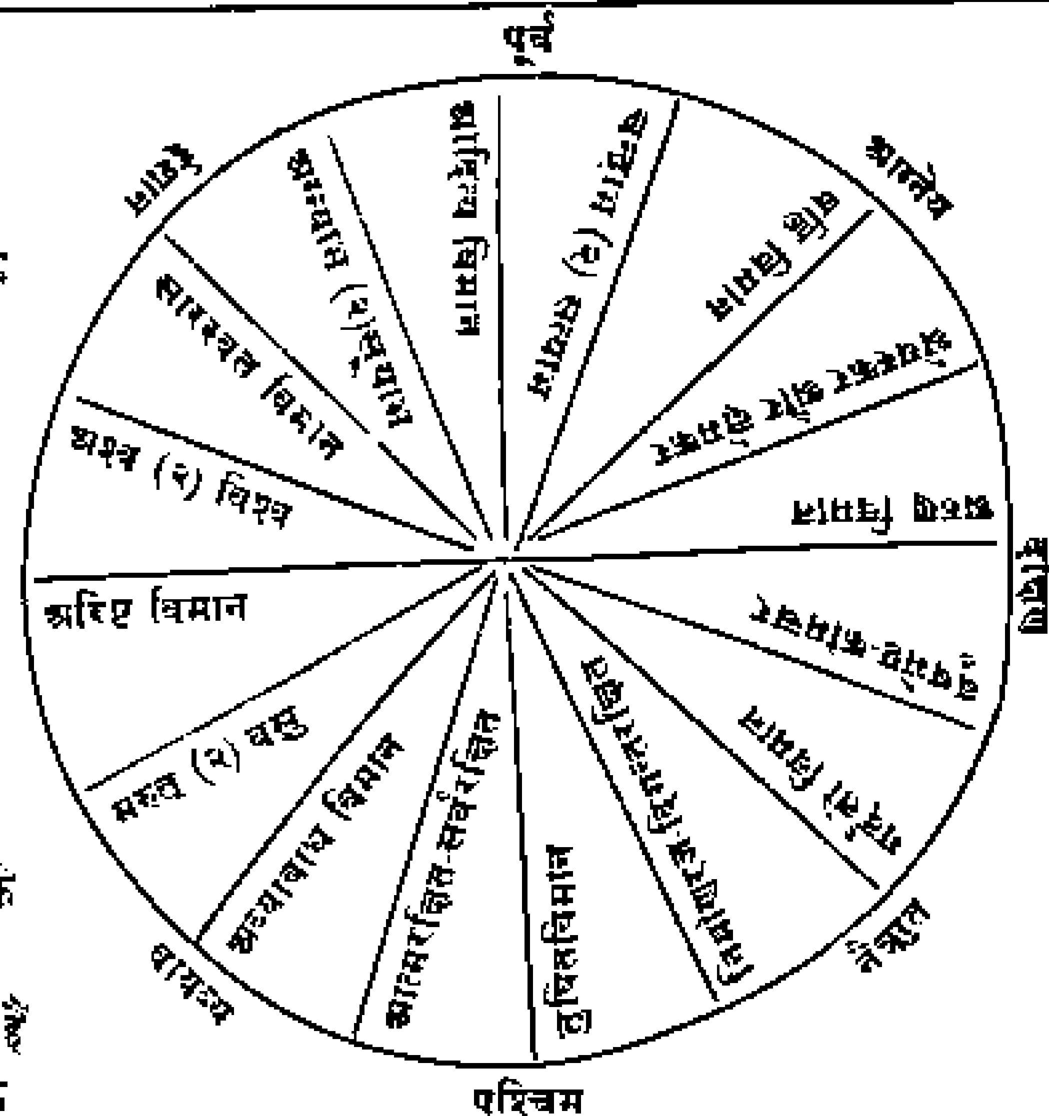
पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानं, पूर्वस्यां दिशि आदित्यविमानं, पूर्वदक्षिणस्यां दिशि वह्नि विमानं, दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानं, दक्षिणापरकोणे गर्दतोयविमानं, अपरस्यां दिशि तुषितविमानं, उत्तरापरस्यां दिशि अव्याबाधविमानं, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम्॥ चशब्दसमुच्चिताः तेषामन्तरे द्वौ द्वौ देवगणौ॥

पूर्व-उत्तर-कोणे[७/१]। =पूर्व-उत्तरके कोनमें अर्थात् ईशान दिशामें
सारस्वत-विमानम्[१/१]। =सारस्वत (देवोंका) विमान है
पूर्वस्यां[७/१]। दिशि[७/१]। =पूर्व दिशामें
आदित्य-विमानम्[१/१]। =आदित्य (देवोंका) विमान है
पूर्व-दक्षिणस्याम्[७/१]। दिशि[७/१]। =पूर्व-दक्षिणदिशामें अर्थात् आग्नेय दिशामें
वह्नि-विमानम्[१/१]। =वह्नि (देवोंका) विमान है
दक्षिणस्याम्[७/१]। दिशि[७/१]। =दक्षिण दिशामें
अरुण-विमानम्[१/१]। =अरुण (देवोंका) विमान है
दक्षिण-अपर-कोणे[७/१]। =दक्षिण पश्चिम कोनमें अर्थात् नैऋत्य दिशामें
गर्दतोय-विमानम्[१/१]। =गर्दतोय (देवोंका) विमान है
अपरस्याम्[७/१]। दिशि[७/१]। =पश्चिम दिशामें
तुषित-विमानम्[१/१]। =तुषित (देवों का) विमान है
उत्तर-अपरस्याम् दिशि[७/१]। =उत्तर पश्चिम दिशा में अर्थात् वायव्यदिशा में
अव्याबाध-विमानम्[१/१]। =अव्याबाध (देवोंका) विमान है
उत्तरस्याम्[७/१]। दिशि[७/१]। =उत्तरदिशामें
अरिष्ट-विमानम्[१/१]। चशब्द-=अरिष्ट (देवोंका) विमान है (सूत्रमें) च शब्दसे
समुच्चिताः[१/३]। =अन्यलौकान्तिक मिलायेगये हैं
तेषाम्[६/३]। अन्तरे[७/१]। =तिन (सारस्वतादि आठ प्रकारके लौकान्तिक देवों) के मध्य में (क्रमसे)
द्वौ[१/२]। द्वौ[१/२]। देवगणौ[१/२]। =दो दो (प्रकार के) देवों के समुदाय हैं अर्थात् सोलह प्रकार के अन्य लौकान्तिक देवोंके समूहऔर हैं।



तद्यथा सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभाः। आदित्यस्य च वह्नेश्चान्तरे चन्द्राभसत्याभाः। वह्न्यारुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकराः। अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्टकामचराः। गर्दतोयतुषितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तररक्षिताः। तुषिताव्याबाधमध्ये आत्मरक्षितसर्वरक्षिताः। अव्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसवः। अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्वविश्वाः॥ सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्॥

तद्यथा*सारस्वत-आदित्य-	=जैसे सारस्वत आदित्य के
अन्तरे*अग्न्याभ-सूर्याभाः	=अन्तराल में अग्न्याभसूर्याभ हैं।
आदित्यस्य।च*वह्नेः।च*अन्तरे	=वह्नि और आदित्य के और वह्नि के बीच में
चन्द्राभ-सत्याभाः। वह्नि-अरुण-	=चन्द्राभ सत्याभ हैं। वह्नि और अरुण के
अन्तराले।श्रेयस्कर-क्षेमकराः।	=मध्यमें श्रेयस्कर क्षेमकर हैं।
अरुण-गर्दतोय-अन्तराले।	=अरुण गर्दतोय के अन्तर वा मध्य में
वृषभेष्ट-कामचराः।	=वृषभेष्ट और कामचर हैं।
गर्दतोय-तुषित-मध्ये।निर्माणरजो	=गर्दतोय और तुषितके बीचमें निर्माणरज
दिगन्तररक्षिताः।तुषित-	=और दिगन्तर रक्षित हैं। तुषित और
अव्याबाध-मध्ये।	=अव्याबाधके बीचमें
आत्मरक्षित-सर्वरक्षिताः।	=आत्मरक्षित और सर्वरक्षित हैं।
अव्याबाध-अरिष्ट-अन्तराले।	=अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तरालमें
मरुद्-वसवः।अरिष्ट-सारस्वत-	=मरुत् और वसु हैं। अरिष्ट और सारस्वतके
अन्तराले।अश्व-विश्वाः।सर्वे।	=बीचमें अश्व और विश्व हैं। समस्त
एते।स्वतन्त्राः।	=ये (चौबीस प्रकारके लौकान्तिक) स्वाधीन हैं
हीन-अधिकत्व-अभावात्।	=क्योंकि (इनके) हीनता, अधिकताका एक



दूसरेसे अभाव है अर्थात् इन चौबीस प्रकारके देवोंमें कोई देव अन्य देवसे हीन अधिक नहीं है वरन् सब समानहैं।

(१)हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिके पृष्ठ १०१में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके मुद्रित पृष्ठ१७४में 'अरिष्टसारस्वतांतरे अश्वविश्वाः' ऐसा पाठ है दोनों पाठ ठीकहैं॥

विषयरतिविरहाद्देवर्षयः इतरेषां देवानामर्च्चनीयाः, चतुर्दशपूर्वधराः, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्याः ॥ आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एकं गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ताः । किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते? इत्यत आह—

विषयरतिविरहात्[५/१] [(१)]देव-ऋषयः[१/३]	=विषयोंमें रागसे रहित होने (के कारण)से देवऋषि अर्थात् देवोंमें ऋषि हैं
इतरेषाम्[६/३] देवानाम्[६/३] अर्चनीयाः[१/३] चतुर्दशपूर्वधराः[१/३]	=अन्य देवोंके पूजनीय अथवा पूज्य हैं ये समस्त देव चौदह पूर्वके धारक हैं अर्थात् अंग और दृष्टिवाद बारहवां अंगमें 'परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और पूर्वगत (चौदह पूर्व) के ज्ञानी हैं देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ४२७ की टिप्पणी
[(२)]तीर्थंकरनिःक्रमण-प्रतिबोधनपराः[१/३] वेदितव्याः[१/३]	=तीर्थंकरके तप कल्याण विषै समझानेमें तत्पर (तल्लीन वा निपुण) जानने चाहिये
आह॰उक्ताः[१/३] लौकान्तिकाः[१/३]ततस्*[(३)]च्युताः[१/३]	=(शिष्य) पूछता है कि लौकांतिकदेव कहेगये। वहां (ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्ग) से चयकर
एकम्[२/१]गर्भवासम्[२/१]अवाप्य = निर्वास्यन्ति॰इति उक्ताः[१/३]	=एक गर्भवास अर्थात् मनुष्य भवको धारण करके मोक्ष जाते हैं ऐसे कहेगये हैं
किम्*एवम्*अन्येषु[७/३]अपि*निर्वाणप्राप्तिकालविभागः[१/१]	=क्या इसप्रकार अन्य देवोंमें भी मोक्षके पावनेके कालका विभाग अथवा पृथकता
[(३)]विद्यते॰ इति* अतः* आह॰	=वर्तमान है(=विद्यते) इसलिये (आचार्य अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) पहिले कोई स्वर ए ऐ ओ औ को छोड़कर आवे उसके पश्चात् ह्रस्व ऋकार होतो ऐसा ऋ स्वरके साथ नहीं मिलता है और मिलता भी है अर्थात् चाहें उसको स्वरके साथ मिलादो चाहें न मिलादो जैसे देव-ऋषिः = देवऋषिः अथवा देव-ऋषि = देवर्षिः। 'देवर्षयः' बहुवचन'देवर्षि'का है। (२) तीर्थंकर-तीर्थ (हितशासनं,-हितकी करनेहारा,आगमं-शास्त्रउपदेशक)करोति तीर्थंकरः तीर्थङ्कर, तीर्थकर इसी अर्थमें होताहै(पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ१७३) (३) 'च्युत्वा'—सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें 'च्युत्वा' पाठ है परन्तु उनके सूत्र २४, २६ में तीन स्थानोंमें और हस्तलिखित तीन प्रति में,इस सूत्रमें) तथा तीन स्थानोंमें सूत्र २४, २६ में और राजवार्तिकके सूत्र २४ में एक स्थानमें सूत्र २६ के पांच स्थानोंमें (च्युताः) शब्द है हमने हस्तलिखित तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक पाठके अनुकूल 'च्युताः' शब्द लिया है ॥ 'च्यु'प्रथम भ्वादि 'पतन होना' अर्थमें है 'च्युत्वा' शब्द भी ठीक है(देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ १६की टिप्पणी दो)॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें २४ सूत्रकी व्याख्यामें 'च्युत्वा' शब्दका प्रयोग है।(३)विद् यहांपर दिवादि चतुर्थगणका धातु है इस गणमें क्रियाका प्रत्यय जोड़नेके पहिले 'य' विकरण जोड़ाजाता है। अर्थ विद् धातुका 'होना' ऐसा है जैसे विद् य ते = विद्यते = वर्तमान है)

॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

आदिशब्दः प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति ॥ कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्युपपादः ।

---

[1]सूत्रम्–विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥ = (वैमानिकाः[2]) विजयादिषु[3] द्विचरमा भवन्ति ॥

विजय-आदिषु[७।३]। वैमानिकाः[१।३] =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित, नव अनुदिश विमानोंमें वैमानिक देव

द्विचरमाः[१।३] भवन्तिT =दो अन्तिम देह धरनेवाले होते हैं वा इनके दो जन्म अन्तके रहजाते हैं ॥

अर्थात् यदेव मनुष्यके दोभव धारणकर मोक्षजातेहैं वा इनके दो मनुष्यभव सिद्धावस्था प्राप्त होनेमें शेष रहजातेहैं भावार्थ ऐसाहै कि नोअनुदिश और विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित इन तेरह विमानोंसे चयकर मनुष्य होय बहुरि संयम आराध कर फिर विजयादिक विमानों उपजैं वहांसे चयकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष पाते हैं ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छब्बीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

आदिशब्दः[१।१] प्रकार-अर्थे[७।१] वर्ततेT तेन[३।१] =सूत्रमें आदिशब्द सादृश्य (जनावने) के अर्थमें है । तिस (आदि शब्द)से

विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-अनुदिश-विमानानाम्[६।३]। =विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित और नव अनुदिश विमानोंका

इष्टानाम्[६।३]। ग्रहणम्[१।१]। सिद्धम्[१।१]। भवतिT =जो वांछित अथवा मानित हैं ग्रहण सिद्ध होता है

कः[१।१]पुनः अत्र प्रकारः[१।१] अहमिन्द्रत्वे[७।१]। सति[७।१]। सम्यग्दृष्टि-उत्पादः=पुनि यहां क्या सदृशता हुई (उत्तर) अहमिन्द्र होनेमें सम्यग्दृष्टिका उत्पाद है

---

(१) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोमें एकसा है ॥ परन्तु उनके यहां नवअनुदिशके नामसे कोई विमान नहीं है इसलिये हमारे यहां तेरह विमानोंके वासीदेव द्विचरमा हैं उनके यहां केवल विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितवासी द्विचरमा हैं देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ ११५ । (२) सोलहवां सूत्रसे 'वैमानिकाः' शब्दकी अनुवृत्ति इससूत्रमें लीगई है (३) "अर विजयादिकनितें, आयजीव एक जन्मभी लेवे अरदो जन्मभी मनुष्यके लेयहैं तातें ऐसो अर्थ है जो विजयादिकनितें चयकर मनुष्य होय, बहुरि संयम आराधि फेर विजयादिकनिमें उपजै तहांते चय मनुष्य होय मोक्ष जायहै ऐसे द्विचरम देहपना है । ऐसे अनुदिश अर चार अनुत्तरके देव ना दोय भवभी धारें एक भी धारें । स्वर्गके आठ युगल हैं तिनमें बारह इन्द्र हैं छह इंद्र दक्षिणके और छह इंद्र उत्तरके इनमें उत्तरके छः इंद्रोंको छोड़कर दक्षिणके जो छह इंद्र (१ सौधर्म २ सानत्कुमार ३ ब्रह्म ४शुक्र ५ आनत ६ आरण) और

सर्वार्थसिद्धिप्रसंग इति चेन्न तेषां परमोत्कृष्टत्वात् । अन्वर्थसञ्ज्ञातः एकचरमत्वसिद्धेः ॥

सर्वार्थसिद्धि-प्रसंगः[1] इति* चेत्* =सर्वार्थसिद्धि (विमानकामी) ग्रहण हुआ ऐसा सन्देह (शिष्यकी ओरसे) है अर्थात् आचार्यके उत्तर देने पर कि विजय आदिक तेरह विमानोंमें सम्यग् दृष्टिके अतिरिक्त कोई जीव जन्म धारण नहीं करता है. शिष्यने यह संदेह किया कि ऐसा करनेमें सर्वार्थसिद्धि का विमान भी ग्रहण होजाता है क्योंकि सर्वार्थसिद्धि विमानमें वसनेवाले देव भी तो अहमिन्द्र ही हैं और सम्यग् दृष्टि ही हैं (उत्तर)

न*तेषाम्[6]परम-उत्कृष्टत्वात्[5]। =नहीं तिन)सर्वार्थसिद्धिवासी देवों,का(ग्रहण)परम उत्कृष्ट होने(के कारण)से (यहांपर) हुआ (क्योंकि सर्वार्थसिद्धि अर्थात् जहां सम्पूर्ण अभ्युदयके अर्थ सिद्धि होगये हैं ऐसी)

अन्वर्थ-सञ्ज्ञातः* =सार्थक संज्ञा वा जैसा नाम है वैसा अर्थ वाली संज्ञा होनेसे

एकचरमत्वसिद्धेः[5]। =एक (मनुष्य)देहके अन्तपनेसे (चरमत्व) सिद्ध होते हैं अर्थात् सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर मनुष्यका एक शरीर धारणकर मोक्ष पाते हैं। इस समस्त प्रश्न और उत्तरका भावार्थ यह है कि शंका करनेपर कि अहमिन्द्र और सम्यग्दृष्टी तो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी भी देव हैं। यदि यहाँ पर मकारका अर्थ यह कियाजायगा कि जो वैमानिकदेव अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि हों वे द्विचरम (=दो भव धारणकर मोक्ष जाते) हैं तबतो सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंको भी दो मनुष्य भव धारण करके पीछे मोक्ष माननी पड़ेगी क्योंकि अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टी वे भी हैं। परन्तु उन्हें शास्त्रमें एक चरमी (=एक भव धारणकर मोक्ष जानेवाला माना) है इसलिये मकार शब्दका जो अहमिंद्र और सम्यग्दृष्टि अर्थ माना है वह अयुक्त है)। उत्तरमें कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव परमोत्कृष्ट हैं। जहां पर सर्व प्रयोजनोंकी सिद्धि हो वह सर्वार्थसिद्धि है। यह सर्वार्थ-सिद्धि शब्दका अन्वर्थरूपसे अभिप्राय है। सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंके किसी प्रयोजनीय कार्य सम्पादन करनेवाला कर्म शेष नहीं रहता जिससे वे दो मनुष्य भव धारणकर मोक्ष जायं अतः मोक्षार्थ वे एकही मनुष्य भव धारण करते हैं और वहांसे मोक्ष चले जाते हैं अतः उनके एक चरमपनाही है द्विचरमपना नहीं है ॥

सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी (जो तीर्थंकरको जन्म समय प्रसूत गृहमेंसे लाय इन्द्रको सौंपै सो सची) सौधर्म स्वर्गके चारों लोकपाल(१ सोम २ यम ३ वरुण ४ कुबेर) और सब लौकान्तिक देव अर सर्वार्थसिद्धिविमानके सब अहमिन्द्रदेव एक भव अवतारी हैं" ॥

चरमत्वं देहस्य । मनुष्यभवापेक्षया द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमाः । विजयादिभ्यश्च्युता
सर्वार्थ अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूत्पद्य संयममाराध्य पुनर्विजयादिषूत्पद्य ततश्च्युताः पुनर्मनुष्यभवमवाप्य
सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम्॥ आह जीवस्यौदयिकेषु भावेषु तिर्यग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं, पुनश्च स्थितौ

८६ चरमत्वम्$^{1}_{6}$।। (१)देहस्य$^{6}_{1}$। =(यहां एक चरमत्वसिद्धेः इस वाक्यमें) चरमत्व शब्द है सो देहका चरमत्व है अर्थात् देहका अवसानपना वा अन्तपना ऐसा चरमत्व शब्दसे अभिप्राय है

मनुष्यभव-अपेक्षया$^{3}_{1}$।। द्वौ$^{1}_{2}$। चरमौ$^{1}_{2}$। देहौ$^{1}_{2}$। येषाम्$^{6}_{3}$। =मनुष्य जन्मकी विवक्षासे दो अन्तिम शरीर जिनके हैं

ते$^{1}_{3}$। द्विचरमाः$^{1}_{3}$। =वे द्विचरमा हैं अर्थात् मनुष्यभवमें संयमको आराधनकर पुनः विजयादि विमानोंमें उत्पन्न होता है। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य होता है और वहांसे फिर मोक्ष चला जाता है किन्तु भव सामान्यकी अपेक्षा यहां पर द्विचरमपना नहीं है अन्यथा दो मनुष्यभव और एक देवभव इस प्रकार तीन चरम देहपना सिद्ध होगा दो चरम देहपना सिद्ध न होसकेगा।

विजयादिभ्यः$^{5}_{3}$। च्युताः$^{1}_{3}$। (२)अप्रतिपतितसम्यक्त्वाः$^{1}_{3}$। =विजयादिक (तरह) विमानोंसे चयकर (निकलकर) अप्रतिपतित सम्यग् दर्शनवाले अर्थात् क्षायिकसम्यग् दर्शन सहित

मनुष्येषु$^{7}_{3}$। उत्पद्य + संयमम्$^{2}_{1}$। आराध्य(३) + पुनः* विजय- =मनुष्योंमें उत्पन्न होकर संयमको धारणकर फिर विजय

आदिषु$^{7}_{3}$। उत्पद्य(३) + ततः* च्युताः$^{1}_{3}$। पुनः* मनुष्यभवम्$^{2}_{1}$। =आदिक (विमानोंमें) उत्पन्न होकर वहांसे च्युत होते हैं। फिर मनुष्यजन्मको

(३)अवाप्य + सिद्ध्यन्तिT इति* द्विचरमदेहत्वम्$^{1}_{1}$।। =प्राप्त होकर मोक्ष जाते हैं। इस प्रकार दो चरम अर्थात् दो अन्तिम देहपना है

आहT जीवस्य$^{6}_{1}$। औदयिकेषु$^{7}_{3}$। भावेषु$^{7}_{3}$। तिर्यग्योनिगतिः$^{1}_{1}$।। =(शिष्य) पूछता है कि जीवके औदयिक भावोंमें तिर्यञ्चगति

औदयिकी$^{1}_{1}$।। इति* उक्तम्$^{1}_{1}$।।। पुनः* च* स्थितौ$^{7}_{1}$। =औदयिकी ऐसे(दूसराअध्याय सूत्र ६में)कथित वा वर्णित है बहुरि स्थितिमेंभी(=च)

(१) देहस्य षष्ठी विभक्तिका एक वचन पुल्लिंग वा नपुंसकलिंग दोनों होसकते हैं। (२) सर्वार्थसिद्धि हस्तलिखित तथा द्वितीयावृत्तिमें, तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'अप्रतिपतित' शब्द है, प्रथमावृत्तिमें'अप्रतिपातित'शब्दहै, ज्ञात होता है कि भूलसे छपगया है (३) उत्पद्य (=उत्पन्न होकर) आराध्य (=आराधनकर) और अवाप्य(=प्राप्त होकर) ये सम्बन्धसूचक भूत कृदन्त है। [४]'योनि'शब्द स्त्रीलिंग,पुल्लिंग दोनोंमें अमरकोश वर्ग १६में आया है।

तिर्यग्योनिजानां चेति । तत्र न ज्ञायते के [१]तिर्यग्योनयः ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारकाः । मनुष्याश्च निर्दिष्टाः । प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्या इति । एभ्योऽन्ये संसारिणो जीवाः शेषास्तिर्यग्योनयो वेदितव्याः ॥

तिर्यग्योनिजानाम् ६/३। च*इति* तत्र*न* ज्ञायतेT	='तिर्यग्योनिजानां च' ऐसे (अध्याय २ सूत्र ३९वांहै)वहां नहीं बतलायागया है कि
के १/३। तिर्यग्योनयः १/३। इति* अत्र* उच्यतेT	=तिर्यग्योनिवाले कौन हैं इसलिये यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

सूत्रम्— [१]औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥ २७ ॥

= औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः (भवन्ति) ॥२७॥

सूत्रार्थः—औपपादिकमनुष्येभ्यः ५/३। शेषाः १/३।	=उपपादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले अर्थात् अध्याय २ सूत्र ३४वां में उक्त देव तथा नारकीजीव और तीसराअध्यायके ३५वां सूत्रमें वर्णितमनुष्योंसेभिन्न अवशेष
तिर्यग्योनयः १/३। भवन्तिT	=तिर्यञ्च योनिज होते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इससत्ताईसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

औप-पादिकाः १/३। उक्ताः १/३। देवनारकाः १/३।	=उत्पादरूप जन्मसे उत्पन्न होनेवाले देव, व नारकी अध्यायदो सूत्र ३४में कहेगये हैं
मनुष्याः १/३। च*निर्दिष्टाः १/३। प्राङ्-मानुषोत्तरात् ५/१। मनुष्याः १/३। इति	=और मनुष्य भी कहेगये हैं कि मानुषोत्तर पर्वतसे पहिले पहिले मनुष्य हैं (अध्याय तीसरेका सूत्र ३५ वां देखो)
एभ्यः ५/३। अन्ये १/३। संसारिणः १/३। जीवाः १/३। शेषाः १/३।	=इन (देव नारकी तथा मनुष्यों) से भिन्न संसारी जीव शेष
तिर्यग्योनयः १/३। वेदितव्याः १/३।	=तिर्यञ्चयोनिवाले जानने चाहिये। (एभ्यः पंचमी बहु वचन पुल्लिंग इदम्‌का है)

[१] 'योनि' शब्द स्त्रीलिंग और पुल्लिंग दोनोंमें "अमरकोश" वर्ग १६ श्लोक ३६ में है परन्तु 'के' बहुवचन पुल्लिंग में है अतः "योनयः" भी बहुवचन पुल्लिंगमें है। [२]श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "औपपादिक" शब्दके स्थानमें 'औपपातिक' है। शेषपाठ दोनों आम्नायोंमें एकहै अर्थभीएकसाहै।

तेषां तिरश्चां देवादीनामिव क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः। सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्तः ॥ आह स्थितिरुक्ता नारकाणां, मनुष्याणां तिरश्चां च। देवानां नोक्ता। तस्यां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता॥

पुनः*तेषाम्[६/३] तिरश्चाम्[६/३] देव-आदीनाम्[६/३] इव*	=और उन तिर्यञ्चोंका देवादिकों के समान (=इव)
क्षेत्रविभागः[१/१] निर्देष्टव्यः[१/१]	=क्षेत्रविभाग अर्थात् जिस क्षेत्रमें तिर्यञ्च पाये जावें सो कहना चाहिये
सर्वलोक-व्यापित्वात्[५/१] तेषाम्[६/३] क्षेत्रविभागः[१/१] न*उक्तः[१/१]	=(परन्तु) सर्वलोकमें पायेजानेसे उन (तिर्यञ्चों) का क्षेत्रविभागनहीं कहागया
आह। स्थितिः[१/१] उक्ता[१/१] नारकाणाम्[६/३] मनुष्याणाम्[६/३]	=(शिष्य) पूछता है कि आयु नारकोंकी कही गई, मनुष्योंकी
तिरश्चाम्[६/३] च*देवानाम्[६/३] न*उक्ता[१/१] तस्याम्[७/१]	=तिर्यञ्चोंकी भी (=च, कहीगई) देवोंकी नहीं कहीगई उसके
वक्तव्यायाम्[७/१] आदौ[७/१] उद्दिष्टानाम्[६/३] भवनवासिनाम्[६/३]	=कहनेकेआदिमें(इसअध्यायकासूत्र २,३,१० में)उपदेशकियेगयेभवनवासीदेवोंकी
स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्[१/१] आह।	=आयुके कहनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्[(१)]—स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिता ॥ २८ ॥

= (परा[२]) स्थितिः—असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणाम्-सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्द्धहीनं[२] इता भवति[३])

परा[१/१] स्थितिः[१/१] असुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-	=उत्कृष्टआयु असुर कुमार, नाग कुमार, सुपर्ण कुमार, द्वीपकुमार, और
शेषाणाम्[६/३]	=बचे हुए (छह विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वातकुमार-स्तनितकुमार-उदधि-कुमार-दिक्कुमारों) की (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

(१) हमारे यहांके इससूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर आम्नायके'सभाष्य'में २९,३०,३१,३२ सूत्र दियेहैं। उनमें 'स्थितिः' यह २९ वां सूत्र अधिकारसूत्रहै

(२) तेतीसवां सूत्रके 'अपरा' शब्दको देखनेसे जिस सूत्रसे अड़तीसवां सूत्रतक जघन्य स्थितिका कथनहै और विशेषतः ३७वां सूत्रपर दृष्टिकरनेसे जिसमें भवनवासी देवोंकी जघन्य स्थिति दश सहस्र वर्षकी वर्णित है यह आशय झलकता है कि इस २८ वां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका वर्णन है अतः मैंने इस सूत्रमें 'परा' (=उत्कृष्ट) शब्दको जोड़कर अर्थ किया है 'अपरा' का प्रतिकूल परा है ॥

(३) हीनमिता-स्मरण रहे कि 'इता' शब्द का अर्थ प्राप्त ऐसा है और 'मिता' शब्दका अर्थ 'परिमित' मापा हुआ (पद्मचन्द्रकोश पृ ६६) है ॥ यहां पर'हीनमिता'=हीनम्-इता ऐसा पदच्छेदहै नकि हीन-मिता क्योंकि इताजो प्रथमा विभक्ति-एकवचन-स्त्रीलिंगहै उसका अन्वय'स्थिति'शब्दके साथहै।

असुरादीनां सागरोपमादिभिर्यथाक्रममत्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः ॥ इयं स्थितिरुत्कृष्टा । जघन्याऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते ॥ तद्यथा-असुराणां सागरोपमा स्थितिः । नागानां त्रिपल्योपमा स्थितिः सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे ।

सागरोपम-त्रिपल्योपम-अर्धहीनम्$^{1}_{1}$॥ इता$^{1}_{1}$॥	=एक सागर प्रमाण-तीन पल्यप्रमाण उससे आधी आधी पल्य प्रमाण घाटि तीनस्थानमें =मात है (हीनम्-इता$^{1}_{1}$॥भवति) अर्थात् उत्कृष्ट आयु असुर कुमारों की एक सागर है, नाग कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्यहै, सुपर्ण कुमारोंकी उत्कृष्ट आयु ढाई पल्य है, और द्वीप कुमारोंकीउत्कृष्ट आयु दो पल्यहै,शेष छह विद्युत्कुमारोंकी-अग्निकुमारोंकी-वात कुमारोंकी-स्तनित कुमारोंकी,उदधिकुमारोंकी.दिक्कुमारोंकी-उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ डेढ़पल्य है॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित अट्ठाईसवां(१) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

असुरादीनाम्$^{6}_{3}$।सागरोपमादिभिः$^{3}_{3}$।यथाक्रमम्*अत्र*	=असुरादिकोंका सागर प्रमाणादिक गणनाकरि क्रमसे यहां
अभिसम्बन्धः$^{1}_{1}$।वेदितव्यः$^{1}_{1}$।इयम्$^{1}_{1}$।स्थितिः$^{1}_{1}$।उत्कृष्टा$^{1}_{1}$।	=सम्बन्ध जानना चाहिये । यह आयु उत्कर्ष है
जघन्या$^{1}_{1}$।अपि*उत्तरत्र*वक्ष्यते-तद्यथा*असुराणाम्$^{6}_{3}$।	=जघन्य (स्थिति) भी यहांसे आगे (सेंतीसवांसूत्रमें) कहेंगे । जैसे असुर कुमारोंकी
सागरोपमा$^{1}_{1}$।स्थितिः$^{1}_{1}$।नागानाम्$^{6}_{3}$।त्रिपल्योपमा$^{1}_{1}$।स्थितिः$^{1}_{1}$।	=सागर प्रमाण आयु है । नाग कुमारोंकी तीन पल्य प्रमाण आयु है
सुपर्णानाम्$^{6}_{3}$।अर्द्धतृतीयानि$^{1}_{3}$।द्वीपानाम्$^{6}_{3}$।द्वे$^{1}_{2}$।	=सुपर्ण कुमारोंकी ढाई (पल्यप्रमाण आयु)है द्वीप कुमारों की दो(पल्योपम) आयु है

(१)हमारे यहांके इस अट्ठाईस[२८]वां सूत्रमे स्थिति शब्द जो आदिमें आयाहै उसको श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें उनतीसवांसूत्र माना है और उसका तात्पर्य यह है कि इस सूत्रसे अध्याय के अन्त तक देवोंकी स्थिति का कथन करेंगे अर्थात् उनके यहां यह अधिकार सूत्र है और प्रयोजन यह है कि अग्रिमके सर्व सूत्रोंमें अध्यायके अन्ततक 'स्थिति' शब्दको प्रत्येक सूत्रमें लगालो । मेरी समझमें यह विधान ठीक है क्योंकि ऐसा माननेमें कोई अक्षर और शब्द अधिक नहीं होता और दो बातें प्रगट होजाती हैं प्रथम यह कि यहांसे इस अध्यायके अन्ततक सब आयुका ही प्रकरण है और दूसरी बात यह कि इस 'स्थिति' शब्दकी अनुवृत्ति सर्व सूत्रोंमें इस सूत्रसे अध्याय पर्यंत लेलीजाती है ॥ दिगम्बर आम्नायके इस अट्ठाईसवां सूत्रमें दश भवनवासी देवोंकी आयु वर्णित है वेही स्थितियें कुछ भेदके साथ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित तीन सूत्रोंमें उन्हीं दश भवन वासी देवोंकी आयुका कथन किया गया है ॥

शेषाणां षण्णामध्यर्द्धपल्योपमम् ॥

आद्यदेवनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्ते सति तदुल्लंघ्य वैमानिकानां स्थितिरुच्यते। कुतः ?तयोरुत्तरत्र लघुनोपायेन स्थितिवचनात् ॥ तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिविधानार्थमाह—

शेषाणाम्[६]। षण्णाम्[६]।	=बचे हुए छह (विद्युत कुमार-अग्नि कुमार-वात कुमार-स्तनितकुमार-उदधिकुमार दिक्कुमारों) की (स्थिति)
अध्यर्द्धपल्योपमम्[१]।।	=आधी अधिक सहित एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़ पल्य प्रमाण है
आद्य-देव-निकाय-स्थिति-अभिधानात्[५]।। अनन्तरम्[१]।।	=प्रथम अर्थात् भवन वासी देवोंके समुदायकी स्थितिके कहनेसे अत्यन्त समीप
व्यन्तर-ज्योतिष्क-स्थिति-वचने क्रमप्राप्ते[७]।। सति[७]।।	=व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी आयुके कथन (वचन) विषैं क्रम प्राप्त होने पर
तत् * उल्लङ्घ्य + वैमानिकानाम्[६]। स्थितिः[१]। उच्यते।	=उस (क्रम)को छोड़कर वा त्यागकर वैमानिक देवोंकी आयु कही जाती है
कुतः ? * तयोः[६]। उत्तरत्र *	=(प्रश्न)क्योंकर उन(व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवों)की(स्थिति)यहांसे आगे(कही जायगी)
लघुना[३]-उपायेन[३]।	=(उत्तर) लघुकरणद्वारा वा लघुसाधनद्वारा (उन व्यन्तर तथा ज्योतिषी देवोंकी)
स्थिति-वचनात्[५]।।	=स्थितिका कथन होगा अर्थात् अग्रिमसूत्रोंमें वर्णन करेंगे जो सूत्र उनसे पहिले सूत्रोंसे अनुवृत्ति लेनेके निमित्तसे लघु होंगे देखो ३८-३९-४०-४१ सूत्र जो कितने लघु हैं और जिनसे स्पष्ट है कि यदि व्यन्तर ज्योतिषियोंकी स्थिति २८वांसूत्र के अनन्तर कहते तो इन सूत्रोंकी इतनी लघु रचना कदापि नहीं होसकती थी
तेषु[७]। च * आदौ[७]। उद्दिष्टयोः[७]। कल्पयोः[७]।	=और तिन (वैमानिक देवों) विषैं आदिमें कहे हुए (सौधर्म और ऐशान) स्वर्गोंमें
स्थिति-विधान-अर्थम्[१]।। आह।	=आयुके नियम के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

भवनेषु दक्षिणार्धाधिपतीनां पल्योपममध्यर्धम् ॥ ३० सूत्र ॥ (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

भवनेषु[७]। दक्षिणार्धाधिपतीनाम्[६]।	=भवनवासी (देवों) में दक्षिणार्धाधिपति (देव) तिनका अर्थात् (विद्युत अग्नि स्तनित और द्वीप कुमारों की
पल्योपमम्[१]।। अध्यर्धम्[१]।।	=अर्ध अधिक (साढ़) एक पल्य प्रमाण अर्थात् डेढ़पल्य प्रमाण[परा स्थिति-उत्कृष्ट स्थिति]है ॥३०सूत्र॥

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ११ वां सूत्रमें (=हमारे यहांके दश १० वां सूत्रके) कथित दो दो भवनवासी इन्द्रोंमेंसे पूर्व पूर्वका इन्द्र दक्षिणार्धाधिपति कहाजाताहै और दूसरा उत्तरार्धाधिपतिहै [सभाष्य० पृष्ठ११५ सेउद्धृत]॥ तात्पर्य ऐसा है कि दश भवनवासियोंमेंसे सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके निम्न लिखित ३२ वां सूत्रमें वर्णित असुर कुमारेंद्र और नाग कुमारेंद्रको निकालकर जिनकी उत्कृष्टस्थिति अनुक्रमसे सागरोपम और कुछ अधिक सागरोपम है॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके तीसवां सूत्रके अनुकूल शेष चार विद्युत कुमार दक्षिणार्धाधिपति की डेढ़ पल्योपम परास्थिति है। अग्निकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, स्तनितकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है, द्वीपकुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी डेढ़ पल्योपम परास्थिति है॥

शेषाणां पादोने ॥ ३१ वां सूत्र ॥ (सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ ११५ से उद्धृत)

शेषाणां६।पाद-ऊने७॥। =(भवनवासियोंमेंसे) बचे हुए उत्तरार्धाधिपतिनिकी एक पाद से हीन दो अर्थात् पौने दो (पल्योपम परास्थिति है) भावार्थ ऐसा है कि चार सुपर्ण कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति है, वात कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दो पल्योपम उत्कृष्ट आयु है, उदधिकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौने दोपल्योपम उत्कृष्ट अवस्था है, दिक्कुमार उत्तरार्धाधिपतिकी पौनेदोपल्योपम अधिकसे अधिक स्थिति है॥

असुरेन्द्रयोः सागरोपममधिकं च ॥३२ वां सूत्र सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके पृष्ठ११५सेउद्धृत

=असुरेन्द्रयोस्तु दक्षिणार्धाधिपत्युत्तरार्धाधिपत्योः सागरोपममधिकं च यथासंख्यं परास्थितिभवति

तु॰दक्षिणार्धाधिपति-उत्तरार्धाधिपत्योः६।असुरेन्द्रयोः६। =और दक्षिणार्धाधिपति उत्तरार्धाधिपति दोनों असुरेन्द्रों की
सागरोपमम्१॥अधिकं१॥।च॰यथासंख्यम्॰परा१॥स्थितिः१॥ =एक सागर प्रमाण और [=च] कुछ अधिक सागर प्रमाण क्रम से उत्कृष्ट आयु
भवतिT =होती है अर्थात् असुर कुमार दक्षिणार्धाधिपतिकी उत्कृष्ट आयु एक सागर प्रमाण है औरनागकुमार उत्तरार्धाधिपतिकी अधिकसे अधिकस्थिति कुछअधिक एकसागर है॥

ये सब दशों "कुमारोंके समान रमणीय दर्शन, सुकुमार, मृदु, मधुर तथा ललित गतिवाले, शृंगार सहित सुन्दर रूप विक्रिया युक्त होते हैं॥ और कुमारोंके तुल्य उद्धृतरूप, वेष, भाषा, आभरण, अस्त्रशस्त्रादि प्रहरण, वस्त्र तथा यान वाहनादि युक्त होते हैं। और कुमारोंके ही समान इनका व्यक्त अर्थात् स्पष्टराग क्रीडामें तत्पर रहता है, अतएव इन्हें कुमार कहते हैं। इनमें असुर कुमार असुरकुमारके आवासमें रहते हैं और शेष भवनोंमें निवास करते हैं। महामन्दरके दक्षिण और उत्तर दिग्विभागोंमें अनेक लाख योजन कोटी कोटीयोंमें असुर कुमारोंके आवास हैं और भवन॥ दक्षिणार्धाधिपतियोंके और उत्तरार्धाधिपतियोंके यथास्वं हैं। वहां रत्नप्रभामें बहल भागके अर्ध मध्यमें प्रवेश करके मध्यमें भवन हैं॥ भवनोंमें जो रहते हैं उन्हें भवनवासी कहते हैं॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र के पृष्ठ ९६ से उद्धृत॥

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे [1]अधिके ॥ २९ ॥

सूत्रम्—सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २६ ॥

= (परा-स्थितिः सूत्र २८वां से) सौधर्म-ऐशानयोः सागरोपमे अधिके (भवति)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके २६-३०-३१-३२ और हमारे यहांके २८ वां सूत्रको मिलाकर विचार पूर्वक पढ़नेसे भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भेद दोनों सम्प्रदायोंमें निम्न सूचीसे भले प्रकार विदित होता है ॥ जैसे

भवन वासी देवका नाम ॥	श्वेताम्बरआम्नायके अनुसार उत्कृष्टस्थिति	दिगम्बरआम्नायके अनुकूलउत्कृष्ट आयु	सूचना
(१) असुर कुमार	एक सागर प्रमाण } सभाष्य०	एक सागर प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	दोनों सम्प्रदायोंमें असुर-कुमारकी आयु एक सागर प्रमाण है और विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनितकुमार की आयु डेढ़ डेढ़ पल्यकी है अवशेष छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें दोनोंसम्प्रदायोंमेंभेदहै जैसाकि सूची से प्रगट है ॥
(२) नाग कुमार	एकसागरप्रमाणसेकुछअधिक } सूत्र३२देखो	तीन पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(३) विद्युत्कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(४) सुपर्ण कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	ढाई पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(५) अग्नि कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(६) वात कुमार	पोने दोपल्य प्रमाणसभाष्य० सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(७) स्तनित कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(८) उदधि कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१ देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(९) द्वीप कुमार	डेढ़ पल्य प्रमाण सभाष्य० सूत्र ३० देखो	दो पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	
(१०) दिक्कुमार	पोने दोपल्य प्रमाण सभाष्य०सूत्र३१देखो	डेढ़ पल्य प्रमाण (सूत्र २८ देखो)	

(१) दिगम्बर आम्नायमेंसर्वार्थसिद्धि वृत्तिके दोनों संस्करणोंमें 'अधिके' पाठ है, हस्त लिखित प्रतिमें 'ऽधिके' पाठ है अन्य अन्य पुस्तकोंमें कहीं कहीं पर अधिके' पाठ है और कहीं कही पर 'ऽधिके' पाठ भी है दोनों पाठ ठीक हैं देखो इस अनुवाद का अध्याय १ पृष्ठ १० की टिप्पणी (२)तेतीसवां सूत्रमें सौधर्म ऐशान स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति कही है और इस तेतीसवांसूत्रकी आदिमें 'अपरा' शब्द लाये हैं इससे स्पष्ट है कि इस सूत्र में उपर्युक्त दोनों स्वर्गोंकी ही उत्कृष्ट स्थिति कही है और परा शब्द का आवश्यकता से अध्याहार करना योग्य है ॥ अतः हमने 'परा' शब्द जोड़ा है ।

सागरोपमे इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगतिः । अधिके इत्ययमधिकारः । आ कुतः ? आ सहस्रारात्

¹सूत्रार्थः-परा॥ स्थितिः॥ (सूत्र २८ वां से उद्धृत)	=उत्कृष्ट स्थिति अथवा आयु
सौधर्म-ऐशानयोः॥ सागरोपमे॥ अधिके॥ ॥२९॥	=सौधर्म ऐशान (स्वर्गों) में दो सागर प्रमाण और कुछ अधिक है ॥२९॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उनतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

सागरोपमे॥ इति*द्वि-वचन-निर्देशात्॥ द्वित्व-गतिः॥	=(इस २९ वां सूत्र में) 'सागरोपमे' ऐसे दो वचनके कथनसे दोकी प्राप्ति(=गति) है
अधिके॥ इति*अयम्॥ अधिकारः॥ आ*कुतः* ?	=(सूत्रमें) 'अधिके' ऐसे यह प्रकरण है ॥ कहां तक (=आ) ('अधिके' शब्दका विषय है)
आ*²सहस्रारात्॥	=(उत्तर) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग) तक (=आ) ('अधिके' शब्द का अधिकार है)

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इस सूत्रका लगभग तात्पर्य नीचे के तीन सूत्रमें ऐसे दिया है कि सौधर्मादिषु यथाक्रमम् ॥३३॥ अर्थात् सौधर्मादिक (कल्पोंमें) क्रमानुसार परा (उत्कृष्ट) स्थिति कहेंगे ॥ सागरोपमे ॥३४॥ अर्थात् सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो सागर प्रमाण है ॥ अधिके च ॥३५॥ अर्थात् और (=च) कुछ अधिक दो सागर प्रमाण ऐशान कल्पके देवोंकी स्थिति है। हमारे यहांके इस सूत्रके अर्थमें और श्वेताम्बर आम्नायके उक्त तीन सूत्रोंके तात्पर्यमें यह भेद हुआ कि हमारे यहां सौधर्म स्वर्गके देवोंकी आयु कुछ अधिक दो सागर प्रमाण मानी है परन्तु श्वेताम्बर आम्नायमें केवल दो सागर है ऐशान स्वर्गके देवोंकी स्थिति दोनों आम्नायों में एकसी है अर्थात् दो सागरसे कुछ अधिक है (२) आङ् (= आ) अव्यय जब 'प्रगृह्य' (=व्याकरणमें स्वरसन्धि न होने योग्य पद जैसे आ एवं मन्यसे ओह तुम ऐसा मानते हो) नहीं तब चार अर्थोंमें आता है (i) थोड़ा-जैसे-आ + उष्णम् = ओष्णम् = थोड़ा तप्त (ii) जब क्रिया के प्रथम आता है तब निकटके अर्थमें और चलना, लेना, देना इत्यादि क्रियापदोंके साथमें उक्त क्रियाओंके प्रतिकूल अर्थों का द्योतक होता है जैसे गच्छति वह जाता है, आगच्छति वह = आता है ददाति = वह देता है, आदत्ते वह लेता है ॥ (iii) मर्यादा (जो सीमा कहीजाय उसके बाहर बाहर) (iv) अभिविधि अर्थमें (जो सीमा कही जाय उसको मिलाकर देखो प्रथम अध्याय पृष्ठ ७३ की टिप्पणी चार) जहां तक मेरा ज्ञान है उमास्वामीने इस चौथे अर्थमें सर्वत्र प्रयोग किया है देखो अध्याय १, सूत्र ३०, अध्याय २ सूत्र ४३, अध्याय ४ सूत्र ७, अध्याय ५ सूत्र ६, अध्याय ६ सूत्र १७, अध्याय ६ सूत्र २७, अध्याय १० सूत्र ४, इसी अर्थमें यहां 'आ सहस्रारात्' वाक्यमें पूज्यपाद स्वामीने प्रयोग किया है अर्थात् सागरों से 'कुछ अधिक' आयुका सम्बन्ध 'सहस्रार स्वर्गको समाविष्ट, वा अन्तर्गत करते हुये है ॥

घातायुष्कसम्यग्दृष्ट्यपेक्षया किञ्चिदूनार्द्धसागरोपममधिकंभवति सौधर्मकल्पात्सहस्रारपर्यन्तम् ॥ सम्मेघादेऊणंसायरदलमहियमासहस्सारा इति वचनात् ॥

घात-आयुष्क-सम्यग्दृष्टि-अपेक्षया॥	=सम्यग्दृष्टि जीवकी विवक्षासे घातायुष्क अर्थात् पूर्व भवमें विशुद्ध परिणामोंसे बंधीहुई आयुका पश्चात् संक्लेश परिणामोंसे घटिजाना अथवा न्यून होजाना
किञ्चित्-ऊन-अर्द्ध-सागरोपमम्॥ अधिकम्॥	=कुछन्यून (अर्थात् अन्तर्मुहूर्त घाटि) आधे सागर प्रमाण अधिक
सौधर्म-कल्पात्॥ सहस्रारपर्यन्तम्॥ भवति	=सौधर्मस्वर्गसे सहस्रार तक (की पृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होय है—(क्योंकि)

। इदं तु कुतोज्ञायते ? उत्तरत्र तुशब्दग्रहणात् । तेन सौधर्मैशानयोर्देवानां द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतव्ये ॥ उत्तरयोः स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

[१] आ*इदम्[१]॥ तु*	=(प्रश्न) तो (=तु) यह 'आ' अर्थात् 'आ' सहस्रारात् भावार्थ सहस्रार तक 'अधिके' का अधिकार है ॥
कुतः*ज्ञायते । उत्तरत्र*तुशब्दग्रहणात्[५]॥	=क्योंकर जानाजाता है(उत्तर)यहांसे आगे (इकतीसवां सूत्रमें) 'तु' शब्दकेलानेसे
तेन[३] सौधर्म-ऐशानयोः[७] देवानाम्[६] द्वे[१]॥ सागरोपमे[१]॥	=तिससे सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें देवोंके दो सागर प्रमाण
सातिरेके[१]॥ प्रत्येतव्ये[१]॥	=अधिक सहित जानना चाहिये अर्थात् 'सौधर्मैशान'में दो सागरसे कुछअधिकहै
उत्तरयोः[७] स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[१]॥ आह	=(सौधर्म-ऐशानसे)अगले दो (स्वर्गों)में आयुका विशेष जाननेके लिये कहतेहैं कि

सम्मे[७]॥ घादं[१]॥ ऊणं[१]॥ (=सम्यक्त्वे[७]॥ घाते[७]॥ ऊनम्[१]॥)	=सम्यक्त्व (अवस्था) में घातायुष्क विषैं (अन्तर्मुहूर्त)न्यून
सायर-दलम्[१]॥ अहियम्[१]॥ (=सागर-दलम्[१]॥ अधिकम्[१]॥)	=आधे (=दल) सागर (आयु प्रथम युगल से) अधिक
आ*सहस्सारा[५]॥ [आ*सहस्रारात्[५]॥] इति*वचनात्[५]॥	=सहस्रार तक(कीपृथक् पृथक् नियमित स्थितिसे) होतीहै। ऐसा(वाक्यउपर्युक्तआया)है

इस सूत्रका भावार्थ यह है कि पूर्व भवमें किसी जीवने विशुद्ध परिणामोंसे आयु का बंध अधिक किया था, पश्चात् संक्लेश परिणामोंके वशसे आयु घटाय थोड़ी रक्खी तिस जीवको घातायुष्क कहिये। जैसे कोई मनुष्य ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्गका आयु दश सागर प्रमाण बंध किया। फिर उसही मनुष्यभवमें संक्लेश परिणामोंके बंधनेसे आयुकी स्थितिका घात करके सौधर्म ऐशानमें जाय उपजा सो घातायुष्क है। सो अन्य देवोंकी अपेक्षा दो सागर प्रमाण आयुते अंतर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक आयु पावै है ॥ आयु का घात दो प्रकार है एक अपवर्तन घात दूजा कदली घात तहां बध्यमान आयु का घटावना सो अपवर्तन घात है अर भुज्यमान आयुका घटावना कदली घात है। देवोंमें कदली घात संभव नहीं है ॥

[१] सर्वार्थसिद्धि वृत्तिकी द्वितीयावृत्तिमें और हस्तलिखित पुस्तकमें 'आ' नहीं है, प्रथमावृत्तिमें 'आ' है दोनों ही पाठ ठीक हैं क्योंकि इदम् आ और इदम् का वोही अर्थ है ॥ कई संख्याओं (जैसे विंशति-त्रिंशत्-चत्वारिंशत् इत्यादि) के अतिरिक्त विशेष्य और विशेषणके कारक, वचन, लिंग एकहीहोते हैं इसलिये 'इदम्' के साथ 'आ' की विभक्ति लिंग और वचन भी वही होना चाहिये। 'आ' अव्यय है और अव्यय वह शब्द है जो तीनों लिंग सातों विभक्ति और सब वचनोंमें विकार वा रूप की पलटन को प्राप्त न हो ॥ जैसा कि कहागया है कि 'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु । वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम्=जो[शब्द] समान तीन लिंगोंमें, और (=च) सब [सातों] विभक्तियोंमें और (=च) सब [तीनों) वचनोंमें विकारको प्राप्त नहीं होता है वह अव्यय है ॥

॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयोः कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थितिः ॥

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सूत्रम्—सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ = सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त-सागरोपमाणि (४ अध्याय-सूत्र २९ से) अधिकानि (४ अध्याय सूत्र-२९ से) परास्थितिः (४ अध्याय सूत्र २८ से) भवति

(१) सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त सागरोपमाणि अधिकानि परा स्थितिः = सानत्कुमार (तीसरे) और (माहेन्द्र (चौथे स्वर्गों) में सात सागर प्रमाण
=और कुछ अधिक उत्कृष्ट आयु है ॥

वृत्त्यनुवादः—अनयोः कल्पयोः देवानाम् = इन दो (सानत्कुमार और माहेन्द्र) स्वर्गों में देवों की

सप्त-सागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थितिः = सात सागर प्रमाण अधिक सहित उत्कृष्ट आयु है (=सातसागरसे अधिक है)

ब्रह्म-लोकादिषु अच्युत-अवसानेषु स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह = ब्रह्मलोकादिकमें (और) अच्युत (सोलहवां स्वर्ग) पर्यन्तविषै आयुकाविशेष
=जानने के लिये आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(२) सूत्रम्—त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

(यह सूत्र इतना सार गर्भित है कि बहुत सी अनुवृत्तियों अथवा अध्याहार द्वारा इसका अर्थ पूरा करनेके लिये पहिले पहिले इससूत्र के दो भाग करके अनुवाद शब्दशः करना पड़ा है, दूसरे यह कि भले प्रकार समझाने के लिये इस सूत्रकी (में) पूर्ण रूप से अनुवृत्तियों को लाकर और शब्दोंका अध्याहार करके छह सूत्रोंमें इस सूत्रको डाल दिया है)

(२) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र में "सप्तसानत्कुमारे" ॥३६॥ यह सूत्र है = सानत्कुमार कल्पके देवोंकी सात सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति है—हमारे यहां इस तीसवां सूत्रमें सानत्कुमार स्वर्गमें उत्कृष्ट आयु सात सागरसे कुछ अधिक है ॥ माहेन्द्र कल्पमें भी हमारे यहां उत्कृष्ट आयु सात सागर प्रमाणसे कुछ अधिक है। इतनी ही स्थिति माहेन्द्र स्वर्गमें श्वेताम्बरआम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके ३७ वां

त्रि-सप्त-नव-एकादशभिः[3]।।अधिकानि[1]।। (३१ सूत्रसे[1]) =तीन-सात-नौ-ग्यारह अधिक सहित (=अधिकानि इस ३१ वां सूत्र से)

सप्त[1]सागरोपमाणि[1](३०वांसूत्रसे)अधिकानि(२९वांसूत्रसे) =सात सागर प्रमाण और कुछ अधिक

परा[1]।।स्थितिः[1]।। (२८ वां सूत्रसे) [2]ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर- =उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर

लान्तवकापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतारसहस्रारेषु[3]। =लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र, शतार सहस्रार (स्वर्गों) में है अर्थात् ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर पांचवें और छठवां स्वर्गामें उत्कृष्टआयु कुछ अधिक (सात+तीन) दश सागर प्रमाण (प्रत्येकमें) है। लान्तव सातवां स्वर्ग कापिष्ठ आठवां कल्पमें उत्कर्ष आयु कुछ अधिक (सात+सात) चौदह सागर (प्रत्येकमें) है। शुक्र नववां स्वर्ग, महाशुक्र दशवां स्वर्गमें उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक (नव+सात) सोलह सागर (प्रत्येकमें) है। शतार ग्यारहवां स्वर्ग सहस्रार बारहवां स्वर्गमें उत्कर्ष स्थिति कुछ अधिक (ग्यारह+सात) अठारह सागर प्रमाण प्रत्येक में है। स्मरण रहे कि श्वेताम्बर आम्नायमें ब्रह्मोत्तर-कापिष्ठ-शुक्र और शतार ये चार स्वर्ग नहीं हैं उनके यहां केवल १२ स्वर्ग माने हैं हमारे यहां सोलह कल्प माने हैं ॥

[3]तु॥त्रयोदश-पञ्चदशभिः[3]अधिकानि[1]।।(३१वांसूत्रसे) =परन्तु(=तु)अर्थात् कुछअधिक स्थितिको छोड़कर तेरह पंद्रहकरि अधिक सहित

सप्त-सागरोपमाणि(३०वांसूत्रसे)परा[1]।।स्थितिः[1]।।(२८वांसूत्रसे)=सात सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति (यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

सूत्रसे विदित है ॥ माहेन्द्र कल्पमें दोनों आम्नायके अनुकूल एकसी स्थिति उत्कृष्ट है अर्थात् सात सागरसे उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में इससूत्रके स्थानमें ऐसा सूत्रहै "विशेषत्रिसप्तदशैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानिच" ३७ हमारे यहांके इकतीसवां सूत्रसे इस सैंतीसवां सूत्रमें विशेष शब्द अधिक है नव के स्थान में दश है 'तु' के स्थानमें 'च' है। शेष पाठ दोनों सम्प्रदायों में एक है ॥ दोनों आम्नायोंके पूर्व सूत्रसे इस सूत्रमें 'सप्त' शब्द की अनुवृत्ति आती है। इसलिये 'विशेष' =विशेष+अधिकानि इसमें सप्त अनवर्त मानाको जोड़कर विशेष+अधिक+सप्त इतनी आयु अर्थात् सात सागरसे कुछ अधिक माहेन्द्र स्वर्गके देवोंकी है सो हमारेयहांकी आयुसेमिलती है॥

(२) ब्रह्मब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्र-शतार सहस्रारेषु ये शब्द (यह देखकर कि २९ वां सूत्रमें सौधर्मैशानयोः तथा ३० वां सूत्रमें सानत्कुमार माहेन्द्रयोः इन स्वर्गोंके आचार्य ने नाम लिये हैं) अध्याहार किये गये हैं अथवा यों समझोकि इस अध्यायके १९ वां सूत्र से 'ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र-शतार सहस्रारेषु अनुवर्तन है ॥

(३) 'तु' शब्द अव्यय है, यहांपर परन्तु, किन्तु के अर्थात् भेद के अर्थमें प्रवर्तता है कभी वाक्यके पहिले नहीं आता है जिस अथवा जिन शब्दोंसे सम्बन्ध रखता है उसके अथवा उनके पश्चात् आता है जैसे यहां पर इस सूत्रके स्पष्टताके लिये मैंने 'तु' को उन शब्दोंसे (के) प्रथम रखदिया है जिनसे उनका सम्बन्ध है अर्थात् ऐसा अर्थ होता है कि सौधर्म स्वर्गसे सहस्रार तक उत्कृष्ट आयुसे कुछ अधिक आयु है आगे भेद (=तु) यह है कि पूरे पूरे सागरों की उत्कृष्ट स्थिति है 'स+अधिक' नहीं है ॥

आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु7/3। =आनत, प्राणत, आरण, अच्युत (स्वर्गों) में है अर्थात् आनत तेरहवांस्वर्ग, प्राणत चौदहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कर्ष आयु(तेरह + सात)पूरे बीस सागरकी है और आरण पन्द्रहवां स्वर्ग अच्युत सोलहवां स्वर्ग (प्रत्येक) में उत्कृष्ट स्थिति (पंद्रह + सात) पूरे बाईस सागरकी है ॥ उपर्युक्तचारों स्वर्गोंमें पूरे पूरे सागरोंकी ही आयु है कुछ कुछ अधिक नहीं है इससे इस सूत्रमें 'तु' शब्द लाये हैं ॥

(अ) (ii) इस सूत्रको छह सूत्रोंमें विभाग करके अनुवृत्तियों और अध्याहारों द्वारा निम्न लेखसे अर्थको स्पष्ट करदिया है ॥

(1)त्रिभिः3/3।।।अधिकानि1/3।।।(इसी सूत्रसे)(3)सप्त1/3सागरोपमाणि1/3।।।(२६और३०सूत्रोंसे)=तीनकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्दशसागरप्रमाण स-(3)अधिकानि1/3।।।(=सातिरेकानि सूत्र २६और वृत्ति सूत्र २६ से) परा1/1।।स्थितिः1/1।। =और कुछ अधिक (कुछ अतिरेक) उत्कृष्ट आयु ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः7/2।कल्पयोः7/2।भवतिT =ब्रह्मलोक पांचवां स्वर्गमें औरब्रह्मोत्तर छठास्वर्गमेंहोतीहै सारांश ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर स्वर्गोंमें कुछ अधिक दश सागर उत्कृष्ट स्थिति है

(इ) सप्तभिः3/3अधिकानि1/3।।।(इसी सूत्रसे) सप्त1/3सागरोपमाणि1/3।।।(३०.२६सूत्रोंसे) =सातकरि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्१४सागर स-अधिकानि1/3।।।(=सातिरेकानि-सूत्र २६ और वृत्ति सूत्र २६ से) परा1/1।।स्थितिः1/1।। =औरकुछअधिकअर्थात्१४सागरसेभीकुछअधिकउत्कृष्टआयु लान्तव-कापिष्ठयोः7/2।कल्पयोः7/2।भवति। =लान्तवस्वर्ग और कापिष्ठ (प्रत्येक) कल्पमें होती है

(उ) नवभिः3/3अधिकानि1/3।।।(इसीसूत्रसे) सप्त1/3सागरोपमाणि1/3।।।(२६और३०सूत्रोंसे) =नौ करि अधिक सात सागर प्रमाण अर्थात्सोलहसागर स-अधिकानि1/3।।। (=सातिरेकानि सूत्र२६औरवृत्ति सूत्र२६से) परा1/1।।स्थितिः1/1।। =कुछ अधिक (=स-अधिकानि) उत्कर्ष स्थिति शुक्र-महाशुक्रयोः7/2।कल्पयोः7/2।भवतिT =शुक्र नौवां में और महाशुक्र दशवां स्वर्गमें है भावार्थ नवमा स्वर्गमें और दशवां स्वर्ग प्रत्येक में सोलह सागर से कुछ अधिक स्थिति है॥

(१) त्रिभिः3/3।।। =त्रि-सागरोपमैः3/3।।क्योंकि सागरोपम शब्द नपुंसक लिंगी है और संख्याओंमें चारतक गणनाओंका लिंगभी वही होता है जो उसके सम्बन्धवाली संज्ञा का होता है अतः 'त्रिभिः' को नपुंसक लिंगमें रक्खा है (२) सप्तभिः इत्यादि को त्रिलिंगी इस हेतुसे रक्खा है कि पांचसे उन्नीस तक संख्यायें विशेषण मानी जासकती हैं इन संख्याओंका वचन और कारक वही होताहै जो संज्ञाका परन्तु येसंख्यायें केवल बहुवचनमेंआती हैं और तीनों लिंगों में वही अर्थात् एकही रूप होता है ॥

(३) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके पृष्ठ २५४में 'अधिके' शब्दजो सूत्रमें आयाहै उसकी वृत्ति पूज्यपादस्वामीने 'स अतिरेके' की है. अतिरेकका अर्थ अधिकहै इसलिये सूत्र में अधिके = स-अधिके ॥

(ऋ) एकादशभिः[३] अधिकानि[३]॥(इसीसूत्रसे) सप्त[३] सागरोपमाणि[३]॥(२९,३०सूत्रोंसे)	=ग्यारहकरिअधिक सातसागर प्रमाणअर्थात्‌अठारहसागर
स-अधिकानि[३]॥ (सातिरेकानि २९सूत्रऔर वृत्तिसूत्र २९से) परा[१]॥स्थितिः[१]॥	=(और) कुछ अधिक (स-अधिकानि) उत्कृष्ट आयु
शतार-सहस्रारयोः[७] कल्पयोः[७]।	=शतार स्वर्गमें और सहस्रार (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(लृ) तु*त्रयोदशभिः[३] अधिकानि[३]॥ (इसी सूत्रसे)	=किन्तु(पर)अर्थात्‌कुछअधिकस्थितिकेविनातेरहकरिअधिक
सप्त[३] सागरोपमाणि[३]॥ (२९ और३०सूत्रोंसे)परा[१]॥स्थितिः[१]॥(२८सूत्रदेखो)	=सात सागर प्रमाण अर्थात् पूरे बीस सागर उत्कृष्ट आयु
आनत-प्राणतयोः[७] कल्पयोः[७]।	=आनत स्वर्ग और प्राणत (प्रत्येक) स्वर्गमें है
(ए) तु*पञ्चदशभिः[३]॥अधिकानि[३]॥(इसी सूत्रसे)	=परन्तु(=तु)अर्थात्‌कुछअधिकस्थितिकेविनापंद्रहकरिअधिक
सप्त[३] सागरोपमाणि[३]॥ (३०और२९सूत्रोंसे)परा[१]॥स्थितिः[१]॥(टिप्पणीसूत्र२८)	=सातसागर प्रमाण अर्थात् पूरे बाईस सागर,उत्कर्षस्थिति
आरण-अच्युतयोः[७] कल्पयोः[७]।	=आरण स्वर्ग और अच्युत स्वर्ग (प्रत्येक) में है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इकतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

सौधर्म स्वर्गसे अच्युत स्वर्ग तक श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंके देवोंकी समानता और अन्तरकी सूची निम्न प्रकार है॥ देखो सभाष्य०

दिगम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम और उनकी उत्कृष्ट स्थिति सहित ॥	श्वेताम्बर आम्नायके स्वर्गोंके नाम उन स्वर्गों को उत्कृष्ट आयुसहित
() दो सागर प्रमाणसे कुछअधिक उत्कृष्टआयु सौधर्मस्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() सौधर्म कल्पके देवोंकी उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है (सूत्र३४)
() कुछ अधिकदो सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति ऐशान स्वर्गके देवोंकी है (सूत्र२९)	() ऐशानस्वर्गके देवोंकी उत्कर्षस्थिति कुछअधिक दोसागरहै(सूत्र३५)
() कुछ अधिकसातसागर प्रमाणउत्कर्षआयु सानत्कुमारकल्पकेदेवोंकी है (सूत्र३०)	() सानत्कुमार स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु सात सागर है (सूत्र३६)
() कुछ अधिक सातसागर प्रमाण उत्कर्षआयु माहेन्द्र कल्पके देवोंकी है (सूत्र३०)	() माहेन्द्र कल्पकेदेवोंकी परास्थितिकुछअधिक सातसागरहै(सूत्र३७)
() कुछअधिकदशसागरोपमउत्कृष्टस्थितिब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरस्वर्गकेदेवोंकीहै(सूत्र३१	() ब्रह्मलोक स्वर्गके देवोंकीउत्कृष्ट स्थिति दशसागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिकचौदहसागरप्रमाण उत्कृष्टस्थितिलान्तव कापिष्ठ स्वर्गोंके देवोंकीहै	() लान्तक स्वर्गके देवोंकी उत्कर्षआयु चौदह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() कुछ अधिक सोलहसागर प्रमाण उत्कर्षआयु शुक्र महाशुक्रस्वर्गके देवोंकीहै ,,	() महाशुक्र कल्पके देवोंकी उत्कर्षआयु सत्रहसागर प्रमाणहै (सूत्र३७)
() कुछ अधिक अठारहसागरोपम उत्कृष्टस्थिति सतारसहस्रार स्वर्गोंकेदेवोंकीहै,,	() सहस्रार स्वर्गकेदेवोंकी परास्थिति अठारह सागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आनत प्राणत कल्पोंके देवोंकी उत्कृष्ट आयु पूरेबीस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	() आनतप्राणतस्वर्गोंकेदेवोंकीउत्कृष्टआयुबीससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)
() आरण अच्युतस्वर्गोंके देवोंकी उत्कर्षआयु पूरेबाईस सागर प्रमाण है (सूत्र३१)	()आरणअच्युतस्वर्गोंकेदेवोंकीपरास्थितिबाईससागरप्रमाणहै(सूत्र३७)

सप्तग्रहणं प्रकृतम् ।तस्येह त्र्यादिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादिद्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः॥ तुशब्दो विशेषणार्थः॥ किं विशिनष्टि? अधिकशब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बध्यते नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते॥ तेनायमर्थो भवति—ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ लान्तवकापिष्ठयोश्चतुर्दशसागरोपमाणि साधिकानि॥ शुक्रमहाशुक्रयोः षोडशसागरोपमाणि साधिकानि ॥ शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि

सप्त-ग्रहणम् प्रकृतम् ।	=(इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे) सात शब्दका ग्रहण अधिकृत अथवा प्रकरण रूप है
तस्य इह त्रि-आदिभिः निर्दिष्टैः अभिसम्बन्धः	=तिस सप्तका यहां तीन आदिक कहीहुई संख्याओंसे सम्बन्ध
वेदितव्यः सप्त त्रिभिः अधिकानि	=जानना चाहिये । तीन करि अधिक सात अर्थात् दश,
सप्त सप्तभिः अधिकानि	=सातकरि अधिक सात अर्थात् चौदह
इत्यादि द्वयोः द्वयोः अभिसम्बन्धः वेदितव्यः	=इत्यादिक, दो दो संख्याओं का मिलाउ वा जोड़ जानना योग्य है
तुशब्दः विशेषण-अर्थः किम् विशिनष्टि ?	=(इस सूत्रमें) तु शब्द भेदके (जनावनेके) लिये है प्रश्न क्या विशेषण है
अधिकशब्दः अनुवर्तमानः	=अधिक शब्द (विशेषण) है जिसकी अनुवृत्ति (२९वांसूत्रसेइससूत्रमेंभी) विद्यमानहै
चतुर्भिः अभिसम्बध्यते ।	=(इस सूत्रकी) चार (संख्या त्रि-सप्त-नव-एकादश) से सम्बन्धकीजाती वा जोड़ीजातीहै
न-उत्तराभ्याम् इति	=न अग्रिम दो (गणना वा संख्या त्रयोदश-पंचदश) से इस प्रकार
अयम् अर्थः विशिष्यते । तेन अयम् अर्थः भवति ।	=यह अभिप्राय व्यक्त वा प्रगटकियाजाता है । तिस(अधिक शब्द)से यह अर्थहोताहैकि
ब्रह्मलोक-ब्रह्मोत्तरयोः दशसागरोपमाणि	=ब्रह्मलोक (पांचवा) ब्रह्मोत्तर (छठवां) स्वर्गोंमें दश सागर प्रमाण
स-अधिकानि लान्तव-कापिष्ठयोः	=कुछ अधिक (उत्कृष्ट स्थिति) है-लान्तव (सातवां) कापिष्ठ (आठवां) स्वर्गोंमें
चतुर्दश सागरोपमाणि स-अधिकानि शुक्र-	=चौदह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कर्ष आयु है) शुक्र (नवमां)
महाशुक्रयोः षोडश-सागरोपमाणि स-अधिकानि	=महाशुक्र (दशवां स्वर्गों) में सोलह सागर प्रमाण कुछ अधिक (उत्कृष्ट आयु) है
शतार-सहस्रारयोः अष्टादश-सागरोपमाणि	=शतार (ग्यारहवां) सहस्रार (बारहवां स्वर्ग में) अठारह सागर प्रमाण

साधिकानि ॥ आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि ॥ आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि ॥ तत उर्ध्वं स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥

स-अधिकानि॥आनत-प्राणतयोः॥	=कुछ अधिक (उत्कृष्टआयु है) आनत (तेरहवां) प्राणत (चौदहवां स्वर्गों) में
विंशति-सागरोपमाणि॥	=बीस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक बिना, पूरे बीस सागर ही की(उत्कृष्ट आयु) है
आरण-अच्युतयोः॥द्वा-विंशति-सागरोपमाणि॥	=आरण (पन्द्रहवां) अच्युत (सोलहवां स्वर्गों)में बाईस सागर प्रमाण अर्थात् कुछ अधिक स्थितिके अतिरिक्त, पूरे बाईस सागर की उत्कृष्ट आयु है
ततः*ऊर्ध्वम्*स्थिति-विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥आह	=तिस (आठवां युगल) से ऊपर स्थिति विशेष जाननेके लिये (अगलेसूत्रमें) कहतेहैं कि

सूत्रम्[१] आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ[३] च ॥३२॥

= आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन सागरोपमाणि (२९ वां सूत्रसे) अधिकानि (३१वां सूत्रसे) परा स्थितिः(२८वांसूत्रसे)ग्रैवेयकेषु नवसु[२] अनुदिशेषु विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषुसर्वार्थसिद्धौच

(१) चूंकि तेतीसवां सूत्रमें 'अपरा' शब्द जघन्यके अर्थमें लाये हैं इसलिये यहां 'परा' शब्द का अध्याहार भी उत्कृष्ट अर्थमें होसकता है॥

(२) हमने इस बात पर कि 'ग्रैवेयकेषु' शब्दके पश्चात् 'नवसु' शब्द को क्यों रक्खा है पृष्ठ ५३ में एक पूर्ण टिप्पणी देदी है क्योंकि उन्नीसवां सूत्रमें भी 'नवसु' शब्द इसी प्रकरणमें आया है यहां पर अधिक तर्क यह होसकता है कि इस सूत्रका रूप 'ग्रैवेयकेषु नवसु विजयादिषु' होजाता है और फिर बाह्य रूप से अर्थ यह होजाता है कि नव ग्रैवेयक हैं और नव विजयादिषु हैं इसका उत्तर यह है कि उन्नीसवां सूत्रमें 'विजयादिषु' शब्द न लाकर 'विजय वैजयन्त जयन्त अपराजितेषु' वाक्य लाये हैं जिससे प्रगट होता है कि विजयादिषु नौ विमान नहीं हैं वरन् चार ही विजय-वैजयन्त जयन्त और अपराजित हैं ॥

(३) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र में 'सर्वार्थसिद्धौ' के स्थानमें 'सर्वार्थसिद्धे' ऐसा पाठ है शेष पाठ एकसा है। अर्थ नवसु ग्रैवेयकेषु तकएकसा है हमारे यहांनव अनुदिशोंमें बत्तीससागरकी उत्कृष्ट आयु और विजयवैजयन्त,जयन्त और अपराजित प्रत्येकमें उत्कृष्ट आयुतेतीस तेतीस सागरकी है श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नहीं माने हैं वरन् तीन ऊपर की ग्रैवेयकनि में इक्यानवें विमान हमारे माने हैं और नौ अनुदिश पृथक् माने हैं उनके यहां ग्रैवेयकनिके ९१ विमान न मानकर सौ विमान माने हैं अर्थात् नव अनुदिशोंको भी इन्ही विमानोंमें समावेश करदिया है इसलिये यहां विजय वैजयन्त जयन्त और अपराजित प्रत्येक विमानमें उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर मानी है और सर्वार्थसिद्धि में हमारे यहां और उनके यहां तेतीस सागर की आयु उत्कृष्ट मानी है सर्वार्थसिद्धमें दोनों आम्नायके अनुकूल जघन्य स्थिति नहीं है ॥ देखो सभाष्य० पृष्ठ ११८ सूत्र ४२)

सूत्रार्थः–आरण-अच्युतात्॥ ऊर्ध्वम्॥ एकैकेन॥	=आरण-अच्युत (युगल) से ऊपर एक एक करि
(सागरोपमाणि॥) अधिकानि॥ परा॥ स्थितिः॥	=(सागर प्रमाण) बढ़ती हुई उत्कृष्ट आयु
ग्रैवेयकेषु॥ नवसु॥ अनुदिशेषु॥	=(क्रमसे प्रत्येक) नौग्रैवेयकविषैं और नौ अनुदिशोंमें
विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितेषु॥ सर्वार्थसिद्धौ॥ च॥	=विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें हैं सर्वार्थसिद्धि में स्थिति उत्कृष्ट ही (=च) है जघन्य नहीं होती है अर्थात् नीचेके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथम ग्रैवेयकमें

सूत्रमें 'च' शब्द निश्चयके अर्थमें है अर्थात् च =ही ॥ आशय यह है कि जो नीचे नीचे में उत्कृष्ट स्थिति है वह ऊपर ऊपर में जघन्य जघन्य है जैसे नौ अनुदिशमें बत्तीस सागर की उत्कृष्ट स्थिति है वही विजयादिकमें जघन्य है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें एक उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरसे अधिक आयु नहीं होसकती जघन्यस्थिति दोनों आम्नायमें सर्वार्थसिद्धिमें नहीं है॥ विजय, वैजयन्त, जयंत, अपराजित विमानोंमें भी उत्कृष्टआयु तेतीससागरहै

दिगम्बर आम्नायके कल्पातीतों के नाम स्थिति सहित	श्वेताम्बर आम्नायके कल्पातीतोंके नाम स्थिति सहित
() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१ सागर प्रमाण है ॥आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक पर्यन्त दोनों आम्नायकी स्थितिमें भेदनहींहै	() प्रत्येक नवग्रैवेयकमें क्रमसे अहमिंद्रोंकी उत्कृष्ट आयु २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, सागर प्रमाण है । आनत तेरहवां स्वर्गसे नवग्रैवेयक तक दोनो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा जघन्य स्थितिमें अन्तर नहीं है
() नौ अनुदिशोंके प्रत्येक अहमिंद्रकी उत्कृष्ट स्थिति ३२ सागर है हमारे यहां ऊर्ध्वग्रैवेयकत्रिकमें ९१ विमान माने हैं और नौ अनुदिश ऐसे १०० विमान माने हैं	() श्वेताम्बर आम्नायमें नवअनुदिश नामसे विमान नहीं माने हैं पर तीन ऊपर की ग्रैवेयकत्रिकमें १०० विमानोंमें हमारे यहांके नौ अनुदिशोंको भी समावेश करलिया है (देखो अध्याय ४ पृष्ठ ९६)
() विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है	() विजय-वैजयन्त-जयन्त अपराजित चार विमानोंके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागरोपम है (सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र ३८ पृष्ठ११७)
() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमें से प्रत्येककी उत्कृष्ट तथा जघन्यआयु तेतीस ही सागर प्रमाण है ॥	() सर्वार्थसिद्धिके अहमिंद्रोंमेंसे प्रत्येककी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र' ३८, ४२ पृष्ठ ११७, ११८)

इस टिप्पणी से प्रगट है कि श्वेताम्बर आम्नायमें नव अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में 'परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनंतरा' जो ४२ वां सूत्रहै (हमारे यहां ३४वां है) वह इस बातका ज्ञापक है कि नवग्रैवेयकोंके और विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित विमानोंके मध्यमें कोई

तेईस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति दूसरेमें चौबीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, तीसरेमें पचीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, बहुरि मध्य ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें छब्बीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु, दूसरेमें सत्ताईस सागर प्रमाण परा स्थिति, तीसरेमें अट्ठाईस सागर प्रमाण परा स्थिति है और ऊपरके ग्रैवेयकत्रिकमें प्रथममें उनतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति, दूसरेमें तीससागर प्रमाण परास्थिति, तीसरेमें इकतीस सागरप्रमाण परास्थितिहै

और विमानवासी हैं जिनकी उत्कृष्ट आयु बत्तीस सागर होसकी है। हम उसको यहांपर संस्कृत भाष्य, हिंदी अनुवाद और चरण टिप्पणी सहित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र के पृष्ठ ११८ से शब्दशः उद्धृत करते हैं

॥ परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—"माहेन्द्र कल्पके परे पूर्व अर्थात् पूर्व २ स्वर्गोंमें जो परास्थिति है वह पर २ में जघन्या अर्थात् अपरा स्थिति होती है ॥"

भाष्यम्—"माहेन्द्रात्परतः पूर्वा परानन्तरा जघन्यास्थितिर्भवति । तद्यथा-माहेन्द्रे परा स्थितिर्विशेषाधिकानि सप्त सागरोपमाणि सा ब्रह्मलोके जघन्या भवति । ब्रह्मलोके दश सागरोपमाणि परास्थितिः सा लान्तके जघन्या । एवमासर्वार्थसिद्धादिति । (विजयादिषु चतुर्षु परा स्थितिस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सा त्वजघन्योत्कृष्टा सर्वार्थसिद्ध इति)"

विशेष व्याख्या—माहेन्द्र कल्पसे आगे पूर्व २ की जो परास्थिति है वह पर २ अर्थात् आगे २ के कल्पोंमें अपरा स्थिति होजाती है। जैसे माहेन्द्र कल्पमें परास्थिति विशेष अधिक सप्त सागरोपम है, वह ब्रह्मलोकमें अपरा अर्थात् जघन्या है। ऐसेही ब्रह्मलोकमे परा स्थिति दश सागरोपम है वह लान्तकमें जघन्या वा अपरा स्थिति है। इसी प्रकार पूर्व २ की परा स्थिति पर २ की जघन्या स्थिति सर्वार्थसिद्धि (१) पर्यन्त जाननी चाहिये। (२) (विजयआदि चार विमानों में परा स्थिति तेंतीस सागरोपम है, वह सर्वार्थसिद्धमें अजघन्योत्कृष्टा है।) ॥" चरणटिप्पणी (१) (२) सभाष्य०में ऐसेहैं कि "(१) यहां पर यह जानना उचित है कि विजय आदि चार विमानोंमें परास्थिति बत्तीस सागरोपम है और सर्वार्थसिद्धमें तेंतीस सागरोपम अजघन्योत्कृष्ट है, अर्थात् वहां एकही स्थिति है, परा अपरा भेद नहीं है। और भाष्यकार सर्वार्थसिद्धिमें भी जघन्या बत्तीस सागरोपम है ऐसा जो कहते हैं-आसर्वार्थसिद्धात्-उसका अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। कदाचित् यहां आङ् (आ) मर्यादाबोधक हो अर्थात् सर्वार्थसिद्ध को छोड़के "तेन विना मर्यादा तत्सहितोऽभिविधिः ॥"

"॥२॥ विजयादिककी परास्थिति तो बत्तीस की (३२) कही है यहां ३३ किस अभिप्राय से कहे यह नहीं जाना जाता। और कहीं २ कोष्ठका पाठ नहीं है क्योंकि अर्थ संगत नहीं है" आङ् मर्य्यादाभिविध्योः अष्टाध्यायी २ । १ । १३ ॥ आङ् (=आ) जिसके प्रथम आवे तिसको छोड़ कर (तेनविना) मर्यादा अर्थमें आता है जैसे आपाटलिपुत्रात् वृष्टोः देव=पटना को छोड़कर मेह वरषा ॥ तिस सहित (=तत्सहित) अभिविध अर्थमें आता है=आ आकाशादेकद्रव्याणि=आकाशको लेते हुये वा आकाश को समावेश करते हुये एक एक द्रव्यें हैं ॥ अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य औरआकाश ये एकर हैं।

अधिकग्रहणमनुवर्तते । तेनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः । एकैकेनाधिकानीति ॥ नवग्रहणं किमर्थम् ? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् ॥ इतरथा हि ग्रैवेयकेष्वेकमेवाधिकं स्यात् ॥ विजयादिष्विति आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादनुदिशानामपि ग्रहणम् ॥ सर्वार्थसिद्धेः पृथग्ग्रहणं जघन्याभावप्रतिपादनार्थम् ॥

तथा अनुदिश विमानविषैं बत्तीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित प्रत्येक विमान में उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है सर्वार्थसिद्धि विषैं तेतीस सागर ही स्थिति है (-यहां जघन्य स्थिति नहीं है एक ही आयु है)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित बत्तीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

अधिक-ग्रहणम् (१/१) । अनुवर्तते । =(इस सूत्रमें) अधिक शब्दका उपादान (पिछले ३१ वां सूत्रसे) प्रवर्तना है

तेन (३/१) । इह * अभिसम्बन्धः (१/१) । वेदितव्यः (१/१) । एक-एकेन (३/१) । =तिस (अधिक शब्दके ग्रहण) से इह सम्बन्ध जानना चाहिये (कि) एक एक

अधिकानि (१/३) । इति * नव-ग्रहणम् (१/१) । किम् (१/१) । अर्थम् (१/१) । =(सागर प्रमाण) करि अधिक है (प्रश्न) (इस सूत्रमें) नौ (शब्द) का ग्रहण किसलिये है

प्रत्येकम् (१/१) । एकैकम् (१/१) । अधिकम् (१/१) । इति ज्ञापन-अर्थम् (१/१) । =(उत्तर) पृथक् पृथक् (ग्रैवेयकमें) एक एक सागर बढ़ती (आयु) ऐसा जाननेके लिये है

इतरथा * हि * ग्रैवेयकेषु (७/३) । एकम् (१/१) । एव * =क्योंकि (=हि) अन्यथा (सर्व) ग्रैवेयकोंमें एक (सागर प्रमाण) ही (स्थिति)

अधिकम् (१/१) । स्यात् । =अधिक होती अर्थात् सब नव ग्रैवेयकों की स्थिति तेईस सागर होती किसी की भी अधिक नहीं होती इसलिये इससूत्रमें नव शब्दका ग्रहण है

विजय-आदिषु (७/३) । इति * आदिशब्दस्य (६/१) । प्रकार-अर्थत्वात् (५/१) । =विजय आदिकमें ऐसे आदि शब्दके प्रकारार्थ होनेसे

अनुदिशानाम् (६/३) । अपि * ग्रहणम् (१/१) । सर्वार्थसिद्धेः (६/१) । =अनुदिशोंका भी ग्रहण हुआ । सर्वार्थसिद्धि का (इस सूत्रमें)

पृथग्-ग्रहणम् (१/१) । जघन्य-अभाव-प्रतिपादन-अर्थम् (१/१) । =भिन्न ग्रहण (वहां) जघन्य (स्थिति) का न होना जनावनेके लिये है अर्थात् विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजित-और सर्वार्थसिद्धि इन पांचों विमानों का जब एकही पटल है और सबमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर प्रमाण है तौ सूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' ऐसा पृथक् वाक्य क्यों लाये और भिन्न विभक्ति क्यों की "विजयादिषु" इसमें गर्भित क्यों न रक्खा इसका कारण यह है कि अन्य चार विमानोंमें तो जघन्य स्थिति बत्तीस सागर प्रमाण है और उत्कृष्ट तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु सर्वार्थसिद्धिमें केवल उत्कृष्टही स्थिति है जघन्य नहीं इससे इसको पृथक् लाये और सप्तमी विभक्तिमें लाये हैं ॥

सर्वार्थ अध्याय४ १०७

तेनायमर्थः, अधोग्रैवेयकेषु प्रथमे त्रयोविंशतिः। द्वितीये चतुर्विंशतिः॥ तृतीये पञ्चविंशतिः॥ मध्यमग्रैवेयकेषु प्रथमे षड्विंशतिः॥ द्वितीये सप्तविंसतिः॥ तृतीयेऽष्टाविंशतिः॥ उपरिमग्रैवेयकेषु प्रथमे एकोनत्रिंशत्॥ द्वितीये त्रिंशत्॥ तृतीये एकत्रिंशत्॥ अनुदिशविमानेषु द्वात्रिंशत्॥ विजयादिषु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्युत्कृष्टा स्थितिः। सर्वार्थसिद्धेस्त्रयस्त्रिंशदेवेति॥ निर्दिष्टोत्कृष्टस्थितिकेषु देवेषु जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

तेन॥ अयम्॥ अर्थः॥ अधः॥ ग्रैवेयकेषु॥	=तिस (नवशब्दके ग्रहण) से यह अर्थ होता है कि नीचले ग्रैवेयक त्रिकमें
प्रथमे॥ त्रयोविंशतिः॥ द्वितीये॥ चतुर्विंशतिः॥	=पहिलेमें तेईस(सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है। दूसरेमें चौवीस(सागरप्रमाणउत्कृष्टआयु)है।
तृतीये॥ पञ्चविंशतिः॥ मध्यम-ग्रैवेयकेषु॥	=तीसरेमें पचीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। मध्यग्रैवेयकत्रिकमें
प्रथमे॥ षड्विंशतिः॥ द्वितीये॥	=प्रथममें छब्बीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। दूसरेमें
सप्तविंशतिः॥ तृतीये॥ अष्टाविंशतिः॥	=सत्ताईस (सागरप्रमाणउत्कृष्ट आयु है। तीसरेमें अट्ठाईस (सागरप्रमाणउत्कृष्टस्थिति)है।
उपरिम॥ ग्रैवेयकेषु॥ प्रथमे॥ एकोनत्रिंशत्॥	=ऊपरके ग्रैवेयक त्रिकमें प्रथममें उनतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है।
द्वितीये॥ त्रिंशत्॥ तृतीये॥	=दूसरेमें तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। तीसरेमें
एकत्रिंशत्॥ अनुदिश-विमानेषु॥	=इकतीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है। अनुदिश विमानोंमें
द्वात्रिंशत्॥ विजय-आदिषु॥	=बत्तीस (सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु) है। विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितमें
त्रयस्त्रिंशत्॥ सागरोपमाणि॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥	=तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है।
सर्वार्थसिद्धे॥ त्रयस्त्रिंशत्॥ एव॥ इति॥	=सर्वार्थसिद्धिमें तेतीस ही (सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति) है (जघन्यस्थिति नहींहोती है)
निर्दिष्ट-उत्कृष्ट स्थितिकेषु॥ देवेषु॥	=वर्णित उत्कर्ष स्थिति वाले देवोंमें
जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्॥ आह॥	=जघन्य आयुके कहने के लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) इस वक्तव्यमें सूत्रमें नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु इस रूपसे पृथक् पृथक् उल्लेख क्यों किया है नवग्रैवेयक विजयादिषु ऐसा समासांतपद ही मानना चाहिये था। ऐसा मानने में दो अक्षरों का लाघव भी होता। (उत्तर) ग्रैवेयकोंसे विजयादि विमानोंका जो पृथक् रूपसे ग्रहण कियागया है वह तो अनुदिश विमानोंके संग्रहके लिये है यदि 'नवग्रैवेयक विजयादिषु' ऐसा उल्लेख करते तो नव अनुदिश विमानोंका ग्रहण नहीं होता वे कथन करनेसे रहजाते हैं॥

सिद्धि सूत्र १०७

॥ अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पल्योपमं व्याख्यातम् । अपरा जघन्यस्थितिः ॥ पल्योपमं साधिकम् ॥ केषां ? सौधर्मैशानीयानाम् ॥ कथं गम्यते परतः परत इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥

तत ऊर्ध्वं जघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

---

(१)सूत्रम्—अपरापल्योपममधिकम्॥३३॥ =(सौधर्मैशानयोः २९वां सूत्रसे) अपरा (स्थितिः २८वां सूत्रसे) पल्योपमम् अधिकम् भवति ॥ ३३ ॥

सूत्रार्थः—सौधर्म-ऐशानयोः६।अपरा१।।स्थितिः१।। =सौधर्म-ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें जघन्य आयु
पल्योपमम्१।।।अधिकम्१।।।भवतिT =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इसतेतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदी अनुवाद

पल्य-उपमम्१।।व्याख्यातम्१।।। =पल्यका प्रमाण (तीसरे अध्याय के ३८ वां सूत्रमें) कहा जा चुका है
अपरा१।।जघन्य-स्थितिः१।।पल्योपमम्१।।स-अधिकम्१।। =अपरा है सो निकृष्ट स्थिति है (सो) कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
केषाम्६।? =(प्रश्न) किनकी (जघन्य आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण) है
सौधर्म-ऐशानीयानाम्६। =(उत्तर) सौधर्म-ऐशानके देवोंकी निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक पल्य प्रमाण है
कथम्*गम्यते। परतः*परतः*इति*उत्तरत्र* =(प्रश्न)कैसे जाना जाय है ॥ [उत्तर] अगले अगलेमें ऐसा यहांसे अग्रिम [सूत्रमें]
वक्ष्यमाणत्वात्५।।। =कहेजानेसे सौधर्मऐशान स्वर्गोंमें जघन्य स्थितिकुछअधिक पल्य प्रमाणजानीजातीहै
ततः*ऊर्ध्वम्१।।जघन्य-स्थिति-प्रतिपादन-अर्थम्१।।आह। =वहां [सौधर्म ऐशान युगल] से ऊपर निकृष्ट आयुके कहनेके लिये कहतेहैं कि

---

(१) श्वेताम्बर आम्नायमें 'अपरा पल्योपममधिकम् च' पाठ है अर्थात् हमारे यहांसे च अधिक है और सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रके पृष्ठ ११७ पर यह भाष्य है कि तत्र सौधर्मेऽपरा स्थितिः पल्योपममैशाने पल्योपममधिकं च'=तहां सौधर्म (स्वर्ग) में जघन्य आयु पल्यप्रमाण है (और) ऐशान (स्वर्ग) में पल्य प्रमाण तथा कुछ अधिक है। हमारे यहां सौधर्म ऐशान प्रत्येकमें एक पल्यसे कुछअधिक निकृष्ट आयुहै यही अर्थभेद दोनोंआम्नायोंमेंहै

परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

सूत्रम्—परतः परतः पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा ॥३४॥ = पूर्वा पूर्वा ऽनन्तरा परतः परतः ॥३४॥

=पूर्वा पूर्वा [2] ऽनन्तरा(साधिका ३३वां सूत्रसे)([1] परास्थितिः २८वां सूत्रसे)[3] परतः [4] परतः(अपरा ३३वां सूत्रसे)(स्थितिः २८वां सूत्रसे)भवति

(१)अट्ठाईसवां सूत्रमें भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट स्थिति वा आयुका वर्णन है उनतीसवां सूत्रसे बत्तीसवां तक चार सूत्रोंमें समस्त कल्पवासी और कल्पातीत अहमिंद्रोंका उत्कृष्ट आयुका उल्लेख है। तेतीसवां सूत्रसे अड़तीसवां सूत्र तक और ४१वां सूत्रमें भी कल्पवासी देव कल्पातीत अहमिन्द्र (सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर जहां उत्कृष्ट जघन्य तेतीस सागरकी एकही स्थिति है) नारकियों, भवनवासी, और व्यंतर देवोंकी जघन्य आयु का प्रकरण है॥ इस सूत्रमें कुछ अधिक = अधिका = साधिकाकी अनुवृत्ति३३वां सूत्रसे आतीहै जैसाकि ३४वां सूत्रकी वृत्तिमें अधिक ग्रहणमनुलते और तीन स्थानोंमें साधिका वाक्योंके प्रयोगसे प्रगट है नकि उक्त अनुवर्तन उनतीसवां सूत्रसे है क्योंकि वहां उनतीसवां सूत्रमें उत्कृष्ट आयुका कथन है।

(२) पूर्वा पूर्वा और अनन्तरा शब्द प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग हैं और स्थितिः शब्द जो प्रथमा विभक्ति एक वचन स्त्रीलिंग में है उसके विशेषण हैं नकि स्वर्ग, कल्प वा युगल इत्यादि के (३)पर अर्थात् अगले देशमें जो रहे उसको 'परतः कहते हैं 'परतः परतः' यहां पर वीप्सा या अनेकता अर्थमें द्वित्व(=दोवार)है 'पूर्वा पूर्वा'यहां पर भी वीप्साअर्थमें द्वित्व है॥(४)श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें हमारे यहांके ३३वां और ३४वां सूत्रके मध्यमें उनके यहांका ४०वां सूत्र सागरोपमे=सानत्कुमार कल्पमें जघन्य स्थिति दो सागर प्रमाण है और ४१वां सूत्र अधिके च=माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य स्थिति कुछ अधिक दो सागर प्रमाण पढ़ती या अधिक है। इन ४०वां, वा ४१वां सूत्रोंके पश्चात् उनके यहां का ४२वां सूत्र 'परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा हमारे यहांके उपर्युक्त ३४वां सूत्रके पाठसे अक्षरशः मिलता है परन्तु तात्पर्यमें अन्तर यह है कि सभाष्य-तत्त्वार्थाधिगम सूत्रके अनुसार इस सूत्रसे ब्रह्मलोककी जघन्य स्थिति का आरम्भ होता है और सर्वार्थ सिद्धिकी स्थिति तकका वर्णन है हमारे यहांके अनुकूल इस सूत्रसे सानत्कुमार माहेन्द्र युगल की जघन्य स्थिति का प्रारम्भ होता है और विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानोंतककी जघन्य आयुका कथन है। दोनों आम्नायोंके अनुकूल सर्वार्थ सिद्धिमें एक तेतीस सागरकी अजघन्योत्कृष्टा स्थिति है यहां पर परा अपरा स्थितिका भेद नहीं है(सभाष्य० पृष्ठ २१७,२१८)इसलिये हमारे यहां सौधर्म ऐशान दोनों स्वर्गोंकी जघन्य स्थिति दो पल्य प्रमाणसे प्रत्येकमें कुछ अधिक है। श्वेताम्बर आम्नायके अनुसार सौधर्म स्वर्गमें जहां पर स्थिति एक पल्य प्रमाण है ऐशान स्वर्ग में एक पल्यसे निकृष्ट स्थिति कुछ अधिक है (सभाष्य सूत्र ३९)वैसेही हमारे यहां सानत्कुमार माहेन्द्र प्रत्येक स्वर्गमें जघन्यस्थिति दोसागर प्रमाणसे कुछ अधिक है उनके यहां सानत्कुमार स्वर्गमें दोसागर प्रमाण जघन्य स्थिति है और माहेन्द्र कल्पमें अपरा स्थिति दो सागरसे कुछ अधिक है। जो टिप्पणी हमने पृष्ठ १०१, १०४, १०५, में उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें दी है उनसे यद्यपि जघन्य स्थिति का भेद निकल आता है तो भी सरलताके लिए निम्न टिप्पणी भी देते हैं॥

दिगम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य आयु	श्वेताम्बर आम्नायकी सौधर्मस्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि तक जघन्य स्थिति
() सौधर्म और ऐशान स्वर्गों की देवों की जघन्य स्थिति एक पल्य से कुछ अधिक है(देखो सूत्र३३)	() सौधर्मस्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्य है और ऐशानस्वर्गमें एक पल्यसे कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें सूत्र ३९)

() सानत्कुमार माहेन्द्र स्वर्गोके (प्रत्येकके)देवों की जघन्य आयु दो सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र २९,३४)	() सानत्कुमार में जघन्य स्थिति दो सागर है (सभाष्य० सूत्र ४०)माहेन्द्रमें दो सागर से अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४१)
() ब्रह्म ब्रह्मोत्तर(प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी अपरा स्थिति सात सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३०, ३४)	() ब्रह्मलोक (ब्रह्मोत्तर स्वर्ग सभाष्य० सूत्रमें नहीं है) में सात सागर से कुछ अधिक है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र ४२)
() लांतव—कापिष्ठ (प्रत्येक) स्वर्गके देवों की निकृष्ट आयु दश सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() लांतक (कापिष्ठ सभाष्य०सूत्रमें नहीं माना है)में जघन्य स्थिति दस सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() शुक्र—महाशुक्र (प्रत्येक)स्वर्गके देवोंकी जघन्य स्थिति चौदह सागरसे कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() महाशुक्र कल्प (शुक्र कल्प सभाष्य०सूत्र में नहीं है)में जघन्य स्थिति चौदह सागर है (देखो सभाष्य तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() शतार-सहस्रार (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी अपरा आयु सोलह सागर से कुछ अधिक है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() सहस्रार स्वर्ग (शतार सभाष्य०में नहीं माना है)में जघन्य आयु सोलहसागर है (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें सूत्र४२)
() आनत—प्राणत(प्रत्येक) स्वर्गके देवोंकी निकृष्ट स्थिति पूरे अठारह सागर है (देखो सूत्र ३१,३४)	() आनत प्राणत स्वर्गोमें वही जघन्य स्थितिहै जो हमारे यहां है (सभाष्य०सूत्र ३७, ४२)
() आरण—अच्युत (प्रत्येक) कल्पके देवोंकी जघन्य आयु पूरे बीस सागर प्रमाण है (देखो सूत्र ३१, ३४)	() आरण अच्युत स्वर्गोमें वही स्थितिहै जो हमारे यहां है(सभाष्य०सूत्र३७ ४२)
() प्रत्येक नव ग्रैवेयकमें क्रमसे एक एक वृद्धिको प्राप्त बाईस सागर से ३० सागर तक जघन्य स्थिति है (देखो सूत्र ३२,३४)	[] सभाष्य० के सूत्र ३८, ४२, से वही जघन्य स्थिति श्वेताम्बर आम्नाय में है
() नव अनुदिश जिनका एक पटल है जघन्य स्थिति ३१ सागर है (देखो सूत्र ३२, ३४)	[] नव अनुदिश नहीं माने हैं इस लिये जघन्य और उत्कृष्ट कोई स्थिति नहीं हो सकती है।
() विजय—वैजयन्त—जयन्त—अपराजितमें (प्रत्येकमें) जघन्य आयु ३२ सागर है (देखो सूत्र ३२,३४)	[] विजय—वैजयन्त—जयन्त-अपराजित में सभाष्य० के आरणाच्युत इत्यादि ३८वां सूत्र को परत: परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा' ४२वां सूत्रके साथ पढ़ने से यह बात निकलती है कि प्रत्येक उक्त चार विमानों में जघन्य आयु ३१ सागर है क्योंकि अनुदिश नहीं माने हैं परन्तु ४२ सूत्रके कोष्ठकका पाठ कि विजयादि चार विमानोंमें पराःस्थिति तेतीस सागर है इस बात का ज्ञापक है कि जघन्य आयु ३२ सागर है क्योंकि विजयादिक की उत्कृष्ट स्थिति ३८,४२ सूत्रमें बत्तीस सागर है ४२वां सूत्रके कोष्ठकमें ३३ सागर है
() सर्वार्थसिद्धिमें अजघन्योत्कृष्ट एकही स्थिति तेतीससागर प्रमाणहै	[] सर्वार्थसिद्धिमें अजघन्योत्कृष्ट एक ही आयु तेतीस सागर है।

परस्मिन्देशे परतः । वीप्सायां द्वित्वम् । पूर्वशब्दस्याप्यधिकग्रहणमनुवर्तते ॥ तेनैवमभिसम्बन्धः क्रियते-सौधर्मैशानयोर्द्वे सागरोपमे साधिके उक्ते, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघन्यस्थितिः ॥ सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः

सूत्रार्थः-पूर्वा॥ पूर्वा॥ अनन्तरा॥ साधिका॥ परा॥ स्थितिः॥ =पहिली पहिली अत्यन्त निकट (=अनन्तरा) कुछ अधिक सहित, उत्कृष्ट स्थिति

परतः* परतः* अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =अगले अगलेमें वा ऊपर ऊपरमें (=परतःपरतः) जघन्य स्थिति होती है अर्थात् सर्वार्थसिद्धिको छोड़कर यहां जघन्य और उत्कृष्ट एक स्थिति तेतीस सागरकी ही है। वैमानिकदेवोंमें नीचे नीचे युगलोंमें जो उत्कृष्ट आयु है वही ऊपर ऊपर क्रमसे निकृष्ट स्थिति है जैसे सौधर्म ऐशान प्रत्येक स्वर्गमें कुछ अधिक दोसागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु है वही सानत्कुमार माहेन्द्र युगलमें जघन्य है॥

वृत्त्यनुवादः—परस्मिन्। देशे। 'परतः'* =उत्तर ऊपर वा अगले स्थानमें जो रहै (वा हो) सो 'परतः' है

वीप्सायाम्॥ द्वित्वम्॥ =अनेकता वा बार बारके (अर्थ)में दोबार (=द्वित्व) (इस सूत्रमें परतः और पूर्वा प्रत्येक शब्द लाये) हैं अर्थात् इस सूत्रमें 'परतः परतः' दोबार लानेसे और 'पूर्वा पूर्वा' भी दोबार लानेसे बहुतवार अनेकवारके अर्थमें दोनोंही शब्दोंका प्रयोग सूत्रमें जानना चाहिये।

पूर्वशब्दस्य। अपि*अधिक-ग्रहणम्॥ अनुवर्तते। =(इस सूत्रमें) 'पूर्व' शब्दके भी (=अपि) (तेतीसवां सूत्रसे) 'अधिक' शब्दका आदान आता है अर्थात् नीचले नीचले कल्प युगलोंमें जो उत्कृष्ट स्थिति सागर प्रमाणोंसे कुछ अधिक है वह ऊपर ऊपरके शतारसहस्रार युगलों तक जघन्य स्थिति उतने सागर प्रमाण है और कुछ अधिक भी है परन्तु आनत प्राणत नवमां युगलमें पूरे बीस सागरकी आयु है और आरण अच्युत आठवां युगलमें बाईस सागरकी पूरी स्थिति है।

तेन॥ एवम्*अभिसम्बन्धः। क्रियते। =तिस (अधिक ग्रहण) करि इसप्रकार सम्बन्ध किया जाता है कि

सौधर्म-ऐशानयोः॥ द्वे॥ सागरोपमे॥ स-अधिके॥ उक्ते॥ =सौधर्म ऐशान स्वर्गोंमें दो सागर प्रमाण कुछ अधिक (स्थिति) कही

ते॥ स-अधिके॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः॥ =वे (दो सागर प्रमाण स्थिति) किंचित् अधिक (स्थिति) सानत्कुमारमाहेंद्रमें

जघन्यस्थितिः॥ सानत्कुमार-माहेंद्रयोः॥ =निकृष्ट आयु है। सानत्कुमार माहेन्द्र (युगल) में

परा स्थितिः सप्तसागरोपमाणि साधिकानि, तानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ॥

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपायेन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥३५॥

परा॥ स्थितिः॥ स-अधिकानि॥	=उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक
सप्त-सागरोपमाणि॥ तानि॥ ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः॥	=सात सागर प्रमाण है वे (सात सागर और कुछ अधिक) ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरमें
जघन्या॥ स्थितिः॥ । इति*आदि॥	=निकृष्ट स्थिति है । ऐसेही आगे आगे है अर्थात् सागरोंसे कुछ अधिक है यह अधिकता बारहवां सहस्रार स्वर्गतक है । आनत प्राणत स्वर्गोंसे आगे पूरेपूरे सागरोंकी आयुहै नीचली नीचली उत्कृष्ट स्थिति ऊपर ऊपर विजयादिक तक जघन्य जघन्य है ॥
नारकाणाम्॥ उत्कृष्टा॥ स्थितिः॥ उक्ता॥ सूत्रे॥	=नारकियोंकी प्रकृष्ट आयु(तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें)कही । (इस) सूत्रमें
अनुपात्ताम्॥ अप्रकृताम्॥ अपि॥ जघन्याम्॥	=अप्राप्त (=अनुपात्ताम्) और अनधिकृत (नारकियोंकी) जघन्य (स्थिति) भी
लघुना॥ उपायेन॥ प्रतिपादयितुम्॰ इच्छन्॥ आह ।'	=लघु साधन द्वारा अर्थात् थोड़े अक्षरों द्वारा कहनेको इच्छुक (आगे दो सूत्रमें) कहतेहैं अर्थात् नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तो तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रमें कहदी और यहां वैमानिकोंकी स्थितिका उल्लेख किया है इसलिये नारकियोंकी जघन्यस्थितिकहने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है और न नारकियोंका कथनका कोई प्रकरण वा विषयही है तो भी आचार्यकी इच्छा नारकियोंकी जघन्य स्थिति वर्णन करनेकी इस हेतुसे है कि अल्प शब्दोंमेंही इस सूत्रकी अनुवृत्ति लेनेसेअभीष्ट स्थिति कही जासकती है ॥

(२)सूत्रम्—नारकाणां च द्वितीयादिषु = नारकाणाम् च द्वितीयादिषु (भूमिषु(१) अध्याय ३ सूत्र १ से) पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा परा स्थितिः परतः परतः अपरा स्थितिः भवति

(१) 'भूमिषु' इस शब्दकी अनुवृत्ति तीसरे अध्यायके पहिले सूत्रसे लीगई है क्योंकि इस स्थिति का यहां विषय न था वरन् तीसरे अध्यायके छठवां सूत्रके पश्चात् था, वहां लघु अक्षरोंमें यह स्थिति नहीं कही जासकती थी इस हेतुसे यहां कहीगई है तीसरा अध्याय सूत्र १से यह 'भूमिषु' शब्द अनुवर्तता है । चकारसे सबका सब सूत्र ३४वां कोअनुवृत्ति आती है ।(२) श्वेताम्बर और दिगंबर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है॥

चशब्दः किमर्थः ? । प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ किं च प्रकृतं ? । परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थितिरिति ॥ तेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभायां नारकाणां परास्थितिरेकं सागरोपमम् । सा शर्कराप्रभायां जघन्या । शर्कराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोपमाणि । सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ॥ एवं द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता ॥ प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

सूत्रार्थः—पूर्वा 1/1 ।। पूर्वा 1/1 ।। अनन्तरा 1/1 ।। परा 1/1 ।। स्थितिः 1/1 ।। =पहिली पहिली व्यवधान रहित वा लगताही उत्कृष्ट स्थिति
नारकाणाम् 6/3 । च* परतः* परतः* द्वितीयादिषु 7/3 ।। =नारकियों के भी [=च] उत्तर उत्तर में दूसरी आदि
भूमिषु 7/3 ।। अपरा 1/1 ।। स्थितिः 1/1 ।। भवति T =भूमियोंमें जघन्य आयु है (जैसे प्रथम भूमिमें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है वही दूसरी पृथिवीमें जघन्य है दूसरीमें तीन सागर परा है वही तीसरीमें अपरा है) ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस पैंतीसवां सूत्रपर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

च-शब्दः 1/1 किमर्थः 1/1 । प्रकृत-समुच्चय-अर्थः 1/1 । =(इस सूत्रमें) च शब्द किसलिये है ? (उत्तर) प्रकरणके समुच्चय वा जोड़नेको है
किम् 1/1 ।। च* प्रकृतम् 1/1 ।। अनन्तरा 1/1 ।। =(प्रश्न) बहुरि (=च) क्या प्रकरण वा विषय है (उत्तर) अत्यन्तनिकट वर्ती है
पूर्वा 1/1 ।। पूर्वा 1/1 ।। परास्थितिः 1/1 ।।)परतः परतः अपरा 1/1 ।। स्थितिः 1/1 ।। =पूर्व पूर्व की (उत्कृष्ट आयु) उत्तर उत्तरमें जघन्य आयु होती है ऐसा प्रकरण है
इति* । तेन 3/1 । अयम् 1/1 । अर्थः 1/1 । लभ्यते T रत्न-प्रभायाम् 7/1 । =तिस (च शब्द) से यह अर्थ लियाजाता है कि रत्नप्रभा पृथिवीमें
नारकाणाम् 6/3 । परास्थितिः 1/1 ।। एकम् 1/1 ।। सागरोपमम् 1/1 ।। =नारकी जीवोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर प्रमाण है ॥
सा 1/1 ।। शर्करा-प्रभायाम् 7/1 ।। जघन्या 1/1 ।। ;शर्कराप्रभायाम् 7/1 ।। =वही (स्थिति) शर्करा प्रभा (दूसरी पृथिवी) में निकृष्ट स्थिति है । शर्कराप्रभामें
उत्कृष्टा 1/1 ।। स्थितिः 1/1 ।। त्रीणि 1/3 ।। सागरोपमाणि 1/3 ।। सा 1/1 ।। =प्रकृष्ट आयु तीन सागर प्रमाण है । वही (तीन सागर प्रमाण स्थिति)
वालुकाप्रभायाम् 7/1 ।। जघन्या 1/1 ।। इति* आदिः 1/1 ।। एवम्* =वालुकाप्रभामें जघन्य (आयु) है । ऐसे और भी (सातवीं भूमि पर्यंत) है ॥ ऐसे
द्वितीय-आदिषु 7/3 ।। जघन्या 1/1 ।। स्थितिः 1/1 ।। उक्ता 1/1 ।। प्रथमायाम् 7/1 ।। =दूसरी आदिक (भूमि) में जघन्य आयु कही गई । पहली भूमिमें
का 1/1 ।। जघन्या 1/1 ।। इति* तत्-प्रदर्शन-अर्थम् 1/1 ।। आह T =क्या निकृष्ट (आयु) है । उस(प्रथम भूमिकी जघन्य आयु)केदिखानेको कहतेहैंकि

॥ दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अपरा स्थितिरित्यनुवर्तते । रत्नप्रभायां दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिर्वेदितव्या ॥

अथ भवनवासिनां का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥

चशब्दः किमर्थः ? प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन भवनवासिनामपरास्थितिः

[1]सूत्रम्—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

= दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् (भूमौ अध्याय ३ सूत्र १ से) अपरा (३३ वां सूत्रसे) स्थितिः (२८ वां सूत्रमें) नारकाणाम् (३५ वां सूत्रसे) भवति ॥ ३४ ॥

सूत्रार्थः—दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् भूमौ = दश हजार वर्ष प्रथम भूमिमें (अर्थात् सीमंतक नाम पहिले पाथड़ेमें)
अपरा स्थितिः नारकाणाम् = जघन्य आयु नारकी जीवोंकी है

वृत्त्यनुवादः—अपरा स्थितिः इति अनुवर्तते । रत्नप्रभायाम् = (इस सूत्रमें) 'अपरा' और 'स्थितिः' ऐसी अनुवृत्ति है । रत्नप्रभा (पहिली भूमि) में
दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिः वेदितव्या = दश हजार वर्ष निकृष्ट आयु जानना चाहिये
अथ भवनवासिनाम् का जघन्या स्थितिः इति = अब (=अथ) भवनवासी देवनिकी क्या जघन्य आयु है । इसलिये कहते हैं कि

[2]सूत्रम्—भवनेषु च ॥ ३७ ॥

= भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि (सूत्र ३६ से) अपरा (सूत्र ३३ से) स्थितिः (सूत्र २८वां से) भवति

भवनेषु च दशवर्षसहस्राणि अपरा स्थितिः भवति । = भवनवासी देवनिमें भी (=च) दश हजार वर्ष जघन्य वा निकृष्ट आयु होती है

वृत्त्यनुवादः—चशब्दः किमर्थः प्रकृत-समुच्चय-अर्थः = इस सूत्रमें च शब्द किसलिये है । स्थितिके प्रकरणके समुच्चयके लिये है ॥
तेन भवनवासिनाम् अपरा स्थितिः = तिस (च शब्द) करि भवनवासी देवोंकी जघन्य आयु

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४४ वीं है ॥
(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें एकसा है 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४५ वीं है ॥

दशवर्षसहस्राणीत्यभिसम्बध्यते ॥ व्यन्तराणां तर्हि का जघन्या स्थितिरित्यत आह—

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥ तेन व्यन्तराणामपरा स्थितिर्दशवर्षसहस्राणीत्यवगम्यते ॥ अथैषां परा स्थितिः का इत्यत्रोच्यते ॥

॥ परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

दशवर्षसहस्राणि॥ इति*अभिसम्बध्यते। व्यन्तराणाम्॥ तर्हि* =दश हजार वर्ष ऐसा वाक्य इस सूत्रमें) जोड़ा जाता है। तो व्यन्तरोंकी
का॥ जघन्या॥ स्थितिः॥ इति*अतः*आह। =क्या जघन्य आयु है। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—व्यन्तराणाम् च ॥ ३८ ॥ = व्यन्तराणाम् च दशवर्षसहस्राणि(३६ वां सूत्रसे) अपरा(३३वां सूत्रसे) स्थितिः(२८वांसूत्रसे)भवति

व्यन्तराणाम्॥ च*दशवर्षसहस्राणि॥ अपरा॥ स्थितिः॥ भवति। =व्यन्तर देवोंकी भी (=च) दशहजार वर्ष जघन्य आयु है (यहां अनुवृत्तिलेने के लियेकि सूत्रछोड़ाहो व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट स्थितिनकहकरपहिले जघन्य कही)

वृत्त्यनुवादः—च-शब्दः॥ प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द (स्थितिरूप) प्रकरण के समुच्चके लिये है ॥
तेन॥ व्यन्तराणाम्॥ अपरा॥ स्थितिः॥ =तिस (च शब्द) करि व्यन्तर देवनिकी जघन्य आयु
दशवर्षसहस्राणि॥ इति*अवगम्यते। अथ*एषाम्॥ =दश हजार बरस ऐसे जानी जाती है। अब इन व्यन्तर देवोंकी
परा॥ स्थितिः॥ का॥ इति*अत्र*उच्यते। =उत्कृष्ट आयु क्या है ऐसे प्रश्न पर यहां कहाजाता है कि

[2]सूत्रम्—परा पल्योपममधिकम् ॥३९॥ = व्यन्तराणाम् (३८वां सूत्र से) परा स्थितिः(२८वां सूत्र से) पल्योपमम् अधिकम् भवति

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसाहै श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें इसकी संख्या ४८ वीं मानी है ॥
(२) श्वेताम्बर आम्नायमें इस सूत्रका पाठ "परापल्योपमम् ॥४७॥" ऐसा है हमारे यहां स्थिति पल्यसे अधिक है उनके यहां एकही पल्य है ॥

परा उत्कृष्टा स्थितिर्व्यन्तराणां पल्योपममधिकम् ॥ इदानीं ज्योतिष्काणां परा स्थितिर्वक्तव्येत्यत आह

॥ ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥

चशब्दः प्रकृतसमुच्चयार्थः ॥

सूत्रार्थः—व्यन्तराणाम्॥परा॥स्थितिः॥पल्योपमम्॥अधिकम्॥भवति॥=व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक पल्य प्रमाण है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस उनतालीसवां सूत्र पर शब्दशः हिंदी अनुवाद

परा॥उत्कृष्टा॥स्थितिः॥ =उत्कृष्ट वा प्रकर्ष आयु

व्यन्तराणाम्॥पल्योपमम्॥अधिकम्॥इदानीम्॥ =व्यन्तरोंकी कुछ अधिक पल्य प्रमाण है। अब

ज्योतिष्काणाम्॥परा॥स्थितिः॥वक्तव्या॥इति॥अतः॥आह=ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु कहना चाहिये। ऐसे प्रश्न पर इसलिये कहते हैं कि

[1]सूत्रम्—ज्योतिष्काणां च ॥ ४० ॥ = ज्योतिष्काणाम् च स्थितिः (२८वां सूत्रसे) परा पल्योपममधिकम् (३९ वां सूत्रसे) भवति ॥ ४० ॥

सूत्रार्थः—ज्योतिष्काणाम्॥च॥परा॥स्थितिः॥ =ज्योतिषी देवनिकी उत्कृष्ट स्थिति

पल्योपमम्॥अधिकम्॥भवति॥ =कुछ अधिक पल्य प्रमाण है अर्थात् चंद्रमाकी आयु एक पल्यसे एक लाखबरस अधिक है। सूर्य की आयु एक पल्यसे एक सहस्रबरस अधिक है शुक्रकी एकपल्यसे सौ बरस अधिक है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस चालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

चशब्दः॥प्रकृत-समुच्चय-अर्थः॥ =(इस सूत्रमें) च शब्द प्रकरणके संग्रहके लिये है अर्थात् यहां स्थितिका विषय चलरहा है सो चकार से ३९ वां सूत्रमें वर्णित आयुको यहां जोड़ागया है

(1) श्वेताम्बरआम्नायमें पाठ "ज्योतिष्काणामधिकम्" ॥ ४८ वां सूत्रहै। हमारे यहां अधिकम् की अनुवृत्ति ३९ वां सूत्रसे आती है अर्थ एकहै॥

तेनैवमभिसम्बन्धः।ज्योतिष्काणां परा स्थितिः पल्योपममधिकमिति॥ अथापरा कियतीत्यतआह—

॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

सर्वार्थ तस्य पल्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यर्थः ॥ सि

अध्याय४ अथ लौकान्तिकानां विशेषोक्तानां स्थितिविशेषो नोक्तः । स कियानित्यत्रोच्यते— सूत्र

११७ तेन।३।१ एवम्*अभिसम्बन्धः।१।१ ज्योतिष्काणाम्।६।३ परा।१।१ =तिस (च शब्द) करि ऐसे सम्बन्ध होता है कि ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट

स्थितिः।१।१ पल्योपमम्।१।१ अधिकम्।१।१ इति*॥ अथ* =आयु कुछ अधिक एक पल्य प्रमाण है । आगें

अपरा।१।१ कियती।१।१ इति*अतः*आह =(ज्योतिषी देवोंकी) जघन्य (स्थिति) कितनी है ऐसे प्रश्नपर इसलिये कहतेहैंकि

(१)तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

= तदष्टभागः ज्योतिष्काणाम् (४० वां सूत्रसे) अपरा, स्थितिः (२८ वां सूत्रसे) भवति ॥

सूत्रार्थः—तद्-अष्टभागः।१।१ ज्योतिष्काणाम्।६।३ अपरा।१।१ स्थितिः।१।१ =उस (पल्य प्रमाण) के आठवां भाग ज्योतिषियोंकी जघन्य आयु है ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस इकतालीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दशःहिंदीअनुवाद

तस्य।६।१ पल्योपमस्य।६।१ अष्टभागः।१।१ =तिस पल्यके आठवां भाग

ज्योतिष्काणाम्।६।३ अपरा।१।१ स्थितिः।१।१ इति*अर्थः।१।१ =ज्योतिषी देवोंकी जघन्य आयु है ऐसा अभिप्राय है ।

अथ*लौकान्तिकानाम्।६।३ विशेषउक्तानाम्।६।३ स्थिति-विशेषः।१।१ =अब विशेष वर्णित लौकान्तिक देवोंकी स्थितिका प्रभेद

न*उक्तः।१।१ सः।१।१ कियान्।१।१ इति*अत्र*उच्यते =नहीं कहागयाहै। सो(=स्थिति विशेष)कितना है। ऐसे(प्रश्नपर)यहांकहाजाताहै कि

(१) इस सूत्रका हमारे यहां पाठ और अर्थ एक है ॥ हमारे यहां सामान्यरूपसे या अविशेष रूपसे (तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८ में) ज्योतिषियोंकी यह जघन्य स्थिति है और इस सूत्रमें ४० वां सूत्रसे 'ज्योतिष्काणाम्' की अनुवृत्ति लीहै । श्वेताम्बर आम्नायमें 'जघन्या त्वष्टभागः' ऐसा ५२ वां सूत्र सभाष्य० में है । उक्त सभाष्य० के अनुकूल 'परा पल्योपमम्' ४७ वां सूत्र से ५२ वां सूत्रमें पल्य शब्द अनुवर्तना है और 'तारकाणाम् शब्दकी अनुवृत्ति ५१ वां सूत्र "तारकाणांचतुर्भागः" से लीगई है इसलिये ५२ वां सूत्र 'तारकाणां तु जघन्या (स्थितिः २८ वां सूत्रसे) पल्योपमम् अष्टभागः" ऐसा हुआ अर्थमें दोनो आम्नायोंमें भेद यह हुआ कि श्वेताम्बर आम्नायमें तारकाओंकी जघन्यस्थिति पल्यके आठवां भाग हुई हमारे यहां सब ज्योतिषियोंकी सामान्यरूपसे पल्यका आठवां भाग जघन्य स्थिति हुई ॥ हमारे यहां तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८, १७९ में चन्द्र, सूर्य, ११

६ ग्रह, २७ (अभिजित सहित) २८ नक्षत्रों और ताराओंकी पृथक् पृथक् विशेष रूपसे जघन्य स्थिति वार्तिकोंमें दी गई है उसकी तुलनात्मक सूची श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्रके सूत्र४६ से ५३ तक नीचे दीजातीहै कि विषय स्पष्ट होजावै।श्वेताम्बर आम्नायमें 'चतुर्भागः शेषाणाम् ५३' सूत्रमें यह चौथा अध्याय पूर्ण होता है। उनके यहां 'लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्' सूत्र वा वार्तिक नहीं है॥

श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रसे उद्धृत	दिगम्बर आम्नायके तत्त्वार्थराजवार्तिकअलंकारसे उद्धृत
	(क) चंद्राणां वर्षं शतसहस्राधिकम् (वार्तिक १) =चंद्राणां वर्षशतसहस्राधिकं पल्योपमं परा स्थितिः =चंद्रमाओंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक लाख बरस अधिक होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() सूर्याणां वर्षं सहस्राधिकम् (वार्तिक २) =वर्षसहस्राधिकं पल्योपमं सूर्याणां परा स्थितिः =सूर्योंकी उत्कृष्ट स्थिति एक पल्यसे एक हजार बरस अधिक है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
	() शुक्राणां शताधिकम् (वार्तिक३) =शुक्राणां वर्षशताधिकं पल्योपमं परास्थितिः =शुक्रोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे एकसौ बरस अधिकहै (राज०पृष्ठ१७८)
	() बृहस्पतीनां पूर्णम् (वार्तिक ४) बृहस्पतीनाम् पूर्णपल्योपमम् परा स्थितिः =बृहस्पतियोंकी उत्कृष्ट आयु पूरी एक पल्य प्रमाण है (राज० पृष्ठ १७८)
() ग्रहाणामेकम् (सूत्र४६) =ग्रहाणामेकं पल्योपमं परा स्थितिःभवति =सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु इन नव ग्रहोंकी (उत्कृष्ट स्थिति) एक पल्य प्रमाण होती है	() शेषाणामर्धम्(वार्तिक ५) शेषाणां ग्रहाणांबुधादीनां पल्योपमस्यार्धंपरास्थितिः =बचे हुए अर्थात् चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र बृहस्पतियोंके अतिरिक्त बुध, मंगल शनिश्चर, राहु और केतु ग्रहोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्य प्रमाण होती है। तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १७८)
() नक्षत्राणामर्धम् (सभाष्य० सूत्र ५०) =नक्षत्राणां देवानां पल्योपमार्धं परा स्थितिर्भवति =(२७ या २८) नक्षत्रदेवोंकी उत्कृष्ट आयु आधे पल्यकी होती है	() नक्षत्राणां च (वार्तिक ६) =नक्षत्राणाम् अर्धपल्योपमं परा स्थितिः भवति (राज० पृष्ठ १७८) =(सत्ताईस वा अट्ठाईस) नक्षत्रोंकी उत्कृष्ट आयु आधेपल्य होती है (तत्त्वार्थराजवार्तिक पृष्ठ १७८)
() ताराकाणां चतुर्भागः (सूत्र ५१) =ताराकाणां च पल्योपम चतुर्भागः परा स्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट आयु पल्यका चौथाई भाग प्रमाण है॥	() तारकाणां चतुर्भागः (वार्तिक७) =पल्योपमस्यचतुर्भागः तारकाणांपरास्थितिः =ताराओंकी उत्कृष्ट स्थिति पल्यके चौथाईभाग प्रमाणहै (राजवार्तिक पृष्ठ १७८)

॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

(१) सूत्रम्—लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

= सर्वेषाम् लौकान्तिकानाम् परा(३९वां सूत्रसे)अपरा (३३वां सूत्रसे)स्थितिः(२८वां सूत्रसे) भवति॥

() जघन्या त्वष्टभागः (सूत्र ५२) =तारकाणांतु जघन्या स्थितिः पल्योपमाष्टभागः =और ताराओंकी जघन्य स्थिति पल्य के आठवां भाग प्रमाण है

() चतुर्भागः शेषाणाम(सूत्र५३) =तारकाभ्यः शेषाणां ज्योतिष्काणां चतुर्भागः पल्योपमस्यापरास्थितिः
=ताराओंसे बचे हुए (सत्ताईस नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र,मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु ये नौ ग्रह) ज्योतिषीदेवोंकी जघन्य आयु पल्यके चौथाई भाग प्रमाण है ॥

() तदष्टभागो जघन्योभयेषाम् (वार्तिक ८) =तस्य पल्योपमस्याष्टभागः जघन्या स्थितिः उभयेषां तारकाणां नक्षत्राणां च भवति(राजवार्तिकपृष्ठ१७९) =तिस पल्यके आठवां भाग प्रमाण जघन्य आयु दोनों ताराओं और नक्षत्रों की होती है (दोनों आम्नायोंमें ताराओंकी निकृष्ट स्थिति एक है परन्तु नक्षत्रोंकी जघन्यस्थिति श्वेताम्बरसमाजके सभाष्यतत्वार्थाधिगमसूत्रके५३वां सूत्रके अनुकूल चौथाई पल्य है हमारे यहांसे दूनी हुई)

() शेषाणां चतुर्भागः (वार्तिक ९) शेषाणां सूर्यादीनां पल्योपम चतुर्भागो जघन्य स्थितिर्वेदव्या (राजवार्तिक पृष्ठ १७४)
=बचेहुए सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुद्ध बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु, केतु ये नवग्रहोंकी जघन्य स्थिति पल्यके चौथाई भाग प्रमाण जानो ॥ इस सूत्रका पाठ दोनों आम्नायोंमें एक है परन्तु हमारे यहां नक्षत्रोंकी जघन्य आयु पल्य के आठवां भाग है श्वेताम्बर समाज में पल्य का चौथाई भाग है

(१) इसके सम्बन्धमें पं० पन्नालाल वाकलीवालजीने यह लिखा है कि यह श्री पूज्यपाद स्वामीकृत सर्वार्थसिद्धिका वार्तिक है । क्योंकि श्री भट्टाकलंकदेवने 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिकाः' कहा है। मेरी समझमें यह नहीं आया कि 'अष्टसागरोपमा सर्वेलौकांतिकाः' यह वाक्य कहांसे लिया है पं० पन्नालालजी दूनी, प० पन्नालालजी न्यायदिवाकर पं०गजाधरलालजी अनुवादित राजवार्तिकका पाठ कई हस्तलिखित राजवार्तिकप्रतियोंके पाठ और वाकली वालजीकी स्वयं मुद्रित कीहुई राजवार्तिककेभी पाठ देखेगये परन्तु हमको यह सूत्ररूपमें राजवार्तिकमें,अर्थप्रकाशिकामें,सर्वार्थसिद्धि वचनिकामें, श्रुतसागरी टीकामें मिला है। कई प्रतियें श्लोकवार्तिक, पं० सदासुखजी कृत सूत्रपर लघुटीका सं० १९१० और श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र श्री सिद्धसेनसूरिरचित भाष्यानुसारिणी तत्वार्थटीका जिसमें ८२ सहस्र श्लोकसे अधिक है उपर्युक्त वाक्य न तो यह सूत्ररूपसेही मिला और न वार्तिकरूपमेंही मिला ॥ कोई भी प्रमाण नहीं है कि यह सूत्र पूज्यपाद स्वामी कृत वार्तिक है तथा भाष्यकार और टीकाकारोंका उत्थानिकाओं से कि 'सूत्रमाहुः' (देखो श्रुतसागरी टीका) 'इत्यवोच्यत' (देखो तत्वार्थ राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि) स्पष्ट है कि यह सूत्र है ॥

अविशिष्टाः सर्वे ते शुक्ललेश्याः पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः
॥ चतुर्निकायदेवानां । स्थानं भेदाः सुखादिकम् ॥ परापरस्थितिर्लेश्या । तुर्याध्याये निरूपितम् ॥ १ ॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां चतुर्थोऽध्याय ॥

सूत्रार्थः- सर्वेषाम्॥ लौकान्तिकानाम्॥ परा॥ अपरा॥ =सब लौकान्तिक (देव) निकी (देखो सूत्र २४, २५) उत्कृष्ट और जघन्य
स्थितिः॥ अष्टौ॥ सागरोपमाणि॥ =आयु आठ सागर प्रमाण है
वृत्त्यनुवादः- अवशिष्टाः॥ =अवशेष या वचेहुये अर्थात् सर्व प्रकारके देवोंसे जिनकी स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य कही जो शेषरहे ऐसे लौकान्तिकदेव
सर्वे॥ ते॥ शुक्ल लेश्याः॥ पञ्च-हस्त-उत्सेध-शरीराः॥ =वे समस्त शुक्ललेश्याके धारक, पांच हाथकी ऊंचाईके शरीर सहित हैं अर्थात् सब लौकान्तिक देवोंके शुक्ललेश्या हैं और पांच पांच हाथ ऊंचा शरीर है ॥
चतुर्निकाय-देवानाम्॥ स्थानम्॥ =चार समुदायके देवोंके निवास स्थान (सूत्र १३, १४, १५, १८, १९, २३, २४)
भेदाः॥ =तथा भेद (सूत्र १, २, ४, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, २४, शेषार्थ २५, २६)
सुखादिकम्॥ =और सुखादिक (सूत्र ७, ८, ९, २०, २१, २७)
पर-अपरा-स्थितिः॥ =उत्कृष्ट और जघन्य आयु (देखो सूत्र ३४, ३५, ४२,)
(परा॥ स्थितिः॥) =बहुरि परास्थिति (सूत्र २८ से ३२ तक ३९, ४०)
(अपरा॥ स्थितिः॥) लेश्या॥ =और अपरा स्थिति (सूत्र ३३, ३६, ३७, ३८, ४१) तथा लेश्या (सूत्र२,२२)
तुर्याध्याये॥ निरूपितम्॥ =चौथे अध्यायमें वर्णित हैं ।

इति॥ तत्त्वार्थ-वृत्तौ॥ =इसप्रकार तत्त्वार्थके विवरणमें (=वृत्तौ)
सर्वार्थसिद्धि-सञ्ज्ञिकायाम्॥ =सर्वार्थसिद्धि नामक ग्रन्थमें
चतुर्थः॥ अध्यायः॥ ॥ =चौथा अध्याय (समाप्त) हुआ ॥

॥ अथ पंचमोऽध्यायः ॥

इदानीं, सम्यग्दर्शनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातार्थः ।
अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सञ्ज्ञाभेदसंकीर्तनार्थमिदमुच्यते ।

॥ (१) अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

कायशब्दः शरीरे व्युत्पादितः । इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचारः ? । यथा शरीरं पुद्गलद्रव्य-

अथ॥पञ्चमः ¹₁, अध्यायः ¹₁। इदानीं ॥ सम्यग्दर्शनस्य ¹₆ ॥ = पांचवा अध्याय प्रारम्भ (= अथ) है । अब सम्यग्दर्शनके
विषय-भावेन ¹₃। उपक्षिप्तेषु ⁵₇। जीवादिषु ³₇। जीव-पदार्थः ¹₁। = विषयभावकरि गर्भित (= उपक्षिप्तेषु) जीवादिकोंमें जीव पदार्थ है
व्याख्यात-अर्थः ¹₁। = (सो) कहा हुआ विषय (= अर्थ) है (अर्थात् जीवका वर्णन कर चुके हैं)

भावार्थ—सम्यक्त्वके विषय निबन्धमें जीवादिक सात तत्त्व (अ० १सूत्र २ , ४) गर्भित हैं उनमेंसे जीव द्रव्यका व्याख्यान कर चुके हैं ।

अथ॥अजीव-पदार्थः ¹₁। विचार-प्राप्तः ¹₁। तस्य ¹₆। संज्ञा- = अब (= अथ) अजीवपदार्थ विचारमें प्राप्त हुआ तिस (अजीवपदार्थ) के नाम
भेद-संकीर्तन-अर्थम् ¹₁॥ इदम् ¹₁॥ उच्यते T = और भेद कहनेके लिये यह कहा जाता है कि—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः ¹₃। अजीव-कायाः ¹₃। = धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुप्रदेशी (काय) हैं अर्थात् इन प्रत्येक प्रत्येक द्रव्यमें अचेतनपना और बहुप्रदेश वा बहुत अवयवोंका होना पाया जाता है । १

वृत्यनुवादः—कायशब्दः ¹₁। शरीरे ¹॥ व्युत्पादितः ¹₁। = (इस सूत्र में) काय शब्द शरीर (अर्थ) में व्याकरण की रीतिसे उत्पन्न हुआ है
इह॥उपचारात् ¹₅। अध्यारोप्यते T यहां व्यवहारसे अध्यारोपण कियागया है अथवा संस्थापन वा नियत किया गया है
कुतः॥ उपचारः ¹₁। यथा॥शरीरं ¹॥ पुद्गलद्रव्य- = (प्रश्न) कहांसे उपचार किया गया है । (उत्तर) जैसे शरीर पुद्गलद्रव्यके

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायोंमें एकसा है । 'धर्माधर्मौ भी अचोरहाभ्याम् द्वे वा' ८।४।४६अष्टाध्यायी सूत्रसे ठीक है ।

प्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति। अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः ॥ विशेषणं विशेष्येणेति वृत्तिः ॥

प्रचय-आत्मकं १/१॥ तथा* धर्मादिषु ७/३। अपि*	= समूहरूप (= प्रचयात्मक) है तैसे धर्मादिकद्रव्योंमें भी
प्रदेश-प्रचय-अपेक्षया ३/१॥ कायाः १/३॥ इव* इति*	= प्रदेशोंके समूहरूप विवक्षासे कायासरीखा (व्यवहार) है इसप्रकार
कायाः १/३। च* अजीवाः १/३।	=(वे धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल) काया हैं। और (= च) अजीव
च* कायाः १/३। ते १/३। अजीवकायाः १/३।	= और (= च)काय हैं वे अजीव काया हैं अर्थात् ये चार धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, पुद्गलद्रव्य चेतना रहित और बहुत प्रदेशी हैं इसलिये ये अजीवकाय (अचेतन और बहुप्रदेशी)हैं। ये बहु प्रदेशी हैं इससे ये द्रव्य काय कहलाते हैं और चेतना रहित हैं इससे अजीव कहलाते हैं
विशेषणं १/१॥ विशेष्येण ३/१। इति* वृत्तिः १/१॥	= गुणवाचक(अजीव शब्द)विशेष्य(कायशब्द)से मिलकर ऐसे (कर्मधारय) समास हुआ

* पदार्थाभिधानं वृत्तिः—एकरूपसे अर्थ प्रकाश करनेकी शक्तिको वृत्ति कहते हैं। उस वृत्तिके पांच भेद हैं जैसे कृत्, 'तद्धित', समास, एकशेष, और सनाद्यन्त धातु हैं। यहां पर वृत्ति शब्दका अर्थ केवल समास है। अनेक पदोंको एकमें मिला देनेको समास कहते हैं। वह पांच प्रकार का है (i) जिसका कोई विशेष नाम नहीं है वह केवल समास कहाता है (ii) बहुधा जिसमें पूर्व पदका अर्थ प्रधान होता है वह अव्ययी भाव समास है (iii) प्रायः जिसके उत्तर पदका अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष समास है। तत्पुरुष समास का एक भेद कर्मधारय समास है। इसमें दोनों विभक्ति समान होती हैं और विशेषण विशेष्य भाव होता है। जैसे यहां "अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकायाः" इसमें अजीवाः और कायाः दोनों समान विभक्ति (प्रथमाविभक्ति बहु वचन पुल्लिंग) हैं॥ (प्रश्न) यहां पर वे काया कैसे गुण वा विशेषण सहित हैं। (उत्तर) चेतना रहित उन कायाओंका गुण है ॥ ऐसे "अजीवाः" विशेषण हुआ और कायाः विशेष्य हुआ इसलिये विशेषण और विशेष्य भाव हुआ ॥ कर्मधारय का एक भेद द्विगु है। इसका प्रथम संख्या वाचक शब्द होता है। (iv) जिसमें समासके पदोंको छोड़कर और ही पदका अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है। (v) जिसमें दोनों पद का अर्थ प्रधान हो वह द्वन्द्व नामक पांचवां समास है।

नतु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः। इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति। अजीवशब्दोऽकाये कालेऽपि वर्तते, कायोऽपि जीवे। किमर्थः कायशब्दः ?। प्रदेशबहुत्वज्ञापनार्थः। धर्मादीनां प्रदेशा बहव इति॥ ननु च असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानामित्यनेनैव प्रदेशबहुत्वं ज्ञापितम्। सत्यमिदम्। परं किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारणं विज्ञायते असंख्येयाः प्रदेशा न संख्येया नाप्यनन्ता इति॥

ननु * च * नील—उत्पल—आदिषु ७/३। = पुनि प्रश्न। नील-कमल आदिक (कर्मधारयसमास) निर्मे

व्यभिचारे ७/१। सति ७/१। विशेषण—विशेष्य—योगः १/१। = वही गुण दूसरी वस्तुमें होनेपर (= सति) विशेषण और विशेष्यका मेल होता है

अर्थात् प्रश्न यह है कि विशेष्य में जो गुण होता है वह दूसरी वस्तुओं में भी पाया जाता है तब विशेषण विशेष्य मिलकर कर्मधारय समास होता है जैसे नीलकमलमें और रक्तकमलमें नीलापन और रक्तता यथासंख्य पाई जाती है इनके अतिरिक्त और भी अनेक वस्तुएं हैं जिनमें नीलता और रक्तता पाई जाती है तो यहां अजीव काय विषैं क्या व्यभिचार है।

इह * अपि * व्यभिचार—योगः १/१। अस्ति T = (उत्तर) यहां भी(इस 'अजीवकाय' कर्मधारय समास में) व्यभिचारका मेल वा जोड़ है

अजीव—शब्दः १/१। अकाये ७/१। काले ७/१। अपि*वर्तते T = (क्योंकि) अजीवशब्द काय रहित वा अप्रदेशी कालद्रव्यमें भी वर्तता है

कायः १/१। अपि * जीवे ७/१। किम् * अर्थः १/१। = (और) बहुत प्रदेशोंका होना भी (अजीवत्व रहित) जीवद्रव्यमें वर्त है। कौन अर्थ है

कायशब्दः १/१। ? प्रदेश—बहुत्व—ज्ञापन—अर्थः १/१ = काय शब्द (उत्तर) प्रदेशोंका प्रचयपना जनावनेके लिये है कि

धर्म—आदीनां ६/३। प्रदेशाः १/३ बहवः १/३। इति * = धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल के प्रदेश बहुत हैं

ननु*च*असंख्येयाः १/३। प्रदेशाः १/३। धर्म—अधर्म— = पुनि प्रश्न असंख्यातअसंख्यात प्रदेश धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और

एक—जीवानाम् ६/३। इति*अनेन ३/१॥ एव* प्रदेश— = एक जीव के हैं इस (अगले आठवां सूत्र) करि ही प्रदेशोंकी

बहुत्वं १/१॥ ज्ञापितम् १/१॥ सत्यम् १/१॥ इदम् १/१॥ = प्रचुरता जताई जाती है (उत्तर) यह सत्य है

परं किन्तु-अस्मिन् ७/१॥ विधौ ७/१॥ सति ७/१। तद्-अवधारणं १/१॥ = किन्तु केवल (= परं) इस विधि (आठवां सूत्र) के होने पर उस (प्रदेश बहुत्व) का नियम

विज्ञायते T असंख्येयाः १/३। प्रदेशाः १/३। न*संख्येयाः १/३। = जतलाया गया है कि असंख्यात प्रदेश हैं, संख्यात नहीं हैं

न*अपि*अनन्ताः १/३। इति*॥ = अनन्त भी नहीं है अर्थात् केवल असंख्यात ही हैं—भावार्थ इस सूत्र में कायशब्दसे

कालस्य प्रदेशप्रचयाभावज्ञापनार्थं च इह कायग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रदेशप्रतिषेधार्थमिह कायग्रहणम् ॥ यथाऽणोः प्रदेशमात्रत्वाद्द्वितीयादयोऽस्य न सन्तीत्यप्रदेशोऽणुः । तथा कालपरमाणुरप्येकप्रदेशत्वादप्रदेश इति ॥ तेषांधर्मादीनामजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन प्रवृत्ता ॥ धर्माधर्माकाशपुद्गला इति विशेषसञ्ज्ञाः सामयिक्यः ॥

अत्राह सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्येत्येवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि, कानि तानीत्युच्यते—

	बहुत्व सामान्य जताया है और आठवां सूत्रमें प्रदेशोंकी संख्या जताई है
कालस्य ६। प्रदेश–प्रचय–अभाव–ज्ञापन–अर्थं ४।। च*	= कालके प्रदेशसमूहका अभाव जतानेके लिये भी (= च)
इह*कायग्रहणम् १।।कालः १। वक्ष्यते ⁺ तस्य ६। प्रदेश–	= यहां सूत्रमें कायका ग्रहण है काल द्रव्य (३९, ४०वां सूत्रों में) कहेंगे तिसके प्रदेशोंके
प्रतिषेध–अर्थम् १।।। इह*काय–ग्रहणम् १।।यथा*अणोः ६।	= निषेधके लिये यहां कायका आदान है जैसे पुद्गलके अणुके
प्रदेश-मात्रत्वात् ५।। द्वितीय–आदयः १। अस्य ६।	= केवल एक प्रदेशहोनेसे वा एक प्रदेशपनासे दूसरा (प्रदेश) आदिकजिस(पुद्गलअणु)के
न*सन्ति इति * अप्रदेशः १। अणुः १। तथा * काल–	= नहीं है ऐसा अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश रहित अणु है तैसे कालका
परमाणुः १।अपि*एक–प्रदेशत्वात् ५।। अप्रदेशः १। इति*	= परमाणु भी एकप्रदेशमात्रसे अथवा एक प्रदेश होनेसे अप्रदेश है
तेषां ६। धर्म–आदीनां ६। अजीवः १। इति*सामान्यसंज्ञा १।।	= इन धर्म अधर्म–आकाश–पुद्गल की अजीव ऐसी सामान्य संज्ञा है अर्थात् ऐसा नाम है कि अचेतनपना इन चारोंमें साधारण वा एकसा धर्म अथवा स्वभाव है
जीव–लक्षण–अभाव–मुखेन ३।। प्रवृत्ता १।।	= सो (यह सामान्य संज्ञा) चैतन्य स्वभावके अभावद्वाराकरि प्रवर्ते है अर्थात् सामान्यसंज्ञा के अस्तित्व को इन चारोंमें जो अचेतनपना है सो जताये हैं
धर्म–अधर्म–आकाश–पुद्गलाः १। इति*विशेषसंज्ञाः १।।	= धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ऐसी भेद रूप संज्ञायें हैं
सामायिक्यः १।।	= और शास्त्र सम्बन्धी है (= सामायिक्यः) अर्थात् सिद्धान्त और आगम पठित हैं भावार्थ सर्वज्ञ भाषित आगम (शास्त्र) में ये संज्ञायें रूढ़ि हैं और प्रत्येक २ धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल अपने २ संकेत से प्रवर्त्तती हैं
अत्र*आह। सर्व–द्रव्य–पर्यायेषु ७। केवलस्य ६।।।	= यहां शिष्य पूछता है कि समस्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों में केवल ज्ञान के
इत्येवं आदिषु७। द्रव्याणि उक्तानि कानि तानि इति उच्यते	= इत्यादिक(सूत्रों)में(देखो १ अ० सूत्र २६, २९)द्रव्य कहने क्या हैं ऐसेंकहा जाताहै कि

॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयन्ते द्रवन्ति वा तानि द्रव्याणि॥ द्रव्यत्वयोगाद्रव्यमिति चेन्न। उभयासिद्धेः॥ यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक्सिद्धयोः न च तथाद्रव्यद्रव्यत्वे पृथक्सिद्धेस्तः॥ यद्यपृथक्सिद्धयोरपियोगः स्यात्

सूत्रार्थः—धर्म-अधर्म-आकाश—पुद्गलाः ¹₃। द्रव्याणि ¹₃॥। = धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, द्रव्य हैं। जीव, काल, (सूत्र २, ३९ में) कहेंगे ऐसे छै(१) द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः (२) यथास्वं ¹॥। (३) पर्यायैः³। द्रूयन्ते T = स्वरूप (स्वं) के अनुसार अथवा जैसा स्वरूप हो तिसकी पर्यायोंसे प्राप्त किये जाते हैं

द्रवन्ति T वा तानि¹॥। द्रव्याणि ¹₃॥। द्रव्यत्वयोगात्⁵। = अथवा (पर्यायोंको) प्राप्त होते हैं वे द्रव्य हैं। द्रव्यपनाके सम्बन्धसे

द्रव्यम् ¹॥इति※चेत्※ = द्रव्य है ऐसी शंका वा प्रश्न (= चेत्) है ॥

न※ उभय—असिद्धेः ⁵॥ = (उत्तर) (द्रव्यत्व के योग से द्रव्य) नहीं है (क्योंकि) (द्रव्यत्व तथा द्रव्य) दोनों असिद्ध हैं।

यथा※पृथक्सिद्धयोः ⁶।। दंडदण्डिनोः⁶॥।योगः ¹।भवतिT = जैसे (दंड और पुरुष) न्यारे सिद्ध होनेपर दंड और दंडी (पुरुष) में सम्बन्ध होता है

न※च※तथा※द्रव्य—द्रव्यत्वे¹॥। पृथक्※ सिद्धे ¹॥। स्तः T = बहुरि (च) नहीं हैं तैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे सिद्ध। तात्पर्य्य यह है कि शिष्य के प्रश्न करने पर कि द्रव्यपना के संयोगसे द्रव्य होता है। यदि उसमें द्रव्यत्वकी विद्यमानता न हो तो द्रव्यका अस्तित्व सम्भव नहीं है तिसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि जैसे दंड और पुरुष न्यारे न्यारे सिद्ध हैं और जब पुरुष दंड को धारण करे तब दंडी कहलावे, बिना दंडके सम्बन्धके उसको दंडी नहीं कह सक्ते। वैसे द्रव्य और द्रव्यत्व न्यारे न्यारे नहीं दीखते हैं और न सिद्ध हैं तिस कारणसे द्रव्यपनाके योगसे द्रव्य हो सक्ती है यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं है (फेरिआचार्य कहते हैं-–

यदि※अपृथक् ※ सिद्धयोः ⁶॥। अपि※ योगः ¹। स्यात्T = जो (द्रव्यत्व और द्रव्यमें) भिन्न भिन्न सिद्ध न होनेपर भी सम्बन्ध हो तो

(१) हमारे यहां इस सूत्रका सर्वत्र एक अर्थ और एक ही पाठ है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें "द्रव्याणि जीवाश्च" ऐसा दूसरा सूत्र है अर्थात् सभाष्य० में "धर्म, अधर्म, आकश, पुद्गल, और संपूर्ण जीव ये पांच द्रव्य हैं" ऐसा अर्थ है कालको द्रव्य नहीं माना है॥

(२) यथास्वं शब्द अव्ययीभावसमास है और अव्ययीभावसमास नपुंसक लिङ्ग ही होता है ।

(३) इस वाक्यके गुप्त शब्दोंको प्रकट करनेसे ऐसे वाक्य स्पष्ट होजाता है कि–पर्यायैः द्रूयन्ते तानि द्रव्याणि वा = पर्यायोंसे प्राप्त किये जाय वे द्रव्य हैं अथवा (= वा) पर्यायान् ³। द्रवन्ति तानि ¹₃॥ द्रव्याणि ¹॥ = पर्यायों को (जो) प्राप्त हों वे द्रव्य हैं।

आकाशकुसुमस्य प्रकृतिपुरुषस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति ॥ अथ पृथक्सिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना निरर्थिका । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत्तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभावे तद्द्रव्यव्यपदेशो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः ॥ ननु गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्त इति ।

आकाश–कुसुमस्य ॥ (योगःस्यात्) प्रकृतिपुरुषस्य ।च*	=(आकाशऔर) आकाश पुष्पके सम्बन्ध हो जाय और (=च) स्वाभाविक पुरुषके अर्थात् स्वभावसे एक मस्तकवाले पुरुषके
द्वितीय–शिरसः । योगः ॥ स्यात् T इति *	= दूसरे मस्तकका सम्बन्ध हो जाय (इसी प्रकार द्रव्यतो द्रव्यत्वरूप है ही तिसके फिर दूसरे द्रव्यत्वका योग ठहरै)
अथ * पृथक् * सिद्धिः ॥ अभ्युपगम्यते T	= पक्षान्तरमें अथवा अब (द्रव्य और द्रव्यत्व) न्यारे सिद्ध मानेजाते हैं तो
द्रव्यत्व–कल्पना ॥ निरर्थिका ॥	= द्रव्यपनाकी कल्पना निष्प्रयोजन है अर्थात् हमको द्रव्य सिद्ध करना है और जब द्रव्यका अस्तित्व हमने भिन्न मान लिया पुनः यह कहना कि द्रव्यके द्रव्यत्वका योगहै तिसहेतुसे द्रव्यहै निरर्थक है क्योंकि द्रव्यकी विद्यमानता तो हम मान ही बैठे हैं
गुण–समुदायः ॥ द्रव्यम् ॥ इति* चेत्*तत्र* अपि*	= गुणोंका समूह है सो द्रव्य है ऐसा प्रश्न अथवा शंका है (उत्तर) वहां भी
गुणानां । समुदायस्य । च*भेद–अभावे । तत्द्रव्य-	= गुणोंके और समुदायके (सर्वथा) भेद न माननेमें उस द्रव्यका (पृथक्)
व्यपदेशः ॥ न* उपपद्यते T	= नाम प्राप्त नहीं होता है (क्योंकि गुणोंका समुदाय कहा तब द्रव्य कहां)
भेद–अभ्युपगमे । च* पूर्व–उक्तः ॥ एव* दोषः ॥	= और(च)गुणनिके और समुदायके भेद माननेमें पहिले कहा हुआ ही दूषण आताहै अर्थात् उस द्रव्य नामकी अप्राप्ति आती है (क्योंकि जब समुदाय गुणोंसे भिन्न ठहरा तब गुणोंका समुदाय क्यों कहना चाहिए उसको तो गुणोंसे पृथक् ही मान लिया है
ननु*गुणान् । द्रवन्ति T गुणैः । वा द्रूयन्ते T इति*	=(इसी सम्बन्धमें पुनि) प्रश्न गुणोंको प्राप्त होता है अथवा गुणोंकरि प्राप्त किया जाता है (सो तुम्हारे कथनानुसार द्रव्य है) ऐसे

विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेन्न । कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्व्यपदेशसिद्धिः व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्ज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदाद्भेद इति ॥ प्रकृता धर्मादयो बहवस्तत्सामानाधिकरण्याद्बहुत्वनिर्देशः ॥

७

विग्रहे ७। * अपि*सः१। एव * दोषः१। इति*चेत्*	= द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करनेवाले वाक्यमें भी वही दोष आता है। ऐसी शंका है अर्थात् द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति आती है ऐसाप्रश्न है।
न *	= (उत्तर)(द्रव्य व्यपदेशकी अप्राप्ति का दूषण)नहीं आता है
कथञ्चित् * भेद-अभेद-उपपत्तेः ५॥	= (क्योंकि गुणोंकिऔर समुदायके वा द्रव्यके) कथंचित् भेद और कथंचित् उनमें अभेद माननेसे है
तद्-व्यपदेश-सिद्धिः १॥ व्यतिरेकेण ३।	= उस (द्रव्य) के नाम (= व्यपदेश) की सिद्धि होय है (गुण और द्रव्य में) भिन्नता सहित
अनुपलब्धेः ५॥ अभेदः १।सञ्ज्ञा-लक्षण-प्रयोजनादि-	= न दीखने (के हेतु) से अभेद है (और) संज्ञा (संख्या) लक्षण और प्रयोजनादिक
भेदात् ५। भेदः१। इति* प्रकृताः १। धर्मादयः १। बहवः१।	= भेद करि भेद है । प्रकरणरूप धर्मादिक (द्रव्य) बहुत हैं
तत्-समान-अधिकरण्यात् ५॥ बहुत्व-निर्देशः १।	= सो समान आधार के योग से (इस सूत्र में) बहु वचनता का निरूपण है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें ये चार द्रव्य हैं और बहुवचन हैं इसलिये इस सूत्रमें ('द्रव्याणि' ऐसा शब्द बहुवचन में लाये हैं ?)

७

(१) कृत्, तद्धित, समास, एकशेष, सनाद्यन्तधातु इन पांच प्रकारकी वृत्तियोंमेंसे किसी भेदके अर्थको बोधन करनेवाले वाक्यको विग्रह कहते हैं । विग्रह लौकिक और अलौकिक दो प्रकारका है जैसे राजपुरुषः का लौकिक विग्रह राज्ञः पुरुषः होगा और अलौकिक विग्रह राजन्-अस्—पुरुष+सु होगा ॥ इसलिये "गुणान् द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते" यह लौकिक विग्रह द्रव्य शब्दका (जो वृत्तिके पहिले भेदमें द्रुधातु से बना, है ॥ इस हेतु से विग्रह वाक्य का अनुवाद स्पष्ट रूप से ये हुआ कि "द्रव्य शब्दके अर्थ प्रकाश करने वाले वाक्यमें भी" अर्थात् गुणान्द्रवन्ति गुणैर्वा द्रूयन्ते में भा इत्यादि ॥

स्यादेतत्संख्यानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि प्राप्नोति। नैष दोषः। आविष्टलिंगाः शब्दा न कदाचिल्लिंगं व्यभिचरन्ति। अतो धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति ॥

अनन्तरत्वाच्चतुर्णामेव द्रव्यव्यपदेशप्रसंगेऽध्यारोपणार्थमिदमुच्यते—

॥ जीवाश्च ॥ २ ॥

जीवशब्दो व्याख्यातार्थः।

स्यात् T-एतत् ¹|।। संख्या-अनुवृत्ति-वत्※ = यह हो अर्थात् यह मानलो (परन्तु) (प्रश्न) संख्याके अनुवर्तनके सदृश

पुल्लिंग-अनुवृत्तिः ¹|। अपि ※ प्राप्नोति T = पुलिंगकी अनुवृत्ति भी (इस सूत्रमें) प्राप्त होती है अर्थात् प्रश्न यह है कि धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्योंको प्रथम सूत्रमें बहुवचनमें लाये हैं

इसलिये "द्रव्याणि" शब्द भी यहां बहुवचनमें कहा तो धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल पूर्व सूत्रमें जब पुल्लिंगमें है फिर इस सूत्रमें द्रव्य शब्दको पुल्लिंगमें द्रव्याः ऐसा क्यों नहीं रक्खा नपुंसकलिंगमें "द्रव्याणि" ऐसा क्यों लाये हैं

न ※ एषः ¹|। दोषः ¹|। आविष्ट-लिंगाः ¹/₃|। शब्दाः ¹/₃| = (उत्तर) यह दूषण नहीं है (क्योंकि) निवेशित लिंगी शब्द अर्थात् जिन २ शब्दोंको जो जो लिंग प्राप्त है

न※कदाचित्※लिंगं ²|।। व्यभिचरन्ति T = कभी अपना लिंग नहीं छोड़ते हैं (इसलिये क्योंकि द्रव्य शब्द नपुंसक लिंगी है इस सूत्रमें भी "द्रव्याणि" ऐसाद्रव्य शब्द नपुंसकलिंगमें लाये हैं)

अतः※धर्म-आदयः ¹। द्रव्याणि ¹|।। भवन्ति T इति※ = इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल द्रव्य हैं ऐसा (सूत्र) है

चतुर्णाम् ⁶। एव ※ अनन्तरत्वात् ⁵|।। = चारों (धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल) के ही अत्यन्त समीपतासे अथवा लगावसे

द्रव्य-व्यपदेशे-प्रसंगे ⁷। अध्यारोपण-अर्थम् ¹|।। = द्रव्योंके कथनके प्रकरणमें (अन्य द्रव्य के) संस्थापन वा नियत करनेके लिये

इदम् ¹|।। उच्यते T = यह (अग्रिम सूत्र में) कहा जाता है कि

सूत्रम्- जीवाश्च ॥२॥ = **जीवाश्च (द्रव्याणि भवन्ति) = जीवाःच द्रव्याणि भवन्ति T**

सूत्रार्थः— जीवाः ¹/₃। च ※ द्रव्याणि ¹|।। भवन्ति T = जीव भी द्रव्य हैं

वृत्त्यनुवादः—जीव-शब्दः ¹। व्याख्यात-अर्थः ¹। = जीव शब्द है सो कहा हुआ विषय है

बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः। चशब्दः सञ्ज्ञानुकर्षणार्थः जीवाश्च द्रव्याणीति॥ एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड्द्रव्याणि भवन्ति॥ ननु द्रव्यस्य लक्षणं वक्ष्यते 'गुणपर्ययवद्द्रव्यमिति' तल्लक्षणयोगाद्धर्मादीनां द्रव्यत्वव्यपदेशो भवति, नार्थःपरिगणनेन? ॥ परिगणनमवधारणार्थं, तेनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिःकृता भवति॥ कथं? पृथिव्यप्तेजोवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति

बहुत्व-निर्देशः व्याख्यात-भेद-प्रतिपत्ति-अर्थः =(इस सूत्रमें 'जीवाः' ऐसा) बहुवचनका निरूपण वा कथन वर्णित (जीवके) भेदोंके जनानेको है
च-शब्दः संज्ञा-अनुकर्षण-अर्थः =(सूत्रमें) च शब्द (द्रव्य) संज्ञाके ग्रहण करनेके लिये वा अनुवृत्तिके लिये है
जीवाः च* द्रव्याणि इति* एवम्* एतानि =जीव भी द्रव्यें हैं ऐसा (अर्थ होता) है इसप्रकार ये
वक्ष्यमाणेन कालेन सह* षड्द्रव्याणि भवन्ति। =आगे कहे जानेवाले काल सहित छह द्रव्यें होती हैं
ननु* गुण-पर्यय-वत्* द्रव्यम् इति* द्रव्यस्य =प्रश्न, गुण पर्याय वाला द्रव्य होता है ऐसा द्रव्यका
लक्षणम् वक्ष्यते। तत्-लक्षणयोगात् धर्मादीनाम् =लक्षण (सूत्र ३८ वां में) कहेंगे तिस लक्षणके सम्बन्धसे धर्मादिकोंके
द्रव्यत्व-व्यपदेशः भवति, न* अर्थः परि-गणनेन =द्रव्यत्व नाम होता है गणना (करने) से प्रयोजन नहीं (तो आपने छह द्रव्य हैं ऐसी गणना क्यों की)
परिगणनम् अवधारण-अर्थम् तेन अन्यवादिन् =(उत्तर) गिनती है सो नियम के लिये है तिस (गिनती) से भिन्नवादीसे
परिकल्पितानाम् पृथिवी-आदीनाम् =मानेगये पृथिवी-जल-तेज वायु आकाश-काल-दिशा-आत्मा, मन की अर्थात् पृथिवी आदिक इन नौ द्रव्योंकी (देखो 'तर्कसंग्रह' दूसरा सूत्र)
निवृत्तिः कृता भवति। कथम्? पृथिवी-अप् =निवृत्ति वा रोक पूरी- (=कृता) होती है (प्रश्न) कैसे पृथिवी, जल,
तेजो-वायु-मनांसि पुद्गलद्रव्ये अन्तर्भवन्ति। =अग्नि, वायु, मन, पुद्गल द्रव्यविषैं गर्भित हैं।

---

(१) इस प्रश्नकी योग्यता इसप्रकार है कि अन्यवादियोंने तर्क संग्रहआदि न्यायके ग्रंथोंमें आत्मा, काल, आकाश, दिशा, पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन नौ द्रव्य माने हैं हमारे यहां आत्मा, काल, आकाश, पुद्गल, धर्म और अधर्म ये छह द्रव्य माने हैं धर्म और अधर्म अन्यवादियों ने द्रव्य नहीं माने हैं ऊपर की गणनासे स्पष्ट है कि आत्मा, काल और आकाश जिसमें दिशा भी गर्भित हैं (दिशा का आकाश में गर्भित होना इससूत्रकी वृत्ति के अन्तभागमें सिद्ध किया है) हमारे यहां और उनके यहां एक से हैं। अब अन्यवादियोंकी शेष पांच द्रव्यें पृथिवी, जल, तेज, वायु, और मन रह गये सो हमारे यहां के पुद्गल द्रव्यमें सब के सब आजाते हैं इसलिये प्रश्नकर्ताने उपर्युक्त तर्क संग्रह ग्रन्थमें वर्णित नौ द्रव्योंके कथन वा गणना को चित्त में धारण करके यह प्रश्न किया है कि पुद्गल द्रव्यमें ये पांचों कैसे गर्भित हैं॥

१०

रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ।

रूप-रस-गन्ध-स्पर्शवत्त्वात्-है""चक्षुःइन्द्रिय-वत्*=(उत्तर)रूप-रस-गंध-और स्पर्शवान् होनेसे नेत्र इन्द्रियके सदृश(पुद्गलद्रव्यमें गर्भित)है

(१) यहांसे आगे इस वृत्तिके अर्थको भले प्रकार समझने के लिये इस टिप्पणी को चित्त लगाकर समझलेना चाहिये अन्य वादियोंके माने हुये चार गुणों में कौन कौन किस किस मेंहैं? जैनियों ने स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वाले पुद्गल माने हैं

(तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ५ सूत्र २३, द्रव्यसंग्रह ग्रंथकी गाथा १५)

(१)रूप—पृथिवी,जल,और तेजमें रहताहै (तर्कसंग्रह १-१६) (१) रूप अर्थात् कृष्ण, नील,रक्त, पीत, श्वेत,ये पांच रूप वा वर्ण वा रंग हैं।

(२) रस—पृथिवी और जल में रहता है (तर्कसंग्रह १-२०) (२) रस अर्थात् खट्टा, मीठा,कडुआ (कटुक), कषायला, चिरपरा (तिक्त) ये पांच हैं

(३)गंध—पृथिवी मात्रमें ही रहताहै (तर्कसंग्रह १-२१) (३) गन्ध अर्थात् सुगन्ध (सुरभि), दुर्गन्ध (असुरभि) , भेदरूप हैं

(४)स्पर्श-पृथिवी,जल,तेज,और वायुमेंरहताहै(तर्कसंग्रह१-२२)(४)स्पर्श—कोमल(मृदु),कठोर;हलका,भारी;शीत,उष्ण;सचिक्कन(स्निग्ध),(रूक्ष) रूखा); —ये आठभेद स्पर्शकेहैंऐसेसामान्यतासेचारगुणऔरविशेषरूपसे२०गुण वालेपुद्गलहैं

(५)नित्य औरपरमाणुरूपमनहैअर्थात्पौद्गलिकवापुद्गलीकमनहैं (देखोतर्कसंग्रह१।१=) (५) मन अर्थात् द्रव्यमन जो पुद्गलद्रव्यका विकारहै, भावमन जो ज्ञानहै आत्मामेंगर्भितहै

इन दोनों बीजकों के पढ़ने से यह अन्तर निकलता है कि अन्य वादियोंने वायुको रूपवान् नहीं माना है जैनियों ने रूपवान् माना है: रस गुणको अग्नि और वायु में नहीं माना है हमने माना है,गन्ध को जल अग्नि वायु में नहीं माना है जैनियों ने माना है। स्पर्श अन्यवादियोंने पृथिवी, जल, तेज और वायु सब में माना है सो हम जैनियों ने भी माना है॥ पूज्यपाद स्वामीने"कथं......व्यवहारोपपत्तेः"तक वृत्तिके पृष्ठ२०३औरर२०४की १५ पंक्तियोंमें,तीन बातें सिद्ध की हैं (१) जो प्रतिवादी नौ द्रव्य मानते हैं वे सर्व द्रव्य आत्मा-काल-आकाश और पुद्गलद्रव्य में अन्तर्भाव हैं इसलिये नौ द्रव्योंके माननेकी आवश्यकता नहीं, है वरन् धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य, को मिलाकर केवल छह द्रव्य मानना चाहिये-(२)रूप-रस-गन्ध-स्पर्श, ये पृथिवी,जल,अग्नि और वायु, और द्रव्यमन में भी(जो पुद्गल द्रव्यका विकार है)विद्यमान हैं और पुद्गलोंके गुण हैं और उनमें पाये जाते हैं,अर्थात् भिन्नवादियों ने वायु में रूप(वर्ण)नहीं मानाहै उसका खण्डन होताहै। अग्नि और वायु में रस गुण नहीं माना हैउसका भी खण्डन होता है और इसी प्रकार जल अग्नि-वायुमें गन्ध नहीं माना है उसकाभी खंडन होता है। मनमें स्पर्शमाना है रस-रूप-गंध नहीं माने हैं इसलिये पूज्यपाद स्वामीने

१०

वायुमनसो रूपादियोगाभाव इति चेन्न । वायुस्तावद्रूपादिमान्स्पर्शवत्त्वाद्घटादिवत् ॥

अर्थात् पृथिवी,जल,अग्नि, वायु और द्रव्यमन रूप वा वर्ण,रस,गंध,और स्पर्श सहितहैं और पुद्गल भी रूप,रस,गन्ध,और स्पर्शवान् हैं तिससे ये पांचों पुद्गल द्रव्यमें गर्भित हैं

वायु-मनसोः॥६॥रूप-आदि-योग-अभावः॥१॥इति*चेत्*=वायु और मनके रूपादिकका सम्बन्ध नहीं हैं ऐसा प्रश्न वा शंका (=चेत्) है

अर्थात् अन्यवादियोंकी तर्कसंग्रहके सूत्र १८ के अनुसार मन परमाणु रूप है (अतःस्पर्शवान् तो हुआ) उसके रस,गन्ध,और वर्ण नहीं माने हैं और सूत्र २२ के अनुसार वायु में केवल स्पर्श माना है और वर्ण-रस-गन्ध नहीं माने हैं (देखो तर्कसंग्रह सूत्र १९,२०, २१)

न*वायुः॥१॥तावत्*स्पर्शवत्त्वात्॥५॥घटादिवत्*रूप-(१)आदिमान्॥१॥ =(उत्तर) (सो) नहीं है ॥ वायु है सो प्रथम तो स्पर्शवान् होनेसे घटादिके समान रूप=रस गन्ध वाला है अर्थात् जहां स्पर्श है वहां रूप रस गंध होंय हीं हों यह नियम है

जलमें गंधसिद्ध किया है अग्निमें रस और गंधसिद्ध किये हैं।और वायु में रूप-रस-गंध-सिद्ध किये हैं और द्रव्यमनविषै रस-रूप-गंध सिद्ध किये हैं जिनको अन्यवादियों ने नहींमाना है (३) समस्त पुद्गल परमाणुओंकी एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहती है। जैसे पृथिवी से जल होता है जलसे पृथिवी होती है अग्नि से पृथिवी होय है और पृथिवी आदिक से अग्निहोतीहै इसप्रकार पृथिवी आदि से उपजे हुए और वायु तथा द्रव्यमनके न्यारे परमाणु नहीं हैं, ये समस्त ही पुद्गल के विकार हैं॥

(१)संज्ञावाचक पुल्लिङ्ग शब्द जिनके अन्त में'वत्'और'मत्'हों प्रथमा विभक्ति एक वचन,द्विवचन, बहुवचन, और द्वितीया विभक्ति एक वचन और द्विवचन में अन्त के तकार के पहिले न् जोड़ते हैं फिर प्रत्यय लगाते हैं, जैसे-आदिमत्-और सबसे पहिले प्रथमा विभक्ति एक वचनमें 'त्' के पहिलेस्वर को दीर्घ करदेते हैं जैसे-आदिमत् से आदि-मात् हुआ पश्चात् न्-त् से प्रथम जोड़ा तो आदिमान् त् हुआ फिर स् प्रथमा विभक्ति एक वचनका प्रत्यय जोड़ा तब आदिमान् त् स् ऐसा रूप बना जब पद के अन्त में एक व्यंजन से अधिक हों तो प्रथम रहजाता है शेषसब गिर जाते हैं(देखो-संयोगान्तस्यलोपःअष्टाध्यायी सूत्र ८-२-२३) ॥ शेषरूप आदिमन्तौ,आदिमन्तःऔर आदिमन्तम् और आदिमन्तौ(द्वितीया विभक्तिमें) होंगे ॥ इसलिये 'आदिमान्' यह रूप प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग में बना ॥

'संयोगान्तस्य लोपः=संयोगान्तस्य॥६॥ लोपः॥१॥ =संयोगान्तं यत्पदं तदन्तस्य लोपः स्यात् ॥

संयोग-अन्तम्॥१॥यत्पदम्॥१॥ =जिस पदके अन्तमें संयोग (व्यंजन)हो और

तद्-अन्तस्य॥६॥ लोपः॥१॥ स्यात् I =वह संयोग जिस समुदायके अन्तमें होय तिसका लोप होजावै अर्थात् जब पदके अन्तमें एक व्यंजनसे अधिक हों तो पहिला रहजाता है शेष सब गिरजाते हैं

चक्षुरादिकरणग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत्परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात्॥ आपो गन्धवत्यः स्पर्शवत्त्वात्पृथिवीवत् ॥ तेजोऽपि रसगन्धवत् रूपवत्त्वात्॥ तद्वदेव मनोऽपि द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मन्यन्तर्भावः । द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः ॥

चक्षुर्-आदि-करण-ग्राह्यत्व-अभावात् ५/१	=नेत्रादिक इन्द्रियोंसे ग्रहणयोग्य न होनेसे वा न आकर्षित कियेजासकनेसे
रूप-आदि-अभावः १/१ इति* चेत्*	=(वायुके) रूप,रस गंधआदिका अस्तित्व नहीं है । ऐसी शंका वा प्रश्न है
परमाणु-आदिषु ७/३	=(उत्तर)तो परमाणु आदिक लक्ष्यमें (जो नेत्रोंकरि नहीं दीखते हैं)
अतिप्रसंगः १/१ स्यात् I, आपः १/३ स्पर्शवत्त्वात् ५/१ पृथिवीवत्	=(स्पर्शादिक)लक्षणकोभी अतिप्रसंग होगा ॥ जल स्पर्शवान् होनेसे पृथिवीके समान
गन्धवत्यः १/३,	=गंधवान्है (अन्यवादियोंनेजलमेंरूपरसस्पर्शहीमानेहैंइसलियेयहांगंधत्वसिद्धकिया है)
तेजः १/१ अपि* रूपवत्त्वात् ५/१ रस-गन्धवत्*	=अग्नि भी रूपवान् होनेसे रस और गन्धवानहै(क्योंकि अन्यवादियोंने अग्निमें रूप और स्पर्शमाने हैं इसलिये यहांपर रसत्व और गंधत्व सिद्ध किये हैं)।
तद्-वत्* एव* मनः १/१ अपि* द्विविधम् १/१	=उस (जल)के सदृश ही है ॥ मन भी दो प्रकार है ।
द्रव्यमनः १/१ भावमनः १/१ च* इति, तत्र* भावमनः १/१	=द्रव्यमन और भावमन । तहां भावमन है
ज्ञानम् १/१ तस्य ६/१ जीवगुणत्वात् ५/१ आत्मनि ७/१	=सो ज्ञान है । तिस (भावमन) के चेतनका गुणहोनेसे,आत्मा (द्रव्य) में
अन्तर्भावः १/१, द्रव्यमनः १/१ च* रूप-	=गर्भित है । बहुरि द्रव्यमन अर्थात् सूक्ष्म पुद्गलका प्रचय रूप अष्ट पांखुरी के फूले कमलके आकार हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ है सो रूप
आदि-योगात् ५/१ पुद्गलद्रव्य-विकारः १/१,	=रस-गंध-स्पर्शके संयोगसे पुद्गलद्रव्य का परिणाम है ?

अति प्रसङ्ग =अति प्रसक्तिः प्रसंग को छोड़ने वाला,लक्ष्यमें जो लक्षणका सम्बन्ध होताहै उसको प्रसंग कहते हैं जो इसके विपरीत हो वह अति प्रसंग है अर्थात् लक्ष्यमें लक्षण के सम्बन्धकाअभाव (१) वायु और मन इन दोके संबंध में रूपादिक के अभाव होने का प्रश्न किया गया था सो वायु को रूपादिक का होनासिद्ध करदिया,वायु के लगता ही जलमें गंध और अग्नि में रस और गंध सिद्धि करनेके पश्चात् शेष रहे हुए मनके दो भेद करते हुये द्रव्यमनमें रूप रस-गंध-स्पर्शकी सिद्ध आगे करेंगे ॥

१२

रूपादिवन्मनः ज्ञानोपयोगकारणत्वाच्चक्षुरिन्द्रियवत् ॥ ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकारणत्वदर्शनाद्व्यभिचारी हेतुरिति चेन्न। तस्य पौद्गलिकत्वान्मूर्तिमत्वोपपत्तेः ॥ ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्कार्यत्वदर्शनाद्रूपादिमत्त्वम्, न तथा वायुमनसो रूपादिमत्कार्यं दृश्यते इति चेन्न। तेषामपि तदुत्पत्तेः। सर्वेषां परमाणूनां सर्वरूपादिमत्कार्यत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् ॥ न च केचित्पार्थिवादिजातिविशेषयुक्ताः परमाणवः सन्ति, जातिसङ्करेणारम्भदर्शनात् ॥

ज्ञानोपयोग-कारणत्वात्॥चक्षुःइन्द्रियवत्* =ज्ञानोपयोग का निमित्तहोनेसे नेत्र इन्द्रियके समान
रूप-आदिवत्*मनः॥;ननु*अमूर्ते अपि* =मन रूपरस-गंध-स्पर्शवान् (=रूपादि) है। प्रश्न। मूर्तिशून्यहोनेपर भी
शब्दे ज्ञानोपयोग-कारणत्व-दर्शनात्व्यभिचारी हेतुः =शब्दविषैं ज्ञानोपयोग कारणभावदीखनेसे व्यभिचारीहेतुहै अर्थात्शब्दअमूर्तिकहोनेपर भीज्ञानोपयोगकीप्राप्तिकाकारणदेखेजानेसेहेतुपक्ष,सपक्ष,विपक्षमेंरहनेवालाव्यभिचारी
इति*चेत्* =हुआ ऐसी शंका है(भावार्थ)द्रव्यमन रूपादि सहित हैसो ज्ञानके प्राप्तिविषैं कारण कहा है और अमूर्तिक शब्द भी ज्ञान करानेमें कारण है तो ऐसे ज्ञानकी उपलब्धिमें मूर्तिक द्रव्यमन और अमूर्तिक शब्द दोनों ही कारण हुये इसलिये यह नियम नहीं होसकता किजो ज्ञान करानेमें कारण है वह रूप–रस–गन्ध–स्पर्शवाला (=मूर्तिक) ही होता है ॥
न*;तस्य॥पौद्गलिकत्वात्॥मूर्तिमत्व– =(उत्तर) नहीं; क्योंकि तिस (शब्द)कें पुद्गल जन्य होनेसे मूर्तिपना।
उपपत्तेः॥;ननु*यथा*परमाणूनाम्॥रूपादिमत्– =सिद्धि (=उपपत्ति) है। प्रश्न। जैसे परमाणुओं के रूपादिवाला
कार्यत्व-दर्शनात्॥रूपादि-मत्त्वम्॥;नतथावायु- =कार्यपना दीखनेसे रूपादिकवान् पना है,नहीं तैसे वायु
मनसो॥रूप-आदिमत्-कार्यम्॥दृश्यते। =और मनके रूपादिकमान् कार्य देखा जाता है
इति*चेत्*न*;तेषाम्॥ अपि*तद् ॥ =ऐसी शंका है (उत्तर) नहीं, क्योंकि तिन (वायु और मनके) भी वह
उत्पत्तेः॥सर्वेषाम्॥परमाणूनाम्॥सर्व-रूप-आदिमत्–=(रूपादिवान्कार्य)उत्पन्न होताहै।क्योंकि सब परमाणुओंके समस्त रूपादिक
कार्यत्व-प्राप्ति-योग्यत्व-अभ्युपगमात्॥; =कार्यपनाकी प्राप्ति होनेकी शक्ति, सामर्थ्य वा योग्यता मानी गई है
न*च*केचित्*पार्थिव-आदि-जाति-विशेष-युक्ताः॥ =बहुरि नहीं कोई पृथिवी आदिक जन्य जाति विभेद सहित
परमाणवः॥सन्ति।जाति-सङ्करेण॥आरम्भ-दर्शनात्॥=परमाणु हैंक्योंकि(समस्त पुद्गल परमाणुओं के)जातिके पलटन करि आरम्भदीखेहैं

दिशोऽप्याकाशेऽन्तर्भावः । आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदेश-पंक्तिषु इत इदमिति व्यवहारोपपत्तेः ॥ उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥४॥

अर्थात् समस्त पुद्गल परमाणुओं के एक जातिसे दूसरी जातिमें सदैव पलटन होती रहतीहै जैसे पृथिवी परमाणुओं से जल होताहै जल परमाणुओंसे पृथिवी होय है,अग्निसे पृथिवी होती है, और पृथिवी काष्ठादिकसे अग्नि होय है इस प्रकार पृथिवी आदिकसे उत्पन्न हुए वायु मनके न्यारे न्यारे परमाणु नहीं हैं ये समस्त ही पुद्गलके विकार हैं ?

दिशः अपि आकाशे अन्तर्भावः आदित्य-उदय-आदि-अपेक्षया आकाश-प्रदेश-पंक्तिषु इतः इदम् इति व्यवहार-उपपत्तेः =दिशाका भी आकाश (द्रव्य) में समावेश है। सूर्यके उदय आदिके =अपेक्षासे आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंमें यहांसे यह (इधर) है =इस प्रकार (पूर्वादिक दिशाओंके)व्यवहारकी सिद्धि है अर्थात् जहां सूर्य उगता है उसओरके आकाशके प्रदेशोंकी पंक्तियोंको पूर्वदिशा कहते हैं जहां सूर्य अस्त होता हैउस ओरके आकाशके प्रदेशकी पंक्तियोंको पश्चिम दिशा कहते हैं इस प्रकार शेष दिशाओं को जानना

उक्तानाम् द्रव्याणाम् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम् आह =वर्णित द्रव्योंके विशेषज्ञानके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

=((२)धर्मादीनि,(३)कालः,(४)जीवाश्च,(५)द्रव्याणि)नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

सूत्रार्थः—धर्म-आदीनि कालः जीवाः च द्रव्याणि नित्य— =धर्म—अधर्म-आकाश-पुद्गल—काल—और जीव द्रव्यें ध्रुव वा नित्य हैंअर्थात् द्रव्यविषैं अनेक धर्म हैं वे(धर्म)द्रव्यपनाकी अपेक्षा (न कि पर्यायकी अपेक्षा) अविनाशी हैं अथवा सदा विद्यमान है ।

(१)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ,अर्थपक है (२)'धर्म—अधर्म—आकाश—पुद्गल'यह प्रथम सूत्र से लिया है(३) 'कालः'इस अध्यायके उनतालीसवां सूत्रसे अध्याहार किया है(४) 'जीवाश्च'इस अध्यायके तीसरे सूत्रसेयह अनुवृत्ति लीगई है(५) 'द्रव्याणि'इस अध्यायके दूसरे सूत्र से अनुवर्तताहै॥

नित्यं ध्रुवमित्यर्थः । नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात् ॥ धर्मादीनि द्रव्याणि गति-हेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादेशादस्तित्वादिसामान्यलक्षणद्रव्यार्थादेशात्त्व

अवस्थित— =अवस्थित हैं अथवा ज्योंके त्यों रहते हैं अर्थात् द्रव्योंमें अपने अपने जो जो विशेष[२]लक्षण हैं उनको नहीं छोड़ते हैं जैसे जो द्रव्य चेतन है वह अचेतन नहीं हो सक्ती जो द्रव्य मूर्तिक है वह अमूर्तिक नहीं हो सक्ती और जो अमूर्तिक है वह मूर्तिक नहीं हो सक्ती इत्यादि तिससे द्रव्योंकी संख्याकी व्यवस्था है और जो द्रव्योंकी संख्या १,२,३,४,५,वा ७,इत्यादि नहीं होसक्ती है

अरूपाणि ३।।। =(पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त) अरूपी हैं अर्थात् अमूर्तिक हैं

इत्यनुवादः-नित्यम् १।।। ध्रुवम् १।।। इति* अर्थः १।। नेः ५।। ध्रुवे ७।। =नित्य हैं सो ध्रुव अथवा अविनाशी ऐसा अर्थ है(नि)धातु से स्थिर अर्थमें

त्यः १।। इति* =त्यप् अर्थात् (त्य) प्रत्ययलगाकर (नित्य) ऐसा(शब्द)

निष्पादितत्वात् ५।।।;धर्म—आदीनि १।।। =सिद्ध वा निष्पन्न होता है ॥ धर्म—अधर्म—आकाश-पुद्गल—जीव—काल

द्रव्याणि १।।।गति—हेतुत्व —आदि-विशेषलक्षण- =द्रव्यहैंगति-हेतुत्व-आदिकसवद्रव्योंमें न व्यापने वाले गुणोंसे(=विशेष लक्षण)

द्रव्यार्थ(१)—आदेशात् ५।।च*अस्तित्व—आदि— =द्रव्यस्वरूपके आदेशकरि और (=च) अस्तित्वादिक (=सामान्य लक्षण)

सामान्य-लक्षण-द्रव्य-अर्थ—आदेशात् ५।। च* =सब द्रव्योंमें व्यापनेवाले गुणोंसे द्रव्यार्थिक नयके नियमसे

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिके प्रथम संस्करण में' द्रव्यत्व—आदेशात् ' पाठ है हमने 'द्वितीयावृत्ति' का पाठ 'द्रव्यार्थादेशात्' लिया है क्योंकि यह पिछला पाठ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी मिलता है॥ दोनों पाठों का अर्थ लग भग एक है। (२) गुण अथवा लक्षण के दो भेद हैं (i)सामान्य और (ii) विशेष (i)जो सब द्रव्योंमें व्यापैं वे सामान्य अथवा साधारण हैं वे गुण अनेक हैं परन्तु उनमें अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व-प्रदेशवत्व-ये मुख्यहैं(देखो अध्याय २ पृष्ठ २६)(ii)जो सब द्रव्योंमें न व्यापैं उसको विशेष गुण कहतेहैं जैसे जीवका विशेषगुण ज्ञान ॥ नित्य और अवस्थित शब्दोंमें क्या भेद अथवा अन्तर है। देखो पं० जयचंद्रायजी वचनिका पृष्ठ ४११) द्रव्यार्थिक नयके आदेशकरि द्रव्योंको अपने गति हेतुत्व स्थिरहेतुत्व आदि विशेष गुण तथा अस्तित्व आदि सामान्य लक्षणका किसी समयमें न छोड़ना सो नित्य है। धर्मादिक षड् द्रव्योंकी कही गई संख्या तथा उनके प्रदेशोंकी कथित इयत्ता (संख्या) कभी भी न्यून वा बढ़ती नहीं होना उसे अवस्थित कहते हैं। भावार्थ अवस्थित विशेषणसे द्रव्यों तथा उनके प्रदेशोंकी संख्याका क्रम कभी घटेगा बढ़ेगा नहीं ज्योंका त्यों अथवा वैसाही क्रम रहेगा ॥

कदाचिदपि न व्ययन्तीति नित्यानि। वक्ष्यते हि तद्भावाव्ययं नित्यमिति ।इयत्ताऽव्यभिचारादवस्थितानि धर्मादीनि षडपि द्रव्याणि कदाचिदपि षडिति इयत्त्वं नातिवर्तन्ते। ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते॥ न विद्यते रूपमेषामित्यरूपाणि, रूपप्रतिषेधेन तत्सहचारिणां रसादीनामपि प्रतिषेधः। तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः ॥

यथा सर्वेषां द्रव्याणां नित्यावस्थितानीत्येतत्साधारणं लक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलानामपि प्राप्तम्।

कदाचित्*अपि*न*व्ययन्ति T इति*नित्यानि;	=कभी भी नाश वा नष्ट नहीं होती हैं इसप्रकार नित्य हैं वा अविनाशी हैं
वक्ष्यते T हि*तद्भाव-अव्ययम्॥	=क्योंकि(=हि) (इस अध्यायके इकतीसवें सूत्रमें) कहेंगे कि "तद्भावाव्ययं नित्यम्"
	अर्थात् जो (तद्भाव) रूपसे वा सत्स्वभावसे(=तद्भाव)अविनाशी (=अव्यय) है
नित्यम्॥इति*;इयत्ता-अव्यभिचारात् अवस्थितानि॥	=सोनित्यहै; इतनेका होना परिमाण वा गिनतीके न छोड़ने(के हेतु)सेअवस्थित हैं
धर्म-आदीनि॥षट्॥अपि*द्रव्याणि॥कदाचित्*अपि*षट्	=धर्मादिक छह ही(=अपि) द्रव्य हैं किसीकाल में भी(=अपि)छह हैं
इति*इयत्त्वम्॥ न*अतिवर्तन्ते T;	=इस प्रकार परिमाण को वा संख्याको नहीं उलंघे हैं, नहीं त्यागे हैं
ततः*अवस्थितानि॥इति*उच्यन्ते; न*विद्यते T	=तिसलिये(ये छहो द्रव्य) अवस्थित कही जाती हैं। नहीं है
रूपम्॥एषाम्॥इति*अरूपाणि॥रूप-प्रतिषेधेन॥	=रूप वा वर्ण जिनके इस प्रकार(येद्रव्यें)अरूपी हैं। रूपके निषेधसे
तत्-सहचारिणाम्॥ रसादीनाम्॥ अपि*	=उस(रूप=वर्ण=रंग)केसहचारी अर्थात्एकसाथरहनेवालेरस-स्पर्श गंधकीभी(=अपि)
प्रतिषेधः॥; तेन॥अरूपाणि॥ अमूर्तानि॥	=निवृत्ति है। तिस(रूपके प्रतिषेध) से अरूपी हैं अमूर्ती हैं
इति*अर्थः॥ यथा*सर्वेषाम्॥द्रव्याणाम्॥नित्य-	=ऐसा अभिप्राय है। जैसे समस्त द्रव्योंके नित्य
अवस्थितानि॥ इति*एतत्॥साधारणम्॥	=अवस्थित ऐसा यह(=एतत्)सामान्य
लक्षणम्॥तथा*अरूपित्वं॥पुद्गलानाम्॥अपि*प्राप्तम्॥	=लक्षण है। तैसे अरूपीपना पुद्गलोंके भी सिद्ध है।

(१)'विद्यते'–यह रूप विद् धातुसे बनाहै।'विद्'संज्ञा और धातु दोनो अर्थोंमें आताहै जब संज्ञा होताहै तब ज्ञान,पंडित,और बुधग्रह ये तीन अर्थ देताहै। ( ) विद् अदादि द्वितीय गणका धातु परस्मैपद,सकर्मक, जानना अर्थमें गुण संज्ञाहोकर 'वेद्' रूपहुआ, अन्यपुरुष,एक वचन,परस्मैपद,वर्तमान काल की क्रिया का ति लगानेसे वेद्+ति=वेत्ति हुआ ( ) विद्=होना, दिवादि चतुर्थगण' आत्मनेपद अकर्मक धातु यहांपर है। चतुर्थगणका विकरण 'य'और वर्तमान काल, अन्यपुरुष, एक वचन आत्मने पदका'ते'जोड़नेसे विद्+य+ते=विद्यते हुआ ( ) विद्=पाना तुदादि उभय पदी, सकर्मक धातुहै विकरण'अ'लगानेसे प्रथम'न्'लगाया जाताहै विन्द्+अ हुआ,ति प्रत्यय लगानेसे विन्दति=पाताहै विन्दते=अपने लिये पाताहै, ये रूप बने॥

अतस्तदपवादार्थमाह—

॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥५॥

रूपं मूर्तिरित्यर्थः ॥ का मूर्तिः? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्तिः ॥ रूपमेषामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः ॥ अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनशब्दस्तदेषामस्तीति रूपिणः ॥ रसाद्यग्रहणमिति चेत्

अतः॥तद्–अपवाद–अर्थम्॥आह ।	=इसलिये उस (अरूपित्व) के विरोध वा भिन्नताके लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि
(१) रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥	=रूपिणः पुद्गलाः भवन्ति ॥ ५ ॥
सूत्रार्थः—रूपिणः॥ पुद्गलाः॥ भवन्ति ।	=(सूत्रार्थ) (उक्त छहो द्रव्योंमेंसे केवल) पुद्गल रूपी हैं, पुद्गल मूर्तिमान हैं अर्थात् पुद्गलोंके रूप अथवा मूर्ति है और नेत्रोंसे देखेजासकते हैं और स्पर्शे जासकते हैं
इत्यनुवादः रूपम्॥मूर्तिः॥इति॥अर्थः॥का॥मूर्तिः॥	=रूप है सो मूर्ति है ऐसा अर्थ है (प्रश्न) मूर्ति क्या है ? ।
रूप–आदि–संस्थान–	=(उत्तर) रूप–रस-गन्ध–स्पर्शका गोल, तिकोना, चौकोना लंबा आकार(=संस्थान) का
परिणामः॥मूर्तिः॥;रूपम्॥एषाम्॥अस्ति।इति॥	=परिणमन है सो मूर्ति है । रूप जिनके है ऐसे
रूपिणः॥; मूर्तिमन्तः॥इति॥अर्थः॥अथवा॥रूपम्॥इति	=रूपी हैं आकृतिवान् ऐसा अर्थ है अथवा रूप ऐसा
गुण-विशेष-वचन-शब्दः॥तद्॥एषां॥अस्ति॥इति॥रूपिणः	=गुणका जाति(=रस-गंध-स्पर्श का भी)वाची शब्द है। वह(रूपगुण)जिनके है ऐसे रूपी हैं
रस–आदि–अग्रहणम्॥इति॥चेत्॥	=(इससूत्रविषैं रूपमें) रस-गंध-स्पर्शका ग्रहण नहीं होता है ऐसी शंका है ?

( ) विद् = विचारकरना, रुधादि सातवांगणका आत्मनेपदी सकर्मक धातु है । इसका विकरण 'न' को धातुके स्वर और अन्तके व्यंजनके मध्य लगाते हैं अतः विद् = विनद् । यदि क्रियाको ङित् प्रत्यय लगाना हो तो इस विकरण का 'अ' गिरजाता है इसलिये विन्द् + ते, 'ते' के कारण 'द्' त् में बदलगया, (देखो, प्रथम अध्याय पृष्ठ ११ में 'खरि झलां चरः स्यु': सूत्रका अर्थ) इसलिये अब 'विंत्ते' = वह विचार (अपने लिये) करता है रूप बनगया ॥ ( ) विद् चुरादिदशवेंगणका आत्मनेपदी, अकर्मक और सकर्मक कहना प्रसिद्धकरना, अनुभव करना, रहना चार अर्थोंमें आता है ॥ इसके विकरण 'अय' के पहिले धातुके उपान्तिक ह्रस्व स्वरकी प्रायःगुण संज्ञा होजाती है जैसे विद् = वेद् + अय) उक्त तेके जोड़नेसे वेदयते रूप, कहता है, प्रसिद्ध करता है अनुभवकरता है, रहना है, अर्थोंमें बनता है ॥ सहेतुक सकर्मक रूप वेदयति-वेदयते हैं ॥ (१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका अर्थ और पाठ एकसा है ? रूपमेषामस्त्येषु वास्तीतिरूपिणः = रूपम् एषाम् अस्ति वा एषु (रूपम्, अस्ति इति रूपिणः = जिनके रूप है वा जिनमें रूप है ऐसा 'रूपिणः' शब्दका विग्रह है

न। तदविनाभावात्तदन्तर्भावः ॥ पुद्गला इति बहुवचनं भेदप्रतिपादनार्थम् ॥ भिन्ना हि पुद्गलाः। स्कन्धपरमाणुभेदात्तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते॥ यदि प्रधानवदरूपत्वमेकत्वं चेष्टं स्यात् विश्वरूपकार्यदर्शनविरोधः स्यात्॥आह किं पुद्गलवद्धर्मादीन्यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यत्रोच्यते-

न*	=(उत्तर) सो नहीं है अर्थात् रूपमें रस-गन्ध-स्पर्शका ग्रहण है
तद्-अविनाभावात् ५/१	=उस (रूप) के अविनाभावकरि अथवा उस (रूप) से व्याप्त होने (केकारण)से वा उस (रूप) के बिना उनकी स्थिति न रहने से
तद्-अन्तर्भावः १/१ ;पुद्गलाः १/३ इति*बहुवचनम् १/१	=उस (रूप) में (रस-गंध-स्पर्श) गर्भितहैं । (सूत्रमें) पुद्गलाः ऐसा बहुवचन है
भेद-प्रतिपादन-अर्थम् १/१ ;भिन्नाः १/३ हि*पुद्गलाः १/३ ;	=सो (पुद्गलोंके) भेदोंके जनावनेके लिये है । क्योंकि(=हि) पुद्गल भिन्न भिन्न हैं
स्कन्ध-परमाणु-भेदात् ५/१ तद्-विकल्पः १/१ •	=स्कन्ध परमाणु के भेदसे उन (पुद्गलों) के भेद
उपरिष्टात्*वक्ष्यते । यदि*प्रधानवत् *	=आगे कहेंगे ।जो सांख्य मतकी सत्वरजस्तमोरूप तीनों गुणोंवाली प्रकृतिके सदृश
अरूपित्वम् १/१ एकत्वम् १/१ च*इष्टम् १/१ स्यात् ।	=अरूपता और (=च) एकता (पुद्गलोंके) मानीजाय (=इष्टं स्यात्) तो
विश्व-रूप-कार्य-दर्शन-विरोधः १/१ स्यात् ।	=संसार में मूर्तिक कार्य के देखनेमें विरोध होजाय अर्थात् यदि सांख्य मतके अनुसार प्रकृतिको अरूपी और एक माने तो जगतमें बहुतसे कार्य,मूर्तिक दीखते हैंसो न दीखें भावार्थ प्रकृतिरूपीहै,मूर्तिकहै,उसके बहुत भेदहैं,और विशेष अवस्थाओंमें दीखतेभी हैं।
आह। किम्*पुद्गलवत्*धर्म-आदीनि १/३	= (शिष्य) पूछता है कि क्या पुद्गल द्रव्यके समान धर्म-अधर्म आकाश
अपि*द्रव्याणि १/३ प्रत्येकम्*भिन्नानि १/३ इति*अत्र*उच्यते	=भी प्रत्येक द्रव्य भिन्न भिन्न (=भिन्नानि) हैं यहां (अग्रिमसूत्रमें)कहा जाता है कि

"रूप शब्दके अनेक अर्थ होते हैं जैसे गोरूपाणि-गोद्रव्याणि अर्थात् गौ द्रव्य हैं। यहां रूप शब्दका अर्थ द्रव्य है। 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपं स्वभाव इत्यर्थः' अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वभाव है। यहां रूप शब्दका अर्थ स्वभाव है। दशरूपमध्ययनं कार्यं-दशवारानभ्यासः कार्यः अर्थात् दश बार अभ्यास करना चाहिये। यहां रूप शब्दका अर्थ अभ्यास है। 'स्वरूप शब्दस्य स्वा श्रुतिरित्यर्थः' शब्दका स्वरूप अर्थात् शब्दका अपना श्रवण है। यहां रूप शब्दका अर्थ श्रवण है। 'रूप-चत्वारि महाभूतानि उपादाय रूपं चेति' रूप अर्थात् चार महाभूतोंको ग्रहण कर, यहां रूप शब्दका अर्थ चार महाभूत है। 'चक्षुर्ग्रहणयोग्यो योऽर्थस्तद्रूपमिति' अर्थात् नेत्र इंद्रियके ग्रहण करने योग्य जो पदार्थ हो वह रूप है, यहां रूप शब्दका अर्थ गुणविशेष है। कहीं कहीं पर रूप शब्दका मूर्ति भी अर्थ है जिस प्रकार 'रूपिद्रव्यं मूर्तिमद् द्रव्यं'अर्थात् यह द्रव्य मूर्तिमान है यहां रूप शब्द का अर्थ मूर्ति है। परंतु उपर्युक्त अनेक अर्थोंके रहते भी शास्त्रकी सामर्थ्यसे यहां पर रूप शब्दका अर्थ मूर्ति ही लिया गया है।" पं० गजाधर लाल

॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥६॥

आङ् अयमभिविध्यर्थः । सौत्रीमानुपूर्वीमनुसृत्यैतदुक्तं, तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते । एकशब्दः संख्यावचनस्तेन द्रव्यं विशिष्यते,

---

[1]आ आकाशादेक[2]द्रव्याणि ॥६॥ = आ आकाशात्--एकद्रव्याणि भवन्ति ॥६॥

सूत्रार्थः--[3]आ आकाशात् एकद्रव्याणि भवन्ति । =(प्रथम सूत्रके धर्म द्रव्यसे लेकर) आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्मद्रव्य-अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य अखंड रूप हैं बहुत वा अनेक नहीं हैं

टप्पनुवादः--आङ् अयम् अभिविधि-अर्थः =आङ् उपसर्ग अर्थात् आ शब्द है सो यह अभिविधि, अभिव्याप्ति वा पर्यंत के अर्थ है

सौत्रीम् आनुपूर्वीम् =(इस अध्याय के प्रथम) सूत्र द्वारा पठित (=सौत्रीम्) क्रमके (=आनुपूर्वीम्)

अनुसृत्य--एतद् उक्तम्, तेन =अनुसार (=अनुसृत्य) यह कथन हुआ कि तिस (आङ् वा पर्यंत) करि

धर्म-अधर्म-आकाशानि गृह्यन्ते । =धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य लिये जाते हैं अथवा ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् इस अध्याय का प्रथम सूत्र ऐसा है कि "धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलाः अजीव-कायाः" आकाश द्रव्य पर्यंत सूत्रके आरम्भिक क्रमानुसारमें धर्म-अधर्म आकाश तक गर्भित होगयेहैं शेष द्रव्य छूटगये)

एक-शब्दः संख्या-वचनः तेन द्रव्यम् विशिष्यते । =(इस सूत्र में)एक शब्द है सो संख्यावाची है तिस(एकशब्द) से द्रव्य विशेषित है --अर्थात् एक शब्द द्रव्यका विशेषण अथवा द्रव्यके गुणका वाचक है

---

(१) हमारे यहां इस सूत्रका पाठ सर्वत्र एक है ॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०में "आ आकाशादेकद्रव्याणि" और "आकाशादेक द्रव्याणि" ऐसे दोपाठ हैं, पिछले पाठमें आङ्' की (=अर्थात् आ की) आकाश शब्द के साथ संधि करदीगई है ऐसा सभाष्य० की चरण टिप्पणीमें लिखा है

(२) जब ये तीनों एक एक द्रव्य हैं तो जीव पुद्गल, और काल इन तीनों द्रव्योंमें विना कहे भी अनेकता सिद्ध होजाती है सो आगमानुसार जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं, पुद्गल परमाणु जीवों से अनन्त गुणे हैं और काल द्रव्य के अणु असंख्यात हैं ॥

(३) आकाशादेकद्रव्याणि (=आ आकाशात्-एक-द्रव्याणि) श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र" में उपर्युक्त पाठ है यहां प्रथम 'आ' शब्द अभिव्याप्ति (पर्यंत) रूप अर्थका बोधक है, पूर्वोक्त पाठमें भी आकाश शब्दके पूर्व "आ" पद है परन्तु दीर्घ रूप संधि होगई है ॥

एकं द्रव्यं एकद्रव्यमिति ॥ यद्येवं बहुवचनमयुक्तं, धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिर्भवति ॥ ननु एकस्यानेकार्थप्रत्यायनशक्तियोगादेकैकमित्यस्तु लघुत्वाद्द्रव्यग्रहणमनर्थकं, तत्क्रियते द्रव्यापेक्षया एकत्वख्यापनार्थं द्रव्यग्रहणम॥ क्षेत्रभावापेक्षया असंख्येयत्वानन्तत्वविकल्पस्येष्टत्वात् न जीवपुद्गलवत्

एकम् ॥ द्रव्यम् ॥ एकद्रव्यम् ॥ इति* =‘एकं द्रव्यं’ समासरूपमें “एकद्रव्यं” ऐसा होता है अर्थात् टुकड़े रूप नहीं है न दो, तीन, चार पांच इत्यादि संख्या रूप हैं एक ही द्रव्य हैं बहुत नहीं है ऐसी धर्म-अधर्म-आकाश तीन ही द्रव्य हैं

यदि*एवम्* =(प्रश्न)जो ऐसा है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश एकएक द्रव्य हैं वा अभेदरूप द्रव्य हैं

बहुवचनम् ॥ अयुक्तम् ॥ =तो (सूत्रमें द्रव्याणि ऐसा) बहुवचन (का प्रयोग) ठीक नहीं है

धर्म-आदि-अपेक्षया ॥ बहुत्वसिद्धिः ॥ भवति। =(उत्तर) धर्म-अधर्म-आकाशकी अपेक्षासे बहुतपनाकी प्राप्ति होती है अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश ये तीन द्रव्यें पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक एक हैं टुकड़े रूपमें नहीं हैं तीन होनेके हेतुसे “द्रव्याणि” इस बहुवचन शब्दकी प्राप्ति है यदि एक द्रव्य होती तो सूत्रमें एक वचन “द्रव्यं” ऐसा लाते और दो द्रव्यें अभेद रूप वा एकएक होतीं तो “द्रव्ये” ऐसा द्विवचन सूत्रमें लाते क्यों कि तीनद्रव्यें धर्म-अधर्म और आकाश पृथक् पृथक् टुकड़े रहित हैं इसलिये सूत्रमें “द्रव्याणि” ऐसा बहुवचन लाये हैं

ननु*एकस्य ॥ अनेक-अर्थ-प्रत्यायन-शक्ति–योगात् ॥ =प्रश्न एक (शब्द) के अनेक अर्थोंके उपजावनेकी सामर्थ्यके प्रसंगसे

एक-एकम् ॥ इति*अस्तु। =(यदि सूत्रमें “एक द्रव्याणि” इस वाक्यके स्थानमें) एक एक(=एकैक) ऐसा होता

लघुत्वात् ॥ द्रव्य-ग्रहणम् ॥ अनर्थकम् ॥ =तो(सूत्र)छोटा होजाता द्रव्य शब्दके ग्रहण की आवश्यकता (इससूत्रमें) न होती

तत्-क्रियते[1] द्रव्य-अपेक्षया ॥ =(उत्तर अतः)ऐसा किया गया है कि द्रव्यकी अपेक्षासे(न कि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे)

एकत्वख्यापन-अर्थम् ॥ द्रव्य-ग्रहणम् ॥ =एकपन (धर्म-अधर्म-आकाश के) कहनेके लिये द्रव्य(शब्द)का(सूत्रमें) आदान है

क्षेत्र-भाव-अपेक्षया ॥ असंख्येयत्व-अनन्तत्व-विकल्पस्य ॥ इष्टत्वात् ॥ न*जीव-पुद्गलवत्* =क्योंकि क्षेत्र,भावकी अपेक्षासे(धर्म-अधर्म-आकाशके)असंख्यातपना अनन्तपनाके भेद माने हैं। न जीव और पुद्गल के समान

१ सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें ‘तत्क्रियते’ के स्थान में ‘तथापि’ पाठ है, किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें ‘तज्ज्ञायते’ ऐसा पाठ है परन्तु बहुधा हस्तलिखित प्रतियोंमें ‘तत्क्रियते’ पाठ है इसलिये यह पाठ लिया गया है ॥

एषां बहुत्वमित्येतदनेन ख्याप्यते ॥ अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते

॥ निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

एषाम्¹॥बहुत्वम्¹॥इति*;एतद्¹॥ =इन (धर्म-अधर्म-आकाश) के (द्रव्यकी अपेक्षासे) बहुतपन है ॥ यह (=एतद्)

अनेन³॥ख्याप्यते I ;अधिकृतानाम्³॥एव* =इस (सूत्र) करि प्रसिद्ध है ॥ प्रकरणरूप कियेगये ही

एक-द्रव्याणाम्³॥विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्¹॥इदम्¹॥उच्यते=अभेदरूप(धर्म-अधर्म-आकाश)द्रव्योंके विशेष जाननेके लिये यह कहाजाताहैकि

सूत्रम्-[1]निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥ =**(आ आकाशात्) निष्क्रियाणि च (भवन्ति) ॥७॥**

सूत्रार्थः—आ*आकाशात्¹॥निष्क्रियाणि¹॥च*भवन्ति I =और(=च)आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं। अथवा आकाश पर्यंत(द्रव्यें)हलन चलन रूप क्रियासे भी(=च,रहित हैं अर्थात् धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य नित्य—अवस्थित—अरूपी-एकएक द्रव्य होनेके अतिरिक्त(= च)अपने अपने स्थानसे कदाचित् चलायमान नहीं होते हैं

(१) श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' का तथा हमारे यहां का शुद्ध पाठ 'निष्क्रियाणि च' एक है उनके यहां की भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकाके पृष्ठ ३५६ में "निः क्रियाणि च अथवा" यह पाठ है। हमारे यहां भी कितनीही पुस्तकोंमें जैसे तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ १६६ पर और ज्ञानचन्द्रजी लाहोर के मुद्रित "तत्त्वार्थ सूत्राणि" के पृष्ठ १५ पर 'निः क्रियाणि च' पाठ है सो अशुद्ध है क्योंकि दुस्,-दुर् दो अव्यय दुःख, कठिनता अर्थमें एकार्थ वाची हैं और निस्, निर् ये दो अव्यय निषेध, नहिं, निश्चय, रहित, अर्थमें समानार्थक शब्द हैं जिसके स् को "ससजुषो रुः (८-२-६६ सूत्रसे) =पदान्त सकार और सजुष् शब्दके षकार को रु हो, रु हुआ, 'रु' में उ इत्संज्ञक है इस 'उ' का लोप होगया फिर केवल निर् रहगया अब निस् और निर् दोनोंका 'निर्' रूप रहा। "खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८-३-१५ सूत्र से) खर् परे हो वा अवसानमें पदान्तरेफको विसर्जनीय आदेशहो, 'निर्' का 'निः' हुआ। निः+क्रिया+जस् (=अस् प्रथमा बहुवचनका चिन्ह है) ॥

कुप्वोः≍क≍पौ च (८-३-३७ सूत्रसे) कवर्ग पवर्ग परे हो तो विसर्जनीयको यथासंख्य जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हो और विसर्जनीय भी(=च)हो।इस सूत्रने विसर्जनीय को स् नहीं होने दिया क्योंकि यह सूत्र'विसर्जनीयस्य'सः ८।३।३४(=खर् परे हो तो विसर्जनीयको सकार आदेश हो) सूत्र के प्रयोग को रोकता है ॥ हमने विसर्जनीय का विसर्जनीयही नियत रक्खा ॥ अब 'इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ८।३।४१ सूत्र कवर्ग पवर्ग परे हो तो इकार और उकार हैं उपधामें जिसके ऐसे प्रत्ययभिन्न के विसर्जनीयको षकारादेश हो ॥ इसलिये निष्+क्रिया+अस् रूप हुआ ॥ यदि यहांपर कोई तर्क करै कि हम संधि नहीं करते हैं निर्+क्रियाणि अथवा निः क्रियाणि ही रक्खाजाय तो क्या हानि है ॥ (उत्तर) एकपदमें अर्थात् अखंड पदमें जैसे राम+नाम्=रामाणाम्; धातुके साथ उपसर्गमें जैसे प्र+नदति=प्रणदति=अधिक नाद करता है और समासमें जैसे यहां निः+क्रिया+अस्=निष्क्रियाणि नित्य,वा आवश्यकतासे संधि होती है। यहां पर यदि संधि न की जाती तो 'क्रिया' शब्द जो स्त्रीलिंग है नपुंसकलिंग नहीं होसकाथा।यहांपर निष्क्रियाणि प्रथमा विभक्ति बहुवचन नपुंसकलिंगीहै परन्तु अन्य प्रकारके वाक्योंमें वक्ताकी इच्छा है संधि करै वा न करै इसलिये 'निःक्रियाणि' शब्द अशुद्ध है और बिना 'समास' के क्रिया शब्द का कदापि क्रियाणि नहीं बनसकता है ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानः पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुः क्रिया, तस्या निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि॥ अत्र चोद्यते--धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि ततस्तेषामुत्पादो न भवेत्। क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः। उत्पादाभावाच्च व्ययाभाव इति॥ अतः सर्वद्रव्याणामुत्पादादित्रयकल्पनाव्याघात इति॥ तन्न॥ किं कारणम्?

---

(१)उभय-निमित्त-(१)वशात्॥ द्रव्यस्य॥ देशान्तरप्राप्ति-हेतुः॥ उत्पद्यमानः॥ पर्यायः॥ क्रिया॥ =दोनों (बाह्य, अभ्यन्तर) निमित्तके वशसे द्रव्यके (एकक्षेत्र से) अन्य क्षेत्रमें गमन करनेका कारणरूप उपजी जो पर्याय अथवा विशेष अवस्था सो क्रिया है अर्थात् पदार्थोंका क्षेत्रांतरमें गमन तथा प्रदेशोंका सकंपपनारूप क्रिया होती है

तस्याः॥ निष्क्रान्तानि॥ निष्क्रियाणि॥ अत्र*चोद्यते =तिस (क्रिया) से पृथक् होनेसे वे क्रिया रहित हैं। यहां तर्क की जाती है कि

धर्म-(३)आदीनि॥ द्रव्याणि॥ यदि*निष्क्रियाणि॥ =धर्म-अधर्म-आकाश द्रव्यें यदि हलनचलनरूप क्रियासे रहित हैं

ततस्*तेषाम्॥ उत्पादः॥ न*भवेत्। =तो (=ततः) तिनकें उत्पाद न होना चाहिये

क्रिया-पूर्वकः॥ हि*घटादीनाम्॥ उत्पादः॥ दृष्टः॥ =क्योंकि (=हि) क्रिया है कारण जिसको ऐसी उत्पत्ति घटादिकोंकी देखीजाती है

उत्पाद-अभावात्॥ च*व्यय-अभावः॥ इति* =और (=च) उत्पत्तिके न होनेसे नाशका अभाव है

अतस्*सर्व-द्रव्याणाम्॥ उत्पाद-आदि-त्रय-कल्पना-व्याघातः॥ इति*तत्॥ न*;किं*कारणम्॥ ? =इसलिये समस्त द्रव्योंके उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य वा स्थिरपना तीनों कल्पनाओंमें बाधा अथवा विघ्न आता है। (उत्तर)सो (व्याघात)नहीं है।(प्रश्न)क्या कारण है

---

(१) 'वश' शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२) क्रियापरिणामशक्तियुक्तं द्रव्यमभ्यन्तरनिमित्तं, प्रेरणादिकं बाह्यनिमित्तं तद्वशादित्यर्थः॥

क्रिया-परिणाम-शक्ति-युक्तं॥ द्रव्यम्॥ अभ्यन्तर-निमित्तम्॥ = क्रियारूप परिणमन शक्ति सहित द्रव्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है अर्थात् द्रव्यमें क्रियारूप परिणमनकी सामर्थ्य है सो अभ्यन्तर निमित्त है।

प्रेरण-आदिकम्॥ बाह्यनिमित्तम्॥ = (और पर द्रव्यकी) प्रेरणा, प्रेषण, वा संचोदन आदिक हैं सो बाह्य कारण है

तद्-वशात्॥ इति*अर्थः॥ = तिन (दोनों निमित्तों) के आश्रयसे (द्रव्यके क्रियाउत्पन्न होती है) ऐसा तात्पर्य है

(३) आदीनि -- अभीतक उमास्वामीने कालका उपदेश नहीं कियाहै इससे अनुवादकरनेमें आदि शब्दमें कालको नहींलियाहै यद्यपिकालभी निष्क्रियहै

अन्यथोपपत्तेः॥ क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पादः कल्प्यते॥ तद्यथा-द्विविध उत्पादः स्वनिमित्तः परप्रत्ययश्च ॥ स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरुलघुगुणानामागमप्रामाण्यादभ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च ॥ परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते ॥ ननु यदि निष्क्रियाणि

अन्यथा*उपपत्तेः॥ क्रियानिमित्त–उत्पाद–अभावे॥ =क्योंकि दूसरे प्रकारसे भी सिद्ध होती है। क्रियानिमित्तक उत्पादके न होनेपर
अपि एषां॥ धर्म–आदीनाम्॥ अन्यथा*उत्पादः कल्प्यते॥ =भी इन धर्म–अधर्म–आकाशके औरप्रकार उत्पाद माना जाता है
तद्॥ यथा*द्वि–विधः॥ उत्पादः॥ स्वनिमित्तः॥ च* =वह ऐसे है–उत्पाद दो प्रकार है स्वनिमित्त और (=च)
परप्रत्ययः॥ स्वनिमित्तः॥ तावत्*अनन्तानाम्॥ अगुरुलघु =परनिमित्त। स्वनिमित्त तो (=तावत्) अनन्त अगुरुलघु
गुणानाम्॥ आगम–प्रामाण्यात्॥ अभ्युपगम्यमानानाम्॥ =गुणोंके जो शास्त्र प्रमाणकरि माने हुये हैं
षट्–स्थानपतितया॥ वृध्या॥ हान्या॥ च* =छह स्थानोंमें रहने वाली वृद्धि और हानिकरि
प्रवर्तमानानाम्॥ स्वभावात्॥ एतेषाम्॥ =प्रवर्तनेवाले (अगुरुलघुगुणोंके) स्वभावसे अर्थात् परिणमनसे इन (धर्म-अधर्म-आकाश)के
उत्पादः॥ व्ययः॥ च*; =उत्पाद होता है। और (=च) (इसी प्रकार) व्यय होता है
पर–प्रत्ययः॥ अपि*अश्वादि–गति–स्थिति- =और (=अपि) पर निमित्त (उत्पाद व्यय) है सो अश्वादिकका गमन स्थिति
अवगाहन-हेतुत्वात्॥ क्षणे॥ क्षणे॥ =अवगाहनका कारण (धर्म-अधर्म-आकाशके यथासंख्य) होनेसे क्षण क्षणमें
तेषाम्॥ भेदात्॥ तद्–हेतुत्वम्॥ अपि*भिन्नम्॥ इति* =तिन (गति-स्थिति-अवगाहन)के भेद होनेसे उन (गति आदिके) हेतुताभी भिन्न है
अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्वादिककों गमनका निमित्त धर्म द्रव्य है। स्थितिका कारण अधर्मद्रव्य है और अवकाशदान अथवा स्थान दानकाहेतु आकाश द्रव्य है और क्षण क्षणमें उन गति स्थिति अवगाहनके भेद हैं इसलिये उन गति–स्थिति-स्थान दानके कारणभी पृथक् पृथक् हैं
परप्रत्यय-अपेक्षः॥ उत्पादः॥ विनाशः॥ च* =परनिमित्त अपेक्षा उत्पाद, व्यय भी (=च)
व्यवह्रियते॥ ननु*। यदि*निष्क्रियाणि॥ =माना जाता है। प्रश्न। यदि हलन चलन रूप क्रियासे रहित

धर्मादीनि, जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्वं नोपपद्यते। जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ॥ नैष दोषः ॥ बलाधाननिमित्तत्वाच्चक्षुर्वत्। यथा रूपोपलब्धौ चक्षुर्निमित्तमपि न व्याक्षिप्तमनस्कस्यापि भवति॥ अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां-

धर्म-आदीनि १।३ जीव-पुद्गलानाम् ६।३ गति-आदि-हेतुत्वम् १।१ न* उपपद्यते। जलादीनि १।३ हि* क्रियावन्ति १।३ = धर्म अधर्म आकाश द्रव्यें हैं तो जीव और पुद्गलोंके गति स्थिति अवगाहनाका निमित्तपना प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि (हि) क्रियावान् जलादिक

मत्स्य-आदीनाम् ६।३ गत्यादि-निमित्तानि १।३ दृष्टानि १।३ इति*; = मीन आदिकोंके गमनादिकके कारण इसप्रकार देखे जाते हैं

न* एषः १।१ दोषः १।१ बलाधान-निमित्तत्वात् ५।१ चक्षुर्वत्* = (उत्तर) यह दूषण नहीं है। क्योंकि नेत्रेन्द्रियके समान अप्रेरक निमित्त हैं अर्थात् धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य जीव तथा पुद्गलोंकी यथासंख्य गति, स्थिति, अवगाहनके लिये प्रेरणा नहीं करते हैं किन्तु यदि जीव और पुद्गल गमन करें तो धर्मद्रव्य गमन में अप्रेरक निमित्त होती है। अधर्मद्रव्य स्थितिमें उदासीनतासे कारण होती है और इसी प्रकार आकाश द्रव्य अवगाहनमें बलाधान वा उदासीनतासे निमित्त होती हैं॥

यथा* रूप-उपलब्धौ ७।१ चक्षुः १।१ निमित्तम् १।१ अपि* = जैसे-रूपके देखनेमें (=उपलब्धौ) नेत्र निमित्त है तोभी (=अपि)

व्याक्षिप्त-मनस्कस्य ६।१ अपि* = न लगेहुये (मनुष्यके) मनके भी वा मनुष्यके अनाकर्षित चित्तकेभी

न* भवति T = (रूपकी उपलब्धि) नहीं होती है अर्थात् यदि पुरुषका चित्त अन्य पदार्थमें लगा हो तब रूपको नहीं देखसकता है। जब नेत्र और पुरुषका चित्त दोनों एकही कालमें किसी पदार्थको ओर होवें तब पुरुषके नेत्र रूपके देखनेमें निमित्त हैं नहीं तो निमित्त नहीं हैं

अधिकृतानाम् ६।३ धर्म-अधर्म-आकाशानाम् ६।३ = प्रकरण प्राप्त जे धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके, और आकाशद्रव्यके

(१) गत्यादि परिणतस्य बलाधानं कुर्वन्ति न तु स्वयं प्रेरयन्तीति भावः॥
गत्यादि-परिणतस्य ६।१ बलाधानम् २।१ कुर्वन्ति T = (धर्मादिक द्रव्य) गमनादिक अवस्थाके अप्रेरक निमित्तको करती है
न* तु* स्वयम्* प्रेरयन्ति [इति* भावः १।१ = किन्तु स्वयं (गति-स्थिति—अवगाहनकी) प्रेरक नहीं हैं ऐसा तात्पर्य है
इसके पश्चात् जयचंद्रायजीकी वचनिकामें निम्न लिखित भाषाका वाक्य है "बहुरि सूत्रमें चशब्द है सो पहले सूत्रमें कहे तिन तीनिही द्रव्यके संबंधके अर्थि है। जीव पुद्गल क्रियावान् हैं" ॥ देखो पंडित जयचंदजी कृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४१५ ॥

निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रियत्वमर्थादापन्नम् ॥ कालस्यापि सक्रियत्वमितिचेन्न । अनधिकारात् अत एवासावेतैः सह नाधिक्रियते ॥ अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तित्वमात्रं निर्ज्ञातं नत्वियत्तावधारिता प्रदेशानामतस्तन्निर्धारणार्थमिदमुच्यते—

॥ असङ्ख्येयः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८॥

निष्क्रियत्वे अभ्युपगते जीव-	=निष्क्रियपना माननेमें जीव और
पुद्गलानाम् सक्रियत्वम् अर्थात् आपन्नम्	=पुद्गलोंके सक्रियपन अथवा क्रियावानपन अर्थसे, वा विषयसे प्राप्त होता है
कालस्य अपि * सक्रियत्वम् इति * चेत् * न *;	=कालद्रव्यके भी क्रियावानपन (आता) है ऐसी शंका (=चेत्) है(उत्तर) सो नहीं है
अन्–अधिकारात् अतः * एव * असौ	=क्योंकि कालद्रव्यका (यहां) विषय वा प्रकरण नहीं है। इसलिये ही वह (कालद्रव्य)
एतैः सह * न *, अधिक्रियते ।	=इन (जीव, पुद्गल) के साथ (=एतैःसह) प्रकरणरूप नहीं कियागया है
"अजीव कायाः" इति * अत्र * कायग्रहणेन	='अजीव काया' ऐसे यहां (प्रथम सूत्रमें) कायके ग्रहण करनेसे
प्रदेश–अस्तित्वमात्रम् निर्ज्ञातम् न * तु * प्रदेशानाम्	=प्रदेशोंकी केवल (=मात्र) विद्यमानता जानीजाती है। परन्तु प्रदेशोंका
इयत्ता अवधारिता अतः *	=परिमाण वा संख्या (=इयत्ता) निश्चित नहीं की गईहै(=अवधारिता)। इसलिये
तद्-निर्धारण-अर्थम् इदम् उच्यते ।	=उन(प्रदेशोंकी गिनती)का निश्चय करने केलिये यह(अग्रिम सूत्रमें)कहाजाताहै कि

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्=धर्म-अधर्म-एक जीवानाम् असंख्येयाः प्रदेशा भवन्ति।८।

सूत्रार्थः–धर्म-अधर्म-एक-जीवनाम्	=धर्मद्रव्यके, अधर्मद्रव्यके और एक जीवके

(१) 'निष्क्रियाणिच'सूत्र में 'च'शब्दका अर्थ यहां पर और अथवा भी दोनों होसकतेहैं जैसाकि भिन्नभिन्न उपर्युक्त अनुवादसे प्रगटहै॥यदि च'शब्द"और"के अर्थमें लेवें तो तीन ही द्रव्य जो सूत्रमें कहीं हैं उनके सम्बन्धके अर्थ है अर्थात्धर्म-अधर्म-आकाश तीनको आकर्षण करता है, प्रगट करता है, वा ग्रहण करता है क्योंकि "कालद्रव्य का" अभी तक आचार्य ने उपदेश नहीं किया है। कालद्रव्य भी निष्क्रिय है। यदि "च" शब्दका 'भी' अर्थ लेवे तो उसका सम्बन्ध द्रव्यों के गुणोंसे होजाता है नकि उनकी संख्यासे अर्थात् ये तीन द्रव्य एक एक हैं दूसरा गुण उनमें यह है कि क्रिया रहित हैं तब दोनों सूत्रोंको अर्थ अत्यन्त संक्षेपतासे यह होता है कि धर्म-अधर्म-आकाश एक एक द्रव्य हैं और क्रिया रहित भी हैं॥

(२) इयत्ता (स्त्री०) = 'इतनेका होना। सीमा। परिमाण। माप। संख्या। गिनती" पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ६७॥ अतः "इयत्ता" का अनुवाद 'संख्या' किया गया है। श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्रमें इस सूत्रके स्थानमें नीचे लिखे हुये दो सूत्र हैं जिनसे विदित है कि दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका एकसा तात्पर्य है। 'असंख्येयप्रदेशाधर्माधर्मयोः ॥७॥ जीवस्य च ॥८॥ देखो उक्त सभाष्यतत्त्वार्थाधिगम सूत्र पृष्ठ १२२

संख्यामतीता असंख्येयाः ॥ असंख्येयस्त्रिविधः । जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योत्कृष्टश्चेति ॥ तत्रेहाजघन्योत्कृष्टासंख्येयः परिगृह्यते॥ प्रदिश्यन्त इति प्रदेशाः॥वक्ष्य माणलक्षणः परमाणुः स यावति क्षेत्रे व्यवतिष्ठते स प्रदेश इतिव्यवह्रियते॥ धर्माधर्मैकजीवास्तुल्यासंख्येयप्रदेशाः तत्र धर्माधर्मौ निष्क्रियौ लोकाकाशं व्याप्य स्थितौ ।

असंख्येयाः३। प्रदेशाः३। =(क्रमसे) असंख्यात, असंख्यात, और असंख्यात(प्रत्येकके)प्रदेश हैं अर्थात् धर्म द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं,अधर्मद्रव्यके असंख्यात प्रदेशहै और एक जीवके भी असंख्यातप्रदेशहै

द्रव्यनुवादः—संख्याम्२॥अतीताः३। असंख्येयाः३। =संख्याको उलंघगये हैं वे असंख्येया है अर्थात् जो गणनामें न आसकें वे असंख्यात हैं

असंख्येयः१।त्रिविधः१।जघन्यः१।उत्कृष्टः१।च* =असंख्येय तीन प्रकार है, जघन्य वा निकृष्ट, उत्कृष्ट वा प्रकर्ष और (=च)

अजघन्य-उत्कृष्टः१।इति,तत्र इह*अजघन्योत्कृष्ट-=मध्यम ॥ तहां यह(=इह) मध्यम वा बीचका

असंख्येयः१।परिगृह्यते। प्रदिश्यन्ते।इति* =असंख्यात लियाजाता है ॥ (जिनकरि आकाशके) विभाग किये गये हैं ऐसे

प्रदेशाः३। =(आकाशके विभाग) प्रदेश हैं । अर्थात् परमाणुओंद्वारा पर्यायनयकी अपेक्षासे आकाशके विभाग किये जाते हैं उन विभागों को अथवा आकाशके प्रदेशोंको प्रदेश कहते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि आकाश अखंड, निरंश,सर्वगत और एक द्रव्य है तौभी परमाणुओंकरि मापिये तौ अनंत परमाणु होते हैं और इसप्रकार आकाशके अनंत अंश मानेजाते हैं, इसीलिये एक ही आकाशको अनंतप्रदेशी पर्यायनयकरि कहते हैं परन्तु द्रव्यार्थिकनय अथवा द्रव्य अपेक्षासे अखंड, निरंश,सर्वगत, एक, और भिन्नता रहित आकाश है

वक्ष्यमाणलक्षणः१। परमाणुः१। =आगे कथन किये जाने लक्षण रूप वा अग्रिम कहेजाने लक्षणवाला परमाणु है

सः१।यावति७।क्षेत्रे७।व्यवतिष्ठते।सः१।प्रदेशः१। =वह (परमाणु)जितने क्षेत्रमें निश्चल ठहरती है वा समाजाती है सो प्रदेश है

इति*व्यवह्रियते।धर्म-अधर्म-एकजीवाः१।तुल्य- =ऐसा मानागया है ॥ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एकजीव समान

असंख्येय-प्रदेशाः१।, तत्र*धर्म-अधर्मौ।१।निष्क्रियौ१। =असंख्यात (असंख्यात) प्रदेशी हैं। तहां धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य क्रिया रहित

लोक-आकाशम्२।व्याप्य—स्थितौ१। =लोकाकाशको व्याप्त कर स्थित हैं अर्थात् समस्त लोकाकाशमें ऊपर तले मध्यमें और

जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि सन् संहरणविसर्पण स्वभावत्वात्कर्मनिर्वर्तितं शरीरमणुमहद्वाऽधितिष्ठं स्तावदवगाह्य वर्तते यदा तु लोकपूरणं भवति मन्दरस्याधश्चित्रवज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्यप्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते। इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् कृत्स्नंलोकाकाशं व्यश्नुवते ॥

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

इधर उधर सर्वत्र पूर्णरूपसे धर्म और अधर्म द्रव्य मो हलन चलन रूप क्रियासे वर्जित हैं भरी हुई हैं

जीवः तावत् प्रदेशः अपि सन्	=जीव इतने(=तावत्) अर्थात् असंख्यात प्रदेशी होते हुयेभी (=अपि सन्)
संहरण-विसर्पण-स्वभावत्वात् कर्मनिर्वर्तितम्	=संकोच और फैलावरूप स्वभावके होनेसे कर्मरचित (अथवा कर्मजनित)
शरीरम् अणु-महत्-वा [1] अधितिष्ठन् तावत्	=छोटा अथवा बड़ा शरीर पाते हुए(=अधितिष्ठन्) तिसमपाण (=तावत्)
[2] अवगाह्य वर्तते, यदा तु [3] लोकपूरणम् भवति	=विस्तारित होकर प्रवर्तता है परन्तु जब(केवलि समुद्घात करि)लोक पूरण होताहै
मन्दरस्य अधस् चित्र-वज्र-पटल-मध्ये	=तो सुमेरु पर्वतके नीचे चित्रा प्रथिवीके वज्रमयी पटलके मध्यमें
जीवस्य अष्टौ मध्यप्रदेशाः व्यवतिष्ठन्ते।	=जीवके आठ मध्यके प्रदेश निश्चल तिष्ठते हैं अर्थात् जिस अवसरमें केवली हो लोकपूरण समुद्घात करते हैं तब सुमेरु की जड़ जो चित्रापृथिवीकी मोटाईके बराबर एक सहस्रयोजन मोटी है। चित्रा और वज्रा प्रथिवीके पटलोंके बीच केवली भगवान् केआत्माके आठमध्यके प्रदेश निश्चल रहते हैं
इतरे प्रदेशाः ऊर्ध्वम् अधस् तिर्यक्	=(और केवली भगवानके)अन्य प्रदेश ऊपर नीचे इधर उधर (=दायें बायें)
कृत्स्नम् लोकाकाशम् व्यश्नुवते।	=समस्त लोकाकाशको व्याप्त करलेते हैं। केवलिसमुद्घातका विस्तारसे कथन जाननेके लिये देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११६से १२१ तक
अथ आकाशस्य [4] कति प्रदेशाः इति अतः आह	=अब आकाशके कितने प्रदेश हैं इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) अधितिष्ठन् वर्तमान कृदन्त है ॥ (२) अवगाह्य सम्बन्धसूचक भूतकृदन्त है (३) कषाय वेदनादिक सातकारणोंसे जो जीवके प्रदेश मूल शरीर को न छोड़कर शरीरसे बाहर होते हैं उसको समुद्घात कहते है। वे समुद्घात सातप्रकारके हैं ॥ मूल देह छूटे नाहि इत्यादि कवित्तके लिये जिसमें सातप्रकारका समुद्घात वर्णितहै देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ११५ से १२१ तक ॥ (४) कति सर्वनाम है केवल बहुवचनमें आता है ॥

आकाशस्यानन्ताः ॥९॥

लोकेऽलोके चाकाशं वर्तते ॥ अविद्यमानोऽन्तो येषां ते अनन्ताः॥ के? प्रदेशाः। कस्य? आकाशस्य॥ पूर्ववदस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया ॥ उक्तममूर्तानां प्रदेशपरिमाणम् इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाणं निर्ज्ञातव्यमित्यत आह—

॥ संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

(१)सूत्रम्—आकाशस्यानन्ताः॥९॥ = आकाशस्यानन्ताः (प्रदेशाः) सन्ति ॥ ९ ॥

सूत्रार्थः—आकाशस्य अनन्ताः प्रदेशाः सन्ति । =आकाश द्रव्यके अर्थात् लोकाकाशके और अलोकाकाशके अनन्त प्रदेश हैं

अनुवादः। लोके अलोके च आकाशम् वर्तते । =लोक और (=च) अलोक (दोनों) विषैं आकाश विद्यमान है (वर्तते)

अविद्यमानः अन्तः येषाम् ते अनन्ताः, के =नहीं है विद्यमान अन्त जिनका ते अनन्त हैं । क्या (अनन्त) हैं

प्रदेशाः, कस्य; आकाशस्य; =प्रदेश । किसके (प्रदेश अनन्त) है, (लोक अलोक) आकाशके (प्रदेश अनन्त) हैं

पूर्ववत् अस्य अपि प्रदेश-कल्पना-अवसेया॥, =पहिलेके सदृश इस (आकाश) के भी प्रदेशोंकी कल्पना जानना चाहिये

अमूर्तानाम् ॥ प्रदेश-परिमाणम् ॥ =अमूर्तीक (धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य, एक जीव, आकाश द्रव्य) तिनके प्रदेशोंकी संख्या

उक्तम् ॥ इदानीम् मूर्तानाम् पुद्गलानाम् प्रदेश- =कही गई है । अब मूर्तीक पुद्गलों के प्रदेशों की

परिमाणम् ॥ निर्ज्ञातव्यम् ॥ इति अतः, आह । =गणना जानना चाहिये । इसलिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

(२)सूत्रम्— संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥१०॥

=संख्येयाः असंख्येयाः च (अनन्ताः अनन्तानन्ताः) पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति ॥१०॥

सूत्रार्थः-संख्येयाः असंख्येयाः च अनन्ताः अनन्तानन्ताः=संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त भी (=च)

पुद्गलानाम् प्रदेशाः भवन्ति । =पुद्गलोंके प्रदेश हैं अर्थात् यद्यपि शुद्ध पुद्गल तो अविभागी एक परमाणु

(१) दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर 'आकाशस्यानंताः' पाठ है सो भी ठीक है ॥ आकाश शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों है (२)दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां कहीं कहीं पर सङ्ख्येयाऽसङ्ख्येयाश्च भी

चशब्देनानन्ताश्चेत्यनुकृष्यन्ते कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्व्यणुकादेः संख्येयाः प्रदेशाः कस्यचिदसंख्येया अनन्ताश्च अनन्तानन्तोपसंख्यानमिति चेन्न। अनन्तसामान्यात् अनन्तप्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तं युक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति। तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते स्यादेतदसंख्यातप्रदेशो लोकः अनन्त प्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधस्ततो

एकही प्रदेश वाला है परन्तु पुद्गल परमाणुओंमें मिलन बिछुरन शक्ति है इस कारण अनेक स्कन्ध दो दो परमाणुके और अनेक तीन तीन, चार चार आदिक संख्यात परमाणुओंके हैं कोई कोई असंख्यात और कोई कोई अनन्त कोई कोई अनन्तानन्त परमाणुके स्कन्ध हैं

इत्यनुवादः—च-शब्देन अनन्ताः च इति	=(सूत्रमें) च शब्दकरि अनन्त भी (=च, है ऐसे पूर्व सूत्र नवमासे
अनुकृष्यन्ते कस्यचित् पुद्गलद्रव्यस्य द्वि-अणुक-	=अनुवृत्तियें ली गई हैं। कोई पुद्गल द्रव्यके दो अणुक
आदेः संख्येयाः प्रदेशाः कस्यचित् असंख्येयाः	=आदिक (स्कन्धके) संख्यात प्रदेश हैं। कोई (पुद्गलद्रव्य) के (स्कन्धके) असंख्यात हैं
अनन्ताः च अनन्तानन्त-	=कोई पुद्गल द्रव्यके स्कन्धके अनन्त (प्रदेश) भी हैं अनन्तानन्तकी (गणनाका)
उपसंख्यानम् इति चेत् न,	=समावेश होना चाहिये (=उपसंख्यानम्) ऐसी शंका (=चेत्) है
न अनन्त-	=(उत्तर—अनन्तानन्तकी गणनाकी शंका) नहीं (होना चाहिये) क्योंकि अनन्त (शब्दसूत्रमें)
सामान्यात् अनन्त-प्रमाणम् त्रिविधम् उक्तम्	=सामान्य है। अनन्तकी मर्यादा तीन प्रकार कही गई है
परीतानन्तम् युक्तानन्तं च अनन्तानन्तम्	=परीतानन्त, युक्तानन्त, और (=च) अनन्तानन्त देखो (अध्याय १ पृष्ठ २६६ से २७६ तक
इति; तत् सर्वम् अनन्त-	=ऐसे है। वह समस्त (परीतानन्त युक्तानन्त और अनन्तानन्त) अनन्त शब्दमें
सामान्येन गृह्यते, स्यात् एतत्	=सामान्यकरि ग्रहण किया गया है। यह शंका है कि
असंख्यात-प्रदेशः लोकः, अनन्त-प्रदेशस्य	=असंख्यात प्रदेशी लोक है तो अनन्त प्रदेश वाले
च अनन्तानन्त-प्रदेशस्य स्कन्धस्य	=और अनन्तानन्त प्रदेश वाले (पुद्गल) निके स्कन्ध का
अधिकरणम् इति विरोधः ततः	=आश्रय वा आधार कैसे है ऐसा विरोध (आता) है क्योंकि वहां (=ततः) अर्थात् लोकमें

पाठहैं दोनों पाठ ठीकहैं ॥ सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें संख्येया संख्येयाश्च पुद्गलानाम् ऐसा पाठहै ॥ जहां कहीं पुद्गलानाम् के स्थानमें पुद्गलानां है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है। प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे ली है ॥

नानन्त्यमिति ॥ नैष दोषः । सूक्ष्मपरिणामावगाहनशक्तियोगात्परमाण्वादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एकैकस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवतिष्ठन्ते, अवगाहनशक्तिश्चैषामव्याहताऽस्ति तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थानं न विरुध्यते ॥ पुद्गलानामित्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशत्वप्रसंगे तत्प्रतिषेधार्थमाह—

न-अनन्त्यम् ॥ इति*	=अनन्त्य रहित अर्थात् असंख्यात प्रदेश हैं प्रश्नका भावार्थ यह है कि लोक तो असंख्यात प्रदेशी है उसमें पुद्गलके अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार समा सकते हैं
न*एषः दोषः सूक्ष्म-परिणाम-	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि (पुद्गल परमाणुओंका) सूक्ष्म वा लघु परिणमन
अवगाहन-शक्ति-योगात् परमाणु-आदयः हि*	=(और आकाशके प्रदेशों का) स्थानदानदेनेकी सामर्थ्यके योगसे परमाणु आदि ही
सूक्ष्म-भावेन परिणताः एक-एकस्मिन् अपि*	=लघुरूप होकर परिणत हो रहे हैं (और) एक एक भी
आकाश-प्रदेशे अनन्तानन्ताः अवतिष्ठन्ते । च*	=आकाशके प्रदेशमें अनन्तानन्त (परमाणु) तिष्ठते हैं और (=च)
एषाम् अवगाहन-शक्तिः अव्याहता अस्ति ।	=इन (आकाशके प्रदेशों) के स्थानदानदेनेकी सामर्थ्य अरोक है (=अव्याहता अस्ति)
तस्मात् एकस्मिन् अपि*प्रदेशे	=तिससे एक भी (आकाशके) प्रदेशमें
अनन्तानन्तानाम् अवस्थानम् न विरुध्यते ।	=अनन्तानन्त (परमाणुओं) का ठहराव नहीं विरोधा जाता है
पुद्गलानाम् इति*अविशेष-वचनात् ॥	= (सूत्रमें) पुद्गलोंके (संख्यात-असंख्यात-अनन्त और अनन्तानन्त प्रदेश हैं) ऐसे सामान्य वाक्यसे
परमाणोः अपि*प्रदेशत्व-प्रसंगे ॥	=(पुद्गल) परमाणुओंके भी प्रदेशपनाका प्रसंग आने पर
तत्-प्रतिषेध-अर्थम् आह ।	=उस (परमाणु) के (बहुप्रदेशपनाके) निषेधके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१ जैसे एक चंपाकी कली विषै तिष्ठे हुये सुगन्ध पुद्गल परमाणु सूक्ष्म रूप परिणमनसे संकोच रूप तिष्ठत हैं बहुरि वही सुगन्ध परमाणु जब फैलै तब सर्व दिशाओंमें व्यापक हो जाते हैं तैसे सूक्ष्म परिणमनसे लोकाकाशके एक प्रदेशमें तिष्ठते हुए परमाणु बादर वा स्थूलरूप परिणमैं तब बहुत प्रदेशोंमें तिष्ठते हैं ॥ इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि कंडे वा गीले काष्ठमें प्रचय विशेषसे इतने पुद्गल स्कन्ध हैं यदि अग्निसे जलाये जावें तो धूम रूपमें होकर सब दशाओंमें भरजाते हैं तैसे अल्पक्षेत्र लोकाकाशमें अनन्तानन्त जीव अनन्तानन्त पुद्गल का अवस्थान विरुद्ध रहित पाया जाता है॥

२ ?

॥ नाणोः ॥ ११ ॥

अणोः प्रदेशा न सन्तीति वाक्यशेषः ॥ कुतो न सन्तीति चेत् प्रदेशमात्रत्वात् । यथा आकाशप्रदेशस्यैकस्य प्रदेशभेदाभावादप्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशभेदाभावः॥ किं च ततोऽल्पपरिमाणाभावान्न ह्यणोरल्पीयानन्योऽस्ति । यतोऽस्य प्रदेशा भिद्येरन् ॥एषामवधृत

सूत्रम्—नाणोः॥११॥	= नाणोः (प्रदेशाः भवन्ति)॥११॥
सूत्रार्थः—न*अणोः६। प्रदेशाः१। भवन्ति I	= अणुके प्रदेश नहीं होते हैं, शुद्ध पुद्गल एक परमाणुके बहुत प्रदेशोंका अभावहै एक प्रदेशमात्रता ही कही है क्योंकि परमाणुके खंडका अभाव है
वृत्त्यनुवादः—अणोः६। प्रदेशाः१। न*सन्ति I इति*	= अणुके प्रदेश नहीं है ऐसा
(१)वाक्यशेषः१।	= वाक्य शेष है अर्थात् 'न-अणोः' वाक्यअपूर्ण है। उसका शेषवाक्य प्रदेशाः सन्ति है
कुतः* न* सन्ति I इति* चेत्*	= क्योंकर (अणुके प्रदेश) नहीं है। ऐसी शका है।
प्रदेश-मात्रत्वात् ५।।	= (उत्तर) केवल (= मात्र) एक प्रदेश होनेसे (अणुके बहुत प्रदेश नहीं है)
यथा*आकाश-प्रदेशस्य ६। एकस्य६।प्रदेश-भेद-	= जैसे आकाशके एक प्रदेशके प्रदेश भेद
अभावात् ५। अप्रदेशत्वम् १।।एवम्*अणोः६।अपि*	= न होनेसे अप्रदेशपना है। ऐसे अणुके भी
प्रदेशमात्रत्वात्-५।। प्रदेश-भेद-अभावः१।	= प्रदेशमात्रपनासे प्रदेशके भेदका अभाव है॥
किम्*च* ततः* अल्प-परिमाण-अभावात्५।	= और क्योंकि(किस लियेकि)तिस (परमाणु) से लघु परिणमन न होने(के हेतु)से
नहि*अणोः५।(२)अल्पीयान् १।अन्यः१।अस्ति I;यतः*	= अणुसे अन्य (वस्तु) लघुतर नहीं(= न हि) है। जिससे
अस्य६। प्रदेशाः१।(२)भिद्येरन् I एषाम्६। अवधृत-	= इस (परिमाणु)के प्रदेश भेदे जावें ॥ इन निश्चय किये हुये वा निर्णीत किये हुये

(१)वाक्यशेष = वाक्य या वचनका छूटा हुआ या अवशेष भाग(।।)पद आकांक्षा,वाक्य आकांक्षा,समर्थपदलोप (२)भिद्येरन् यह आत्मनेपदी विधि लिंग कियाहै(२)अल्पीयान् विशेषणों की जो अपने विशेष्योंके गुणों को प्रगट करते हैंतीन श्रेणी होती हैं(क)साधारण अवस्था अर्थात् अपने विशेष्य के साधारण गुण कोप्रगट करे जैसे अच्छा मनुष्य बुरा मनुष्य(ख)आधिक्य बोधक अवस्था वह है जो दो विशेष्योंमें से एकके गुण वा दूषण कोदूसरे पर लघुता श्रेष्ठता प्रगट करे जैसे देवदत्तसे यज्ञदत्त बुरा है।मोहनसे सोहन अच्छा है।(ग)अतिशय्य बोधक अवस्था वह है जिससे केवलएक विशेष्यका

प्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्यर्थमिदमुच्यते—

॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥

उक्तानां धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्यर्थः॥ यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः। आकाशस्य क आधार इति ? ॥ आकाशस्य नास्त्यन्य आधारः। स्वप्रतिष्ठमाकाशम् ॥

प्रदेशानां धर्मादीनां आधार-प्रतिपत्ति- अर्थम् इदम् उच्यते =प्रदेशवाले धर्मादिक(द्रव्यों)के अधिकरण जाननेकेलिये यह कहाजाता है कि

[1]सूत्रम्—लोकाकाशेऽवगाहः ॥१२॥ =(धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्[3])लोकाकाशेऽवगाहः॥ १२॥

सूत्रार्थः[2]धर्मआदीनां द्रव्याणां लोकाकाशे अवगाहः =धर्म, अधर्म, जीव और पुद्गल द्रव्योंकी लोकाकाशमें स्थिति है

टत्त्यनुवादः-उक्तानाम् धर्मादीनाम् द्रव्याणाम्	=कथित धर्मादिक' द्रव्योंकी
लोकाकाशे अवगाहः न बहिस् इति अर्थः	=लोकाकाश में स्थिति है न कि (लोकाकाशके)बाहिर ऐसा तात्पर्य है
यदि धर्म आदीनाम् लोकाकाशम् आधारः	=(प्रश्न) जो धर्मादिकद्रव्योंका लोकाकाश आधार है तो
आकाशस्य कः आधारः इति आकाशस्य	=आकाशका क्या आधार है ॥ आकाशका
न अस्ति अन्यः आधारः स्व-प्रतिष्ठम् आकाशम्॥	=और वा भिन्न (=अन्य) अधिकरण नहीं है। आकाश अपने आधार है

गुण अथवा अवगुण लघुता अथवा गुरुता दोसे अधिक पर प्राप्य करें जैसे मोहन सर्व छात्रों में दयालु है ॥

ईयस् प्रत्यय 'आधिक्यबोधक अवस्था' के विशेषणका चिन्ह है और 'इष्ट' प्रत्यय आतिशय्य बोधक अवस्थाके विशेषणका चिन्ह है। इन प्रत्ययोंके लगाने के प्रथम, शब्द अर्थात् प्रातिपदिकके अन्तिम स्वर और यदि शब्दके अन्तमें व्यंजन होतो अन्तिम व्यंजन उसके समीपके स्वरसहित को गिरादेते हैं जैसे अल्प = अल्प + ईयस् = अल्पीयस्)महत् = मह् + अत्, अत् गिराकर(अर्थात् महत्के उक्त स्वर और व्यंजन दोनों गिराकर) और ईयस् जोड़कर महीयस् बनालिया ॥

संज्ञायें जिनके अन्तमें वस् और ईयस् अथवा यस् हों तो पुल्लिंगमें शब्दके अन्तिम स् के पूर्व न् प्रथम कारकके एक वचन, द्विवचन बहुवचन और कर्म कारकके एक वचन और दो वचनमें जोड़देते हैं उक्त संज्ञायोंका उपान्तिक अकार दीर्घ होजाता है। प्रथमा एक वचनके अन्तमें 'वान् वा यान्' आते हैं ॥ जैसे विद्वस् = विद्वन् स् + स् = विद्वान् स् स् जब शब्दके अन्तमें दो अथवा दोसे अधिक व्यंजन हों तो केवल एक रहजाता है शेष गिरजाते हैं) अतः विद्वान्। बनगया शेषरूप विद्वांसौ, विद्वांसः, विद्वांसम्, विद्वांसौ। ()अल्पीयस् = अल्पीयन् स् + स् = अल्पीयान् स् स् = अल्पीयान् ।

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों आम्नायों में एकसा है ॥ (२) 'धर्मादीनां द्रव्याणां' इस वाक्यका अध्याहार किया गया है (३)काल द्रव्यका आचार्य ने अभी कथन नहीं किया है क्योंकि उसका कथन उनतालीसवां सूत्रमें है इससे अवगाहमें काल द्रव्यको गर्भित नहीं किया है यद्यपि काल द्रव्यकी भी स्थिति लोकाकाश में ही है ॥

यद्याकाशं स्वप्रतिष्ठं, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्य आधारः कल्प्यते, आकाशस्याप्यन्य आधारः कल्प्यः । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेन्नैष दोषः ॥ नाकाशादन्यदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति । यत्राकाशं स्थितमित्युच्यते । सर्वतोऽनन्तं हि तत् । ततो धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव ॥ तथा चोक्तं

यदि * आकाशम्[१।१] स्वप्रतिष्ठम्[१।१] धर्मादीनि[१।३] अपि * =(प्रश्न)जो आकाश अपने आधार है तो धर्मादिक(द्रव्य)भी

स्वप्रतिष्ठानि[१।३] एव * ;अथ * धर्मादीनाम्[६।३] अन्यः[१।१] =अपने आश्रय ही हैं । जो(=अथ)धर्मादिक(द्रव्यों)का और (=अन्य)

आधारः[१।१] कल्प्यते [,] आकाशस्य[६।१] अपि * अन्यः[१।१] आधारः[१।१] =आधार मानाजाता है । तो आकाशका भी अन्य आधार

कल्प्यः[१।१] ;तथा * सति[७।१] =मानना चाहिये । वैसा(=तथा होने पर अर्थात् आकाश का अन्य आधार माननेमें

अनवस्था प्रसङ्गः[१।१] इति * चेत् * न * एषः[१।१] दोषः[१।१] ॥ =व्यवस्थाके अभावका प्रसंग होता है, ऐसी शंका है ।(उत्तर) यह दूषण नहीं है

न आकाशात्[५।१] अन्य अधिक-परिमाणम्[१।१] =क्योंकि आकाशसे अन्य विशेष परिमाण वाली

द्रव्यम्[१।१] अस्ति [। =द्रव्य नहीं है अर्थात् आकाश से कोई दूसरी द्रव्य महान् बड़ी नहीं है ।

यत्र * आकाशम्[१।१] स्थितम्[१।१] इति * उच्यते [। =जिसमें(=यत्र)आकाश स्थित हो ऐसा कहा गया है ।

सर्वतः * अनन्तम्[१।१] हि * तत्[१।१] ;ततः * धर्मादीनाम्[६।३] पुनः * =सो(=तत्)सब ओर(आकाश)ही अनन्त है । बहुरि तिससे धर्मादिकों का

अधिकरणम्[१।१] आकाशम्[१।१] व्यवहारनय-वशात्[५।१] =आधार(आकाश)है । व्यवहारनयके आश्रयसे

इति * उच्यते [। एवम्भूतनय-अपेक्षया[३।१] तु [१] * =ऐसा कहा जाता है, और(=च)एवम्भूतनयकी अपेक्षासे अर्थात् जिस स्वरूपकरिके पदार्थ हो, तिस स्वरूपकरिकेंही निश्चयकरनेवाली नयकी अपेक्षासे

सर्वाणि[१।३] द्रव्याणि[१।३] स्वप्रतिष्ठानि[१।३] एव * ॥ तथाच * उक्तम्[१।१] =सब द्रव्यें अपने (अपने)आधार ही हैं और (=च)वैसेही(तथा=)कहा जाता है

(१) 'तु'-सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्ति में 'तु' के स्थान में 'च' है कई हस्तलिखित प्रतियोंमें और द्वितीय संस्करणमें 'तु' शब्द है इसलिये हमने भी 'तु' पाठ लिया है ॥

क्व भवानास्ते ? आत्मनीति ॥ धर्मादीनि लोकाकाशान्न बहिः सन्तीति एतावत् अत्राधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् ॥ ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम् । धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि

क*भवान्[१/१](१)आस्ते।आत्मनि[७/१]इति*;धर्मादीनि[१/३]।। =कि आप कहां बैठे हैं (उत्तर)आत्माविषैं (बैठा हूं) धर्मादिक (द्रव्यें)

लोकाकाशात्[५/१]।।न*बहिस्*सन्ति।इति*एतावत्* =लोकाकाशसे बाहिर नहीं हैं इतनाही

अत्र*(२)आधार-आधेय-कल्पना-साध्यम्[१/१]।। फलम्[१/१]।। ;=यहां आधार आधेयके माननेका साधनीय अथवा सिद्ध करने योग्य फल है

(३)ननु*च*लोके[७/१]।। पूर्व-उत्तर-काल-भाविनाम्[६/३]।। =बहुरि प्रश्न, लोकमें पहिले पिछले(पश्चात्)कालमें होनेवाली वस्तुओंके

आधार-आधेयभावः[१/१]। दृष्टः[१/१]। =आधार आधेयभाव देखाजाता है अर्थात् आधार पहिले पश्चात् आधेय देखाजाताहै

यथा*कुण्डे[७/१]। बदर-आदीनाम्[६/३]। =जैसे गड्ढा(आधार)में बेरके वृक्ष आदिकें वा कपासके पौंदा आदिकें(आधेयभाव) हैं

न*तथा*आकाशम्[१/१]।।पूर्वम्[१/१]।।;धर्मादीनि[१/३]।। उत्तर- =तैसे आकाश पहिले नहीं है और धर्मादिक (द्रव्यें) पश्चात्

काल-भावीनि[१/३]।। =कालवाली (नहीं) है अर्थात् प्रश्न यह है कि गड्ढा पहिले होता है उसमें बेर या कपासादिका वृक्ष पीछे होता है। तब आधार आधेयभाव होता है तैसे आकाश पहिले हो पीछे तिसमें धर्मादिक द्रव्य धरे होंय, तब आधार आधेयभाव होना चाहिये सो इस प्रकार है नहीं। क्योंकि आकाश और धर्मादिक द्रव्योंके अनादि परिणामिक यौगपद्यकी सिद्धि है। पूर्वमें होना वा पीछेहोना ऐसा भेद नहीं है ॥

(१) आस् =बैठना-अदादि (दूसरे)गणका धातु है। आत्मनेपदी सकर्मक है इसलिये आस् + ते = आस्ते = वह बैठा है ॥

(२) जिसके आश्रय वा आसरेसे कोई वस्तु तिष्ठी हो उसे आधार कहते हैं। वह वस्तु जो किसीके आश्रित तिष्ठी हो उस वस्तुको आधेय कहतेहैं जैसे चौकी पर पुस्तक है यहां चौकी आधार है और पुस्तक आधेय है।

(३) पाठकोंको ध्यान रहे कि "ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टः। यथा कुण्डे बदरादीनां न तथाऽऽकाशं पूर्वम्। धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि। अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ ऐसा और इतना प्रश्न कियागया है ॥

अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ॥ नैष दोषः ॥ युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावो दृश्यते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादय इति ॥ लोक इत्युच्यते । को लोकः ? । धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लोक्यन्ते स लोक इति ॥ अधिकरणसाधने घञ् ॥ आकाशं द्विधा विभक्तं । लोकाकाशमलोकाकाशं चेति ॥ लोक उक्तः । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सर्वतोऽनन्तमलोकाकाशम् ॥ लोकालोकविभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावात्,

सर्वार्थ सिद्धि ३५

अध्याय सूत्र ३५

अतः * व्यवहारनय-अपेक्षया * अपि * आधार-आधेय-	=इसलिये व्यवहारनयकी अपेक्षासे भी आधार आधेयके
कल्पना-अनुपपत्तिः इति * ॥	=माननेकी सिद्धि नहीं (होती) है (क्योंकि पूर्व में कथन कर चुके है कि एवम्भूतनय की अपेक्षासे सर्व द्रव्य अपने अपने आधार हैं और व्यवहारनयसे आश्रय आश्रयी (=आधेय) भाव है
न * एषः दोषः ; युगपद् * भाविनाम् । अपि *	=(उत्तर) वह दूषण नहीं है (क्योंकि) एक कालमें होनेवालोंके भी
आधार-आधेय-भावः दृश्यते । घटे रूपादयः	=आधार, आधेय भाव देखा जाता है । (जैसे) घड़ा में रूपादिक हैं
शरीरे हस्त-आदयः इति * । लोकः इति * उच्यते ।	=शरीर में हस्तादिक हैं ॥ 'लोक' ऐसा कहा जाता है ॥
कः लोकः ? धर्म-अधर्म-आदीनि द्रव्याणि यत्र *	=(प्रश्न) लोक क्या है ? (उत्तर) धर्म, अधर्म आदिक द्रव्यें जहां
लोक्यन्ते । सः लोकः इति * अधिकरणसाधने	=देखी जाती हैं सो लोक है। ऐसे (लोक शब्द के) अधिकरण वा आधार सिद्ध करनेमें
(१) घञ् । आकाशम् द्विधा * विभक्तम्	=घञ् (=अ) प्रत्यय लगाया है, जोड़ा है । आकाश दो प्रकारसे कटा हुआ है
लोकाकाशम् अलोकाकाशम् च * इति । लोकः उक्तः,	=लोकाकाश और अलोकाकाश है । लोक (जहां धर्मादिक द्रव्यें देखी जाती हैं ऐसा) कहा गया है
सः यत्र * तत् लोकाकाशम् ; ततः * बहिस् *	=वह (लोक) जहां (=यत्र) है सो (=तत्) लोकाकाश है, तिस (लोक) से बाहिर
सर्वतः * अनन्तम् अलोकाकाशम् ; च * लोक-	=चारोंओर अन्तरहित अलोकाकाश है और लोक
अलोक-विभागः धर्म-अधर्म-अस्तिकाय-सद्भावात्	=अलोक का विभाग धर्मास्तिकायकी, अधर्मास्तिकाय की विद्यमानता से

(१) लोक् धातु का अर्थ देखना है घञ् प्रत्ययमें घञ् इत् होनेसे लोप होगये अ शेष रहा, तब लोक् + अ ऐसा रूप हुआ, अर्थात् 'लोक' शब्द बनगया ॥

विज्ञेयः॥ असति हि तस्मिन्धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमहेत्वभावाद्विभागो न स्यात्। असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावः। तस्या अभावे लोकालोकविभागाभावो वा स्यात्। तस्मादुभयसद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः॥

तत्रावध्रियमाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

विज्ञेयः॥ =जाननायोग्य है (जहांतक, जहांपर धर्म, अधर्म द्रव्योंका अस्तित्व है वहांतक लोकाकाश है)

असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये। =क्योंकि (=हि) तिस धर्मास्तिकायके न होनेपर

जीव-पुद्गलानाम् गति-नियम-हेतु-अभावात् विभागः। =जीव पुद्गलोंके गमनके नियमके कारणके अभावसे लोक और लोकका) विभाग

न स्यात्; च असति अधर्मास्तिकाये स्थितेः॥ =नहीं होसकता है और (=च) अधर्मास्तिकाय न होनेपर स्थितिके

आश्रय-निमित्त-अभावात् स्थितेः अभावः; तस्याः॥ =आश्रयके हेतुके अभावसे स्थितिका अभाव होता है। तिस (स्थिति)के

अभावे लोक-अलोक-विभाग-अभावः वा स्यात्। =न होनेपर लोक अलोकका विभाग निश्चयसे (=वा) नहीं होगा (अभावः स्यात्)

तस्मात् उभय-सद्भावात् लोक-अलोक-विभाग-सिद्धिः॥ =तिससे दोनों (धर्म, अधर्म द्रव्यों)के अस्तित्वसे लोक अलोकके विभागकी सिद्धि है

तत्र अवध्रियमाणानाम् अवस्थान- =तहां निर्णयकियेगये अथवा अवधारणकियेगयेके अवस्थानके

भेद-सम्भवात् विशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्॥ आह। =भेद सम्भव होनेसे विशेष ज्ञानके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते है कि

[1]सूत्रम्-धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥ = धर्माधर्मयोः कृत्स्ने (लोकाकाशे अवगाहःभवति)।१३।

सूत्रार्थः—धर्म-अधर्मयोः कृत्स्ने॥ लोकाकाशे॥ =धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्यकी समस्त लोकाकाशमें

अवगाहः भवति। =स्थिति है अर्थात् जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है उसी प्रकार लोकाकाशके समस्त प्रदेशों में धर्म अधर्म द्रव्योंके प्रदेश पूर्णरूपसे व्याप्त हैं।

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्र का पाठ और अर्थ एकसा है॥ कहींपर "धर्म्माधर्म्मयोः कृत्स्ने" पाठ है दोनों पाठ "मयो रहाभ्यां द्वे(वा)" अष्टाध्यायी ८-४-४६ सूत्रसे ठीक है।

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदर्शनार्थम् ।

अगारेऽवस्थितो घट इति यथा, तथा धर्माधर्मयोर्लोकाकाशेऽवगाहो न भवति किं तर्हि ? । कृत्स्ने, तिलेषु तैलवदिति ॥ अन्योऽन्यप्रदेशप्रवेशव्याघाताभावोऽवगाहनशक्तियोगाद्वेदितव्यः ॥

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामेकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

वृत्त्यनुवादः-कृत्स्न-वचनम् ।। अशेष-व्याप्ति-प्रदर्शन-अर्थं =(इस सूत्रमें) कृत्स्न शब्द सर्व (लोकमें) व्याप्ति अथवा फैलावटके दिखानेके लिये है,

अगारे ।। अवस्थितः । घटः । इति * यथा *, तथा * =जैसे घरमें घड़ा अवस्थित वा रक्खा हुआ है तैसे

धर्म-अधर्मयोः । लोकाकाशे ।। अवगाहः । न * भवति । =धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनोंका लोकाकाशमें अवगाह नहीं होता है

किं * तर्हि * । =(प्रश्न) तो कैसे हैं ? प्रश्नका भावार्थ ऐसा है कि आचार्यकी यह बात सुनकर कि घरमें रक्खे हुये घटके समान धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकशमें रक्खेहुये नहीं हैं शिष्यने अचम्भित, उत्सुक और अधीर होकर तत्कालही प्रश्न करदियाकि तो कैसे हैं

कृत्स्ने ।। तिलेषु । तैलवत् * इति * ॥ (=उत्तर) सम्पूर्णमें अर्थात् तिलोंमें तेलके सदृश भावार्थ जैसे तिलोंमें सर्वत्र तेल व्याप्त है तैसे लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंमें सर्वत्र धर्म अधर्मद्रव्योंकेप्रदेश पूर्णतया व्याप्त हैं

अन्योऽन्य-प्रदेश-प्रवेश-व्याघात-अभावः । =(धर्म-अधर्मद्रव्योंके) परस्पर प्रदेशोंके प्रवेशमें व्याघात वा रुकावट नहीं है

अवगाहन-शक्ति-योगात् । =(सो रुकावटका अभाव धर्म-अधर्मद्रव्योंकी) अवगाहनकी सामर्थ्यके योगसे

वेदितव्यः । =जानना चाहिये अर्थात् धर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश अधर्मद्रव्यके एक२ प्रदेशमें व्याघात रहित प्रवेश है और अधर्मद्रव्यका एकएकप्रदेश धर्मद्रव्यके पृथक् पृथक् प्रदेशमें विना रोकटोक प्रवेशहै सो यह परस्पर प्रवेशता धर्म-अधर्मके अवगाहनशक्तिके निमित्तसेहै

अतः * विपरीतानाम् । मूर्तिमताम् । एकप्रदेश-संख्येय- =इसलिये (इन अमूर्तीक धर्म-अधर्मद्रव्योंके) विरुद्ध मूर्तिमान् एकप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी

असंख्येय-अनन्त-प्रदेशानाम् । पुद्गलानाम् । =असंख्यात प्रदेशी अनन्त प्रदेशी (अनन्तानन्त प्रदेशी) पुद्गलोंकी

अवगाह-विशेष-प्रतिपत्ति- अर्थम् ।। आह । =अवगाहको विशेष जाननेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

[1]सूत्रम्—एकप्रदेशादिषु [4]भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

=([2]लोकाकाशे)एकप्रदेशादिषु[4]भाज्यः(एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां) पुद्गलानां ([3]अवगाहः)

सूत्रार्थः—लोकाकाशे[1] एकप्रदेशः-आदिषु[3] =लोकाकाशके एक प्रदेशादिकनिर्वे

एकप्रदेश-संख्येय-असंख्येय- =एक प्रदेशी, दो प्रदेशी, तीन प्रदेशी आदि संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और

अनन्त-अनन्तानन्तप्रदेशानां[6] पुद्गलानां[6] अवगाहः[1] भवति =अनन्तप्रदेशी, अनन्तानन्तप्रदेशी पुद्गलोंका अवगाह-स्थिति-अवस्थान-ठहराव-टिकाव

भाज्यः[1] =विभाग करने योग्य है, विकल्पनीय है या बांटेजाने योग्य है अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशों तकमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुं, तीनपरमाणुं, चारपरमाणुं, पांचपरमाणुं, छहपरमाणुं इत्यादिक संख्यात परमाणुं, असंख्यात परमाणुं अनन्त परमाणुं, और अनन्तानन्त परमाणुंओंका अवगाह विभाग करने योग्य है, बांटेजाने योग्य है भावार्थ कि लोकाकाशके एकप्रदेशमें पुद्गलद्रव्यके एकपरमाणु, दोपरमाणुके (जो सूक्ष्मपरिणये) स्कंधका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों संप्रदायोंमें एकसा है ॥ 'पुद्गलानाम्' के स्थानमें जहां कहीं 'पुद्गलानां' ऐसा पाठ है वह कातंत्ररूपमाला व्याकरणको छोड़कर अशुद्ध है ॥ (२) 'लोकाकाशे' और 'अवगाह' की बारहवां सूत्रसे अनुवृत्ति है॥ 'एकप्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त-अनन्तानन्त-प्रदेशानां पुद्गलानाम्' यह समस्त यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखीजावै तो दशवां सूत्रकी अनुवृत्ति है क्योंकि उक्त सूत्रमें प्रदेशशब्दकी अनुवृत्ति आठवां सूत्रसे लीगई है अतः यहांभी प्रदेश शब्द आठवां सूत्रसे अनुवर्तता है ॥ दशवां सूत्रके 'संख्येय' शब्दमें एक प्रदेश और संख्यात प्रदेशआजाते हैं ॥ दशवां सूत्रके अनन्त शब्दमें 'अनन्तानन्त' भी गर्भित है जैसाकि उक्त सूत्रकी वृत्तिके निम्न वाक्योंसे प्रगट है अनन्त सामान्यात् ॥ अनन्त प्रमाणं त्रिविधमुक्तं परीतानन्तयुक्तानन्तमनन्तानन्तं चेति । तत्सर्वमनन्तसामान्येन गृह्यते ॥ इन वाक्योंके अर्थके लिये देखो पृष्ठ २६ ॥ (३) यह अनुवाद दशवां सूत्रके आधारपर है। (४) "भाज्य" विभजनीय, विभाग करने योग्य, विभाज्य, विकल्प करने योग्य, विकल्पनीय, बांटने योग्य अंशनीय ये सर्व एकार्थवाची हैं ॥(५) पद्गल द्रव्यको अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश तैं लगाय असंख्यात प्रदेश ताई अनेक प्रकार हैं ॥ पं० सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका ॥

तीन परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें पलटगये हैं)स्कंधका चार परमाणुके(जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं)स्कंधका इत्यादि संख्यात परमाणुके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणमें हैं) स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंध का, तथा सूक्ष्मरूप परिणमें अनन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका और सूक्ष्मरूप परिणत अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुके स्कंधका भी अवगाह वा अवस्थान (लोकाकाशके एक प्रदेशमें) है ;

लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके दोपरमाणु खुलेहुओंका अथवा दो परमाणु बन्धे हुओंका जो सूक्ष्म-रूप नहीं परिणये हैं स्थिति है, तीन परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप विकारको प्राप्त हुई है) स्कंधका, चार परमाणुओं के (जो सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं) स्कंधका और ऐसाही परिवर्तित पांच परमाणुके स्कंधका तथा ऐसेही परिणत छह परमाणुओंके स्कंधका, इत्यादिक ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित संख्यात पुद्गल परमाणुके स्कंधका, ऐसाही स्कंध असंख्यात परमाणुओंकेका, ऐसाही स्कंध अनन्त परमाणुओंकेका और पुद्गलके अनन्तानंत परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूपमें परिणये हैं) स्कंधकाभी अवगाह वा ठहराव वा स्थिति (लोकाकाशके दो प्रदेशोंमें) है ;

लोकाकाशके तीन प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यके तीन परमाणु खुले हुओंका अथवा तीन परमाणु बंधे हुओंका जो सूक्ष्मरूप नहीं परिणये हैं, चार परमाणुओंके (जो सूक्ष्मरूप परिणमें हैं) स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिणत पांच परमाणुके स्कंधका, ऐसाही सूक्ष्मरूप परिवर्तित छह परमाणुओंके स्कंधका अवगाह, इत्यादिक सात, आठ, नौ, दश .... संख्यात सूक्ष्मरूप परिणत परमाणुओंके स्कंधकी स्थिति, ऐसेही सूक्ष्मरूप परिवर्तित असंख्यात परमाणुओंके स्कंधका अवस्थान, अनन्त परमाणुके ऐसेही स्कंधकी स्थिति, और ऐसेही सूक्ष्म परिणत अनन्तानंत परमाणुओंकी स्थिति तीन प्रदेशोंमें है ।

इसही प्रकार लोकाकाशके चार-पांच-छह-सात-आठ-नौ-दश इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेश पर्यंतोंमें चार-पांच-छह-सात-आठ नौ-दश-इत्यादिक संख्यात और असंख्यात पुद्गल परमाणुओंके स्कंध का जो लोकाकाशके प्रदेशोंकी यथायोग्य गणनानुसार खुले हुये होसकते हैं वा बंधे हुये (सूक्ष्मरूपमें नहीं) अथवा उक्त नियमकी गणनानुसार सूक्ष्मरूपमें परिणतभी होसकते हैं, अवस्थान भाज्यरूप जानो, परन्तु अनन्त और अनन्तानन्त पुद्गल परमाणुओंके स्कंधका लोकाकाशके एक,दो,तीन, चारसे असंख्यात प्रदेशों तकमें उसी समय, अवस्थान वा अवगाह होसक्ता है जब वे अनन्त परमाणु वा अनन्तानन्त परमाणु सूक्ष्मरूपमें परिवर्तित हैं क्योंकि लोकाकाशके तो असंख्यात ही प्रदेश हैं । स्मरण रहे कि जितनी खुली हुई परमाणु हैं

एक एव प्रदेशः एकप्रदेशः । एकप्रदेश आदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः । तेषु पुद्गलानामवगाहो भाज्यो विकल्प्यः ॥ अवयवेन विग्रहः

उतने लोकाकाशके प्रदेशोंसे अधिकमें अवगाहनीय नहीं होसकती है। अधिकसे अधिक उतने ही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा टिकाव होसकता है जितनी उनकी खुले रूपमें संख्या है॥

वृत्त्यनुवादः—एकः[१] एव प्रदेशः[१] एकप्रदेशः[१] । =एक ही प्रदेश है सो (द्विगु समासरूपमें) एकप्रदेश है

एकप्रदेशः[१] आदिः[१] येषाम्[१] ते[१] इमे[१] एकप्रदेशादयः[१] । =एक प्रदेश है आदिमें अर्थात् प्रथममें जिनके वे इतने "एक प्रदेशादयः" हैं

तेषु[१] =तिन (एक प्रदेशादिक अर्थात् लोकाकाशके एक-दो-तीन-चार-पांच-छह-इत्यादि संख्यात प्रदेशोंसे असंख्यात प्रदेशोंतक)में

पुद्गलानाम्[१] =पुद्गलों (की एकपरमाणु,दो परमाणु,तीन परमाणु, चार परमाणु, पांच परमाणु, छह परमाणु, सात परमाणु, आठ परमाणु इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनन्त और अनन्तानन्त परमाणुओं)की

अवगाहः[१] भाज्यः[१] विकल्प्यः[१] =स्थिति विभाग करनेयोग्य (=भाज्य) है । विकल्पनीय है-अंशनीय है ॥

अवयवेन[१] =(एकप्रदेशादिषु इस बहुवचनांतसमासका) टुकड़ेटुकड़े रूपसे वा अंशअंशकरि

विग्रहः[१] =व्याकरणानुसार व्यवच्छेद (=विग्रह इसार (विग्रह)या विस्तार कियागया है सो

(१) "एकप्रदेशादिषु" समासके अवयव इसप्रकार होसकते हैं कि=(लोकाकाशे) एकप्रदेशे पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः) ऐसं एकप्रदेशभी लियागया है॥
() लोकाकाशे द्विप्रदेशयोः पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे त्रिप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।
() लोकाकाशे चतुःप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे पंचप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः।
() लोकाकाशे षट्प्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः । ()
() लोकाकाशे सप्तप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशेषु अष्टप्रदेशेषु पुद्गलानाम् अवगाहः भाज्यः ।
() लोकाकाशे नवप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे दशप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः ।
() इत्येवम् लोकाकाशे संख्यातप्रदेशेषु पुद्गलानां अवगाहः भाज्यः । () लोकाकाशे असंख्यातप्रदेशेषु अपि पुद्गलानां अवगाहः भाज्यश्च ।

(२) दोनों बारकी छपीहुई संस्कृत सर्वार्थसिद्धिमें "विग्रहसमुदायः समासार्थः" ऐसा पाठ है अर्थात् विग्रह और समुदाय शब्दोंको मिलादिया है सो बहुत गहरी खोजके पश्चात्

समुदायः समासार्थ इति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते ॥

समास-अर्थः३।	=सो उक्त 'एकप्रदेशादिषु') समासका भाव, अभिप्राय, वा तात्पर्य (=अर्थः)
समुदायः१।	=संचयरूपमें ग्रहण करनेका है (=समुदाय),अथवा इकट्ठेरूपमें लियेजानेका है(=समुदाय) कि
इति*एक-प्रदेशः१।अपि*गृह्यते T	=इस प्रकारसे(=इति)एकप्रदेश भी लेलियागया है भावार्थ ऐसा है कि 'एकप्रदेशादिषु'

निम्नलिखित हेतुओंसे ज्ञात होताहै कि उक्त पाठ अशुद्ध है (क) सर्वार्थसिद्धिकी तीन हस्तलिखित प्रतियोंके पर्ण १११, ३२, ५१ परक्रमसे 'अवयवेन विग्रहस्समुदायः समासार्थ इति' पाठ है ॥ यदि विसर्गके पश्चात् श्-ष्-स् आवें तो विसर्गका विसर्ग बना रहनेदो चाहे क्रमसे श्-ष्-स् में पलटदो इसलिये विग्रहस्समुदायः=विग्रहः समुदाय (वाक्य)के ॥

(ख)तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २०५ पर कलकत्तेकी संस्था द्वारा प्रकाशित राजवार्तिकका मुद्रित अनुवादके अध्याय ५ पृष्ठ १४६ पर और पं० पन्नालालजी दूनी अनुवादित राजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ० ३७ पर और पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवादित तत्त्वार्थराजवार्तिक हस्तलिखितके अध्याय ५ पृ०५४पर प्रथमवार्तिक यह है"एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्यर्थः"॥१॥यहांपर'वृत्ति'शब्दकाअर्थ समास है।

तत्त्वार्थराजवार्तिकके सूत्र"असंख्येयभागादिषु जीवानाम्" ॥१५॥ पर प्रथमवार्तिक यह है कि "अवयवेन विग्रह समुदायो वृत्यर्थ इति"

(ग) श्रुतसागरि सूरि कृत 'श्रुतसागरीटीका' हस्तलिखितप्रतिके पर्ण १५३ पर 'यथा व्याकरणेऽवयवेन विग्रहो भवति समुदायः समासार्थो भवति तथा एकप्रदेशोपि गृह्यते बहवःश्च प्रदेशा गृह्यते=जब व्याकरणमें अवयव सहित विग्रह होता है समासका अर्थ समुदाय होता है तब एक प्रदेश भी ग्रहण कियागया है और बहुत प्रदेश भी लियेगये है अथवा ग्रहण किये गये हैं ॥ इस सम्बन्धमें हमको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा उनकी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकामें कुछभी नहीं प्राप्त हुआ है ॥

(घ) पं० जयचन्द्रायजीने इसी सूत्रकेबीचे ऐसा अनुवाद किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु समास अवयवकरि कियाहै, तातैं समुदाय जानना" ॥

(ङ)पं० पन्नालालजी दूनीका अनुवाद इस प्रकार है 'तिन एकप्रदेशादिकनिविषैं जैसो समास जोहै सो समुदायरूपवृत्तिके अर्थ सर्वांदिकके समानहै उक्त दूनीजीने राजवार्तिक १५वां सूत्रकी प्रथमावार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्यर्थ इति' का यह अनुवाद किया है कि'अवयवकरिविग्रहहोयहै अरवृत्तिका अर्थ समुदाय है' यहांपरभी वृत्तिका अर्थ समास है ॥

(च) पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर अनुवाद करते हैं 'एक प्रदेशादिकके विषैं समुदायवृत्तिरूप जो अर्थ है सो सर्वादिगणके समान है। ताकरि एकप्रदेशभी ग्रहण होय है ऐसा जानना" ॥ यह अनुवाद 'एकप्रदेशादिषु इति विग्रहः समुदायो वृत्त्यर्थः सर्वादिवत् । तेनैकप्रदेशोऽपि अंतर्भवति' वृत्तिका है ॥ प्रथम वार्तिक 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्यर्थः' का अनुवाद ऐसे किया है कि 'यहां एकप्रदेशादिषु या बहुवचनांत वाक्यका विग्रह अवयवकरि है तातैं समुदाय वृत्ति जानना' ॥ 'असंख्येयभागादिषु जीवानाम्'॥ १५वां सूत्रकी प्रथम वार्तिक 'अवयवेन विग्रहः समुदायो वृत्यर्थ इति' का अनुवाद ऐसा किया है कि "अवयवकरि विग्रह है सो समासमें समुदायरूप अर्थकूं कहै है"

यदि हम छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तियोंका पाठ मानलेंतो अवयवेन विग्रहसमुदायःसमासार्थइति एकप्रदेशोऽपिगृह्यते वाक्यका अनुवाद इसप्रकार होगा

अवयवेन३। विग्रह-समुदायः१।	=टुकड़े २ रूपसे वा अंश २ रूपसे विग्रह (अर्थात् समासार्थबोधक वाक्यों)का(यहां) संग्रह व समुच्चय है
समास-अर्थः३। इति*एकप्रदेशः१।अपि*	=सो (एकप्रदेशादिषु) समासके अर्थके (स्पष्ट करनेके लिये) है ऐसे (आकाशका) एक प्रदेशभी
गृह्यते T	=ग्रहण किया गया है भावार्थ यह है कि (एकप्रदेशादिषु)यह समास है इस समासके अंश वा अवयवका भाग 'एकप्रदेश और एक प्रदेशादिषु हैं वे अवयवरूपसे

यह बहुवचनांत समास है, इस समासके भाग अथवा अवयव 'एकप्रदेश' एकप्रदेश-आदिषु हैं अर्थात् एकप्रदेशमें, दोप्रदेशोंमें, तीन प्रदेशोंमें, चारप्रदेशोंमें इत्यादिक संख्यात प्रदेशोंमें और असंख्यात प्रदेशोंमें इसप्रकार उक्त समासका अवयव सहित अथवा टुकड़े२ रूपमें, अंश २ रूपमें विग्रह वा व्याकरणानुसार व्यवच्छेद, प्रसार, वा विस्तार हुआ सो यह विग्रह इस बातका द्योतक है कि उक्त (एकप्रदेशादिषु) समासका अर्थ तात्पर्य वा भाव समुदाय है। यदि इस समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता और एकप्रदेश छूट जाता, समासका समुदाय अर्थ माननेमें ग्रहण करनेमें लोकाकाशका एक प्रदेशभी पुद्गलके अवगाहके लिये ग्रहणमें आगया है

विग्रहका समूह है सो(यह अवयवरूपसे विग्रहका समुदाय 'एक प्रदेशादिषु समासके(स्पष्ट करनेके)अर्थ है ऐसे लोकाकाशका एकप्रदेशभी(पुद्गलके) अवगाहके लिये लिया है।पं० गजाधरलालजीने तत्त्वार्थराजवार्तिककी 'एकप्रदेशादिष्वित्यवयवेन विग्रह समुदायो वृत्त्यर्थः'का भावार्थ ऐसा दिया है कि 'एकश्चासौ प्रदेशश्चैकप्रदेश एकप्रदेशआदिर्येषां त इमे एकप्रदेशादयः तेषु एकप्रदेशादिषु' यह यहांपर अवयवके साथ समासहै। 'एकप्रदेश आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यह यहांपर 'एकप्रदेशादिषु' पदका अर्थ है। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपरबहुव्रीहिसमासरहनेसेअन्य पदार्थ प्रदेश लिया गया है और वह विशेष्य और एक प्रदेशादि पदार्थको विशेषण माना गया है। यदि यहांपर यह तर्क किया जाय कि अन्यपदार्थ प्रदेश ही क्यों लिया गया और कोई पदार्थ क्यों नहीं लिया गया ? तो इसका समाधान यह है कि जहांपर उपलक्ष्य और उपलक्षणभाव रहता है वहांपर समान जातीयपदार्थका ही ग्रहण होता है जिसतरह ब्राह्मणोंको निमंत्रण आदिके समय कहा जाता है-सोमशर्मा आदिका निमंत्रण है वहांपर आदिशब्दसे सोमशर्माके समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ही ग्रहण होता है। यहांपर सोमशर्मा उपलक्षण है क्योंकि जो अपना और अपने समानजातीयका ग्राहक होता है वह उपलक्षण माना जाता है। यहांपर सोमशर्मा अपना और अपने सजातीय ब्राह्मणोंका ग्रहण करनेवाला है इसलिये वह उपलक्षण है और जो ग्रहण किये जांय वे उपलक्ष्य कहे जाते हैं यहांपर सोमशर्मासे भिन्न अन्य ब्राह्मण उपलक्ष्य हैं इसलिये उपलक्ष्य उपलक्षण भावके होनेसे जिसप्रकार यहांपर समानजातीय अन्य ब्राह्मणोंका ग्रहणहै उसीप्रकार 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी उपलक्ष्य उपलक्षण भाव है क्योंकि बहुव्रीहि समासांत एकप्रदेशादि शब्द अन्य पदार्थका ग्राहक है इसलिये यहांपर भी समानजातीय पदार्थका ही ग्रहण होसकता है विजातीय पदार्थका नहीं। प्रदेशका समानजातीय पदार्थ प्रदेशही है इस लिये यहांपर अन्य पदार्थ प्रदेशही ग्रहण किया जासकता है अन्य नहीं। इस रीतिसे 'एक प्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें'यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ ठीक है। अथवा ऊपर से प्रदेश शब्दकी अनुवृत्ति आ रही है इसलिये भी 'एकप्रदेशको आदि लेकर जितने प्रदेश हैं उनमें' यही 'एकप्रदेशादिषु' शब्दका अर्थ न्याय्य है।

'एकप्रदेशादिषु' यहांपर जो समास मानागया है उसका अर्थ समुदाय है इसलिये'एकप्रदेशादिषु' यहांपर यद्यपि एकप्रदेश शब्द उपलक्षणस्वरूप है तो भी उसका ग्रहण है। यदि समासका अर्थ यहांपर समुदाय न माना जाता,तो यहांपर अन्य पदार्थकी प्रधानता रहनेसे एकप्रदेशसे भिन्नही प्रदेशोंमें द्रव्यका अवगाहन सिद्ध होता, गौण होनेसे एक प्रदेशमें अवगाहन न सिद्ध होता। खुलासा तात्पर्य यह है—

बहुव्रीहि समास तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि और अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिके भेदसे दो प्रकारका मानागया है। जहांपर विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण हो वह तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार "लंबकर्णमानय" अर्थात् जिसके लंबे कान हो उस पुरुषको लेआओ, यहांपर लंबे कान सहित पुरुषके आनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका ग्रहण है तथा जहांपर विशेषणयुक्त पदार्थका ग्रहण न हो वह अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है जिस प्रकार 'सागरदृष्टमानय' अर्थात् जिस पुरुषने सागरको देख लिया है उसे लेआओ, यहांपर सागरसहित पुरुषका आना न होनेसे विशेषणविशिष्ट पदार्थका

तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाहः द्वयोरेकत्रोभयत्र च बद्धयोरबद्धयोश्च त्रयाणामेकत्र द्वयोस्त्रिषु च बद्धानामबद्धानां च ॥ एवं संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकसंख्येयासंख्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेऽवस्थानं प्रत्येतव्यम् ॥

तद्यथा*एकस्मिन् आकाशप्रदेशे परमाणोः अवगाहः = जैसे एक आकाशके प्रदेशमें (एक) परमाणुका अवस्थान है।

द्वयोः एकत्र*उभयत्र*च* बद्धयोः अबद्धयोः च* = दो (परमाणु)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) तथा दो प्रदेशोंमें (=उभयत्र) बंधी हुई का तथा (=च) खुलीहुई का (अवगाह) है अर्थात् दो परमाणु बंधीहुईकी जो सूक्ष्मरूपमें परिणमी हैं लोकाकाशके एकप्रदेशमें अवगाह है और दो परमाणु खुली हुईका जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणामी हैं तथा दो परमाणु बंधीका भी जो सूक्ष्मरूपमें नहीं परिणमी हैं लोकाकाशके दो प्रदेशमें अवगाह है।

च*त्रयाणाम् एकत्र*बद्धानाम् = और (=च) तीन (परमाणुओं)का एकप्रदेशमें (=एकत्र) बंधेहुओंका (सूक्ष्मरूपपरवर्तितका)

(त्रयाणाम्) द्वयोः बद्धानाम् च*अबद्धानाम् = (तीन परमाणुओंका) दो प्रदेशोंमें (=द्वयोः) बंधेहुए और (=च) खुलेहुओंका अर्थात् दो परमाणु (सूक्ष्मरूप परिणत) और एक खुलीहुईका या तीनों सूक्ष्मरूप परिणतका (अवगाह) है।

(त्रयाणाम्) त्रिषु अबद्धानाम् = (तीन परमाणुका) तीन प्रदेशोंमें खुले हुओंका (अवस्थान या अवगाह) है

एवं*संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशानाम् स्कन्धानाम् = इस प्रकार संख्यात-असंख्यात अनन्त और अनंतानन्त प्रदेशोंके स्कन्धोंका (क्योंकियहां अनन्तमें अनन्त और अनन्तानन्त दोनो जैसा प्रथम कहाहै आजातेहैं)

एक-संख्येय-असंख्येय-प्रदेशेषु लोकाकाशे = एक, दो, तीन, चार, पांच, छह इत्यादि संख्यात और असंख्यात लोकाकाशप्रदेशोंमें

अवस्थानम् ॥ प्रत्येतव्यम् ॥ = अवगाह अथवा स्थिति प्रतीति करनी चाहिये अर्थात् पुद्गलकी दो तीन चार पांच आदिक संख्यात, असंख्यात, अनन्त तथा अनन्तानन्त परमाणुओंके जो (सूक्ष्मरूपमें परणमीहैं) स्कन्धका अवगाह लोकाकाशके एकप्रदेशमेंभी है। संख्यात-असंख्यात अनन्त तथा अनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके संख्यात प्रदेशोंमेंभी है और असंख्यात अनन्त तथाअनन्तानन्तपरमाणुओंके स्कन्धोंका अवगाह लोकाकाशके असंख्यात प्रदेशोंमें भी है। यहांपर स्मरण रहे कि जितनी खुलीहुई परमाणुहैं उतनेआकाशके

ग्रहण नहीं। 'एकप्रदेशादिषु' यहांपर भी जो बहुव्रीहि समास माना है वह तद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि है इसलिये यहांपर एकप्रदेशसहित अन्य प्रदेशोंमें पुद्गलद्रव्यका अवगाहन माना है। यदि यहांपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि यह समास माना जाता तो एकप्रदेशका ग्रहण नहीं होता फिर एकप्रदेशमें भी किन्हीं किन्हीं पुद्गलोंका अवगाह है यह अर्थ नहीं होसकता।

ननु युक्तं तावदमूर्त्तयोर्धर्माधर्मयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति।मूर्त्तिमतां पुद्गलानां कथमित्यत्रोच्यते–अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते ।एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् ॥ आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्यवसेयम् ॥तदुक्तम्–ओगाढगाढणि चिओ

प्रदेशोंसे अधिक प्रदेशोंमें अवगाहनीय नहीं हो सकती हैं। अधिकसे अधिक उतनेही आकाशके प्रदेशोंमें उनका अवगाह वा स्थिति हो सकती है जितनी उनकी खुलेरूपमें संख्या है। जैसे पचास खुलीहुई परमाणुं हैं तो ये परमाणु पचास ही आकाशके प्रदेशोंको अवगाहवेंगी नकि अधिक प्रदेशोंको

ननु*युक्तम्।तावत्*अमूर्त्तयोः।धर्म-अधर्मयोः। =प्रश्न इतना (=तावत्) ठीक (=युक्त) है कि अमूर्तीक धर्मद्रव्यका और अधर्मद्रव्यका

एकत्र*अविरोधेन।अवरोधः।इति*मूर्तिमताम्। =एकक्षेत्रमें विरोधकरि रहित अवगाह वा अवस्थान(=अवरोध) है। रूपी अथवा मूर्तीक

पुद्गलानाम्।कथम्*इति*अत्र*उच्यते। =पुद्गलोंके कैसे इस प्रकार (परस्पर अविरोधरूप एकक्षेत्रमें अवगाह) यहां कहागया है

अवगाहन-स्वभावत्वात्।च*सूक्ष्मपरिणामात्। =(उत्तर) अवगाहनके स्वभावपणासे तथा(=च)सूक्ष्म परिणमनसे

मूर्तिमताम्।अपि*अवगाहः।न*विरुध्यते। =रूपी(पुद्गल)निकेंभी अवगाह नहीं विरोधाजाताहै अर्थात् मूर्तीकपदार्थोंकी अवगाहन स्वभाव वा शक्तिकरि(=अवकाशदान अथवा स्थानदान देनेकी शक्तिसे)और सूक्ष्म रूप विकारकोप्राप्त होनेसे एक क्षेत्रविषैं अवस्थान वा स्थिति अविरोधरूप है ॥ भावार्थ द्रव्योंके स्वभाव प्रति नियत हैं और वे भिन्नभिन्न हैं इसलिये उनके स्वभावके विषयमें यह आक्षेपही नहीं होसकता कि ऐसा होना चाहिये वा ऐसा न होना चाहिये जैसे अग्नि आदि पदार्थोंका स्वभाव जलानेआदिकाहै वहां पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता है कि इनका स्वभाव जलाने आदिका क्यों है जलने आदिका क्यों नहीं तथा तृण काष्ठादि पदार्थोंका स्वभाव जलनेआदिका क्यों हैं जलानेआदिका क्यों नहीं? क्योंकि जैसा जिसका स्वभाव होगा उसका वैसा ही स्वभाव रहगा वह पलट नहीं जासकता वैसेही यद्यपि पुद्गलमूर्तिमान पदार्थ में तथापि अपनेसमानजातीय पदार्थोंको अवगाहन दान देना उनका स्वभाव है अतः एक आकाशके प्रदेशमेंभी अनन्त रह सकते हैं ॥

एकअपवरके। अनेकदीपप्रकाश-अवस्थान- = एक घरविषैं (=अपवरके) अनेक दीपकोंके उजालोंकी स्थितिके

वत् * = समान(मूर्तीक द्रव्योंके भी एकक्षेत्रविषैं परस्पर अवगाह अविरोधरूपसे होता है)

च*आगम प्रामाण्यात्। तथा अध्यवसेयम्।तदुक्तं। = बहुरि(=च)आगमके प्रमाणपनेसे उसी प्रकार जानना चाहिये। कहाभीहै कि

ओगाढ-गाढ-णिचिओ। (अवगाढ-गाढ-निचयः) =गाढागाढ भरा हुआ है ॥ ('णिचिओ' भी पाठ है) ॥

पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो । सुहुमेहि बादरेहि अणंताणंतेहि विविहेहिं ॥ १ ॥

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

लोकाकाशे इत्यनुवर्तते। तस्यासंख्येयभागीकृतस्यैको भागोऽसंख्येयभाग इत्युच्यते। स आदिर्येषां ते

पुग्गलकाएहि सव्वदो * लोगो (पुद्गलकायैः सर्वतः लोकः) = चारोंओर यह लोक पुद्गलकायोंसे

सुहुमेहि बादरेहि (सूक्ष्मैः बादरैः) = जो (पुद्गलकाय) सूक्ष्मबादर (बादरेहिं बादरेहिं प्राकृतमें तृतीयाके दोनोंरूप हैं

अणंताणंतेहि विविहेहिं (अनन्तानन्तैः विविधैः) = अनन्तानन्त नानाप्रकारसे हैं अर्थात् सबओर यहलोक सूक्ष्म और बादरअनंतानंत नाना प्रकार पुद्गलकायोंकरि गाढागाढ ठसाठस, वा खचाखच भराहुआहै

अथ * जीवानाम् कथम् * अवगाहनम् इति * अत्र * उच्यते = आगे जीवोंका कैसे अवस्थान वा अवगाह है ऐसे यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाताहैकि

सूत्रम्—[1] असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

= (लोकाकाशे) असंख्येयभागादिषु जीवानाम् (अवगाहः) भवति ॥ १५ ॥

सूत्रार्थः—लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु = लोकाकाशके असंख्येयभागादिकोंमें

जीवानाम् अवगाहः भवति ॥ १५ ॥ = जीवोंका अवस्थान है। अर्थात् लोकाकाशके असंख्यातवांभाग और असंख्यातवें भागोंको आदिलेकर लोकपर्यन्त जीवोंकी स्थिति है। भावार्थ यह है कि लोकाकाशके एक असंख्यातवां भागमें एक जीव तिष्ठता है, दो असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है, तीन असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवका अवस्थान है चार असंख्यातवें भागोंमें भी एक जीवकी स्थिति वा अवगाह है औरऐसेही एक जीव का अवगाह पांच आदि संख्यातभागोंमें और असंख्यात भागोंमें समस्त लोकपर्यन्त है; जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोकपूर्ण समुद्घातमें सबलोक एक जीवका अवगाह होता है। नाना जीवका अवगाह तो सर्वलोकमें है ही। कोई प्रदेश लोकाकाशका जीवबिना नहींहै। दोनोंआम्नायोंमें इससूत्रकापाठ और अर्थ एकसाहै।

वृत्त्यनुवादः—लोकाकाशे इति * अनुवर्तते। तस्य = (इस सूत्रमें) लोकाकाशमें ऐसी अनुवृत्ति (बारहमें सूत्रसे) है। तिस (लोकाकाश)के

असंख्येयभागीकृतस्य एकः भागः असंख्येयभागः = असंख्यातभाग करके एक भाग है सो असंख्यातवांभाग है।

इति * उच्यते। सः आदिः येषाम् ते = ऐसा कहाजाता है। सो (असंख्यातवां भाग आदिमें वा प्रथममें जिनकेहै ते

ऽसंख्येयभागादयः। तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः॥ तद्यथा-एकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते। एवंद्वित्रिचतुरादिष्वपि असंख्येयभागेषु आ सर्वलोकादवगाहः प्रत्येतव्यः। नानाजीवानां तु सर्वलोक एव॥ यद्येकस्मिन्नसंख्येयभागे एको जीवोऽवतिष्ठते, कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सशरीरोऽवतिष्ठते ?। लोकाकाशे सूक्ष्मबादरभेदादवस्थानं प्रत्येतव्यम्। बादरास्तावत्सप्रतिघात-शरीराः। सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवैकनिगोदजीवावगाह्येऽपि प्रदेशे साधारणशरीराः

असंख्येय-भाग-आदयः	=असंख्येयभाग आदयः (तद्गुणसंविज्ञानरूप बहुव्रीहिसमासरूपमें) हैं अर्थात् असंख्यातवां भाग सेलेकर लोकपर्यन्त समस्त भाग हैं वे असंख्येयभागआदि हैं॥
तेषु जीवानाम् अवगाहः	=तिन (असंख्येय भाग आदि लोक पर्यन्त) में जीवोंका अवस्थान
वेदितव्यः तद्यथा * एकस्मिन् असंख्येयभागे एकः	=जानना चाहिये। जैसे एक असंख्यातवें भागमें एक
जीवः अवतिष्ठते। एवम् * द्वि-त्रि-चतुर्-आदिषु	=जीव तिष्ठता है। इस प्रकार दो-तीन-चार आदिक
असंख्येयभागेषु अपि * आ * सर्वलोकात् अवगाहः	=असंख्यात भागोंमें भी समस्त लोक पर्यन्त (एक जीव)का अवगाह
प्रत्येतव्यः॥	=प्रतीति करना चाहिये अथवा जानना चाहिये। (असंख्यात के असंख्यात भेद हैं) तिससे लोकाकाशके असंख्यातवां भागके भी प्रदेश असंख्यातही जानना।
नानाजीवानाम् तु * सर्वलोके एव * यदि * एकस्मिन्	=नानाजीवों का तो (अवगाह) सर्वलोकमें ही है (प्रश्न) जो एक
असंख्येयभागे एकः जीवः अवतिष्ठते	=असंख्यातवांभाग में एक जीव तिष्ठता है तौ
कथम् * द्रव्यप्रमाणे- अनन्तानन्तः जीवराशिः	=कैसे द्रव्यमर्यादासे अनन्तानन्त जीवराशि है
सशरीर अवतिष्ठते। लोकाकाशे सूक्ष्मबादर-	=सो शरीर सहित (लोकमें) तिष्ठती हैं (उत्तर) लोकाकाशमें सूक्ष्मबादरके
भेदात् अवस्थानम् प्रत्येतव्यम्। बादराः तावत् *	=भेदसे (जीवोंका अवस्थान वा अवगाह) जानना चाहिये। बादर (जीव) तो (=तावत्)
सप्रतिघात-सशरीराः	=सप्रतिघात शरीर हैं अर्थात् बादर शरीर परस्पर एक दूसरेसे रुके हैं और रोकें भी हैं
तु * सूक्ष्माः सशरीराः अपि * सूक्ष्मभावात् एव *	=परन्तु सूक्ष्मजीव शरीर सहित हैं तौ भी सूक्ष्मपना से ही (=एव)
एक-निगोद जीव-अवगाह्ये अपि * प्रदेशे	=एक निगोद जीवकरि अवगाहने योग्य क्षेत्रमें (नकि परमाणु से रोके हुये प्रदेशमें)
साधारणशरीराः	=साधारण शरीर अर्थात् वे जीव जिनके आहार श्वासोच्छ्वास आयु और काय ये साधारण समान वा एक हों जैसे कंद मूलादिक

अनन्तानन्ता वसन्ति ॥ न ते परस्परेण बादरैश्च व्याहन्यन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः ॥

अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेशो एकजीव इत्युक्तं, तस्य कथं लोकस्यासंख्येयभागादिषु वृत्तिः । ननु सर्वलोकव्याप्त्यैव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

॥ प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अनन्तानन्ताः वसन्ति ; न तेः परस्परेण	=अनन्तानन्त रहते हैं । न वे (सूक्ष्म सशरीर जीव) परस्परकरि
न बादरैः व्याहन्यन्ते । इति न अस्ति अवगाह-	=तथा बादर(जीवों)से व्याघातेजाते हैं । ऐसे नहीं है अवगाहनामें
विरोधः	=विरोध अर्थात् एकही स्थानमेंबहुत जीवोंका अवगाह,विना परस्पर रोकटोकके होता है
अत्र आह लोकाकाश-तुल्यप्रदेशः एकजीवे	=यहां पूछता है कि लोकाकाशके बराबर प्रदेश एक जीवमें हैं
इति उक्तम् । तस्य कथम् लोकस्य असंख्येय-	=ऐसा कहाजाता है । तिस (जीव)का कैसे लोकके असंख्यातवां
भागादिषु वृत्तिः ॥ ; ननु सर्वलोक-	=भागादिकोंमें स्थिति है (=वृत्ति) ॥ सचमुच (=ननु) (वह तो) सब लोक
व्याप्त्या एव भवितव्यम् ॥ इति अत्र उच्यते	=व्याप्तिकरि ही होना चाहिये । ऐसे यहां (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्-प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् = प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् (लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः भवति) ॥ १६

सूत्रार्थः-प्रदेश-संहारविसर्पाभ्याम् प्रदीपवत्	=प्रदेशोंके संकोच और विस्तार होनेसे दीपकके प्रकाशके सदृश
लोकाकाशे ॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम् अवगाहः	=लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें जीवोंका अवगाह वा स्थिति है अर्थात्

(१) परस्पर—यह शब्द त्रिलिंगी है । (२) लोक—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग है । (३) आकाश—यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंगमें आता है । (४) श्वेताम्बर आम्नायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र"में 'विसर्पाभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्गाभ्यां' पाठ है और विसर्ग शब्दका अर्थ विस्तार किया है (देखो पृष्ठ १२३) शेष पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें एकसा है अर्थ भी एक है ॥ हमारे यहां किसी किसी पुस्तकमें 'विसर्पाभ्यां' शब्दके स्थानमें 'विसर्पणाभ्यां' पाठ है ॥ दोनोंही पाठ "अघोरहाभ्यां वा" ८-४-४६वां सूत्रसे शुद्ध हैं ॥ पंद्रहवां सूत्र अनुवृत्ति सहित सबका सब इस (सूत्र)में अध्याहार कियागया है ॥

अमूर्तस्वभावस्यात्मनोऽनादिबन्धंप्रत्येकत्वात् कथञ्चिन्मूर्ततां बिभ्रतः कार्मणशरीरवशान्महदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसंहरणविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणतायां सत्यां असंख्येय-भागादिषु वृत्तिरुपपद्यते, प्रदीपवत् ॥ यथा निरावरणव्योमप्रदेशे

यद्यपि एकजीवके प्रदेशलोकाकाशके समान हैं सो वह जीव सर्व लोकाकाशमें व्याप्तहोना चाहिये तथापि वे प्रदेशदीपकके प्रकाश के समान संकोच विस्ताररूप होजाते हैं और जैसा आधार(आश्रय-शरीर) जीव पाता है वैसाही उस (जीव)के प्रदेश संकोच विस्ताररूप होकर लोकाकाशके असंख्यात भागादिकमें उस जीव)का अवगाह होताहै। परन्तु केवलि समुद्घातकी अवस्थामें आत्माके मध्यके आठप्रदेश मेरु मंदिरके नीचे चित्रा पृथ्वीका वज्रमयी पटलके मध्यके आठप्रदेशोंमें निश्चल तिष्ठते हैं और केवलि भगवान्के अन्यप्रदेश ऊर्ध्व अधः तिर्यक्(दायें-बायें-इधर-उधर)सर्वत्र सर्वलोकमें पूर्णतया व्याप्तहोजाते हैं॥

वृत्त्यनुवादः-अमूर्त-स्वभावस्य[६] आत्मनः[६] अनादिबन्धम्[२] =मूर्ति शून्य स्वभाववाले आत्माके(कर्मके) अनादिबंध

प्रति*एकत्वात्[५] कथञ्चित्*मूर्तताम्[२] =प्रति एकता रूप होनेसे वा एक क्षेत्ररूप अवगाह होनेसे कथञ्चित् मूर्तिपनाको

बिभ्रतः[६] कार्मणशरीर वशात्[५] महत्[२] च*अणु[२] =धारण करनेवाले(=बिभ्रतः)कार्मण शरीरके वशसे बड़ा और छोटा

शरीरं[२] अधितिष्ठतः[६] तद्-वशात्[५] प्रदेश- =शरीरको ग्रहण करनेवाले और उस(महत् वा अणु शरीर)के वशसे प्रदेशोंके

संहरण-विसर्पण-स्वभावस्य[६] तावत्* =संकोचन और फैलाव स्वरूपवाले (ऐसी आत्माके उतने(देहके)

प्रमाणतायाम्[७] सत्याम्[७] असंख्येयभागादिषु[७] =प्रमाण होते(=प्रमाणतायां)संते(=सत्यां)(लोकाकाशके)असंख्यातवां भागादिकमें

प्रदीपवत्*वृत्तिः[१] उपपद्यते। =दीपकके प्रकाश सदृश अवगाह (=वृत्ति) होता है अर्थात् यद्यपि स्वभावसे आत्मा अमूर्तीक है तौभी कर्मके अनादि सम्बन्धसे एक क्षेत्ररूप अवगाह होने से कथंचित् मूर्तिमान होजाताहै और कार्माण शरीरके वशसे छोटा अथवा बड़ा शरीर पाता है उस प्राप्त कियेहुये शरीरके अनुसार प्रदेशोंको संकोच अथवा विस्ताररूपमें दीपकके प्रकाशवत् लोकाकाशके असंख्यातवां भागादिकमें उस जीवका अवगाह होता है॥

यथा*निरावरण-व्योम-प्रदेशे[७] =जैसे खुले हुये आकाश क्षेत्रमें

अनवधृतप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शरावमानिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति ॥ अत्राह धर्मादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सङ्करे सति, एकत्वं प्राप्नोतीति ॥ तन्न । परस्परमत्यन्तसँश्लेषे सत्यपि स्वभावं न जहति ॥ उक्तं च । अण्णोण्णं पविसंता दिंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

अनवधृत-प्रकाश-परिमाणस्य प्रदीपस्य शराव-मानिका- =अमर्यादित प्रकाश परिमाणवाले दीपकका सकोरा(=शराव)माणिका वा पतीली
अपवरक-आदि-आवरण-वशात् तत्- =घरादिकमें (=अपवरक)आवरणके वशसे उन(शराव-मानिका-अपवरकादि)के
परिमाणता इति * =बरोवरि(=परिमाण)होता है अर्थात् दीपक जब खुले स्थानमें रक्खा जाता है तब उसका प्रकाश मर्यादारहित फैलता है और वही दीपक किसी भाजन वा घर आदिकमें धराजाता है तब उसका प्रकाशभी उस भाजनादिकके बराबरही परिमित वा सीमामें होजाता है
अत्र * आह। धर्मादीनाम् अन्योन्य-प्रदेश- =यहां पूछता है कि धर्मादि द्रव्योंके परस्पर प्रदेशोंके
अनुप्रवेशात् संकरे सति, एकत्वम् प्राप्नोति। इति * =मिलरहनेसे एकमेक (=संकर) होजानेपर (दोनोंकी)एकता प्राप्त होती है
तत् न *। परस्परम् अत्यन्तसँश्लेषे सति =(उत्तर)वह(एकता)नहीं(होती) है। परस्पर अत्यन्त मिलाव होनेपर
अपि * स्वभावम् न *। [1]जहति। उक्तम् च * =भी (द्रव्यें अपने अपने)स्वभावको नहीं छोड़ती हैं। कहागया भी है कि
अण्णोण्णं पविसंता (अन्योन्यम् प्रविशन्तः) =(ये छह द्रव्य) परस्पर प्रवेश करते हुये
[2] दिंता ओगासं अण्णमण्णस्स =आपसका (=आपसमें)अवकाश देते हैं
ददन्ति (वा ददति) अवकाशम् अन्यमन्यस्य।

(१) हा—तीसरे जुहोत्यादिगणका धातु है जिसका अर्थ परस्मैपदमें त्यागना वा छोड़ना है और आत्मनेपदमें जानेके अर्थमें आता है। यहांपर छोड़नेके अर्थ परस्मैपदमें लाये हैं। तीसरे गणका धातु जिसमें एक स्वर हो तो उसको दुहरादेते हैं अर्थात् यदि स्वर आदिमें हो तो स्वरको दुहरादेते हैं जैसे इख् धातुसे इइख् होगया यदि आदिमें व्यंजन हो (जैसाकि यहां है) तो आदिके व्यंजनको उसके पश्चात्के स्वरके साथ दुहराते हैं जैसे हा धातुका 'हाहा' रूप होगया; दुहरे रूप कियेहुये स्वरको लघु करदेते हैं (देखो अष्टाध्यायी७-४-५९) और 'ह'को 'ज'से पलटदेते हैं (देखोअष्टाध्यायी७-४-६२सूत्र) तब 'जहा' ऐसा रूप हुआ ॥ इस 'जहा' के दीर्घ 'आ' को वर्तमानकाल (लट्)के अनद्यतन भूतकाल (=लङ्)के, लोट कालके और विधिलिङ् कालके उन ङित् संज्ञक प्रत्ययोंके साथ गिरा देते हैं जिनके आदिमें स्वर होता है 'जहा' से 'जह्' रूप बना और अति (बहुवचनका प्रत्यय जोड़कर 'जहति' रूप बना जिसका अर्थ 'छोड़ते हैं' त्यागते हैं' हुआ। और पित् संज्ञक प्रत्यय जैसे मि-सि-ति इत्यादिके साथ 'जहा' रूप रहता है जैसे जहामि=मैं छोड़ता हूं जहासि तू छोड़ता है जहाति=वह छोड़ता है ॥ (२) 'ददत्' नपुंसकलिंग, प्रथमा और द्वितीया विभक्ति बहुवचनके 'ददन्ति' और ददति दो रूप हैं और पुंल्लिंगमें दोनों विभक्तियोंका 'ददतः' है यहां प्रथमा विभक्ति नपुंसकलिंगमें मेरी समझमें प्रयोग किया गया है ॥

मेलंता विय णिच्चं सग सब्भावं ण जहंति ॥ १ ॥ यद्येवं धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह–

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

मेलंता॥ वि * य * णिच्चं *(मिलन्तः॥ अपि * च * नित्यम् *)	=और(=य)नित्य =णिच्चं=सदा)मिलते हुये होनेपर भी(=वि=अपि)
सग * सब्भावं॥ ण * जहंति(स्व * स्वभावं॥ न * जहति ।)॥१॥	=अपने (अपने) स्वभावको नहीं छोड़ते हैं(=जहति–देखो टिप्पणी(१) पृष्ठ ४६)
यदि * एवम् *	=जो ऐसे हैं अर्थात् यदि ये छहों द्रव्यें अपने अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं तो
धर्मादीनाम्॥ स्वभावभेदः॥ उच्यताम् । इति * अतः * आह ।	=धर्मादिक (द्रव्यों)के स्वभावका भेद कहाजाना चाहिये इसलिये(उत्तरसूत्रमें)कहते हैं कि

[1]सूत्रम्–गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥ १७ ॥

= ([2]जीवानाम् पुद्गलानाम् च)[3]गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः भवति ॥ १७ ॥

सूत्रार्थः—जीवानाम्॥ पुद्गलानाम्॥ च * गति-स्थिति-उपग्रहौ॥	=जीवोंके और पुद्गलोंके गमन और स्थितिका कारण अथवा कार्य(=उपग्रह) (बाह्य)प्रेरक बलाधीन वा उदासीनरूपसे परन्तु अविनाभावी अर्थात् जिस विना गमन और स्थिति न होसके ऐसा
धर्म-अधर्मयोः॥ उपकारः॥ भवति ।	=(क्रमसे)धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सहायता सहकारता वा उपकार होता है अर्थात् गमनमें परिणमन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको

(१) श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "उपग्रहो" के स्थानमें "उपग्रहा" ऐसा पाठ है और 'उपग्रहो' तीन स्थानमें आनेसे प्रगट है कि सबके यहांका पाठ यही है छापेकी अशुद्धि नहीं है अर्थ और शेषपाठ दोनोंसम्प्रदायोंमें एक है "धर्माधर्मयोः" भी "अचोरद्वाभ्यां द्वेता" सूत्रसे शुद्ध है॥

(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसे और पुद्गलानां शब्द की चौदहवां सूत्रसे (अनुवृत्ति) लीगई है ॥

(३) उपग्रह और उपकार दोनों शब्द कर्मसाधन, कर्मप्रधान अथवा कर्मणि प्रयोग में हैं (देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकमें, वार्तिक १०, ११, १२, १३, पं० जयचन्द्रजी की वचनिका पृष्ठ४२६)। कर्मसाधन वह है जिसकी क्रियाका कर्ता जान नहीं पड़ता हो, तात्पर्य यह है कि अपनी अवस्थामें विद्यमान नहीं है और जो होभी तो करणकी अवस्थामें हो और जिसमें कर्मके जानलियेजानेकी आवश्यकता प्रधानहो और वही कर्मकर्ताका प्रतिनिधि गिनाजावे जैसे फल खाया जाता है यहां कर्ता अपनी स्थितिमें विद्यमान नहीं है और जैसे लड़केसे रोटी खाईजाती है. रोटी कर्मकर्ताके स्थानमें है और लड़का कर्ता की अवस्थामें न होकर करणकी अवस्थामें है, इसीप्रकार गमन (करने)का उपकार कियाजाता है धर्मद्रव्यसे और स्थितिका उपकार किया जाता है अधर्मद्रव्यसे ॥ अपकारका अर्थ उपकारसे विरुद्ध है अपकार शब्दमें 'अप' उपसर्गका अर्थ बुराईका है और उपकार तथा उपग्रह शब्दोंमें 'उप' उपसर्गका

इसी प्रकारसे धर्मद्रव्य बाह्य और अप्रेरकनिमित्त है जैसे जलबाह्यरूप और उदासीनतासे मछलीके गमनकरनेमें सहकारी वा सहायक है और स्थितिमें परिवर्तन होनेवाले जीव और पुद्गलोंको अधर्मद्रव्य उसी प्रकार बाह्य और बलाधान(अविनाभावी) कारण है जैसे छाया पथिक जनोंके ठहरानेमें सहायक वा सहकारी है,न तो जल मछलीको प्रेरणा करता है कि वह गमन करै और न छाया पथिक जनको स्वयं ठहरनेकी प्रेरणा करती है यदि वे गमनस्थिति करैं तो उनको उदासीनतासे सहायता प्रदान करती हैं,परन्तु स्मरण रहै कि उक्त बाह्य और अप्रेरक कारण गमन और स्थितिके लिये अविनाभावी है कि जिसके बिना गमन और स्थिति नहीं होसकते हैं ॥

अर्थ भलाई वा सहायताका है जैसे उपकुर्वन्ति=उपकार अथवा सहायता करते हैं (देखो सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७) इसलिये उपकार शब्दका अर्थ यहां भलाई सहायता कीजाय ऐसा है। इस अर्थका समर्थन सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७के 'उपक्रियत इत्युपकार:'=उपक्रियते इति उपकार:=उपकार किया जाता है वा सहायता कीजाती है, इस वाक्यसे होता है ॥ उपग्रह शब्दका अर्थ भलाई अथवा सहायता ग्रही(ग्रहण की)जाती है ऐसा है जैसे "उपगृह्यत इत्युपग्रह:"=उपगृह्यते इति उपग्रह: अर्थात् भलाई वा सहायता ग्रहण कीजाती है (देखो सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २७७) ॥ दोनों उपग्रह और उपकार शब्दोंके ये व्युत्पत्त्यर्थ हैं, अर्थात् ये अर्थ व्याकरणकी रीतिसे निकलते हैं ॥

उपकार =फैलाये हुये पुष्पादि()नौकरी, सेवा()साजसंभाल()अलंकार, भूषण, (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ७६ और बैद्य संस्कृत आङ्गलकोष पृष्ठ १३५)
उपग्रह =राहु, धूम, केतु आदि ग्रह()कारावन्धन()कारावन्धनमें डालना()बंधुआ-कारागाराध्य()जोड़ना-लगाना-संयोग(उक्तकोषोंके पृ०७६,१३६में क्रमसे है)इत्यादि और भी अर्थोंमें आते हैं उन समस्तको छोड़कर अब शास्त्रानुकूल तीन बात सिद्ध करनी हैं(क)यह कि उपकार तो सामान्यवचन है अर उपग्रह विशेष वचन है"अर्थात् उपग्रहोंका समुदाय उपकार है जैसे कोई व्यक्ति किसीको पढ़ावै, पोषण करै,उसका विवाह करै-उसे व्यापारके लिये धन दे तो अवसर आने पर कहसकता है कि मैंने तुम्हारे साथ पाठन उपग्रह, पोषणकरणउपग्रह, विवाहकरणउपग्रह, धान्यउपग्रह, धनउपग्रह, इतना उपकार किया तिसपर भी तुम मेरे प्रति कृतघ्नता प्रगट करते हो। उपग्रहका अर्थ अनुग्रहभी है। (ख)यह कि उपग्रह और उपकार शब्द()सहायता-सहारा()अनुग्रह-अनुकूलता-भलाई()कारण निमित्त हेतु-प्रत्यय अर्थोंमें लाये जाते हैं ॥ (ग) यह कि जब एकही बातके सम्बन्धमें उपग्रह किया जाय तब और अन्य अवसरोंपर भी उपकार और उपग्रह शब्द अभेदरूपसे एक दूसरेके अर्थमें जहां जैसी आवश्यकता हो काममें लायेजाते हैं ॥

(क) (१) जो इस प्रकार है अर्थात् गतिका उपग्रह है और स्थितिका भी उपग्रह है तो दो(वचन)का निरूपण वा कथन उपकार शब्दको प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना योग्य था तब सूत्रका अन्तिम भाग ऐसा होता "धर्माधर्मयोरुपकारौ" (उत्तर) यह दूषण नहीं है क्योंकि सामान्यकरि कहा हुआ गृहीत संख्यावाला (उपकार शब्द)अन्य शब्द (उपग्रहों)के साथ संबन्ध होनेपर भी प्रथम गृहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है (देखो संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २७७) ॥(२) "न चैवमुपकारशब्दस्य द्विवचनप्रसंगः सामान्योपक्रमादेकवचनोपपत्तेः=च एवम् उपकार-शब्दस्य द्विवचनप्रसंगः न सामान्यउपक्रमात् एक वचन उपपत्तेः और इस प्रकार उपकार शब्दभी दो वचनमें स्थिति होवे (स्थिति होना चाहिये) ॥ (उत्तर)नहीं(होना चाहिये) क्योंकि सामान्यमें आरम्भ करनेसे वा सामान्य वशसे एक वचन की प्राप्ति है ॥(३)"तत्किमिदानीमुपग्रहवचनं? न कर्तव्यं। कर्तव्यमेवोपकारशब्देन कार्यसामान्यस्याभिधानात् गतिस्थित्युपग्रहाविति कार्यविशेषकथनात्। श्लोकवार्तिकपृ०४१०=तो अब(=इदानीं)उपग्रहवचन (सूत्रमें) क्यों है, नहीं लाना चाहिये (उत्तर) (उपग्रह शब्द सूत्रमें)लानाही चाहिये क्योंकि उपकार शब्दकरि सामान्य कार्यनिरूपण कियागया है(और) गति उपग्रह,स्थिति उपग्रहसे, विशेष कार्यका कथन होता है अर्थात् उपकार सामान्यवचन है और उपग्रह विशेष वचन है ॥(४) (श्लोक) "सुखादुप-ग्रहाश्चोप-कारो जीवविपाकिनाम्"=सुखादि उपग्रहाः च उपकारः जीवविपाकिनाम् ॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४१२ और सुखदुःख,जीवित, मरण उपग्रह है

सो जीव विपाकी प्रकृतियोंका उपकार है" अर्थात् सुख उपग्रह, दुःख उपग्रह, जीवित उपग्रह, मरण उपग्रह यहां उपग्रह विशेष वचन है) पुद्गलोंका जीवोंको उपकार है (यहां उपकार सामान्य वचन है)॥ (५) कालस्योपग्रहाः प्रोक्ता येपुनर्वर्तनादयः। स्यात्त एवोपकारो तस् तस्यानुमितिरिष्यते ॥

=पुनिः ये वर्तनादयः कालस्य उपग्रहाः प्रोक्ताः स्यात् ते एव उपकारः अतः तस्य अनुमितिः इष्यते (१८वां श्लोकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृष्ठ४१४)

=पुनि जे वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व कालद्रव्यकेउपग्रह कहेगयेहैं। वेही उपकारहैं इसलियेउस(कालद्रव्य)के अस्तित्व)कानिर्णय होजाताहै

(ख)(१) सहायता-सहाराके अर्थमें:-जैसे आकाशस्य उपकारःअवगाहः=आकाशद्रव्यकी सहायता वा सहारा स्थानदान देनाहै सर्वार्थसिद्धिवृत्तिपृ०२०६

भृत्यानाम् उपकारे वर्तते =सेवकोंको(धनादिसे स्वामी)सहायता(करने)में वा सहारा देनेमें प्रवर्तताहै पृ०२८६

बाह्य उपग्रहात् विना =बाहिरकी सहायता अथवा सहारा बिना ॥ सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृष्ठ २८७

स्व-उपग्रह-प्रदर्शनअर्थम्-इदम्-पुद्गलानाम् पुद्गलकृत उपकार इति=अपने लिये सहायता दिखावनेकेलियेकि पुद्गलोंकापुद्गलकृत उपकारहै उपग्रहलायेहैं

परस्परस्य-उपग्रहः =आपसकी सहायता वा आपसमें एकदूसरेका सहारा [(२१वां सूत्रमें)कहतेहैं

(ग) अनुग्रह-अनुकूलता-भलाईकेअर्थमें:-जैसे जीवकृत-उपकारप्रदर्शनअर्थम्आह=जीवकाकियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह-भलाईवाअनुकूलता दिखानेकेलिये

किम् एतावान् एव पुद्गलकृत उपकारः=क्या इतनाही पुद्गलका कियाहुआ अनुग्रह है(सर्वार्थ० पृ० २८४)

परस्परस्य-उपग्रहः =आपसकीभलाई वा अनुग्रह (सर्वार्थ० पृ० २८६)

उपग्रहः =अनुग्रहहै(देखो तत्त्वार्थराजवार्तिकपृ०२१०,वार्तिक३,श्लो०वा०पृ०४१०)

(३) कारण-निमित्त-हेतु-प्रत्ययके अर्थमें–जैसे जीवानां सुख-दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाःच पुद्गलानां उपकारः (सूत्र २०)

=जीवोंके (ऊपर)सुखका कारण-दुखका निमित्त-जीवनका हेतु-मरणका प्रत्ययभी पुद्गलकृत सहायता है (संस्कृतसर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० २८४)

(ग) उपग्रह और उपकार एकही अर्थमें जैसे शिष्याणाम् अनुग्रहे वर्तते=शिष्योंके उपकारमें(=अनुग्रहे, आचार्य) प्रवर्तता है(सर्वार्थसिद्धि पृ०२८६)

आचार्याणाम् उपकारे वर्तते=(शिष्य)आचार्योंके उपकारमें प्रवर्तते हैं (सर्वार्थसिद्धि पृ० २८६)

() "उपग्रह कहिये उपकार वर्णे हैं" जय०वच०पृ०४३६ ()"शरीर,वाक्,मन,तथा प्राण,अपान ये पुद्गलोंकाजीवोंके ऊपर उपग्रह है

"()विष-शस्त्र-अग्नि-आदानि मरणस्य अपवर्तनं चायुष्कस्य" उपकारः=तथा विष,शस्त्र,और अग्निआदि मरणके अर्थात्आयुके अपवर्तन होनेके उपग्रह है'यहां उपकार शब्दका अनुवाद उपग्रह किया है। देखो सभाष्य०पृ०१२६)

()उपग्रहो निमित्त-अपेक्षा-कारणं-हेतुरित्यनर्थान्तरम्।' =उपग्रह निमित्त,अपेक्षा,कारण,ये सब समानार्थकहैं (देखो सभाष्य० पृ०१२५)

और उपकारका अर्थभी निमित्त, कारण, वचनिका और अर्थप्रकाशिकामें लिखा है—"कि जूकार्यकू निमित्त होय ताकूं उपकार कहिये हैं" वचनिका पृष्ठ ४३४ (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६ सूत्र १६।

()हमारे पास एक कोष बहुत प्राचीन और जीर्ण है जिसके ऊपरकेपृष्ठ और अन्य सरनामा भी नहीं है जिसके पृ०२६में पंद्रहवां शब्द उपकारका अर्थ कृपा,सहायता लिखा है और इकीसवें शब्द उपग्रहका अर्थ दया सहायता (बंधुआ भी लिखा है जिसको छोड़देते हैं। लिखा है।

() तेन शरीरादि परिणामैरात्मनां पुद्गलाः उपग्रहीतार इत्युक्तं भवति=तेन शरीरादि-परिणामैः आत्मनां पुद्गलाः उपगृहीतारःइति उक्तं भवति (अर्थ)ताकरणकरि शरीरादि परिणामकरि आत्माका उपकार करने वारे पुद्गल हैं ऐसैं कहनौं होयहै" उपगृहीतृ शब्द है जिसका प्रथमा विभक्ति बहुवचन उपगृहीतारः बनता है जिसका अर्थ उपग्रह करनेवाले होता है पं०पन्नालालजी दूनीवालोंने इस तत्त्वार्थराजवार्तिककी इकतालीसवांवार्तिकमें आयेहुए इस शब्दका अनुवाद "उपकार करनेवाले" ऐसा किया है अर्थात् उपगृहीतृ=उपकर्तृ

देशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीता स्थितिः । उपगृह्यत इत्युपग्रहः । गतिश्च स्थितिश्च गति-स्थिती । गतिस्थिती एव उपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहौ ॥ [१]धर्माधर्मयोरिति कर्तृनिर्देशः ॥

वृत्त्यनुवादः—देशान्तर-प्राप्ति-हेतुः गतिः ॥ =(द्रव्यका एक क्षेत्रसे)दूसरे स्थानमें प्राप्तिका कारण है सो गति अथवा गमन है
तद्-विपरीता स्थितिः ॥ =उस(गति)से उलटा (अर्थात् गमन क्रियासे रुकना वा थंबना)सो स्थिति है
उपगृह्यते इति*उपग्रहः ; गतिः च स्थितिः च* =सहायता ग्रहण कीजाती है ऐसा उपग्रह है और(=च)गति तथा(=च)स्थिति है
गति-स्थिती ; गति-स्थिती एव*उपग्रहौ =सो गतिस्थिती(इस द्वंद्वसमासरूपमें)है । गति ही उपग्रह और ठहराव ही उपग्रह
गतिस्थिति-उपग्रहौ ॥ =वे गति-स्थिति-उपग्रहौ(इस द्वंद्वसमासरूपमें)हैं अर्थात् गति और स्थितिही उपग्रह हैं।
(१)धर्म-अधर्मयोः इति*कर्तृ-निर्देशः =(इस सूत्रमें)धर्म-अधर्मयोः ऐसा (वाक्य)कर्ताके अर्थ है अर्थात् धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य उपकारके करनेवाले हैं भावार्थ इन धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके ऊपर उपकार नहीं है वरन् जीव पुद्गलोंका गमनका उपकार करनेवाली अप्रेरकरूपसे धर्मद्रव्य है और जीव पुद्गलोंको स्थितिमें उदासीनरूपसे उपकार करनेवाली अधर्मद्रव्य है ।

() यस्य अर्थस्य लिंगं उक्ताः वर्तनादयः उपकाराः सः कालः इति अनुमीयते(राजवार्तिक २७७) =जिस द्रव्यका (अर्थस्य) लक्षण (=लिंग) कहेहुये वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व उपकार हैं सो काल है ऐसा अनुमान कियाजाता है ॥ यहांपर सूत्रमें 'कालस्य' शब्दके पश्चात् 'उपकारः' अनुवर्तना है और उस कालका जीव पुद्गलोंके साथ वर्तना उपग्रह, परिणाम उपग्रह, क्रिया उपग्रह, परत्वउपग्रह, अपरत्व उपग्रह इतना उपकार है वार्तिककार इन पांचों उपग्रहोंके लिये "उपकाराः"ऐसा शब्द बहुवचनमें लाये हैं ॥

() जीवपुद्गलानां गतिउपग्रहे कर्तव्ये साधारण-आश्रयः धर्मास्तिकायः ="गमन करने जे जीव पुद्गलद्रव्य तिनके गमनका उपकार विषैं साधारण =आश्रय धर्मद्रव्य है" जय० धव० ४२६ 'उपग्रहे'का अनुवाद 'उपकार विषैं' ऐसा किया है

(१) इस सूत्रमें 'धर्माधर्मयोः' वाक्यसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कर्ता माना है । (प्रश्न) धर्म अधर्मको कर्ता माननेमें यहां प्रथमा विभक्ति होना चाहिये (उत्तर) कर्ता कारकमें षष्ठी विभक्तिका भी विधान मानागया है अतः'धर्माधर्मयोः' षष्ठी विभक्ति द्विवचन पदके रहते भी धर्म अधर्मका कर्ता होना निर्बाध है (प्रश्न) किसी न किसी क्रियाके सम्बन्धसे कर्ताका व्यवहार होता है, धर्म अधर्मके साथ कौनसी क्रिया है जो इन (धर्म-अधर्म)को कर्ता मान लिया जावे ॥ (उत्तर) सूत्रमें उपकार शब्दका ग्रहण है इसलिये 'उपकरोति'अर्थात् उपकार स्वरूप क्रियाके संबन्धसे धर्म और अधर्मको कर्ता माना गया है ॥ सूत्रमें'उपकार'शब्द भाव साधन है 'उपकरणं' उपकारः यह भावसाधन उपकार शब्दका विग्रह(=समासके अर्थको प्रगट करनेवाला वाक्य) अथवा व्युत्पत्ति(=व्याकरणकी रीतिसे शब्दकीसिद्धि) है (प्रश्न)यदि'उपकरणं उपकारः'ऐसे उपकारशब्दको भावसाधन माना जायगा तो गति और स्थिति स्वरूप उपग्रह धर्म और अधर्म द्रव्योंका उपकार है । इस रूपसे जो 'गतिस्थित्युपग्रहौ' इसके साथ उपकार शब्दका सामानाधिकरण्य है वह न बन सकेगा क्योंकि क्रिया तो कर्ता में रहती है इसलिये यहां उपकाररूप क्रिया तो धर्म और अधर्मरूप कर्ताओंमें रहैगी तथा उपगृह्यमाण अर्थात्

धर्म और अधर्मके द्वारा जिनका उपकार कियाजाता है ऐसी गति और स्थिति जीव और पुद्गलोंमें रहैंगी अर्थात् उपकारशब्दको भावसाधन माननेपर उसका आधार तो धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य पड़ेगा और कर्म साधन उपग्रहका आधार जीव और पुद्गल पड़ेंगे इसलिये उपकार और उपग्रह दोनोंकी भिन्न भिन्न पदार्थोंमें वृत्तिरहनेमें उन दोनोंका सामानाधिकरण्य नहीं होसकता, इसलिये उपकार शब्दकी भावसाधन व्युत्पत्ति तो बन नहीं सकती। यदि कहा जायगा कि 'उपक्रियते इत्युपकारः' इस प्रकार उपकार शब्द कर्म साधन है इसलिये उपर्युक्त दोष नहीं होसकता ? सो भी ठीक नहीं क्योंकि उपकार शब्द और उपग्रह शब्द दोनोंकी कर्म साधन व्युत्पत्तिके मानने पर दोनोंका सामानाधिकरण्य अर्थात् एक अधिकरण तो हो सकता है परन्तु यह नियम है कि जिनका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध रहता है उनके एकवचन द्विवचन आदि वचन भी समान रहते हैं। यदि उपग्रह उपकार दोनोंका सामानाधिकरण्य सम्बन्ध मानाजायगा तो जिस प्रकार द्विवचनांत उपग्रह पदका उल्लेख कियागया है उसी प्रकार द्विवचनांत उपकार शब्दका भी उल्लेख करना चाहिये परन्तु सूत्रमें एकवचनांत उपकार शब्दकाही उल्लेख कियागया है इसलिये उपकार शब्दको कर्मसाधनभी नहीं मानाजासक्ता इस रीतिसे उपकार शब्दकी भावसाधन और कर्म साधन दोनों प्रकारकी व्युत्पत्तियें बाधित हैं ? (उत्तर) यहांपर उपकार शब्दका सामान्यरूपसे ग्रहण कियागया है इसलिये उसके एकवचनांत ग्रहण करलेपर भी कोई दोष नहीं आता है अर्थात् 'साधोः कार्यं तपःश्रुते' वाक्यमें तप करना शास्त्र अध्ययन करना ये दो कार्य साधुके हैं। यहां तप और श्रुतहीको कार्य माना है इसलिये आपसमें उनका सामानाधिकरण्य संबन्ध है क्योंकि तपश्रुतरूप कार्यका आधार एक है परन्तु कार्य शब्दका एकवचनमें उल्लेख किया गया है और 'तपःश्रुते' शब्दका द्विवचनमें ग्रहण है इसलिये यहांपर भी यह शंका उठती है कि जब आपसमें यहांपर सामानाधिकरण्य संबन्ध है तब जिस प्रकार 'तपःश्रुते' शब्द द्विवचनांत रूपसे कहागया है उसी प्रकार कार्य शब्दभी द्विवचनांतरूपसेही कहना चाहिये, एकवचनांत कार्यका उल्लेख यहां प्रसंगरहित है। उसका समाधान वहां यह दियागया है कि कार्य शब्दका प्रयोग उपर्युक्त वाक्यमें सामान्यरूपसे किया गया है और यह नियम है कि जिस पदका प्रयोग सामान्यरूपसे किया जाता है और उसका उस समय जो एकवचन, द्विवचन आदि रहता है वही तदवस्थ रहता है, पश्चात् यदि उस पदके विशेषण स्वरूपही तीन आदि पद हों और उनके सम्बन्धसे सामान्यरूपसे कहेगये पदके वचनके पलटनेकी आवश्यकता पड़े तो भी वहांपर विशेषणके अनुसार वचनका परिवर्तन नहीं होता 'कार्यं तपः श्रुते' यहांपर एक वचनान्त कार्य शब्दका सामान्यरूपसे उपादान कियागया है यद्यपि पीछेसे तपः श्रुत शब्द उसका विशेषणहोनेसे विशेषणके अनुसार कार्य शब्दमें वचनका परिवर्तन होना चाहिये अर्थात् एकवचनके स्थानमें द्विवचन होना चाहिये परन्तु सामान्यरूपसे उल्लेख होनेके कारण वहां पर एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहींहोता उसीप्रकार उपकार शब्दकाभीसामान्यरूपसे एकवचनमें उल्लेखकियागयाहै इसलिये पीछेसेउसकाउपग्रहविशेषण होनेपर भी उसके अनुसार उपकार शब्दके एकवचनके स्थानमें द्विवचनका परिवर्तन नहीं होसकता अतःसूत्रमें जो एकवचनरूपमें उपकारशब्द लाया गयाहैवह ठीकहै।अथवा जिस प्रकार 'उपकरणं उपकारः' इस प्रकार उपकारशब्द भाव साधन मानागया है उसी प्रकार 'उपग्रहणं, उपग्रहः' इस प्रकार उपग्रहशब्द भी भाव साधन है इसलिये गतिस्थित्योरुपग्रहौ गतिस्थित्युपग्रहाविति' जो ऊपर षष्ठी तत्पुरुष समास कह आये हैं उसके माननेमें भी कोई दोषनहीं तथा उपग्रह और उपकार शब्दका भावसाधन मानने पर गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार है और स्थितिका उपग्रहअधर्मद्रव्यकाउपकार है यह शास्त्रानुकूल अर्थ भी निरापद होजाता है इसलिये उपग्रह और उपकार शब्दको कर्मसाधन मानने पर कर्मधारय समास और भावसाधन माननेपर षष्ठी तत्पुरुष समास दोनों ही समासोंका मानना निर्दोष है ॥ (प्रश्न पर प्रश्न) यदि 'उपग्रह' शब्द भावसाधन है तो चूंकि भाव पदार्थ एक माना है इसलिये उपग्रहौ के स्थानमें उपग्रह एकवचन होना चाहिये (उत्तर) धर्म और अधर्म द्रव्यें भिन्न भिन्न हैं गतिमें उपग्रह करना और स्थितिमें उपग्रह करना भी भिन्नभिन्न हैं। गमनमें उपग्रह करना धर्मद्रव्यका उपकारहै और स्थितिमेंउपग्रहकरना अधर्मद्रव्यका उपकारहैइसकेजतानेकोउपग्रहौद्विवचन हैनहींतो जैसे पृथिवी, अश्व बैलआदिके गमनस्थितिमें सहकारी हैं वैसेही धर्मवा अधर्मद्रव्य दोमेंसे कोईएक गमन और स्थितिमें उपकारी ठहरती ॥

उपक्रियत इत्युपकारः । कः पुनरसौ? गत्युपग्रहः स्थित्युपग्रहश्च ॥ यद्येवं द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति? नैष दोषः । सामान्येन व्युत्पादित उपात्तसंख्यः शब्दान्तरसम्बंधे सत्यपि न पूर्वोपात्तां संख्यां जहाति ॥ यथा-साधोः कार्यं तपःश्रुते इति ॥

उपक्रियते। इति*उपकारः१।पुनः*असौ१।कः१। =उपकार कियाजाता है वा सहायताकी जाती है ऐसा उपकार है। और यह(उपकार)क्याहै

गति-उपग्रहः१।च*स्थिति-उपग्रहः१।;यदि*एवम्* =गमनका उपग्रह तथा स्थितिका उपग्रह है। (प्रश्न)जो ऐसे है अर्थात् गतिकाभी उपग्रह है और स्थितिकाभी उपग्रह है तो (इस सूत्रमें)

द्वित्व-निर्देशः१। प्राप्नोति। ? =दो वचनका निरूपण वा कथन(उपकार शब्दको)प्राप्त होता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्द दो वचनमें लाना था तब'धर्माधर्मयोरुपकारौ' सूत्रके अन्तमें होता ।।

न*एषः१।दोषः१।;सामान्येन३।।।व्युत्पादितः१। =(उत्तर)यह दूषण नहीं हैं। (क्योंकि) सामान्यकरि कहाहुआ

उपात्तसंख्यः१।शब्दान्तर-सम्बन्धे७।सति७।अपि* =गृहीत संख्यावाला(उपकार शब्द)अन्य शब्द उपग्रहौ के साथ सम्बन्ध होनेपर भी

न*पूर्व-उपात्ताम्२।।।संख्याम्२।।जहाति। =पहिले ग्रहण कीहुई संख्याको नहीं छोड़ता है अर्थात् इस सूत्रमें उपकार शब्दको सामान्यरूपसे ग्रहणकरि एकवचनमें निर्देश कियाहै यद्यपि इस उपकार शब्दका उपग्रह' शब्दसे ऐसे सम्बंध है कि गतिका उपग्रह धर्मद्रव्यका उपकार और स्थितिका उपग्रह अधर्म द्रव्यका उपकार है तौ भी प्रथम ग्रहण कियेहुये एकवचन संख्याको उपकार शब्द नहीं त्यागता है और उपग्रहौ शब्द दोवचनान्तके साथ उपकारौ (दोवचनान्त)ऐसा नहीं होजाता है वरन उपकार ऐसाही रहता है ।। ('हा' धातु पर देखो टिपणी पृष्ठ ४६)

यथा*साधोः६।कार्यम्१।।।तपःश्रुते१।।।इति* =जैसे साधु पुरुषका काम तप करना और शास्त्र पढना ऐसा है अर्थात् वाक्यमें तपःश्रुते द्विवचन है और इसके अनुसार'कार्यम्'शब्दके स्थानपर कार्ये द्विवचन होनाचाहियेपरन्तु यहांपर कार्य शब्द सामान्य है और'तपो'कार्यम् श्रुतेकार्यम् ऐसे दो स्थानोंके लिये आयाहै। जैसे सामान्य होनेके हेतुसे (कार्य शब्द) द्विवचन नहीं हुआ तैसेही सूत्रमें 'उपकार' शब्द सामान्य है और वह गतिउपकार और स्थितिउपकार इन दो बातोंका द्योतक है इसलिये सूत्रमेंभी'उपकार'शब्दको सामान्यवचन होनेसे एकवचनमें लाये हैं द्विवचन नहीं किया है।।

एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे कर्तव्ये धर्मास्तिकायः साधारणाश्रयो जलवन्मत्स्यगमने । तथा स्थितिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहे कर्तव्ये अधर्मास्तिकायः साधारणाश्रयः पृथिवीधातुरिवाश्वादिस्थिताविति ॥ ननु च उपग्रहवचनमनर्थकमुपकार इत्येवं सिद्धत्वात् । गतिस्थिती धर्माधर्मयोरुपकार इति ॥ नैष दोषः याथासंख्य-

एतत् उक्तम् भवति गतिपरिणामिनाम्	=यह कथन वा अर्थ होता है कि गमनमें परिणमन होनेवाले, गमनकरनेवाले
जीवपुद्गलानाम् गति-उपग्रहे कर्तव्ये धर्म-	=जीव पुद्गलोंके गमनके उपकार करनेमें धर्म
	(जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-पांच अस्तिकायोंमेंसे एक है)
अस्तिकायः साधारण-आश्रयः	=बहुत प्रदेशवाली वा बहु प्रदेशीद्रव्य(=अस्तिकाय) है साधारण आधार है
जलवत् * मत्स्य-गमने ; तथा * स्थिति-परिणामिनाम्	=जैसे जल मछलीके चलनेमें है वैसेही =तथा) ठहरनेमें परिणमन होनेवाले
जीव-पुद्गलानाम् स्थिति-उपग्रहे कर्तव्ये (१ अधर्म-	=जीव पुद्गलोंके स्थितिके कारण कर्तव्यमें अधर्मद्रव्य
	(जो जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश पांच अस्तिकायोंमें से एक है)
अस्तिकायः साधारण-आश्रयः	=अस्तिकाय अर्थात् बहुप्रदेशी द्रव्य है साधारण वा सामान्य आश्रय है
पृथिवी २ धातुः इव * अश्वादिस्थितौ इति * ॥	=जैसे(=इव) भूमिका आधार घोड़ा आदिकके ठहरनेमें है ॥
ननु * च * उपग्रह-वचनम् अनर्थकम् ॥	=पुनि प्रश्न (इस सूत्रमें) उपग्रह (शब्द) का कहना(=वचन) निष्प्रयोजन है
उपकारः इति एवम् * सिद्धत्वात् ॥	=क्योंकि (धर्म-अधर्मका) उपकार वा सहायता सूत्रकी रचनासे सिद्ध होजाती है कि
गतिस्थिती धर्म-अधर्मयोः उपकारः इति * ;	=गति-स्थिति धर्म-अधर्मका उपकार है । ऐसा (अर्थ) हुआ ॥
न * एषः दोषः याथासंख्य- ३	=(उत्तर) यह दोष नहीं है (क्योंकि) यथासंख्यपनाके (=पहिलेको पहला दूसरेको दूसरा)

(१) (अश्वादि-स्थितौ ॥ भूमि आधारवत् इति अर्थः = घोड़ा आदिकके ठहरनेमें पृथिवीके आधारके सदृश है ऐसा तात्पर्य्य है (२ दधाति इति धातुः । = जो (अपने ऊपर) रखता है वा धारण करता है ऐसा धातु है आधार ऐसा अभिप्राय (धातु शब्दका) है । अर्थात् जो धारण करता है वा धारण करने वाला यह अर्थ "पृथिवीधातुरिवाश्वादि" वाक्यमें जो 'धातु' शब्द आया है उसका है । (३) 'याथासंख्य' का वही अर्थ है जो 'यथासंख्य' शब्दका है ॥

निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनम् । धर्माधर्मयोर्गतिस्थित्योश्च यथासंख्यं भवति, एवं जीवपुद्गलानां यथासंख्यं प्राप्नोति धर्मस्योपकारो जीवानां गतिः अधर्मस्योपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्यर्थमुपग्रहवचनं क्रियते ॥ आह धर्माधर्मयोर्य उपकारःस आकाशस्य युक्तः सर्वगतत्वादिति चेत्—तदयुक्तं, तस्यान्योपकारसद्भावात् सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं यत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकालोकविभागाभावः ॥

निवृत्ति-अर्थम्[२/१] उपग्रह-वचनम्[१/१] धर्म-	=निषेधके लिये उपग्रहका कथन (इस सूत्रमें) है धर्मद्रव्य
अधर्मयोः[६/२] गति-स्थित्योः[६/२] यथासंख्यम् * भवति ।	=अधर्मद्रव्यमें और गतिस्थितिमें यथासंख्य सम्बन्ध होजाता है अर्थात् धर्मद्रव्य का गमनसे सम्बन्ध होजाता है और अधर्मद्रव्यका स्थितिसे सम्बन्ध होजाता है
एवम् * जीव-पुद्गलानाम्[६/३] यथासंख्यम् * प्राप्नोति ।	=इस प्रकार जीवों और पुद्गलोंका(भी) यथासंख्य(क्रम)प्राप्त होता है
धर्मस्य-उपकारः[१/१] जीवानाम्[६/३] गतिः[१/१] अधर्मस्य[६/१]	=(तब)धर्मद्रव्यका उपकार जीवोंका गमन अधर्मद्रव्यका
उपकारः[१/१] पुद्गलानां[६/३] स्थितिः[१/१] इति * तत्-निवृत्ति-अर्थम्[२/१]	=उपकार पुद्गलोंकी स्थिति ऐसा अर्थ होजाता है, उसके निषेधके लिये (इस सूत्रमें)
उपग्रह-वचनम्[१/१] क्रियते, आह । धर्म-अधर्मयोः[६/२] यः[१/१]	=उपग्रह वचन किया है (शिष्य) कहता है कि धर्म अधर्म द्रव्योंका जो
उपकारः[१/१] सः[१/१] आकाशस्य[६/१] युक्तः[१/१] सर्व-गतत्वात्[५/१]	=उपकार है सो(उपकार)आकाशके युक्त है क्योंकि(आकाश)सर्वत्र व्यापी है
इति * चेत् * तत्[१/१] अयुक्तम्[१/१] तस्य[६/१] अन्य-उपकार-	ऐसी शंका है(उत्तर)सो ठीक नहीं है क्योंकि तिस (आकाशके) दूसरे उपकारकी
सद्भावात्[५/१]; सर्वेषाम्[६/३] धर्मादीनाम्[६/३] द्रव्याणाम्[६/३]	=विद्यमानता है (अर्थात्) समस्त धर्मादिक द्रव्योंको
अवगाहनम्[१/१] तत्-प्रयोजनम्[१/१]	=स्थान दान देना वा अवकाश दान देना उस(आकाश)का प्रयोजन है
एकस्य[६/१] अनेक-प्रयोजन-कल्पनायाम्[७/१]	=एक (आकाश)के अनेक प्रयोजन माननेमें
लोक-अलोक विभाग-अभावः[१/१]	=लोक अलोकके विभागका अभाव होता है । भावार्थ--यह है कि इस प्रश्नके होनेपर कि गमन और ठहरावका उपकार धर्म अधर्म द्रव्योंका न होना चाहिये

किन्तु आकाश जो सर्वत्र व्यापक है गतिस्थितिका उपकारी है उत्तर में आचार्य्य कहते हैं कि आकाशका असाधारण गुण द्रव्योंको स्थान दान देनेका है यदि उसका कोई दूसरा उपकार कल्पना करते हैं तो लोक अलोक का विभाग

भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधर्माभ्यामिति चेन्न—साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात्। अनेककारणसाध्यत्वाच्चैकस्य कार्यस्य॥ तुल्यबलवत्त्वात्तयोर्गतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेन्न—अप्रेरकत्वात्॥

नहीं होसकता है क्योंकि ठहरने और गमन करने में सहायक होना यदि ये कार्य आकाशके माने जावेंगे तो आकाश तौ अलोकाकाशमें भी हैं तो वहांपरभी जीवपुद्गल गति और स्थिति करसकेंगे अतः लोक अलोकके विभागका लोप होजावैगा ॥

भूमि-जलादीनि(१/३) एव* तत्-प्रयोजन-समर्थानि(१/३)	= भूमि जलादिक ही उस (गति स्थति) के प्रयोजनके लिये समर्थ हैं तो
न-अर्थः(१/१) धर्म-अधर्माभ्याम्(३/२) इति* चेत्* न*	= धर्म, अधर्म द्रव्योंसे प्रयोजन नहीं ऐसी शंका है। यह शंका नहीं होनी चाहिये
साधारण-	= (धर्म अधर्म द्रव्यें सब जीव पुद्गलोंको एक कालमें गतिस्थितिका) साधारण
आश्रयः(१/१) इति*	= आश्रय हैं (क्योंकि किसी किसी द्रव्यके एक एक प्रयोजनके सम्बन्धमें जल पृथिवी आदि गमन स्थिति आदि उपकार करनेमें)
विशिष्य-उक्तत्वात्(५/१); च* एकस्य(६/१) कार्यस्य(६/१) अनेक-	= विशेष आश्रयरूप कहे जाते हैं। और (=च) एक कार्यको अनेक
कारण-साध्यत्वात्(५/१),	= कारण सिद्धि करने योग्य वा साधनीय हैं अर्थात् एक कार्यको अनेक कारण साधते हैं सो यहां स्थितिमें पृथिवी भी कारण है और अधर्मद्रव्य भी कारण है
तुल्य-बलवत्त्वात्(५/१) तयोः(६/२) गति-स्थिति-प्रतिबन्धः(१/१)	= (धर्म अधर्म द्रव्यें) समान बलवान होनेसे तिन दोनोंमें गतिस्थितिका विरोध होगा
इति* चेत्*	= ऐसी शंका है अर्थात् जब धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य दोनों समान बलवाले हैं सो जिस काल धर्मद्रव्य जीव पुद्गलोंको गमन कराती होगी उसीसमय अधर्मद्रव्य स्थिति कराती होगी तब गमन स्थिति दोनोंकी रोक होती होगी ॥
न*	= सो नहीं।(धर्मद्रव्य जीवपुद्गलोंके गतिके निमित्त है अधर्मद्रव्य उनकी स्थितिके हैं सो)
अप्रेरकत्वात्(५/१)	= अप्रेरक वा बलाधान भावसे हैं अर्थात् यदि जीव पुद्गल चलें तो धर्मद्रव्य उदासीनतासे चलनेमें निमित्त होती है और यदि ठहरें तो ऐसेही अधर्म द्रव्य स्थितिमें ऐसी प्रेरणा न करें कि अमुक जीव पुद्गल चलें अमुक ठहरे रहें ॥

अनुपलब्धेर्न तौ स्तः खरविषाणवदिति चेन्न–सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः। सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति ॥ अस्मान्प्रतिहेतोरसिद्धेश्च ।

अनुपलब्धेः ५/१ तौ १/२ [१] खरविषाणवत् * न * स्तः T =क्या आंखकरि न दीखनेसे धर्म-अधर्म) वे दोनों (द्रव्यें) गधाके सींगके सदृश नहीं हैं

इति * चेत् * =ऐसी शंका है अर्थात् जैसे संसारमें गधा (वा शश खरहा) के सींगोंकी कल्पना है विद्यमानता नहीं है क्योंकि किसीने अपनी आंखोंसे नहीं देखे हैं वैसेही धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य केवल कल्पनामात्र हैं वास्तविक वा यथार्थमें उनका कोई अस्तित्व नहीं है ऐसी शंका है ॥

न * =(उत्तर) (ऐसा संदेह कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नेत्रोंसे न दीखनेसे गधाके सींगके तुल्य कल्पित द्रव्य हैं) नहीं (होना चाहिये)

सर्व- [२] प्रवादि-अविप्रतिपत्तेः ५/१ =क्योंकि (ऐसे अस्तित्वमें) सब प्रतिवादियोंको (हमारे साथ) अविरोध (=विवाद नहीं) है

सर्वे १/३ हि * [२] प्रवादिनः १/३ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षान् २/३ =समस्त ही (=हि) अन्य मतावलम्बी प्रत्यक्ष और परोक्ष

अर्थान् २/३ अभिवाञ्छन्ति T अस्मान् २/३ प्रति * =पदार्थोंको मानते हैं हम प्रति अर्थात् हमारे ऊपर

हेतोः ६/१ असिद्धेः ५/१ च * =(तुम्हारे इस) साधनकी (कि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य अनुपलब्ध हैं) सिद्ध भी नहीं है ॥

भावार्थ यह है कि हम स्याद्वादीनके ऊपर तुम्हारा यह साधन कि धर्म, अधर्मद्रव्यें अनुपलब्ध हैं उनका अस्तित्व गधेके सींग सदृश है निम्नलिखित कारणसे लागू नहीं हैं

---

(१) संसारमें चार वस्तुयें (क) खर अथवा शशविषाण (ख) बांझ स्त्रीका पुत्र (ग) मृगतृष्णा (घ) आकाशका फूल ये विद्यमान नहीं हैं। अब किसी वस्तुके अभावको प्रगट करना होता है तब इन चार पदार्थोंसे प्रायः एक वा दोका नाम लेते हैं। ये चारों वस्तुयें निम्नलिखित श्लोकसे स्पष्ट हैं

"एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः। मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः ॥ १ ॥

एषः १/१ वन्ध्यासुतः १/१ याति T, (एषः) ख-पुष्प-कृत-शेखरः १/१ =यह बांझ स्त्रीका पुत्र जाता है। यह आकाशके फूलोंकी बनाई हुई शिखा वा चोटी है (एषः) मृगतृष्णा-अम्भसि ७/१ स्नातः १/१ एषः शशशृङ्ग-धनुर्धरः १/१ =यह मृगतृष्णाके नीर (धूपमें जलभ्रान्ति) में न्हायाहुआहै यह खरके सींगके धनुषका धारी है

(२) प्रथम बारकी छपी हुई सर्वार्थसिद्धिमें 'प्रतिवादिन्' शब्द, इन दो स्थानोंपर है परन्तु द्वितीय संस्करणमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'प्रवादिन्' शब्दका दोनों स्थानोंमें प्रयोग किया गया है। दोनों शब्दोंका लगभग एकही अर्थ है हमने 'प्रवादिन्' का प्रयोग किया है क्योंकि ये पाठ बहुतसी प्रतियोंमें पाये जाते हैं ॥

सर्वार्थसिद्धि ६०

सर्वज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते। तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि॥ अत्राह यद्यतीन्द्रिययोर्धर्माधर्मयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवध्रियते, तदनन्तरमुद्दिष्टस्य नभसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

॥ आकाशस्यवगाह ॥ १८ ॥

सर्वज्ञेन[३/१] निरतिशय-प्रत्यक्षज्ञान-चक्षुषा[३/१]	=सर्वज्ञके परमोत्कृष्ट (=निरतिशय) प्रत्यक्ष(केवल)ज्ञानरूपी नेत्रेन्द्रियकरि
धर्म-आदयः[१/३] सर्वे[१/३] उपलभ्यन्ते। च* तद्-	=धर्मादिक समस्त (द्रव्यें) जानी गई हैं और उस (सर्वज्ञ) के
उपदेशात्[५/१] श्रुतज्ञानिभिः[३/३] अपि*; अत्र*आह।	=उपदेशसे श्रुतज्ञानियोंकरिभी (जानी गई) हैं। यहां पूछता है कि
यदि*अतीन्द्रिययोः[६/२] धर्म-अधर्मयोः[६/२] उपकार-	=यदि धर्म-अधर्मद्रव्योंकी (जो इन्द्रियोंसे नहीं जानेजासकते हैं) उपकारके
सम्बन्धेन[३/१] अस्तित्वम्[१/१] अवध्रियते। [१] तदनन्तरम्[१/१]	=संयोगसे विद्यमानता निश्चय कीजाती है तो उन(धर्म-अधर्म)के अत्यन्त समीप
उद्दिष्टस्य[६/१] नभसः[६/१] अतीन्द्रियस्य[६/१] अधिगमे[७/१]	=कथित इन्द्रिय अगोचर आकाशके जानने में
कः[१/१] उपकारः[१/१] [२] इति* उच्यते।	=क्या उपकार वा सहायता है इस हेतुसे(=इति)(उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

सूत्रम्—[३] आकाशस्यावगाहः ॥१८॥ = (जीवानाम्-अजीवानाम् च)आकाशस्य(उपकारः)अवगाहः

सूत्रार्थः—जीवानाम्[६/३] च अजीवानाम्[६/३] आकाशस्य[६/१]	=जीवोंको और अजीवोंको आकाश द्रव्यका
उपकारः[१/१] अवगाहः[१/१]	=उपकार, सहारा, अथवा सहायता, अवकाशदान देना वा स्थानदान देना है अर्थात् समस्त जीव और अचेतन द्रव्योंको स्थानदान देना आकाशका उपकार है

(१) "अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः" इस प्रथम सूत्रमें धर्मअधर्मके समीपही आकाश द्रव्यका कथन है इसलिये अग्रिम सूत्रमें आकाशका उपकार कहते हैं।

(२) "इति हेतु-प्रकरण-प्रकाशादि-समाप्तिषु" अमरकोश नानार्थ वर्ग श्लोक २४६ 'इति', यह एक नाम हेतु-प्रकरण-प्रकाश निश्चय समाप्ति इन्हों का है यहां पर हेतु अथवा कारणके अर्थमें लिया है इससे 'इति'का अनुवाद 'इस हेतुसे' ऐसा किया गया है॥

(३)ईस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है। "अजीवानाम्"शब्दका अध्याहार कियागया है। 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति इस अध्यायके पंद्रहवां सूत्रसे लीगई है और 'च' शब्दकी दशवां सूत्रसे लीगई है। उपकार सत्रहवां सूत्रसे अनुवर्तता है॥

उपकार इत्यनुवर्तते ॥ जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वेदितव्यः ॥ आह जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदानं युक्तम् । धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धास्तेषां कथमवगाह इति चेन्न–उपचारतस्तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् एवं धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनादवगाहिनावित्युपचर्येते ॥ आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावः वज्रादिभिर्लोष्टादीनां-

उपकारः१/१ इति*अनुवर्तते।अवगाहिनाम्६/३	=(इस सूत्रमें) उपकार (शब्द सत्रहवां सूत्रसे) आता है रहनेवाले वा अवगाही
जीव-पुद्गलादीनाम्६/३ अवकाशदानम्१/१॥ अवगाहः१/१	=जीव पुद्गलों, धर्मद्रव्य,अधर्मद्रव्य कालद्रव्यको स्थानदान देना है सो अवगाह
आकाशस्य६/१॥उपकारः१/१वेदितव्यः१/१आह।जीव-पुद्गलानां	=आकाशद्रव्यका उपकार जानना चाहिये । पूछताहै कि जीव पुद्गल
क्रियावतां६/३अवगाहिनां६/३ अवकाशदानम्१/१॥युक्तम्१/१॥	=क्रियावाले और अवगाह करनेवालोंके अवकाशदान देना (तो) ठीक है
पुनःधर्मास्तिकाय-आदयः१/३ निष्क्रियाः१/३नित्यसम्बन्धाः१/३	=किन्तु(=पुनः)धर्मास्तिकायआदिक अर्थात् धर्म अधर्म और आकाश जो क्रियारहित और आपसमें नित्य सम्बन्धवाले हैं अथवा जो क्रियारहित तथा नित्य सम्बन्धरूप हैं
तेषाम्६/३ कथम्* अवगाहः१/१ इति*चेत्* न*	=तिनको कैसे आकाशका स्थानदान है ऐसी शंका है । यह शंका नहीं होनी चाहिये
उपचारतः*तत्-सिद्धेः५/१॥यथा*गमन-अभावे७/१ अपि*	=क्योंकि उपचारसेवाकल्पनासे(अवकाशदानकी)सिद्धि है जैसेगतिके अभावहोनेपरभी
सर्वगतम्१/१॥आकाशम्१/१॥इति-उच्यते।सर्वत्र* सद्भावात्५/१	=सर्वगत आकाश है ऐसा कहागया है क्योंकि आकाशका सर्व स्थानमें अस्तित्व है अर्थात् आकाश है सो सदा गमनरहित है और कहींभी उसका हलनचलन आना जाना नहीं होसकता है निष्क्रिय है तौभी उसको सर्वगत कल्पनासे कहते हैं ।
एवम्*धर्म-अधर्मौ१/२अपि*अवगाह-क्रिया-अभावे७/१	=इसी प्रकार धर्म अधर्म दोनोंभी अवगाहरूप क्रियाके न होनेपर
अपि*सर्वत्र-व्याप्ति-दर्शनात्५/१ अवगाहिनौ१/२ इति*	=भी(लोकाकाशके) सर्वस्थानमें प्रवेशताके उपलब्धसे अवगाह करनेवाली
उपचर्येते। आह।यदि*अवकाशदानम्१/१॥	=कल्पी जाती हैं वा मानी जाती हैं । पूछता है कि जो स्थान दान देना
अस्य६/१॥ स्वभावः१/१ वज्रादिभिः३/३ लोष्ट-आदीनाम्६/३	=इस(आकाश)का गुण और लक्षण होता तो वज्रादिसे ढेला वा गोलादिका

(१) उपचर्येते = उपचर्य + इते = चर् धातुपर उप उपसर्ग लगाकर कर्मणिप्रधान,अन्यपुरुष द्विवचन वर्तमान क्रियाका 'इते' प्रत्यय लगाकर बनाया है
(२) 'आदयः' यह शब्द दोसे अधिक संख्याका बोधक है और छह द्रव्योंमें इस अध्यायके सातवां सूत्रके अनुकूल धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाश
[illegible]

भित्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । दृश्यते च व्याघातः । तस्मादस्यावकाशदानं हीयते इति ॥ नैष दोषः । वज्रलोष्ठादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते- तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । वज्रादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्परं प्रत्यवकाशदानं न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः । ये खलु पुद्गलाः सूक्ष्मास्ते परस्परं प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति ॥ यद्येवं नेदमा- काशस्यासाधारणं लक्षणमितरेषामपि तत्सद्भावादिति ॥ तन्न । सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतु- त्वमस्यासाधारणं लक्षणमिति नास्ति दोषः ॥

भित्ति-आदिभिः गो-आदीनां च व्याघातः न प्राप्नोति ।	=और(=च) भीत आदिकरि गऊ आदिका रुकाव नहीं प्राप्त होता है
दृश्यते च* व्याघातः, तस्मात् अस्य	=और (ढेलादिक तथा गऊ आदिका) रोका जाना देखा जाता है, तिस कारणसे इस आकाशका
अवकाशदानं हीयते । न* एषः दोषः ।	=स्थानदान देना चला जाता है अथवा बाधा जाता है । यह दूषण नहीं है
वज्र-लोष्ठ-आदीनाम् स्थूलानां परस्पर-व्याघातः	=वज्र ढेलादिक स्थूल अथवा मोटे (पदार्थ) तिनका आपसमें रुकाव है
इति* न* अस्य अवकाशदान-सामर्थ्यम् हीयते ।	=इस (आकाश)की अवकाशदानकी शक्ति नहीं बांधी जाती है
तत्र* अवगाहिनाम् एव* व्याघातात्, पुनः* वज्र-	=क्योंकि तहां (आकाशमें अवगाह करनेवालोंकेही (परस्पर) व्याघात है और वज्र
आदयः स्थूलत्वात् परस्परं प्रति* अवकाश-	=आदिक स्थूल होनेसे एक दूसरेको (=प्रति) स्थान
दानम् न* कुर्वन्ति इति* न* असौ	=दान नहीं करते हैं । न यह (अर्थात् स्थूल पदार्थोंका एक दूसरेसे रुकना)
आकाश दोषः । ये खलु* पुद्गलाः सूक्ष्माः ते	=आकाशका दूषण है । निश्चयसे जे सूक्ष्म पुद्गल हैं । ते
परस्परं प्रति* अवकाशदानं कुर्वन्ति, यदि* एवम्*	=एक दूसरेको (=प्रति) अवकाशदान करते हैं । (प्रश्न) जो इस प्रकार है (अर्थात् जो सूक्ष्म पुद्गल आपसमें अवकाशदान करते हैं । तो)
न* इदम् आकाशस्य असाधारणम् लक्षणं	=यह (अवकाशदान) आकाशका असाधारण स्वभाव नहीं है
इतरेषाम् अपि* तत्-सद्भावात् इति*	=क्योंकि दूसरोंकेभी उस (अवकाशदानकी) विद्यमानता अथवा अस्तित्व है
तत् न* सर्वपदार्थानाम् साधारण-अवगाहन-	=(उत्तर) सो (=तत्) नहीं है क्योंकि सब पदार्थोंके साधारण (युगपत्) अवकाशदानका
हेतुत्वम् अस्य असाधारणम् लक्षणम्	=कारण होना इस आकाशका अनूठा या अपूर्व स्वभाव है
इति* न* अस्ति दोषः	=(सो ऐसा) उपर्युक्त दूषण नहीं है भावार्थ यह है कि शिष्यके इस मन्तव्य पर कि

अलोकाकाशे तद्भावादभाव इति चेन्न-स्वभावापरित्यागात् ॥

उक्त आकाशस्योपकारः । अथ तदन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते—

॥ शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

जो सूक्ष्म पदार्थ आपसमें अवकाशदान देतेहैं तो आकाशका अवकाशदान देना कोई असाधारण लक्षण(वह स्वभाव वा गुण जो किसी दूसरेमें न हो) न ठहरा इसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं कि आकाश सर्व पदार्थोंको एकही कालमें अवकाशदान देता है कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसको आकाश स्थान दान न देता हो इससे आकाशका यह अवकाशदान देना असाधारण लक्षण है और सूक्ष्म पदार्थमें अवकाशदान देनेका अपूर्व अथवा असाधारण लक्षण इस हेतुसे नहीं है कि वे(सूक्ष्म पदार्थ)आपसमें एक दूसरेको अवकाशदान देते हैं सर्व पदार्थोंको एकही कालमें स्थानदान नहीं देसकते हैं

अलोकाकाशे[७/१] तद्-अभावात्[५/१] = अलोकाकाशमें उन (अवगाह करनेवालों)के विद्यमान न होनेसे

अभावः[१/१] इति*चेत्* ; न* = (अवकाशदानका) अभाव है ऐसी शंका है । (उत्तर) (ऐसी शंका) नहीं होनी चाहिये

स्वभाव-अपरित्यागात्[५/१] ; = क्योंकि (कोईभी पदार्थ) स्वभाव नहीं छोड़ता है अर्थात् आकाशमें अवगाहन (=अवकाश दान देनेका) की शक्ति और स्वभाव है सो चाहे अवगाह करने वाले उसमें हों वा न हों । जैसे अलोकाकाशमें अवगाह करनेवाले नहीं हैं)तौभी वह पदार्थ(अलोकाकाश) अपना स्वभाव नहीं त्यागता है

उक्तः[१/१] आकाशस्य[६/१] उपकारः[१/१] अथ*तदन्तर- = आकाशका उपकार कहागया अब उस (आकाश)के अत्यन्त समीप वा लगताही

उद्दिष्टानाम्[६/३] पुद्गलानाम्[६/३] = वर्णित पुद्गलोंका (देखो प्रथम सूत्रमें आकाश शब्दके पश्चात् "पुद्गलानां" शब्द)

कः[१/१] उपकारः[१/१] इति*अत्र*उच्यते । = क्या उपकार है इस कारण (=इति) यहां (उत्तर सूत्रमें) कहा जाता है कि

(१)सूत्रम्— शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

= शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपानाः (जीवानाम्)पुद्गलानाम् (उपकारः)

(१)दोनों सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है । हमारे यहां कहीं२ पर 'पुद्गलानाम'के स्थानमें 'पुद्गलानां' पाठहै वह बहुमतमें अशुद्ध है इस सूत्रमें 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति पंद्रहवां सूत्रसे लीगई है ॥ अथवा यों समझलो कि "जीवानाम्" शब्दका अध्याहार किया गया है ॥

इदमयुक्तं वर्तते । किमत्रायुक्तम् ? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते भवता शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ॥ नैतदयुक्तम् । पुद्गलानां लक्षणमुत्तरत्र "स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गला इत्यत्र" वक्ष्यते । इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनार्थमेवेति उपकारप्रकरणे उच्यते ॥ शरीराण्युक्तानि औदारिकादीनि, सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि, तदुदयापादित (1)(तदुभयोपपादित ?) ।

सूत्रार्थः—शरीर-वाङ्-मनस्-प्राण-अपानाः१।३ जीवानाम्६।३	= शरीर वचन मन उच्छ्वास (प्राण) अपान (=निःश्वास) जीवोंके
पुद्गलानाम्६।३ उपकारः१।१ भवति।	= पुद्गल द्रव्यके या पुद्गल कृत उपग्रह अर्थात् उपकार है
वृत्त्यनुवादः—इदम्१।१ अयुक्तं१।१ वर्तते। किं*अत्र*अयुक्तम्१।१	= (प्रश्न) यह ठीक नहीं (अयुक्त) है (वर्तते) यहां क्या ठीक नहीं है ?
पुद्गलानाम्६।३ कः१।१ उपकारः१।१ इति*परिप्रश्ने७।१	= पुद्गलोंका क्या उपकार है ऐसा पूछने पर
पुद्गलानाम्६।३ लक्षणम्१।१ उच्यते। भवता३।१	= पुद्गलोंका लक्षण आपसे कहा गया है
शरीर-आदीनि१।३ पुद्गल मयानि१।३ इति*एतत्१।१	= क्योंकि शरीर आदिक पुद्गलमयी है (उत्तर) यह
न-अयुक्तम्१।१ पुद्गलानाम्६।३ लक्षणम्१।१ उत्तरत्र*	= अयुक्त नहीं है (क्योंकि) पुद्गलोंका लक्षण यहांसेआगे (=उत्तरत्र)
स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वन्त पुद्गलाः१।३ इति*अत्र*	= (स्पर्श-रस गन्ध-वर्णवाले) पुद्गल हैं इस प्रकार इसठौर (=अत्र)
वक्ष्यते।	= (अर्थात् इस अध्यायके तेईसवां सूत्रमें) कहेंगे ॥
इदम्१।१ तु*जीवान्२।३ प्रति*पुद्गलानाम्६।३ उपकार-	= यह (सूत्र) तो जीवोंकी ओर (=प्रति) पुद्गलोंका उपकार
प्रतिपादन-अर्थम्१।१ एव*इति*उपकार-प्रकरणे७।१ उच्यते।	= कहनेके लियेही (=एव) ऐसा उपकारके प्रकरण या प्रसंगमें कहागया है
शरीराणि१।३ उक्तानि१।३ औदारिक-आदीनि१।३ सौक्ष्म्यात्५।१	= शरीर औदारिक आदिक (नामकर्मकी प्रकृतिरूप) कहे ॥ वे सूक्ष्म होनेसे
अप्रत्यक्षाणि१।३ तद्-	= इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नहीं हैं; उन (औदारिक आदिकर्मप्रकृतिरूप सूक्ष्म शरीरोंके)
उदय-आपादित (तद्-उभय-उपपादित ?)	= उदयकरि उत्पन्न हुई (=आपादित) (उन दोनों सूक्ष्म और अप्रत्यक्षरूप औदारिक आदि कर्म प्रकृतिरूप शरीरों द्वारा जन्य, शरीरों द्वारा उत्पन्नहुई

(१) दानी वाड़ की छपी 'सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें तदुदयापादित (तदुभयोपपादित ?) ऐसे पाठ हैं तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें तदुदयोपपादित पाठ है। सूत्रके नीचे राजवार्तिक मुद्रितमें, दो हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तदुदयापादित' पाठहै॥ हमने मुद्रित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिके पाठ लिये हैं ॥

वृत्तीन्युपचयशरीराणि कानिचित्प्रत्यक्षाणि कानिचिदप्रत्यक्षाणि ॥ एतेषां कारणभूतानि कर्माण्यपि शरीरग्रहणेन गृह्यन्ते ॥ एतानि पौद्गलिकानीति कृत्वा जीवानामुपकारे पुद्गलाः प्रवर्तन्ते ॥ स्यान्मतं कार्मणमपौद्गलिकमनाकारत्वादाकाशवत् । आकारवतां हि औदारिकादीनां पौद्गलिकत्वं युक्तमिति ॥ तन्न । तदपि पौद्गलिकमेव,

वृत्तीनि[१/३] उपचय-शरीराणि[१/३]	=संचय वा स्थूल (=उपचय) शरीररूप वृत्तियें अर्थात् नोकर्मसंचयरूप वृत्तियें-स्थितियें या अवस्थायें
कानिचित्*प्रत्यक्षाणि[१/३] कानिचित्*अप्रत्यक्षाणि[१/३]	=(वे नोकर्मरूपवृत्तियोंमेंसे कोई इन्द्रियगोचर(प्रत्यक्ष) हैं । कोई इन्द्रियगोचर (प्रत्यक्ष) नहीं हैं भावार्थ यह है कि औदारिक, वैक्रियिक-आहारक-तैजस-कार्मण ये नाम कर्मकी प्रकृतियें सूक्ष्म हैं उक्त औदारिकादि कर्म प्रकृतिरूपमें सूक्ष्म होनेके कारण अप्रत्यक्ष(इन्द्रियगोचर नहीं) हैं । उन सूक्ष्मशरीरोंके उदय जन्य (अथवा यों कहियेकि सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष-कर्मप्रकृतिरूप-उक्त औदारिकादि द्वारा उत्पन्न हुई जो) नो कर्म स्थूलरूप परिणत अवस्थायें स्थितियें(=वृत्तीनि) उनमें औदारिक शरीर प्रत्यक्ष(इन्द्रियगोचर) है, वैक्रियिक शरीर प्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर) है और अप्रत्यक्ष (इन्द्रियगोचर) नहींभी है, आहारक शरीर(अप्रत्यक्ष)इन्द्रियगोचर नहीं है । आहारक शरीरसे तैजस शरीर सूक्ष्म और तैजससेभी कार्मणशरीर सूक्ष्म (परं परं सूक्ष्म अध्याय २ सूत्र ३७ में) है
एतेषाम्[६/३] कारणभूतानि[१/३] कर्माणि[१/३] अपि*	=तिन(उपचय शरीर वा पिंडरूप शरीर वा नोकर्म)के कारणरूप कर्म प्रकृति) भी
शरीर-ग्रहणेन[३/१] गृह्यन्ते ; एतानि[१/३]	=शरीरके ग्रहणसे लियेजातेहैं॥ ये शरीर अर्थात् कार्मणानि और नोकार्मणानि)
पौद्गलकानि[१/३] इति*कृत्वा*जीवानाम्[६/३] उपकारे[७/१]	=पुद्गल जन्य अथवा पुद्गलके हैं। ऐसे करके जीवोंके उपकार (करने) में
पुद्गलाः[१/३] प्रवर्तन्ते ; स्यात्-मतम्[१/१] कार्मणम्[१/१] आकाशवत्*	=पुद्गल प्रवर्तते हैं । शंका है कि कार्मण(शरीर)आकाशके सदृश
अपौद्गलिकम्[१/१] अनाकारत्वात्[५/१] आकारवताम्[६/३] हि*	=निराकार होनेसे पुद्गल जन्य नहीं है ॥ आकारवान् ही
औदारिकादीनाम्[६/३] पौद्गलिकत्वम्[१/१] युक्तम्[१/१] इति*	=औदारिक आदिकोंके पुद्गलजन्यपना वा पुद्गलमयी होना ठीक है
तत्[१/१] न* ; तत्[१/१] अपि* पौद्गलिकम्[१/१] एव*,	=(उत्तर) सो ठीक नहीं है वह कार्मणशरीर भी पुद्गलमयी वा पुद्गलकाहीहै।

तद्विपाकस्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् ॥ दृश्यतेहि व्रीह्यादीनामुदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापितपरिपाकानां पौद्गलिकत्वम् । तथा कार्मणमपि गुडकण्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ॥ वाक् द्विविधा । द्रव्यवाग्भाववागिति ॥ तत्र भाववाक् तावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी ।

तद्-विपाकस्य[६] मूर्तिमत्-सम्बन्ध-निमित्तत्वात्[५]॥; =क्योंकि उस (कार्मण शरीर) के उदयका कारण मूर्तिवानके संयोगसे है अर्थात् मूर्तिमान वस्तुका सम्बन्ध उस कार्मणके उदयका कारण है

दृश्यते। हि*व्रीहि-आदीनाम्[६] उदक-आदि-द्रव्य- =जैसे (=हि) देखागया है कि चांवल आदिकोंके जल आदिक द्रव्योंके

सम्बन्धप्रापित-परिपाकानाम्[६]। =संयोग प्राप्त कर भले प्रकारसे पकनेरूप वा उत्तम पाकरूप होना है उनके

पौद्गलिकत्वम्[१]।तथा*कार्मणम्[१]।अपि*गुड- =(वेदोनों व्रीहि उदक पुद्गलमयी वा पुद्गल जन्य हैं। पुद्गल)। तैसे कार्मण(शरीर)भी गुड

कण्टकादि-मूर्तिमत्-द्रव्य-उपनिपाते[७]। सति[७] =कांटे आदि मूर्तिक द्रव्योंके संयोग होनेपर

विपच्यमानत्वात्[५]।पौद्गलिकम्[१]।इति*अवसेयम्[१]।=भले प्रकार पकतासे पुद्गलमयी है ऐसे जानना चाहिये भावार्थ गुड-बोर-जड़ी आदिकसे मदिरा बनती है तिस मदिराके पीनेसे चित्त विभ्रमरूप होजाता है उस समय ज्ञानावरण दर्शनावरण; मोहनीय, अन्तरायकर्मका उदय जानना चाहिये। कांटा अथवा चोट लगनेसे जो दुःख होता है तहां असाता वेदनीयकर्मकाउदय जानो इत्यादि बाह्यमूर्तीक द्रव्योंके सम्बन्धसे पचकरि कार्मण उदय आताहै तिससे कार्मण पुद्गलमयीहै॥

वाक्[१]।द्वि-विधा[१]।द्रव्यवाक्[१]।भाववाक्[१]।इति*॥ =वचन दो प्रकार द्रव्य वचन भाव वचन ऐसे हैं

तत्र*भाववाक्[१]। तावत्*वीर्यान्तराय-मति- =तहां भाव वचन तौ (=तावत्) वीर्यान्तराय, मति

श्रुत-ज्ञानावरण-क्षयोपशम-आंगोपांग- =श्रुत ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे और अंगोपांग नामक (आंगोपांगनामा)

नाम-लाभनिमित्तत्वात्[५]।(आत्मनो[६]वाक्सामर्थ्यम्) =नाम कर्मके लाभ (=उदय)का निमित्त होनेसे (आत्माके बोलनेकी शक्ति)

पौद्गलिकी[१]। =पुद्गलजन्य है अर्थात् उपरोक्त कर्मोंके कारणसे आत्माके बोलनेकी शक्ति अथवा सामर्थ्य है सो भाव वचन है

तदभावे तद्वृत्त्यभावात् ॥ तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावताऽत्मना प्रेर्यमाणाः पुद्गला वाक्त्वेन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी । श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् ॥ इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् ॥ घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धिवत् ॥ अमूर्ता वागिति चेन्न- मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनान्मूर्तिमत्त्वसिद्धेः ॥ मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति भावमनस्तावल्लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलावलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् ॥

तद्-अभावे[१] तद्-वृत्ति-अभावात्[५]	=उस (भाववाक्)के अभाव होनेपर, उस (भाववाक्)की चेष्टा (व्यवसाय का =अभाव हो जाता है अर्थात् भाव वचनके न होनेपर आत्मा बोल नहीं सकता है ॥
तत्-सामर्थ्य-उपेतेन[३] क्रियावता[३] आत्मना[३]	=तिस (भाववाक्)की शक्तिको प्राप्त हुआ (=उपेतेन) क्रियावान् आत्माकरि
प्रेर्यमाणाः[१] पुद्गलाः[१] वाक्त्वेन[३] विपरिणमन्ते T	=प्रेरे हुये पुद्गल वचनरूप होकर परिणमते हैं (वह द्रव्य वचन है)
इति* द्रव्यवाक्[१] अपि* पौद्गलकी[१] ; श्रोत्र-इन्द्रिय-विषयत्वात्[५]	=ऐसे द्रव्य वाणीभी पुद्गलसे उपजी है, क्योंकि (द्रव्यवचन) कान इन्द्रियका =विषय है ।
इतरेन्द्रिय-विषया[१] कस्मात्* न* भवति T	किस कारणसे (=कस्मात्) कि (द्रव्यवाक्) दूसरी इन्द्रियका विषय नहीं है?
तद्-ग्रहण-अयोग्यत्वात्[५] ; घ्राण-ग्राह्ये[७]	=क्योंकि उस (दूसरी इन्द्रिय)के ग्रहण योग्य नहीं है। नाक इन्द्रियके ग्रहणयोग्य (=ग्राह्य)
गन्ध-द्रव्ये[७] रसादि-अनुपलब्धिवत्* ;	=गंध द्रव्य है । (वह घ्राण इन्द्रिय) रसादिक ग्रहण करने योग्य नहीं है
अमूर्ता[१] वाक्[१] इति* चेत्* न*	=वचन अमूर्तीक है ऐसी शंका है । (उत्तर) (वाणी अमूर्तीक) नहीं है
मूर्तिमत्-ग्रहण-अवरोध-व्याघात-अभिभवादि-दर्शनात्[५] मूर्तिमत्वसिद्धेः[५]	=क्योंकि मूर्तीकके ग्रहणसे, (मूर्तीककरि) रुकजानेसे (मूर्तीकसे) प्रहारको प्राप्त होनेसे =(मूर्तीक द्वारा) तिरस्कारादिक देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है अर्थात् वाणीका मूर्तीक द्वारा एक दिशासे दूसरी दिशाको चलेजाना आदि देखनेसे मूर्तिपना सिद्ध है
[१] मनः[१] द्विविधम्[१] द्रव्यमनः[१] च* भावमनः[१] इति*	=मन दोप्रकारका है । द्रव्यमन और (=च) भावमन । (दोनोंप्रकारका मन पुद्गल स्वरूप है)
भावमनः[१] तावत्* लब्धि-उपयोग-लक्षणम्[१]	=भावमन तो (तावत्) लब्धि तथा उपयोग स्वरूप है
पुद्गल-अवलम्बनत्वात्[५] पौद्गलिकम्[१]	=और पुद्गलके आश्रयभावसे पुद्गलजन्य है अर्थात्

(१)(क) मनस् (ख) पयस् = जल, दूध, (ग) यशस् = गुणोंकी प्रगटता, तीनोंशब्द सकारान्त नपुंसकलिंगीहै जिनके प्रथमा एकवचन नपुंसकलिंग मनः, पयः, यशः है।

सर्वार्थसिद्धि ६७

६७

सर्वार्थ सिद्धि

द्रव्यमनश्च, ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमांगोपांगनामलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकाः पुद्गला मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् ॥ कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहितमणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति। यदयुक्तम् ॥ कथम्? उच्यते-तदिन्द्रियेणात्मना च सम्बद्धं वा स्यात्

अध्याय सूत्र

६८ पुद्गल कर्मके क्षयोपशमसे हुआ है तिस हेतुसे पुद्गलमयी है ॥

द्रव्यमनः[1/1] च*ज्ञानावरण-वीर्यान्तराय-क्षयोपशम- =और(=च)द्रव्य मन है सो ज्ञानावरण अर वीर्यान्तराय कर्मोंके क्षयोपशमका

आंगोपांगनाम-लाभ-प्रत्ययाः[1/3] गुण-दोष-विचार- =तथा आंगोपांग नामा नामकर्मका उदय है कारण जिसको और गुण-दोष विचार

स्मरणादि-प्रणिधान-अभिमुखस्य[6/1] आत्मनः[6/1] =स्मरणादिके प्रयत्न(=प्रणिधान)के सन्मुख है जो आत्मा तिसके

अनुग्राहकाः[1/3] पुद्गलाः[1/3] मनस्त्वेन[3/1] =उपकारी वा अनुग्रह करनेवाले जो (पुद्गल) मनपनासे वा मनरूपकरि

परिणताः[1/3] =परिणये हैं (सो द्रव्य मन है) अर्थात् पूर्वोक्त कर्मोंके क्षयोपशम तथा उदयसे 'गुण-दोष-विचार-स्मरणादिकके उपकारी' हृदय स्थानमें तिष्ठा हुआ सूक्ष्म पुद्गलोंका प्रचयरूप अष्टपांखुरीके फूले हुये कमलके आकार (=मनपनाकरि परिणये पुद्गल) हैं सो द्रव्य मन है

इति*पौद्गलिकम्[1/1] =इस प्रकार (वह द्रव्य मन) पुद्गलजन्य है अर्थात् रूप-रस-गन्ध स्पर्शके संयोगसे पुद्गल द्रव्यका परिणाम है और ज्ञानोपयोगका निमित्त होनेसे नेत्र इन्द्रियके समान रूप-रस-गंध-स्पर्शवान् है ॥

कश्चित्*आह T मनः[1/1] द्रव्यान्तरम्[1/1] रूपादि- =कोई प्रश्न करता है कि मन न्यारा द्रव्य है। रूपादि

परिणाम-रहितम्[1/1] अणु-मात्रम्[1/1] तस्य[6/1] पौद्गलिकत्वम्[1/1] =परिणाम वा विकार वर्जित है, अणुमात्र है, तिस (मन)के पुद्गलजन्यपना

अयुक्तम्[1/1] इति*,तद्[1/1] अयुक्तम्[1/1] कथम्* =ठीक नहीं है(उत्तर)सो(मनको रूपादिपरिणामवर्जित और अणुमात्र कहना)अयुक्त है।कैसे?

उच्यते T तद्- =(उत्तरमें)कहाजाता है कि उस तुम्हारे मतमें मन न्यारा द्रव्य और अणुमात्र) का

इन्द्रियेण[3/1] आत्मना[3/1] च*सम्बद्धम्[1/1] वा*स्यात् T =इन्द्रियसे और आत्मासे सम्बन्ध रखता होगा अथवा

असम्बद्धं वा ? । यद्यसम्बद्धं, तन्नात्मन उपकारकं भवितुमर्हति । इन्द्रियस्य च साचिव्यं न करोति ॥ अथ सम्बद्धं, एकस्मिन्प्रदेशे सम्बद्धं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु उपकारं न कुर्यात् ॥ अदृष्टवशादस्य अलातचक्रवत्परिभ्रमणमिति चेन्न—तत्सामर्थ्याभावात् । अमूर्तस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुणः, स निष्क्रियः सन्नन्यत्र क्रियारम्भे न समर्थः । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेषः क्रियावान्स्पर्शवान्प्राप्तवनस्पतौ

असम्बद्धम् वा ? यदि असम्बद्धम् तद् आत्मनः	=असंबन्ध होगा । जो संबंध नहीं है तो वह (मन) आत्माका
उपकारकम् भवितुम् न अर्हति ; च इन्द्रियस्य	=सहायक अथवा सहकारी होने योग्य नहीं है और इन्द्रियका
साचिव्यम् न करोति । अथ	=मंत्रीपना नहीं करताहै । पक्षान्तरमें(=अथ)अर्थात्इन्द्रियसेऔरआत्मासे मनका
सम्बद्धम् सत् तद् अणु एकस्मिन् प्रदेशे	=संबंध है तो वह (मन)अणु होतेसंते इन्द्रिय तथा आत्माके एकप्रदेशमें
सम्बद्धम् इतरेषु प्रदेशेषु उपकारम्	=संयोग होगा । अन्य प्रदेशोंमें उपकारको
न कुर्यात् । अदृष्ट-वशात्	=नहीं कर सकता है ॥ (आत्माके)न दीखेजानेके वशसे वा अदृष्टगुणहोनेसे
अस्य अलात-चक्रवत्	=इस (मनका) अर्द्धदग्धकाष्ठ अथवा अंगारके चक्रके सदृश
परिभ्रमणम्	=(आत्माके सर्वप्रदेशोंमें) परिभ्रमण होता है
इति चेत् न	=ऐसा अन्यमती)आग्रह करता है(=इतिचेत्)(उत्तर सो नहीं है)
तत्-सामर्थ्य-अभावात्	=क्योंकि उस आत्माके (अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी) शक्तिका अभाव है
अमूर्तस्य आत्मनः निष्क्रियस्य अदृष्टः गुणः	=अमूर्तीक और क्रियारहित आत्माका अदृष्ट गुण है
सः निष्क्रयः सत् अन्यत्र क्रिया-आरम्भे	=सो निष्क्रय होकर अन्यवस्तुविषैं क्रियाके आरम्भमें
न समर्थः	=सामर्थ्यरहित है अर्थात् आत्माका अदृष्टगुण आत्माके तुल्य अमूर्तीक है क्रिया रहित है सो ऐसा होते अन्यवस्तुमें क्रिया करावनेकी शक्तिसे रहितहै
दृष्टः हि वायुद्रव्य-विशेषः क्रियावान्	=जैसे(=हि)देखाजाता है कि वायुद्रव्य वा गुण क्रियावान् और
स्पर्शवान् प्राप्त-वनस्पतौ	स्पर्शवान् है सो प्राप्त कीहुई(अर्थात् पवन जिनमें छूजाती है उन)वनस्पतियोंमें

परिस्पन्दहेतुस्तद्विपरीतलक्षणश्चायमिति क्रियाहेतुत्वाभावः ॥ वीर्यान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामोदयापेक्षिणाऽऽत्मना उदस्यमानः कोष्ठयो वायुरुच्छ्वासलक्षणः प्राण इत्युच्यते ॥ तेनैवात्मना बाह्यो वायुरभ्यन्तरक्रियमाणो निःश्वासलक्षणोऽपान इत्याख्यायते ॥ एवं तावप्यात्मानुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात् ॥ तेषां मनःप्राणापानानां मूर्तिमत्त्वमवसेयम् । कुतः ? मूर्तिमद्भिः प्रतिघातादिदर्शनात् ॥ प्रतिभयहेतुभिरशनिपातादिभिर्मनसः प्रतिघातो दृश्यते । सुरादिभिश्चाभिभवः ॥ हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणात्प्राणापानयोः प्रतिघात उपलभ्यते ।

परिस्पन्दहेतुः च॰तद्-विपरीत-लक्षणः अयम्	=चलावनेका कारण है और उस वायुसे विरुद्ध लक्षणवाला यह(अदृष्ट गुण) है
इति॰क्रिया-हेतुत्व-अभावः ॥	=सो ऐसे (अन्य वस्तुमें यह अदृष्टगुण) क्रिया करावनेका कारण नहीं होसकता है
वीर्यान्तराय-ज्ञानावरण-क्षयोपशम-आंगोपांगनाम-	=वीर्यान्तराय ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशम और आंगोपांगनामक नामकर्मके
उदय-अपेक्षिणा आत्मना	=उदय अपेक्षावाले आत्माकरि(उदयकी है अपेक्षा जाकैं ऐसा जो आत्मा है तिससे)
उदस्यमानः कोष्ठ्यः वायुः उच्छ्वासलक्षणः	=कोठेको ऊंचा लिया हुआ पवन सो उच्छ्वासका लक्षण
प्राणः इति॰उच्यते ; तेन एव॰आत्मना बाह्यः	=प्राण ऐसा कहाजाता है; तिसही आत्माकरि बाहिरका (=बाह्य, बहिर्भव)
वायुः अभ्यन्तर-क्रियमाणः निश्वास-लक्षणः	=पवन भीतर किया हुआ निःश्वासका लक्षण वा जतलानेवाला चिन्ह है
इति॰अपानः आख्यायते ; एवम्॰तौ अपि॰	=इस प्रकार अपान कहाजाता है। ऐसे वे दोनों (प्राण अपान) भी
आत्म-अनुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात् ; तेषाम् मनः-	=जीनेका कारण होनेसे आत्माको उपकारी हैं; तिन मन,
प्राण-अपानानाम् मूर्तिमत्त्वम् अवसेयम्	=प्राण और अपानके (उच्छ्वास निःश्वासके) मूर्तिपना जानना चाहिये
कुतः॰मूर्तिमद्भिः प्रतिघातादि-दर्शनात्	=क्यों (मूर्तिपना) है (उत्तर) मूर्तिमान (पदार्थ)निसे प्रतिघातादिक दीखेजानेसे
प्रतिभयहेतुभिः अशनि-पातादिभिः मनसः	=भयके कारणरूप बिजली (=अशनि)के गिरने आदिसे मनका
प्रतिघातः दृश्यते ; च॰सुरादिभिः अभिभवः	=प्रतिघात देखा जाता है और मदिरादिसे (चित्तका) चलाचल भ्रमपना होता है
हस्त-तल-पुटादिभिः आस्य-संवरणात् प्राण-	=हाथके तले और पियाला (=पुट) आदिसे मुखके ढापनेसे उच्छ्वास
अपानयोः प्रतिघातः उपलभ्यते	=निःश्वासका रुकना जानाजाता है वा प्राप्त कियाजाता है

(१)श्लेष्मणा चाभिभवः ॥ न च्चामूर्तस्य मूर्तिमद्भिरभिघातादयः स्युः॥ अत एवात्मास्तित्वसिद्धिः। यथा यन्त्रप्रतिमाचेष्टितं प्रयोक्तुरस्तित्वं गमयति,तथा प्राणापानादिकर्मापि क्रियावन्तमात्मानं साधयतिकिमेतावानेव पुद्गलकृत उपकार आहोस्विदन्योऽप्यस्तीत्यत आह—

॥सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

(१) श्लेष्मणा३। च* अभिभवः१। ; =कफसेभी तिरस्कार होताहै अर्थात् खखारसेभी उच्छ्वास-निश्वासका निरोध होता है
न*च (२) अमूर्तस्य६ मूर्तिमद्भिः३ अभिघात-आदयः१ स्युः। =और अमूर्तीकका मूर्तीवानकरि मारन आदिक नहीं होसकते अर्थात् यदि मन प्राण अपान अमूर्तीक होते तो उपर्युक्त कथनानुसार उनका मूर्तीक पदार्थोंसे प्रतिभय प्रतिघात (=रुकना,अभिभव(=तिरस्कार) और अभिघात (=मारण) न होता ॥
अतः*एव*आत्म-अस्तित्व-सिद्धिः१।; =इसलिये (प्राण-अपानादि क्रियाओं द्वारा)ही आत्माका अस्तित्व सिद्ध है
यथा*यन्त्रप्रतिमा-चेष्टितम्१।।प्रयोक्तुः६। =जैसे यन्त्रकी पुतलीका इधरउधर चलायेजाना यन्त्रकेचलानेवालेकी
अस्तित्वं२।।गमयति।तथा*प्राण-अपानादि-कर्म-अपि* =विद्यमानताको जताता है तैसे उच्छ्वास और निःश्वासादिकी क्रिया(कर्म)भी
क्रियावन्तम्२।आत्मानम्२।साधयति।;किम्*एतावान्१। =क्रियावन्त आत्माको सिद्ध करता है। क्या इतना (एतावान्)
एव*पुद्गलकृतः१।उपकारः१।आहोस्वित्*अन्य- =ही पुद्गलका कियाहुआ उपकारहै अथवा(आहोस्वित्) अन्य
अपि*अस्ति।इति*अतः*आह। =भी है। इसलिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

(३)**सूत्रम्—** ॥ सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

= ((४)जीवानाम्) सुख-दुःख-जीवित-मरण-उपग्रहाःच(पुद्गलानाम् उपकारः) भवति ॥२०॥

= जीवानाम्६।सुखउपग्रह-दुःखउपग्रह-जीवितउपग्रह-मरणउपग्रहचपुद्गलानां उपकारः भवति २०

(१) श्लेष्मणा-श्लेष्मन् शब्द पुल्लिंग है (पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ ३८३)। 'कफ' संस्कृत शब्द है (वैद्य० कोश पृष्ठ १६७ (२) अमूर्तस्य, मूर्तिमद्भिः, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों हैं (३) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है (४) 'जीवानां' पंद्रहवां सूत्रसे पुद्गलानां ऊन्नीसवांसे और 'उपकारः' शब्द सत्रहवांसे इस सूत्रमें अनुवर्तते हैं ॥

सदसद्वेद्येऽन्तरङ्गहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशादुत्पद्यमानः प्रीतिपरितापरूपःपरिणामः सुखदुःखमित्याख्यायते । भवधारणकारणायुराख्यकर्मोदयाद्भवस्थितिमादधानस्य जीवस्य पूर्वोक्त-प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितमित्युच्यते । तदुच्छेदो मरणम् । एतानि सुखादीनि जीवस्य पुद्गलकृत उपकारः ॥ कुतः ? मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तेः ॥

सूत्रार्थः—जीवानाम् सुखउपग्रहः दुःखउपग्रहः =जीवोंको (अर्थात् जीवोंकेऊपर)सुखकाकारण, दुःखकानिमित्त, वा अन्यथ
जीवितउपग्रहः मरणउपग्रहः च* =जीवनका हेतु, मरण वा मृत्युका निमित्त भी (च)
पुद्गलानाम् उपकारः भवति । =पुद्गलोंका उपकार है
वृत्त्यनुवादः—सत्-असत्-वेद्ये अन्तरङ्ग-हेतौ सति =साता असाता वेदनीय कर्मका (उदय) अभ्यन्तर कारण होनेपर
बाह्य-द्रव्य-आदि-परिपाक-निमित्त-वशात् =और बाहिर द्रव्य क्षेत्र-काल-भावके परिपाक कारणके वशसे
उत्पद्यमानः प्रीतिपरितापरूपः परिणामः =(आत्माके) उपजाहुआ प्रसन्नता और क्लेशरूप भाव
सुख-दुःखम् इति* आख्यायते; भव-धारण-कारण =सो(यथाक्रम) सुख, दुःख कहलाता है, भव धारणका कारण
आयुस्-आख्य-कर्म उदयात् भव-स्थितिम् =आयुनामक नामकर्मके उदयसे भव-स्थितिको
आदधानस्य जीवस्य पूर्वोक्त-प्राण-अपान- =धारणकरनेवाले (=आदधानस्य) जीवोंके पहिले कहेहुये उच्छ्वासनिःश्वासरूप
क्रियाविशेष-अव्युच्छेदः जीवितम् इति* उच्यते । =क्रियाविशेषका विच्छेदन होना (अव्युच्छेदो) सो जीवन कहाजाता है
तद्-उच्छेदः मरणम् एतानि सुख-आदीनि =उस (जीवित)का उच्छेद है सो मरण है । ये सुख-दुःख-जीवित-मरण
जीवस्य पुद्गलकृतः उपकारः ॥ कुतः*? =जीवके पुद्गलका कियाहुआ उपकार है । (प्रश्न)क्योंकरसुखादि पुद्गलके(उपकारहैं)
मूर्तिमत्-हेतु-सन्निधाने सति तद्-उत्पत्तेः =(उत्तर)मूर्तिक निमित्त निकट होनेपर उन(सुखादिकों)की उत्पत्ति होजाती है

---

(१) च-यहांपर समुच्चयके लिये है इस बातका द्योतक है कि उक्त चार पुद्गलोंके कर्तव्य वा कार्यके अतिरिक्त जीवोंको अन्यभी उपकार हैं वे उपकार "शरीर-वाङ् मनः-प्राण-अपानाः" हैं जिनका कथन उन्नीसवां सूत्रमें करचुके हैं और उपग्रह शब्द इस प्रयोजनसे लाये हैं कि एक पुद्गलका दूसरे पुद्गलके ऊपर उपकार, अनुग्रह, सहायताभी होती है जैसे कांसादिकका भस्मादिसे, जलादिकका निर्मलीसे, उष्ण लोहेका जलसे इत्यादि एक पुद्गल को दूसरे पुद्गलकृत उपकार है ॥

उपकाराधिकारादुपग्रहवचनमनर्थकम् । नानर्थकम् । स्वोपग्रहप्रदर्शनार्थमिदम् । पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति ॥ तद्यथा—कांस्यादीनां भस्मादिभिर्जलादीनां कतकादिभिरयःप्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः क्रियते ॥ चशब्दः किमर्थः ? । समुच्चयार्थः । अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चीयते । यथा शरीराणि एवं चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति ॥

एवमाद्यमजीवकृतमुपकारं प्रदर्श्य जीवकृतोपकारप्रदर्शनार्थमाह—

उपकार-अधिकारात् । (१)उपग्रह-वचनम् ॥	=उपकारका प्रकरण होने(के कारण)से(सूत्रमें) उपग्रहशब्द
अनर्थकम् ॥; न-अनर्थकम् ॥; स्व-उपग्रह-	=निष्प्रयोजन है(उत्तर)(सूत्रमें उपग्रहशब्द)निष्प्रयोजन नहीं है । अपने लिये सहायता
प्रदर्शन-अर्थम् ॥ पुद्गलानाम् । पुद्गलकृतः ।	=दिखावनेके लिये कि पुद्गलोंका पुद्गलकृत
उपकारः । इदं ॥ इति * तद्यथा * कांस्यादीनां ॥ भस्मादिभिः ।	=उपकार है यह(उपग्रहवचन इस सूत्रमें)है । जैसे कांसादिकोंका भस्मादिकरि
जलादीनाम् ॥ कतकादिभिः ॥ अयस्-प्रभृतीनाम् ॥	=जलादिकोंका निर्मली आदिकरि (और उष्ण) लोहादिकोंका
उदकादिभिः ॥ उपकारः । क्रियते ॥	=जलादिकोंसे उपकार वा अनुग्रह कियाजाता है । अर्थात् कांसादिक धातु भस्मकरि उज्ज्वल होजाते हैं तथा जलादिक निर्मली आदिके संयोगसे मैलरहित होजाते हैं और तप्त लोहादि पानीके डालनेसे शीतल होजाते हैं इत्यादिक पुद्गलद्रव्योंके पुद्गलकृत उपकार हैं
चशब्दः । किम् * अर्थः । समुच्चय-अर्थः । ? अन्यः । अपि *	=(इस सूत्रमें)चशब्द किसलिये है ? । समुच्चय अथवा समुदायके लिये है और भी
पुद्गलकृतः । उपकारः । अस्ति । इति * समुच्चीयते ।	=पुद्गलका किया हुआ उपकार है ऐसा समुच्चय कियागया है
यथा * शरीराणि ॥ एवम् * चक्षुर्-आदीनि ॥	=जैसे(पूर्वोक्त)शरीरादिक पुद्गलजन्यजीवको उपकारी)हैं ऐसे नेत्रादिक
इन्द्रियाणि ॥ अपि * इति * एवम् * आद्यम् । अजीवकृतम् ।	=इन्द्रियांभी पुद्गलकृत जीवोंको अन्य उपकार)हैं इसप्रकार प्रथम अजीवका कियाहुआ
उपकारम् । प्रदर्श्य * जीवकृत-उपकार-	=उपकार(जीवोंप्रति)दिखाकर जीवका कियाहुआ(परस्पर)अनुग्रह वा भलाई(उपकार)
प्रदर्शन-अर्थम् ॥ आह ।	=दिखानेके लिये(आचार्य्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

(१) क्योंकि 'उपग्रहाः' शब्द इस सूत्रमें बहुवचन है इससे सुख-उपग्रह, दुःख-उपग्रह, जीवित-उपग्रह, मरण-उपग्रहके पश्चात्भी 'पुद्गलानां' । पुद्गलानाम् । उपग्रह है(अर्थात् पुद्गलोंको पुद्गलकृत सहायता है) ऐसाभी अनुवर्तन है । (२) खड्गधाराश्रितं तोयं भिनत्ति गजमस्तकम् ॥

॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

परस्परशब्दः कर्मव्यतिहारे वर्तते । कर्मव्यतिहारश्च क्रियाव्यतिहारः । परस्परस्योपग्रहः परस्परोपग्रहः । जीवानामुपकारः ॥ कः पुनरसौ ? । स्वामी भृत्यः, आचार्यः शिष्यः, इत्येवमादि भावेन वृत्तिः परस्परोपग्रहः ॥

(१)सूत्रम्–परस्परोपग्रहो जीवनाम्(२१) = परस्परोपग्रहो(जीवानाम्)जीवानाम्(उपकारः)भवति॥२१॥

सूत्रार्थः—परस्पर-उपग्रह-(२)जीवानाम् ६/३।	=परस्पर उपकार जीवोंको
जीवानाम् ६/३। (३)उपकारः १/१। भवति।	=जीवोंका उपकार है अर्थात् जीवकारणवशात् एक दूसरेका सुख दुःख जीवन मरण तथा सेवा शुश्रूसा आदिसे उपकार करते हैं भावार्थ एक जीव दूसरेको आपसमें सुखका निमित्त, दुःखका निमित्त, जीवनका हेतु मरणका निमित्त और सेवा शुश्रूसा आदिका हेतुभी होते हैं
वृत्त्यनुवादः—परस्परशब्दः १/१। कर्म-व्यतिहारे ७/१। वर्तते।	=(इस सूत्रमें)परस्परशब्द किया(=कर्म)के अलटन पलटन(=व्यतिहार)केअर्थविषें वर्तता है
कर्मव्यतिहारः १/१। च*क्रियाव्यतिहारः १/१।	=और(=च) कर्मव्यतिहार है सो क्रिया व्यतिहार है अर्थात् उसका उपग्रह वह करता है और उसको उपग्रह वह करता है
परस्परस्य ६/१। उपग्रहः १/१। परस्पर-उपग्रहः १/१।	=आपसका उपग्रह वा अनुग्रह है सो परस्पर उपग्रह है
जीवानाम् ६/३। उपकारः १/१।	=(वह परस्परउपग्रह) जीवोंका उपकार है अर्थात् आपसमें जीवोंके एक दूसरेकेलिये उपकार प्रवर्तता है
कः १/१। पुनः*असौ १/१। स्वामी १/१। भृत्यः १/१।	= प्रश्न)बहुरि(=पुनः)वह(=असौ)(परस्पर उपग्रह) क्या है (उत्तर) स्वामी, चाकर
आचार्यः १/१। शिष्यः १/१। इत्येवम्*आदि ३/१। भावेन ३/१।	=आचार्य शिष्य इत्यादिकको हृदयकी अवस्थासे(=भावेन)
वृत्तिः १/१॥ परस्पर-उपग्रहः १/१।	=जो चेष्टा-उद्योग-उपाय व्यवसायय =वृत्ति) है सो परस्पर उपग्रह है

(१) दोनो सम्प्रदायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ हमारे यहां किसी २ पुस्तकमें 'जीवानाम्' के स्थान पर 'जीवानां' पाठ है यह कातन्त्ररूप माला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम टिप्पणी पृष्ठ ५, ६, और पृष्ठ ५३८, ५४०)
(२) 'जीवानाम्' शब्दकी अनुवृत्ति २१वें सूत्रसे लीगई है। (३) 'उपकार' इस शब्दकी अनुवृत्ति सत्रहवां सूत्रसे लीगई है।

स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुपकारे वर्तते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिषेधेन च ॥ आचार्य उभयलोकफलप्रदोपदेशदर्शनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वर्तते । शिष्या अपि तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणामुपकाराधिकारे ॥ पुनरुपग्रहवचनं किमर्थम् ? पूर्वोक्तसुखादिचतुष्टयप्रदर्शनार्थं पुनरुपग्रहवचनं क्रियते ॥सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत उपकार इति ॥ आह यद्यवश्यं सतोपकारिणा भवितव्यं संश्च कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार

स्वामी।तावत्*वित्तत्याग-आदिना।भृत्यानाम्।	=स्वामी तौ(=तावत्)धन(=वित्त)देने आदिसे(=त्यागादिना) सेवकोंकी
उपकारे।वर्ततेभृत्याः।च*हितप्रतिपादनेन।।च*अहित-	=सहायता करने)में प्रवर्तता है और(=च)चाकर हितकी वार्ता कहिकरि और अहितका
प्रतिषेधेन।;आचार्य्यः।उभय-लोक-फल प्रद-	=निषेधकरि स्वामियोंकेउपकारमेंप्रवर्तता है) आचार्य दोनों लोकका फलदेनेवाला(प्रद)
उपदेश-दर्शनेन।।च*तद्-उपदेश-विहित-	=उपदेशको दिखावनेकरि और(=च)उस उपदेशके अनुकूल उचित अथवा योग्य
क्रिया-अनुष्ठापनेन।।शिष्याणाम्। अनुग्रहे।	=क्रियाका आचरण करावनेकरि शिष्योंके उपकार (=अनुग्रह) में
वर्तते। शिष्याःअपि*तद्-आनुकूल्यवृत्त्या।।	=प्रवर्तता है । चेलेभी उस(आचार्य)के अनुकूलपना(=आनुकूल्य)में प्रवृत्ति होकर
आचार्याणाम्।उपकार-अधिकारे।, पुनर्*	=आचार्योंके उपकार विषयमें(अधिकारमें)(प्रवर्तते हैं)(प्रश्न)बहुरि
उपग्रह-वचनम्।।किम्।।अर्थम्।। ? पूर्व-	=उपग्रह शब्द(इस सूत्रमें)किसलिये है । पहिले(सूत्र अर्थात् इस अध्यायके२०वां सूत्रमें)
उक्त-सुख आदि-चतुष्टय-प्रदर्शन-अर्थम्।। पुनर्*	=कहे हुए सुखदुःख-जीवित-मरण-चारअवयवोंके दिखावनेके लिये फिर (=पुनः)
उपग्रहवचनम्।।क्रियते ; सुख-आदीनि।।अपि*	=उपग्रहवाक्य(=इससूत्रमें)कियागया है सुख-दुःख-जीवित-मरणभी
जीवानाम्।जीवकृतः।उपकारः।इति*आह। यदि*	=जीवोंके जीवकृत उपकार हैं कोई पूछता है कि जो (=यदि)
अवश्यम्*सता।-उपकारिणा। भवितव्यम्।।;	=सत्तारूपवस्तु(=सत्)अवश्य उपकार सहित होनेयोग्य (=भवितव्यम्) है
सन्।च*कालम्।अभिमतः।तस्य।कः।उपकारः।	=और काल सत्तारूप वा सत्स्वरूप (=सन्)मानागयाहै तोतिस(काल)काक्या उपकार है

(१) सन् यहांपर प्रथमा विभक्ति एकवचन पुंलिंग 'सत् शब्दका है । इसकाअर्थ सतरूप अथवा सत्स्वरूपहैं।()तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आहसे इत्यत्रोच्यते' तक यह वाक्य वैसा ही है जैसाकि सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है 'तस्य क उपकारः' के स्थलमें 'स किमुपकारः' राजवार्तिकमें है उससे अर्थभेद नहीं होताहै। इस वाक्यका अनुवाद पंडित पन्नालालजी दूनीवाले और पंडित पन्नालालजी न्यायदिवाकर ने क्रमसे ऐसे किया है 'कोऊ शिष्य कहै है जो अवश्य

इत्यत्रोच्यते—

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेचकालस्य ॥ २२ ॥

भावार्थ ऐसा है कि जब यह बात सुनिश्चितरूपसे मानी जाचुकी है कि जो सत्स्वरूप होगा वह अवश्य उपकारी होगा जैसे धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य इत्यादि पदार्थ सत्स्वरूप हैं इसलिये वे उपकारी मानेगये हैं तब काल द्रव्यभी सत्स्वरूप पदार्थ है उसका उपकार है। कालद्रव्यका लक्षण विशदरूपसे आगे सूत्र ३६में कहाजायगा और वह अमूर्तीक स्वरूप और निष्कर्म है सब द्रव्योंका यहां उपकार प्रकरण है इसलिये

इति#अत्र#उच्यते। =इस प्रकार यहां (अग्रिमसूत्रमें) कहाजाता है कि—

[1]सूत्रम्—वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

उपकारीकूं सत् होनों योग्य है सो सतरूप काल अभिमत है सो कहा उपकारवान है" । तत्त्वार्थराजवार्तिक अध्याय५ पृष्ठ ६६ आगें जो सत्ताकप वस्तु है सोई उपकारकरि परिणमन रूप होय है। काल द्रव्य भी सत्ता स्वरूपहै" सो कालद्रव्य कहीं उपकाररूप है" तत्त्वार्थरत्नमाला अध्याय ५ पृष्ठ ६२ ॥

(१) इस सूत्रके कई पाठ हैं। मुद्रितसंस्कृत सर्वार्थसिद्धि की और पन्नालालजी बाकलीवाल मुद्रित मोक्षशास्त्रकी दोनों दोनो आवृत्तियोंमें उपर्युक्त पाठ हैक्योंकि अनुवाद संस्कृत सर्वार्थसिद्धिसे किया है। अतः पूर्वोक्त पाठ लिया है (२) सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृष्ठ १२७में वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेचकालस्य" ऐसा पाठ है। वहांपर उक्तभाष्यमें यह टिप्पणी भी है कि "यहां पर वर्तना, परिणाम और क्रिया इन तीनों पदोंका विरोध न होनेसे समास करके पढ़ना चाहिये कोई असमस्त ही पढ़ते हैं। सापेक्ष होनेसे परत्वापरत्वका तो समास है ही" । और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक(मुद्रित) पृष्ठ ४१२में पूर्णतया सभाष्यका ही पाठ है अर्थात् दोनो आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ एकप्रकारसे एकसा"वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वेच काल-स्य"हुआ॥२२॥ और दोनों आम्नायोंमें अर्थभी एकसा है ॥ (३) पंडित सदासुखजी कृता "अर्थप्रकाशिका" के पृष्ठ ३०८ और पंडित सदासुखजीकृता लघु सूत्रटीका के पृष्ठ २१ में, पंडित जयचन्द्ररायजी कृता सर्वार्थसिद्धि वचनिकाके पृष्ठ १४० में, निर्णयसागर मुद्रित बम्बई के जैन नित्यपाठसंग्रहके १२६ दोनों आवृत्तियोंमें (जहां तत्त्वार्थसूत्र मुद्रित है) और श्रीयुत् ज्ञानचन्द्रजी मुद्रित तत्त्वार्थसूत्राणि के पृष्ठ १६में और सनातन जैनग्रन्थमालाके पृष्ठ ६० में तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक के पृष्ठ २२३ में निम्नलिखित पाठ है। "वर्तना परिणाम क्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" इस पाठमें दो शंकायें उत्पन्न होती हैं। चकार इस स्थान पर क्यों लाये, दूसरी शंका यह कि जब वर्तना शब्दसे परत्वे शब्दपर्यन्त एकसमासहै तोकि तौद्विवचनमेंसमासान्त क्यों किया ? बहुवचन करके ऐसा सूत्र क्यों न किया कि "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वानि च कालस्य" (क) चकारके सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामीने वृत्तिमें भी कुछ नहीं लिखा कि क्यों लाए और जहांतक खोज कियागया है किसी भाषाके अनुवादक महाशय ने भी नहीं लिखा कि "च"शब्द सूत्रमें इस कारणसे लाये हैं, हां पन्नालाल बाकलीवालकृत मोक्षशास्त्र बालबोधनी भाषाटीका सहित द्वितीयावृत्ति के पृष्ठ ३६ में ऐसा अर्थ किया है "(च)और (कालस्य) कालके (वर्तना-परिणामक्रिया) वर्तना, परिणामःक्रिया तथा(परत्वा परत्वे)परत्व और अपरत्व ये पांच उपकार है" इस अनुवादमें

= वर्तना-परिणाम-क्रियाः-[१]परत्वापरत्वे च (जीवानाम् पुद्गलानाम्) कालस्य (उपकारः) भवति॥ २२॥

"और तथा-और ये तीनों च के अर्थवाची होसकते हैं परन्तु चकार को कोष्ठकमें लानेके पश्चात् "और" शब्द लाये हैं। इससे जानपड़ता है कि उपकार का प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रसे पिछले सूत्रसे मिलादिया है अर्थात् जीवोंके परस्पर उपकार है (सूत्र २१) और (=च) कालके वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व ये पांच उपकार हैं॥ सूत्र २२॥ ऐसे दोनों सूत्रोंको मिलासकते हैं। 'तथा' शब्द अधिक जान पड़ताहै अंतिम 'और' शब्द 'परत्वापरत्वे' समासको तोड़नेसे "परत्वं अपरत्वंच' ऐसा होजाता है सो इस चकारका भाषानुवाद है। पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका और पंडित जयचंद्रजीकृत सर्वार्थसिद्धि वचनिका में चकारका भाषानुवाद नहीं है अर्थात् दोनोंमें यथाक्रम ऐसा अर्थ किया है कि "वर्तना परिणाम क्रिया परत्व अपरत्व ए कालकृत उपकार हैं"। वर्तना परिणाम क्रिया परत्वा परत्व ए कालके उपकार हैं॥

(ii) द्विवचनान्त क्यों है (उत्तर) संस्कृत सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ ५८८ का पाठ है कि 'ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु =इस सूत्रमें वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये 'तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्' ॥उस वर्तनाके भेद परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व हैं तिन भेदोंका भिन्न ग्रहण निष्प्रयोजन है नानर्थकम् = निष्प्रयोजन परिणामादयका ग्रहण नहीं है॥ कालद्वय सूचनार्थत्वात्प्रपञ्चस्य = क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके लिये विस्ताररूप कथन है। कालोहि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च = काल दो प्रकार है परमार्थकाल और व्यवहारकाल

परमार्थकालो वर्तना लक्षणः = वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थकाल है॥ परिणामादि लक्षणो व्यवहारकालः = परिणाम, क्रिया, परत्व अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो व्यवहारकाल है॥ जब वर्तना निश्चयकालका लक्षण है और परिणाम क्रिया परत्व-अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं तब वर्तना शब्दको एक वचन मानकर और परिणाम-क्रिया परत्व अपरत्व इन सबको एक मानकर दोनोंको मिलाकर वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे ऐसा द्विवचन किया है। दोनों शंकाओंका समाधान ऐसा होसकता है कि यदि चकारको समुच्चय के अर्थ में लेलें अर्थात् उपकारका प्रकरण समाप्ति होनेके कारणसे इस सूत्रको पूर्ववर्तीसूत्रसे मिलादिया जावे, 'वर्तना' को निश्चयकालका लक्षण मानकर और परिणाम-क्रिया-परत्वअपरत्वको व्यवहारकालका लक्षण मानकर, दोनोंप्रकारके लक्षणोंको एक एक मानकर मिला देवें, समास करदेवें तो 'च वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वेकालस्य' ऐसा सूत्र होजाता है

(१) सर्वार्थसिद्धि वृत्तिमें "वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य" ऐसे सूत्रका यह हेतु दिया है कि 'परत्वापरत्वे' (=परत्वं अपरत्वं च) सापेक्ष होनेसे 'परत्व-अपरत्व' को दो शब्द पृथक् पृथक् समझकर नपुंसकलिंगमें द्विवचनमें लाये और वर्तना-परिणाम-क्रिया इतनेका एकसमास करके "वर्तना-परिणाम-क्रियाः" ऐसा स्त्रीलिंग बहुवचनमें लाये क्योंकि क्रियाशब्द स्त्रीलिंग है॥ परत्व अपरत्व दोनों नपुंसकलिंगी हैं और "च" 'वर्तना-परिणाम-क्रियाः' और 'परत्वापरत्वे' दोनों समासोंको मिलाता है। अब अर्थ ऐसा हुआ कि 'वर्तना-परिणाम-क्रिया और परत्वापरत्वकालके उपकार हैं॥ यहांपर स्मरण रहै कि इस सूत्रमें 'कालस्य' शब्दका प्रयोग सामान्यरूपमें किया है 'कालशब्द' निश्चयकाल और व्यवहारकाल अर्थात् समय आवली, मुहूर्त, पहर, दिन इत्यादि दोनों का द्योतक है इसलिये यह अर्थ हुआ कि "वर्तना निश्चय वा परमार्थकालका लक्षण है और परिणाम, क्रिया परत्व और अपरत्व व्यवहारकालके लक्षण हैं॥

= [1]वर्तना-परिणाम-क्रियाः–च परत्वम् अपरत्वम् च(=परत्वापरत्वे)जीवानाम् पुद्गलानाम् कालस्य उपकारः भवति॥२२॥

सूत्रार्थः—वर्तना- =वर्तना (=पदार्थोंकी पर्यायोंके पूरणकरनेमें बाह्य सहकारता)
परिणाम- =परिणाम(=द्रव्यका अपने स्वभावको न छोड़कर पहिली अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना)
क्रियाः [1/3] =क्रिया (=हलनचलनादिरूप होना अथवा एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्र तक जाना)
च*परत्वम् [2/1] ॥ =और परत्व (=एकसे दूसरेका काल रचित अवस्थामें बड़ापन अथवा पहिले होना वा पूर्वता)
अपरत्वम् [2/1] ॥ च* =तथा अपरत्व (एक दूसरेका काल रचित अवस्थामें छोटा होना अथवा पिछलापन वा छोटापन)
जीवानाम् [6/3] पुद्गलानाम् [6/3] =(ये पांच) जीवोंको और पुद्गलोंको
कालस्य [6/1] उपकारः [1/1] =काल(द्रव्य कृत उपकार है अर्थात् वर्तना लक्षण निश्चय वा परमार्थ कालका है और परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व व्यवहार कालके लक्षण हैं भावार्थ यह है कि कालद्रव्य दो प्रकारका है (१) निश्चयकाल वा परमार्थकाल (२) व्यवहारकाल (१) जो आदि तथा अन्तसे रहित है अमूर्त है, नित्य है समय घंटा आदिका उपादानकारण भूत है तो भी समय आदि भेदोंसे रहित है और कालाणुद्रव्यरूप है वह तो निश्चयकाल है बृहद्द्रव्यसंग्रह (पृष्ठ ५४) (२)जो आदि तथा अन्तसे सहित है समय घटिका तथा प्रहर आदि विवक्षित व्यवहारके विकल्पोंसे युक्त है वह उसी द्रव्यकालका पर्यायभूत व्यवहारकाल है (बृहद्द्रव्य संग्रह पृष्ठ ५४) अथवा यों कहिये कि जीव तथा पुद्गलका परिवर्तन जो नूतन तथा जीर्ण

---

(१)धर्मादिक द्रव्यें अपनी अपनी पर्यायोंके पूर्णार्थ (=पूरणार्थ)अपने अपने उपादान-कारणकरि स्वभावसेंही वर्ते हैं तौभी(=तथापि)जैसे कुम्हारके चाकके भ्रमणमें उसके नीचेकी शिलाकीली सहकारिणी है तैसे जो उस अन्तरंग परिणतिमें अथवा वर्तनेमें बाह्यकारण है जो सब पदार्थोंकी परिणतिमें सहकारी है उसीको "वर्तना" कहते हैं॥

(२) वर्ते तो सर्वद्रव्योंके पर्याय हैं उन द्रव्योंका प्रवर्तानेवाला अथवा हेतुकर्ता कालद्रव्य है तिस समय स्वरूप वर्तनाको कालका वर्तना कहिये (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४१) यहां भावार्थ ऐसा है जो धर्मादि द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटाने कूं समय है सोही निमित्त मात्र है। तिस समय ही कूं कालकी वर्तना कहिये है। यह वर्तना ही कालाणु, द्रव्यका अस्तित्व जनावे है। बहुरि इस वर्तनाकूं जेती वार लगी ताका नाम काल कहिये। सो यह व्यवहारकालसंज्ञा है। सो तिस निश्चयकालकी अपेक्षा ही तें कहिये है ऐसे यह वर्तना द्रव्यनिकूं कालका उपकार है। सर्वार्थसिद्धिवचनिका पृष्ठ ४४२

वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा [1]युट् स्त्रीलिङ्गे वर्तते। तेनेति भवति।

पर्याय है उस पर्यायकी जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वहही जिसका स्वरूप है वह द्रव्यपर्यायरूप व्यवहारकाल है सोही संस्कृत प्राभृतमें कहाभी है कि "स्थिति जो है सो कालसंज्ञक है" तात्पर्य यह है कि उस द्रव्यके पर्यायसे संबन्ध रखनेवाली जो समय घटिका आदिरूप स्थिति है वह स्थितिही 'व्यवहारकाल' इस संज्ञाकी धारक होतीहै॥ निश्चयकालका वर्तनालक्षण है और व्यवहारकालके परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व लक्षण हैं ये पांचों निश्चयकालके निमित्तसे होते हैं और अन्य द्रव्योंको यह (निश्चय)कालद्रव्यका उपकार है और उसी परमार्थकालका अस्तित्व जतावे है। क्योंकि व्यवहारकाल गौण निश्चय मुख्यकाल के विना नहीं होसकता है॥ व्यवहारकाल अन्यपदार्थों करि जाना जाता है जैसे दिनरात आदिक व्यवहारकाल सूर्यादिकके उदय अस्तसे जाने जाते हैं और व्यवहारकाल ही अन्य पदार्थों के जतलानेका कारण है जैसें यह पुल शतवर्षका है॥ यातैं (व्यवहारकालसे)निश्चयकाल जाना जाता है। (सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ ४४२देखो) 'जीवपुद्गलोंकेपरिणामनकरि व्यवहारकाल प्रगट होय है सो यह व्यवहारकाल तीनप्रकार है' (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३०६) अतीत(=भूत) वर्तमान अनागत(=भविष्यत्)॥ निश्चयकालविषैं एक एक लोकाकाशके प्रदेशविषैं आपसमें परस्पर भिन्न २ रत्नकी राशिके सदृश तिष्ठते असंख्यातकालाणु तिनकों काल कहना सो तो मुख्य है और भूत वर्तमान भविष्यत् नाम कहना गौणहै और व्यवहारकालविषैं अतीत वर्तमान अन्त-गतनाम है सो तो मुख्य है और काल कहना गौण है।

पुस्यनुवादः—(= वृतेः) णिच्-अन्तात्) =वृत्(=होना)(धातु)से(परैं)णिच् (प्रत्यय)के अन्तमें आनेसे (वृत् धातुका) प्रेरक(प्रयोजक हेतुकर्ता वा काममें लगानेहारा)अर्थ होजाता है अर्थात् वृत् धातु,अकर्मकसे सहेतुक सकर्मक क्रिया होजाती है

कर्मणि॥ भावे वा*युट् =(सो वृत् धातु)कर्मविषैं(कर्मणि प्रयोगमें)वर्तता है अथवा भावमें युट्(=अन) प्रत्यय सहित

स्त्रीलिंगे वर्तते तेन इति*भवति =स्त्रीलिंगमें वर्तता है। तिस (कर्मणि वा भावे) करि ऐसा होता है

(१) पूज्यपाद स्वामीके 'युट्' आपाणिनिके "ल्युट्" और श्रीतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिताके युक् प्रत्ययोंके स्थानमें 'अन' होजाता है सूत्रमें 'काल'शब्द सामान्यतासे निश्चय और व्यवहार कालका द्योतक है। (२)(क) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तते। तेनेति भवति। वर्त्यते वर्तनमात्र वा वर्तना इति॥ ऐसा पाठ सर्वार्थसिद्धिकी वृत्तिकी प्रथमा वृत्तिमें है। (ख) वृतेर्णिजन्तात्कर्मणि भावे वा युट् स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति। वर्त्यते वर्तनं वर्तनमात्रं वा वर्तना इति॥ यह पाठ सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिमें है। द्वितीयावृत्तिके पाठमें 'वर्त्यते'के पश्चात् 'वर्तनं' शब्द नहीं होना चाहिये शेष पाठमें यद्यपि दोनों संस्करणोंमें कुछ अन्तर है परन्तु अर्थ दोनों पाठोंका एकसा बनजाता है जैसे प्रथमके अर्थके लिये देखो इस पृष्ठको और पृष्ठ८८ को। दूसरेके स्त्रीलिंगे वर्तनेति भवति वाक्यका अर्थ है कि स्त्रीलिंगमें वर्तना शब्द ऐसा होता है॥ दूसरे भागमें 'वर्तते' शब्द इस हेतुसे ठीक नहीं है कि वह 'कर्तरि'प्रधान "वृत्" धातुका है और यहां पर केवल 'कर्मणि प्रयोग' और 'भावे प्रयोगमें' 'वृत्'में णिच् प्रत्यय लगाया है॥ तीन

वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना इति ॥ धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति

वर्त्यते। =वर्तायाजाता है (यह वाक्य कर्मणिप्रयोगमें वा कर्मप्रधानमें न कि कर्तरिप्रयोग वा कर्तृप्रधानमें है)

वर्तनमात्रं[३]।वा*वर्तना[३]। इति* =प्रवर्तावनेमात्र वा वर्तनमात्र है सो वर्तना ऐसा(भावेप्रयोग=भावमें काम लायागया) है। सो वर्तनाशब्द ऐसे बनाहै कि वृत्+णिच्+युट=आ (=स्त्रीलिंगका चिन्ह)=वर्त्+अन+आ=वर्तना णिच्केलगानेसे ऋको गुणसंज्ञा होकर वर्त् होगया और सहेतुक सकर्मक क्रिया होगई ॥ वर्तना=दूसरोंको प्रवर्तावना अर्थात् पदार्थोंमें परिणमन में सहकारिता। भावार्थ यह है कि वृत् धातुके अन्तमें णिच्प्रत्यय लगाया जिस णिच् प्रत्ययका यह फल होताहै कि वृत् धातुके ऋको गुणसंज्ञाहोकर वर्त् शब्द बनजाताहै और वृत् अकर्मक धातुको (णिच् प्रत्यय) सहेतुक सकर्मक करदेता है अर्थात् वृत् धातुका अर्थ (दूसरोंको) वर्तावना ऐसा होजाता है फिर युट् प्रत्यय जिसके स्थानमें अन होजाता है जोड़ा जाता है तब वर्त्+अन=वर्तन शब्द बना पश्चात् 'आ' स्त्रीलिंगका चिन्ह जोड़नेसे वर्त्+अन+आ होजाता है इसलिये वर्तना शब्द स्त्रीलिंग भाव प्रयोगमें बना और उपर्युक्त कथित 'वर्त्' धातुमें य कर्मप्रधानका चिन्ह जोड़कर फिर अन्यपुरुष एकवचन आत्मनेपद वर्तमान क्रियाकाचिन्ह'ते'लगाते हैं तब वर्त्+य+ते=वर्त्यते कर्मप्रधानमें)बनगया इस'वर्त्यते'काअर्थ वर्तायाजाताहै इसलिये 'वर्तना'भावप्रयोगस्त्रीलिंगमेंबनाऔर'वर्त्यते' कर्मप्रधान,एकवचन,अन्यपुरुष वर्तमानक्रियाका रूप बना॥

धर्मादीनां द्रव्याणां स्वपर्याय निर्वृत्तिं[३]। प्रति* =धर्मादिक द्रव्यें अपने अपने पर्यायोंके निर्वृत्तिके लिये (=निर्वृत्ति प्रति)

प्रति हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिमें 'णिचि स्त्रीलिंगे वर्त्तनेति भवति। वर्त्यते वर्त्तमानमात्रं वा वर्त्तनेति' ऐसा पाठ है ॥ तत्त्वार्थराजवार्तिकका पाठ कि स्त्रीलिंगे (कर्मणिभावे वा णिजन्तात्) युचि सति वर्तनेति भवति। वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तनेति' ऐसा है ॥ इसलिये हमने प्रथमपुस्तिका पाठ लिया है ॥

(३) पं० जयचन्द्रायजीने वचनिका पृष्ठ ४४६)में उत्पत्ति लिखा है, सम्भव है कि जिस पाठपे उन्होंने वचनिका की हो उस पाठमें 'निर्वृत्ति'के स्थानमें उत्पत्ति, वृत्ति वा निर्वृत्तिमेंसे कोई शब्द हो क्योंकि इन तीन शब्दोंमेंसे कोईभी उत्पत्तिके अर्थमें आसकता है परन्तु "निवृत्ति"का अर्थ उत्पत्ति नहीं होसकता है राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकभी अवलोकन कियेगये परन्तु कुछ सफलता प्राप्त नहीं हुई ॥ "निर्वृत्ति"शब्द सर्वार्थसिद्धि पुस्तकी हस्तलिखितके तीन प्रतियोंमें पायाजाता है परन्तु सर्वार्थसिद्धिकी दोनों आवृत्तियोंमें 'निवृत्ति' छपा हुआ है ॥ इससे मैंने उस शब्दको लेकर अनुवाद किया है और मेरी समझमें एक प्रकारसे दोनोंही शब्दोंसे एकही भाव प्रगट होसकता है क्योंकि किसी द्रव्यकी एक पर्यायकी जिस समय निवृत्ति होती है उसी समयमें दूसरी पर्यायकी उत्पत्ति वा निर्वृत्ति होती है अथवा यों कहसकते हैं किसी द्रव्यकी जिस समय एक पर्यायकी उत्पत्ति होती है उसी समय उस द्रव्यकी दूसरी पर्यायकी निर्वृत्ति होती है जैसे जिस समयमें अंगुलिरूप द्रव्यके वक्र (बांके) प्रयायकी उत्पत्ति होती है उसी समयमें उसके सरल प्रयायकी निवृत्ति होती है और अंगुलीरूपसे उस अंगुलीमें ध्रौव्य है अथवा यों दृष्टान्त लीजिये कि जिससमयमें अंगुलिरूप द्रव्यके सरल पर्यायकी निवृत्ति होती है उसी समयमें उसकी वक्री पर्यायकी उत्पत्ति होती है ॥ वृत्त=उत्पन्न (वामनचन्द्रकोषपृष्ठ १६४ प्रत. 'वृत्ति' स्त्रीलिंगमें उत्पत्ति के अर्थमें आसकता है ॥

स्वात्मनैव वर्तमानानां बाह्योपग्रहाद्विना तद्वृत्त्यभावात्तत्प्रवर्तनोपलक्षितः कालः

स्व-आत्मना[३] एव*(१) वर्तमानानाम्[३] ।।। बाह्य-उपग्रहात्[५] विना*तद्-(२) वृत्ति-अभावात्[५] तत्-प्रवर्तना-उपलक्षितः[१] कालः[१]

=आपसे स्व-आत्मना[३])ही वर्तमानरूप हैं या वर्तनेवाली हैं (तौभी) बाह्य =निमित्त विना (सहायता विना वा सहारा विना) उन (धर्मादिक द्रव्यों) की =अन्तरंग परणति (=वृत्ति) वा वर्तना (=वृत्ति) का अभाव होता है। इससे =उन (धर्मादिक द्रव्यों)को वर्तनारूपकरनेमें वा प्रवर्तावनेमें काल जाना जाता है-निश्चय कियाजाताहै वा पहचाना जाताहै(=उपलक्षितः)अर्थात् धर्मादिक द्रव्यें हैं वे स्वयं उपादान कारणकरि अपनी अपनी पर्यायोंके उत्पत्तिरूप वर्तेते हैं तौभी उनकी उक्त पर्यायोंके लिये बाह्य कारणकी आवश्यकता है, बाह्यनिमित्त विना अन्तरंग परणति नहीं होसकती है, सो तिस अन्तरंग परणति अथवा प्रवर्तनेका समय है सो परमार्थकालका चिन्ह है ॥ जैसे एक मनुष्य जिसकी पदार्थों के देखनेकी शक्ति विद्यमान है परन्तु उस को यदि बहुत अंधेरेमें लेजाकर पदार्थ दिखाये जावें तो वह किसी प्रकार किसीभी पदार्थको नहीं देख सकता है क्योंकि बाह्य सहकारी कारण अर्थात् उजेला नहीं है इसी प्रकार धर्मादिक द्रव्योंमें अन्तरंग शक्ति वर्तनेकी विद्यमान है तौभी द्रव्यकाल वा निश्चयकालकी सहायता विना वे द्रव्य वर्तनेमें असमर्थ हैं। इनद्रव्योंको(३)वर्तनारूप करनेमेंही निश्चयकालका अस्तित्व ज्ञात होता है ॥

(१) 'धर्मादीनां' और 'वर्तमानानां' येदोनों शब्द 'द्रव्याणां' शब्दसे सम्बन्ध रखतेहैं और 'द्रव्याणां' शब्दके विशेषणहैं, अतःनपुंसकलिंगमें रक्खेगये हैं।

(२) पद्मचन्द्र कोश पृष्ठ ३६५ में 'वृत्ति' शब्दका अर्थ 'अन्तःकरणका परिणामविशेष' और 'वर्तन' लिखाहै॥इसलिये अन्तरंग परणति(पं०सदासुखजी के अनुसार) और वर्तना (पं० जयचन्द्ररायजीके अनुकूल) यहां पर "वृत्ति" शब्दका अनुवाद कियागया है॥

(३) व्याकरण शास्त्रमें करण और अधिकरण अर्थ में धातुओंसे युट् प्रत्ययका विधान माना है। यदि यहां पर 'वृतोङ् वर्तने' धातुसे करण और अधिकरण अर्थ में युट् प्रत्यय कर एवं 'वर्तते अनया अस्यांचेति वर्तना' अर्थात् जिसके द्वारा वा जिसमें वर्तन किया जाय वह वर्तना है ऐसा विग्रह कर वर्तना शब्द सिद्ध किया जायगा तो यह नियम है जिन प्रत्ययोंका ट् इत्संज्ञक चलाजाता है उनसे ङी प्रत्यय होता है। यहांपरभी युट्में ट् इत्संज्ञक आनेसे ङी प्रत्यय होगा अतः 'वर्तनी' ऐसारूप सिद्ध होगा 'वर्तना' नहीं फिर सूत्रमें 'वर्तना' शब्दका उल्लेख अशुद्धहै?(उत्तर)यहांपर णिच्प्रत्ययांत 'वृतोङ्' धातुसे स्त्रीलिंगमें कर्म और भावरूप अर्थ के विवक्षित रहनेपर युच् प्रत्यय कर वर्तना शब्दकी सिद्धि कीगई है इसलिये यहांपर ङी प्रत्ययकी कोई संभावना नहीं॥ 'वर्त्यते वर्तनमात्रं वा वर्तना' अर्थात् जो वर्तन स्वरूप हो वह 'वर्तना' है ऐसा वर्तना शब्दका विग्रह हुआ॥ अथवा "अनुदात्तेतश्च हलादेः" जिसका अनुदात्त इत् आता है उससे ताच्छीलिक अर्थ में अर्थात् 'वह उसका स्वभाव ही हो' इस अर्थ में व्याकरणशास्त्रकेभीतर 'युच्' प्रत्ययका विधान माना है 'वृतोङ्' धातुका अनुदात्त इत्संज्ञक है इसलिये ताच्छीलिक अर्थ में युच् प्रत्ययकर वर्तना शब्दकी सिद्धि हुई है॥ वर्तनशीला वर्तना अर्थात् वर्तन-परिवर्तन करना ही जिसका स्वभाव हो वह वर्तना है। यह वर्तना शब्दका विग्रह है॥

इति कृत्वा वर्तना कालस्योपकारः ॥ को णिजर्थः ? । वर्तते द्रव्यपर्यायस्तस्य वर्तयिता कालः॥ यद्येवं कालस्य क्रियावत्त्वं प्राप्नोति । यथा शिष्योऽधीते, उपाध्यायोऽध्यापयतीति ॥ नैष दोषः। निमित्तमात्रेऽपि हेतुकर्तृव्यपदेशो दृष्टः । यथा कारीषोऽग्निरध्यापयति । एवं कालस्य हेतुकर्तृता ॥

इति*कृत्वा*वर्तना।[1]कालस्य।[6] उपकारः।[1] ; =इस प्रकार करके (समयरूप) वर्तना कालका उपकार है।

कः।[1] णिच्।[1] अर्थः।[1] ? वर्तते (द्रव्य-पर्यायः।[1] तस्य।[6] (१ वर्तयिता।[1] कालः।[1] ॥ =(वृत्‌धातुमें)णिच् प्रत्यय जो लगाया है किसलिये है(उत्तर)वर्तती है द्रव्यकी =पर्याय, तिस(द्रव्यकी पर्याय)का वर्तावनेवाला काल है अर्थात् 'णिच्' प्रत्यय प्रयोजनके हेतुकर्ता विषैं (जो कुछ हमारा प्रयोजन है उसके प्रेरकके प्रेरणा करनेवालेके अर्थ विषैं यहां द्रव्यके वर्तावनेका प्रयोजन है) अथवा प्रयोजनके प्रेरक विषैं आया है भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक द्रव्योंके पर्याय समय समय पलटते हैं सो इस पलटनेका समय जो काल सोही (इस पलटनेको) निमित्त है अतः इस प्रकार कहते है कि द्रव्योंकी पर्यायें वर्तती हैं तिन पर्यायोंका वर्तावनेवाला द्रव्यकाल अथवा निश्चयकाल है ॥

यदि*एवम्*कालस्य।[6] क्रियावत्त्वम्।[2]।प्राप्नोति। =जो ऐसे है(कि काल वर्तावनेवाला है)तो कालके क्रियावान्‌पना प्राप्त होता है

यथा*शिष्यः।[1]अधीते,उपाध्यायः।[1]अध्यापयतिइति=जैसे शिष्य पढ़ता है गुरु पढ़ाता हैऐसा (होता है

न*एषः।[1]दोषः।[1] ; निमित्तमात्रे।[7]।। अपि* =(उत्तर)यह दूषण नहीं है। निमित्त कारणमात्रमेंभी(नकि उपादान कारणमात्रमें)

हेतुकर्तृ-व्यपदेशः।[1] दृष्टः।[1] ; यथा*कारीषः।[1] =हेतु कर्ताका कथन वा नाम देखाजाता है जैसे कारीष अथवा कंडेकी

अग्निः।[1] अध्यापयति। =आग (शीतकालमें) पढ़ाती है अर्थात् शीतकालमें शिष्य कंडेकी आगके सहारेसे स्वयं पढ़ते हैं परन्तु संसार में ऐसेभी कहते हैं कि जाडेकी ऋतुमें अथवा जड़कालमें कंडेकी आग शिष्यको पढ़ाती है।

एवम्*कालस्य।[6] हेतुकर्तृता।[1]।। =ऐसे कालके (पदार्थों के वर्तावनेमें) हेतुकर्तापना वा प्रेरकपना है ॥

(१) जैसे पितृ शब्दकी प्रथमा विभक्ति एक वचन पुल्लिंग 'पिता' शब्द है तैसे 'वर्तयितृ'पुल्लिंग शब्दका वर्तयिता'एकवचन प्रथमाविभक्तिपुल्लिंग बनता है।

स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्वर्त्यमानानां च पाकादीनां समयः पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढिसद्भावेऽपि समयः कालः, ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः कालव्यपदेशः ।

सः कथम्*कालः इति*अवसीयते ? =(प्रश्न)सो(करीपाके आगके दृष्टान्तवत्)कैसे काल जाना जाता है? वा निश्चयकियाजाताहै?
समय-आदीनाम् (१) क्रियाविशेषाणाम् =समय आदिक क्रियाकेविशेषोंके
(किसी विशेष क्रिया वा अमुक क्रिया करनेमें जो समयादिक व्यतीत होते हैं सो)
समय-आदिभिः निर्वर्त्यमानानाम् च पाक-आदीनाम्=तथा (=च)समय आदिकरि कियेहुए पाकआदिकोंका
समयः;पाकः इत्येवम्*आदि (२) स्वसंज्ञारूढि- =समय पाक इत्यादिमें स्वसंज्ञारूढि
सद्भावे अपि* =होनेपर भी अर्थात् अपनी अपनी समय और पाककी संज्ञा प्रसिद्ध होनेपर भी
समयः कालः ओदनपाककालः इति अध्यारोप्यमाणः=समयकाल तथा भातका पाककाल(अनक्रमसे)ऐसा आरोपणकरि
काल-व्यपदेशः। =(व्यवहार)कालका कथन होता है भावार्थ यह है कि किसी क्रिया करनेमें जो समय आवली, घंटा, वा दिन आदि लगता है तथा किसी कार्य जैसे भात औषधि रसोई आदि करनेमेंजो समय,आवली,घंटा वा दिन आदि व्यतीत होताहै उसको(क्रमसे)समयकाल-आवलीकाल-घंटाकाल-दिवसकाल कहते हैं तथा ओदन(भात)पाककाल, औषधि पाककाल, रसोई पाककाल कहते हैं सो यह समय, आवली तथा घंटा आदि व्यवहारकालका कथन है अर्थात् समय, आवली, घंटा तथा दिन आदि व्यवहारकाल है।

(२) 'असंज्ञारूढि'-सर्वार्थसिद्धिके दोनों संस्करणोंमें'स्वसंज्ञारूढि' के स्थानमें'असंज्ञारूढि' अशुद्ध छपगयाहै। असंज्ञारूढि शब्दकाकुछभी यौगिकअर्थ नहीं होताहै असंज्ञारूढि होनेपर असंज्ञा कैसे रूढि वा प्रसिद्ध होसकती है अतः पाठ शुद्ध करदियागयाहै॥ सर्वार्थसिद्धि तीन हस्तलिखितप्रतियोंमें भी तथा तत्त्वार्थराजवार्तिकके "समयपाक इत्येवमादिस्वसंज्ञारूढि सद्भावेकालः"वाक्यमें जो शब्दशः सर्वार्थसिद्धिके पाठसे मिलता है 'स्वसंज्ञारूढि' शब्द पाया जाता है॥

(१) पुद्गल परमाणुका कालकी एक अणुसे दूसरी अणुतक मंदगति जानेमें अथवा लोकाकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशतक मंदगति जानेमेंजोकाल व्यतीत होता है उसको समय कहते हैं। ऐसा करनेमें पुद्गल परमाणुकी जाने रूपक्रियाको विशेष क्रिया कहसकते हैं॥ 'एक काल अनूसेती दूजी काल अनूजाय पुद्गलकी परवान् जहां समय होत है। जलको कटोरी घरी सूरजसों दिन होय, मास,रितु, वर्ष, ऐन आदिक उदोत है। नई वस्तु जोधी करै परावर्त चाल धरै, सोई व्यवहारकाल विनासीक गोत है। अतीत अनागत वरतमान परजाय, कमतान् दर्व लखै जाकेउर जोत है॥द्यानतविलास॥

तद्व्यपदेशनिमित्तस्य मुख्यस्य कालस्यास्तित्वं गमयति। कुतः? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात्॥ द्रव्यस्य पर्यायो धर्मान्तरनिवृत्तिधर्मान्तरोपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामो, जीवस्य क्रोधादिः। पुद्गलस्य वर्णादिः। धर्माधर्माकाशानामगुरुलघुगुण-

तद्-व्यपदेश-निमित्तस्य =उस(व्यवहारकाल)का(उपर्युक्त)कथन(अपने)निमित्तक अथवा हेतुकर्ता

मुख्यस्य कालस्य अस्तित्वम् गमयति। =निश्चय(=मुख्य)वा परमार्थ (=मुख्य)कालकी विद्यमानताको जताता है भावार्थ समय आवली घटिका इत्यादिरूप जो व्यवहारकाल है तिस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकाल) नामको निमित्त ऐसा जो निश्चयकाल (=असंख्यातरूपकालाणु) तिन असंख्यात कालाणुओंका अस्तित्व वा विद्यमानता इस(समय-आवली-घटिकादिरूप व्यवहारकालसे जानी जाती है

कुतः? गौणस्य =(प्रश्न)(व्यवहारकालसे निश्चयकालका ज्ञान)क्योंकर होता है। गौणकी(विद्यमानता)

मुख्य-अपेक्षत्वात्॥ =मुख्यकी अपेक्षासे होती है अर्थात् क्योंकि गौण मुख्यके विना कभीभी नहीं होसक्ता है भावार्थ व्यवहारकाल गौण है, निश्चयकाल मुख्य है, ओदनपाकादि जो प्रसिद्ध व्यवहारकाल है वह निश्चयकालसे उत्पन्न होने वाले समय आदिका समूह है विना निश्चयकालके व्यवहारकाल उत्पन्न नहीं होसकता इसलिये व्यवहारकालसे निश्चयकाल जाना जाता है॥

द्रव्यस्य॥पर्यायः धर्मान्तर-निवृत्ति-(१ धर्मान्तर-उपजननरूपः अपरिस्पन्दात्मकः परिणामः =द्रव्यकी पर्याय(अर्थात्)अन्य अवस्थाको(=धर्मान्तर)छोड़कर दूसरी अवस्था=रूप होना तथा क्षेत्रसे अन्य क्षेत्रमें चलनरूप न होना सो परिणाम वा परणति है

जीवस्य क्रोधादिः; पुद्गलस्य वर्ण-आदिः; =जीवके क्रोधादिक (परिणाम) हैं पुद्गल के वर्णादिक(परिणाम) है।

धर्माधर्म-आकाशानाम्॥ (२ अगुरुलघुगुण- =धर्माधर्म आकाशके अगुरुलघुगुण अथवा द्रव्यकीद्रव्यतारखनेवाले गुणकी

(१) एक हस्तलिखित प्रतिके पृष्ठ ५४ पर 'निवृत्ति' शब्द है वह अशुद्ध है क्योंकि निवृत्तिका अर्थ छोड़ना निश्चित होजाना है निर्वृतिका अर्थ रचना, उत्पन्न करना है। यहां पर पहिले अर्थमें है॥

(२) जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यकी द्रव्यता स्थिर रहै अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप न परिणमे और एक गुण दूसरे गुणरूप न परिणमें तथा एक द्रव्यके अनेक वा अनन्तगुण विखरकर जुदे २ न होजावैं उसको अगुरुलघुगुण कहते हैं॥

(३) कहीं २ पर क्रिया तीन प्रकारकी मानी है प्रथम प्रायोगगति, द्वितीय विस्रसागति और तृतीय मिश्रकागति, उनमें प्रायोगगति पुरुषप्रयत्नजन्य है॥ विस्रसागति=स्वयं परिपाकसंजन्य है और मिश्रिका(=मिश्रका)उभयजन्य है अर्थात् पुरुषप्रयत्न और स्वयंपरिपाकसे उत्पन्न होनेवाली क्रियाको मिश्रिका कहते हैं।

वृद्धिहानिकृतः॥ क्रिया परिस्पन्दात्मिका। सा द्विविधा। प्रायोगिकवैस्रसिकभेदात्। तत्र प्रयोगिकी शकटादीनां, वैस्रसिकी मेघादीनाम्॥ परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते स्तः। तेऽत्र कालोपकरणात्कालकृते गृह्यते॥ त एते वर्तनादय उपकाराः कालस्यास्तित्वं गमयन्ति॥ ननु वर्तनाग्रहणमेवास्तु, तद्भेदाः परिणामादयस्तेषां पृथग्ग्रहणमनर्थकम्। नानर्थकम्। कालद्वयसूचनार्थत्वात्

वृद्धि-हानि-कृतः; क्रिया परिस्पन्द-आत्मिका प्रयोगिक	=वृद्धिहानिरूप होना(परिणाम)है। हिलनेचलनेरूप है सो क्रिया है॥ प्रायोगिक
वैस्रसिक-भेदात्; सा द्विविधा, तत्रप्रयोगिकी	=तथा वैस्रसिक भेदसे वह(क्रिया) दो प्रकार है। तहां प्रायोगकी क्रिया अर्थात्
शकटादीनाम्	=(अन्यके प्रयोगसे होनेवाली क्रिया) जैसे गाडी आदिकका(बैलों द्वारा चलना)
वैस्रसिकी॥	=वैस्रसिकी अर्थात् स्वयं वा निजस्वभावसे बिना किसी अन्यके निमित्तसे होनेवाली
मेघादीनाम्॥; परत्व-अपरत्वे क्षेत्रकृते॥	=(जैसे)बादलादिका (=मेघादीनाम्)॥ परत्व और अपरत्व क्षेत्रकृत
कालकृते स्तः। ते अत्र*काल उपकरणात्	=और कालकृत(दोदो प्रकारके) हैं, वे यहां कालका प्रधान साधन होनेसे
काल-कृते गृह्येते॥	=कालकृत वा कालसंबंधीय (दो परत्व अपरत्व विषयभूत होनेसे)लियेगये हैं
ते एते वर्तना-आदयः उपकाराः कालस्य	=वे एते वर्तनादिक उपकार(निश्चय-मुख्य-वा परमार्थ)कालकी
अस्तित्वम्॥ गमयन्ति॥	=विद्यमानताको जताते हैं अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व,अपरत्व ये सब कालके निमित्त (=उपकार)से होते हैं और इन्हींसे निश्चयकाल, परमार्थकाल, मुख्यकाल वा असंख्यातकालाणुरूप द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है॥
ननु*वर्तना-ग्रहणम्॥ एव*अस्तु, तद्-भेदाः	=प्रश्न (इस सूत्रमें)वर्तनाका ग्रहणही होना चाहिये, उस (वर्तना)के भेद
परिणाम-आदयः तेषां पृथग्-ग्रहणम्॥ अनर्थकं॥	=परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं। उन भेदोंका पृथक् ग्रहण व्यर्थ है
न*अनर्थकम्॥;	=(उत्तर) परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व वर्तनाके भेदोंकासूत्रमेंग्रहणकरना)निष्प्रयोजन नहींहै
कालद्वय-सूचन-अर्थत्वात्॥	=क्योंकि कालके दो भेद प्रगट करनेके अर्थ, अर्थात् कालके दो भेद जतलानेके लिये

(१) परत्व अपरत्व तीन प्रकारभी हैं। (क) प्रशंसाकृत जैसे धर्म 'पर' है ज्ञान 'पर' है तथा अधर्म 'अपर' है अज्ञान 'अपर' है (ख) क्षेत्र(देश)कृत जैसे एकदेश वा कालमें स्थितहुए दो पदार्थोंके विषय जो दूरहै वहतो पर है और जो समीप है वह अपर है (ग) कालकृत जैसे सोलह वर्ष वालेकी अपेक्षासे

प्रपञ्चस्य ॥ कालो हि द्विविधः परमार्थकालो व्यवहारकालश्च । परमार्थकालो वर्तनालक्षणः । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः ॥ अन्येन परिच्छिन्नः अन्यस्य परिच्छेदहेतुः क्रियाविशेषः काल इति व्यवह्रियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वर्तमानो भविष्यन्निति॥ तत्र परमार्थकाले कालव्यपदेशो मुख्यः। भूतादिव्यपदेशो गौणः ॥ व्यवहारकाले भूतादिव्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः ।

प्रपञ्चस्य।; कालः। हि*द्विविधः। परमार्थकालः। =विस्तारुरूप(पूर्वोक्त कथन)है। जैसे(=हि)काल दो प्रकार है, परमार्थकाल
च*व्यवहारकालः।; वर्तनालक्षणः। परमार्थ- =और(=च)व्यवहारकाल; वर्तना है लक्षण जिसका सो परमार्थ वा निश्चय
कालः।; परिणामादि-लक्षणः। =काल है। परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्व हैं लक्षण जिसके सो
व्यवहारकालः।; अन्येन। परिच्छिन्नः। =व्यवहारकाल है। (वह व्यवहारकाल)अन्य(पदार्थ)करि जाना जाता है
(जैसे सूर्य चन्द्र आदिके उदय अस्तसे दिन राति जाने जाते हैं जो व्यवहार काल है जीव और पुद्गलके परिणमनसेभी।व्यवहारकाल प्रगट होताहै।)
अन्यस्य। परिच्छेद-हेतुः। =(व्यवहारकाल)दूसरी(वस्तु)के ज्ञान करानेमें निमित्त है जैसे (क) इस कालसे निश्चय-काल जानाजाताहै(इसअध्यायका पृष्ठ८८)(ख) यह पुल सौवर्षकाहै-ऐसीअवस्थापुलकीहै
क्रिया-विशेषः। कालः। इति*व्यवह्रियते। =क्रिया विशेष है सो कालहै ऐसा व्यवहार कियाजाताहै (क्रियाका विशेष व्यवहारकालहै)
सः। त्रिधा*भूतः।वर्तमानः। भविष्यन्। इति* =वह(व्यवहारकाल)तीन प्रकार अतीत-वर्तमान-अनागत ऐसे
व्यवतिष्ठते। तत्र*परमार्थकाले। काल-व्यपदेशः। =व्यवस्थित है। (तहां परमार्थकाल(की अपेक्षा) विषैं कालका नाम वा कथन
(अर्थात् लोकाकाशके एकएकप्रदेशपरएकएककालाणुभिन्नभिन्न तिष्ठतेहुओंकोकालकहना)
मुख्यः।; भूतादि-व्यपदेशः। =मुख्य वा प्रधान है,भूत,वर्तमान,भविष्यत्का कथन(निश्चयकालकी अपेक्षासे)
गौणः।; व्यवहारकाले। भूत-आदि-व्यपदेशः। =गौण वा अप्रधान है। व्यवहारकाल विषैं अतीत वर्तमान अनागतका कथन
मुख्यः। काल-व्यपदेशः। गौणः। =प्रधान है और काल कहना गौण वा अप्रधान है अर्थात् निश्चयकाल वा परमार्थकाल

शत(सौ) वर्षवाला पर है और शतवर्षवालेकी अपेक्षासे सोलह वर्षवाला अपर है ॥ यहां प्रशंसा तथा क्षेत्रकृत परत्वअपरत्वको छोड़कर वर्तनादि सब कालकृत है अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया,कालिक परत्व,कालिक अपरत्व ये कालके उपकारहैं ॥

क्रियावद्द्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ॥

अत्राह धर्माधर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः । लक्षणं चोक्तम् "उपयोगो लक्षण-मित्येवमादि" पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तं "अजीवकाया इति" विशेषलक्षणं नोक्तम् । तत्किमित्यत्रोच्यते—

॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

कहना गौण है नकि समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, राति, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वरस इत्यादिको कहना गौण है क्योंकि कथन करते समय ये सब (समय, आवली, घटिका इत्यादि) यातो भूतकालमें वा वर्तमान कालमें वा भविष्यत्कालमें आजावेंगे, गर्भित हो जावेंगे और सम्बन्ध रक्खेंगे ॥ फिर भूतादिको मुख्य कहना, समय घटिकादिको गौण कहना एकही वस्तुको मुख्य गौण कहदेना है सो ठीक नहीं ॥

(१)क्रियावत्* द्रव्य-अपेक्षत्वात्॥ च*	=क्रियावान् (अन्य) द्रव्योंकी अपेक्षा रखनेसे(व्यवहारकालनाम पायाहै)और(=च)
काल-कृतत्वात्॥	=निश्चयकाल(=काल)द्वारा कियेजानेसे(उत्पन्न होनेसे)(व्यवहारकाल नाम पाया है)
अत्र*आह।धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गल-जीव-कालानाम्	=यहां पूछता है कि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल द्रव्योंके
उपकाराः उक्ताः;लक्षणम्॥च*उक्तम्॥ "उपयोगः	=उपकार कहेगये(और लक्षणभी(=च)(इनके)कहेगये। उपयोग(अध्याय२सूत्र८)
लक्षणम्॥ इत्येवम्-आदि॥" पुद्गलानाम् तु*	=(जीवका लक्षण है इत्यादिक (कहेगये) और (=तु) पुद्गलोंका
"अजीव-कायाः इति" सामान्य लक्षणम्॥ उक्तम्॥	="अजीवकाया" ऐसा(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) साधारण लक्षण कहागया
विशेष-लक्षणम्॥ न* उक्तम्॥ तत्॥ किम्॥	=(किन्तु)(पुद्गलोंका)विशेष लक्षणनहीं कहागया है। वह विशेष लक्षण क्या है
इति*अत्र*उच्यते।	=इस हेतुसे(=इति)(पुद्गलोंका विशेष लक्षण अग्रिमसूत्रमें)कहाजाता है कि

सूत्रम् (२) स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः २३ = स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुद्गलाः (भवन्ति)। २३॥

(१) (प्रश्न) समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन इत्यादि ने व्यवहार काल नाम कैसे पाया है। (उत्तर) क्रियावान् जो अन्य द्रव्य तिनकी अपेक्षासे व्यवहारकाल नाम पाया है तथा निश्चय कालकरि कियेगये हैं जो समय, आवली, घटिका, प्रहर, दिन, रातादि तिससे (व्यवहार)काल नाम पाया है॥

(२) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनो श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायोंमें एकसा है।

स्पृश्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पर्शः । सोऽष्टविधः । मृदुकठिनगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात् ॥ रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः । तिक्ताम्लकटुमधुरकषायभेदात् ॥ गन्ध्यते गन्धनमात्रं वा गन्धः । स द्वेधा । सुरभिरसुरभिरिति ॥ वर्ण्यते वर्णनमात्रं वा वर्णः । स पंचविधः । कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् ॥ त एते मूलभेदाः प्रत्येकं संख्येयासंख्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति॥ स्पर्शश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णास्त एतेषां सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः

सूत्रार्थः—स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः

=स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाले पुद्गल होते हैं अर्थात् स्पर्श रस,गन्ध,वर्ण ये चार गुणोंकरि सहित अथवा लक्षणोंकरि युक्त पुद्गल होते हैं ॥

वृत्त्यनुवादः—स्पृश्यते वा स्पर्शनमात्रम् स्पर्शः; सः अष्टविधः; मृदु-कठिन-गुरु-लघु-शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-भेदात्; रस्यते रसनमात्रम् वा रसः; सः पञ्चविधः, तिक्त-अम्ल-कटु-मधुर-कषाय-भेदात्; गन्ध्यते वा गन्धनमात्रम् गन्धः सः द्वेधा सुरभिः असुरभिः इति। वर्ण्यते वा वर्णमात्रम् वर्णः; सः पञ्चविधः; कृष्ण-नील-पीत-शुक्ल-लोहित-भेदात्; ते एते मूलभेदाः प्रत्येकम् संख्येय-असंख्येय-अनन्तभेदाः च भवन्ति।

=(वृत्तिका अनुवाद)जो स्पर्श्या वा छूआ जाता है अथवा छूनेमात्र सो स्पर्श है वह (स्पर्श) आठ प्रकार, कोमल मुलायम(मृदु)कठोर(कड़ा)भारी, हलका, ठंडा, =गरम, सचिकन(=चिकना) रूखा भेदसे है । स्वाद लियाजाताहै वा स्वादमात्र =रस है सो पांच प्रकार चिरपरा(चरपरा)खट्टा(आमिल) कड़वा(कटुक) मीठा, =कषायला(कसैला) भेदसे है । जो सूंघा जाता है अथवा वासमात्र है सो गंध है =वह (गन्ध)दो प्रकार सुगन्ध दुगन्ध होती है । जो वर्ण स्वरूप देखाजाता है =वा रूपमात्र सो वर्ण है । सो पांच प्रकार काला,नीला, पीला =श्वेत,लाल(रक्त-अरुण) भेदसेहै।वे इतने मूलभेदहैं ।(इन बीस भेदोंमेंसे) एकएकके =संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं अर्थात् इन बीस (८ स्पर्श ५ वर्ण ५ रस-दो गन्धके भेदोंमेंसे प्रत्येक२ भेदके स्थानकोंकी अपेक्षासे(एक-दो-तीन-चार इत्यादि)संख्यातभेद,असंख्यातभेदहैं,अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षासे अनंतभेदहैं

स्पर्शः च रसः च गन्धः च वर्णः च स्पर्शरसगन्धवर्णाः तेः एतेषाम् सन्ति इति स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः।

=और(=च,स्पर्श और(=च)रस और(=च)गन्ध और(=च) वर्ण हैं =सो द्वन्द्वसमासमें)स्पर्शरसगन्धवर्णाः(ऐसा वाक्य) होता है । ते (स्पर्शरसगन्धवर्ण =जिनके होते हैंऐसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाले हैं अर्थात् वे पुद्गलहैं

भावार्थ समस्त पुद्गलोंमें ये उक्त चार(स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण)निश्चय करने चाहिये॥

इति । नित्ययोगे [१]मन्निर्देशः ॥ यथा क्षीरिणो न्यग्रोधा इति ॥ ननु च "रूपिणः पुद्गला" इत्यत्र पुद्गलानां रूपवत्त्वमुक्तं तदविनाभाविनश्च रसादयस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यातं तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धेः सूत्रमिदमनर्थकमिति ॥ नैष दोषः । नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्यत्र धर्मादीनां नित्यत्वादिनिरूपणेन

इति*नित्य-योगे[७/१] मत्-निर्देशः[१/१] ॥ =इस प्रकार सदैव संयोगमें मतुप् (=मत्) प्रत्ययका निरूपण है भावार्थ "स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः" इस वाक्यको जब पृथक् पृथक् करदेते हैं तब स्पर्शवान् रसवान्-गंधवान्-वर्णवान्-ऐसे चार शब्द होते हैं स्पर्शका नित्य है संयोग जिसमें अथवा स्पर्शगुण सदैव जिसमें रहता है वह स्पर्शवान् (पुद्गल) है इसप्रकार मतुप् (=मत्) प्रत्यय स्पर्शगुणके सदैव विद्यमान रहनेके अर्थमें लगाया गया है ऐसेही रसवान्-गंधवान्-वर्णवान् जानना ॥ स्मरण रहे कि इस सूत्रके दो प्रकारसे विभाग होसकते हैं

(क) स्पर्शवन्तः पुद्गलाः; रसवन्तः पुद्गलाः, गंधवन्तः पुद्गलाः, वर्णवन्तः पुद्गलाः, अथवा

(ख) स्पर्शवान् पुद्गलः, रसवान् पुद्गलः, गंधवान् पुद्गलः वर्णवान् पुद्गलः ॥

यथा*क्षीरिणः[१/३] न्यग्रोधाः[१/३] इति*ननु*च*रूपिणः[१/३] =जैसे दूधवाले अथवा दूधयुक्त बड़वृक्ष (=वटवृक्ष)। पुनि प्रश्न, रूपी वा मूर्तीक

पुद्गलाः[१/३] इति*अत्र*पुद्गलानाम्[६/३] रूपवत्त्वम्[१/१] उक्तम्[१/१] ॥ =पुद्गल हैं ऐसे यहां (अध्याय ५ सूत्र ५ में) पुद्गलोंके रूपपना कहागया है

तद्-अविनाभाविनः[१/३] च*रस-आदयः[१/३] तत्र* =और (=च) उस (रूप) का अविनाभावी तथा भिन्न न रहनेवाले रस-स्पर्श गंध तहां

एव*परिगृहीताः[१/३] इति* व्याख्यातम्[१/१] ॥ =(उस पांचवां सूत्रसे) ही ग्रहण कियेगये ऐसा वर्णन कियागया है

तस्मात्[५/१] तेन[३/१] एव*पुद्गलानाम्[६/३] =तिस कारणसे (=तस्मात्) उस (इस अध्यायके पांचवां सूत्र) करिही पुद्गलोंके

रूप-आदिमत्त्वसिद्धेः[५/१] सूत्रम्[१/१] इदम्[१/१] अनर्थकम्[१/१] इति* ॥ =रूपपना, स्पर्शपना, रसपना, गंधपना सिद्ध होनेसे यह सूत्र निष्प्रयोजन है ॥

न*एषः[१/१] दोषः[१/१]; नित्य-अवस्थानि[१/३] अरूपाणि[१/३] =(उत्तर) यह दूषण नहीं है नित्य, अवस्थानि और अरूपाणि,

इति*अत्र*धर्मादीनाम्[६/३] नित्यत्वादि-निरूपणेन[३/१] =ऐसे यहां धर्मादिकोंका ध्रुवपनादिकका कथन करनेसे

---

(१) प्रथमावृत्तिसर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें 'मन्निर्देशः' पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें औरएकहस्तलिखितमें 'वन्निर्देशः' पाठहै दोअन्यहस्तलिखितप्रतियोंमें 'वत्निर्देश' पाठहै 'वन्निर्देशः' और 'वत्निर्देशः' एकही है क्योंकि प्रथम वाक्य सन्धिरूपमें है दूसरेमें सन्धि नहीं कीगई है ॥ यहांपर समास करना है संधि अवश्य होनी चाहिये, इसलिये 'वत्निर्देश' पाठ 'वन्निर्देश' की अपेक्षा अशुद्ध है ॥ द्वितीया वृत्तिमें और जहां कहीं भी 'वत्निर्देशः' और 'वन्निर्देशः' पाठहैं वे अशुद्ध हैं।

पुद्गलानामरूपत्वप्रसंगे तदपाकरणार्थं तदुक्तम्॥ इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्यर्थमुच्यते॥
अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यथमिदमुच्यते—

॥शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च॥

पुद्गलानाम्[6/3] अरूपत्व-प्रसंगे[7/1] तद्-अपाकरण-अर्थम्[1/1] तद्[1/1] उक्तम्[1/1] इदम्[1/1] तु* तेषाम्[6/3] स्वरूपविशेष-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1/1]॥ उच्यते। अवशिष्ट-पुद्गल-विकार-प्रतिपत्ति-अर्थम्[1/1]॥ इदम्[1/1]॥ उच्यते।

=पुद्गलोंके अमूर्तीकपनेका अवसर आनेपर उस (अरूपत्व)के =निराकरणके लिये वह (रूपिणः पुद्गला) कहागया है ॥ यह(सूत्र) तो =तिन(पुद्गलों)के विशेष स्वरूप जाननेके लिये कहागया है ॥ =शेष पुद्गलके परिणाम (=विकार = पर्याय) जाननेके लिये =यह (उत्तर सूत्र)कहा जाता है कि

सूत्रम्—शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तश्च ॥ २४ ॥

=शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमः—छाया-आतपः—उद्योतवन्तः—च पुद्गलाः भवन्ति ॥२४॥

पदच्छेदः—शब्दवन्तः पुद्गलाः, वा शब्दवान् पुद्गलः। बन्धवन्तःपुद्गलाःवा बन्धवान्पुद्गलः सौक्ष्म्यवन्तः पुद्गलाः वा सौक्ष्म्यवान् पुद्गलः। स्थौल्यवन्तः पुद्गलाः वा स्थौल्यवान् पुद्गलः। संस्थानवन्तः पुद्गलाः वा संस्थानवान् पुद्गलः । भेदवन्तः पुद्गलाः वा भेदवान् पुद्गलः। तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः। छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः। आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतापवान् पुद्गलः।च उद्योतवन्तः पुद्गलाः वा च उद्योतवान् पुद्गलः।

सूत्रार्थः—शब्दवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] वा शब्दवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =शब्दयुक्त पुद्गल हैं अथवा शब्द सहित पुद्गल है
बन्धवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] वा बन्धवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =बंधसहित पुद्गल हैं वा बंधयुक्त पुद्गल है।
सौक्ष्म्यवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] वा सौक्ष्म्यवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =सूक्ष्मतावान् पुद्गल हैं अथवा सूक्ष्मतासहित पुद्गल है
स्थौल्यवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] वा स्थौल्यवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =स्थूलतासहित पुद्गल हैं अथवा स्थूलतावान् पुद्गल है
संस्थानवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] वा संस्थानवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =आकारसहित पुद्गल हैं अथवा आकारसंयुक्त पुद्गल है।
भेदवन्तः[1/3] पुद्गलाः[1/3] भेदवान्[1/1] पुद्गलः[1/1] =खंडवाले पुद्गल हैं अथवा खंडसहित पुद्गल है

क्योंकि 'वत्' प्रत्यय सदृश अथवा तुल्य अर्थमें आताहै और मतुप् (मत्)प्रत्यय 'नित्ययोग' 'सन्ति'अर्थमें आताहै यहांपर अर्थ ऐसा है कि 'ते' (स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण) जिनके होतेहैं (वे) स्पर्श-रस-गंध-वर्णवाले हैं"॥यहां नित्ययोगमें मतुप(मत्)प्रत्यय होनाचाहिये अतः प्रथमावृत्तिका "मतिर्देश" सुधरे ॥

शब्दो द्विविधो भाषालक्षणो विपरीतश्चेति ॥ भाषालक्षणोद्विविधः। साक्षरोऽनक्षरश्चेति ॥ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यञ्जकःसंस्कृतविपरीतभेदादार्यम्लेच्छव्यवहारहेतुः॥ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशय-ज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः स एषः सर्वप्रायोगिकः।अभाषात्मकोद्विविधः। प्रायोगिको वैस्रसिकश्चेति॥

तमोवन्तः पुद्गलाः वा तमोवान् पुद्गलः;	=अंधकारवाले पुद्गल हैं अथवा अंधकारसंयुक्त पुद्गल है
छायावन्तः पुद्गलाः वा छायावान् पुद्गलः,	=छाहसंहित पुद्गल हैं अथवा छाहवान् पुद्गल है
आतपवन्तः पुद्गलाः वा आतपवान् पुद्गलः;	=तप्तप्रकाशसंयुक्त पुद्गल हैं अथवा उष्णरूपउजालासहित पुद्गल है
च*उद्योतवन्तः पुद्गलाः	=और शीतल प्रकाश जैसेचांदनी(=चंद्रमाकी पटबीजनाकीचमक) वाले पुद्गल हैं
वा उद्योतवान् पुद्गलः	=वा ठंडे उजालेवान् जैसे चांदनीवान् पुद्गलहै अर्थात् येदशपुद्गल द्रव्यके पर्याय, परिणाम, विकार वा अवस्थाविशेष हैं ॥
वृत्त्यनुवादः-शब्दः द्विविधः भाषालक्षणः च*	=शब्द दोप्रकार है भाषास्वरूप वा भाषात्मक और (=च)
विपरीतः इति*॥ भाषालक्षणः द्विविधः ।	=प्रतिकूल अर्थात् अभाषास्वरूप वा अभाषात्मक; भाषात्मकशब्द दो प्रकारहै
स-अक्षरः च*अन्-अक्षरः इति*॥	=अक्षररूप(अक्षरसहित,अक्षरीकृत और(=च अनक्षररूप(अक्षररहित)
अक्षरीकृतः शास्त्र-अभिव्यञ्जकः संस्कृत-विपरीत-	=अक्षररूपभाषा(भाषात्मक शब्द)शास्त्रके प्रगटकरनेवाली संस्कृत और =(संस्कृतसे)प्रतिकूल वा विरोधीभाषा अर्थात् देशभाषा, प्राकृत, पैशाचीआदि
भेदात् आर्य-म्लेच्छ व्यवहारहेतुः;अनक्षरात्मकः	=भेदसे आर्य और म्लेच्छ(मनुष्यों)के व्यवहारका कारणहै । अनक्षररूप भाषा
द्वि-इन्द्रिय-आदीनाम् ;अतिशय-ज्ञान-स्वरूप-प्रतिपादनहेतुः	=दोइन्द्रियादिजीवोंके है,औरसर्वोत्तमज्ञानकास्वरूपकहनेकाकारणहैअर्थात्अक्षररहित भाषा है सो दोइन्द्रियवाले जीवोंमें, तीन इन्द्रियवाले जीवोंमें, चारइन्द्रिय वाले जीवोंमें, औरकितनेइ पांचइन्द्रियवाले जीवोंमेंभीपाईजातीहैऔर(अक्षररहितभाषाही) अतिशयरूप अथवा महान्ज्ञानके प्रकाशनेके कारण सर्वज्ञके दिव्यधुनिमेंभी है ॥
सः एषः सर्व-प्रायोगिकः	=सो यह (भाषास्वरूपशब्द) समस्त प्रायोगिक है अर्थात् पुरुषके प्रयत्नसे होताहै ॥
अभाषा-आत्मकः द्वि-विधः; प्रायोगिकः	=अभाषास्वरूप (शब्द) दोप्रकारहै,प्रायोगिकअर्थात्पुरुषकेनिमित्तसे उपजाऊ
च*वैस्रसिकः इति*॥	=और वैस्रसिक (वैश्रसिक) पुरुषके प्रयत्नकी अपेक्षारहित स्वभावसे उपजनेवाला ॥

सर्वार्थ सिद्धि ९२

वैस्रसिको बलाहकादिप्रभवः। प्रायोगिकश्चतुर्धा, ततविततघनसौषिरभेदात् ॥ तत्र चर्मतनननिमित्तः पुष्करभेरीदर्दुरादिप्रभवस्ततः। तन्त्रीकृतवीणासुघोषादिसमुद्भवो विततः। तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घनः। वंशशंखादिनिमित्तःसौषिरः॥ बन्धो द्विविधो वैस्रसिकः प्रायोगिकश्च ॥ पुरुषप्रयोगानपेक्षो वैस्रसिकः। तद्यथा—स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधाराग्नीन्द्रधनुरादिविषयः॥ पुरुषप्रयोगनिमित्तः प्रायोगिकः, अजीवविषयो जीवाजीव विषयश्चेति द्विधाभिन्नः। तत्राजीवविषयो जतुकाष्ठादिलक्षणः। जीवाजीवविषयः कर्मनोकर्मबन्धः ॥ सौक्ष्म्यं द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं च ॥

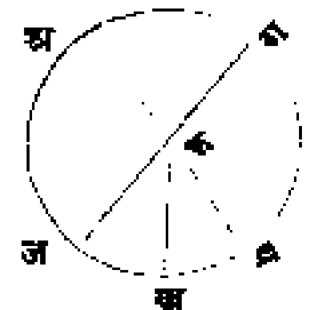
वैस्रसिकः बलाहक-आदि-प्रभवः; =वैस्रसिक अभाषास्वरूपशब्द) जैसे मेघ(=बलाहक) आदिसे उपजनेवाला ॥
प्रायोगिकः चतुर्धा *तत-वितत-घन-सौषिर-भेदात्; =प्रायोगिक(अभाषास्वरूपशब्द चारप्रकार, तत-वितत-घन-सौषिर भेदसे है
तत्र *चर्मतनन-निमित्तः पुष्कर-भेरी (=भेरि) =तहां चमड़ेके तननेके कारण वा हेतुसे खंजरी (=पुष्कर) दुंदुभि-ढोल नगारा
दर्दुर-आदि-प्रभवः ततः; =दर्दुर (एकप्रकारका) बाजा आदिसे उत्पन्न होनेवाला शब्द तत है।
तन्त्रीकृत-वीणा-सुघोष- =तांत अथवाताररचित बीन (=वीणा) सुघोष अर्थात् एकप्रकारका सितार
आदि समुद्भवः विततः; ताल-घण्टा-लालन-आदि- =आदिसे उपजाऊ (शब्द) वितत है ॥ ताल-घंटाका हिलावना (=लालन) आदिके
अभिघातजः घनः। वंश-शंख-आदि-निमित्तः =चोटसे उपजाल (=अभिघातज) शब्द घन है। बंसुरीशंख आदिहैं कारण जिसको
सौषिरः; बन्धः द्विविधः वैस्रसिकः प्रायोगिकः च*। =(ऐसा शब्द) सौषिर है। बन्ध दो प्रकार है। वैस्रसिक और प्रायोगिक
पुरुष-प्रयोग-अनपेक्षः वैस्रसिकः, तद्यथा* =पुरुषके प्रयोग वा प्रयत्नकी अपेक्षारहित वैस्रसिक है ॥ जैसे
स्निग्ध-रूक्षत्व गुण-निमित्तः विद्युत्-उल्का-जलधार- =सचिक्कन, रूखापन गुणकेकारणसे बिजली, उल्कापात, बादल
अग्नि-इन्द्रधनुष्-आदि-विषयः, पुरुषप्रयोगनिमित्तः =आग, इन्द्र धनुषादि सम्बन्धी है ॥ पुरुषके प्रयत्न हेतुक वा कारणक है सो
प्रायोगिकः अजीवविषयः च* जीवाजीवविषयः इति* =प्रायोगिक है। (प्रायोगिकबन्ध) अजीव सम्बंधी और (=च) जड़चेतनसंबंधी
द्विधा*भिन्नः, तत्र*अजीवविषयः जतु-काष्ठादि- =दोप्रकारमें (द्विधा) विभाजित है। तहां अचेतनसंबंधी लाख(जतु)औरकाठआदिका
लक्षणः; जीव-अजीव-विषयः कर्म-नोकर्म बन्धः; =सम्बंध होता है। चेतनअचेतनसम्बंधी कर्म-नोकर्मका (जीवके साथ) बंधहै;
सौक्ष्म्यम् द्विविधम्; अन्त्यम् आपेक्षिकं च॥ =सूक्ष्मता दो प्रकार है अन्त्य और (=च) आपेक्षिक

अध्याय सूत्र ९२

तत्रान्त्यं परमाणूनाम् । आपेक्षिकं बिल्वामलकबदरादीनाम् ॥ स्थौल्यमपि द्विविधं, अन्त्यमापेक्षिकं चेति ॥ तत्रान्त्यं जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिकं बदरामलकबिल्वतालादिषु ॥ संस्थानमाकृतिः । तद्द्विविधं, इत्थंलक्षणमनित्थंलक्षणं चेति ॥ वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रायत-

तत्र॥ अन्त्यम् १/१ परमाणूनाम् ६/३ ; आपेक्षिकम् १/१ बिल्व-आमलक-बदर-आदीनाम् ६/३ ॥	=तहां परमाणुओंकी (सूक्ष्मता) अन्त्य है । आपेक्षिक सूक्ष्मता बेल =बिल्व) =आमलेके फलकी(=आमलक)और बेरआदिककीसूक्ष्मताहै अर्थात् बेलकेफलसे आमलेकाफल सूक्ष्म है औरआमलेकेफलसे झरबेरीके बेरआदि छोटे होतेहैं
स्थौल्यम् १/१ अपि द्वि-विधम् १/१ अन्त्यम् १/१ आपेक्षिकम् १/१ चइति	=स्थूलताभी दोप्रकारहै अन्त्य और(=च)आपेक्षिकअर्थात्किसीकीअपेक्षासे।
तत्र॥ अन्त्यम् १/१ जगद्व्यापिनि ७/१ महास्कंधे ७/१ ;	=तहां अन्तिम (स्थूलता जगतमें व्याप्त होनेवाला या सर्वलोकव्यापीमहास्कंधमेंहै
आपेक्षिकम् १/१ बदर-आमलक-बिल्व-ताल-आदिषु ७/३ ;	=आपेक्षिक(स्थूलता)बेर, आमकेफल,बेलफल और तालफलादिकमें है अर्थात् झरबेरीकेबेरकी अपेक्षा आमला स्थूल होताहै आमलेसे बेल बड़ा होताहै और बेलकी अपेक्षा तालफलादिक बड़े होते हैं ॥
संस्थानम् १/१ आकृतिः १/१ ;	=संस्थान है सो आकृति अथवा आकारहै अर्थात् अवयव रचनाविशेष है।
तत् १/१ द्विविधम् १/१ इत्थम् १/१ लक्षणम् १/१	=वह(आकार दोप्रकारहै इत्थंलक्षण अर्थात् आकार जिसकालक्षणकथनयोग्यहै
अनित्थम् १/१ लक्षणम् १/१ च॥ इति॥ ॥	=और(=च) अनित्थं लक्षणअर्थात् वहआकारजिसकालक्षण कथनयोग्य नहींहै
वृत्त-त्र्यस्र, चतुरस्र-आयत-	=गोलवा वर्तुल =वृत्त) तिकोना(=त्र्यस्र) चतुष्कोण(चतुरस्र) आयत, जात्यायत अर्थात् समानान्तर चतुर्भुज जिसके सबकोन समकोन हों किंतु सबभुज बराबर नहीं परंतु आमनसामनेके भुज बराबर हों ॥

'वृत्त' वह सम धरातल क्षेत्र है जो एक रेखासे जिसको परिधि कहते हैं घिरा हो और ऐसा हो कि उसके अन्दर एक विशेष बिन्दुसे परिधि तक जितनी रेखा खींचीं जांय वह सब आपसमें बराबर हों और इस बिन्दुको उसवृत्तका केन्द्रकहतेहैं॥ वृत्त यह गोल क्षेत्र है जिसकी अ ब ज रेखा परिधि है 'क' केन्द्र है और जिसकी कअ, कख, कब, कग और कज सब रेखायें आपसमें बराबर हैं ॥



परिमण्डलादीनामित्थंलक्षणम् । ततोऽन्यन्मेघादीनां संस्थानमनेकविधमित्थमिदमिति निरूपणाभावादनित्थंलक्षणम् ॥ भेदाः षोढा, उत्करचूर्णखण्डचूर्णिकाप्रतराणुचटनविकल्पात् ॥ तत्रोत्करः काष्ठादीनां करपत्रादिभिरुत्करणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां सक्तुकणिकादिः । खण्डो घटादीनां कपालशर्करादिः । चूर्णिका माषमुद्गादीनां । प्रतरोऽभ्रपटलादीनाम् । अणुचटनं सन्तप्तायःपिण्डादिषु अयोघनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिर्गमः॥ तमो दृष्टिप्रतिबंधकारणं प्रकाशविरोधि॥ छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेधा, वर्णादिविकारपरिणता

परिमण्डल-आदीनाम् इत्थंलक्षणम् । इत्थम् इदम् इति	=चारोंओर गोलआदिकके इत्थंलक्षण(संस्थान) है ऐसे यह इत्थम् है
ततः अन्यत् मेघ-आदीनाम् संस्थानम् अनेकविधम् ।	=तिस (इत्थंलक्षणसंस्थान)से अन्यबादल-आदिकका आकार बहुतप्रकारहै।
निरूपण-अभावात्	=सो परिभाषण अथवा कथनकियेजानेके अभावसे
अनित्थंलक्षणम् ; भेदाः षोढा उत्कर-चूर्ण-	=अनित्थं लक्षण(संस्थान)है॥ भेद छ प्रकार (=षोढा)अर्थात् उत्कर-चूर्ण-
खण्ड-चूर्णिका-प्रतर-अणुचटन-विकल्पात् ॥	=खण्ड-चूर्णिका-प्रतर अणुचटन विकल्पसे है
तत्र उत्करः काष्ठ-आदीनाम् करपत्र-आदिभिः	=तहां उत्कर भेद काठादिका आरा (=करपत्र-क्रकच) आदिकसे
उत्करणम् ; चूर्णः यव गोधूम-आदीनाम्	=विदारण है । चूर्ण जौ गेहूं(=गोधूम) आदिकोंका
सक्तु-कणिकादिः । खण्डः घटादीनां कपाल-शर्करादिः ।	=सतुआ आटा वा चून आदिक है ।खंड घड़ादिकोंके टुकड़ा रोड़ादिक हैं।
चूर्णिका माष मुद्ग-आदीनाम् । प्रतरः अभ्र-	=चूर्णिका उरद (माष) मूंग (=मुद्ग) आदिकी दाल है । प्रतर अभ्रकके
पटल आदीनाम् । अणुचटनम् सन्तप्त-अयस्-	=पत्रादिकोंका (उपाटना) है । अनुचटन वा अनुतर अतिगरमलोहेके
पिण्डादिषु अयस्-घन आदिभिः अभिहन्यमानेषु	=पिंडादिक विषैं लोहेके घनादिककरि चोटदेनेपर वा पीटनेपर
स्फुलिङ्ग-निर्गमः । तमः दृष्टि-प्रतिबन्धकारणम्	=फुलिंगोंका निर्गमन, उछलनावानिकलनाहै।तमअन्धकार दृष्टिकारोकनेवाला
प्रकाश-विरोधि । छाया प्रकाश आवरणनिमित्ता	=उजालेका विलोम वा प्रतिकूल है । छाया उजालेके ढकनेकाकारण है ।
सा द्वेधा वर्णआदिविकार-परिणता	=वह छाया दो प्रकार है वर्णादि विकार परिणत अथवा तद्वर्ण परिणत (अर्थात् कांचविषैं मुखके) वर्णादिकका परिणमन दीखना

प्रतिविम्बमात्रात्मिका चेति ॥ आतपः आदित्यादिनिमित्तः उष्णप्रकाशलक्षणः ॥ उद्योतश्चन्द्रमणि-खद्योतादिप्रभवः प्रकाशः॥ त एते शब्दादयः पुद्गलद्रव्यविकारास्त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायाऽऽतपोद्योतवन्तः पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते॥ च शब्देन नोदनाभिघातादयः पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धाः समुच्चीयन्ते ॥ उक्तानां पुद्गलानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

प्रतिबिम्बमात्र-आत्मिका। च इति ।	=और (=च) प्रतिबिम्बस्वरूप ही (=मात्र)
उष्ण-प्रकाश-लक्षणः। आतपः।	=तप्त (=उष्ण-संतप्त) रूप है स्वभाव (=लक्षण) जिसका ऐसा प्रकाश वा उजाला है सो आतप है
आदित्य-आदि-निमित्तः।	=उक्त आतप सूर्य, अग्नि, इत्यादिके निमित्तसे उत्पन्न होता है जैसे धूप, घाम, लौ सहित अग्नि का प्रकाश
उद्योतः। चन्द्रमणि-	=ठंढा (शीतल) प्रकाश वा उजाला सो उद्योत है वह चन्द्रकान्ति
खद्योत-आदि-प्रभवः। प्रकाशः। । ते। एते। शब्दादयः।	=जुगनू (पटवीजना) आदिकसे उपजनेवाला प्रकाश है । वे इतने शब्दादिक
पुद्गलद्रव्य-विकाराः। ते।	=पुद्गलद्रव्यके विकार, पर्याय, परिणाम वा परिणत हैं । ते (शब्दादिक)
एषाम्। सन्ति। इति शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-	=जिनके (विद्यमान) हैं ऐसे शब्द-बन्धन-सूक्ष्मता-स्थूलतावाले
संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आतप-उद्योतवन्तः।	=आकार, भेद, अन्धकार, छाया, तप्त उजाला, शीतल प्रकाश
पुद्गलाः। इति अभिसम्बध्यते ॥ च-शब्देन।	=पुद्गल हैं ऐसा सम्बन्ध कियाजाता है (इस सूत्रमें) चशब्दकरि
नोदन-अभिघात-आदयः। पुद्गल परिणामाः।	=प्रेरणा (नोदन) अभिघात (=मारना) आदिक पुद्गलद्रव्यके विकार वा पर्याय
आगमे। प्रसिद्धाः। समुच्चीयन्ते ॥	=(जो परिणाम) शास्त्रमें विख्यात वा व्यक्त हैं इकट्ठे लाये गये हैं अर्थात् ग्रहण कियेगये हैं ॥
उक्तानाम्। पुद्गलानाम्। भेद-प्रदर्शन-अर्थम्। आह	=कथित पुद्गलोंके भेद दिखावने के लिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

नुद् छठवां तुदादिगणका धातु है जो प्रेरण अर्थमें (= प्रेरणे) आता है । (प्रश्न) यदि स्पर्श-रसादि तथा शब्दबन्धादि पुद्गलोंहीमें होते हैं तो स्पर्शादिक तथा शब्दादिकके लिये पृथक २ दो सूत्र क्यों किये ! अर्थात् स्पर्श रस गन्ध इत्यादि (२३) तथा शब्द-बन्ध-इत्यादि (२४) दो सूत्र क्यों किये एकही सूत्रसे कार्य चलजाता (उत्तर) स्पर्श रस आदि जो हैं वे परमाणुओंमें तथा स्कन्धोंमें स्वभावसेही होते हैं और शब्द-बन्ध-आदि तो स्कन्धोंहीमें होते हैं और अनेक निमित्तोंसे होते हैं न कि केवल परिणाम जन्य इसलिये पृथक् पृथक् सूत्र किये गये हैं ॥

॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

प्रदेशमात्रभाविस्पर्शादिपर्यायप्रसवसामर्थ्येनाण्यन्ते शब्द्यन्त इत्यणवः ॥ सौक्ष्म्यादात्मादय आत्ममध्या आत्मान्ताश्च ॥ उक्तं च—अत्तादिअत्तमज्झं अत्तत्तं णेव इंदिये गेज्झम् । जद्दव्वं अविभागी तं परमाणुं विआणेहि ॥ १ ॥ स्थूलभावेन ग्रहणनिक्षेपणादिव्यापारस्कन्धनात्स्कन्धा इति सञ्ज्ञायन्ते ॥ रूढौ क्रिया क्वचित्सती उपलक्षणत्वेनाश्रीयते इति ग्रहणादिव्यापार-

सूत्रम्—अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥	**= अणवः स्कन्धाः च (पुद्गलाः भवन्ति)**
सूत्रार्थः—अणवः स्कन्धाः च*पुद्गलाः भवन्ति।	=अणु और स्कन्ध पुद्गलद्रव्य हैं अर्थात् पुद्गलद्रव्यके अणु और स्कन्ध ये दो भेद हैं
वृत्त्यनुवादः—प्रदेश-मात्र-भावि-स्पर्श-आदि-पर्याय-	=(एक)प्रदेशमात्र होकर भी जो होनेवाले(=भाविन) स्पर्शादि पर्यायोंके
प्रसव-सामर्थ्येन अण्यन्ते। शब्द्यन्ते।	=उपजावनेकी(=प्रसव)शक्ति होनेसे जो कहेजाते हैं(अण्यन्ते=शब्द्यन्ते)
इति*अणवः; सौक्ष्म्यात् आत्म-आदयः	=ऐसे अणु हैं। सूक्ष्मपणासे(अणु आपही आदि हैं
आत्म-मध्याः आत्म-अन्ताः च*। उक्तम् च*	=आपही मध्य हैं और आपही अन्त हैं (और) कहागया भी है कि
अत्त-आदि अत्त-मज्झं (आत्म-आदि आत्म-मध्यम्)	=(परमाणु) आपही आदि आपही मध्य
अत्त-अत्तं (आत्म-अन्तम्) ण*एव*इंदिए गेज्झम् (न*एव*इन्द्रियैः ग्राह्यम्)	=आपही अन्त है(और) निश्चयसे(=एव)इन्द्रियोंकरि ग्रहण करनेयोग्य नहीं है
जद् दव्वं अविभागी (यत् द्रव्यम् अविभागी)	=जो अविभागी द्रव्य है जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता
तं परमाणुं विआणेहि (तम् परमाणुम् विजानीहि।)	=उसको परमाणु जानो
स्थूल-भावेन ग्रहण-निक्षेपण-आदि-	=असूक्ष्मपणाकरि अथवा मोटापन करि जुड़ने बिछुड़ने आदिरूप
व्यापार-स्कन्धनात् स्कंधाः इति*संज्ञायन्ते।	=व्यापारका स्कन्धोंसे वा संयोग (समूह)से स्कन्ध ऐसी संज्ञायें कीजातीहैं
रूढौ क्रिया क्वचित्*सती उपलक्षणत्वेन	=रूढिविषैं क्रिया कहीं कहीं होती है तो भी उपचारताकरि
आश्रीयते। इति*ग्रहण-आदि-व्यापार-	=(उसरूढिका)आश्रय कियाजाता है(इसी न्यायसे)मिलन आदिके व्यापारकी

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ "पुद्गलाः" शब्दकी अनुवृत्ति तेईसवां सूत्रसे लीगई है ॥

अयोग्येष्वपि व्यणुकादिषु स्कन्धाख्या प्रवर्तते॥ अनन्तभेदा अपि पुद्गला अणुजात्या स्कन्धजात्या च द्वैविध्यमापद्यमानाः सर्वे गृह्यन्त इति तज्जात्याधारानन्तभेदसंसूचनार्थं बहुवचनं क्रियते॥ अणवः स्कन्धा इति भेदाभिधानं पूर्वोक्तसूत्रद्वयभेदसम्बन्धनार्थम्॥ स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तोऽणवः। स्कन्धाः पुनः

अयोग्येषु अपि*द्वि-अणुक-आदिषु स्कन्ध-आख्या प्रवर्तते। =योग्यता न होनेपरभी दो अणु आदिमें स्कन्ध-संज्ञा =प्रवर्तती है अर्थात् दो अणु आदिके स्कन्धकें मिलने विछुड़नेकी योग्यता नहीं है तोभी रूढिके वशसे(दो अणु आदिके स्कन्धभी) स्कन्ध नाम पाते हैं

६७ अणुजात्या स्कंधजात्या च*द्वैविध्यम् =अणु जातिसे और(=च) स्कंध जातिसे दो प्रकारता को

आपद्यमानाः अनन्त-भेदाः अपि*पुद्गलाः सर्वे =प्राप्त होनेवाले अनन्त भेदवाले भी पुद्गल सर्व (अणु और स्कन्ध जातियोंमें)

गृह्यन्ते इति* =ग्रहण कियेजाते हैं अर्थात् पुद्गलोंके अनन्त भेद हैं वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियों में गर्भित होजाते हैं भावार्थ यह है कि यद्यपि द्व्यणुकादिक तथा स्पर्श-रस-गंध-वर्णादिककरि पुद्गलोंके अनन्तभेद हैं तथापि वे समस्त भेद अणु और स्कन्ध इन दो जातियोंमें ही समावेश होजाते हैं।

तद्-जाति-आधार-अनन्त-भेद-संसूचन-अर्थम् =तिन (अणु और स्कन्ध)की जातियोंके आश्रय रहनेवाले(पुद्गलों)के अनन्त =भेदोंके ज्ञापन वा जतलानेके लिये (सूत्रमें अणवः ऐसा अणु शब्दका बहुवचन और स्कन्धाः ऐसा स्कन्ध शब्दका

बहुवचनम् क्रियते। =बहुवचन किया है अर्थात् यद्यपि पुद्गलके अनन्त भेद हैं तो भी वे भेद अणु जाति और स्कन्ध जाति द्वारा दोही भेदोंमें सब ग्रहण कर लिये जाते हैं इस प्रकार एक एक जाति(अणु और स्कन्धजातिके आधार अर्थात् एक एक जातिमेंभी अनन्त अनन्त भेद होते हैं इसी बातको जतलानेके लिये सूत्रमें बहुवचन दिये हैं॥

अणवः स्कन्धाः इति*भेद-अभिधानम् पूर्व-उक्त- =अणवः स्कंधाः इस प्रकार(पुद्गलोंके)भेदोंका कथन प्रथम कहेहुये ६७

सूत्रद्वय-भेद-सम्बंधन-अर्थम् =दो(तेईसवां और चौवीसवां) सूत्रके अन्तर(भेद) सम्बंधके लिये है

स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः अणवः। स्कंधाः पुनः* =स्पर्श,रस,गंध वर्णवाले(वा संयुक्त)अणु हैं बहुरि स्कंध (हैं वे)

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च स्पर्शादिमन्तश्चेति ॥ आह किमेषां पुद्गलानामणुस्कन्धलक्षणः परिणामोऽनादिरुत आदिमानित्युच्यते। स खलूत्पत्तिमत्त्वादादिमान्प्रतिज्ञायते ॥ यद्येवं तस्मादभिधीयतां कस्मान्निमित्तादुत्पद्यन्त इति॥ तत्र स्कन्धानां तावदुत्पत्तिहेतुप्रतिपादनार्थमुच्यते—

॥ भेदसङ्घातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमस्-छाया-आतप-	=शब्द,बन्ध,सूक्ष्मता,स्थूलता,आकार,खंड, अन्धकार,छांह,तप्तप्रकाश
उद्योतवन्तः[1/3] च *स्पर्श-आदिमन्तः[1/3] च*इति*	=और(=च)शीतलप्रकाश संयुक्त हैं। (और) स्पर्श-रस-गंध-वर्णवान भी(च) हैं
आह। किम्*एषाम्[6/3] पुद्गलानाम्[6/3] अणुस्कन्धलक्षणः[1/1]	=शिष्य पूछता है कि क्या इन पुद्गलोंके अणुस्कन्ध लक्षणरूप
परिणामः[1/1] अनादिः[1/1] उत*आदिमान्[1/1] इति*उच्यते।	=विकार अनादि है अथवा (=उत)आदिमान है(उत्तरमें ऐसा कहाजाता है कि
सः[1/1] खलु*उत्पत्तिमत्त्वात्[5/1]॥आदिमान्[1/1] प्रतिज्ञायते।	=वह(परिणाम)निश्चयसे उत्पत्तिमान होनेसे आदिमान कहागया है
यदि*एवम्*तस्मात्[5/1] अभिधीयताम्। कस्मात्[5/1]	=जो ऐसा है अर्थात् आदिमान है तौ(=तस्मात्)कहाजाना चाहिये कि किस
निमित्तात्[5/1] उत्पद्यन्ते। इति*; तत्र *स्कंधानाम्[6/3] तावत्*	=निमित्तसे वा किस कारणसे उत्पन्न होते हैं। तहां प्रथम(=तावत्) स्कंधोंकी
उत्पत्ति-हेतु-प्रतिपादन-अर्थम्[2/1]॥उच्यते।	=उत्पत्तिका कारण कहनेके लिये (उत्तर सूत्रमें) कहाजाता है कि

॥ [1] भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥ = (पुद्गलानां स्कंधाः) भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

= पुद्गलानां स्कंधाः भेदात्-संघातात्-भेदसंघाताभ्याम् च* उत्पद्यन्ते॥ २६॥

सूत्रार्थः—पुद्गलानाम्[6/3] स्कंधाः[1/3] भेदात्[5/1] संघातात्[5/1]	=पुद्गलोंकेस्कंध भेदसे और संघातसे
भेद-संघाताभ्याम्[5/2] च*उत्पद्यन्ते।	=और (एकही कालमें) भेद संघात(दोनोंसे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् (१) बाह्य वा अभ्यन्तरिक निमित्तसे स्कंधोंके टूट जानेसे दो परमाणुओं तकके अनेक स्कंध उत्पन्न होते हैं (२)और बाह्य वा अभ्यन्तरिक कारणसे अन्य अन्य स्कंधोंके संघातसेभी स्कंध होते हैं

(१) श्वेतांबर आम्नायके सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें "संघातभेदेभ्य उत्पद्यन्ते"ऐसा पाठ उपर्युक्त सूत्रकाहै, परन्तु अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसा है॥

संघातानां द्वितयनिमित्तवशाद्विदारणं भेदः । पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिः संघातः ॥ ननु च द्वित्वाद्-द्विवचनेन भवितव्यम् ॥ बहुवचननिर्देशस्तृतीयसंग्रहार्थः। भेदात्संघाताद्भेदसंघाताभ्यां च उत्पद्यन्त इति ॥ तद्यथा—द्वयोः परमाण्वोः संघाताद्द्विप्रदेशः स्कन्ध उत्पद्यते । द्विप्रदेशस्याणोश्च त्रयाणां वा अणूनां संघातात्त्रिप्रदेशः ।द्वयोर्द्विप्रदेशयोस्त्रिप्रदेशस्याणोश्चतुर्णां वा अणूनां संघाताच्चतुःप्रदेशः

	तथा ऐसेही किसी स्कन्धके भेद होनेसे अथवा विदारे जानेसे और उसी समयमें अन्य स्कन्धोंके संघातके जुड़नेसे स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है
वृत्त्यनुवादः—संघातानाम्[6/3] द्वितयनिमित्त-वशात्[5/1]	=संघातोंके दोनों (बाह्य और अभ्यन्तर)निमित्तोंके बलसे
विदारणम्[1/1] भेदः[1/1]; पृथक्*भूतानाम्[6/3] एकत्व-	=टूटना(न्यारा न्यारा वा भिन्न २ होना)है सो भेद है। न्यारीन्यारी द्रव्योंके एकपनाकी
आपत्तिः[1/1] सङ्घातः[1/1] ननु*च*द्वित्वात्[5/1]	=प्राप्ति है सो संघात है । पुनि प्रश्न द्वित्वसे अर्थात् भेदपना और संघातपना के निमित्तोंसे (इस सूत्रमें)
द्विवचनेन[3/1]	=दो वचन युक्त(भेदसंघाताभ्याम् ऐसा न कि बहुवचन भेद संघातेभ्यः ऐसा)
भवितव्यम्[1/1] । बहुवचन-निर्देशः[1/1]	=होना चाहिये । (उत्तर इससूत्रमें) बहुवचनका निरूपण वा वर्णन
तृतीय-संग्रह-अर्थः[1/1]; भेदात्[5/1]	=तीसरे(भेदसंघाताभ्याम्)के समुच्चय के लिये है ।(पुद्गलोंके स्कन्ध) बिछुड़नेसे
संघातात्[5/1] भेद-संघाताभ्याम्[5/2] च*	=मिलने(जुड़ने)से और(=च) मिलने बिछुड़ने (दोनोंसे)
उत्पद्यन्ते[1] इति*तद्यथा*द्वयोः[6/2] परमाण्वोः[6/2]	=उत्पन्न होते हैं(अतःभेदसंघातेभ्यःऐसा बहुवचन है) । जैसेकि दो परमाणुओंके
संघातात्[5/1] द्विप्रदेशः[1/1] स्कंधः[1/1] उत्पद्यते[1] द्विप्रदेशस्य[6/1] च*	=जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है । दो प्रदेशवाले (स्कन्ध)के और(=च)
अणोः[6/1] त्रयाणाम्[6/3] वा*अणूनाम्[6/3] संघातात्[5/1]	=अणुके (=अणोः)(संघातसे) अथवा तीन(खुलीहुई)परमाणुके मिलनेसे,=संघातात्)
त्रिप्रदेशः[1/1]; द्वयोः[6/2] द्वि-प्रदेशयोः[6/2]	=तीन प्रदेशवाला(स्कंध उपजता)है । दो दो प्रदेशवाले दो (स्कन्धों)के (संघातसे),
त्रि-प्रदेशस्य[6/1] अणोः[6/1] चतुर्णाम्[6/3] वा*	=तीन प्रदेशवाले(स्कन्ध) के और अणुके संघातसे, अथवा चार (खुलीहुई)
अणूनाम्[6/3] संघातात्[5/1] चतुः प्रदेशः[1/1]	=परमाणुओंके संघातसे चार प्रदेशी(स्कंध उत्पन्न) होता है

एवं संख्येयासंख्येयानन्तानामनन्तानन्तानां च संघातात्तावत्प्रदेशाः। एषामेव भेदात्तावद्द्विप्रदेश-पर्यन्ताः स्कन्धा उत्पद्यन्ते ॥ एवं भेदसंघाताभ्यामेकसामयिकाभ्यां द्विप्रदेशादयः स्कन्धाउत्पद्यन्ते । अन्यतो भेदेनान्यस्य संघातेनेति॥ एवं स्कन्धानामुत्पत्तिहेतुरुक्तः॥ अणोरुत्पत्तिहेतुप्रदर्शनर्थमाह—

॥ भेदादणुः ॥ २७ ॥

एवम् * संख्येय-असंख्येय-अनन्तानाम् अनन्तानन्तानाम् च *	=इसप्रकार संख्यात-असंख्यात-अनन्त-और(=च) अनन्तानन्तके
संघातात् तावत् * प्रदेशाः ; एषाम् एव * भेदात्	=संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कंध(उपजतेहैं);इन(स्कन्धों)के ही विदारणसे
तावत् * द्वि-प्रदेश-पर्यन्ताः स्कंधाः उत्पद्यन्ते ।	=(तावत्—'वाक्यके भूषके लिये है') दो प्रदेशीतक स्कंध उपजते हैं अर्थात् अन्य बहुत प्रदेशवाले स्कंध यदि विदारें जांय तो वे स्कंध टूट टूटकर छोटेसे छोटे स्कंधदो।प्रदेश तकके होसकते हैं । इससे छोटा स्कंध नहीं होसकता है
एवम् * भेद-संघाताभ्याम् एकसामयिकाभ्याम्	=इस प्रकार एक समयकरि(=सामयिक)भेद संघात दोनोंसे
द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते ।	=दो प्रदेशादिक वाले स्कन्ध उत्पन्न होते हैं अर्थात् किसी स्कन्धका विदारण हो और उसी समय में किसी दूसरे स्कन्धसे उसका संघात होतो इसप्रकारभेद संघात दोनों से एक ही समय में स्कन्ध उपजते हैं
अन्यतः * भेदेन अन्यस्य संघातेन इति * ॥	=अन्यसे भेदकरि (और) अन्यका संघात करि (ये स्कंध उत्पन्न होते हैं) अर्थात् ये भेद संघात (दोनों) सेएक ही समयमें उत्पन्न होनेवाले स्कंध इस प्रकार होतेहैं कि किसीएक स्कंधकी जिस समय टूटन हुई उसी समय किसी दूसरेस्कंधके साथ उसका जुड़नाहोतो कहेंगेकि अमुकस्कन्धभेद संघातसेउपजाहै
एवम् * स्कन्धानाम् उत्पत्ति-हेतुः उक्तः ॥	=इस प्रकार स्कन्धोंकी उत्पत्तिका कारण कहा गया
अणोः उत्पत्ति-हेतु-प्रदर्शन-अर्थम् आह ।	=अणु की उत्पत्तिका कारण दिखावनेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहतेहैं कि
सूत्रम्—भेदादणुः ॥२७॥	**=भेदात्-अणुः(उत्पद्यते) ॥२७॥**

(१) इसप्रकार तथा श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यके पृष्ठ१३२ पर और भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीकाकेपृष्ठ४०५ पर इससूत्रका पाठएकहै अर्थभी एकहै

सिद्धे विधिरारभ्यमाणो नियमार्थो भवति। अणोरुत्पत्तिर्भेदादेव, न संघातान्नापि भेदसंघाताभ्यामिति॥ आह संघातादेव स्कन्धानामात्मलाभे सिद्धे भेदग्रहणमनर्थकमिति ॥ तद्ग्रहणप्रयोजनप्रतिपादनार्थमिदमुच्यते—

सूत्रार्थः—भेदात् [5] अणुः [1] उत्पद्यते । =भेद से अणु उत्पन्न होता है अर्थात् अणु किसी वस्तुके खण्ड से उपजता है न कि किसी वस्तु के जुड़ने अथवा मिलने से ॥

वृत्त्यनुवादः—सिद्धे [7] विधिः [1] आरभ्यमाणः [1] नियम-अर्थः [1] =सिद्ध होनेपर अर्थात् सिद्ध होनेके पश्चात् विधि सूत्रका प्रारम्भ नियमके लिये

भवति । =होता है अर्थात् जो पहले विधि सूत्रसे अर्थ सिद्ध होनेपर फिर विधि सूत्र कहा जाता है वह नियमके लिये होता है और उसको नियम सूत्र(सीमाबंधक सूत्र) कहते हैं जैसे पचीसवां सूत्रमें कहा है कि पुद्गलके अणु और स्कंध दो भेद होते हैं और छब्बीसवां सूत्रमें कहते हैं कि (१)भेदसे (२) संघातसे और (३) भेद संघात दोनोंसे स्कंध उत्पन्न होते हैं यह विधि सूत्र अथवा एक बातको साधारण वर्णन करनेवाला सूत्र है, पचीसवां सूत्रसे इस २६वां सूत्रमें अणवः स्कंधाः दोनोंकी अनुवृत्तियां यदि लीजावें तो यह अर्थ होगा कि अणु और स्कंध (१) भेदसे (२) संघातसे और (३) एकही समयमें भेद संघात दोनोंसेही उत्पन्न होते हैं, यथार्थमें यह अर्थ है नहीं इसलिये ऊपरके अर्थको नियमित या रोकनेके लिये पूर्वोक्त विधि सूत्र २६वां के पश्चातही दूसरा विधि सूत्र अर्थात् २७वां सूत्र कि अणु भेदसेही उपजते हैं (नकि संघातसे और भेद संघात दोनोंसे उपजते हैं) दिया है ॥

अणोः [6] उत्पत्तिः [1] भेदात् [5] एव*, न* संघातात् [5] अपि* =अणुकी उत्पत्ति भेदसेही है नकि संघातसे भी ॥

भेद-संघाताभ्याम् [5] इति* । आह । संघातात् [5] एव* =(और नकि,एकसमयमें)भेदसंघात दोनोंसे(होतीहै)(शिष्य)तर्क करताहैकि संघातसेही

स्कंधानाम् [6] आत्म-लाभे [7] सिद्धे [7] भेदग्रहणम् [1] =स्कंधोंके स्वरूप लाभ सिद्ध होने पर(संघातके साथ) भेदको ग्रहण करना

अनर्थकम् [1] ॥ इति* =निष्प्रयोजन है अर्थात् संघातसे स्कंध उत्पन्न होते हैं फिर भेद संघातसे उत्पत्ति कहना निरर्थक है

तद्-ग्रहण-प्रयोजन-प्रतिपादन-अर्थम् [1] =उस संघातके साथ भेद शब्द)के लानेके प्रयोजन कहनेके लिये

इदम् [1] उच्यते । =यह(अग्रिम सूत्र)कहाजाता है कि

॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अनन्तानन्तपरमाणुसमुदयनिष्पाद्योऽपि कश्चिच्चाक्षुषः कश्चिदचाक्षुषः ॥ तत्र योऽचाक्षुषः

सूत्रम्—भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः[1] ॥ २८ ॥ = भेदसंघाताभ्याम् चाक्षुषः (स्कंधः उत्पद्यते) ॥ २८ ॥

सूत्रार्थः—भेदसंघाताभ्याम् ३। चाक्षुषः १ (स्कंधः १) उत्पद्यते = भेद संघात (दोनों) सेही नेत्र इन्द्रियगोचर स्कंध उत्पन्न होता है (भेदसे नहीं होता) अर्थात् जो सूक्ष्म परिणमनरूप स्कंध है उसका भेद अथवा खंड होनेपर तो सूक्ष्म परिणामको नहीं छोड़ता है इससे वह नेत्र इन्द्रियसे अगोचर है परन्तु जब वह सूक्ष्म परिणाम (=भेद) रूप किया हुआ स्कंध अन्य स्कंधमें संघातरूप होकर मिले तब सूक्ष्मपणाके परिणामको छोड़कर स्थूलपनाको प्राप्त होकर नेत्र इंद्रिय ग्राह्य होता है इसलिये कहते हैं कि भेद संघात दोनोंसे नकि केवल भेदसे नेत्रइन्द्रियगोचर स्कंध पैदा होता है

वृत्त्यनुवादः—अनन्तानन्त-परमाणु-समुदय-निष्पाद्यः १ अपि* = अनन्तानन्त परमाणुके समूहकरि उत्पन्न होने योग्य (स्कंधों) में भी

कश्चित्*चाक्षुषः १। कश्चित्*अचाक्षुषः १। = कोई एक (स्कंध, नेत्र इन्द्रियकरि ग्राह्य है, कोई एक नेत्रइन्द्रियकरि ग्रहण योग्य नहीं है

तत्र*यः १। अचाक्षुषः १। = तहां जो स्कंध नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य नहीं (अचाक्षुषः) है

(१) नेत्र इन्द्रियगोचर = नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्षहोनेवाला, नेत्रइन्द्रियके ग्राह्य, नेत्र इन्द्रियके ग्रहण योग्य (२) दिगम्बर आम्नायकी बहुतसी मुद्रितग्रन्थकी पुस्तकों तथा हस्तलिखित कई प्रतियोंमें यह सूत्र पूर्वोक्त लेखअनुसार है परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायके "सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथाश्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीकाके पृष्ठ ४०६ पर यह सूत्र इस प्रकार है कि "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः" ॥ अर्थात् चाक्षुषाः बहुवचन चाक्षुष' (नेत्र इन्द्रियगोचर) का है चाक्षुषाः शब्दमें योग्यता और सुगमता यह जान पड़ती है कि 'स्कन्धाः' शब्दको अनुवृत्ति पचीसवां सूत्रसे और उत्पद्यन्ते शब्दकी अनुवृत्ति छब्बीसवां सूत्रसे लेकर [illegible] खींचातानी बिना कियेहुये "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषाः स्कन्धाः उत्पद्यन्ते" यह अनुवृत्तियोंकेसूत्र होजाता है। इसमें संदेह नहीं कि एक प्रकारके तुल्यसूत्र शीघ्र होजाताहै अर्थात् "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः" होजाना है अनुवृत्ति स्कन्धाके स्थानमें 'स्कन्धः' को मानना पड़ता है और इसी प्रकार उत्पद्यन्तेके स्थानमें उत्पद्यतेको। अर्थ इसप्रकार सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें किया है कि

भेद-संघाताभ्यां ३। चाक्षुषाः १। स्कन्धाः १। = भेद-संघात (दोनों) से ही नेत्र इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होसकनेवाले स्कन्ध

उत्पद्यन्ते अचाक्षुषाः १। तु* यथा* उक्तास् १॥ = उत्पन्न होते हैं और (=तु) जोनेत्र इन्द्रियगोचर नहीं है वे जैसा कि (छब्बीसवांसूत्रमें कहागया है कि)

संघातात् ५। भेदात् ५। संघातभेदात् ५। च* इति* = संघातसे, भेदसे तथा (=च) संघातभेद (दोनों) से (ही) (उत्पन्न होतेहैं)। अर्थ दोनोंसम्प्रदायोंमें एकसाहै।

स कथं चाक्षुषो भवतीति चेदुच्यते । भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः । न भेदादिति ॥ का तत्रोपपत्तिरिति चेत्-ब्रूमः । सूक्ष्मपरिणामस्य स्कन्धस्य भेदे सौक्ष्म्यापरित्यागादचाक्षुषत्वमेव । सौक्ष्म्यपरिणतः पुनरपरः सत्यपि तद्भेदेऽन्यसंघातान्तरसंयोगात्सौक्ष्म्यपरिणामोपरमे स्थौल्योत्पत्तौ चाक्षुषो भवति॥ आह धर्मादीनां द्रव्याणां विशेषलक्षणान्युक्तानि,सामान्यलक्षणं नोक्तं, तद्वक्तव्यम्॥ उच्यते—

॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

सः[१] कथम्* चाक्षुषः[१] भवति[T] इति* चेत्* उच्यते[T] ।	=सो कैसे नेत्र इन्द्रियगोचर होता है । ऐसी शंका होनेपर कहाजाता है कि
भेदसंघाताभ्याम्[५] चाक्षुषः[१] न* भेदात्[५] इति*	=भेदसंघात दोनों से नेत्र इन्द्रियगोचर(स्कन्ध)होता है न भेद या खंडसे केवल ।
का[१] तत्र* उपपत्तिः[१] इति* चेत्* ब्रूमः[T] ।	=क्योंकर तहां(चाक्षुषस्कन्धकी)उत्पत्ति है ऐसा संदेह है(उत्तरमें) हम कहते हैं कि
सूक्ष्म-परिणामस्य[६] स्कन्धस्य[६] भेदे[७] सौक्ष्म्य-	=सूक्ष्म परिणमनरूप स्कन्धके भेद या खंड होनेपर सूक्ष्मताके
अपरित्यागात्[५] अचाक्षुषत्वम्[१] एव* ।	=न छोड़ने(के कारण)से नेत्र इन्द्रियके अगोचरही रहता है ।
सौक्ष्म्य-परिणतः[१] पुनः* अपरः[१] सति[७] अपि* तद्-भेदे[७]	=बहुरि कोई एक(=अपर)सूक्ष्मतारूप परिणमा(स्कन्ध)हो उस(स्कन्ध)के भेद होनेपर
अन्य-संघात-अन्तर-संयोगात्[५] सौक्ष्म्य-	=अन्य(स्कन्ध)का संघात विशेषके(अन्तर)मिलनेसे सूक्ष्मपनाके
परिणाम-उपरमे[७] स्थौल्य-उत्पत्तौ[७] चाक्षुषः[१] भवति[T] ॥	=परिणमनको छोड़नेपर और(=च)स्थूलताके उत्पन्न होनेपर नेत्र इन्द्रियगोचर होताहै
आह[T] धर्मादीनां[६] द्रव्याणाम्-विशेष-लक्षणानि[१] उक्तानि[१] ।	=शिष्य पूछता है कि धर्मादिक द्रव्योंके विशेष लक्षण कहेगये
सामान्य-लक्षणम्[१] न* उक्तम्[१] तद्-वक्तव्यम्[१] उच्यते ।	=सामान्यलक्षण नहीं कहागया, उस सामान्यलक्षणको कहना चाहिये -कहा जाताहै कि
सद्द्रव्यलक्षणम् ॥२९॥	**= सत्-द्रव्य-लक्षणम् (भवति) ॥२९॥**
सूत्रार्थः—सत्[१] द्रव्य-लक्षणम्[१] भवति[T]	=द्रव्यका लक्षण सत् है वही द्रव्य है अथवा जो सत्‌रूप है वही द्रव्य है

श्वेताम्बर आम्नायके मतानुसार तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें यह सूत्र नहीं है अर्थात् इसको सूत्र नहीं माना है वार्तिक और वृत्तिरूपमें दिया है ॥

यत्सत्तद्द्रव्यमित्यर्थः ॥ यद्येवं तदेव तावद्वक्तव्यं किं सत् ? इत्यत आह—

॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चेतनस्याचेतनस्य वा द्रव्यस्य स्वां जातिमजहत उभयनिमित्तवशाद्भावान्तरावाप्तिरुत्पादनमुत्पादः । मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् ॥

वृत्त्यनुवादः—यत्[१।१] सत्[१।१] तत्[१।१] द्रव्यम्[१।१] इति* अर्थः[१।१] =जो सत् है वह द्रव्य है ऐसा तात्पर्य है

यदि[१।१] एवम्* तावत्* तत्[१।१] एव* =जो ऐसे हैं अर्थात् जो सत् हैं सो द्रव्य है तो(=तावत्)सोही (तद्द एव)

वक्तव्यम्[१।१] किम्[१।१] सत्[१।१] ? इति* अतः आह =कहना चाहिये सत् क्या है इसलिये(आचार्य अग्रिमसूत्रमें) कहते हैं कि

[१] उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं [२] सत् ॥ ३० ॥ = भवति सत् उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् ॥ ३०

सूत्रार्थः—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्[१।१] सत्[१।१] भवति[।] =उत्पत्ति-नाश-स्थिरता स्वरूप (=युक्त) सत् है या उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षणवाला (=युक्त) सत् है अर्थात् [२] उत्तर पर्यायका उपजना सोही पूर्व पर्यायका नाश होना है और जो पूर्व पर्यायका नाशहोना सोही उत्तर पर्यायका उत्पाद है और द्रव्य है सो उत्पादमेंभी वही द्रव्य है और व्यय में भी वही द्रव्य है अन्य द्रव्य नहीं होगई है और उत्पाद-व्यय द्रव्यमें समय समय होता है इससे सर्वद्रव्य परिणामी हैं परिणमन विना किसी समयमेंभी कोई द्रव्य नहीं रहती हैं । ये(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) तीनों गुण द्रव्यमें एक साथ निरन्तर रहते हैं।

वृत्त्यनुवादः—स्वाम्[२।१] जातिम्[२।१] अजहतः[६।१] चेतनस्य[६।१] =जिसने अपनी जातिको नहीं छोड़ा है चेतन

अचेतनस्य[६।१] वा* द्रव्यस्य[६।१] उभय-निमित्त-वशात्[५।१] =अथवा अचेतन द्रव्यके (बाह्य, अभ्यन्तर) दोनों कारणोंके वलसे

भावान्तर-अवाप्तिः[१।१] उत्पादनम्[१।१] उत्पादः[१।१] =(एक अवस्थासे)अन्य अवस्था वा परणतिको प्राप्त होना सो उत्पाद है

मृदः[६।१] पिण्डस्य[६।१] घट-पर्यायवत्* =माटीके पिंडके घट पर्याय होने सदृश है अर्थात् मृत्तिका द्रव्य विषैं पिंड पर्यायका

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ दोनों सम्प्रदायोंमें एकसा है ॥ श्वेताम्बर आम्नायमें कई पाठ हैं उनमेंसे एक पाठ मिलता है (देखो पृष्ठ १०१) ॥

(२) (प्रश्न) जब उनतीसवां सूत्रमें 'सत्' शब्द है तो यहां तीसवां सूत्रमें 'सत्' शब्द क्यों लाये हैं, उनतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति लेकर ऐसा सूत्र क्यों नहीं किया कि "उत्पाद-व्यय ध्रौव्ययुक्तं" ॥ (उत्तर) यह संदेह रहता कि 'सत्' शब्दकी अनुवृत्ति है अथवा 'द्रव्यलक्षणम्'की क्योंकि उत्पाद व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत् अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तम् द्रव्यलक्षणम् इन दोनोंका अर्थ एकही है (३) जैसे सोनेके कुण्डलोंका कड़ेरूप होना सोतो उत्पाद है और

तथा पूर्वभावविगमनं व्ययः । यथा घटोत्पत्तौ पिण्डाकृतेः॥अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावात् ध्रुवति स्थिरीभवतीति ध्रुवः ।

	नाश होना और घट पर्यायका उपजना इस प्रकार उत्पाद जानना
तथा*पूर्वभावविगमनम्॥व्ययः ।	=वैसेही (=तथा)पहिली अवस्थाका विनाश होना (=विगमनं) समुच्छेद होना अथवा अभाव होना सो व्यय है
यथा*घट-उत्पत्तौ॥पिण्ड-आकृतेः॥; अनादि-	=जैसे घटके उपजनेमें पिंडके आकारका (विनाश होना)अनादिकालसे
पारिणामिक-स्वभावेन व्यय-उदय-अभावात्	=परिणमन होनेवाले स्वभाव द्वारा (पर्यायोंके) विनाश उत्पादनके वशसे रहित
(२)ध्रुवति स्थिरीभवति इति*ध्रुवः।	=स्थिर रहता है वा अवतिष्ठमान रहता हैं (=स्थिरी भवति) ऐसा ध्रुव है अर्थात् जो पूर्वभावका नाश और उत्तरभावका उत्पाद होतेभी अपनी जातिको नही छोड़ता है सो ध्रुव है, पर्याय नवीन उपजतीहैं और विनशती हैं, द्रव्यस्वभावकरि उत्पाद विनाशरूप नहीं है ध्रुव है ही ॥

कुण्डलरूप अवस्थाका नष्ट होना सो विनाश वा व्यय है और पीतरंग, भारीपन आदि अपनी सोनेकी जातिको लिये हुए दोनों अवस्थाओंमें विद्यमान रहना सो ध्रौव्य है। और भी जैसे मिट्टीके पिंडका घट करना सो उत्पाद है॥और पिंडपर्यायका अभाव सो व्ययहै और पिंडपर्यायमें तथा घटपर्यायमें मिट्टीका अभाव न होना तथा सर्व मिट्टीके गुणोंको धारण किये हुये दोनों पिंड तथा घट अवस्थाओंमें रहना है सो ध्रौव्य है ॥

(१) श्वेताम्बरआम्नायमें इस सूत्रके भिन्नभिन्नभाष्य और पाठ ऐसे हैं कि (क)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येण च युक्तंसत्'' (ख)उत्पादव्ययाभ्यां ध्रौव्येणच युक्तसतोलक्षणम् (उत्पादसे, व्ययसे, तथा ध्रौव्यसे, युक्त होना यह सत्का लक्षण है) (ग) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं चैतत् त्रितययुक्तं सत् (घ) उत्पादव्ययौ ध्रौव्यं च सतो लक्षणम् (ङ)उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीनों एकही पदमें पढे हैं ॥ सर्वथा सूत्रका यह अर्थहै कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित सत् है ॥

(२)अनेकान्तस्वरूप वस्तुके अन्वयी जोडूरूप तो गुण है और व्यतिरेकी पर्याय हैं जैसे मृत्तिकाविषैं स्पर्श रस गन्ध रूप ये तो गुणहैं और पिंड,घट कपाल, खंड, शर्करादिक पर्याय हैं ॥ स्पर्श रस गन्ध वर्ण गुण हैं ते तो मृत्तिका के साथही घट कपाल खंडादिक सर्वपर्यायोमें पाये जाते हैं तिससे स्पर्शादि गुण अन्वयी हैं। और घट कपालादिक पर्याय भिन्नभिन्न कालमें पायेजाते हैं। जिस कालमें पिंड पर्याय है तिस कालमें घटादिक अन्य पर्याय नही हैं और घट पर्याय है तिसमें पिण्डादिक पर्याय नहीं है, तिससे पर्याय व्यतिरेकी है और द्रव्यसे गुण पर्याय भिन्न नहीं है गुण पर्यायात्मकही द्रव्य है ॥ गुण हैं वे तो द्रव्यमें युगपत् प्रवर्तते हैं और पर्याय हैं ते क्रमकरि प्रवर्तती हैं, तिससे गुणपर्यायहैं ते द्रव्यका स्वभाव भूत हैं तिससे द्रव्यलक्षणपना को धारण करती है ॥ इस प्रकार द्रव्यके तीन लक्षण (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) कहेगये हैं।

ध्रुवस्य भावः कर्म वा ध्रौव्यम् । यथामृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः ॥ तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्युक्तं सदिति ॥ आह भेदे सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति ॥ तथा सतितेषां त्रयाणां

ध्रुवस्य६। भावः१। कर्म१।।वा*ध्रौव्यम्१।।' ।	ध्रुवका भाव अथवा कर्म है सो ध्रौव्य है अर्थात् स्थिरता अथवा स्थिर रहना ध्रौव्य है
यथा* १ मृद्-पिण्ड-घटादि-अवस्थासु७।।मृद्-आदि-अन्वयः१। ॥	=जैसे मिट्टीका ढेला घट (कपाल) आदिक अवस्थाओं में मिट्टी आदि है =सो जोड़ रूप वा सर्व दशाओंमें सम्बन्धरूप है अर्थात् वही मिट्टी पिंडमें थी वही घटमें
तैः३।उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यैः३।युक्तम्१।।सत्१।।इति*॥	=तिन उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता (तीनों) करि सहित (=युक्त) सत् है ॥
आह।भेदे७।सति७।युक्तशब्दः१।दृष्टः१। ।	=प्रश्न करता है कि भेद होनेमें युक्त शब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एक वस्तु से दूसरी वस्तु भिन्न दिखानी होती है वहां युक्त शब्द लाते हैं
यथा*दण्डेन३।।युक्तः१। देवदत्तः१।इति* ॥	=जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो और वस्तु है दंड अन्य वस्तु है । देवदत्त और दंड एक ही नहीं है
तथा*सति७। तेषाम्६। त्रयाणाम्६।	=इस भांति (=तथा) होने में (=सति) तिन तीन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य) के

(१) "यथा मृत्पिण्ड घटाद्यवस्थासु मृदाद्यन्वयः" ऐसा पाठ हो अर्थात् 'मृदन्वयः'के स्थानमें 'मृदाद्यन्वयः' हो तो पिण्डका अर्थ लोहा (देखो पद्मचन्द्रकोश पृष्ठ २३६) होगा और वाक्यका अर्थ इसप्रकार होगाकि जैसे मिट्टी और लोहा(=पिण्ड)घट आदिक लोटा, करहा अवस्थाओंमें मिट्टीऔर लोहेके जोड़रूप वा अन्वय रूप है (२) द्रव्यका एक लक्षण सत् कहा, एक उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्तपणा कहा । एक गुण पर्यायवान् " (देखो सूत्र३८) कहा, इन तीन लक्षणोंके मध्य एकके कहने पर अन्य दो लक्षण अर्थसेही आजाते हैं ॥ सत् लक्षणके कहनेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् पना और गुण पर्यायवान् पणा स्वयमेव आजाते हैं ॥ और उत्पाद व्यय ध्रौव्यवान् कहने पर सत्पना और गुणपर्यायवान् पणा स्वयमेव गर्भित होजाता है और गुण पर्यायवान् पणा कहनेमें सत्पना और उत्पाद व्यय ध्रौव्यपना स्वयमेव आजाते हैं ॥

तैर्युक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ॥ नैष दोषः । भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया युक्त-शब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तः स्तम्भ इति ॥ तथा सति तेषामविनाभावात्सद्व्यपदेशो युक्तः ॥ समाधिवचनो वा युक्तशब्दः । युक्तः समाहितः तदात्मक इत्यर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्

च॰तैः॰युक्तस्य॰द्रव्यस्य॰अभावः॰प्राप्नोति ॥	=और(=च)तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यकै अभाव प्राप्त होता है अर्थात् जो ऐसे तीन भाव पृथक् पृथक्करि युक्त हैं तो द्रव्यका अभाव आता है
न॰एषः॰दोषः॰; (१)भेदे॰अपि॰कथञ्चित्॰	=(उत्तर) यह दूषण नहीं है, भेद होनेपरभी कभी कभी
अभेद-नय-अपेक्षया॰युक्तशब्दः॰दृष्टः॰	=अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखागयाहै अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आते ही हैं परन्तु कभी कभी अभेदपनाके अर्थमेंभी युक्त शब्द आता है।
यथा॰सारयुक्तः॰स्तम्भः॰इति॰ ॥ तथा॰सति॰तेषाम्॰	=जैसे सारयुक्त स्तम्भ है, तैसे होनेमें तिन (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के
अविनाभावात्॰सत्-व्यपदेशः॰युक्तः॰	=अविनाभाव होनेसे(=एकविना दूसरेका अस्तित्व न रहसकनेकेहेतुसे)सत्का कथन है
समाधिवचनः॰वा॰युक्तशब्दः॰। युक्तः॰समाहितः॰	=अथवा युक्त शब्दएकमेकतारूप वचन (=समाधिवचन) है। युक्त है सो समाहित
तदात्मकः॰इति॰अर्थः॰;उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं॰सत्	=तदात्मक वा तत्स्वरूप ऐसा अर्थ है। उत्पत्ति,नाश, स्थिरता,मिलित(=युक्त)सत् है,

(१) सर्वार्थसिद्धको प्रथमावृत्तिमें "भेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है इस पर खरखटिप्पणी ऐसे है कि 'अभेदेऽपिकथञ्चिद्भेदापेक्षया इत्यपि पाठान्तरम्' द्वितीयावृत्तिमेंभी यही खरखटिप्पणी है परन्तु "अभेदेऽपि कथञ्चिदभेदनयापेक्षया" इत्यादि पाठ है यह छापेकी अशुद्धि है अथवा सम्भव है कि अन्य प्रकारकी अशुद्धि हो क्योंकि कोईभी पाठ हम लें, यदि आरंभमें 'अभेद' शब्द है तो मध्यमें भेद शब्द होना चाहिये यदि प्रारम्भमें 'भेद' शब्द हो तो दूसरा शब्द अभेद होना चाहिये ॥ दो हस्तलिखित प्रतियोंमें "अभेदेऽपिकथंचिदभेदनयापेक्षया" पाठ है एक अन्य हस्त लिखित पुस्तकमें "अभेदेन कथंचिद्भेदनयापेक्षया" ऐसा पाठ है। इन समस्त पाठोंको छोड़कर हमने प्रथमावृत्तिका पाठ लिया है क्योंकि शिष्यके प्रश्नके शब्दोंके क्रमानुकूल उत्तर प्राप्त होजाता है जैसाकि नीचेके हिन्दी अनुवादसे प्रगट है। प्रश्न करता है कि "भेद होनेमें युक्तशब्द देखा जाता है अर्थात् जहां एकवस्तुसे दूसरीवस्तु भिन्न दिखानी होतीहै वहां युक्त शब्द आतेहैं जैसे दंडकरि युक्त देवदत्त अर्थात् देवदत्त मनुष्य है सो चेतन है और दंड अचेतन अन्य वस्तु है देवदत्त और दंड एकही नहीं है इस भांति होनेपर तिन तीन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)के और इन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)करि युक्त द्रव्यके अभाव प्राप्त होताहै अर्थात् जो ऐसे तीनभाव भिन्नकरि युक्त हैं तो द्रव्यका अभाव आताहै।(उत्तर)यह दूषण नहींहै। भेद होनेपरभी कभीकभी अभेदनयकी अपेक्षासे युक्त शब्द देखाजाता है अर्थात् जहां एक वस्तुसे दूसरी वस्तुको पृथक् दिखाना होता है वहां तो युक्त शब्द आतेही हैं परन्तु कभीकभी अभेदपनाके अर्थमें भी युक्तशब्द आता है। जैसे सार युक्त स्तम्भ है ऐसे होनेपर तिन(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)केअविनाभावसे सत् का कथनहै॥

उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति—उत्पादादीनि त्रीणि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्याच्चार्थान्तरभावः ॥ द्रव्यार्थिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभाव इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ॥

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणीत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-आत्मकम् इति यावत्*एतद्$^{1}_{1}$उक्तं भवति । =उत्पत्ति-विनाश-स्थिरता स्वरूप होना इतना(=यावत्)अर्थ है अर्थात् यह सिद्ध होता है कि

उत्पाद-आदीनि$^{1}_{3}$।।।त्रीणि$^{1}_{3}$।।।द्रव्यस्य$^{6}_{1}$।।।लक्षणानि$^{1}_{3}$।।। =उत्पादादिक तीनों द्रव्यके लक्षण हैं

द्रव्यम्$^{1}_{1}$।।।लक्ष्यम्$^{1}_{1}$।।।;तत्-पर्यायार्थिक-नय- =द्रव्य लक्ष्य है वे(=तद्=उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पर्यायार्थिकनयकी

अपेक्षया$^{3}_{1}$।।परस्परतः*द्रव्यात्$^{5}_{1}$।।।च*अर्थ-अन्तर-भावः$^{1}_{1}$; =अपेक्षासे आपसमें तथा (=च)द्रव्यसे अन्य अन्य पदार्थ हैं अर्थात् विशेषकी अपेक्षा समस्त पर्याय क्रमवर्ती भिन्नभिन्न हैं, परस्पर मिलें नहीं तिसकरि भिन्न हैं

द्रव्यार्थिक-नय-अपेक्षया$^{3}_{1}$।। व्यतिरेकेण$^{3}_{1}$। =द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे(उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)पृथक् पृथक् (=व्यतिरेकेण)

अनुपलब्धेः$^{5}_{1}$।।अनर्थ-अन्तर-भावः$^{1}_{1}$।इति* =न प्राप्ति होनेसे अन्य अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् ये उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सामान्य तो अभिन्न हैं वोही एक द्रव्य है द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थ प्रकाशिका पृ० २२२) (इस प्रकार भेद अभेदनयकी अथवा (पर्यायार्थिक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे)

लक्ष्य-लक्षणभाव-सिद्धिः$^{1}_{1}$।।;आह। नित्य-अवस्थितानि$^{1}_{3}$।।। =लक्ष्य लक्षणभावकी सिद्धि है । (शिष्य) पूछता है कि "नित्यावस्थितान्य-

अरूपाणि$^{1}_{3}$।।। इति*उक्तम्$^{1}_{1}$।।। =रूपाणि" (इस प्रकार इस अध्यायका चौथा सूत्र) कहागया है

तत्र*न*ज्ञायतेTकिम्*नित्यम्$^{1}_{1}$।।।इति*अतः*आहT =तहां नहीं जतायागया है कि नित्य क्या है,इसलिये (उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

[1]तद्भावाऽव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

सूत्रार्थः—तद्-भाव-अव्ययम्$^{1}_{1}$।।। नित्यम्$^{1}_{1}$।।। =वह(सत्)जो स्वभावसे विनाशरहित वा अविनाशी(=अव्यय)है सो नित्य है

(१) दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंसे इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है हमारे यहां 'नित्यम्' शब्दके स्थानमें किसी किसी पुस्तकमें 'नित्यं' पाठ है वह कातन्त्ररूपमालाव्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है (देखो अध्याय प्रथम पृष्ठ ५,६,५५०,५५१,)

तद्भाव इत्युच्यते । कस्तद्भावः ? । प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणं प्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मान्न भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः । तस्य भावस्तद्भावः ॥ येनात्मना प्राग्दृष्टं वस्तु तेनैवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते ॥ यद्यत्यन्तविरोधोऽभिनवप्रादुर्भावमात्रमेव वा स्यात्ततः

अर्थात्-तद्-भाव जो पहिले समयमें था सोही दूसरे समयमें था उसका नाश न होना सोही नित्य है भावार्थ यह है कि पहिले कहा हुआ (तद्)अथवा २९वां सूत्रमें कथित सत् जो स्वभावसे अविनाशी वा विनाशरहित है सोही नित्य है अर्थात् जिस स्वरूपकरि वस्तु पूर्वमें देखाथा उसी स्वरूपकरि वर्तमानमें देखिये है ऐसा जोड़रूप वस्तु में भाव वही तद्भाव है, उस जोड़रूप भाव द्वारा विनाश रहित (=अव्यय)हो उसीको नित्य कहतेहैं। सर्वथा नित्य अर्थात् कूटस्थ कोई वस्तु नहीं है कूटस्थके पर्याय पलटनेका अभाव है तब संसार तथा संसारके अभावके कारण विधानमें विरोध आता है।

वृत्त्यनुवादः-तद्भावः इति उच्यते । कः तद्भावः ? प्रत्यभिज्ञान-हेतुता ; तद् एव इदम् इति =(सूत्रमें) तद्भाव ऐसा कहागया है। तद्भाव क्या है। प्रत्यभिज्ञानका हेतुपन वा कारणपना है। यह (=इदम्)वहही है(=तद्-एव) ऐसी

स्मरणम् प्रत्यभिज्ञानम् ; तद् अकस्मात् =स्मृति प्रत्यभिज्ञान है; वह(प्रत्यभिज्ञान)अकस्मात्(विना हेतु वस्तुमें)

न भवति । इति यः अस्य हेतुः सः तद्भावः तस्य =नहीं होता है, जो इस(प्रत्यभिज्ञान)का कारण सो तद्भाव है तिस (सत्)का

भावः तद्भावः ; येन आत्मना प्राग्दृष्टम् वस्तु =भाव अथवा होना सो तद्भावहै। जिस स्वरूपकरि पहिले देखा हुआ पदार्थ है

तेन एव आत्मना पुनः अपि भावात् =तिसही स्वरूपकरि फिरभी विद्यमान होनेसे (स्वभावात्)

तद् एव इदम् इति प्रत्यभिज्ञायते ॥ =कि यह वहही है इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान कियाजाता है

यदि-अत्यन्त-विरोधः =जो(पूर्वोक्त प्रत्यभिज्ञानके अस्तित्वके)अतिशय विपरीत हो अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो

अभिनव-प्रादुर्भावमात्रम् एव वा स्यात् ततः =अथवा नवीन आविर्भावमात्रही हो, वहां

स्मरणानुपपत्तिः । तदधीनो लोकसंव्यवहारो विरुध्यते । ततस्तद्भावेनाव्ययं नित्यमिति निश्चीयते तत्तु कथञ्चिद्वेदितव्यम् । सर्वथानित्यत्वे अन्यथाभावाभावात्संसारतन्निवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोधः स्यात् ननु इदमेव विरुद्धं तदेव नित्यं तदेवानित्यमिति । यदि नित्यं व्ययोदयाभावादनित्यताव्याघातः । अथानित्यत्वमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति ॥ नैतद्विरुद्धम् ॥ कुतः ?—

स्मरण-अनुपपत्तिः ; तद्-अधीनः लोक- =स्मृतिका अभाव(=अनुपपत्ति) होताहै । इस (स्मरण)के आधीनलोक

संव्यवहारः विरुध्यते । ततः * तद्भावेन अव्ययम् =व्यवहार विरोध्या जाता है । इसकारणसे (=ततः) तद्भावकरि अविनाशी है

नित्यम् इति * निश्चीयते । ॥ तद् तु * =सो नित्य है ऐसा अवधारण वा निश्चय कियाजाता है । परंतु वह अर्थात् तद्भावकरि अव्ययरूप होना

कथञ्चित् * वेदितव्यम् ; सर्वथा * नित्यत्वे =कथञ्चित् जानो । (=वस्तुके,सर्वथा नित्यपना (माननेमें) अर्थात् कूटस्थ होनेमें

अन्यथाभाव-अभावात् संसार-तत्-निवृत्तिकारण- =पर्याय पलटनेके अभावसे संसार और (संसार)के निवृत्ति वा छूटनेके कारणके

(१)प्रक्रिया-विरोधः स्यात् । ननु * इदम् एव * विरुद्धम् =विधानमें विरोध होताहै । प्रश्न—यह (=इदम्) ही(एव)विपरीत है

तद् एव * नित्यम् तद् एव * अनित्यम् इति * । =(क्योंकर) वहही (वस्तु) नित्य हुई (और) वह ही (वस्तु) अनित्य हुई

यदि * नित्यम् व्यय-उदय-अभावात् =जो नित्य है तौ विनाश-उत्पादके अभावसे

अनित्यता-व्याघातः ; अथ * अनित्यत्वम् एव * =अनित्यत्वका व्याघात है । पक्षान्तरमें (=अथ) अनित्यता ही है तौ

स्थिति-अभावात् नित्यता-व्याघातः इति * ॥ =स्थिरताके अभावसे नित्यपनाका विरोध है अर्थात् नित्यतामें अन्तराय वा रुकावट है

न * एतद् विरुद्धम् कुतः * =(उत्तर) यह विरुद्ध नहीं है अर्थात् हमारा यह कथन कि कोई वस्तु कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है यह विपरीत कथन नहीं है क्योंकर कि

(१) आत्मनःसर्वथा नित्यत्वे नरनारकादिरूपेण संसारस्तद्विनिवृत्तिरूपमोक्षश्च न घटते। ततःसंसारस्वरूपकथनं मोक्षोपायकथनं च विरुध्यत इतिभावः॥

आत्मनः । सर्वथा * नित्यत्वे ॥ नरनारकादि =आत्माके सर्वथानित्यपना (मानने)में मनुष्य और नरकादिक

रूपेण ॥ संसार-तद्विनिवृत्तिरूप मोक्षः च * न * घटते =रूपसे संसार तथा(=च) उस(संसार)के आत्यन्त छूटने रूप मोक्ष नहीं बनतीहै

ततः * संसारस्वरूप कथनम् ॥ मोक्षकथनम् ॥ विरुध्यते इति * भावः ॥ =तिससे संसारस्वरूपका वर्णन और मोक्षके उपायका कथन विरोध्या जाय है ऐसा तात्पर्य है ॥

॥ अर्पितानर्पितासिद्धेः ॥ ३२ ॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुनः प्रयोजनवशाद्यस्यकस्यचिद्धर्मस्य विवक्षया प्रापितं प्राधान्यमर्पितमुप-
नीतमिति यावत् । तद्विपरीतमनर्पितम् । प्रयोजनाभावात् ॥

सूत्रम्—अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥३२॥ = अर्पित-अनर्पित सिद्धेः(तदेव द्रव्यं कथञ्चिन्नित्यं कथंचिद्‌
नित्यं च भवति ॥ ३२ ॥

सूत्रार्थः—अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः ५।१ तद् १।१ एव * द्रव्यम् १।१ =मुख्यता प्रधानताकरि गौणता करि (पदार्थोंकी) सिद्धि होनेसे वहही वस्तु
कथञ्चित्*नित्यम् १।१ कथञ्चित्*अनित्यम् १।१ च*भवति ॥३२॥ =कथंचित् नित्य है और कथंचित् अनित्य है अर्थात् वही वस्तु सामान्य अर्पणासे वा सामान्यकी मुख्यतासे नित्य है और विशेष अर्पणासे अथवा विशेषकी मुख्यतासे अनित्य है भावार्थ यह है कि वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करके कहे सो तो अर्पित है। और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मको कहनेकी इच्छा न करे वह अनर्पित है। इससे यह न समझ लेना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहा गया वह धर्म वस्तु में है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेक धर्मात्मक है

अनेकान्त- आत्मकस्य ६।१ वस्तुनः ६।१ =अनेकान्त धर्म स्वरूपवाली वस्तुका (वस्तुनः ६।१)
प्रयोजन-वशात् ५। यस्य ६। कस्यचित्*धर्मस्य ६। =प्रयोजनके वशसे जिस (=यस्य) कोईएक (=कस्यचित्) धर्मकी
विवक्षया ३।१ प्राधान्यम् २।१ प्रापितम् २।१ =विवक्षामें प्रधानपना अथवा मुख्यपना (=प्राधान्यम्)प्राप्तहुआ
अर्पितम् १।१ उपनीतम् १।१ =(वह मुख्यता) अर्पित है उपनीत है
इति*यावत्*तद्-विपरीतम् १।१ अनर्पितम् १।१ =इसप्रकारइतना(अर्थ)हैउस (मुख्यता)केविरुद्धअर्थात् गौणताहै सोअनर्पितहै
प्रयोजन- अभावात् ५। ॥ =क्योंकि (अनर्पितमें)प्रयोजन का अभाव है (नकि वस्तुमें धर्मका अभाव)

---

(१) इस सूत्र का पाठ और अर्थ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर सम्प्रदायों में एकसा है ॥ हमारे यहां की किसी किसी पुस्तकमें "अर्पितानर्पित सिद्धेः" ऐसा पाठ है सो भी 'अचोरहाभ्यां द्वे वा' सूत्र से ठीक है।

(२) अर्पित = मुख्य किया गया प्रधान किया गया, उपनीत, अभ्युपगत, योजित, व्यावहारिक(=जो व्यवहार में आवे) अनुपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थवाची हैं ॥ (३) अनर्पित = मुख्य नहीं किया गया गौण किया गया, अप्रधान किया गया, अनुपनीत, अनभ्युपगत, अव्यावहारिक, उपसर्जनीभूत ये शब्द एकार्थ वाची हैं ॥

सतोऽप्यविवक्षा भवतीत्युपसर्जनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पितं चानर्पितं चार्पितानर्पिते । ताभ्यां सिद्धेरर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोधः ॥ तद्यथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागिनेय इत्येवमादयः सम्बन्धा जनकत्वजन्यत्वादिनिमित्ता न विरुध्यन्ते । अर्पणाभेदात् ॥ पुत्रापेक्षया पिता पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादिः । तथा द्रव्यमपि सामान्यार्पणया नित्यं

भावार्थ—वस्तु में अनेक धर्म हैं सो वक्ता जिस धर्मको प्रयोजनके वशसे प्रधान करि कहै सो तो अर्पित हैं और प्रयोजन के विना वस्तुके जिस धर्मके कहनेकी इच्छा न करै वह अनर्पित है। इससे यह न समझना चाहिये कि जो धर्म नहीं कहागया है वह वस्तुमें है ही नहीं क्योंकि वस्तु अनेकधर्मात्मक है

सतः॥ अपि * अविवक्षा॥ भवति। इति* =सत् की अविवक्षा भी होती है अर्थात् सत् की विवक्षा तथा अविवक्षा दोनों होती हैं तिस से सत् रूप होय तिसकूं प्रयोजन के वशसे अविवक्षा करये सो गौण है इस लिये विरोध रहित. दोनों (विवक्षा तथा अविवक्षा) में वस्तु की सिद्धि है

उपसर्जनीभूतम्॥ अनर्पितम्॥ इति * उच्यते । =अप्रधानभूत अनर्पित ऐसे कहा जाता है

अर्पितम्॥ च * अनर्पितम्॥ च * अर्पितानर्पिते॥ =और (=च) अर्पित और (च=) अनर्पित अर्पितानर्पिते (द्वन्द्व समास रूपमें है)

ताभ्याम्॥ सिद्धेः॥ अर्पित-अनर्पित-सिद्धेः॥ =तिन (अर्पित-अनर्पित) दोनोंसे सिद्धि होनेसे "अर्पित-अनर्पित सिद्धेः" (ऐसा सूत्र)

न * अस्ति विरोधः॥ तद्यथा * एकस्य॥ देवदत्तस्य॥ =विरोध रहित है। जैसे कि एक देवदत्तका

पिता॥ पुत्रः॥ भ्राता॥[1] भागिनेयः॥ इत्येवम् * आदयः॥ =पिता-पुत्र-भाई-भानजा-इत्यादिक

सम्बन्धाः॥ जनकत्व-जन्यत्व-आदि-निमित्ताः॥ =सम्बन्ध जनकपना (तथा) जन्यपना आदिके निमित्त

अर्पणा-भेदात्॥ न * विरुध्यन्ते॥ पुत्र-अपेक्षया॥ =अर्पणा वा मुख्यताके भेदसे नहीं विरोध्या जाता है। बेटेकी अपेक्षाकरि (वह पुरुष)

पिता॥ - पितृ-अपेक्षया॥[2] पुत्रः॥ इत्येवम् * आदिः॥ =बाप है बापकी अपेक्षासे वही पुरुष बेटा इत्यादिक है ॥

तथा * द्रव्यम्॥ अपि * सामान्यअर्पणया॥ नित्यम् =वैसेही (=तथा द्रव्य भी सामान्य अर्पणासे नित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अर्पित किया ११२

---

(१) सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रथमावृत्तिमें माताशब्द नहीं है ॥ तीन हस्त लिखित प्रतियोंमें भी यह शब्द नहीं है पं०जयचंदकृता की वचनिकामें भी नहीं है, केवलद्वितीय संस्करण संस्कृत सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें है, इससे हमने 'माता' शब्द नहीं रक्खा है यह 'माता' शब्द भ्राता शब्दके पश्चात् द्वितीयावृत्तिमें है॥

(२) यहां पर ऋके स्थानमें र् होगया है अपेक्षयाका अ परे अर्थात् पितृ = पितर् (ऋके स्थानमें र् लानेसे) + अपेक्षया = पित्रपेक्षया बनाया ॥

विशेषार्पणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोधः॥ तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चित् भेदाभेदाभ्यां व्यवहारहेतू भवतः॥ अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतन्त्रत्वात् उपपन्ना भेदसंघातेभ्यः सतां स्कंधात्मनोत्पत्तिरिदं तु सन्दिग्धं, किं संघातः संयोगादेव द्व्यणुकादिलक्षणो भवति, उत कश्चिद्विशेषोऽवध्रियत इति? । उच्यते—सति संयोगे बन्धादेकत्वपरिणामात्मकात्संघातो निष्पद्यते॥ यद्येवमिदमुच्यतां, कुतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे

और पर्यायरूपसे अनर्पित किया तब नित्यत्व सिद्ध है ॥

विशेष-अर्पणया। अनित्यम्॥ =विशेषअर्पणासे अनित्य है अर्थात् जब द्रव्यरूपसे अनर्पित कियाजाय और पर्यायरूपसे अर्पित(योजित) किया जाय तब अनित्यत्व सिद्ध है ॥

इति*न*अस्ति। विरोधः। तौ। च*सामान्यविशेषौ। =इस प्रकार विरोध नहीं है। बहुरि(=च)ते(दोनों)सामान्य-विशेष

कथञ्चित्*भेद-अभेदाभ्याम्। व्यवहार-हेतू। भवतः। =कथंचित्-भेद अभेदसे व्यवहारके कारण होते हैं।

अत्र*आह। सतः। अनेक-नय-व्यवहार-तन्त्रत्वात्॥ =यहां(कोई) पूछता है कि सत्के अनेकनयके व्यवहारके आधीनपनासे

उपपन्ना। भेद-संघातेभ्यः। सताम्। स्कंध-आत्मन-उत्पत्तिः॥ =भेद तथा संघात औरभेदसंघातकरि ये सत् जेहै तिनकैं(=सताम्)स्कंधस्वरूप करि उत्पत्ति युक्तिमान(=उपपन्नाः)है सारांश सत् है ताकैं अनेक व्यवहारके आधीनपणा है यातैं सत्रूप पुद्गलस्कंधनिकी जो उत्पत्ति सो भेद और संघात तथा भेदसंघातसे है

इदम्॥ तु*सन्दिग्धम्॥ किम्॥ द्वि-अणुक-आदि-लक्षणः। संघातः। =परन्तु यह संदेह है कि क्या दो अणुकादि लक्षणवाला संघात

संयोगात्। एव*भवति। उत*कश्चित्*विशेषः। अवध्रियते। इति। =संयोगमात्रसेही होताहै वा(=उत)कोईऔर(=कश्चित्)विशेषनिर्णय कियागया है अर्थात् दो परमाणु आदिका संघात परमाणुओंके केवल संयोगमात्रसे ही होताहै वा कुछ और बात है॥

उच्यते। बन्धात्। एकत्वपरिणाम-आत्मकात्। सति। संयोगे। =(उत्तरमें) कहाजाता है कि एकत्व परिणमन स्वरूप बन्धानसे संयोगहोनेपर

संघातः। निष्पद्यते। ॥ यदि*एवम्*उच्यताम्। =संघात उपजता है जो इस प्रकार कहाजाय तो (अर्थात् जो आप कहतेहैंकि संयोग होते संते एकत्व परिणमनस्वरूप बंधसे संघातकी निष्पत्ति होती है

कुतः*(१)नु, खलु *पुद्गलजाति-अपरित्यागे। =तौ(=नु)कहांसे(ऐसाहोता,है क्योंकिपुद्गल(अपनी)जातिको निश्चयसे नहीछोड़तेसंते

---

(१) नु = वितर्क = विशेष तर्क अर्थात् तर्कके पश्चात् तर्कमेंसे तर्क निकालना (देखो पद्मचन्द्रकोष पृ० २२१) इसका अनुवाद 'तो' किया गया है

संयोगे च सति भवति केषांचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति। उच्यते यस्मात्तेषां पुद्गलात्माविशेषेऽप्यनन्त-पर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्याद्भवन्प्रतीतः

॥ स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

(१)संयोगे च*सति भवति	=और संयोग होते सते यह होगा कि
केषांचित्*बन्धः अन्येषाम् च*न*इति	=कितने परमाणुओंको बन्ध और(=च)दूसरी परमाणुओंका(बन्ध)नहीं (होता) है
उच्यते-यस्मात्*तेषाम् पुद्गल-आत्म-अविशेषे अपि*	=इससे कहा जाता है कि तिन(परमाणुओं)के पुद्गलस्वरूपकरि विशेषता न होने पर भी
अनन्त पर्यायाणाम् परस्पर-विलक्षण-परिणामाद् आहित=अनन्त पर्यायोंके परस्पर विलक्षण परिणमनकरि ग्रहण करी भई(=आहित)	
सामर्थ्यात् भवन् प्रतीतः	=सामर्थ्यसे बन्धका होना प्रतीत है।(भवन् वर्तमानकृदन्त प्रथमा एकवचन पुल्लिंग है)

(२)**सूत्रम्—(३)स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः॥ ३३॥ = (पुद्गलानां)स्निग्धरूक्षत्वात् बन्धः (भवति)॥ ३३॥**

(१)दानोदारकी छपीहुई सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें "संयोगे च सति भवति" वाक्य छपनेसे रहगया है क्योंकि यह वाक्य तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिवृत्तिकी प्रतियोंमें विद्यमान है और तत्त्वार्थराजवार्तिक मुद्रित पृ० २४०पर तथा हस्तलिखित राजवार्तिकोंमेंभी उक्त वाक्य 'सति' शब्दके अतिरिक्त पाया जाता है बिना उक्त वाक्य अनुवाद नहीं होसकता है न वाक्योंका परस्पर सम्बन्ध मिल सकता है।

(२) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है। कहीं२पर 'बन्धः' पाठहै कहीं२पर 'बंध' पाठ है, दोनों पाठ ठीक है (१अध्याय ५४०,५४१)

(३) इन पांचों सूत्रोंका अर्थ और तात्पर्य क्लिष्ट है अपने अपने ढंगसे हमारे यहां भाष्यकारों तथा हिंदी टीकाकारोंने उक्त सूत्रोंका तात्पर्य लिखाहै अर्थमें हमारे यहां मत भेद नहीं है॥ श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में प्रथम चार सूत्रोंका पाठ हमारे यहांके पाठसे अक्षरशः मिलता है। "बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ" के स्थानमें हमारे यहां 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च' सूत्र है अर्थात् हमारे यहां 'च' है उनके यहां 'सम' शब्द है॥ दोनों आम्नायोंके पाठमें इतनी समानता होनेपर भी पिछले तीन सूत्रोंके अर्थोंमें भेद पाया जाता है जिसका उल्लेख हम प्रसंगानुसार आगे करेंगे। उक्त पांचों सूत्रोंके समझानेमें भरकस प्रयत्न किया गया है प्रथम इसके कि हम पृथक् पृथक् सूत्रका अर्थ करें यह उचित है कि दोनों आम्नायोंमें जो अर्थ भेद है उसका संक्षेपसे कुछ उल्लेख किया जावे॥ स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण(=अविभागपरिच्छेद) अधिककरि बन्ध होताहै और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बंध होता है और रूक्षका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और स्निग्धका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है जघन्यगुणको छोड़कर उक्त दो अधिकगुण सम(अर्थात् ४,६,८,१०,१२ इत्यादि) हो अथवा विषम(अर्थात् ५,७,९,११,१३ इत्यादि)हो दोगुणअधिककरिही बंध है अन्यकरि नहीं है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'में 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रका शब्दशः यह अर्थ करके कि "गुणसाम्येसति सदृशानां बंधो न भवति" गुणकी समता होनेपर सदृश पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता हमारे यहांके प्रथम भागको मानाहै और दूसरे भागको नहीं मानाहै अर्थात् स्निग्धका स्निग्धद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षद्वारा दोगुण अधिककरि बन्ध होताहै और इससे सहमत हैं और कहते हैं कि रूक्षका स्निग्धद्वारा बन्ध होनेमें और स्निग्धका रूक्षद्वारा बन्ध होनेमें दोगुणोंकी अधिकताकी आवश्यकता नहीं है॥ऐसोंका बंध समानगुणोंमें भीहै॥

सूत्रार्थः—[१]पुद्गलानाम्[३]स्निग्धत्वात्[२]	=पुद्गलोंके(परस्पर छूजानेपर स्पृष्ट वा स्पर्श होनेपर) स्निग्धपनासे वा चिकनाईसे
रूक्षत्वात्[४]॥बन्धः[५]भवति	=(और)रूक्षपनासे रूखेपनसे, वा खरखरेपनसे बन्ध होता है अर्थात्
	दो पृथक्पृथक् परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कंधरूपमें और दो आदि पृथक्पृथक् स्कन्धोंका

इसी हेतुसे उन्होंने "द्वि अधिकादिगुणानांतु सदृशानां बन्धो भवति" इस सूत्रमें केवल'सदृशानां'की अनुवृत्ति लीहै और यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंके बन्धके लिये दोगुण अधिक होनेकी आवश्यकता है, असदृशोंके बन्धके लिये अधिक गुणोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस अर्थको पुष्ट करनेकेलिये कि असदृशोंका बन्ध बिना गुणोंकी अधिकताके होजाताहै हमारे यहांके 'बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौच"के स्थानमें 'बन्धे समाधिकौ परिणामकौ' रख दिया है और यह अर्थ किया है कि 'बन्धे सति समगुणस्य समगुणः परिणामको भवति अधिकगुणो हीनस्येति' बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुण का समगुणवालाही परिणाम होगा और हीन गुणका अधिक गुणवान् परिणाम होगा' भावार्थ असदृशोंके बन्धमें जहां गुणोंकी समता है वहां समगुणवाला परिणाम होगा और सदृशोंके बन्धमें जहां दोगुण अधिकहै वहां अधिक गुणवान् परिणाम होगा॥ "जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता" इस अन्तिम सिद्धान्तमें दोनों आम्नाय सहमत हैं।

(१। यहां यह शंका होसकती है कि 'पुद्गलानां' शब्दका अथवा 'अणुनां' शब्दका अध्याहार करना चाहिये अर्थात् यहसूत्र केवल अणुओंसे संबंध रखताहै अथवा अणुओं और स्कन्धों दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै॥२६वां सूत्रमें यह निर्देश है कि स्कंध भेदसे,संघातसे, और भेदसंघातसे उत्पन्न होतेहैं। यहांपर संघात शब्द और बन्ध शब्दका एकही अर्थ जान पड़ता है जैसाकि आगे बन्ध संघात एकत्वऔर संयोगके अनन्तर दिखानेमें सिद्ध करेंगे। बन्ध, संघात, एकत्वरूपसंयोगके भेदके लिये इस अध्यायका पृष्ठ १५०,१५१ देखो।(उत्तर)यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्ध रखताहै क्योंकि

(क) दो पृथक् २ परमाणुओंके बन्ध वा संघातसे स्कन्ध होता है। एक परमाणु और स्कन्धके संघातसे स्कन्ध उत्पन्न होता है, दो तीन आदिक स्कन्धोंके बन्धसे स्कन्ध होता है और बन्धका कारण स्निग्धत्व रूक्षत्वही कहा है। परमाणुओंके स्निग्धत्व और रूक्षत्वसेही बन्ध होता है। जब स्कन्धोंके भी आपस के बन्धके लिये सचिक्कनता और रूक्षता हेतु है और पुद्गलके "अणवः स्कन्धाः" ये दोही भेद हैं तो प्रगट है कि तेतीसवां सूत्रमें "पुद्गलानां" शब्दका अध्याहार होना चाहिये (नकि केवल अणुनां शब्दका) जैसा कि निम्न लिखित उदाहरण सूत्र२६(देखो इसअध्यायका ९९,१००)में दियाहै,जैसेकि दो परमाणुओंके जुड़नेसे दोप्रदेशवाला स्कन्ध उपजताहै,दोप्रदेशवाले स्कन्धके और एकअणुके संघातसे वा तीन खुलीहुई परमाणुओंके मिलनेसे तीनप्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा चार खुली हुई परमाणुके संघातसे चार प्रदेशी स्कन्ध उपजता है। इस प्रकार संख्यात,असंख्यात,अनन्त अनन्तानन्तके संघातसे उतने प्रदेशवाले स्कन्ध उपजतेहैं इससे प्रगट हैकि एक स्कन्धका दूसरे स्कन्धके साथ परस्पर संघातसे स्निग्ध रूक्षताके हेतुसे बन्ध होताहै और परमाणुका परमाणुकरि बन्धहोताहै। अतः यह सूत्र परमाणुओ और स्कन्ध दोनोंसे सम्बन्धरखता है नकि केवल परमाणुओंसेही॥

(ख) "ऐसे स्निग्धरूक्षपणातैं पुद्गलनिकैं परस्पर बन्ध जानना"पं०सदासुखजीकृतार्थप्रकाशिकाके तेतीसवांसूत्रका उपांत्य(उपांतिक)वाक्यदेखो॥

(ग) "ये रूक्षपणाके तथा सचिक्कणताके अविभागपरिच्छेदके निमित्ततैं,एक परमाणु तथा द्वि-अणुकादि स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होयहै"सदासुखजी कृत तत्त्वार्थ सूत्रकी लघु टीका पृष्ठ २३॥ उपर्युक्त वाक्यका,यह अर्थ है कि स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे एक परमाणु तथा दोपरमाणुका स्कंधकैं परस्पर बन्ध होता है। एक परमाणु तथा तीन परमाणु वाले स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होता है एक परमाणु तथा चार अणुका स्कन्धकैं परस्पर बन्ध होता है इसी प्रकार एक परमाणु तथा चार आदिक अणुवाले स्कन्धकैं परस्पर बन्ध जानना॥

बाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावात् स्निह्यतेऽस्मिन्निति स्निग्धः । तथा रूक्षणाद्रूक्षः । स्निग्धश्च रूक्षश्च स्निग्धरूक्षौ तयोर्भावः स्निग्धरूक्षत्वं । स्निग्धत्वं चिक्कणगुणलक्षणः पर्यायः । तद्विपरीतपरिणामो रूक्षत्वं ॥

आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षताके हेतुसे होता है ॥

सूत्रार्थः—बाह्य-अभ्यन्तर-कारणवशात्[६] स्नेह-पर्याय-अविर्भावात्[५] स्निह्यते । अस्मिन्[७] इति * स्निग्धः[१]; तथा	=बहिरंग और अभ्यन्तर कारणके वशसे सचिक्कण पर्यायके प्रगट होनेसे जिसमें चिकनाई है (=स्निह्यते) ऐसा स्निग्ध है । वैसेही
रूक्षणात्[५] । रूक्षः[१]	=रूखेपनसे रूक्ष है अर्थात् बाह्याभ्यन्तरकारणसे रूक्षपर्यायके होनेसे जिसमें रूक्षता है सो रूक्ष है
स्निग्धः[१] च * रूक्षः[१] च * स्निग्ध-रूक्षौ[१]	=और स्निग्ध और रूक्ष है उनका रूप सो (द्वन्द्वसमासमें) स्निग्धरूक्षौ ऐसा वाक्य बनता है ।
तयोः[६] भावः[१] स्निग्ध-रूक्षत्वम्[१] ॥	=उन दोनों (स्निग्धरूक्ष) का भाव सो स्निग्धरूक्षत्व है अर्थात् चिकनापन और रूखापन है ॥
चिक्कणगुणलक्षणः[१] पर्यायः[१] स्निग्धत्वम्[१] ॥	=चिकनागुणलक्षणवाला पर्याय है सो स्निग्धता है
तद्-विपरीत-परिणामः[१] रूक्षत्वम्[१] ॥	=उस चिकनेपनसे विरुद्ध परिणाम वा पर्याय सो रूखापन है

(ख) 'स्नेहगुणयोगात्स्निग्धा रूक्षगुणयोगाद्रूक्षास्तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात्' = स्नेहगुणयोगात् स्निग्धाः रूक्षगुणयोगात् रूक्षाः तद्भावात् पुद्गलानां बन्धः स्यात् = चिक्कणगुणके संयोगसे स्निग्ध हैं रूक्षगुणके संयोगसे रूक्ष हैं उनके भावसे (=होनेकरि) पुद्गलोंका बन्ध होता है ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो ॥ श्लोक — स्कंधो बन्धात्स चास्त्येषां स्निग्धरूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानामिति व्यक्ता सूत्रेऽस्मिंस्तदभावता ॥ १ ॥ तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ० ४३५ देखो = स्कन्धः बन्धात् सः च अस्ति एषां स्निग्ध रूक्षत्वयोगतः । पुद्गलानां इति व्यक्ता सूत्रे अस्मिन् तद्-अभावता ॥ = बन्धसे स्कंध होता है और (च) यह स्कन्धरूप पुद्गलोंकी चिकनाई रूखेपनके संयोगसे होता है, (पुद्गलोंका) नाश हो जाता है इस सूत्रमें उस सिद्धान्तका कि पुद्गलनाशको प्राप्त हो जाता है, अभाव है ॥

(श्लोक) स्निग्धाःस्निग्धैस्तथा रूक्षा रूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गलाः । बन्धं यथासते स्कन्धसिद्धेर्बाधकहानितः ॥ २ ॥

= स्निग्धाः स्निग्धैः तथा रूक्षाः रूक्षैः स्निग्धाः च पुद्गलाः । बन्धं यथा आसते स्कन्धसिद्धेः बाधकहानितः ॥

= स्निग्ध (पुद्गल) स्निग्धकरि, तथा रूक्ष (पुद्गल, रूक्षकरि और (च) स्निग्ध पुद्गल (रूक्षकरि) यथायोग्य (यथा) बन्धको प्राप्त होते हैं स्कन्धकी सिद्धि बाधारहित है

(ङ) "स्निग्धरूक्षयोः पुद्गलयोः परस्परयोः स्पृष्टयो बन्धो भवतीति" — स्निग्धरूक्ष (दो प्रकारके) पुद्गलोंका आपसमें छू जाने पर बन्ध होता है । सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र पृ० १३७ । पुद्गलयोः' शब्दके लानेसे स्पष्ट है अणु और स्कन्ध दोनोंका बन्ध इस सूत्र द्वारा होता है ॥

(च) 'अणूनां बन्धः' में स्कन्धोंके बन्धका अभाव आता है और यह नियमसा होजाता है कि संसारमें केवल अणुओंकाही बन्ध होता है स्कन्धोंका नहीं और यह बात यथार्थता और सत्यताके विरुद्ध है कि केवल अणुओंकाही बन्ध होताहो ॥ अतः उपर्युक्त हेतुओंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध होगई कि यह सूत्र अणु और स्कन्ध दोनोंके बन्धसे सम्बन्ध रखता है अत. हमने 'पुद्गलानां' शब्दको अध्याहार करके इस सूत्रका भावार्थ ऊपर यह लिखा है कि दो पृथक् २ परमाणुओंका बन्ध परस्पर स्कन्धरूपमें और दो आदि पृथक् २ स्कन्धोंका आपसमें बन्ध अन्य स्कन्धरूपमें स्निग्धता और रूक्षतासे होता है ॥

स्निग्धरूक्षत्वादिति हेतुनिर्देशः । तत्कृतो बन्धो द्व्यणुकादि परिणामः ।

स्निग्ध-रूक्षत्वात्[१] इति[२] हेतु-निर्देशः[३] =चिकनापन रूखापनसे ऐसे हेतुका कथन है अर्थात् बंधका कारण जो पुद्गलोंमें है वह चिकनाई रूखापन है
तद्-कृतः[४] बन्धः[५] द्वि-अणुक-आदि-परिणामः[६]=उन(स्निग्धपन-रूक्षपन)का किया हुआ बन्ध दो अणुकादि परिणमनसे होता है ॥

(१) "स्निग्ध-रूक्षत्वात्" इस वाक्यसे दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं प्रथम यह कि सूत्रमें 'स्निग्ध-रूक्षत्वात्' क्यों लाये केवल 'पुद्गलानां बन्धः' इतना सूत्र होता तो सूत्र लघु होजाता और 'पुद्गलानां' शब्दकेभी अध्याहार करनेकी आवश्यकता नहीं होती और न यह शंका उत्पन्न होती कि सूत्रमें 'अणूनां' शब्दका अध्याहार किया जावै अथवा 'पुद्गलानां' शब्दका । दूसरा प्रश्न यह है कि बन्धका निमित्त या हेतु सूत्रके शब्दानुकूल (न कि सिद्धान्तके अनुकूल) 'स्निग्धत्व-रूक्षत्व' मिले हुये हैं अथवा (स्निग्धत्वरूक्षत्व) मिले हुये और पृथक् पृथक् दोनों हैं अर्थात् सूत्रके शब्दोंके अर्थके अनुसार स्निग्धपन और रूक्षपन अथवा यों कहिये कि रूक्षपन स्निग्धपन (संयोग अवस्थामें) बन्धका हेतु हैं या स्निग्धत्व स्निग्धत्व पृथक् और रूक्षत्वरूक्षत्व पृथक् भी बंधके कारण हैं

(पहिले प्रश्नका उत्तर) पुद्गलके शुद्ध अशुद्ध दो भेद हैं । अशुद्धरूप स्कन्ध है और उसके निम्नलिखित बीस गुण हैं । वर्ण पांच (श्वेत, पीत, नील, अरुण, कृष्ण) । रस पांच (तिक्त, कटुक, कषायला, खट्टा, मीठा) । गंध दो (सुगंध, दुर्गन्ध) और स्पर्शके गुण आठ (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, कठोर हलका भारी) ॥ अणु शुद्ध है और उसमें पांचगुण होते हैं अर्थात् पांच रसोंमेंसे एक, पांच वर्णमेंसे एक, दो गन्धमेंसे एक, स्पर्शके आठगुणोंमें से दो शीत होगा अथवा उष्ण होगा, रूक्ष होगा अथवा स्निग्ध, कविवर पं० द्यानतिरायजीने "द्रव्यसंग्रह" की भाषामें कहाभी है कि "पंच अजीव शुद्ध हैं चारों (= धर्म, अधर्म, आकाश, काल) जिनके कभी विभाव न होय । पुद्गल सुद्ध असुद्ध विराजै सुद्ध अनू गुन पांचों जोय ॥ सीत, ताप, रूख, चिकने(में)से दो, रस, गन्ध, वरन इकलोय । खंध असुद्धबीस गुन परगट देखेजाने चेतन सोय ॥ कवित्त ३५ । भाषा द्रव्यसंग्रहसे उद्धृत ॥ इन पुद्गलोंके गुणोंमेंसे बन्धका कारण स्निग्धत्वऔररूक्षत्वही हैं इसलिये इस तेतीसवां सूत्रमें स्निग्धत्व रूक्षत्व लाये हैं कि पाठकगण यह न समझलें कि वर्ण, रस, गंधमें से कोई गुण और स्पर्शके आठ गुणोंमें से स्निग्धत्वरूक्षत्वके अतिरिक्त कोई अन्य गुणभी बन्धका कारण है ।

(दूसरे प्रश्नका उत्तर) सिद्धान्त तो यह है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, बन्धके हेतु हैं परन्तु निम्न लिखित हेतुओंसे सूत्रका शब्दार्थ यही है कि स्निग्धत्व रूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, बन्धके कारण हैं अर्थात् स्निग्धका बन्ध रूक्षके साथ होता है अथवा यों कहिये कि रूक्षका बन्ध स्निग्धके साथ होता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथभी बन्ध होता है और रूक्षका रूक्षके साथभी बन्ध होता है क्योंकि यदि उमास्वामीका (सिद्धान्तके अनुकूल) यह अभिप्राय कि स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्वरूक्षत्व, रूक्षत्व स्निग्धत्व, और स्निग्धत्वरूक्षत्वका परस्परबन्ध होता हैतोसूत्रकी रचना ऐसे होती कि "स्निग्धरूक्षत्वेभ्योबन्धः" अर्थात् स्निग्धपनसे और रूक्षपनसे और स्निग्धपन रूक्षपनसे बन्ध होता है जैसाकि उक्त स्वामीजीने 'भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते' सूत्र रचा है कि (पुद्गलोंका स्कन्ध भेदसे उपजता है संघातसे उपजता है और भेदसंघातसेभी उपजताहै॥ दूसरे यह कि "गुणसाम्येसदृशानां" सूत्रमें इस सूत्रकी अनुवृत्ति ग्रहण कीजावै कि गुणोंकी समानता होनेपर सदृशोंका और असदृशों (स्निग्धरूक्षत्व)का भी बन्ध नहीं होताहै और गुणोंकी विषमता होनेपर स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्व, स्निग्धत्व रूक्षत्व (सजातीय और विजातीय) दोनोंमें बन्ध होता है जैसाकि आगे इस पिछले कहे हुए सूत्रका अर्थ करेंगे॥ (तीसरे यहकि जहांतक हमने टटोल कीहै संस्कृतके भाष्यकार जैसे पूज्यपाद स्वामी, अकलंक स्वामी, श्रीश्रुतसागर सूरि, सभाष्य०के रचयिता इत्यादिने और भाषाके टीकाकारों ने इस सूत्रका अर्थ यही किया है कि स्निग्धरूक्षत्वसे बन्ध होता है किसीने इस सूत्रकेअर्थमें यह नहीं लिखा कि 'स्निग्धत्व स्निग्धत्व, रूक्षत्व रूक्षत्वसे' बन्ध होता है । हां श्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीविद्यानन्द स्वामीने सूत्रके अर्थकरनेमें तो यही उल्लेख कियाहै कि 'स्निग्धरूक्षत्व' से बन्ध होताहै परन्तु इसीसूत्रके भाष्यमें दूसरे श्लोकमें यथार्थसिद्धान्त देदियाहै 'स्निग्धा: ११७

द्वयोः स्निग्धरूक्षयोरण्वोः परस्परश्लेषलक्षणे बन्धे सति द्व्यणुकस्कन्धो भवति ॥ एवं संख्येया-संख्येयानन्तप्रदेशः स्कन्धो योज्यः । तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुः संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पः ॥

द्वयोः६।२ (१) स्निग्ध-रूक्षयोः६।२ अण्वोः६।२ परस्पर-श्लेष-लक्षणे७।१ =दो चिकनी रूखी अणुओंमें आपसके एकमेक(=श्लेष)स्वरूपविषैं(=लक्षणे) बन्धे७।१ सति७।१ द्वि-अणुक-स्कन्धः१।१ भवति ॥ =बन्ध होनेपर(=सति)दो अणुवाला स्कंध होता है अर्थात् दो परमाणु स्निग्ध और रूक्षगुणोंसहित हों उनके परस्पर सर्वात्मभावकरि प्रदेशानुप्रवेशात्मक बन्ध होनेपर दो अणुवाला स्कन्ध उत्पन्न होता है

एवम्(२) संख्येय-असंख्येय-अनन्तप्रदेशः१।१ स्कंधः१।१ योज्यः१।१ =इस प्रकार संख्यात असंख्यात और अनन्त प्रदेशवाला स्कन्ध जुड़जाता है

तत्र* स्नेहगुणः१।१ एक-द्वि-त्रि-चतुर्-संख्येय-असंख्येय-अनन्तविकल्पः१।१ =तहां स्निग्धगुण एक,दो,तीन,चार संख्यात =असंख्यात और अनन्तभेदरूप हैं अर्थात् एकगुण स्निग्ध, दोगुण स्निग्ध, तीन गुण स्निग्ध,चारगुण स्निग्ध,पांचगुण स्निग्ध,छहगुण स्निग्ध इत्यादि ऐसे संख्यातगुण स्निग्ध, असंख्यातगुणस्निग्ध और अनन्तगुण स्निग्ध तक एक परमाणुमें होसकते हैं ॥

स्निग्धैस्तथारूक्षारूक्षैः स्निग्धाश्च पुद्गलाः 'पश्चात् उक्त स्वामीजीके गुणसाम्ये सदृशानां सूत्रके भाष्यसे यह बात झलकतीहै कि 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः' सूत्र केवल स्निग्धरूक्षत्वसे सबंध (जहांतक उसका शब्दार्थ है) रखता है न कि स्निग्धका स्निग्धके साथ बन्ध" और रूक्षका रूक्षके साथ बन्ध' से ॥ () चौथे यह कि उपर्युक्त अर्थसे रचनाका और क्रमका महत्व प्रगट होता है, सो कैसे? इस प्रकार कि ३३वां सूत्र बन्धका केवल हेतु प्रगट करता है और चौंतीसवां सूत्र सामान्यरूपसे तेतीसवां सूत्रका अपवाद है पैंतीसवांसूत्र गुणोंकी समानतामें तेतीसवांसूत्रका अपवाद होतेहुयेभी विषमगुणोंकी अवस्थामें उस(तेतीसवां) सूत्रका विधान करता है छत्तीसवां सूत्र इस विधानकी त्रुटिको पूरा करता हैकि दो अधिक आदिगुणोंके होनेपरही सदृश और असदृशोंका बन्ध होता है सैंतीसवां सूत्रमें बन्धके होनेपर द्रव्यकी एकतीसरी अवस्था या तीसरा स्वरूप होजाता है न प्रथम रूप रहै न दूसरा, दोनो बंध होनेपर एकनीसरारूप धारण करताहैं॥जैसे कालापीला रंग घोलकरमिलानेपर कीरके पंखसदृश हराहोजाताहै॥नकृष्णवर्णरहै न पीतवर्णरहै॥

(१) "इहां सचिक्कणपणाका वा रूक्षपणाका अविभागपरिच्छेद है तिनहीकूं गुण कहे हैं ॥ परमाणुमें सचिक्कणपणाका एकअविभागपरिच्छेदसे लेय अनन्त पर्यन्त बढै है ॥ अर एक परमाणुमें अनंत अविभाग परिच्छेद सं घटै तो असंख्यात वा संख्यात होइ तथा एक अंशपर्यन्त रहै॥तथा सचिक्कण परमाणु रूक्ष होजाय हैं रूक्ष परमाणु सचिक्कण होय है ॥ समय समय परिणमन है अर बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल भावादिकनिके निमित्तैं परिणमै हैं॥ऐसे स्निग्धरूक्षपणा परमाणुमें तथा स्कन्धमें जानना ॥ पं० सदासुखजी कृत अर्थ प्रकाशिका पृ० ३३४ सूत्र तेतीसकी भाषा से उद्धृत)

(२) यह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध इस प्रकार उत्पन्न होता है कि रूक्षपना तथा चिकनापनाके अविभाग परिच्छेदके निमित्तसे दोपरमाणुके जुड़नेसे दो प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है। दोप्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे अथवा तीन खुली हुई परमाणुके मिलनेसे तीन प्रदेशवाला स्कन्ध उपजता है ॥ दो दो प्रदेशवाले दो स्कन्धोंके संघातसे, तीन प्रदेशवाले स्कन्धके और अणुके संघातसे, अथवा चार खुली हुई परमाणुओंके संघातसे चारप्रदेशी स्कन्ध उपजता है इसी प्रकार अन्य संख्यात प्रदेशी स्कन्धपूर्वोक्त क्रमानुसार बन्धी हुई और खुली हुई परमाणुसे उपजता है ऐसाही क्रम असंख्यात प्रदेशी स्कन्धकी अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी और अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धकी उत्पत्ति जानो ॥

तथा रूक्षगुणोऽपि॥तद्गुणाः परमाणवः सन्ति।यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्षाप्रकर्षेण प्रवर्तते। पांशुकणिकाशर्करादिषु च रूक्षगुणो दृष्टः। तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूक्षगुणयोर्वृत्तिः प्रकर्षाप्रकर्षेण अनुमीयते॥स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्टगुणनिवृत्त्यर्थमाहः-

॥ न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

तथा*रूक्षगुणः अपि* ॥ =वैसेही(=तथा)रूक्षगुण भी है अर्थात् एक परमाणुमें एक, दो, तीन, चार, पांच छह इत्यादि संख्यात,असंख्यात और अनन्त रूक्षगुण तक होसकते हैं

तद्-गुणाः परमाणवः सन्ति। यथा*तोय-अजा-गो-महिषि-उष्ट्री-क्षीर-घृतेषु स्नेहगुणः प्रकर्ष-अप्रकर्षेण प्रवर्तते। =पूर्वकथित(=तद्)चिकने रूखेगुणवाली परमाणु हैं। जैसे जल(=तोय)बकरी(अजा) =गऊ(=गो)भैंस(=महिषि)ऊटनी(=उष्ट्री)के दूध घी विषैं सचिक्कणगुण =प्रकर्षकरि और घटतीकरि प्रवर्तता है।

च*पांशु-कणिका-शर्करादिषु रूक्षगुणः दृष्टः। और (=च)धूलि(=पांशु)वालु(=कणिका) =कंकरादिकमें रूक्षगुण(बढता घटता क्रमसे) देखा जाता है।

तथा* परमाणुषु अपि* स्निग्ध-रूक्षगुणयोः वृत्तिः प्रकर्ष-अप्रकर्षेण अनुमीयते॥ =तैसे =परमाणुओंमेंभी चिकने रूखे दोनों गुणोंकी स्थिति (=वृत्तिः) =बढताई घटताईसे अनुमान कीजाती है।

स्निग्धरूक्षत्व-गुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्ते अनिष्ट-गुण-निवृत्ति-अर्थम् आह। =सचिक्कनता और रूखापन =गुणनिमित्तक बन्धमें अविशेषताकरि प्रसंग आनेपर =अनिष्ट फलके निवारण के लिये कहते हैं अर्थात् पुद्गलके गुणोंमेंसे चिकनाई रूखापनके हेतुसे बन्ध होता है इससे यह प्रसंग आता है कि यदि सचिक्कणता और रूखापन परमाणुओंमें वर्तमान वा विद्यमान है तो बन्ध सर्व प्रकार अभेदरूपसे विशेषता रहित होही जाताहोगा इस अनच्छित अनुमानके दूर करने के लिये अग्रिम सूत्रमें कहतेहैं कि

[1]सूत्रम्—न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४॥ = न जघन्यगुणानाम्(परमाणूनां बन्धः भवति) ॥ ३४॥

स्निग्धरूक्षत्वात् "न जघन्य-गुणानां परमाणूनां बंधः भवति=स्निग्धरूक्षतासे निकृष्टगुणोंके परमाणुका बंधनहीं होताहैअर्थात् जिस परमाणुमें

(१) इस सूत्रका पाठ और अर्थ भी दोनों आम्नायोंमें एकसा है। हमारे यहां कहीं कहींपर 'नजघन्यगुणानां' पाठ है वह कातन्त्ररूपमाला व्याकरणके अतिरिक्त अशुद्ध है(अ०१ पृ० ५५०,५५१) इस सूत्रमें'परमाणूनां और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार कियागयाहै और बन्धशब्दकी अनुवृत्ति ३३वांसूत्रसेहै।

जघन्यो निकृष्टः गुणो भागः। जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः। तेषां जघन्यगुणानां नास्ति बन्धः। तद्यथा-एकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन च नास्ति बन्धः तस्यैवैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्धः। तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति॥ एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वर्जयित्वा अन्येषां स्निग्धानां रूक्षाणां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसक्ते तत्रापि प्रतिषेध-

रूक्षत्वका वा स्निग्धता का एक अविभाग परिच्छेद(=जघन्यगुण) रहजाय सो बंधको प्राप्त नहीं होता है

वृत्त्यनुवादः—जघन्यः।निकृष्टः।गुणः।भागः। =जघन्य वा घटिसे घटि है सो निकृष्ट है। गुण है सो गुणका अविभाग परिच्छेद है
जघन्यः।गुणः।येषाम्।ते।जघन्यगुणाः। =घटिसे घटि है अविभाग परिच्छेद जिनके वे जघन्यगुण हैं
तेषां।जघन्यगुणानाम्।न*अस्ति।बन्धः। तद्यथा*- =तिन निकृष्टगुणों(वाली परमाणुओं)के बंध नहीं है। जैसे
एकगुणस्निग्धस्य।एकगुणस्निग्धेन।चद्वि-आदि-संख्येय-=एकगुण स्निग्धका एकगुण स्निग्धकरि और(=च)दो आदिक संख्यात
असंख्येय-अनंतगुण स्निग्धेन।न*अस्तिबंधः;तस्य। =असंख्यात अनंतगुण स्निग्धकरि बंध नहीं है। तिस
एव*एकगुण स्निग्धस्य।एकगुणरूक्षेण।वा*द्वि-आदि =ही एकगुण स्निग्धका एकगुणरूक्षकरि अथवा दो आदिक
संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण रूक्षेण।बन्धः।न*अस्ति। =संख्यात असंख्यात अनंतगुणरूक्षकरि बंध नहीं है
तथा*एकगुणरूक्षस्य।अपि*योज्यम्।इति* =तैसेही(=तथा)एकगुण रूक्षके भी लगाना चाहिये अर्थात् एकगुणरूक्षका एकगुण रूक्षकरि और दो तीन चार पांच आदिक संख्यात,असंख्यात,और अनंतगुणरूक्षकरि बन्ध नहीं होता है तैसेही एकगुणरूक्षका एकगुण स्निग्धकरि अथवा दो, तीन, चार,पांच आदि संख्यात असंख्यात अनन्तगुण स्निग्धकरि बंध नहीं होता है
एतौ।जघन्यगुण-स्निग्ध-रूक्षौ।वर्जयित्वा-अन्येषाम्। =ये(=एतौ)निकृष्ट गुणवाली स्निग्ध रूक्षोंको छोड़कर अन्य
स्निग्धानाम्।रूक्षाणाम्।च परस्परेण।बंधः-भवति-इति=स्निग्ध और(=च)रूक्ष(गुणवाली परमाणु)निकें परस्पर बन्ध होता है। ऐसे
अविशेषेण।प्रसंगे।तत्र*अपि*प्रतिषेध- =विशेषरहित प्रसंग आनेपर तहां औरभी(=अपि) बन्धके निषेधके

और यह सूत्र केवल परमाणुओंसे संबन्ध रखता है क्योंकि जघन्यगुण परमाणुमेंही पायाजाताहै नाकि स्कंधमें और जबकिसीप्रकारकी अजघन्यगुणवाला

विषयख्यापनार्थमाह— ॥ गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

विषय-ख्यापन-अर्थम्[१] आह[१]	=प्रकरणके कहनेके लिये (अग्रिम सूत्रमें) कहते हैं अर्थात् ऊपरके उपान्तिक वा उपधा वाक्यसे ऐसा अनुमान निकलता है कि जघन्यगुणोंको छोड़कर अन्य सब गुणवाली परमाणुओंका स्निग्धरूक्षतासे बन्ध होजाता होगा सो इस प्रसंगको दूर करनेके लिये आचार्य बन्धके निषेधका निम्नलिखित अन्यसूत्रमें कहते हैं कि

[१]सूत्रम्—गुणसाम्ये सदृशानाम्॥ ३५॥ = (न)गुणसाम्ये(स्निग्धरूक्षत्वानाम्) सदृशानाम् (परमाणूनाम् बन्धः भवति) ॥ ३५ ॥

=गुणसाम्ये असदृशानाम् सदृशानाम् परमाणूनाम् बन्धः न भवति ॥ ३५ ॥

परमाणुएं बन्ध नहीं होसक्ता है तब वह परमाणु बिना बन्धके पृथकही रहेगी कभीभी स्कंधरूपमें नहीं होसकी। (अबतक अजघन्य गुण उसमें विद्यमान हैं)॥ श्लोकवार्तिक पृ० ४२६, राजवार्तिक तथा [illegible] है कि यहसूत्र केवल परमाणुओंसेही संबन्धरखता है नकि स्कंधोंसे।

(१) यह सूत्र जो पूर्व चौतीसवां सूत्रका अपवाद विशेष समर्थनके लिये है परमाणुओंसे सम्बन्ध रखता है स्कन्धोंसे नहीं क्योंकि चौतीसवां सूत्र से 'परमाणूनाम्' शब्दकी भी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आती है। समस्त तेतीसवां सूत्रभी यहां अनुवर्तता है। 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' और 'असदृशानाम्' यहां पर समानार्थकवाची हैं अतः "स्निग्धरूक्षत्वानाम्"के स्थानमें "असदृशानां" वाक्यका आदेश करदिया है। यहकि स्निग्धरूक्षत्वानाम्"की अनुवृत्ति आती है इसके समर्थनमें श्लोकवार्तिकसे निम्न वाक्य देते हैं। नन्वेवं विसदृशानां गुणसाम्ये बन्धप्रतिषेधो न स्यादिति न मंतव्यं सदृशग्रहणस्य विसदृशव्यवच्छेदार्थत्वाभावात् सदृशानामेवेत्यवधारणानाश्रयणात् ॥ गुणसाम्येयेति स ज्ञोपदेशोहि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि बंधप्रतिषेधप्रसक्तौ तद्व्यवच्छित्तये सदृशग्रहणकृतं, नेम स्निग्धरूक्षत्वया साम्येपि गुणवैषम्यबन्धसिद्धिः॥ तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक सूत्र३५ पृ० ४२७।

ननु एवं विसदृशानां गुणसाम्ये बंधप्रतिषेधः न स्यात् इति	=प्रश्न ऐसे गुणोंकी समानता होनेपर विसदृशोंके बन्धका निषेध नहीं होता होगा
न मंतव्यं, सदृशग्रहणस्य विसदृश-	=(उत्तर—ऐसा) मानना ठीक नहीं है। क्योंकि सदृशके ग्रहणके (से, विसदृशके
व्यवच्छेदार्थत्वाभावात्	=रुकावटका(=व्यवच्छेदार्थत्व)अभाव है अर्थात् 'विसदृश'शब्दकी अनुवृत्ति बराबर आरही है उस (अनुवृत्ति)में कहींपर रुकावट नहीं हुई है
सदृशानाम् एव इति अवधारण-अनाश्रयणात्।	=(और)सदृश काही(=एव) ऐसा निश्चयात्मकपद (सूत्रमें) दिया नहीं है अर्थात् 'गुणसाम्ये सदृशानामेव"ऐसा सूत्र नहीं है नहीं तो मानलेते कि असदृशोंकी अनुवृत्ति नहीं आरही है और गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर केवल सदृशोंकाही बन्ध नहीं होता है असदृशोंका गुणोंकी समानता होने पर होजाता है ऐसा मानलेते ॥ स्मरण रहै कि ऐसी अवस्थामें श्वेताम्बरतथा दिगम्बरआम्नायोंमें इनपांचोसूत्रोंका पाठऔरअर्थ एकहोजाता॥

सूत्रार्थः —गुणसाम्ये२।।असदृशानाम्_४।।सदृशानाम्_५।=गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर विजातीय और सजातीय(=रूक्षरूक्ष,स्निग्धस्निग्ध)
परमाणूनाम्३।बन्धः४।न*भवति।

=परमाणुओंके बन्ध नहीं होता है अर्थात् एक परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंशों(=गुणों)की गणना दूसरी परमाणुके अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंकी संख्याके यदि बराबर हो तो उन दोनों परमाणुओंका आपसमें चाहे रूक्षस्निग्ध(विजातीय) (क्रमसे) हों चाहे स्निग्धरूक्ष=(विजातीय)(क्रमसे)हों चाहे स्निग्धस्निग्ध=(सजातीय)(क्रमसे)हों चाहे रूक्षरूक्ष=(सजातीय)क्रमसे हों बंध नहीं होता है जैसे रूक्षपरमाणुके दो अविभागपरिच्छेदरूप अंशका बन्ध स्निग्धपरमाणुके दो गुणोंके साथ नहीं होगा और दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध दो रूक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ नहीं होसकता है इसी प्रकार तीन चार-पांच-छह-सात-आदि-संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात-असंख्यात अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके साथ नहीं होगा और तीन-चार पांच-छह-सात-

गुणसाम्ये वा इति सूत्र-उपदेशे हि सदृशानां गुणवैषम्येऽपि = 'गुणसाम्ये वा' यदि ऐसा सूत्र करते तो गुणोंकी विषमता होनेपर भी सदृशोंके
बन्धप्रतिषेध प्रसक्तौ = अबन्धका प्रसंग आजाता अर्थात् सदृशोंका भी बन्ध न होता। (इसलिये)
तद्वत् तद्-सिद्ध्यै सदृश- =विसदृशोंके समान (=तद्वत्) सदृशोंका बंध (=तद्)सिद्ध करनेके लिये सदृशका
ग्रहणम् कृतम्, तेन स्निग्धरूक्षजात्या =ग्रहण (इससूत्रमें)किया है। तिसकरि अर्थात् स्निग्ध, रूक्ष जातीयसे
साम्येऽपि =समान होने पर भी भावार्थ रूक्ष रूक्ष वा स्निग्ध स्निग्ध होनेपर भी
गुण वैषम्ये बंधसिद्धिः। =गुणोंकी विषमता होने पर बन्धकी सिद्धि है। बन्ध होजाता है॥

इस सूत्रका पाठ दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें अक्षरशः मिलने पर भी अर्थमें भेद है॥ श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "स्निग्धरूक्षत्वात्" तेतीसवां सूत्रसे अनुवृत्ति नहीं ली है वे कहते हैं कि तेतीसवां सूत्रसे उपर्युक्त अनुवृत्ति नहीं लेना चाहिये नहीं तो सूत्र अशुद्ध होजावेगा यही कारण है कि सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है उनके अनुकूल "गुणसाम्येसदृशानाम्" = "गुणसाम्ये सति सदृशानां बन्धो न भवति" = गुणकी समता होने पर सदृशोंका बन्ध नहीं होता" पर असदृशोंका बंध अर्थात् रूक्षस्निग्धका बंध गुणोंकी बराबरी होनेपर भी होजाता है उनका भावार्थ यह है कि गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका (रूक्षका रूक्षके साथ और स्निग्ध का स्निग्धके साथ) बंध होजाता है और यह गुणोंकी विषमता उनके "द्वि-अधिकादिगुणानांतु" (=द्विअधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति" सूत्रके अनुसार केवल दो गुण एकसदृशसे दूसरे सदृशमें अधिक होना चाहिये बस बन्ध होजावेगा परन्तु उनके मतानुसार इससे यह फल निकला कि असदृशोंके परस्पर (रूक्षका स्निग्धके साथ अथवा यों कहिये कि स्निग्धका रूक्षके साथ) बन्ध होनेके लिये गुणोंकी अधिकताकी कोई आवश्यकता नहीं है दो असदृशोंके गुणोंकी संख्या समान होने पर भी बंध होजाता है। (इस टिप्पणी को हमने श्वेताम्बर आम्नायके कईभाष्योंको मिलाकर सावधानी से लिखी है)॥

सदृशग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्ययार्थं । गुणसाम्यग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययार्थम् ॥ एतदुक्तं भवति–द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षैः त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षैः द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धैः द्विगुणरूक्षाणां द्विगुणरूक्षैश्चेत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति ॥ यद्येवं

आदि संख्यात-असंख्यात अनंत गुणवाली स्निग्धपरमाणुओंका बन्ध तीन-चार-पांच-छह-सात आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥ उपर्युक्त उदाहरण विजातीय(असदृश वा विसदृश) परमाणुओंके, जो अविभाग परिच्छेदरूप अंशोंमें समान हैं। निम्नलिखित दृष्टान्त सजातीय वा सदृश परमाणुओंके हैं जो सबकी सब गुणोंमें एक दूसरेके बराबर वा समान हैं।

जैसे दो गुणवा तीन गुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीन गुणवाली स्निग्ध परमाणुसे यथासंख्य न होगा और दो गुणवाली अथवा तीन गुणवाली रूक्षपरमाणुका बन्ध दो गुणवाली वा तीनगुणवाली रूक्षपरमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा, इसीप्रकार चार-पांच-छह-सात-आठआदिकसंख्यात-असंख्यात-अनंत स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंकाबन्ध चार-पांच-छह-सात-आठआदिसंख्यात-असंख्यात अनंतगुणवालीस्निग्ध परमाणुओंके साथ क्रमसे न होगा और चार-पांच-छह-सात-आठ-आदि संख्यात-असंख्यात अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुओंका बंध क्रमसे चार-पांच-छह-सात-आठ आदि संख्यात-असंख्यात-अनंतगुणसे युक्त रूक्षपरमाणुओंके साथ न होगा ॥

वृत्त्यनुवादः—सदृश-ग्रहणम्[1] तुल्य-जातीय-संप्रत्यय-अर्थम्[1] = (इस सूत्रमें) सदृश (शब्द) का ग्रहण समानजातिको प्रगट करनेके लिये है

गुणसाम्य-ग्रहणम्[1] तुल्य-भाग-संप्रत्यय-अर्थम्[1]; एतद्[1] उक्तम्[1] भवति । = (इससूत्रमें) गुणसाम्य वाक्यका लाना (स्निग्धता वा रूक्षताकेगणनामें) बराबर अविभागपरिच्छेदरूप अंशोंके जतावनेकेलिये है। यह कथन वाअर्थ होता है कि

द्विगुण[1] स्निग्धानाम्[3] द्विगुण[2] रूक्षैः[3] त्रिगुण[3] स्निग्धानाम्[3] = दोगुण स्निग्धोंके दोगुण रूक्षोंकरि, तीनगुण स्निग्धोंके

त्रिगुणरूक्षैः[3] द्विगुणस्निग्धानाम्[3] द्विगुणस्निग्धैः[3] = तीनगुणरूक्षोंकरि, दोगुणस्निग्धोंके दोगुण स्निग्धोंकरि,

च द्विगुणरूक्षाणाम्[3] द्विगुणरूक्षैः[3] इत्येवम् आदिषु[3] = और दोगुण रूक्षोंके दोगुण रूक्षोंकरि इत्यादि में

न अस्ति बन्धः[1] इति । यदि एवम् = इस प्रकार बन्ध नहीं है। (प्रश्न) जो ऐसे है तो अर्थात् गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर न तो सदृश परमाणुओंका बंध होता है और न असदृश

(१)(२)(३) तीन स्थानोंपर इस पृष्ठमें और पांच स्थानोंमें १२४ पृष्ठमें 'बहुवचनमें' ये शब्द इसलिये लाये गयेहैं कि लोकमें ऐसी परमाणु अनन्तानन्त हैं

सदृशग्रहणं किमर्थं ? गुणवैषम्ये(सदृशानामपि)बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते॥

सदृश-ग्रहणम्[१]।।किम्[२]।।अर्थम्[३]।।१

परमाणुओंकाही बंध होताहै जब सदृश विसदृश दोनोंहीका बन्ध नहीं होता तब सूत्रमें =सदृश(शब्द)का ग्रहण किसलिये है अर्थात् सूत्र ऐसा होता 'गुणसाम्ये' और 'न' की अनुवृत्ति'नजघन्यगुणानाम्'सूत्रसे आकर'गुणसाम्येन' सूत्र होकर ऐसा अर्थ होजाता कि'(परमाणुओंमें)गुणोंकी संख्या एक दूसरोंसे बराबर होनेपर बन्ध नहीं होता'

गुण-वैषम्ये[१]।।(सदृशानाम्[३]।अपि*) बंध-प्रतिपत्ति-अर्थम्[२]।।सदृश-ग्रहणम्-क्रियते॥

=(उत्तर)गुणोंकी विषमता होनेपर { सजातीय(परमाणु)निकें भी(=अपि) } बन्ध =जतलानेके लिये (सूत्रमें) सदृश(शब्द) ग्रहण किया गया है वा लायागया है।।शिष्यके प्रश्न और आचार्यके उत्तरका सारांश यह है कि शिष्यने 'न जघन्यगुणानाम्'सूत्रका अर्थ समझकर कि जघन्यगुणोंकी परमाणुओंका चाहे सदृश हों वा विसदृश हों बन्ध नहीं होता है अजघन्यगुणोंवाली पर-माणुओंका बंध होताहै पश्चात् 'गुणसाम्ये सदृशानां'सूत्रका भाव समझकरकि गुणोंकी संख्यामें समानता होनेपर नसदृशोंका बंध होता है और न असदृशोंका बन्ध होता है, असमान गुणोंके परमाणुओंमें चाहें सदृश हों चाहें विसदृश हों बंध होजाता है प्रश्न करदिया कि जब "न जघन्यगुणानाम्"सूत्रमें सदृश विसदृशका बंध नहीं है और न इस सूत्रमें सदृश विसदृशका बन्धहै तब सूत्रभी उसी ढांचेपर बनाना था अर्थात् 'गुणसाम्येन' गुणोंकी गणनामें समानता होनेपर बन्ध नहीं होता(न सदृशोंका न असदृशोंका फिर इस सूत्रमें'सदृशानां'लाना व्यर्थ है आचार्यके उत्तरका भावार्थ यहहैकि सदृशोंका बन्ध विषमगुणोंके होनेपरभी

(१) सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें"गुणवैषम्ये बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं"पाठ है द्वितीयावृत्तिमें "गुणवैषम्ये सदृशानामपि बन्ध प्रतिपत्त्यर्थं पाठ है। तीन हस्तलिखित सर्वार्थसिद्धिकीप्रतियोंका पाठभी प्रथमावृत्तिसे मिलता है॥ यही पाठ श्लोकवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें और तीन चार प्रतियो राजवार्तिककी वार्तिक पांचका है, तत्वार्थराजवार्तिकमें इस वार्तिककी वृत्ति ऐसे है कि "गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवतीत्येतस्यार्थस्य प्रतिपत्तिर्थं" इत्यादि अर्थात् यह वृत्ति सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीयावृत्तिसे मेल रखती है॥ "गुणवैषम्ये बन्धो भवति इति परिज्ञानार्थं' सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिसे मिलता जुलता हुआ पाठ श्रुतसागरी टीकामें है॥ श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यमें दो स्थानोंपर देखो(पृष्ठ १३८)तथा भाष्यानुसारिणीतत्वार्थटीका जिसमें बाईस सहस्र श्लोकोंसे भी अधिक हैं उसके पर्ण ४६६ पर दो स्थानोंपर'गुणवैषम्ये सदृशानां बन्धो भवति"पाठहै जो सर्वार्थसिद्धिकी द्वितीया वृत्तिसे मिलता जुलता हुआ है॥ "गुणकी विषमता हो तो बन्ध होय है ऐसे जनावनेके अर्थ हैं" पं० जयचन्द्रजीने ऐसाअर्थ कियाहै॥'गुणकी विषमता होते सन्तेभी बन्ध होय हैं'न्यायदिवाकरजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय५ पर्ण १५३मेंहै॥ पं०पन्नालाल दूनीजी अनुवादित राजवार्तिक अध्याय ५ पर्ण १०० पर "गुणनिकी विषमतामें सदृशनिकें बन्ध है" ऐसा अर्थ प्राप्त है सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर इन सबका परिणाम यहहै कि यथार्थमें सर्वार्थसिद्धि का पाठ तो 'गुणवैषम्ये बन्धप्रतिपत्त्यर्थं' है॥ "सदृशानां" वाक्य शेष है अर्थात् यह शब्द छिपा हुआ है हमने द्वितीयावृत्तिके पाठको लेते हुए "सदृशानामपि"को कोष्टकमें करदिया है क्योंकि "सदृशानां"सहित अनुवाद करनेमें तथा अर्थ और व्याख्या समझने समझानेमें सरलता होजाती है॥

•अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च अनियमेन बन्धप्रसक्तौ विशिष्टार्थसंप्रत्यर्थमिदमुच्यते—

॥ द्व्यधिकादिगुणानां तु॥ ३६ ॥

नहीं होता यदि सूत्रमें 'सदृशानां' न लाते तो वह इस प्रकार छूटजाता कि तेतीसवां सूत्रसे 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' की अनुवृत्ति तो इस सूत्रमें आजाती और अर्थ यह होता कि गुणोंकी समानता होनेपर स्निग्धरूक्षोंका बन्ध नहीं होताहै इसअनुवृत्तिसे इस बातकी प्राप्ति हुई कि गुणोंकी विषमता होनेपर असदृशोंका बन्ध होगा अब सूत्रमें 'सदृशानां' शब्द तो होनाही नहीं अतएव सदृशानां का कथनहीविषमगुणोंकी अवस्थामें नहीं करसकतेथे इसी हेतुसे वृत्तिमें 'सदृशानां' के साथ 'अपि' (=भी) शब्द लाये हैं कि गुणोंकी विषमतामें सदृशोंका भी बन्ध प्रगट होजाय ; अपि शब्दसे यह भास होता है कि ३३वां सूत्रकी अनुवृत्ति इस सूत्रमें आनेसे असदृशोंका बन्धतो विषमगुणोंके होनेपर होहीजाताहै। सूत्रमें 'सदृशानां' लानेसे विषमगुणोंमेंसदृशोंके बन्धकीभी प्राप्ति होगई अतः सूत्रमें सदृशानां' शब्द व्यर्थ नहीं है॥ स्मरण रहे कि 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ करनेमें हमारे यहां 'साम्ये' शब्द पर बल देकर यह अर्थ किया है कि सदृशों(सजातीय परमाणुओं)का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर नहीं होता गुणोंकी विषमता होने पर सदृशोंका भी बन्ध होता है इसलिये सूत्रमें सदृशानां' शब्दका ग्रहण है कि गुणकी विषमता होनेपर सजातियोंकाभी बंध होता है॥ श्वेताम्बर आम्नायमें 'सदृशानां' शब्दपर बलदेकर यह अर्थ कियाहै कि सदृशोंका बन्ध गुणोंकीसमानता होनेपर नहीं होता है विसदृशों का बन्ध गुणोंकी समानता होनेपर भी होजाता है जैसे चार गुणवाली स्निग्ध परमाणुका बन्ध चार गुणवाली रूक्ष परमाणु के साथ होजावेगा इसीलिये श्वेताम्बर तथा दिगम्बरआम्नायोंमें इस सूत्रके अर्थमें भेद पड़गया है।

अतः*विषमगुणानाम्[६।३] तुल्यजातीयनाम्[६।३] च*	=इसलिये विषमगुणवाले सदृशोंका और (=च)
अतुल्यजातीयनाम्[६।३] अनियमेन[३।१] बन्ध-प्रसक्तौ[७।१] विशिष्ट-अर्थ-संप्रत्यय-अर्थम्[१।१]	=विसदृशों(=असदृशों)का नियमरहित वा अविशेषरूपसे बन्धका प्रसंग आनेपर विशेष तात्पर्य वा अभिप्राय जतानेके लिये
इदम्[१।१] उच्यते।	=यह(अग्रिम सूत्रमें) कहाजाता है कि

[१]सूत्रम्—द्व्यधिकादिगुणानां तु।३६। = द्वि-अधिक-आदिगुणानाम् (सदृशानाम् विसदृशानाम् परमाणूनां परस्परेण बन्धः) तु (भवति) ॥ ३६ ॥

सूत्रार्थः-द्वि-अधिक-गुणानाम्[६।३]	=किन्तु (पर-परंतु) दोगुण आदिसे(=आदिकरि)अधिकगुणवाले

(१) यह सूत्रभी परम गुप्तास सम्बन्ध रखता है क्योंकि 'न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन सूत्रोंसे अनुवृत्तियां इस सूत्रमें ग्रहण कीगई हैं

गई है ॥ अर्थात् 'सदृशानां स्निग्धरूक्षानां' पैंतीसवां सूत्रसे 'परमाणूनां' चौतीसवां सूत्रसे, 'बन्ध' तेतीसवां सूत्रसे अनुवर्तते हैं 'परम्परेण' और 'भवति' शब्दोंका अध्याहार इस सूत्रमें कियागया है। तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इस सूत्रकी प्रथमवार्तिककी वृत्तिमें कितनेही उदाहरण दिये हैं वे समस्त परमाणुओंसे सम्बन्ध रखते हैं, राज०२४२। यह बात प्रत्यक्ष है कि बन्ध होनेके पश्चात् स्कन्ध होजावेगा जैसाकि प्रथमवार्तिककी वृत्तिके अन्तके वाक्यसे प्रगटहै अर्थात् "एवमुक्त विधिना बन्धे सत्यणूनां द्वि-अणुकाद्यनन्तानंत प्रदेशावसानस्कन्धोत्पत्तिर्वेदितव्या, इसप्रकार कथित विधिद्वारा बन्ध होनेपर अणुओंके द्वि-अणुआदि अनन्तानन्त प्रदेश पर्यन्त स्कन्धोंकी उत्पत्ति जानना चाहिये, समर्थनमें देखो इसकापृ०१२६ जिसमें श्वेता०आम्नायकेसंबन्धमें कुछउल्लेखहै

(२) इस सूत्रका पाठ श्वेताम्बर और दिगम्बर आम्नायोंमें एक है तौ भी अर्थमें यह भेद है कि उन्होंने केवल 'सदृशानाम्' की अनुवृत्ति गुणसाम्ये सदृशानाम् सूत्रसे लेकर इस प्रकार सूत्र किया है कि द्वि-अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवतीति॥भाष्यम् - द्वाभ्यां गुणविशेषाभ्यामन्यस्माद्धिकाः परमाणुःस आदिर्येषां गुणानांते द्वि-अधिकादिगुणाः गुण शब्दात्रगुणिवचन गुणवन्तोगुणाः परमाणवः इत्यर्थः तेषां द्वि-अधिकादि गुणानामणूनां सदृशानां बंधो भवति ॥ सदृशानामितिस्नेहसामान्यंरूक्षसामान्यंचाश्रित्य सादृश्यं व्याख्येयं ॥ श्रीसिद्धसेनसूरि विरचिता भाष्यानुसारिणी वृत्तौ वा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्व ४६८-श्वेताम्बर आम्नायमें यह ग्रन्थ तत्त्वार्थ सूत्रपर महत्वका है इसमें बाईस सहस्र दोसौ श्लोकसे अधिक कुछहैं॥

द्वि-अधिक-आदि-गुणानां तु सदृशानाम् बंध भवति इति =परन्तु द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश(परमाणु)निका बन्ध होताहै, ऐसाहै

भाष्यम् — अन्यस्मात् द्वाभ्याम् गुणविशेषाभ्याम् अधिक: =व्याख्या(भाष्य)है कि अन्य(परमाणु से(=अन्यस्मात्) दो विशेषगुणकरि अधिक अर्थात् स्निग्धहोतो दोगुणअधिकस्निग्धकरि और रूक्षहोतो दोगुण अधिकरूक्षकरि

यः परमाणु सः आदिः येषाम् गुणानाम् ते द्वि-अधिकादिगुणाः =जोपरमाणु है सो दोआदिगुण(=आदिगुणानां)जिसके हैं वे(=ते द्वि-अधिकादि गुणाहैं

गुणशब्दः अत्र गुणिवचन- =यहां(=अत्रअर्थात् इससूत्रमें) गुण शब्दहै सो गुणीका वाचक(=गुणिन-वचन)है।

गुणवन्तः गुणाः परमाणवः इत्यर्थः =गुण सहित हैं वे गुणा परमाणु हैं ऐसा तात्पर्य है अर्थात् सूत्रमें 'गुणानां' शब्द है सो जिसके गुण विद्यमान है उनसे प्रयोजन है ऐसी गुणवालीपरमाणु है

तेषाम् द्वि-अधिकआदिगुणानाम् अणूनाम्सदृशानाम् बंधःभवति = तिन'दोगुण अधिक आदिसे सदृश परमाणुओंका बन्ध होताहै

सदृशानां इति स्नेहसामान्यं रूक्षसामान्यं च आश्रित्य =सदृशानां ऐसा वाक्य सामान्य स्निग्धका और सामान्यरूक्षको आश्रयकरि

सादृश्यंव्याख्येयम् ॥नीचेका भाष्य,सभाष्य०के पृ०१३६से लिया है= (सामान्य स्निग्ध और सामान्यरूक्षकी विरुपता से)समानता वर्णित है

भाष्यम्-द्वि-अधिकादिगुणानां तु सदृशानां बन्धो भवति =द्विगुण आदिसे अधिक गुणवाले सदृश पदार्थोंकाभी बन्ध होता है ॥

विशेषव्याख्या- अब इस विषयको कहते हैं कि रूक्षका रूक्षके साथ औरस्निग्धका स्निग्धके साथ भी बन्ध होता है किन्तु रूक्ष तथा स्निग्धगुणों की इस प्रकारसे विषमता होनी चाहियेकि

तद्यथा स्निग्धस्य द्विगुणाद्यधिक स्निग्धेन(द्विगुण-आदिअधिक)। =जैसे स्निग्धकाअर्थात्सामान्य स्निग्धका द्विगुणआदि अधिक स्निग्धके साथबंधहोताहै

द्विगुणाद्यधिक-स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विगुण-आदि-अधिक)। =(तथा)द्विगुण आदि अधिक स्निग्धका सामान्यस्निग्धके साथ बन्ध होता है

रूक्षस्यापि द्विगुणाद्यधिकरूक्षेण(द्वि-गुण-आदि-अधिक) =(ऐसेही सामान्य)रूक्षका द्विगुण आदि अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है

द्विगुणाद्यधिकरूक्षस्य रूक्षेण(=द्वि-गुण-आदि-अधिक) =तथा द्विगुण आदि अधिक रूक्षका सामान्य रूक्षके साथ भी बन्ध होता है (तात्पर्य यह कि सामान्य स्निग्ध पदार्थका उससे द्विगुण अधिक स्निग्धके साथ बन्ध होता है और सामान्यरूक्ष पदार्थका उससे द्विगुण अधिक रूक्षके साथ बन्ध होता है परन्तु यह वैषम्य(द्विगुण आदिसे अधिक होना चाहिये)

एकादिगुणाधिकयोस्तु सदृशयोर्बन्धो न भवति =और एकादिगुण अधिक सदृशोंका बन्ध नहीं होता है ॥ देखो सभाष्य०पृ० १३६॥

सदृशानाम्॥विसदृशानाम्॥परमाणूनाम्॥ =सजातीय अथवा विजातीय परमाणुओंका
परस्परेण॥बन्धः॥भवति। =आपसमें बन्ध होता है ॥ द्वि-अधिक आदिगुण वाक्यमें आदि शब्द प्रकार वा जातिवाची है । दोगुणकरि अधिक सो द्व्यधिकगुण है अर्थात् बंध होनेयोग्य जो परमाणु दोगुण करि अधिक है सो द्व्यधिकगुण(परमाणु है, जघन्यगुणको छोड़कर बन्ध होने योग्य दो अधिक गुणवाली परमाणु है । अतः द्व्यधिक गुण परमाणु का अभिप्राय चार गुण संयुक्त परमाणु हुई ॥ "द्व्यधिकादिबन्धःभवति" अर्थात् द्व्यधिक प्रकारसे बन्ध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुंसे जिस में चारगुण हैं सो दो अधिक गुणवाली परमाणु है, आदि शब्दके हेतुसे तीन गुण वाली परमाणुसे पांच गुण वाली परमाणु दो गुण अधिक है, चार गुण वाली से छह गुण वाली दो गुण अधिक है, पांच गुण वाली से सात गुण वाली दो गुण अधिक है, छह गुण वालीसे आठ गुण वाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीति से (आदि शब्द में) पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दो गुणअधिकवाली क्रमसे सर्व (संख्यात असंख्यात-अनंतगुणवाली परमाणुयें गर्भित है और इन्ही प्रकार की परमाणुओंके बंध होता है ॥

(क) सजातीय परमाणुओं के आपस में बंध के उदाहरणः—दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु चार गुणवाली स्निग्ध परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होती है तीन गुणवाली स्निग्ध पांच गुणवाली स्निग्ध के साथ, चार गुणवाली स्निग्ध छह गुणवाली स्निग्ध के साथ पांच गुणवाली स्निग्ध सात गुणवाली के साथ छह गुणवाली स्निग्ध आठ गुणवाली स्निग्ध के साथ बंधको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश, आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुयें,असंख्यात गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें और अनंत गुण संयुक्त स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ दश ग्यारह बारह आदि, संख्यात गुणवाली

जब श्वेताम्बर आम्नायके आचार्योंने "गुणसाम्ये सदृशानां" सूत्रका यह अर्थ किया है कि गुणोंकी समान संख्या होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता परन्तु विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी संख्याके तुल्य होनेपर भी होजावैगा तब यह परिणाम निकला कि सदृश परमाणुओंके ही बन्धके लिये एकसे दूसरेमें दोगुणोंके अधिक होनेकी आवश्यकता हुई क्योंकि उक्त आम्नायके सिद्धान्तके अनुकूल विसदृश परमाणुओंके आपसमें बन्ध होनेके लिये एकसे दूसरेमें अधिकगुणोंके होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है परन्तु हमारे यहां 'गुणसाम्ये सदृशानां' में 'स्निग्धरूक्षत्वानाम्' कीभी अनुवृत्तिग्रहणकोई इसलिये ऐसा अर्थ होता है कि परमाणुओंमें गुणोंकी संख्या यदि बराबर हो तो चाहे वे परमाणु सजातीय हों अथवा विजातीय हों बंध नहीं होता है और पश्चात् 'सदृशानां विसदृशानां' दोनोंकी अनुवृत्ति द्वि-अधिकादि गुणानांतु' सूत्रमें ग्रहण करके ऐसा तात्पर्य निकाला है कि द्विगुण आदिसे अधिक गुण वाली सदृश परमाणुओंका परस्पर अथवा विसदृश परमाणुओं का आपसमें बन्ध होता है अन्य प्रकारसे नहीं जघन्यगुणवाली परमाणुओंको दोनोंही सम्प्रदायवालोंने बन्धसे वर्जित रक्खा है ॥

स्निग्ध परमाणुओंके साथ, असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ पूर्वोक से उत्तरोक दो दो गुण अधिक, अधिक स्निग्ध गुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

( ) दो गुणवाली रुक्ष परमाणु चार गुणवाली रुक्ष परमाणु के साथ, तीन गुणवाली रुक्ष पांच गुणवाली रुक्षके साथ, चार गुणवाली रुक्ष छह गुण वाली रुक्ष के साथ पांच गुणवाली, रुक्ष सात गुणवाली रुक्षके साथ, छह गुण वाली रुक्ष आठ गुणवाली रुक्षके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात गुणवाली रुक्ष परमाणुयें असंख्यात गुण वाली रुक्ष परमाणुयें और अनंत गुण वाली रुक्ष परमाणुयें यथासंख्य नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यातगुणवाली रुक्षपरमाणुओंके साथ, असंख्यातगुणवाली रुक्षपरमाणुओंके साथ और अनंतगुणवाली रुक्षपरमाणु के साथ पूर्वोकसे उत्तरोक दोदोगुण अधिक अधिक रुक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं ॥

(ङ) विजातीय परमाणुओंके परस्पर बंधके दृष्टान्त—दो रुक्ष गुणवाली परमाणुओंका बंध चार स्निग्धवाली परमाणुओंके साथ होता है। तीन रुक्ष गुणवालीका पांच स्निग्धगुणवालीके साथ, चार रुक्षगुणवालीका छह स्निग्ध गुणवालीकेसाथ, पांच रुक्षगुणवालीका सात स्निग्धवालीके साथ, छह रुक्षगुणवालीका आठ स्निग्धगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इस प्रकारही सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली रुक्ष परमाणुयें, असंख्यात गुणयुक्त रुक्ष परमाणुयें और अनंत गुणसंयुक्त रुक्ष परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह आदि संख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ असंख्यात गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ और अनंत गुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथ बंधको प्राप्त होती हैं यदि पूर्वोक्त रुक्षगुणवाली परमाणुओंसे उत्तरोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंमें दो दो गुण अधिक अधिक स्निग्धताके हों तो ॥

() दो स्निग्धगुणवाली परमाणुओंका बन्ध चार रुक्षगुणवाली परमाणुओंके साथ होता है; तीन स्निग्धगुणवालीका पांच रुक्षगुणवालीके साथ, चार स्निग्धगुणवालीका छह रुक्षगुणवालीके साथ, पांच स्निग्धगुणवालीका सात रुक्षगुणवालीके साथ, छह स्निग्धगुणवालीका आठ रुक्षगुणवालीके साथ बंध होता है ॥ इसी प्रकार सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यातगुणवाली स्निग्धपरमाणुयें असंख्यातगुणयुक्त स्निग्धपरमाणुयें, और अनंतगुणवाली स्निग्ध परमाणुयें क्रमसे नौ, दश, ग्यारह, बारह, आदि संख्यातगुणवाली रुक्षपरमाणुओंके साथ असंख्यातगुणवाली रुक्षपरमाणुओंके साथ और अनन्तगुणवाली रुक्षपरमाणुओंके साथ बन्ध की प्राप्ति होती हैं यदि पूर्वोक्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंसे उत्तरोक्त रुक्षगुणवाली परमाणुओंमें दो अधिक रुक्षताके हों तो ॥

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः । कः पुनरसौ ? चतुर्गुणः॥ आदिशब्दः प्रकारार्थः । कः पुनरसौ प्रकारः? द्व्यधिकता । तेन पंचगुणादीनां सम्प्रत्ययो न भवति । तेन द्व्यधिकादिगुणानां तुल्यजातीयानां मतुल्यजातीयानां च बन्ध उक्तो भवति । नेतरेषाम् ॥ तद्यथा-द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुण-स्निग्धेन, द्विगुणस्निग्धेन, त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः ॥ चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्तिबन्धः

वृत्त्यनुवादः—द्वाभ्याम् गुणाभ्याम् अधिकः द्वि-अधिकः =(एक परमाणु दूसरेसे) दो गुणकरि अधिक परमाणु सो द्व्यधिक (गुण) है

कः पुनः॰असौ ? चतुर्गुणः ॥ =फिर यह(=असौ) क्या है। चारगुणवाली है अर्थात् जघन्यगुणवाली परमाणुओं को छोड़कर एकपरमाणुसे दोगुण जिस परमाणुमें अधिक हों सो चतुर्गुण वाली है।

आदि-शब्दः प्रकार-अर्थः =(इस सूत्रमें) आदि शब्द प्रकार अथवा जातिके लिये है अर्थात् द्व्यधिक प्रकार से बंध होता है भावार्थ दोगुण परमाणुसे जिसमें चारगुण हैं सो दो अधिकगुण वाला परमाणु है 'आदि'शब्दके निमित्तसे तीनगुणवाली परमाणुसे पांचगुणवाली परमाणु दोगुण अधिक है चार गुणवालीसे छहगुणवाली दोगुण अधिक है पांचगुणवालीसे सातगुणवाली दोगुण अधिक है, छह गुणवालीसे आठ गुणवाली दोगुण अधिक है इत्यादि इसी रीतिसे 'आदि'शब्दमें पूर्वोक्त से उत्तरोक्त दोगुण अधिक अधिक वाली क्रमसे सर्व संख्यात-असंख्यात-अनन्तगुणवाली परमाणुयें गर्भित हैं और इन्हीं प्रकारकी परमाणुओंके बंध होते हैं

कः पुनः॰असौ प्रकारः ? द्वि-अधिकता =(प्रश्न)बहुरि वह प्रकार क्या है ? (एकपरमाणुमें दूसरीसे)दो(गुण)की अधिकता है

तेन पञ्चगुण-आदीनाम् संप्रत्ययः न॰भवति =तिस(द्व्यधिक)से पांच गुणादिकोंका जानना अथवा ज्ञान नहीं होता है

तेन द्वि-अधिक-आदि-गुणानां तुल्य-जातीयनां च॰ =तिस(द्व्यधिक)से दो अधिकादिगुणवाली सदृशोंका और(=च)

अतुल्य-जातीयनाम् बन्धः उक्तः भवति । न॰इतरेषाम् =विसदृशोंका बन्ध कहागया(=उक्त है(=भवति)अन्यपरमाणुके(बन्ध) नहीं है

तद्यथा॰द्विगुण-स्निग्धस्य परमाणोः एकगुण-स्निग्धेन द्विगुण-स्निग्धेन वा त्रिगुणस्निग्धेन =जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुओंके एकगुण स्निग्ध(परमाणु)करि दोगुण स्निग्ध(परमाणु)करि वा तीनगुण स्निग्धकरि

न॰अस्ति बन्धः । चतुर्गुण-स्निग्धेन पुनः॰अस्तिबंधः =बन्ध नहीं है। बहुरि चारगुण स्निग्ध (परमाणु)करि बन्ध है।

तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन षट्सप्ताष्टसंख्येयासंख्येयानन्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति । एवं त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन बन्धोऽस्ति ॥ शेषैः पूर्वोत्तरैर्न भवति ॥ चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्गुणस्निग्धेनास्ति बन्धः । शेषैः पूर्वोत्तरैर्नास्ति । एवं शेषेष्वपि योज्यः॥ तथा— द्विगुणरूक्षस्य एकद्वित्रिगुणरूक्षैर्नास्ति बन्धः । चतुर्गुणरूक्षेणत्वस्ति बन्धः ॥ तस्यैव

---

१२० तस्य एव * पुनः * द्वि-गुण-स्निग्धस्य पंचगुणस्निग्धेन =तथा(=पुनः)तिसही दोगुण स्निग्ध(परमाणु)का पंचगुण स्निग्धकरि

षट्-सप्त-अष्ट-संख्येय-असंख्येय-अनन्तगुण-स्निग्धेन वा =छह,सात,आठ (आदि ऐसे)संख्यात,असंख्यात वा अनन्तस्निग्ध(परमाणु) करि

बन्धः न * अस्ति । एवम् * त्रिगुणस्निग्धस्य पंचगुण- =बन्ध नहीं है । ऐसे तीनगुणस्निग्ध(परमाणु)के पांचगुणवाला

स्निग्धेन बन्धः अस्ति । शेषैः पूर्व- =स्निग्धकरि बन्ध है।(पांचसे)प्रथम बचीहुई(संख्या एक-दो-तीन-चार स्निग्ध)निकरि

उत्तरैः =(तीनस्निग्ध गुणवाली परमाणुका बन्ध) तथा अग्रिम (संख्यातस्निग्धगुणवाली,असंख्यात स्निग्धगुणवालीअनंतस्निग्धगुणवाली)निकरि

न * भवति ॥ =(तीनस्निग्धवाली परमाणुओंका बन्ध) नहीं होता है अर्थात् तीनगुणवाली स्निग्धपरमाणुका बन्ध एक-दो-तीन-चार स्निग्ध परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुसे संख्यामें पूर्व है तथा छ-सात-आठ-नौ आदि संख्यात असंख्यात अनंत पर्यन्त स्निग्धगुणवाली परमाणुओंके साथ जो पांचस्निग्ध गुणवाली परमाणुओंसे उत्तर या अगली हैं बन्ध नहीं होताहै केवलपांचगुणवाली स्निग्ध परमाणुओंके साथही तीनस्निग्धगुणवाली परमाणु बन्धको प्राप्त होतीहै

चतुर्गुणस्निग्धस्य षड्-गुणस्निग्धेन अस्ति बन्धः; =चारगुण स्निग्ध(परमाणु)का छहगुणस्निग्ध (परमाणुकरि) बन्ध है

शेषैः पूर्व- =(छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) बची हुई पहली(एकसे पांच तक स्निग्धपरमाणु,निकरि

उत्तरैः =(तथा छहगुणस्निग्धपरमाणुसे) अगली (सात-आठ-नौ-दश आदिक संख्यातगुण स्निग्ध परमाणु असंख्यातगुण स्निग्धपरमाणु अनंतगुण स्निग्धपरमाणु)निकरि

न * अस्ति । एवम् * शेषेषु अपि * योज्यः; तथा * =(बंध)नहीं होता है । इस प्रकार(दोगुण अधिक) अवशेष विषैंभी जोड़ो । उसीप्रकार १२०

द्विगुणरूक्षस्य एक-द्वि-त्रिगुणरूक्षैः न * अस्ति बन्धः =दोगुणरूक्ष(परमाणु)के एक दो तीन गुणवाली रूक्ष(परमाणु)करि बन्ध नहींहै

चतुर्-गुणरूक्षेण तु * अस्ति बन्धः तस्य एव * =किन्तु (=तु)चारगुण वाली रूक्ष परमाणु करि बन्ध है । तिसही

द्विगुणरूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिस्तरनोस्ति बन्धः ॥ एवं त्रिगुणरूक्षादीनामपि द्विगुणाधिकैर्बन्धो योज्यः ॥ एवं भिन्नजातीयेष्वपि योज्यः॥उक्तंच–

द्विगुण-रूक्षस्य पंचगुणरूक्षादिभिः इतरैः =दोगुणरूक्ष(परमाणु)का पांचगुणरूक्षादिकरि अगली निकरि बन्धः न अस्ति; एवम् त्रिगुणरूक्ष-आदीनाम् अपि =बन्धनहीं है। इस प्रकार तीनगुण(वाली)रूक्षादिकोंका भी(=अपि) (अर्थात् उस तीनगुण-चारगुण-पांचगुण-छहगुण आदि संख्यात, असंख्यात, और अनन्तगुणवाली रूक्षपरमाणुका यथासंख्य वा अनुक्रमसे)

१३१ द्विगुण अधिकैः =दोगुण अधिककरि (अर्थात् पांचगुण रूक्षकरि, छहगुण रूक्षकरि, सातगुण रूक्षकरि, आठ आदिगुणरूक्षकरि ऐसे दोगुण अधिक संख्यातरूक्षगुणकरि, तथा दोगुणअधिक असंख्यातरूक्षगुणकरि, और दोगुण अधिक अनंतरूक्षगुणवाली परमाणुकरि)

बन्धः योज्यः । एवम् भिन्नजातीयेषु अपि =बन्ध योग्य है। इस प्रकार भिन्नजातीय(परमाणुओं)में भी(अर्थात् स्निग्धपरमाणुओंका रूक्षोंकरि और रूक्षपरमाणुओंका स्निग्धोंकरि भी बन्ध)

योज्यः ॥ =योग्य है (=योज्यः) भावार्थ द्विगुण स्निग्धके एक दो तीन रूक्षगुण संयुक्त परमाणुओंकरि बन्ध नहीं है। चतुर्गुणही रूक्षकरि बंध है इसी प्रकार तीनगुणस्निग्ध परमाणुओंके पांचगुण रूक्षपरमाणुकरि बंध है । शेष पूर्वोत्तर गुणयुक्त परमाणुओंकरि बंध नहीं है। इस प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुणके धारक जे स्निग्ध रूक्षपरमाणु तिनकै सजातीयमें अथवा विजातीयमें दोगुण अधिक संयुक्त परमाणुकरिही बन्ध है अन्य प्रकार नहीं है। एक परमाणुके बन्धके लिये दूसरीमें दोगुण अधिक होना ही चाहिये ॥

उक्तम् च =कहा भी है कि

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण। णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि(हवेदि)बन्धो । जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥गोम्मटसार तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक तथा श्रुतसागरी टीकामें 'दुराधिएण'के स्थानमें दुराहिएण' है ॥ गोम्मटसारमें 'उवेदि-हवेदि'=(उपैति)के स्थानमें 'हवेज्ज' भवेत् है और तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें 'उपइ'=है ॥ श्लोकवार्तिक,गोम्मटसार, श्रुतसागरी टीकामें'वज्जे' है सर्वार्थसिद्धिवृत्तिमें (दोनों आवृत्तियोंमें) राजवार्तिक मुद्रित तथा हस्तलिखितमें 'वज्जो' शब्द लाये हैं १३१

यह आर्याछन्द अत्यन्त प्राचीन और महत्वका है क्योंकि हमारे यहां के लगभग सब संस्कृत भाष्योंमें जैसे सर्वार्थसिद्धिवृत्ति,तत्त्वार्थ राजवार्तिक

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिएण ॥ णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो । जहण्णवज्जो विसमे समे वा ॥ १ ॥

णिद्धस्स। णिद्धेण। दुराधिएण। (=स्निग्धस्य। स्निग्धेन। द्वि अधिकेन।)	=स्निग्धका स्निग्धद्वारा दो अधिक(गुणों)करि
लुक्खस्स। लुक्खेण। दुराधिएण। (=रूक्षस्य। रूक्षेण। द्वि-अधिकेन।)	=रूक्षका रूक्षद्वारा दो अधिक(गुणों)करि(और)
णिद्धस्स। लुक्खेण। हवेदि। बन्धो। (=स्निग्धस्य। रूक्षेण। भवति। बन्धः।)	=स्निग्धका रूक्षद्वारा(दो अधिकगुणोंकरि)बंध होता है
जहण्णवज्जे। विषमे। समे। वा ※(जघन्यवर्ज्ये। विषमे। समे। वा ※)	=जघन्य(गुणवाली परमाणु) के छोड़दियेजानेपर परमाणुमें समधारा(दो-चार-छह-आठ-दश इत्यादि गुणों)में हो अथवा विषमधारा तीन-पांच-सात-नौ-ग्यारह इत्यादि गुणोंमें हों (बंध होजाता)है

श्लोकवार्तिक, श्रुतसागरि टीका इत्यादिमें तथा गोम्मटसार (जीवकांड)में दिया हुआ है यहांतक कि श्वेताम्बर आम्नायके श्रीसिद्धसेनसूरि रचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति" जो उमास्वामिकृत तत्त्वार्थसूत्रपर है जो श्वेताम्बर आम्नायमें महत्वका ग्रन्थहै जिसमें बाईसहजार सातसौ चालीस श्लोकहैं उसमें भी यह गाथा ऐसे पायाजाता है कि"णिद्धस्स णिद्धेण दुआधिएण । लुक्खस्स लुक्खेण दुआधिएण॥णिद्धस्स लुक्खेण उवेति बन्धो जहण्णवज्जा विसमे समेवा" परन्तु उक्त सम्प्रदायके अनुकूल अर्थ यह है कि 'स्निग्धपरमाणुका स्निग्ध दोगुण अधिककरि (बन्ध होता है)। रूक्षपरमाणुका रूक्ष-परमाणु दोगुण अधिककरि (बन्ध होता है ॥ स्निग्ध का रूक्षकरि(अर्थात् असदृशोंका विजातीयोंका)बन्ध होता है(यहांपर दोगुण अधिककी आवश्यकता नहीं है विजातीय परमाणुओंका समानगुण होनेपरभी बन्ध होजाता है) जघन्यगुणकी परमाणुको छोड़ कर सममें और विषममें (दोनों)में बंध होताहै ॥ अब प्रश्न यह है कि यह गाथा छंद सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, तत्त्वार्थराजवार्तिक, गोम्मटसार तथा श्वेताम्बर आम्नायके ग्रंथोंमें कहांसे आया॥

(उत्तर) यह गाथा किसी ऐसे प्राचीन ग्रन्थसे लीगई है जो तत्त्वार्थ सूत्रके सदृश दोनों श्वेताम्बर तथा दिगम्बर आम्नायोंमें माननीय था क्योंकि यथार्थमें दोनों आम्नायवालोंके यहां इसका पाठ लगभग एकसा है दिगम्बर आम्नायमें सबसे प्रथम जहांतक तत्त्वार्थ सूत्रसे हमको संबंधहै श्रीपूज्यपाद स्वामीने इस छंदको लिया क्योंकि इनका जन्म संवत् २०८ जेठ सुदी दशमीका पट्टावलियोंसे प्रतीत होताहै इस विक्रमशकसे शालिवाहन अथवा शक संवत् चलानेवाले राजासे अभिप्राय है वह प्रतापी विक्रमादित्यके संवत्से १३५ वर्ष पीछे चला है। इसके पश्चात् श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इसका उल्लेख किया, इसकेभी पश्चात् श्रीमद्विद्यानन्दि स्वामीने इसको तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें ग्रहण किया, फिर श्रीनेमिचन्द्र आचार्यने गोम्मटसारमें इसको स्थान दिया क्योंकि उनका समय इतिहास अन्वेषियोंने ग्यारहवीं शताब्दीके आरम्भमें अथवा उससे कुछ पूर्व सिद्ध किया है समस्तके पीछे जहांतक संस्कृत भाष्योंसे संबन्धहै इसको श्रीश्रुतसागरिसूरिने श्रुतसागरी टीकामें संवत् १५५० में स्थान दिया। हमको श्रीसिद्धसेन गणिका समय ज्ञात नहीं है इससे कह नहीं सकते कि उन्होंने किस समयमें इसको अपनी भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्तिमें स्थान दिया ॥ कहीं कहीं पर इसको उवेदि हवेदि दुराधिएण दुराहिएण, हवेज्ज पाठ मिलता है सो आचार्योंको अपनी अपनी प्रकृतिअनुकूल जो शब्द अच्छा और उचित जान पड़ा उसका उल्लेख करके कुछ पाठमें हेर फेर करदिया परन्तु छंदके अभिप्राय (और यों कहिये कि लगभग शब्दोंपरभी) कोई प्रभाव नहीं पड़ा परन्तु हमको संदेह नहीं है कि यह महत्वपूर्ण छंद किसी न किसी ऐसे ग्रन्थमें अवश्य विद्यमान है जिसको दोनों समाजवाले अपनाकर शब्दशःग्रहण करतेहैं॥

(१) इस आर्याछंदका अर्थ श्वेताम्बर आम्नायमें अन्वय: यही लियागया है जो यथार्थमें साधारण रीतिसे शब्दोंसे निकलताहै प्रथम दोपंक्तिकेसंबंधमें

अर्थात् एकस्निग्ध परमाणुका दूसरी दोगुण अधिक स्निग्धपरमाणुके साथ बन्ध होता है ॥ एक रूक्षपरमाणुका दूसरी दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ बन्ध होता है। एकस्निग्धपरमाणुका दूसरी दो अधिक गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ भी बन्ध होता है। समधारा और विषमधारा दोनोंमें बन्ध होता है किन्तु जघन्यगुणवाले परमाणुओंका बन्ध नहीं होता है भावार्थ ऐसा है कि एकगुणवाले परमाणुका तीनगुणवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होताहै, शेष स्निग्ध वा रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओं का समधारा वा विषमधारामें दोगुण अधिक रहनेपर बन्ध होजाताहै॥ स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें दो-चार-छह-आठ-दश-बारह-इत्यादि जहां दोगुण के ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि वा अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं और स्निग्ध रूक्ष दोनोंमें ही तीन-पांच-सात नौ-ग्यारह-तेरह इत्यादिक जहां तीन गुणोंके ऊपर दो दो अंशोंकी अधिकता हो वहां विषमधारा होती है। इन दोनों धाराओंमें जघन्यगुणको छोड़कर दोगुण अधिकका ही बन्ध होता है अन्यका नहीं ॥ सो इन दोनों सम, विषम धाराओंमें अनन्तर-द्विक (अत्यन्त-समीप-द्विक) का बन्ध होताहै अन्यका नहीं जैसे दोगुणवाले स्निग्ध वा दोगुणवाले रूक्षका चारगुणवाले स्निग्ध वा चारगुणवाले रूक्षकेसाथ तथा तीन गुणवाले स्निग्ध वा रूक्षका पांचगुणवाले स्निग्ध वा रूक्षके साथ बन्ध होताहै अन्य किसीके साथ नहीं ऐसे औरऔर अधिकगुणवाली परमाणुओंका बंधजानो

हमारे यहां भी यही बात है परन्तु पिछली दो पंक्तिके संबन्धमें भाष्यकारोंने तथा भाषाके टीकाकारोंने दो अधिक परमाणुओं द्वारा बन्धका उल्लेख किया है वह इसप्रकार हैकि (क) पूज्यपादस्वामी औरश्रुतसागरसूरिने कुछ भी संस्कृतमें अर्थ इस आर्याछंदका नहीं कियाहै (ख) राजवार्तिकके रचयिताने पूज्यपाद स्वामीके मतको विशेषरूपसे उदाहरणों द्वारा समर्थन करदिया है इस आर्या छंदकी वृत्ति नहीं दी है ॥ पं० पन्नालाल दुनी, पं० जयचन्द्रजी पं० सदासुखजी और श्रीनेमिचन्द्राचार्यने 'सम' शब्दका अर्थ समगुणवाली अर्थात २,४,६,८,१०,१२,१४, आदिगुणवाली परमाणु ली हैं और 'विषम'से विषमगुणवाली अर्थात् ३,५,७,९,११,१३,१५, आदि गुणवाली परमाणु ग्रहण की हैं जैसाकि उनके यथाक्रम निम्नलिखित लेखोंसे प्रगट होता है।

"स्निग्धके स्निग्धकरि बन्ध होय है। तहां दोयगुण अधिककरि होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि बन्ध होय है। सोभी दोयगुण अधिककरि होय है अर स्निग्धके रूक्षकरि तथा रूक्षके स्निग्धकरि ऐसें जघन्यगुण वर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ। दोगुण अधिकही करि बन्ध है। अन्यकरि नाहीं है इस प्रकार स्निग्ध और रूक्ष इनके दोय दोय अंश प्रत्येकके बन्ध होनेमें कारण हैं। ताकरि पुद्गलपरमाणुनिकै एक पिंडात्मक बंध पर्याय होते संते द्विगुणक आदि अनंतानंत प्रदेश पर्यन्त स्कन्धनिकी उत्पत्ति होय है। ऐसा जानना। पं० (पन्नालालजी दूनोने इस गाथाका उपर्युक्त अर्थ किया है) ॥

'स्निग्धके स्निग्धकरि दोगुण अधिककरि बन्ध होय है। तथा रूक्षके रूक्षकरि दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है। जघन्यगुणवर्जिकरि समगुण होऊ तथा विषमगुण होऊ दोय गुण अधिक होकरि बन्ध है अन्यकरि नाहीं है" पंडित जयचन्द्रकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४६५

'स्निग्ध परमाणुकै स्निग्धपरमाणु दोयगुण अधिककरि बन्ध होय है ॥ अर रूक्षपरमाणुकै दोयगुणअधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है ॥ अर स्निग्ध परमाणुके दोयगुण अधिक रूक्षपरमाणुकरि बन्ध होय है ॥ अर जघन्यगुण जो एकगुण तिस सहित परमाणुकरि बन्ध नहीं होय है ॥ अर दोय, च्यार, छह, आठ इत्यादिक समगुणके धारकनिकैहू बन्ध है। अर तीन पांच, सात, नव, ग्यारा इत्यादिक विषमगुण धारकनिकैहू बन्ध होय है। परन्तु गुणके दोय अंशकी होन अधिकता होय तिनहीके बन्ध है अन्यके नहीं है भावार्थ स्निग्धस्निग्धके, अर रूक्षरूक्षके अर स्निग्धरूक्षकै अर रूक्षस्निग्धकै दोय गुण अधिक सम विषम होते बन्ध होय है अन्य होन अधिकके बन्ध नहीं होय' पंडित सदासुखजीकृत अर्थप्रकाशिका पृ० ३३७ और ३३८ देखो॥

"एक स्निग्ध परमाणुका दूसरे दोगुण अधिक स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध होता है। एक रूक्ष परमाणुका दूसरे दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुकेसाथ बन्ध होता है। एक स्निग्ध परमाणुका दूसरे दोगुण अधिक रूक्षपरमाणुके साथ भी बन्ध होता है। सम विषम दोनोंका बन्ध होता है, किन्तु जघन्यगुणवालेका बन्ध नहीं होता। मतलब एक गुणवालेका तीनगुणवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता। शेष स्निग्ध वा रूक्ष दोनों जातिके परमाणुओंका समधारा वा विषमधारामें दोगुण अधिक होनेपर बन्ध होता है (दो, चार, छह, आठ, दश इत्यादि जहांपर दोके ऊपर दो दो अंशोंकी अधिकता हो उसको समधारा कहते हैं। तीन, पांच, सात, नौ ग्यारह इत्यादि जहांपर तीनके ऊपर दो दो अंशोंकी वृद्धि हो उसको विषमधारा कहते हैं। इन दोनों धाराओंमें जघन्यगुणको छोड़कर दोगुण अधिकवाले बन्ध होता है औरका नहीं॥" गोम्मटसार॥ उपर्युक्त टिप्पणीसे विदित है कि हमारे यहांके अधिकतम भाष्यकारों तथा भाषाके टीकाकारोंने समगुण (=दोकी संख्याके ऊपर दो दोकी अधिकता) अर्थात् परमाणुके अविभाग प्रतिच्छेदरूप अंश जो समधारामें हों ऐसा अर्थ "सम"का लिया है और इसी प्रकार विषमका अर्थ परमाणुके अविभाग परिच्छेदरूप अंश जो विषमधारा (तीनकी संख्याके ऊपर दो दो की अधिकता) में हो ऐसा अर्थ विषमका ग्रहण किया है परन्तु हमारे यहांके तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकके रचयिता श्रीमद्विद्यानंदिका यह मत नहीं है, उन्होंने 'सम'का अर्थ 'तुल्यजातीय' परमाणु लिया है और विषमका अर्थ विसदृश वा विजातीय परमाणु लिया है जैसाकि उनके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है "विषमोऽतुल्यजातीयः समः सजातीयो न पुनः समानभाग इति व्याख्यानान्न समगुणयोर्बन्धः प्रसिद्धिः" विषम असदृश जातीय परमाणु है और सम सजातीय परमाणुको कहते हैं बद्धुरि नहीं है समानगुण वा समान अविभाग प्रतिच्छेदरूपअंश क्योंकि व्याख्यान से (अर्थात् जो कुछ हम पूर्व कह चुके हैं उससे) समान अविभाग परिच्छेद रूपअंशके धारक परमाणुओंमें बंधकी प्रसिद्धि नहीं है।

श्वेताम्बर आम्नायके भाष्यकारोंने इस आर्या छंदके पिछले दो चरणों का अर्थ बहुत साधारण रूपसे यह किया है कि जघन्य गुण वाले परमाणु को छोड़कर स्निग्ध परमाणुका बंध रूक्ष परमाणुके साथ चाहे उनदोनों परमाणुओं में गुणों की संख्या बराबर हो चाहे न्यूनाधिक हो बन्ध होजाता है उनके अनुकूल दो गुण युक्त स्निग्ध परमाणु दो गुण सहित रूक्ष परमाणु के साथ बंधको प्राप्त होगी, इसी प्रकार दो गुणवाली स्निग्ध परमाणु तीन गुण, चार गुण, पांच गुण, छह गुण इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ बन्धको प्राप्त होती है जैसाकि श्रीसिद्धसेनगणिरचित भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्तिके निम्नलिखित वाक्यसे जो पृ० ४७१ में है भाव टपकता है॥ "पाश्चात्यमर्द्धमनेन च स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धो भवत्यजघन्यगुणानामिति। सूत्रद्वय परिग्रहात् स्निग्धरूक्षयोश्च जघन्यगुण वर्जः परस्परेण विषमगुणयोस्समगुणयोश्च बन्धो भवतीति"

च एतेन[१] पाश्चात्यम्[२] अर्द्धम्[३] स्निग्धरूक्षत्वात्[४] बन्धः[५] = और (=च) इस (आर्याछंदके पिछले अर्द्धभागद्वारा स्निग्धरूक्षपनसे बन्ध होता है

न अजघन्यगुणानाम्[६] इति सूत्रद्वय = (परन्तु) जघन्यगुणवाले (परमाणुओं)का बन्ध नहीं होता है (इन) दो सूत्रोंको

परिग्रह-स्निग्धरूक्षयोः[७] जघन्यगुणवर्जं[८] = मानेहुये और (=च) जघन्यगुणवाली परमाणुको छोड़ते हुये स्निग्ध रूक्षका बन्ध (अन्य सब अवस्थाओंमें) (चाहे स्निग्ध रूक्षपरमाणुओंमें)

विषमगुणयोः[९] च समगुणयोः[१०] = समान संख्यामें गुण न हों और समानगुणगणनामें हों तो भी

परस्परेण बन्धो[११] भवति इति = (उनमें) परस्पर बन्ध होजाता है। (जैसे दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुका दो गुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ तीनगुणवाली रूक्षके साथ, चार गुणवाली रूक्षके साथ, पांच छह, सात, आठ, आदि संख्यातगुणवाली, असंख्यातगुणवाली, अनंतगुणवाली रूक्षपरमाणुके साथ बन्ध होजाता है इसी प्रकार दोगुणवाली रूक्षपरमाणुका दोगुणवाली स्निग्धपरमाणुके साथ, तीनगुण स्निग्धके साथ, चारगुण स्निग्धकेसाथ, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दश आदि संख्यात असंख्यात अनंतगुणवाली स्निग्धपरमाणुके साथ बन्ध होजाता है॥ दोनों आम्नायोंके अन्तर वा भेदका सारांश पृष्ठ १३५की टिप्पणीमें दिया है॥

सर्वार्थ सिद्धि — अध्याय सूत्र

तु शब्दो विशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति ॥

किमर्थमधिकगुणविषयो बन्धो व्याख्यातः न समगुणविषयः इत्यत आह—

तुशब्दः¹ व्यावृत्ति-विशेषण-अर्थः¹ प्रतिषेधं² व्यावर्तयति T=तुशब्द व्यावृत्ति और विशेषणकेलिये है(तु बंधके)निषेधको निवारण वा दूर करताहै
बन्धम् ² च * विशेषयति T =और(=च)बन्धको विशेषित करता है अर्थात् तुशब्द बन्धके निषेध करनेवाले पूर्व के दो सूत्र कि 'जघन्यगुणवालोंका बन्ध नहीं होता है' और 'गुणोंके समतामें सदृशोंका बन्ध नहीं होताहै' इस बन्धके निषेधको दूर करता है तथा बन्धकी विधिको कि द्वि-अधिक आदि गुणोंकरि बंध होता है जतलाताहै। भावार्थ ऐसा है प्रश्न होनेपर कि यदि जघन्यगुणवालोंका और गुणोंकी संख्यामें बराबरी होनेपर बन्धका निषेध है तो फिर किसका बन्ध है उसपर बन्धके दो पूर्व कथित निषेधक सूत्रोंकी व्यावृत्ति करते हुए और बन्धकी विधि करते हुए कहते हैं कि बन्ध तबही होसकता है जबकि एक परमाणुमें दूसरीसे दोगुण अधिक हैं जिसको विशेषरूपसे इस सूत्रके अर्थमें कहा है
१३५ किम्¹ ॥ अर्थम् ¹ ॥ अधिकगुणविषयः¹ बन्धः¹ व्याख्यातः¹ =कौन अर्थ अधिकगुणमें बन्धवर्णित है
न * समगुणविषयः¹ इति * =नकि तुल्य अथवा बराबर गुणमें(अर्थात् बन्ध अधिकगुणोंमें एक दूसरेसे होनेपर
अतः * आह T =क्यों होता है समानगुणोंके होनेपर क्यों बन्ध नहीं होता है इसलिये कहते हैं कि

(१) दिगम्बर आम्नायके चार सूत्र तथा उपर्युक्त आर्याछन्दका सारांश स्निग्धका स्निग्ध द्वारा दो अधिक (गुणों)करि, रूक्षका रूक्षद्वारा दोअधिक-गुणोंकरि और स्निग्धका रूक्षद्वारा दो अधिक(गुणों)करि बन्ध होता है। जघन्य गुणवाली(के छोड़दिये जानेपर (परमाणुयें) समधारा(दो-चार छह-आठ-दश आदिकगुणों)मे हो अथवा विषमधारा(तीन-पांच-सात-नौ-ग्यारह इत्यादि गुणों)में हो बन्ध होजाता है ॥

(१) श्वेताम्बर आम्नायके चार सूत्र तथा उपर्युक्त आर्याछन्दका सारांश स्निग्धका स्निग्धद्वारा दो अधिक गुणों)करि, रूक्षका रूक्षद्वारा दो अधिक-गुणोंकरि बन्ध होता है ॥ जघन्यगुणवाली परमाणुओंको छोड़कर स्निग्ध का रूक्षद्वारा अथवा यों कहिये कि रूक्षका स्निग्धद्वारा(सब अवस्थाओंमें) चाहे स्निग्धरूक्षपरमाणुयें जो बध्यमानहैं(अर्थात् जिनका बन्धहोनेवालाहै) हैगणनामें समानगुणवाली हो वा असमान गुणवालीहो बन्ध होजाताहै ॥

(२) व्यावृत्ति—'तुशब्दोविशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्ध च विशेषयति" यह वाक्य दोनों आवृत्तियोंमें ऐसाहीछपाहै और हमने तीन हस्तलिखित प्रतियोंसे मिलाया उनमेंभी अक्षरशः ऐसाही है ॥ परन्तु 'प्रतिषेधं व्यावर्तयति' से प्रगट है कि 'विशेषणार्थः'वाक्यसे पहले"व्यावृत्ति"शब्दका अध्याहार होनाचाहिये तब समस्त वाक्य ऐसा होगा कि'तुशब्दो व्यावृत्ति विशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धम् चविशेषयति' इसअवस्थामें व्यावृत्तिका अर्थ प्रतिषेधं व्यावर्तयति(=निषेधको दूर करता है) और'विशेषणार्थः' वाक्यका अर्थ हुआ कि'च बन्धंविशेषयति'। =और बन्धका विशेष अवस्थामेंविधान करता है। (संस्कृतके उपर्युक्त सर्व वाक्य पूज्यपाद स्वामीके ही हैं। ऐसा जान पड़ताहै कि अद्वितीय विद्वान होनेसे पूज्यपाद स्वामीने यह समझकर कि जब हम प्रतिषेध व्यावर्तयति का उल्लेख करते हैं तब पाठकगण स्वयम्'व्यावृत्ति' शब्दका अध्याहार करलेंगे अथवा अपने चित्तमें इस शब्दको १३५

॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च = बन्धे अधिकौ गुणौ पुद्गलौ(परमाणू वा स्कन्धौ)पारिणामकौच भवतः॥

सूत्रार्थः—बन्धे सति अधिकौ गुणौ = और बंध होनेपर दो अधिक गुणवाला

पुद्गलौ (=परमाणू वा स्कन्धौ) =पुद्गल(=परमाणु वा स्कंध)(हीन गुणवाले परमाणु वा स्कन्धको अपने रूपमें)

पारिणामिकौ च भवतः =परिणमावनेवाला होता है अर्थात् दो गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष पुद्गलके चतुर्गुण आदि स्निग्ध वा रूक्ष गुणपुद्गलस्वरूप पारिणामिकता होतीहै। भावार्थ जैसे एक परमाणु वा स्कंध में दोगुण स्निग्धताके होंय और दूसरे परमाणु वा स्कंधमें चारगुण रूक्षपनाके होंय तो दोनोंके बन्ध होनेपर अधिकगुणरूप जो रूक्षपुद्गल (=परमाणु वा स्कंध) तिसरूप हीनगुणरूप जो स्निग्धपरमाणु वा स्कंध हैं सो होजाता है। इसी प्रकार रूक्षसे स्निग्धमें बंध होय तो, रूक्षसे रूक्ष मिले तो, और स्निग्धसे स्निग्धमें बन्ध होय तो दो अधिकगुण जिस परमाणु अथवा स्कन्धमें होय तिसरूप हीनगुणवाला परमाणु वा स्कंध परिणमि जाता है और इस परिणमन अथवा पलटनेकी अवस्थामें प्रथम और दूसरी अवस्थाओंका अभाव होकर एक तीसरी भिन्न अवस्था प्रगट होजाती है। इस प्रकार अधिकगुणके और हीनगुणके एक स्वरूपपना होता है॥

भारण करके आशय निकाल लेंगे॥ ऐसा ही तत्त्वार्थराजवार्तिक, सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र और भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति (दो श्वेताम्बरीय भाष्यों)में भी कहा है जैसाकि निम्न उद्धृत वाक्यों से प्रगट है।

"तुशब्दो व्यावृत्तिविशेषणप्रतिपत्त्यर्थः" = सूत्रमें तुशब्द(निषेधके)हटानेको और दूर करनेके तथा बंधकी विधिको विशेष अवस्थामें समझानेकेलियेहै,॥ देखो तत्त्वार्थराजवार्तिक,वार्तिक दूसरी ॥

"तुशब्दः क्रियमाणः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति =(सूत्रमें) तुशब्द ('न जघन्यगुणानाम्' 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' इन दो सूत्रोंमें) किये हुए निषेधको हटाता है दूर करता है और बन्धका विशेष अवस्था (दोगुण अधिकवाली)में विधान करता है

'अत्र तुशब्दो व्यावृत्तिविशेषणार्थः प्रतिषेधं व्यावर्तयति बन्धं च विशेषयति'(सभाष्य० पृ० १३६ भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पत्र ४३०) "इस सूत्रमें द्वि-अधिकादिगुणानान्तु यहां जो तुशब्द पठित है वह व्यावृत्ति तथा विशेषणके लिये है अर्थात् न जघन्यगुणानां वा गुणसाम्ये सदृशानाम्' इत्याकारक प्रतिषेधको तो व्यावृत्ति करता है और बन्ध को विशेषित करता है"('सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र'के पृष्ठ १३६ से उद्धृत)

(१) मुद्रित तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें 'च' नहीं है परन्तु हस्तलिखितमें है। बहुधा प्रतियोंमें उपयुक्त ही पाठहै॥श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्य०पृ०१३६में तथा भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थवृत्ति पृ०४४२में "बन्धेसमाधिकौपारिणामकौ" = बन्धे सति समगुणस्समगुणःपरिणामकोभवति।अधिकगुणोहीनं स्येति। बन्ध होनेपर यदि समगुण है तब तो समगुणका समगुणवालाही परिणाम होगा और हीनगुणका अधिक गुणवान परिणाम होगा। इस बातमें भेद/

अधिकारात् गुणशब्दः सम्बध्यते । अधिकगुणावधिकाविति

वृत्त्यनुवादः—अधिकारात्=प्रकरण(वश)से(इस सैंतीसवांसूत्रमें)गुणशब्दः=गुणशब्द सम्बध्यते=लगायागयाहै वा अनुवर्त्तन कियागयाहै अधिकगुणौ=दो अधिक(=अधिकौ) हैं वे अधिकौ=अधिक दोगुण हैं(जैसे दोगुणवाली परमाणुसे चारगुणवाली परमाणु अधिक दोगुणवाली है,तीनसे पांचगुणवाली, चारसे छहगुणवाली, पांचसे सातगुणवाली, छहसे आठ गुणवाली, आदि ऐसे और भी दो अधिकगुणवाली परमाणु कहलाती हैं ।। इति॥

१३७ कारण यह है कि दोनों आम्नायवालोंने 'गुणसाम्ये सदृशानां' सूत्रका अर्थ भिन्न भिन्न किया है। हमारी आम्नायके अनुकूल गुणोंके समान संख्यामें होनेपर न तो सदृशपरमाणुओंका बन्ध होता है और न विसदृशपरमाणुओंका इसलिये हमारे यहांके पाठमें 'सम' शब्द इस सूत्रमें नहीं है और "द्वि-अधिकादि गुणानां तु" सूत्रमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार केवल"सदृशानां'की अनुवृत्ति"गुणसाम्ये सदृशानाम्"सूत्रसे आतीहै इसलिये उन्होंनेअर्थ किया है कि 'सदृशों'के लिये दोगुण अधिककी आवश्यकता है विसदृशपरमाणुओंका बन्ध चाहैं वे समगुणधारक हों चाहै विषम गुणवाली हों अजघन्य गुणवाली परमाणुके अतिरिक्त और विसदृशोंमें सबमें सर्वप्रकारसे बंध होजाता है परन्तु हमारे यहांके सिद्धान्तके अनुकूल 'गुणसाम्ये सदृशानाम्' सूत्रसे सदृशानाम् और स्निग्धरूक्षत्वात् (=सदृशानाम् और विसदृशानाम्)अर्थात् सदृशोंकी और असदृशोंकी अनुवृत्ति "द्वि-अधिकादि गुणानांतु"में ग्रहण करके यह अर्थ किया है कि दोगुणआदिसे अधिकगुणवाली सदृशपरमाणुका और दोगुण आदिसे अधिक गुणवाली विसदृश परमाणुओंका ही बन्ध होता है, यदि दोगुण एक परमाणुमें दूसरीसे अधिक न होंगे तो बन्ध कदापि नहीं होगा जब हमारे यहां समगुणवाली परमाणुओंका बन्ध नहीं है तब 'सम' शब्द सैंतीसवां सूत्रमें नहीं लाये हैं ॥

"गुणसाम्ये सदृशानाम् न" पाठकगण आपका कुछभी विचार हो मैं तो यही कहूंगा कि इस सूत्रकी रचना विचित्र और अद्भुत है यह कैसे? यदि इस सूत्रकाअर्थ इसी क्रमसे कियाजावे जैसेकि यह है तब अर्थके संबन्धमें श्वेताम्बरआचार्योंके अनुकूल हृदयसे ध्वनि निकलतीहै यदि'सदृशानां गुणसाम्ये न' इस क्रमसे अनुवाद् कियाजावै तब दिगंबरआचार्योंके मतानुसार अर्थकी ध्वनि निकलतीहै जैसे गुणोंकी समानता या बराबरी होनेपर सदृशोंका बन्धनहीं होताहै ध्वनि आती है कि विसदृशोंका बन्ध गुणोंकी समानता होजानेपर होजाताहै यदि अर्थ कियाजावे कि सदृशोंका गुणकी समानता होनेपर बन्ध नहीं होता है तब ध्वनि निकलती है कि गुणोंकी असमानतामें सदृशोंका भी बन्ध होजाता है इसी हेतुसे पूज्यपाद स्वामीने उत्तर दिया है कि 'गुणवैषम्ये बंधप्रतिपत्त्यर्थं सदृशग्रहणं क्रियते' गुणोंकी विषमतामें बन्धके प्रगट करनेके लिये सूत्रमें'सदृशानां' लायागया है इसलिये कह सके हैं कि उमा स्वामिनः सूत्राणाम् विचित्रा हि कृतिः कृता अर्थात् उमा स्वामीके सूत्रोंकी रचना वा बनावट विचित्र और अद्भुतही है ॥

श्वेताम्बर आम्नायमें "बन्धेसमाधिकौ पारिणामिकौ"पाठ है इस कथनके समर्थनमें हम तत्त्वार्थराजवार्तिकसे इसी सूत्रके नीचे वार्तिक तीन उसकी वृत्तिके सहित उल्लेखकरतेहैं'समाधिका वित्येपरेषां पाठः'(=समाधिकौ इति अपरेषांपाठः)(=बन्ध होनेपर)सम(परिणमन)वा अधिक परिणामहोता है, ऐसे अन्यअन्यआचार्यों का पाठहै।तत्त्वार्थराज०सेवृत्ति"बन्धे समाधिकौपारिणामिका वित्यपरे सूत्रंपठंति,द्विगुणस्निग्धस्यद्विगुणरूक्षोपिपरिणामकइति"॥ =बन्धे समाधिकौ पारिणामिकौ इस प्रकार अन्य अन्य (आचार्य) सूत्रको पढ़ते हैं (अतः) "द्विगुणस्निग्धकै द्विगुण रूक्ष भी परिणामका कर्ता है" पं० पन्नालाल दूनी अध्याय ५ पर्व १०२ ॥

यह सूत्र परमाणु और स्कंध (अर्थात् पुद्गलसे) संबन्ध रखता है बन्धके प्रथम स्निग्धरूक्षगुणवाली, रूक्षगुणवाली, स्निग्धगुणवाली बंधयोग्य परमाणु पृथक् पृथक् रहती हैं इस अपेक्षासे तो अणुसे संबन्ध रखता है और जब योग्यगुणवाली परमाणुओंमें बन्ध होजाता है तब स्कन्ध होता है इस विवक्षाको लिये हुये स्कन्धसे संबन्ध रखता है, यह प्रत्यक्ष है तौभी तीन उदाहरण गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धिवृत्ति, और तत्वार्थराजवार्तिकसे यथासंख्य देतेहैं॥ "णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बन्धम्मि। संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाणं खंधाणं" ॥ पंडित टोडरमलजी अनुवादित गोम्मटसार गाथा ६१९ ॥ =स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति बन्धे। संख्येयासंख्येयानन्त प्रदेशानां स्कन्धानाम् ॥ ६१९ ॥ =संख्यातासंख्यातानंतप्रदेश स्कंधानां मध्ये स्निग्धगुणस्कंधाः रूक्षगुणस्कंधाश्च द्विगुणाधिका ते बन्धे हीनगुणस्कंधं परिणामयंति" =संख्यात असंख्यात अनंतप्रदेशोंके (स्कंधों) में स्निग्धगुणवाले स्कंध और (=च) रूक्षगुणवाले स्कंध जो दोगुण अधिक हैं वे बन्ध होनेपर हीनगुणवाले स्कंधको परिणावें हैं॥ जैसे दशसहस्र स्निग्ध वा रूक्षगुणवाले परमाणु वा स्कंधको दशसहस्र दोअंशवाला स्निग्ध वा रूक्षगुणयुक्त परमाणु वा स्कंध अपने रूप परिणमावे है॥ पं० टोडरमलजीने केवल स्कधका उदाहरण दिया है परन्तु बन्ध स्कंध स्कंध और परमाणु परमाणु तथा स्कन्ध परमाणुका भी हो सक्ता है॥

" भावान्तरापादनं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत्॥ यथा क्लिन्नोगुडोऽधिकमधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः =अन्य अवस्थाके ग्रहण करनेको परिणामकता गीले गुडके सदृश है। जैसे गीलागुड बहुत मीठे रसवाला (जानकर) गिरे हुए रेतादिकोंको अपने (मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है॥ (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति पृ० ३०४, ३०५) इससे प्रगट है कि यह सूत्र स्कधोंसे भी संबन्ध रखता है। "ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थांतरं प्रादुर्भवतीत्येकस्कंधत्वमुपपद्यते=ततः पूर्व-अवस्थाप्रच्यव पूर्वकं तार्तीयिकम् अवस्थांतरं प्रादुर्भवति इति-एक-स्कंधत्वं उपपद्यते='तातैं पूर्व अवस्थाका च्यवनपूर्वक त्रितीय अवस्थांतर प्रगट होय है। ऐसे एक स्कंधपणों उत्पन्न होय है" पं० पन्नालालजी दूनी तत्वार्थराजवार्तिक सूत्र ३७ वार्तिक २ की वृत्ति है॥ इन उदाहरणोंसे प्रगट है कि यह सूत्र स्कन्धोंसे सम्बन्ध रखता है॥ तार्तीय (स्त्री० तार्तीया) तार्तीयिक (स्त्री० = तार्तीयिका-तार्तीयीका) तृतीय तीसराके अर्थमें आते हैं (स्वार्थमें-अपनेअर्थमें ईकक प्रत्यय तार्तीयशब्दमें लगाथा है एकत्व संघात बन्ध और संयोगमें क्या अन्तर वा भेद है? (उत्तर) पृथग्भूतानामेकत्वापत्तिःसंघातः (सर्वार्थसिद्धिवृत्ति प्रथमावृत्ति पृ० २९४, द्वितीयावृत्ति पृ० १९७) पृथक्भूतानाम् (एकत्व-आपत्तिः) (संघातः) =न्यारी न्यारी वस्तुओंके एकपनाकी प्राप्ति सो संघात है। इससे स्पष्ट है कि एकत्व बन्ध और संघातमें कुछ भी भेद वा अन्तर नहीं है तीनों एकही हैं। परन्तु संयोगमें एकत्वकी आवश्यकता नहीं है केवल संबन्ध वा मिलाउ होनेपरभी चिपटे हुये होनेपर भी संयोग होजाता है जैसे किसी दरी वा कपड़ेमें बहुतसे रंगेहुये सूतादिकके तार नाना प्रकारके रंगके होते हैं और मिले हुये होनेपर भी तार भिन्न भिन्न दीखते हैं॥ इसको बन्ध संघात वा एकत्व नहीं कहसकते केवल संयोग है परन्तु दूध पानी को मिलानेपर और भले प्रकार हिलानेपर एकमेक होजानेपर बंध, संघात वा एकत्व कहते हैं॥

(क) परीणाम या परिणाम दोनों प्रकार से लिखना ठीक है। 'परि' अव्यय है कभी कभी इसका रूप 'परी' होजाता है जैसे परिहास, परीहास, परिणाम,परीणाम,कभी कभी 'पलि' जैसे पर्यंक,पल्यंक। हम अपने प्रयोजन के लिये केवल 'परिणाम' रूप लेते हैं॥ यह परिणाम, नम् (झुकना, नमस्कार करना इत्यादि अर्थोंवाली धातुमें परि और घञ् (=घ् औरञ् इत् संज्ञक होने से गिरकर केवल 'अ' रहजाता है) लगाये जाते हैं परि+नम्+अ, नम् के न की वृद्धि संज्ञा होकर, र के कारण 'न' 'ण' में पलट जाता है तब 'परिणाम' हुआ। स्वभावका पलटना; पलटना; फल; शेष; अर्थालंकार; पचन, पचनाजैसे भुक्तस्य परिणामहेतुरौदर्यः (खाये गये के पचने का कारण पेटाग्नि है) बुढ़ापा; पकना (जैसे फल का); भाव इत्यादि अर्थोंमें आता है। इस ३७ वां सूत्रके लिये हमने इसको स्वभावका पलटना, पलटना, फल, भाव इन अर्थों में अवसरानुकूल लिया है॥ इसके परिणत, परिणामिन् इत्यादि बहुतसे रूप हैं परन्तु हमने अपने प्रयोजनके लिये पारिणामिक,पारिणामिकत्व, परिणामक, परिणामकत्व, लिये हैं॥संबन्धके अर्थमें संज्ञाके आगे (ठक्) लाकर, उसको अष्टाध्यायी ७-३-५० सूत्रसे 'इक' में पलटकर आदिमें वृद्धि करदेते हैं जैसे परिणाम+ठक् (ठक् के कारण वृद्धि होती है)=पारिणाम+इक 'यस्येति च' ६-४-१४८ सूत्र (कि ईकार और तद्धित-प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक अ आ, इ, ई, का लोप हो) से 'पारिणाम' का अकार गिर कर पारिणाम् रहगया 'इक' जोड़ने से पारिणामिक'शब्द बना॥पारिणामिक='परिणमकरावनेवाला'दूनीजीकी राजवार्तिक अध्याय ५ पर्ण १०१, परिणामस्वरूप करनेवाला अर्थात् अपनेस्वरूपमें पलटावने वाला, परिणमावनेवाला, अपनेरूपमें परिणमन करनेवाला।

( ) पारिणामिकत्व अथवा पारिणामिकता-भाव अर्थ में पारिणामिक शब्द में 'त्व' 'ता' प्रत्यय जोड़ने से बनता है।

( ) परिणामकः—सर्वप्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेकन् (लघुसिद्धान्त कौमुदी-तद्धित प्रकरणमेंसूत्रसंख्या १३५०)=सम्पूर्ण कर्त्ता शब्दोंसे या विभक्तिवर्जित शब्दों से (=प्रातिपदिकेभ्यः) (शब्दोंके अपने) अपने अर्थ में कन् (=क) प्रत्यय हो अर्थात् पदरहित किसी भी शब्द के अन्तमें उसका अर्थ ज्यों का त्यों रखते हुये, क लगा सकते हैं जैसे अश्व पद = अश्व+कन् अश्वक—अश्वकः(घोड़ा) ऐसेही परिणाम शब्द से अपने अर्थमें 'कन्' प्रत्यय लगाने से बिना अर्थ के पलटाउ के 'परिणामक' बना यहां पर परिणामक शब्दके उपर्युक्त आठअर्थों मेंसे सब अथवा कोईभी अर्थ लेसकते हैं॥

( ) परिणामकः—धातुशब्दके अंतमें कर्ताके अर्थमें ण्वुल्(=अक) प्रत्यय लाते हैं जैसे बाध्+अक=बाधक रोकने वाला बना,ऐसे ही 'परिणाम' में अक जोड़ने से कर्त्ता अर्थ में (परिणाम+अक) परिणामक 'अपनेपरिणाम स्वरूप करने वाला, परिणमन करने वाला, परिणाम करावनेवाला। 'परिणाम का कर्ता' दूनी जी ने कितने ही स्थानों पर 'परिणामक' शब्दका यही अर्थ दिया है।

( ) परिणामकत्व, परिणामकता—परिणामक शब्द में भाव (होना) अर्थमें त्व–ता प्रत्यय लगानेसे परिणामकत्व और परिणामकता शब्द बनगये। परिणामकत्व-परिणामकता=पलटनेका कर्तापन, पलटनेका कर्त्तृत्व 'परिणाम का कर्तापन' दूनी जी ( ) अपरिणामकत्वात् = "अपरिणामकपणा अर्थात् (एकस्वरूप से दूसरेमें)पलटाउ न होनेसे॥अब परिणामिक, पारणामक, पारिणामक, परणाम इत्यादि लिखना अशुद्ध है। सर्वार्थ०प्रथमावृत्ति तथा द्वितीयसंस्करण और तत्वार्थराजवार्तिकमें आपादान, परिणामकत्वं, परिणामकः'परिणामकः'परिणामकः' 'अपरिणामकत्वात्' येकुछ शब्द अक्षरशः एकहैं परन्तु प्रथमावृत्तिके शुद्धाशुद्ध विवरणमें आपादान के स्थान में "उपादान"है और तीसरे शब्द 'परिणामकः' और चौथे शब्द 'परिणामकः' के स्थानोंमें क्रमसे 'पारिणामिकः' 'पारिणामकः' हैं इसपर हमको भ्रम हुआ कि यथार्थ पाठ क्या है इस पर सर्वार्थसिद्धिकी तीन प्रतियों से पाठका मिलान किया तो फल यह हुआ कि यदि हम इन प्रतियोंमें लेखकोंकी अशुद्धियां ठीक करके पढ़ें तो 'उपादान' 'पारिणामिकः' 'पारिणामिकः' शब्द पाये गये। हमारी समझमें 'आपादान' का वही अभिप्रायहै जो 'उपादान'का हैक्योंकि आपादानात्= 'देवांसे'(=देनेसे)आपादित ='ग्रहण कराया' (दूनी जी अध्याय ५ क्रम से पर्ण १०१, १०२)॥ साधारणरूपसेः-आपादान= प्राप्त कर लेना, उपादान=ग्रहण कर लेना, परन्तु अपादान का अर्थ छोड़देना है॥और पारिणामिकः, और परिणामकः का एक ही आशय है क्योंकि 'परिणाम' शब्दमें सम्बन्धके अर्थमें 'इक' प्रत्यय लगाया है तब 'पारिणामिक बना और कर्त्ताके अर्थमें'परिणाममें' ण्वुल्(=अक)प्रत्यय लगाकर'परिणामक' बना जैसाकि इनके उपर्युक्तअर्थोंसे प्रगटहै। पृ०१५०में सर्वार्थसिद्धिवृत्तिऔर तत्वार्थराजवार्तिकका पाठ भिन्न दोस्तम्भोंमें दियाहै पढ़नेसे विदितहैकि दोनोंका पाठ और अर्थभी लगभग एकसाहै॥

भावान्तरोपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ यथा क्लिन्नो गुडोऽधिकमधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः । तथाऽन्योऽप्यधिकगुणः अल्पीयस पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवति । ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते ॥ इतरथा हि शुक्लकृष्णतंतुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत ॥

(१)भाव-अन्तर-उपादानं ॥ परिणामकत्वं ॥ क्लिन्नगुडवत् = अन्य अवस्था ग्रहणकरनेको परिणामकता अर्थात् पलटाउ गीले गुड के सदृश है
यथा क्लिन्नः गुडः अधिकमधुररसः परीतानाम् = जैसा बहुत मीठे रसवाला गीला गुड गिरे हुये
रेणुआदीनाम् स्वगुण-उत्पादनात् पारिणामिकः ; तथा = रेतआदिकके अपना (मधुररस) गुणके उपजावनेसे परिणमावनेवाला होता है तैसे
अन्यः अपि अधिकगुणः अल्पीयसः पारिणामिकः = अन्य भी अधिकगुणवाला अल्पगुणवालेका अपनेरूपमें परिणमावनेवाला होता है
इति कृत्वा द्विगुण-आदि-स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुण- = ऐसें करि (वा ऐसें करके) दो गुणआदिक स्निग्धरूक्षका चार गुण
आदि-स्निग्धरूक्षः (२) परिणामकः भवति । = आदिक स्निग्ध-रूक्षपुद्गल अपने स्वरूपमें परिवर्तनकरनेवाला वा पलटनेवाला होताहै
ततः पूर्व-अवस्था-प्रच्यवन-पूर्वकम् ॥ तार्तीयिकम् ॥ = तिस(परिणामकता)से पहिलीअवस्थाका अभाव वा त्यागपूर्वक तीसरी(प्रच्यव=प्रच्यवन)
अवस्थान्तरम् ॥ प्रादुर्भवति । इति एकत्वम् ॥ उपपद्यते । = अन्य अवस्था प्रगट होती है । ऐसे एकता वा एकपना अर्थात् एकस्वरूपपना उपजताहै
इतरथा हि = औरप्रकारसे तो अर्थात् यदि दो परमाणु वा स्कंधके बन्ध होनेपर एकता न हो तो
शुक्ल-कृष्ण-तंतुवत् संयोगे सति अपि अपरिणामकत्वात् = स्वेत काले तंतुके सदृश संयोग होनेपर भी एकरूपमें नीरक्षीरके सदृशपलटाउ नहोनेसे
सर्वम् ॥ विविक्त-रूपेण ॥ अवतिष्ठेत । = समस्त पृथक् पृथक् रूपकरि ही तिष्ठैं, दीखैं ॥ (अवतिष्ठेत है नकि अवतिष्ठते)

(१)सर्वार्थसिद्धि वृत्ति की दानो आवृत्तियोंके पाठ शुद्धाशुद्धमयहैके अनुसार भावान्तरोपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत्। यथा क्लिन्नगुडोऽधिक मधुररसः परीतानां रेण्वादीनां स्वगुणोत्पादनात् पारिणामिकः॥तथान्योऽप्यधिकगुणः ॥ अल्पीयसः पारिणामिक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षः परिणामको भवति । ततः पूर्वावस्था प्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते॥इतरथा हि शुक्लकृष्णतंतुवत् संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात्सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत तत्त्वार्थराजवार्तिकका शुद्धपाठ दोचार पांचप्रतियोंका मिलानकरके लिखागयाहै भावान्तरोपादानं परिणामकत्वं क्लिन्नगुडवत् ॥ ॥यथा क्लिन्नगुडोऽति मधुररस परितानां रेण्वादीनां स्वगुणोपादानात्परिणामकः तथा न्योऽप्यधिकगुणः॥अल्पीयसः परिणामक इति कृत्वा द्विगुणादि स्निग्धरूक्षस्य चतुर्गुणादिस्निग्धरूक्षपरिणामको भवतीति,ततः पूर्वावस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयकमवस्थान्तरप्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते इतरथा हि शुक्लकृष्णतंतुवत्संयोगे सत्यप्यपरिणामकत्वात् सर्वं विविक्तरूपेणैवावतिष्ठेत

(२)सर्वार्थसिद्धिकी सातप्रतियोंमें 'परिणामकः' पाठहै एकमें 'पारिणामिकः' है हमने 'परिणामकः' लिया है। पृष्ट १२६में यद्यपि परिणामकः किंवा पारिणामिकः ॥

उक्तेन विधिना बंधे पुनः सति ज्ञानावरणादीनां कर्मणां त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादिस्थितिरुपपन्ना भवतिउत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति द्रव्यलक्षणमुक्तं पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षणप्रतिपादनार्थमाह-

॥ गुणपर्यायवद्द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

पुनः*उक्तेन[3]।विधिना[3]।बन्धे[7]।सति[7]	=बहुरि कथित रीतिकरि बन्धहोनेपरअर्थात् अन्यअधिकके एकमेकरूप होतेहुए बन्ध होनेपर तीसरी अवस्थाके उपादान करनेपर
ज्ञानावरण-आदीनाम्[6]।।।कर्मणाम्[6]।।।त्रिंशत्-	=ज्ञानावरणादिक कर्मोंकी तीस
सागरोपम-कोटी-कोट्यादि-स्थितिः[1]।।उपपन्ना[1]।।भवतिT	=कोड़ाकोड़ी आदिक सागरप्रमाण स्थिति उत्पन्न होती है
उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तम्[1]।।सत्[1]।।इति*द्रव्यलक्षणम्[1]।।।	=उत्पत्ति-नाश-स्थिरतास्वरूपसहित(=युक्त)सत् है ऐसा द्रव्यका लक्षण
उक्तम्[1]।।पुनः अपरेण[3]प्रकारेण[3]।द्रव्य-लक्षण-प्रतिपादन-अर्थम् आह	=(सूत्र ३०में)कहागयाहै अन्यप्रकारकरि द्रव्यका लक्षणजतलानेके लिये कहते हैं कि

सूत्रम्—(१)गुणपर्याय वद्द्रव्यम्(२)(३)॥ ३८ ॥ = गुणपर्यायवत्-द्रव्यम् अस्ति ॥ ३८ ॥

सूत्रार्थः—गुण-पर्यायवत्*द्रव्यम्[1]।।।अस्तिT	=गुण-पर्याय(स्वभाव-स्वरूप)वाला(=वत्)द्रव्य है,अथवा गुणवान् पर्यायवान् द्रव्यहै, गुण और पर्यायोंकरि युक्त(सहित)द्रव्य है अर्थात् गुण और पर्याय जिसके हैं

वा जिसमें हैं वही द्रव्य है। भावार्थ द्रव्यकी अनेक परिणति होनेपर भी जो द्रव्यसे भिन्न न हो द्रव्यके साथ नित्य रहै सो तो गुण है। और क्रमवर्ती होय पलटनरूप होय सो पर्याय है। द्रव्यके जितने गुण हैं वे द्रव्यसे कभी भिन्न नहीं होते हैं।। समस्त गुणोंका समूह (=समुदाय)ही द्रव्य है। द्रव्यकी अनेक पर्यायें (अवस्थायें)पलटते हुए भी गुण कभी नहीं पलटते ; द्रव्यके नित्य साथ वा अविनाभावी हैं। इसी कारण गुणोंको अन्वयी कहते हैं और पर्यायोंको व्यतिरेकी(क्योंकि पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं)

(१) गुणपर्यायवत् द्रव्यम् =गुणवत्त्वे सति पर्यायवत्त्वंद्रव्यत्वम् "(सभाष्य० पृष्ठ १४०)गुणवान् होते सन्ते जिसमें कोई न कोई पर्याय हो वह द्रव्यहै
(२)वत् =वाला,सहित,युक्त,संपन्न,संयुक्त=जैसे गुणवत् गुणवाला,गुणसहित,गुणयुक्त,गुणसंपन्न,गुणसंयुक्त(३)३८वां सूत्रमें दोबारा द्रव्यका लक्षण क्यों कहा, जब २९वां सूत्रमें सत्द्रव्यलक्षणम् कहा है ? (उत्तर)पहिले सत् लक्षण कहा सो तो शुद्ध द्रव्यका लक्षण है।सो(सत्) एकहै,सो सामान्य है, अभेदरूपहै इसको महान् द्रव्यभी कहिये। जातैं सर्ववस्तु है सो सत्ताको उलंघि नहीं वर्तै है।सर्वद्रव्य सर्वपर्याय सत्ताके विशेषणहैं जिसको ज्ञानगोचर तथा वचनगोचर कहिये सो सर्व सत्तामयी है। बहुरि द्रव्य अनेक हैं तिनका भिन्न व्यवहार करनेको यह गुणपर्याय सहितपना दूसरा लक्षण कहा, जो यह लक्षण न कहिये तो द्रव्योंके गुणपर्याय न्यारे न्यारे हैं, ते द्रव्य न ठहरै, तब सर्वथा सत्ही द्रव्य ठहरै॥चेतन अचेतन आदि द्रव्योंका लोप होय तब संसार मोक्ष आदि व्यवहारका भी लोप होय, तिसतै दूजा लक्षण का कथन युक्त है ॥

गुणाश्च पर्यायाश्च गुणपर्यायाः तेऽस्य संतीति गुणपर्यायवद्द्रव्यम्॥ अत्र मतोरुत्पत्तावुक्त एव समाधिः। कथंचित् भेदोपपत्तेरिति। के गुणाः के पर्यायाः। अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिणः पर्यायाः। उभयैरुपेतं द्रव्यमिति। उक्तं च

सर्वा० ७ वृत्त्यनुवादः—गुणाः च पर्यायाः च गुण-पर्यायाः =बहुरि(=च) गुण हैं और(=च) पर्यायें हैं, 'गुणपर्यायाः' ऐसा वाक्य (द्वन्द्वसमासमें) है अध्याय५

सिद्धि ते अस्य संति इति गुणपर्यायवत् द्रव्यम्॥ =ते (गुण-पर्याय) जिसके हैं ऐसा 'गुण-पर्यायवत् द्रव्यम्' सूत्र हुआ। सूत्र ३८

अत्र (१)मतोः उत्पत्तौ उक्तः एव समाधिः =यहां मतुप् (मत्=वत्) प्रत्ययकी उत्पत्ति (विषय)में (पूर्व) कथित वा कहा हुआ ही समाधान है

कथंचित् भेद-उपपत्तेः इति =कथंचित् भेदकी युक्ति वा साधन(=उपपत्तेः)से(मतुप् प्रत्ययबने) ऐसा है अर्थात् जिस वस्तुके (प्रकाशक शब्दके) साथ मतुप् (मत्=वत्) प्रत्यय लगाया जाता है तो कभी तो भेदपनासे एक

२४२ वस्तुको दूसरी वस्तुसे भिन्न दिखाना होता है और कथंचित् अभेद विवक्षासे पृथक् न जनावनेके लियेभी(मतुप् प्रत्यय) लाते हैं। जैसे 'दण्डवान् देवदत्त' यहांपर देवदत्त मनुष्य है सो अन्य वस्तु है और दण्ड अन्य वस्तु है, भेद विवक्षामें मतुप् (प्रत्यय) है। 'सारवान् स्तम्भ' में स्तम्भसे सार पृथक् नहीं। स्तम्भ और सार(=लोहा) अथवा वह वस्तु जिसका स्तम्भ हो पृथक् पृथक् नहीं एकही हैं तौभी मतुप् प्रत्यय अभेदपनाके अर्थमें वा एकपनाके अर्थमें लाये हैं तैसे ही द्रव्य है सो अपने 'गुणपर्यायों' से भिन्नभिन्न नहीं है'। "गुणपर्याय बिना द्रव्य नहीं" पं० सदासुखजीकृत तत्त्वार्थसूत्र(लघु)टीका पृष्ठ २४॥

के गुणाः के पर्यायाः? अन्वयिनः गुणाः =गुण क्या हैं? पर्यायें क्या हैं? अन्वयी अथवा नित्य साथ रहनेवाले गुण हैं अर्थात् जो द्रव्यसे किसी काल और किसी अवस्थामें पृथक् नहीं होते हैं वे गुण, सदैव (नित्य) जोड़रूप साथही रहते हैं। वे सर्वगुण कदापि नहीं पलटते हैं। उन गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है वे द्रव्यमें एकमेक तन्मय हैं

व्यतिरेकिणः पर्यायाः =पलटनेवाली वा भिन्न भिन्न रूपमें होनेवाली पर्यायें हैं अर्थात् द्रव्यकी अवस्थायें समय समयपर क्रमवर्ती होय पलटती रहती हैं अथवा पर्यायें हैं वे द्रव्यके विकार(=क्रमपरिणाम) हैं

उभयैः उपेतम् द्रव्यम् इति उक्तम् च =दोनों(गुणों तथा पर्यायों)करि युक्त(=उपेतं) द्रव्य है कहाभी गया है कि

(१) 'मत्' जब विशेषण है तब त्रिलिंगी होता है 'वतो' स्त्रीलिंगमें इसका रूप है। यह एक प्रत्यय है जो संज्ञाके पश्चात् 'संबन्ध' अर्थमें अर्थात् 'वाला संयुक्त, सहित, युक्त, संपन्न' इन अर्थोंका द्योतक होता है जैसे विद्यावत् (=विद्यावाला, विद्यासंयुक्त, विद्यासहित, विद्यायुक्त, विद्यासंपन्न)॥ यदि भूतकृदन्तमें जोड़ाजाय तो वर्तमान कृदन्त बनजाता है जैसे 'कृत' से कृतवत् (काम करचुकनेवाला)॥ दूसरे जब अव्यय होता है तब सदृश वा समान अर्थमें आता है १४२
जैसे रत्नवत् (रत्नके सदृश वा समान) सुवर्णवत् सोने के सदृश, सोना नहीं वरन् सोने कासा) हमको यहां द्वितीय अर्थसे प्रयोजन नहीं है अब प्रश्न यह है कि मतुप् (=मत्) के स्थानमें 'वत्' कैसे होजाता है अर्थात् 'म' का 'व' में कैसे परिवर्तन होजाता है॥ अष्टाध्यायी ८-२-९ सूत्रसे यवादिगण के बीस शब्दोंको छोड़कर यदि किसी अंगके अन्तमें, उपान्त्य(वा उपधामें) म् अ, आ, हो तो मतुप(मत्)के म् के स्थानमें व् हो॥ यहांपर 'मत्' के स्थानमें वत् होकर 'गुणपर्यायवद्द्रव्यम्' ऐसा सूत्र हुआ॥ इस अध्याय के पृष्ठ ८९,९० की टिप्पणीमें हमने वत्को केवल सदृशके अर्थमें माना है। पृष्ठ ८९के अन्तिम शब्द 'अशुद्ध है' के स्थानमें 'श्रेष्ठ नहीं है' पढ़ना चाहिये, और पृष्ठ ९०के अन्तिम वाक्य 'शुद्ध है' के स्थानमें 'श्रेष्ठ है' पढ़ना चाहिये।

गुणइदि दव्वविहाणं दव्वविकारो हि पज्जवो भणिदो । तेहि अणूणं दव्वं अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं इति एतदुक्तं भवति-द्रव्यं द्रव्यान्तराद्येन विशिष्यते स गुणः । तेन हि तद्द्रव्यं विधीयते । असति तस्मिन् द्रव्यसंकरप्रसंगः स्यात् ॥ तद्यथा-जीवः पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभिर्गुणैर्विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभिः । ततश्चाविशेषे संकरः स्यात् ॥

(१) गुणो इदि*दव्वविहाणं (गुणः इति*द्रव्यविधानम्)	=गुण ऐसा द्रव्यका विधान है अर्थात् गुणका समुदाय सो द्रव्य है
दव्वविकारो हि (२) पज्जवो भणिदो (द्रव्य-विकारः हि*पर्यायः भणितः)	=द्रव्यके विकारही(=हि वा क्रमपरिणामही पर्याय कहीजाती है अर्थात् द्रव्यका क्रमरूपसे एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थारूप होना सो पर्यायकहीजातीहै
(३) तेहि अणूणं दव्वं (तेभ्यः अन्यूनम् द्रव्यम्)	=तिन गुण तथा पर्यायों)करि सहित द्रव्य है
अजुदपसिद्धं हवे णिच्चं (अयुतप्रसिद्धं भवेत् नित्यम्)	=अयुत प्रसिद्ध अर्थात् संयोगरूप नहींहै तदात्मक स्वरूप है(और)नित्य है॥ (द्रव्य अपने विशेष लक्षणको कदापि नहीं छोड़तीहै सारांश गुणपर्यायोंकरि सहित द्रव्य है तदात्मक स्वरूप है कभी विशेप लक्षणको नहीं छोड़ती है)
इति*एतत् उक्तम् भवति, द्रव्यम्	=इस प्रकार यह कथन वा अर्थ होता है कि (एक)द्रव्य
द्रव्यान्तरात् येन विशिष्यते।	=अन्यद्रव्यसे जिसकरि विशेषित कीजातीहै अर्थात् विशेषरूप होकर भिन्न दीखतीहै
सः गुणः तेन हि*तद् द्रव्यम् विधीयते।	=वह गुण है । तिस(गुण)करिही वहद्रव्यविधान कीजाती है वा व्यवस्थित कीजाती है
असति तस्मिन् द्रव्य-संकर-प्रसंगः स्यात्।	=तिस(गुण)के न होनेपर(=असति द्रव्यके पलटने तथा 'एकता'का प्रसंग होजाय
तद्यथा-जीव-पुद्गलादिभ्यः ज्ञानादिभिः गुणैः	=जैसे जीवद्रव्य पुद्गलादिक(द्रव्यों)से ज्ञानादिक गुणोंकरि
विशिष्यते। पुद्गलादयः च*रूपादिभिः	=न्यारा दीखताहै और पुद्गलादिकरूपादि (गुणों)करि(जीवसेन्यारे जानेजातेहैं
ततः*च*अविशेषे	=और (ज्ञानादि और रूपादिक गुणोंके) विशेषनहोनेमें तो(=ततः)(एक द्रव्य दूसरेमें
संकरः स्यात्।	=पलटजायअर्थात् जो जीवद्रव्य ज्ञानादिकगुणोंकरिऔरपुद्गलद्रव्यरूपादि गुणोंकरि

(१) प्राकृतमें 'गुणो' नाकि 'गुण'गुणः' प्रथमाविभक्ति एकवचन पुल्लिंग 'रामो' शब्दके सदृश है ॥ (प्राकृत सुबन्त कौमुदी पृष्ठ १७२)
(२) हि=निश्चये, वितर्के, समावते, निश्चये च (प्राकृत व्याकरण, हृषिकेशकृत पृष्ठ १३३) यहां पर निश्चय करके ही अर्थमें है।
(३) तेहि=तेभ्यः,दकारान्तः पुल्लिंग तद् शब्दकी पंचमी विभक्ति बहुवचन है (प्राकृत सुबन्तकौमुदी पृष्ठ १८३)

ततः सामान्यापेक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणाः। पुद्गलादीनां च रूपादयः॥ तेषां विकारा विशेषात्मना भिद्यमानाः पर्यायाः ॥ घटज्ञानं पटज्ञानं क्रोधो मानो गंधो वर्णस्तीव्रो मंद इत्येवमादयः । तेभ्योऽन्यत्वं कथंचिदापद्यमानः समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् ॥ यदि हि सर्वथा समुदायोऽनर्थांतरभूत एव स्यात् सर्वाभावः स्यात् ॥

एक दूसरेसे भिन्न भिन्न न जाने जावें तो पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें पलटजाय वा एक होजाय और जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्योंमें पलटजाय और ऐसे एक द्रव्यका दूसरेद्रव्यमें पलटाव होजावे, पूर्वोक्त विशेष गुणोंके अभाव होनेपर जीव पुद्गलमें पलटजावे और पुद्गलद्रव्य पुद्गलही रहै तो एकता होवे और पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्यमें परिवर्तित होजावे और जीवद्रव्य जीवही रहै तो दोनों द्रव्योंमें एकता ठहरै।

ततः*सामान्य-अपेक्षया॥अन्वयिनः॥ज्ञान- =तहां सामान्य अपेक्षासे नित्यसाथरहनेवाले वा सदैवलाररहनेवाले(=अन्वयिनः)ज्ञान

आदयः॥जीवस्य॥गुणाः॥पुद्गल-आदीनाम्॥च* =आदिक जीवके गुण हैं और पुद्गलादिकोंके(सामान्य अपेक्षाकरि अन्वयी)

रूप-आदयः॥तेषाम्॥विकाराः॥ =रूपादिक(गुण)हैं,तिन(जीव-पुद्गलों)के विकार अर्थात् अपने अपने स्वभावको न छोड़कर एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें परिवर्तन

विशेष-आत्मना॥भिद्यमानाः॥पर्यायाः॥ ॥घटज्ञानम्॥=विशेष स्वरूपकरिके भेदरूप हुए ते पर्याय हैं (जैसे)घड़ेका ज्ञान

पटज्ञानम्॥क्रोधः॥मानः॥गन्धः॥वर्णः॥तीव्रः॥ =कपड़ेका ज्ञान,क्रोध,मान,गंध,वर्ण,तीव्र

मंदः॥इत्येवम्*आदयः॥ =मंद इत्येवम् आदि(जीव और पुद्गलोंकी पर्यायें)हैं अर्थात् घड़ेका ज्ञान कपड़ेका ज्ञान, क्रोध(रिस), अहंकार इत्यादि जीवके पर्याय हैं और गंध-रूप-तीव्र-मंद इत्यादिक पुद्गलके पर्याय हैं

तेभ्यः॥अन्यत्वम्॥कथंचित्*आपद्यमानः॥ =तिन(गुण-पर्यायों)से कथंचित् अन्यपनाको प्राप्त होता हुआ

समुदायः॥द्रव्य व्यपदेश-भाक्॥ =समुदाय द्रव्यनामका प्राप्त करनेवाला(=भाक्)है अर्थात् गुण और पर्यायें द्रव्यसे अभेद रूप हैं द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं (अर्थप्रकाशिका पृष्ठ ३४५)गुण-पर्यायोंमें और समुदायमें कथंचित् भेद माननेसे कथंचित् अभेद माननेसे द्रव्यनामकी सिद्धि होतीहै(संस्कृतसर्वार्थसिद्धि २६२) १४४

यदि*हि*सर्वथा*समुदायः॥ अनर्थान्तरभूतः॥ =यदि सर्वप्रकारसेही(=हि)समुदाय(उनगुणपर्यायोंसे)अभेदरूप(अनर्थान्तरभूत)

एव*स्यात्॥सर्व-अभावः॥स्यात्॥ =ही हो तो सर्वका अभाव होजाय अर्थात् यदि समुदायमें और गुणपर्याय (समुदायी)में अनन्यपना सर्वप्रकार से हो तो समस्तकी अविद्यमानता ठहरै वा किसीका भी अस्तित्व न ठहरै

तद्यथा-परस्परविलक्षणानां समुदाये सति एकानर्थान्तरभावात् समुदायस्यसर्वाभावःपरस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् ॥ यदिदं रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । ततः समुदायोऽनर्थान्तरभूतः॥ यश्च रसादिभ्योऽर्थान्तरभूताद्रूपादनर्थान्तरभूतः समुदायः स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवेत् । ततश्च रूपमात्रं

तद्यथा*परस्पर-विलक्षणानाम्[६/३]	=जैसे(=तद्यथा)(किसीद्रव्य के) परस्पर भिन्न भिन्न लक्षणवाले ([1]गुणपर्याय)निका
समुदाये[७/१] सति[७/१] समुदायस्य[६/१] एकानर्थान्तर-भावात्[५/१]	=समुदाय होनेपर (=सति)(उस)समुदायके(गुण-पर्यायोंसे)अनर्थान्तर-=भाव (मानने)सेअथवा अभेदपना मानने से (अर्थात् उस समुदायको उसके भिन्न भिन्न गुणपर्यायोंसे कदाचित् भिन्न पदार्थ न माननेसे)
सर्व-अभावः[१/१]	=सर्वका अभाव होता है अथवा किसी भी पदार्थका अस्तित्व नहीं ठहरता है क्योंकि
परस्परतः*अर्थान्तरभूतत्वात्[५/१] ;यत्[१/१] इदम्[१/१]	=(वे गुण-पर्याय)आपस में भिन्नभिन्न रूप हैं(दृष्टान्त देतेहैं)जो(पुद्गल का)यह
रूपम्[१/१] तस्मात्[५/१] अर्थान्तरभूताः[१/३] रस-आदयः[१/३]	=रूप(गुण)है तिस (रूपगुण)से(उसी पुद्गलद्रव्य के)रसादिक भिन्न भिन्न गुण हैं
ततः* समुदायः[१/१] अर्थान्तरभूतः[१/१] ;यः[१/१] च*	=तिस (रूपगुण) से समुदाय अभेदरूप है और जो(=यः अर्थात् वह समुदाय)
रसादिभ्यः[५/३] अर्थान्तरभूतात्[५/१] रूपात्[५/१]	=रसादिक से भेदरूप होने से वा भिन्न होने से, रूपसे
अनर्थान्तरभूतः[१/१] समुदायः[१/१] सः[१/१] कथं*रसादिभ्यः[५/३]	=समुदाय अभेदरूपहुआ सो (समुदाय) कैसे रसादिकसे
अर्थान्तरभूतः[१/१] न*भवेत् । ततः*च*रूपमात्रम्[१/१]	=पृथक् नहोयअर्थात् समुदाय रसादिकसे भिन्नहोई होय औरतिस(हेतु)से(=ततः)रूपमात्र

(१) गुणके विकारको पर्याय कहते हैं

- व्यंजन पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्त्व गुणका विकार
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् बिना अन्य निमित्तके जो व्यंजन-पर्याय हो जैसे जीवकी सिद्धपर्याय
  - विभाव व्यंजन पर्याय अर्थात् दूसरे निमित्तसे जो व्यंजन पर्याय हो जैसे जीवकी मनुष्य तिर्यंच, नारक, देव पर्याय
- अर्थ पर्याय अर्थात् प्रदेशवत्त्व गुणके अतिरिक्त अन्य सब गुणोंके विकार
  - स्वभाव अर्थपर्याय अर्थात् बिना दूसरे निमित्तके जो अर्थ पर्याय हो जैसे जीवका केवल ज्ञान
  - विभाव अर्थपर्याय अर्थात् पर निमित्त से जो अर्थ-पर्याय हो जैसे जीवके राग, द्वेष, क्रोध, मानादिक

जीव पुद्गल द्रव्योंके अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय होती हैं, धर्म अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके अगुरु लघुगुणमें षड्गुणी हानि वृद्धिरूप अर्थ पर्यायही होतीहै

समुदायः प्रसक्तः॥ नचैकं रूपंसमुदायो भवितुमर्हति। ततःसमुदायाभावः।समुदायाभावच्च तदनर्थान्तर-भूतानां समुदायिनामप्यभाव इति सर्वाभावः।एवंरसादिष्वपि योज्यम्॥ तस्मात्समुदायमिच्छताकथंचिद्

अर्थात् रसादिक से समुदाय भिन्नहोनेके कारणसे

समुदायः।प्रसक्तः।न*च* =समुदाय प्राप्तहुआ ॥ और न

एकम्।रूपम्।समुदायः।भवितुम्।अर्हति। =एक रूप(मात्र) समुदाय हो सकता है, वा होनेके योग्य है अर्थात् समुदायतो बहुतोंको कहतेहै और रूपगुण एकही हुवा इसलिये केवल रूपको समुदाय नहींकहसकते

ततः*समुदाय-अभावः।समुदाय-अभावात्।च* =तिस कारणसे समुदायका अभाव हुआ और (=च)समुदायकी अविद्यमानतासे

तद्-अनर्थान्तरभूतानाम्।समुदायिनाम्।अपि* =उस(समुदाय)के अभेदरूप समुदायियोंका भी (अर्थात् वह जिस में समुदाय रहेउनकाभी)

अभावः।इति*सर्व-अभावः। =अभाव हुआ इस प्रकार समस्त का अभाव हुआ (कुछभी न रहा)

एवम*रसादिषु।अपि*योज्यम्।॥ =इस प्रकार(द्रव्य के गुण)रसादिकमें भी लगाना चाहिये भावार्थ जैसे यह रस गुण है तिस(रस) से भिन्न भिन्न रूप-गंध-स्पर्श आदिक हैं और रस गुण को समुदाय से अभेदरूप माना है। इस लिये समुदाय रूप-गंध-स्पर्श आदिकमें न्यारा न्यारा (भेदरूप) हुआ,तब एकरस(मात्र गुण) समुदाय ठहरा सो समुदाय नहीं हो सक्ता क्यों कि समुदाय तो बहुतोंका होता है। रसतो एकही है। उसको समुदाय क्यों कहना चाहिये इसप्रकार समुदायका अभाव आया और समुदाय (अपने) समुदायियों से भिन्न नहीं हो सक्ते हैं। तिन समुदायियोंका भी अभाव हुआ इस प्रकार समुदाय समुदायी दोनों के अभाव होने से समस्तका अभाव हुआ॥

तस्मात्।समुदायम्।(१)इच्छता।२ कथंचित्* =तिससे समुदायकी इच्छा करनेवालेकरि (गुण-पर्यायोंके समुदायरूपद्रव्यको) कथंचित्

(१) इच्छत् यह शब्द हलन्त पुल्लिङ्ग है इसकी तृतीया विभक्ति त् में आ लगाने से बनती है॥ जैसे गच्छत्"को गच्छता, तैसे 'इच्छत्'को'इच्छता'॥

(२) "जैसे मृत्तिका नाम द्रव्य है। तिसके घटादिक पर्याय हैं॥ सो मृत्तिकाके अर घटादिकके कथंचित् संज्ञा वा नामकरि भेद है। वाकू मृत्तिका कहिये॥ वाकू घट कहिये। अर संख्या करि भेद है मृत्तिका का पिंड एक था ताके घट पांच बणिगये तातैं संख्या करि कभी भेद है। बहुरि मृत्तिका का लक्षण तो पिंडादिक रूप अन्य है। अर घटका लक्षण कुंब ग्रीवा आकारादिपणा भिन्न है बहुरि मृत्तिकाका प्रयोजन तो लेपन हस्त धोवनादिक अन्य है और घट का जल धारणादि प्रयोजन अन्य है।ऐसे द्रव्यके और पर्यायोंके संज्ञा, संख्या, लक्षण प्रयोजनादि करि कथंचित् भेद होते भी वस्तुपणा करि भेद नहीं है वही एक मृत्ति का है॥ देखो अर्थप्रकाशिका॥

ऽर्थान्तरभाव एषितव्यः ॥ उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसक्ते अनुक्तद्रव्यसंसूचनार्थमिदमाह—

॥ कालश्च ॥ ३९ ॥

किम् ? द्रव्यमिति वाक्यशेषः ॥ कुतः? । तल्लक्षणोपेतत्वात् ॥ द्विविधं लक्षणमुक्तम् । "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" "गुणपर्यायवद्द्रव्यमिति" च ॥ तदुभयं लक्षणं कालस्य विद्यते । तद्यथा—ध्रौव्यं तावत्कालस्य स्वप्रत्ययं स्वभावव्यवस्थानात् ॥

अर्थान्तर— =(संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिककी अपेक्षा)न्यारा(=अर्थान्तर)
भावः एषितव्यः उक्तानाम् द्रव्याणाम् लक्षण- =पदार्थ (=भाव) मानना योग्य है । कथित द्रव्योंके लक्षण
निर्देशात् तद्-विषयः एव *द्रव्य अध्यवसाये =वर्णन करनेसे पहिले कहेहुये (=तद्) विषय ही (पांच)द्रव्योंके निश्चयका
प्रसक्ते अनुक्त-द्रव्य-संसूचन-अर्थम् इदम् आह । =प्रसंग होनेपर अकथित वा अगणित द्रव्यके सूचनाके लिये (अग्रिमसूत्रमें) कहतेहैं कि

[१]सूत्रम्— कालश्च ॥३९॥ =कालः च (द्रव्यम्) अस्ति ॥३९॥

सूत्रार्थः—कालः च *द्रव्यम् अस्ति । =काल भी द्रव्य है
वृत्त्यनुवादः—किम् ? द्रव्यम् इति *वाक्य-शेषः =क्या (कहा)। 'द्रव्यम्' ऐसा(शब्दइस सूत्रमें)वाक्यशेष है अर्थात् वह वाक्य जिस विना सूत्र अपूर्ण वा अधूरा रहता है वह (वाक्य इस सूत्रमें) मिला लेना चाहिये ॥
कुतः *? तत्(=तद्)लक्षण-उपेतत्वात् ॥ =(वाक्य शेष) क्योंकर है क्योंकि उस (द्रव्य)के लक्षण (कालविषैं) प्राप्त है ॥
द्विविधम् लक्षणम् उक्तम् उत्पाद-व्यय- =दो प्रकार (द्रव्यका) लक्षण कहागया, उत्पत्ति-नाश-
ध्रौव्य-युक्तं सत् गुण-पर्यायवत् *द्रव्यम् इतिच=स्थिरता युक्त सत् है । और(=च) गुणवान्-पर्यायवान् द्रव्य है ॥
तद्-उभयं लक्षणं कालस्य विद्यते तद्यथा *ध्रौव्यं =(ऊपर सूत्रोंमें कहे हुये)सो दोनों लक्षण कालके विद्यमान हैं जैसे स्थिर रहना ।
तावत्कालस्य स्व-प्रत्ययम् स्वभाव-व्यवस्थानात् =तो(तावत् *)कालके स्वभावकरि व्यवस्थित होने (केनिमित्त)से स्वकारणकृत है अर्थात्

(१) हमारी आम्नायमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एक है। श्वेताम्बर आम्नायके 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थ' वृत्तिमें "कालश्चेत्येके" सूत्र है। कालः च इति एके =काल भी (=च) (द्रव्य) है ऐसा केइक के मत में है अर्थात् केई आचार्य कहतेहैं कि काल भी द्रव्य है। इस सूत्रके पाठसे जो श्वेताम्बरआम्नायमें है और उनके यहांके बियालीसवां, तेतालीसवां और चवालीसवां सूत्रोंसे जो 'सभाष्यतत्त्वा-

सर्वार्थ सिद्धि १४८

व्ययोदयौ परप्रत्ययौ । अगुरुलघुगुणवृद्धिहान्यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च ॥ तथा गुणा अपि कालस्य साधारणासाधारणरूपाः सन्ति ॥ तत्रासाधारणो वर्तनाहेतुत्वं, साधारणाश्चाचेतनत्वामूर्तत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वादयः ॥ (१) पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्याः॥तस्माद्द्विप्रकारलक्षणोपेतत्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्वं सिद्धम् ॥ तस्यास्तित्वलिङ्गं धर्मादिवद्व्याख्यातं,वर्तनालक्षणः काल इति,

लोकाकाशके एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणु जो अमूर्त-अचेतन-निष्क्रिय, स्पर्श-रस-गंध वर्ण गुण रहित और जो मिलनेकी शक्ति रहित(=अकाय)है रत्नकी राशिके सदृश स्वभावसे ही स्थिरता लियेहुये तिष्ठीहुई है ॥

व्यय-उदयौ परप्रत्ययौ ।	=व्यय-उत्पाद (पर द्रव्यके परणमनिकी अपेक्षा) पर निमित्त) कृत हैं ।
अगुरुलघुगुणवृद्धिहानिअपेक्षया च*स्वप्रत्ययौ ।	=और (=च)अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिकी अपेक्षाकरि स्व कारणकृत है ॥
तथा*गुणाः अपि * कालस्य साधारण-	=और गुण भी काल के साधारण
असाधारणरूपाः सन्ति । ॥तत्र*असाधारणः	=और साधारण रूप हैं तहां कालका) असाधारण (गुण)
वर्तना –	=वर्तना =पदार्थोंके पर्यायोंके पूराकरनेमें वा द्रव्योंके परणतिमें बाह्य सहकारिता।
हेतुत्वम् ,साधारणाः च*अचेतनत्व-अमूर्तत्व-	=हेतुपना और (=च साधारण (गुण)अचेतनपना, अमूर्तपना,
सूक्ष्मत्व-अगुरुलघुत्व-आदयः पर्यायः च * व्यय-	=सूक्ष्मपना, अगुरुलघुपना, आदिकहैं बहुरि पर्यायें व्यय,
उत्पाद-लक्षणाः योज्याः	=उत्पाद लक्षणरूप जोड़ीली जांय अर्थात् उत्पादरूप और व्ययरूप पर्यायें होती हैंही ॥
तस्मात् द्वि-प्रकार-	=तिससे दो प्रकारके (उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् और गुण पर्यायवत् द्रव्यम् ऐसे)
लक्षण-उपेतत्वात् ॥आकाश-आदिवत्*कालस्य	=लक्षण युक्त पनासे आकाशादिकके सदृश कालके
द्रव्यत्वं सिद्धं ॥,तस्य अस्तित्व-लिङ्गं ॥धर्मादि-वत्	=द्रव्यता सिद्ध है। तिस काल की विद्यमानता का चिन्ह धर्मादिक द्रव्योंके समान
व्याख्यातम् ॥वर्तना-लक्षणः कालः इति *,	=वर्णन किया गया था कि वर्तना लक्षणवाला काल है ।

श्वेताम्बर सूत्रमें तथा "भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका"में दिये हैं (येतीन सूत्र हमारे यहां नहीं हैं) जिन सूत्रोंका कथन हम इस अध्यायके अन्तमें विशेषरूपसे करेंगे उनसे प्रगट है कि उनके यहां 'काल' को द्रव्य नहीं माना है देखो इस अध्यायके पृष्ठ १५६, १६० ॥

(१) द्रव्य गुण,पर्याय तीन कहेगये और नय द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो हैं,गुणार्थिकनय तीसरा क्यों नहीं कहागया ? (उत्तर)"जो पर्याय दोप्रकार हैं एक सहवर्ती दूसरी क्रमवर्ती तहां सहवर्तीतो गुण है,सो सहवर्ती पर्यायमें गुण जाणलेणें तातें गुणार्थिकनयभिन्न नहीं॥ गुण पर्यायवान् ही द्रव्यका निर्दोषलक्षण है॥

अध्याय सूत्र ३ १४८

किमर्थमयं कालः पृथगुच्यते? । यत्रैव धर्मादय उक्तास्तत्रैवायमपि वक्तव्यः । अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गला इति॥नैवं शंक्यम् ।तत्रोपदेशे सति कायत्वमस्य स्यात् । नेष्यते च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् ॥ धर्मादीनां तावन्मुख्यप्रदेशप्रचय उक्तः असंख्येयाः प्रदेशा इत्येवमादिना ॥ अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरप्रज्ञापननयापेक्षयोपचारकल्पनयाप्रदेशप्रचय उक्तः ।

किम्[१/६] अर्थम्[१/१] अयम्[१/६] कालः[१/६] पृथक् * उच्यते[T] ।	= प्रश्न) किसलिये यहकाल न्यारा स्थानमें) कहागया है ।
यत्र * एव * धर्म-आदयः[१/३] उक्ताः[१/३] तत्र * एव *	=जहां ही धर्मादिक (द्रव्य) कहेगये थे तहां ही
अयम्[१/१] अपि * वक्तव्यः[१/१] ;अजीवकायाः[१/३] धर्म-	=यह (काल) भी कहाजाना योग्य था । 'अजीवकाया-धर्म-
अधर्म आकाश-काल-पुद्गलाः[१/३] इति * एवम् *	=अधर्म-आकाश-काल-पुद्गलाः' इस प्रकार (इसअध्यायका प्रथम सूत्र) होता तो (उत्तर) ऐसे
न * शंक्यम्[१/१] ;तत्र * उपदेशे[७/१] सति[७/१]	=संशय वा वितर्क नहीं होनी चाहिये, तहां (इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें) उपदेश होनेपर
कायत्वम्[१/१] अस्य[६/१] स्यात्[T] ।	=कायपना अर्थात् बहुत प्रदेशों का मिलनरूप शक्तिपना) इस (काल) के होजाता
च * मुख्य-उपचार-प्रदेश-	=और मुख्यपना तथा उपचारसे प्रदेशोंकी
प्रचय-कल्पना अभावात्[५/१] न * इष्यते[T]	=समूह कल्पनाके अभावसे (कालके कायपना) नहीं देखा गया वा जाना गयाहै ॥
धर्मादीनाम्[६/३] तावत् * मुख्य-प्रदेश-प्रचयः[१/१]	=धर्मादिक (द्रव्यों) के तो मुख्य प्रदेशोंका प्रचय
असंख्येयाः[१/३] प्रदेशाः[१/३] इत्येवम् * आदिना[३/१] उक्तः[१/१] ॥	=असंख्येयाः प्रदेशाः इत्येवं आदि (देखो इस अध्यायके सूत्र ८,९,१०) सूत्रोंकरि कहागया
अणोः[६/१] अपि * एक-प्रदेशस्य[६/१] पूर्व-उत्तर-प्रज्ञापन-	=अणु भी (=अपि) एक प्रदेशवालाहै (देखो सूत्र ११) पूर्व उत्तर भावजतावनेवाली=प्रज्ञापन
नय-अपेक्षया[३/१] उपचार-कल्पनया[३/१]	=नयके अपेक्षासे उपचार वा कल्पनाकरि अर्थात् पूर्व भाव यह कि पृथक् पृथक् अणु हैं उत्तर भाव यह कि तौभी उनमें भविष्यत् कालमें मिलन शक्ति है इन दोनों भावोंकी प्रकाशक वा जतावने वाली नयकी अपेक्षा करि, उपचार वा कल्पना से
प्रदेश-प्रचयः[१/१] उक्तः[१/१]	=प्रदेश समूहवाली कहीजाती है भावार्थ परमाणु (संघात से) स्कन्धरूप होजाती है । जिससे प्रदेशप्रचय कही गई है ।

कालस्य पुनर्द्वेधाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् ॥ अपि च तत्र पाठे निष्क्रियाणि चेत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते इतरेषां जीवपुद्गलादीनां सक्रियत्वप्राप्तिवत्कालस्यापि सक्रियत्वं स्यात् ॥ अथाकाशात्प्राकाल उद्दिश्येत । तन्न । आ आकाशादेकद्रव्याणीति,

कालस्य पुनः * द्वेधा * अपि * प्रदेश-प्रचय- =बहुरि कालके दोनों प्रकार (मुख्यपनासे तथा उपचारपनासे भी प्रदेश समूहकी
कल्पना न * अस्ति इति * अकायत्वम् ; * अपि * च * तत्र =कल्पना नहीं है । इस प्रकार (काल द्रव्य के)अकायपना है । बहुरि तहां भी
(इस अध्यायके प्रथम सूत्रमें भी अजीवकाया धर्माधर्माकाशकालपुद्गलाःऐसे)
पाठे निष्क्रियाणि च * इति * अत्र * =पठनमें भी (काल कें कायपना ठहरनेके उपरान्त) " निष्क्रियाणि च " यहां
इसी अध्याय के (इस सातवां सूत्र में)
धर्मादीनाम् आकाश- =धर्मादिक द्रव्यों से आकाश
अन्तानाम् निष्क्रियत्वे प्रतिपादिते =पर्यन्तनिकें (अर्थात् धर्म-अधर्म-आकाश-के)हलनचलनक्रियासेरहितपनाकेकथनकरनेमें
इतरेषाम् जीवपुद्गलादीनाम् सक्रियत्व-प्राप्तिवत् * =अन्यशेष जीव पुद्गल (द्रव्य)निके क्रिया सहित पनाकी प्राप्तिके समान
कालस्य अपि * सक्रियत्वम् स्यात् =कालकेंभी सक्रियपना होजाता(परन्तुकालनिष्क्रिय है ही) ॥
(१ अथ * आकाशात् प्राक् * =यदि (अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः सूत्र के)आकाश(शब्द)के पहिले
कालः उद्दिश्येत =काल उपदेश कियागया होता तो अर्थात् इस का प्रथम सूत्र अजीवकाया धर्माधर्मा-
काशपुद्गलाःके स्थानमें-अजीवकाया धर्माधर्मकालाकाशपुद्गलाः ऐसाकहते तो?
तत् न * आ * आकाशात् =(उत्तर)सोनहीं क्योंकि छठा सूत्रकि(इसअध्यायकेप्रथमसूत्रके)आकाश(शब्द)पर्यंत(=आ)
एकद्रव्याणि इति * =एक एक द्रव्य हैं अर्थात्-धर्म-अधर्म-आकाश एक एक द्रव्यहैं ऐसे

(१) अथ शब्दके सात अर्थोंसे अधिकहोने पर भी यहां 'यदि' के अर्थ में है (देखो वैद्य संस्कृतांगल कोश पृष्ठ १२) (२) किसी किसी हस्तलिखित प्रतिमें 'उद्दिश्यते' पाठ है हमारी समझ में 'उद्दिश्येत' शब्द श्रेष्ठ है क्योंकि 'दिश्' तुदादि छठवां गणके धातुमें 'उद्' अव्यय जो क्रिया के साथ आनेपर उपसर्ग कहलाता है जोड़ने से 'उद्दिश्' बनता है इस में कर्मणि प्रधान का य चिन्ह जोडकरि 'उद्दिश्य' बना इससे 'ते' अन्य पुरुष एक वचन आत्मने पदी वर्तमान कालका चिन्ह लगाने से 'उद्दिश्यते' उपदेश किया गया है यह हुआ, 'ईत' प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) एक वचन. आत्मने पदी, विधिलिङ् क्रियाका 'उद्दिश्य' शब्दमें लगाने से उद्दिश्य+ईत=उद्दिश्येत बना उद्दिश्येत=उपदेश किया गया होता इसी अर्थमें यहांपर है अर्थात् यदि काल प्रथम सूत्रके अधर्म और आकाश के मध्यमें उपदेश किया गया होता तो एकद्रव्यत्व कालके होता परन्तु कालके असंख्याते अणु हैं ॥

एकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पृथगिह कालोद्देशः क्रियते॥ अनेकद्रव्यत्वेसति किमस्य प्रमाणं? । लोकाकाशस्य यावन्तः प्रदेशाः

एकद्रव्यत्वम् ।।। अस्य स्यात्	=(यदि अधर्म और आकाश के मध्य में काल होता तो) एक द्रव्यपना इस (काल) के भी होजाता
तस्मात् ।।। पृथक् *इह *काल-उद्देशः क्रियते	=तिस (कारण) से न्यारा इस स्थानमें (=इह) कालका कथन कियागया है ॥
अनेकद्रव्यत्वे ।। सति ।।। किम् ।।। अस्य प्रमाणम् ।।।	=अनेक द्रव्यपना होनेमें (=सति) इस (काल) का क्या प्रमाण है ? अर्थात् काल को अनेक द्रव्य कहा है सो इसका क्या प्रमाण है ॥
लोक-आकाशस्य यावन्तः प्रदेशाः	=लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं ।

(१) पृथक् ही यदि पूर्वोक्तकारणोंसे प्रथम सूत्रसे कहनाथा तो इतने अन्तरसे क्यों कहा? इस अध्यायका तीसरा सूत्र ऐसा रचनेकि "कालोजीवाश्च वा जीवाः कालश्च इन दोनों विधिमें एक 'च' कम भी होजाता है क्योंकि जीवाश्च तीसरा और कालश्च उनतालीसवां सूत्रोंमें दो चकारहैं यदि तीसरा सूत्र 'जीवाश्च' ही रचना था तो कालोऽपि इसको इस 'जीवाश्च' तीसरे सूत्रकी वार्तिक मान लेते अथवा 'जीवाश्च' सूत्रके पश्चात् 'कालोऽपि' ऐसा भिन्न सूत्र करते तो चार सूत्रों में "द्रव्यव्यपदेशप्रकरण" भी समाप्त होजाता क्योंकि प्रथम सूत्रमें चार द्रव्य कहे दूसरे सूत्रमें धर्म-अधर्म-आकाश-पुद्गलकी संज्ञा स्थापित की तीसरे में जीवों को भी द्रव्य नाम दिया ॥ चौथेमें वा 'जीवाश्च' ही सूत्रमें मिलाकर काल कहदेना योग्य था कि द्रव्य नामा विषय चार वा तीन सूत्रोंमें समाप्ति होजाता॥ इन बातोंके उपरान्त चौथे, छठवें, और सातवें (अर्थात् नित्यावस्थितान्यरूपाणि ४॥ आआकाशादेक द्रव्याणि ॥ ६॥ निष्क्रियाणि च ॥७॥) सूत्रोंके अर्थ करनेमें कि काल द्रव्य सहित नित्य हैं अवस्थित हैं अरूपी हैं धर्म अधर्म-आकाश ये तीन एक एक द्रव्य हैं और जीव पुद्गल-काल अनेक द्रव्य हैं । धर्म अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं काल भी निष्क्रिय है खैंचातानी न करनी पड़ती और सुगमतासे (काल को जीव के समीप द्रव्य कहते तो) इन सूत्रों के अर्थ हो जाते ॥ सातवां सूत्र "निष्क्रियाणि च" का अर्थ मेरी समझ में चकारको समुच्चय अर्थमें लेनेसे यह अर्थ हो सका है कि धर्म-अधर्म आकाश निष्क्रिय हैं चकार से काल भी (=च) (निष्क्रिय है)॥ कुछ वाक्य ज्यों के त्यों देतेहैं जो ३,४,६,७,२२,वें सूत्रोंके अर्थ करनेमें पं० जयचन्द्रायजी ने 'सर्वार्थसिद्धि वचनिका में, पं० सदासुखजीने 'अर्थप्रकाशिका' में तथा 'तत्त्वार्थसूत्र लघुटीका' में "काल" को द्रव्य ३९ वां सूत्र के अनुकूल मानकर अर्थ किया है (क) "जीव हैं ते भी द्रव्यहैं ऐसे ए आगे कहेंगे जो काल द्रव्यको ताकरि सहित छहद्रव्यहैं। धर्म-अधर्म-आकाश, जीव, पुद्गल काल इन छहहुनि के द्रव्य नाम कहिये हैं ॥ जीवाश्च ॥३॥ के अर्थमें ये वाक्य हैं पृ० ४०८ (मुद्रित) (ख) तातैं अवस्थित कहे धर्मादिक छह द्रव्य हैं ॥ पृष्ठ ४११ (नित्यावस्थितान्यरूपाणि इस सूत्र के अर्थ में) यह वाक्य है (ग) "बहुरि आगे कहियेगा काल द्रव्य सो भी क्रिया रहित है" यह वाक्य "निष्क्रियाणि च" के अर्थमें पृष्ठ ४१६ परवचनिकामेंहै (घ) "आगे कहेंगे जो काल ए पांचों अजीव द्रव्यहैं" ॥ "अर यहां कहाजीव द्रव्यकालकरि सहित ए छह द्रव्य जानने" ये वाक्य जीवाश्च सूत्रके अर्थमें कहे हैं अर्थप्रकाशिका पृ० १८७ (ङ) "ए धर्मादिक द्रव्यहैं ते अपनी छहकी संख्या कुंनाहींछोडे हैं पांच नहीं होय सात नहीं होय तातैं अवस्थित हैं" ॥ "अर काल कैं एक प्रदेशीपणा है सो अपने प्रदेशनिकी संख्याको नहीं छोडे है तातैं अवस्थित है" ये वाक्य 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इस चौथे, सूत्र के अर्थ में आये हैं (देखो अर्थ प्रकाशिका पृ-२८८) (च) "धर्म अधर्म आकाश इन तीन द्रव्यनि को एक एक कहने तैं ही जीव, पुद्गल काल इन तीन द्रव्यनि कै अनेक पना आया 'काल द्रव्य असंख्यातहै"। ये वाक्य छठवां सूत्र के अर्थमें है, देखो

तावन्तः कालाणवो निष्क्रिया एकैकाकाशप्रदेशे एकैकवृत्त्या लोकं व्याप्य व्यवस्थिताः ॥ उक्तं च–
लोगागासपदेसे एक्केक्के जे

तावन्तः1 काल-अणवः1 निष्क्रियाः1 एकैक-आकाश- =तितनेकालकेअणु हलनचलनरूपक्रियारहित एकएक (लोक)आकाशके
प्रदेशे7 एकैक वृत्त्या3 लोकं2 व्याप्य + व्यवस्थिताः1 उक्तम्1 च* =प्रदेशमें एकएक स्थितिकरि लोकको व्याप्त करि तिष्ठेहैं। कहाभीजाताहैकि
लोगागास-पदेसे7 एक्केक्के7 जे1 (=लोकाकाश-प्रदेशे7 एकैकस्मिन्7 ये1)=लोकाकाशके प्रदेश एक एक में जो

(अर्थप्रकाशिका पृ-२८९)(छ) "धर्म-अधर्म आकाश तथा आगैं कहेंगे काल द्रव्य एच्यारो ही निष्क्रिय हैं' यह ७वां सूत्रके अर्थ में है पृ-२९०(ज)"वर्त्तना परिमाण क्रिया परत्व अपरत्व ए काल द्रव्यकृत उपकारहैं"॥"सब द्रव्यनिकै वर्तावनेवाला कालद्रव्यहै,यह वर्तनाहैसो कालद्रव्यका अस्तित्व जनावैहै"॥ (अर्थ प्रकाशिका पृ० ३०८) ॥ "द्रव्यनिका पर्याय वर्तै है ताका वर्तावने हारा काल द्रव्य है" ॥ "कालाणु द्रव्य है" ये सर्व ही वाक्य २२ वां सूत्र वर्तना इत्यादि के अर्थ में कहे हैं ॥ (यदि जीवाश्च के समीप काल द्रव्य कहते तो यह लेखा तानी अर्थ में क्यों करने होती ॥ क्यों कि अब तक, आचार्य काल द्रव्य को न उपदेशें तबतक टीका कारोंको उसको काल द्रव्य के नाम से पुकारने का क्या अधिकार है)(झ) "जीव, धर्म,अधर्म, आकाश काल ये पांच द्रव्य, नित्य कहिये अविनाशी हैं" चौथे सूत्र का अर्थ किया है: "छह द्रव्यमें पुद्गल द्रव्यरूपी है"॥यह 'रूपिणः पुद्गलाः'के अर्थ में है(द्रव्य तो पांच ही अब तक कहे छठवां ये कहां से लाये। 'तिस वर्त्तनाको बाह्यनिमित्त काल द्रव्य है' ॥ 'समस्त काल द्रव्य का उपकार है' में दो वाक्य वर्तना-परिणाम इत्यादि बाईसवां सूत्र के अर्थ में है ॥ तत्त्वार्थसूत्र लघु टीका सदासुखकृत पृष्ठ२१,२२,। अब पुनः वोही प्रश्नहै कि इन सर्वकठिनाइयों और उलझनों को सहन करते हुए उमास्वामी ने इस सूत्र को क्यों इतने अन्तर से पठन किया, इस अनुवादक की अल्प बुद्धि के अनुसार यह विशेष कारण जान पड़ता है कि आचार्यों में परस्पर इस बात पर मत भेद था कि कितने ही काल को द्रव्य मानते थे और कितनेही इसको द्रव्य नहीं मानते थे इसी लिये तत्त्वार्थ सूत्रके कर्त्ताने द्रव्यव्यपदेश प्रकरण को छोड़ कर अर्थात् जीवाश्च के समीप इस सूत्र को न कह करि २२ वां सूत्र में कालका उपकार और द्रव्यों के सदृश बताया, पश्चात् २९वां सूत्रमें द्रव्य का लक्षण सत् कहा और'गुणपर्ययवत् द्रव्यम्(वा गुणपर्यायवद्द्रव्यम्)"अड़तीसवां सूत्रमें विशेष रूपसे द्रव्य का लक्षण कहा जब द्रव्यके सर्व प्रकारके लक्षण स्थापित करलिये तत्पश्चात् "कालश्च" यह सूत्र कहा और साधारण असाधारण द्रव्य के सर्व लक्षण कालमें घटित कियेकि अपना मत कि काल भी द्रव्य है, भले प्रकार से पुष्ट होजावै ॥ कालमें, द्रव्य लक्षणोंके सम्बन्धमें देखो सर्वार्थ सिद्धि संस्कृत वृत्ति पृष्ठ ३०७ पंक्ति ११-१२ और पृष्ठ ३०८ पंक्ति १-६ तक इसका अनुवाद पूर्व में करदिया है। (ञ) इस प्रश्न के पूर्वोक्त उत्तर को पुष्ट करने के लिये एक प्रमाण और देते हैं ॥ वह यह है कि श्वेताम्बर आम्नाय के 'सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र' में और 'भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीका' में इस सूत्र को "कालश्चेत्येके" ऐसे दिया है, (=अर्थात् कालः च इति एके)। भाष्यम्: एकेत्वाचार्या व्याचक्षते कालोऽपि द्रव्यमिति =कोई एक आचार्य ऐसा कहते हैं कि काल भी द्रव्य है ॥ इन कारणों से ज्ञातहै कि आचार्यों में काल के सम्बन्धमें मत भेद था कि कालको द्रव्य माने वा न माने (१) कहीं २ लोयायासे ऐसा पाठ है अर्थ दोनोंका एक ही है। (२) कहीं २ पर इक्के ऐसा पाठ है ॥

ठिया हु एक्केक्के ॥ रयणाणं रासीविव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥ १ ॥ रूपादिगुणविरहादमूर्त्ताः ॥ वर्तना-लक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणमुक्तम् । परिणामादिगम्यस्य व्यवहारकालस्य किंप्रमाणमित्यत इदमुच्यते—

(१ ठिया) (२ हु*) (३ एक्केक्के) (स्थिताः हि* एकैकस्मिन्) = एक एक (कालाणु) निश्चय करके (=हु=हि) स्थित

रयणाणं रासी (४ विव*) (रत्नानां राशिः इव*) = रत्नोंकी राशिके समान है

(५) ते काल-अणू असंख-दव्वाणि ।
ते काल-अणवः असंख्य-द्रव्याणि ।
= वे कालके अणु असंख्यात द्रव्य हैं अर्थात् एकएक लोकाकाशके प्रदेशमें जो एकएक कालके अणु रत्नोंकी राशिके समान निश्चयकरके स्थित हैं, वे असंख्यात् द्रव्य हैं ॥ भावार्थ एक एकके क्रमसे लोकाकाशके जितने प्रदेश हैं उतनेही प्रदेशोंमें निश्चय कालके असंख्य अणु रत्नोंकी राशिके समान भरेहुए हैं । रत्नोंके ढेरका उदाहरण देनेका अभिप्राय यह है कि जिनका ढेर एकत्र होनेपर भी उसमें प्रत्येक रत्न भिन्नभिन्न है उसी प्रकारसे कालके अणु पृथक् पृथक् एकके पश्चात् एकक्रमसे भरे हुये हैं । इसीलिये जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतनेही कालद्रव्य गणनामें हैं ॥

रूप-आदि-गुण-विरहात् अमूर्ताः । = रूपादि गुणोंसे रहित (कालाणवः) अमूर्तीक हैं

वर्तना-लक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणम् = (प्रश्न) वर्तना लक्षणवाले मुख्य कालका प्रमाण

उक्तम् ; परिणाम-आदि-गम्यस्य व्यवहार- = कहागया । परिणाम-क्रिया-परत्व-अपरत्वकरि ज्ञात होनेवाले (ऐसे) व्यवहार

कालस्य किम् प्रमाणम् इति* अतः* इदं उच्यते = कालका क्या प्रमाण (वा निश्चयकरण) है इसलिये यह (अग्रिम सूत्र) कहाजाता है कि

(१) ठिया-स्थिताः प्राकृतमें विसर्ग नहीं है और भिन्न वर्गीय वर्णोंका (अक्षरोंका) संयोग नहीं होता भिन्न वर्गके पंचम अक्षरका कहीं २ संयोग होता है । इसलिये ठिया, ट्ठिया ऐसे पाठ हैं क्यों कि ट, ठ भिन्न वर्गके अक्षर नहीं है (२) हु (संस्कृत) हि=ही निश्चय करके । (३) एक्केक्के यह शब्द दो स्थानोंमें आया है ऊपर जिस प्रकार यह गाथा लिखी है उसमें इसको सर्व नाम मानाहै इसलिये 'सर्व' शब्दके सदृश एकैकस्मिन् पुंलिंग सप्तमी विभक्ति एक वचन पहिले शब्द 'एक्केक्के' की संस्कृत छाया लिखी है और द्वितीय एक्केक्के को "सर्व" शब्दके सदृश सर्वनाम संज्ञा मानकर 'एकैके' पुंलिंग, प्रथमा विभक्ति, बहु वचनमें संस्कृत छाया दी है॥ जहां 'एक्केक्का' पाठ है वहां सर्वनाम नहीं मानाहै वहां प्रथमा है 'एकैकाः' संस्कृत छाया है रासी-(३) यह शब्द प्राकृत शब्द 'रासि' का पुलिंग एकवचन प्रथमा विभक्ति है, जैसे-प्राकृत हरि से हरी संस्कृत छाया राशिः है (४) विव-विव, मिव, इव, तीन प्रकारके पाठ हैं मिव-पिव-विव, व्व, विअ इवार्थे वा २-१८२ हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृतव्याकरण । पिव्वहप्रत्यय इव अर्थमें विकल्पसे अर्थात् किसी के स्थानमें कोई आते हैं इव न तो हेमचन्द्र आचार्यकृत प्राकृत व्याकरणमें मिला न शौरसैन्य अव्यय प्रकरणमें मिला किन्तु 'द्रव्यसंग्रह' की २४वीं गाथामें "काया इव बहुदेशा" इस वाक्य में आया है इससे जाना जाता है कि प्राकृत में 'इव' भी कहीं २ काममें लाते हैं (५) "ते 'कालाणू' असंख दव्वाणि" पांच प्रतियों में ऐसा पाठ है पं० मनोहरलाल जी और पं० खूबचन्द्र जी द्वारा संपादित गोम्मटसार में "असंख दव्वाणि के स्थानमें" 'मुणेयव्वा' है जिस की संस्कृत छाया 'मन्तव्याः' है ध्यान रखना चाहिये पूज्यपादस्वामी, नेमिचन्द्र आचार्यसे पहिले हुए हैं जिनने गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह इत्यादि रचे हैं॥

॥ सोऽनन्तसमयः ॥४०॥

साम्प्रतिकस्यैकसमयिकत्वेऽपि अतीता अनागताश्च समयाअनन्ता इति कृत्वा अनन्तसमय इत्युच्यते अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणार्थमिदमुच्यते ॥ अनन्तपर्याय वर्त्तना हेतुत्वादेकोऽपि

(१)सूत्रम्-(२)सो ऽनन्त समयः॥४०॥ =स(२)कालः अनन्तसमयः अस्ति॥४०॥

सूत्रार्थः-सः[1/1] कालः[1/1] अनन्तसमयः[1/1] अस्तिT	=वह काल अनन्त समयवाला है। अथवा वह काल अनन्त समयरूप है ॥ अर्थात् वर्तमान काल तो एक समय मात्र है किन्तु अतीत (भूत) और अनागत (भविष्यत्) काल के समय अनन्त हैं ॥
वृत्यनुवादः—साम्प्रतिकस्य[6/1] एकसमयिकत्वे[7/1] ॥	=वर्तमान (काल)का एक समय होने पर
अपि*अतीताः[1/3] अनागताः[1/3] च*समयाः[1/3] अनन्ताः[1/3]	=भी भूत और भविष्यत् समय अनन्ते हैं।
इति*कृत्वा + अनन्तसमयः[1/1] इति*उच्यतेT॥	=ऐसा करके अनन्त समय (=अनन्त समयवाला)ऐसा (सूत्र) कहा गया है ॥
अथवा*मुख्यस्य[6/1] एव*कालस्य[6/1] (३)प्रमाण	=अथवा मुख्य ही कालका परिमाण (मर्यादा-इयत्ता)
अवधारण-अर्थम्[2/1]॥ इदम्[1/1]॥ उच्यतेT॥	=निश्चय करनेके लिये यह (सूत्र) कहागया है (कि मुख्य कालका परिमाण-सीमा मर्यादा-इयत्ता-अनन्त समय हैं)
अनन्त-पर्यायवर्तना-हेतुत्वात्[5/1]॥ एकः[1/1] अपि*	=अनन्त पर्याय के वर्तन (पदार्थों के परणति में बाह्य सहकारिता) के निमित्तपनासे एक भी

(१) श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥

(२) 'तद्' का पुल्लिङ्ग एक वचन प्रथमा विभक्ति'सः' है और इसके पश्चात् क्योंकि स्वर'अ' अनन्त शब्दका सूत्रमें लाये हैं इससे विसर्ग रहा और उसका उकार होकर अ+उ मिलकर"सो"रूप होगया, पुनः ओ और य के पश्चात् 'अ' 'ए अथवा ओ'में गर्भित होजाताहै। और अ के स्थानमें ऽ ऐसा चिन्ह विकल्प से कर देतेहैं, वह चिन्ह सूत्रमें देखो विद्यमान है (अध्याय प्रथम पृष्ठ १०) ॥ जब'सः'के पश्चात् कालशब्द जो व्यंजनसे आरम्भ होता है लाए तब (अष्टाध्यायी सूत्र ६-१-१३२) से विभक्ति प्रत्यय 'स'अर्थात् विसर्ग जाता रहा और ऊपर 'स कालः' ऐसा लिखागया है ॥ (अध्याय १ पृष्ठ ४२)

(३) "प्रमाणंहेतु-मर्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु" ॥अमरकोश-नानार्थवर्गः२३, श्लोक ५४ का प्रथमार्ध है ॥ प्रमाणका अर्थ (क) हेतु कारण (ख)मर्यादा, सीमा (ग) शास्त्र षड्दर्शन, (घ) इयत्ता, प्रमाण, मान, परिच्छेद (=विशेषरूप से इयत्ताकरण) (ङ) प्रमाता, ज्ञाता, यहां पर मुख्य कालका परिमाण माप के अर्थ में है कि मुख्य काल कितना है ॥

कालाणुरनन्त इत्युपचर्यते । समयः पुनः परमनिरुद्धः कालांशस्तत्प्रचयविशेष आवलिकादिरवगन्तव्यः ॥ आह गुणपर्यायवद्द्रव्यमित्युक्तं तत्र के गुणा ? इत्यत्रोच्यते-

॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥४१॥

द्रव्यमाश्रयो येषां ते द्रव्याश्रयाः । निष्क्रान्ता गुणेभ्यो निर्गुणाः ।

काल-अणुः अनन्तः इति उपचर्यते ।	=कालाणु अनन्त है ऐसा मानाजाता है अर्थात् अनन्तपर्यायोंके वर्तनाका कारण एक कालका अणु है तिस हेतुसे मुख्यकालके अनन्त समयपना वर्तता है ॥
समयः पुनः परम-निरुद्धः काल-अंशः	=बहुरि समय अत्यन्त सूक्ष्म (=परमनिरुद्ध) कालका अंश है
तत्प्रचयविशेषः आवलिक-आदि-अवगन्तव्यः ॥	=उस (समयके) समूह विशेष सो आवलिक आदिक जानने चाहिये ।
आह गुण-पर्याय-वत् द्रव्यम् इति उक्तम् तत्र	=(शिष्य) पूछता है कि "गुणपर्यायवद्द्रव्यम्" ऐसा (सूत्र)कहा गया तहां
के गुणाः इति अत्र उच्यते	=गुण क्या हैं ऐसे (जनावनेके लिये) यहां (उत्तरसूत्रमें) कहा जाता है कि

[1]सूत्रम्—द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

सूत्रार्थः—द्रव्य-आश्रयाः	=जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हैं अर्थात् जो विना द्रव्यके आश्रयके स्वतंत्र नहीं रह सकते हों द्रव्यसें तन्मय हों ॥
निर्गुणाः	=और स्वयं अन्य गुणोंसे रहित हों अर्थात् उन गुणोंमें अन्य गुण न हों
गुणाः	=वे गुण हैं संक्षेपतः भावार्थ ऐसा है कि जो द्रव्यसूं तन्मय हों और उन गुणोंमें अन्य गुण न हों जैसे-जीवके ज्ञान-दर्शन-चेतनत्व इत्यादिकगुणहैं और पुद्गलमें अचेनत्व रूप, रस, गन्ध, वर्ण, इत्यादिक गुण हैं
वृत्त्यनुवादः-द्रव्यम् आश्रयः येषाम् ते द्रव्य-आश्रयाः	=द्रव्य है आश्रय जिनका ते द्रव्याश्रया हैं अर्थात् जिनके रहनेके स्थान द्रव्य हों भावार्थ द्रव्यसूं तन्मय हों, एकमेक हों वे द्रव्यश्रया हैं
निष्क्रान्ताः गुणेभ्यः निर्गुणाः	=नहीं घिरेहुए हैं (अन्य) गुणों करि वे निर्गुण हैं

---

(१) दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रकापाठ औरअर्थ एकसा है। द्रव्यमेषामाश्रय इति द्रव्याश्रयाः नैषां गुणाः सन्तीति निर्गुणाः॥

द्रव्यम् एषाम् आश्रयःइति द्रव्य-आश्रयाः	=जिनकाआधार द्रव्यहो अर्थात् जो द्रव्यमें स्वयम्रहतेहों । जिनकेरहनेका स्थान द्रव्यहो ऐसेद्रव्याश्रयाःहैं॥
न एषाम् गुणाःसन्ति इति निर्गुणाः	=नहीं हैं जिनके गुण विद्यामान् अर्थात् जिनकेअथवा जिनमें गुण(गुणों)का अस्तित्व नहो ऐसे निर्गुणा हैं ॥

एवमुभयलक्षणोपेता गुणा इति॥निर्गुणा इति विशेषणं द्व्यणुकादिनिवृत्त्यर्थम्॥ तान्यपि हि कारणभूतपरमाणुद्रव्याश्रयाणि गुणवन्ति तु तस्मान्निर्गुणा इति विशेषणात्तानि[१]निर्वर्त्तितानि भवन्ति॥ननु पर्याया अपि घटसंस्थानादयो द्रव्याश्रया निर्गुणाश्च तेषामपि गुणत्वं प्राप्नोति॥ द्रव्याश्रया इति वचनान्नित्यं द्रव्यमाश्रित्य वर्तन्ते गुणा इति विशेषणत्वात्पर्यायाश्च [१]निवर्तिता भवन्ति ।

एवम्*उभय-लक्षण-उपेताः[३।३]	=ऐसे दोनों (द्रव्यके आश्रय रहनेवाले और अन्य गुणोंकरि रहित) लक्षणों सहित हैं
गुणाः[१।३] इति * निर्गुणाः[१।३] इति*विशेषणम्[१।१]	=वे गुण हैं (इस सूत्रमें) "निर्गुणाः" (=अर्थात् अन्य गुणोंकरि रहित) ऐसा विशेषण
द्वि-अणुक-आदि-निवृत्ति-अर्थम्[१।१];हि*	=दो आदि परमाणुके (स्कन्धके) निवारण वा दूर करनेके लिये है क्योंकि =हि)
तानि[१।३] अपि * कारणभूत-परमाणु-	=वे (दोआदिपरमाणुओंके स्कन्ध) भी जिनके उत्पत्तिका निमित्त परमाणु हैं
द्रव्य-आश्रयाणि[१।३] गुणवन्ति[१।३] तु * तस्मात् [५।१]	=द्रव्यके आश्रय गुणवान् होजाते हैं ('गुणवत्'का गुणवन्ति[१।३] है)तिस कारणसे
निर्गुणाः[१।३] इति * विशेषणात्[५।१]	=निर्गुणाःऐसा गुणवाचक शब्द (इस सूत्रमें लाने)से(=विशेषणात्)
तानि[१।३] [१]निवर्त्तितानि[१।३] भवन्ति ॥	=वे (दो आदिपरमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे) निवृत्ति होजाते हैं (=भवन्ति) अथवा छूटजाते हैं अर्थात् "द्रव्याश्रया गुणाः" यदि ऐसा सूत्र होता तो दो आदि परमाणुके स्कन्ध जो द्रव्यके आश्रय हैं और द्रव्य हैं वे भी गुण हो जाते हैं
ननु * पर्यायाः[१।३] अपि * घट-संस्थान-आदयः[१।३]	=प्रश्न-पर्यायें भी घटके आकार वा आकृति, आदिक
द्रव्यआश्रयाः[१।३] निर्गुणाः[१।३] च*तेषाम्[६।३] अपि*गुणत्वम्[१।१]	=द्रव्यके आश्रय हैं और गुणरहित हैं तिन (पर्यायों) के भी गुणपना
प्राप्नोति द्रव्याश्रयाः[१।३] इति * वचनात्[५।१] नित्यम्*	=प्राप्त होता है (उत्तर) "द्रव्याश्रयाः" वाक्यसे नित्य
द्रव्यम्[२।१] आश्रित्य + वर्तन्ते गुणाः[१।३] इति *	=द्रव्यको आश्रयकरि वर्तते हैं वे गुण हैं (इस सूत्रमें द्रव्याश्रय) ऐसा
विशेषणत्वात्[५।१] पर्यायाः[१।३] च * निवर्तिताः[१।३] भवन्ति	=विशेषण होनेसे पर्यायें भी (गुणरूपहोनेसे) निवर्तित होजाती हैं, अथवा पर्यायें भी गुणपना रहित वा वर्जित होजातीं हैं ।

(१। सर्वार्थसिद्धिके प्रथम संस्करणमें 'निर्वर्सितानि' और 'निर्वर्तिता' ये दोनों शब्द अशुद्ध हैं ॥ दूसरे संस्करणमें और अन्य तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'निवर्त्तितानि' (=निवर्तितानि) और निवर्त्तिताः (=निवर्तिताः)शुद्ध हैं क्योंकि पहिले दोनों शब्द 'निर्वृत्ति'के जिसका अर्थ रचनाका है रूपान्तर हैं और पिछले दो शब्द 'निवृत्ति'के जिसका अर्थ छोड़ना, निवारण करना, दूर करना है रूपान्तर हैं निर्वृत्तिका अर्थ निवृत्तिसे उलटा है ॥ वे(दोआदि परमाणुओंके स्कन्ध गुणरूप होनेसे)निवृत्ति होजाते हैं, पर्यायें भी गुणपना रहित होजाती हैं, इसअनुवादसे प्रगट है कि'निवृत्ति'होनाचाहिये॥

ते हि कादाचित्का इति ॥ असकृत्परिणामशब्द उक्तः । तस्य कोऽर्थ इति प्रश्ने उत्तरमाह—

॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अथवा गुणा द्रव्यादर्थान्तरभूता इति केषाञ्चिद्-

ते हि * कादाचित्काः इति * ॥ =क्योंकि (=हि) वे (पर्यायें) कभी कभी होने वाली (कादाचित्काः) होती हैं अर्थात् इस इकतालीसवां सूत्रमें द्रव्याश्रया (द्रव्यसे नित्य सम्बन्धरूप द्रव्यसूं तन्मय) विशेषणसे पर्यायोंको गुणपनेका निषेध होता है क्योंकि पर्यायें कदाचित् होकर विनशिजाती हैं कदाचित् अन्य अन्य रूप होजाती हैं

असकृत् * (१) परिणामशब्दः-उक्तः; तस्य =परिणाम शब्द (सूत्रोंमें) पुनि पुनि कहा गया है, तिस (परिणाम शब्द) का

कः अर्थः इति * प्रश्ने (२) उत्तरम् आह =क्या तात्पर्य्य वा आशय है ऐसे प्रश्न पर (आचार्य) उत्तर कहते हैं कि

सूत्रम्—(३) तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

सूत्रार्थः—तद्-भावः परिणामः =उस द्रव्य) का स्वभाव, निजभाव, स्वतत्त्व, वा निजतत्त्व है सो परिणाम है अर्थात् द्रव्य जिस स्वरूप करि (=येनात्मना) होतीहै (=भवति) सो तद्भाव है, वही परिणाम है, भावार्थ ऐसा है कि धर्मादिक छह द्रव्यें जिस स्वरूपकरि होतीहैं (देखो सर्वार्थसिद्धि-वृत्ति पृष्ठ ३११ पंक्ति ६,७, जिस स्वरूपकरि परिणमती हैं देखो पं० जयचन्द्जीकृता वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४७५ ४७६ उसको तद्भाव कहतेहैं। वही (=तद्भाव) परिणामहै ॥

(४) अथवा * =(यह सूत्र परिणाम शब्द के अर्थ कहने के लिये है) अथवा (इसलिये है कि)

गुणाः द्रव्यात् अर्थान्तरभूताः इति * केषाञ्चित् * =गुण द्रव्यसे भिन्न हैं ऐसा कितनोंका

(१) सूत्र जिनमें परिणाम शब्द लाये हैं (क) औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च अ० २ सू० १ (ख) नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदना विक्रियाः" अ० ३ सूत्र ३ (ग) "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य" ॥ अ० ५ सू० २२ ॥ "बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ अ० ५ सूत्र ३७ ॥ तद्भावः परिणामः अ० ५ सूत्र ४२ ॥ (२) 'ब्रू' द्विकर्मक धातुसे 'आह' (=कहता है) बना है (देखो अध्याय १ पृष्ठ १७)" 'ब्रू' के साथ दो कर्म 'उत्तरम्' 'सूत्रम्' आये हैं। 'उत्तरम्' समाधानकेअर्थमें यहां पुल्लिंग है (देखो वैद्यकोश पृष्ठ १२५,५१६) (३) दोनों आम्नायोंमें इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकसा है ॥ (४) अथवा = पक्षान्तरमें, प्रकारान्तरमें ॥

दर्शनं तत्किं भवतोऽभिमतं नेत्याह—यद्यपि कथञ्चिद्व्यपदेशादिभेदहेतुत्वापेक्षया द्रव्यादन्ये,तथापि तदव्यतिरेकात्तत्परिणामाच्च नान्ये ॥ यद्येवं स उच्यतां कः परिणाम इति तन्निश्चयार्थमिदमुच्यते—

धर्मादीनि द्रव्याणि येनात्मना भवन्ति तद्भावः तत्त्वं परिणाम

दर्शनम्[१।१] तत्[१।१] किम्[१।१] (१)भवतः[६।१] (२)अभिमतम्[१।१]	=मत वा सिद्धान्त(दर्शन है।वह दर्शन वा मत) क्या आपके(अर्थात् स्याद्वादियोंके) मान्य है
न * इति * आह। यद्यपि * कथंचित् * व्यपदेश-	=ऐसा नहीं (मन्तके समाधान करनेके लिये)कहते हैं कि यद्यपि कभी = संज्ञा(संख्या-लक्षण प्रयोजन)
आदि-भेद-हेतुत्व-अपेक्षया[३।१] द्रव्यात्[५।१] (३)अन्ये[१।३],	=आदिके भेदके कारणपनाकी अपेक्षाकरि (गुण) द्रव्यसे भिन्न हैं ॥
तथापि * (४)तद्-(६)अव्यतिरेकात्[५।१] च * तद्-	=तौ भी उस (द्रव्य)के अभेदसे और (=च)उस(द्रव्य)के
परिणामात्[५।१] न * अन्ये[१।३]।	=परिणामसे गुण अन्य नहीं हैं भावार्थ ऐसा है कि यद्यपि(५)संज्ञा-संख्या-लक्षण-विषयादिकरि गुणोंकें द्रव्यसे कथंचित् भेद है तौ भी वस्तुपनाकरि-प्रदेशपनाकरि अभेद है क्योंकि ये गुण उस द्रव्यके ही परिणाम हैं ॥
यदि * एवम् * सः[१।१] उच्यताम्।	=यदि इस प्रकार है तौ अर्थात् गुण द्रव्यके ही परिणाम हैं तो वह कहाजाय कि
कः[१।१] परिणामः[१।१] इति * तद्-निश्चय-अर्थम्[१।१] इदम्[१।१]	=परिणाम क्या है। उस(परिणाम)के अवधारणके अर्थ यह(ब्यालीसवां सूत्र)
उच्यते। धर्मादीनि[१।३] द्रव्याणि[१।३] येन[३।१]	=कहाजाता है कि धर्मादिक(छह) द्रव्य जिस जिस
आत्मना[३।१] भवन्ति।	=स्वरूपकरि होती है(देखो अर्थ प्रकाशिका मे इससूत्रकी भाषाटीका)अर्थात् परिणमती हैं (देखो, पं जयचंदकृत वचनिका मुद्रित पृष्ठ ४७५, ४७६)
तद्भावः[१।१] तत्त्वम्[१।१] परिणामः[१।१]।	=सो तद्भाव है(वही)तत्त्व है-वही स्वतत्त्व है-वही निजतत्त्व है॥ वही परिणाम

(१) 'भवतः' शब्द यहां पर आपके अथवा तुम्हारे के अर्थ में पुल्लिङ्ग एकवचन षष्ठी विभक्तिमें है संज्ञा है। [illegible] पुरुष(अन्यपुरुष) दो वचन 'भू' धातुका भवतः लट् वर्तमानकाल की क्रिया नहीं है ॥ [२] अभिमत = सम्मत, स्वीकृत, अंगीकृत, मान्य, [illegible] है ॥

(३)'अन्य' यहांपर सर्वनाम है और 'सर्व' शब्दकी भांति 'अन्ये' पुल्लिंग-सर्वनाम-बहुवचन-प्रथमा विभक्ति है। इस 'अन्ये' को सप्तमी एक वचन पुल्लिंग नहीं समझना चाहिये क्योंकि अन्ये' शब्दकी भी सप्तमी विभक्ति 'सर्व' शब्दके सदृश 'अन्यस्मिन्' है[illegible]की सप्तमी विभक्ति'सर्वस्मिन्' है॥

(४) तथापि = तौ भी-तबभी, तिसपरभी समानार्थक है॥ (५)संज्ञा-संख्या-आदिकी [illegible] अर्थ [illegible] देखोइसअध्यायकापृष्ठ१४६)

(६)सर्वार्थसिद्धिकी प्रथमावृत्तिमें 'तदव्यतिरेकात्'पाठ है, द्वितीयावृत्तिमें और तीन हस्तलिखित प्रतियोंमें 'तदव्यतिरेकात्' पाठ है इन चार प्रतियोंका पाठ शुद्ध है क्योंकि पहिले संज्ञा-संख्या-लक्षण-प्रयोजनादिकी अपेक्षासे भेद कहा इसके पीछे अभेद कहा जैसाकि अन्वय और भावार्थसे प्रगट है.॥

इति व्याख्यायते ॥ स द्विविधोऽनादिरादिमांश्च। तत्रानादिर्धर्मादीनां गत्युपग्रहादिः सामान्यापेक्षया। स एवादिमांश्च भवति विशेषापेक्षया ॥४२॥

॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पंचमोऽध्यायः ॥

इति*व्याख्यायते॥स*द्वि-विधः*अनादिः*आदिमान्*च* =ऐसे विवरण किया जाता है। वह(परिणाम) दो प्रकार अनादि और आदिमान्
तत्र*अनादिः*सामान्य-अपेक्षया*धर्मादीनाम्* =तहां अविशेष अपेक्षासे अनादि (परिणाम) धर्मादिक द्रव्योंके
गति-उपग्रह-आदिः* । =गति हेतुपना आदिक हैं (देखो इस अध्यायके सूत्र १७–१८–२२)
विशेष-अपेक्षया*॥सः* एव* =और(=च विशेष अपेक्षाकरि वो (=स)ही = एव) अर्थात् अनादि परिणाम
आदिमान्*च*भवति ॥ =आदिमान् (=सादि)(परिणाम)होता है अर्थात् गति-स्थिति हेतुपनादि धर्मादिक द्रव्योंका अनादि परिणाम है। सो विशेषकी अपेक्षा बाह्य निमित्तसे परिणाम होता है तिससे वही अनादि परिणाम आदिमान् होता है क्योंकि पर्यायें उपजती हैं, और विनशती हैं तिनको आदि सहित कह सकते हैं। चार द्रव्य धर्म-अधर्म-आकाश काल का तो अनादि तथा आदिमान् दोनों परिणाम आगमगम्य हैं। और जीव पुद्गलद्रव्योंके अनादि परिणाम आगमगम्य हैं। किन्तु उनके आदिमान् परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्य भी हैं।
इति*तत्त्वार्थ-वृत्तौ*सर्वार्थसिद्धिसञ्ज्ञिकायां*पंचमः*अध्यायः* =ऐसे तत्त्वार्थके विवरणमें सर्वार्थसिद्धि नाम ग्रंथमें पांचवां अध्याय(पूर्ण) हुआ

इस सूत्रके पश्चात् श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यभमें तथा 'भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थवृत्तिमें निम्नलिखित तीनसूत्र हमारे यहांके पाठसे अधिक हैं॥

अनादिरादिमांश्च (अनादिः आदिमान् च) ॥४२॥सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ० १४१,भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थ टीकामें पर्ण ४८५पर॥
अनादिःआदिमान् च*।तत्र*अनादिः =अनादि और (=च) आदिमान् (दो प्रकार का परिणाम) है। तहां अनादि (परिणाम)
अरूपिषु*धर्म-अधर्म-आकाश-जीवेषु*इति* =अरूपी द्रव्य) धर्म-अधर्म-आकाश तथा जीव में होता है॥

रूपिष्वादिमान् ॥४३॥(=रूपिषु:आदिमान्) ॥ सभाष्य० तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ ॥भाष्यानुसारिणीतत्त्वार्थटीका पर्ण ४८६ पर
रूपिषु*।तु*द्रव्येषु*॥आदिमान् =और तु* रूपी द्रव्योंमें आदिमान् (परिणाम) होता है अर्थात् श्वेत कृष्ण-नील आदि रूप वाले जो द्रव्य हैं उनमें आदिमान् (सादि) परिणाम होता है।
परिणामः*।अनेक-विधः*।(परिणामोऽनेकविधः) =वह आदिमान् परिमाण अनेक प्रकार होता है (जैसे)
स्पर्श-परिणाम-आदिः*इति(स्पर्शपरिणामादिरिति) =स्पर्श परिणाम रसपरिणाम-और गंध परिणाम इत्यादि होते हैं॥

योगोपयोगौ जीवेषु ॥४४॥(=योगः उपयोगः च जीवेषु)। सभाष्य०तत्त्वार्थाधिगमसूत्रमें पृष्ठ १४१ भाष्यानुसारिणी तत्त्वार्थटीका पर्ण ४८७पर
अरूपी द्रव्योंमें अनादिपरिणाम कहाहै सूत्र४२ अ०५ऊपर देखा उसका यह अपवाद वा विशेषवचन है कि
जीवेषु*।अरूपिषु*।अपि सत्सु*।योग- =जीवों के अरूपी (द्रव्य) होने पर (=सत्सु) भी (=अपि) उनमें योग-

उपयोगौ [। परिणामौ]। आदिमन्तौ भवतः तत्र उपयोगः पूर्व- = उपयोग-आदिमान् परिणाम होते हैं। तहां उपयोग पहिले वा प्रथम
उक्तः योगः तु* = कहा गया (देखो सभाष्य० अध्याय २ सूत्र ८,६ पृष्ठ ४०,४१) और (= तु) योग
परस्तात्वक्ष्यते = आगे (= परस्तात्) कहा जायगा (अध्याय ६ सूत्र, कायवाङ्मनःकर्मयोगः?)

श्वेताम्बर आम्नायमें 'स द्विधा ऽनादिरादिमांश्च' जो ४२वां सूत्र है हमारे तीसरी वार्तिक, राजवार्तिक में है जिसकी वृत्ति और भाषा ऐसे है कि

सः एषः परिणामः द्वि-धा भिद्यते अनादिः आदिमान् च इति = यह परिणाम दो प्रकार भेदरूप अनादि और (= च) आदिमान् ऐसे हैं
तत्र-अनादिः धर्मादीनाम् गति-उपग्रह-आदिः । = तहां अनादि (परिणाम) धर्मादिक द्रव्यों के गति उपग्रहआदिक है।
नहि एतत् द्रव्याकिंधर्मादीनि द्रव्याणि प्राक् पश्चात् गतिउपग्रहादिः = यह नहीं कि धर्मादिक द्रव्यें पहिले हों पीछे (= पश्चात्) गति उपग्रह आदिक हों।
प्राग् वा गति-उपग्रह-आदिः पश्चात् धर्मादीनि इति, किन्तु हि = अथवा गति उपग्रह आदि पहिले हों पश्चात् धर्मादिक (द्रव्यें) होंवें (= नहिं) क्योंकर
अनादिः एषाम् [। सम्बन्ध. = इन (धर्मादिकद्रव्य, गतिउपग्रहादि) का अनादि संबंध है (ऐसे सामान्य अपेक्षा अनादि परिणाम है)
आदिमान् च* बाह्य-प्रत्यय-आयात्त-उत्पादः । = (विशेष अपेक्षा वेही परिणाम) बहिरंग निमित्तकरि, उत्पन्न हुये आदिमान् भी (= च) है
क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं।

अत्र*अन्ये धर्म-अधर्म-काल-आकाशेषु अनादिः परिणामः = इस विषयमें (= अत्र) अन्य (आचार्य) धर्म-अधर्म आकाश कालविषैं अनादि परिणाम
आदिमान् जीव-पुद्गलेषु इति*वदन्ति तद् अयुक्तम् = और जीव पुद्गलोंमें आदिमान् (परिणाम) ऐसे कहते हैं सो ठीक नहीं है ॥
कुतः? सर्वद्रव्याणाम् [। अनादि-आत्मकत्वप्रसंगम् । = क्योंकर (अयुक्त है) क्योंकि सब द्रव्योंके अनादि स्वरूपता है ॥
अन्यथा*नित्य-अभाव-प्रसंगात् (राज० पृष्ठ २४४से उद्धृत) = दूसरे प्रकारसे (मानने में) नित्यताके अभावका प्रसंग आता है (राज० पृष्ठ २४५से उद्धृत)
अयम् तु*विशेषः धर्मादिषु चतुर्षु द्रव्येषु अत्यन्त- = और (= तु) यह विशेष है कि धर्मादिकचार (धर्म-अधर्म-आकाश-काल) द्रव्योंमें जो अत्यन्त
परोक्षेषु अनादिः आदिमान् च परिणाम : आगम-गम्यः = परोक्ष हैं अनादि और (= च) आदिमान् परिणाम इनका गम्य हैं।
जीव पुद्गलेषु कथंचित् * प्रत्यक्षगम्य अपि* राज०-४५से) = जीव पुद्गलों में (परिणाम) कभी कभी प्रत्यक्ष गम्य भी है ॥ (राज० पृष्ठ ४४से उद्धृत)

श्वेताम्बर आम्नायके सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र के ४२वां, ४३ वां, ४४वां, सूत्रों का विचारपूर्वक पढ़नेसे और अपने यहां की तत्त्वार्थराजवार्तिकसे उपर्युक्त उद्धृत वार्तिक तथा उसके विवरणके मिलान करनेसे दोनों आम्नायोंके अनादि और आदिमान् परिणामोंमें भेद और अन्तर निम्नलिखित ज्ञात पड़ता है ॥ [क] सभाष्य०के अध्याय पांच के सूत्र ३८,४२,४३,४४ से यह बात झलकती है कि श्वेताम्बरआम्नायमें कालको द्रव्य नहीं माना है॥ (ख) सभाष्य० के अनुकूल अरूपी द्रव्य जो धर्म-अधर्म-आकाशके सब और जीवद्रव्यके योग-उपयोग ये दो परिणामों के अतिरिक्त अवशेष सब परिणाम अनादि हैं। पुद्गलके सब परिणाम आदिमान् हैं। और वे अनेक प्रकारके होतेहैं। जैसे-स्पर्श परिणाम-रस परिणाम-गंध परिणाम इत्यादि और जीवके अरूपी द्रव्य होने पर भी योग-उपयोग ये दो परिणाम आदिमान् हैं। हमारे यहां के अनुसार जीव-पुद्गल धर्म-अधर्म-आकाश-काल-सब के परिणाम सामान्यरूप से अनादि हैं। और विशेषरूपसे वे ही परिणाम (बाह्य निमित्त से उत्पन्न हुये) आदिमान् हैं क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं मानेहुये छहों द्रव्योंमेंसे चार धर्म-अधर्म आकाश-काल द्रव्योंके परिणाम अनादि और आदिमान् अत्यन्त परोक्षहोनेकेहेतुसे आगम गम्य हैं। जीव और पुद्गलोंके अनादि परिणाम तो आगम गम्य है, परन्तु आदिमान् परिणाम कथंचित् प्रत्यक्ष गम्य भी हैं॥

सारांश—श्वेताम्बर आम्नाय में जीवके योग-उपयोग तथा पुद्गलोंके सब परिणाम आदिमान् हैं। धर्म-अधर्म आकाशके सब परिणाम और जीव के परिणाम (योग-उपयोग परिणामों के अतिरिक्त) अनादिमान् हैं। हमारे यहां सामान्यरूपसे सर्वपरिणाम अनादिमान्हैं। विशेषरूपसे सब छहोंद्रव्योंके परिणाम आदिमान् हैं क्योंकि पर्यायें उपजती हैं और विनशती हैं॥ हमारे यहां कालको भी द्रव्य माना है (देखो अध्याय ५ सूत्र २२,३९,४०) समाप्तहुआ॥